वक्तव्य

यह ग्रन्थ 'बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्' के प्रथम वर्ष का प्रथम भाषण है। प्रयाग विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग के प्राध्यापक डॉ० उदयनारायण तिवारी ने, सन् १९५१ ई० में, १९ मार्च से २० मार्च तक, पटना-कालेज के बी० ए० लेक्चर थियेटर हॉल में, 'भोजपुरी भाषा और साहित्य' विषय पर भाषण किया था। ग्रन्थ रूप में इस भाषण के प्रकाशित होने में आशातीत विलम्ब हो गया। कारण यह है कि ग्रन्थ बहुत बड़ा होने से छपने में काफी समय लगा और तिवारीजी की बृहदाकार भूमिका के तैयार होने में भी अधिक विलम्ब हो गया। इसीलिए अपने बाद के कई भाषणों के प्रकाशित हो जाने पर यह भाषण अब छपकर निकला है।

डॉ० तिवारी ने इस भाषण के और इसकी भूमिका के तैयार करने में घोर परिश्रम किया है। इसके प्रूफ-संशोधन और शुद्धिपत्र तैयार करने में भी उनकी तत्परता सर्वथा श्लाघ्य है। हिन्दी-संसार में तिवारीजी भोजपुरी भाषा और भोजपुरी साहित्य के सर्वाग्रणी मर्मज्ञ माने जाते हैं। विश्वास है कि उनका यह ग्रन्थ भोजपुरी-सम्बन्धी अनुसंधान-अनुशीलन के कार्यों में विशेष सहायक होगा।

बिहार-सरकार के शिक्षा-विभाग द्वारा संस्थापित और संचालित 'बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्' की ओर से प्रतिवर्ष हिन्दी-साहित्य-भांडार को समृद्ध करनेवाले विभिन्न महत्त्वपूर्ण विषयों पर विशेषज्ञ एवं अधिकारी विद्वानों के भाषण कराये जाते हैं। उनमें से कई भाषण अबतक ग्रन्थरूप में प्रकाशित हो चुके हैं। उन्हें देखकर हिन्दी-जगत् के प्रतिष्ठित विद्वानों ने मुक्तकंठ से यह स्वीकार किया है कि ये ग्रन्थ राष्ट्रभाषा हिन्दी के बहुत बड़े अभाव की पूर्ति करनेवाले हैं। आशा है, यह सर्वप्रथम भाषण भी भाषातत्त्वज्ञों और भाषाविज्ञान के जिज्ञासु पाठकों को प्रामाणिक और उपयोगी प्रतीत होगा।

श्रावण
संवत्—२०२१

शिवपूजन सहाय
परिषद्-मंत्री

श्रद्धेय गुरुवर

भाषाचार्य, साहित्य-वाचस्पति

डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या

एम० ए०, डी० लिट्, ई० ए० एस, भारतीय
भाषाशास्त्र तथा ध्वनिविज्ञान के भूतपूर्व खैरा प्रोफेसर, तुलनात्मक
भाषाशास्त्र के एमेरिटस प्रोफेसर, कलकत्ता विश्वविद्यालय के ललितकला
एवं संगीत-विभाग के डीन, एशियाटिक सोसायटी के सभापति,
पश्चिम - बंगाल - विधान - परिषद् के सभापति,
नार्वे की विज्ञान परिषद् के सदस्य,
काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभा के
सम्मान्य सदस्य के
चरण-कमलों में सादर

समर्पित

यो वागीश्वर - भक्ति - भावित - मना वाग्देवतानुग्रहा-
ल्लोकेऽस्मिन् बहुमानितः कृतमतिर्विद्योन्नतौ सन्ततम् ।
भाषाशास्त्रविचक्षणः स महतां संख्यावतामग्रणी-
रागृह्णातु समर्पणं त्विह कृतं शिष्यानुरागी गुरुः ॥

काठमाडू
बहराइच
बाँसी
बस्ती
गोरखपुर
मोतिहारी
टांडा
अकबरपुर
आजमगढ़
मुजफ्फरपुर
बलिया
छपरा
जौनपुर
भोजपुर
आरा
पटना
बक्सर
इलाहाबाद
बनारस
मिर्जापुर
म ग ही
बघेली
राँची
ना ग पु रि या
जशपुरनगर
खरसाँवा
उ ड़ि या
मानचित्र
भोजपुरी तथा उसकी उपभाषाएँ
राजनैतिक सीमा
भोजपुरी की सीमा
उत्तरी आदर्श भोजपुरी
पश्चिमी आदर्श भोजपुरी
दक्षिणी आदर्श भोजपुरी
नागपुरिया
नेपाल

दो शब्द

बात सन् १६२५ की है। तब मैं प्रयाग-विश्वविद्यालय में बी० ए० प्रथम वर्ष का छात्र था। एक दिन कक्षा में आदरणीय डा० धीरेन्द्र वर्मा ने हिन्दी की सीमा बतलाते हुए कहा—"डॉ० ग्रियर्सन के अनुसार भोजपुरी-भाषा-क्षेत्र हिन्दी के बाहर पड़ता है; किन्तु मैं ऐसा नहीं मानता।" भोजपुरी-भाषा-भाषी होने के नाते तथा राष्ट्रभाषा-हिन्दी के प्रति अनन्य स्नेह होने के कारण, डा० वर्मा के विचार तो मुझे रुचिकर प्रतीत हुए, परन्तु डॉ० ग्रियर्सन की उपर्युक्त स्थापना से हृदय बहुत क्षुब्ध हुआ। मैंने यह धारणा बना ली थी कि भोजपुरी हिन्दी की ही एक विभाषा है, अतएव हिन्दी के क्षेत्र से भोजपुरी को अलग करना मुझे देश-द्रोह-सा प्रतीत हुआ। मैंने अपने मन में सोचा,—'ग्रियर्सन आइ० सी० एस० था, फूट डालकर शासन करनेवाली जाति का एक अंग था, समूचे राष्ट्र को एक-सूत्र में बाँधने में समर्थ हिन्दी को अनेक छोटे-छोटे क्षेत्रों में विभाजित करने में उसकी यही विभाजक-नीति अवश्य रही होगी।' उसी समय मेरे मन में संकल्प जाग्रत हुआ कि पढ़ाई समाप्त करने के अनन्तर मैं एक दिन भोजपुरी के सम्बन्ध मे ग्रियर्सन द्वारा फैलाए गए इस भ्रम को अवश्य ही निराधार सिद्ध करूँगा और सप्रमाण यह दिखा दूँगा कि भोजपुरी हिन्दी की ही एक बोली है तथा उसका क्षेत्र हिन्दी का ही क्षेत्र है।

परन्तु आज भोजपुरी के अध्ययन में चौबीस वर्षों तक निरन्तर लगे रहने तथा भाषा-शास्त्र के अधिकारी विद्वानों के सम्पर्क से भाषा-विज्ञान के सिद्धान्तों को यत्किंचित् सम्यक् रूप में समझ लेने के पश्चात् मुझे अपने उस पूर्वाग्रह पर खेद होता है, जो बी० ए० प्रथम वर्ष में, भाषा-विज्ञान के गम्भीर परिशीलन के बिना ही मेरे हृदय में स्थान पा गया था। आज मुझे डा० ग्रियर्सन के परिश्रम, ज्ञान एवं पक्षपातरहित-विवेचना के गौरव का अनुभव होता है और इस विद्वान् के प्रति हृदय श्रद्धा से परिपूर्ण हो जाता है, साथ ही याद आती है—भर्तृहरि की ये पंक्तियाँ—

> यदा किञ्चिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः समभवं
> तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिप्तं मम मनः।
> यदा किञ्चित् - किञ्चिद् बुधजनसकाशादवगतं
> तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः॥

सन् १६२७ ई० मे बी० ए० कर लेने के अनन्तर प्राय दो वर्षों के लिए मेरा हिन्दी से सम्बन्ध छूट गया। एम० ए० मे मैंने अर्थशास्त्र विषय लिया और सन् १६२६ ई० में एम० ए० कर लेने के पश्चात् मेरी रुचि पुन: भोजपुरी के अध्ययन की ओर जाग्रत हुई और पूर्वकृत संकल्प का पुनः स्मरण हो आया। अपने ढंग से मैं इस ओर लगा भी रहा

कि इसी बीच सन् १९३० ई० में प्राच्य-विद्या-सम्मेलन (ऑल इण्डिया ओरियण्टल कान्फ्रेन्स के अधिवेशन मे भाग लेने के लिए मैं पटना गया। वहाँ मुझे देश के अनेक सम्मान्य विद्वानो के दर्शन का अपूर्व अवसर प्राप्त हुआ। गुरुवर डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या के दर्शन एव सन्निधान का प्रथम सौभाग्य भी मुझे यही मिला। मुझे यह ज्ञात था कि डॉ० चाटुर्ज्या ने ग्रियर्सन के भाषा-सम्बन्धी कतिपय सिद्धान्तो का खण्डन किया है। भोजपुरी-क्षेत्र के सम्बन्ध मे जब मैंने अपने हृदय की बात डॉ० चाटुर्ज्या से निवेदित की तो उन्होने मुझे भाषा-विज्ञान के विधिवत् अध्ययन के लिए अत्यधिक उत्साहित किया। भोजपुरी-ध्वनियो के सम्बन्ध में उन्होंने मुझे कुछ अभ्यास भी कराया और इस सबध की अनेक पुस्तको का परिचय दिया तथा श्रद्धेय डॉ० बाबूराम सक्सेना एव पं० क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय जी से मिलकर अध्ययन की दिशा निश्चित करने का सुझाव दिया।

पटना से वापिस लौटकर मै डॉ० धीरेन्द्र वर्मा को साथ लेकर डॉ० सक्सेना से मिला और उनसे भाषा-शास्त्र के अध्ययन के सम्बन्ध मे पथ-प्रदर्शन की प्रार्थना की। उन्होने कृपापूर्वक यह कार्य स्वीकार किया और मै लगातार तीन वर्षो तक उनके तत्त्वावधान में उक्त कार्य करता रहा। श्रद्धेय सक्सेना जी के सम्पर्क में विताए गए यह तीन वर्ष मै कभी भूल नही सकता। उनके भाषा-शास्त्र के गम्भीर ज्ञान, स्नेहपूर्ण व्यवहार एव सरलता से मैंने जितना कुछ ज्ञान एव प्रेरणा प्राप्त की, उसके प्रति कृतज्ञता-प्रकाशन के लिए पर्याप्त शब्द मेरे पास नही है।

श्रद्धेय डॉ० सक्सेना के निरीक्षण मे एक वर्ष तक कार्य करने के बाद मैंने उनके 'लखीमपुरी' के अध्ययन के आदर्श पर 'ए डाइलेक्ट आव भोजपुरी' शीर्षक अपना निबन्ध प्रस्तुत किया। स्व० डॉ० काशीप्रसादजी जायसवाल की सहायता से मेरा यह निबन्ध सन् १९३४-३५ में विहार-उड़ीसा रिसर्च-सोसायटी के जर्नल मे प्रकाशित हुआ। स्व० डॉ० ग्रियर्सन, स्व० डॉ० ज्यूल ब्लाख, डॉ० टर्नर तथा डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने मेरे इस निबन्ध की सराहना की। इससे मुझको बहुत उत्साह एवं बल प्राप्त हुआ और आत्म-विश्वास में वृद्धि हुई, जिसका परिणाम यह हुआ कि भाषा-शास्त्र को मैंने अपने अध्ययन का प्रिय विषय बना लिया और अनेक वर्षो तक सब ओर से ध्यान हटाकर इसी के अध्ययन की ओर अपना समस्त ध्यान केन्द्रित कर लिया। इस बीच मैं भोजपुरी का व्याकरण तैयार करने तथा 'विहारी भाषाओ की उत्पत्ति एव विकास' नामक निबन्ध प्रस्तुत करने मे सलग्न रहा। मेरा यह विषय डी० लिट्० के लिए, प्रयाग-विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत भी हो गया था, किन्तु ज्यो-ज्यो मैं इस विषय की गहराई मे उतरता गया, त्यो-त्यो मुझे इसकी विशालता एव दुरूहता का भान होने लगा और श्रद्धेय सक्सेनाजी के परामर्श से मैंने अपना अध्ययन 'भोजपुरी-भाषा' तक ही सीमित करना उचित समझा। सन् १९३४-३७ ई० तक मैं भोजपुरी के विभिन्न क्षेत्रो की यात्रा कर इसकी विभाषाओ का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करता रहा, जो कि अपने अध्ययन को विज्ञान-सम्मत बनाने के लिए नितान्त आवश्यक था। मेरे इन सब प्रयत्नो एवं यात्राओ में डॉ० सक्सेना का सत्परामर्श एवं उनकी प्रेरणा मुझे सदैव प्राप्त होती रही।

इसी बीच मेरा सम्पर्क महापण्डित राहुल सांकृत्यायन से हुआ। वह तिब्बत से दुर्लभ पुस्तको का विशाल भण्डार लेकर लौटे थे और मेरे साथ रहकर 'मज्झिम-निकाय',

'दीघनिकाय' तथा पाली के कतिपय अन्य ग्रन्थो का अनुवाद करने में लग गए। उनके गम्भीर व्यक्तित्व एवं ज्ञान-गौरव ने मुझे अत्यधिक आकर्षित तथा प्रभावित किया और मुझे यह कहते हुए बहुत सुख मिल रहा है कि उनके इस निकट सम्पर्क से मेरा बड़ा लाभ हुआ। उनसे मुझे अपने अध्ययन के विषय मे मूल्यवान परामर्श तो मिले ही, साथ ही इससे भी बड़ा लाभ यह हुआ कि मैं पाली से भी परिचित हो गया और आगे चलकर मैं पाली के विधिवत् अध्ययन मे प्रवृत्त हुआ। इस प्रसंग मे मुझे हिन्दी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार तथा प्रख्यात बौद्ध-भिक्षु भदन्त आनन्द कौसल्यायन एवं भिक्षु जगदीश काश्यप से भी बड़ी सहायता मिली। सन् १९३९ में मैं कलकत्ता-विश्वविद्यालय मे पाली विषय में एम० ए० की परीक्षा देने गया। यहाँ डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या के दर्शन का मुझे पुनः सौभाग्य प्राप्त हुआ और उनको मैंने अपने अध्ययन की प्रगति से अवगत कराया। उन्होंने मुझे कलकत्ते में ही रहकर भाषा-शास्त्र का अध्ययन करने और अपनी डी० लिट्० की थीसिस लिखने के लिए प्रेरित किया। अत सन् १९४० मे पुन. कलकत्ता जाकर मैंने डॉ० चाटुर्ज्या एव डॉ० सुकुमार सेन के तत्त्वावधान मे तुलनात्मक-भाषा-शास्त्र का अध्ययन आरम्भ किया और सन् १९४१ मे कलकत्ता-विश्वविद्यालय की एम० ए० परीक्षा, तुलनात्मक भाषा-शास्त्र में, उत्तीर्ण कर ली। वही रहकर सन् १९४३ तक अपनी थीसिस 'भोजपुरी-भाषा की उत्पत्ति और विकास' लिखने मे लगा रहा। सन् १९४४ ई० में कलकत्ते से लौटकर मैंने अपनी थीसिस प्रयाग-विश्वविद्यालय में प्रस्तुत कर दी, जिस पर मुझे डी० लिट् की उपाधि प्राप्त हुई। इस प्रकार सन् १९३० मे प्रारम्भ किया हुआ भोजपुरी-भाषा के अध्ययन का कार्य सन् १९४५ ई० में समाप्त हुआ।

कलकत्ता मे तुलनात्मक भाषा-शास्त्र का अध्ययन करने की सर्वाधिक प्रेरणा मुझे श्रद्धेय पण्डित क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्यायजी से प्राप्त हुई। उन्ही से वेद का कुछ अंश, अवेस्ता के तीन यस्न तथा 'दारयवउस' के प्राचीन-फ़ारसी के शिलालेख पढ़कर मैं कलकत्ता गया था। इसके अतिरिक्त पण्डितजी ने अपने निजी पुस्तकालय से अनेक मूल्यवान पुस्तकें देकर भी मेरी सहायता की और मुझे निरन्तर उत्साहित करते रहे। इस प्रकार भाषा-शास्त्र के अध्ययन में मुझे प्रवृत्त कराने का श्रेय डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, डॉ० बाबूराम सक्सेना और पं० क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय को है।

इन गुरुजनो के अतिरिक्त मैं श्रद्धेय राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन, डॉ० अमरनाथ झा (तत्कालीन उप-कुलपति, प्रयाग विश्वविद्यालय), पण्डित श्रीनारायण चतुर्वेदी, महापण्डित राहुल सांकृत्यायन का भी आभारी हूँ, जिन्होंने मुझे इस कार्य में उत्साहित किया और मेरा मार्ग-प्रदर्शन किया। 'इण्डियन-प्रेस' के स्वामी स्व० हरिकेशव घोष (श्री पटल बाबू) को मैं कैसे भूल सकता हूँ, जिन्होंने कलकत्ते में मेरे निवासादि की पूर्ण व्यवस्था कर दी थी। स्व० भवानीप्रसाद राय चौधरी (भवानी दा) भी, कलकत्ते के, मेरे अध्ययन में सहायक रहे। मुझे अत्यन्त खेद है कि असामयिक निधन के कारण भवानी दा अपनी प्रखर प्रतिभा तथा गहन अध्ययनशीलता का प्रसाद न दे सके। उनकी दिवंगत आत्मा के प्रति मै अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट कर देना अपना कर्तव्य समझता हूँ।

उत्कल-विश्व-विद्यालय में फ्रेंच-भाषा के प्राध्यापक श्री प्रणवेश सिंह राय वर्मन

एम० ए० का भी मैं आभारी हूँ, जो अध्ययन-काल में मुझे उत्साहित करते रहे। कृतज्ञता-प्रकाशन का यह पुनीत कर्त्तव्य तब-तक अधूरा ही रहेगा, जब तक मैं 'विहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्' के पारिषदों, विशेषकर विहार के शिक्षा-मंत्री आचार्य बदरीनाथजी वर्मा, पटना-विश्वविद्यालय के भूतपूर्व उपकुलपति बा० शारङ्गधरसिंह, बिहार के शिक्षा-सचिव श्री जगदीशचन्द्र माथुर, डॉ० विश्वनाथप्रसाद, श्री रामवृक्ष 'बेनीपुरी' के प्रति आभार प्रकट न करूँ। ये सभी महानुभाव 'विहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्' की उन बैठकों के सभापति थे, जिनमें मैंने अपने इस निबन्ध के कुछ अंशों का पारायण व्याख्यानों के रूप में किया था। परिषद् को मैं हार्दिक धन्यवाद देता हूँ, जिसने मुझे अपने इस कार्य को हिन्दी-भाषा में प्रस्तुत करने के लिए अवसर दिया। मैं अपने तरुण मित्र श्री महावीरप्रसाद लखेड़ा, एम० ए०, साहित्यरत्न का भी अत्यन्त कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने इस पुस्तक के लिए संकेत, शुद्धिपत्र आदि बनाकर इसका वैज्ञानिक मूल्य बढ़ा दिया है।

मेरी यह पुस्तक प्रयाग-विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत मेरी डी० लिट् की अंग्रेजी-थीसिस का अविकल अनुवाद-मात्र नहीं है। इसमें भोजपुरी-सम्बन्धी अनेक नवीनतम गवेषणाओं का समावेश किया गया है और इसमें आधुनिकतम खोजों का उपयोग करने का प्रयत्न किया गया है। श्रद्धेय गुरुवर डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या एवं डॉ० सुकुमार सेन के लेखों, भाषणों एवं ग्रन्थों का मैंने इस पुस्तक में पर्याप्त उपयोग किया है। फिर भी मैं प्रयाग-विश्वविद्यालय के अधिकारियों का कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने मुझे अपनी उस अंग्रेजी थीसिस के अंशों को हिन्दी-अनुवाद-रूप में लेने की कृपापूर्ण अनुमति प्रदान की।

मुझे यह लिखते हुए बहुत हर्ष हो रहा है कि भोजपुरी भाषा के सम्बन्ध में मेरा यह कार्य कुछ नवयुवकों को, भोजपुरी भाषा एवं साहित्य के विविध-पक्षों के वैज्ञानिक परिशीलन में प्रवृत्त करने में, सफल हुआ है। डॉ० विश्वनाथप्रसाद ने 'भोजपुरी ध्वनि-शास्त्र' के विवेचन पर लंदन-विश्वविद्यालय से, डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय ने भोजपुरी लोकगीतों का अध्ययन प्रस्तुत कर लखनऊ-विश्वविद्यालय से तथा मेरे शिष्य डॉ० सत्यव्रत सिनहा ने भोजपुरी-लोक-गाथाओं (Ballads) के परिशीलन पर प्रयाग-विश्वविद्यालय से डी० फिल् की उपाधि प्राप्त की। भगवान् शंकर से मेरी यही प्रार्थना है कि विभिन्न लोक-भाषाओं एवं लोक-संस्कृति के विभिन्न पक्षों के वैज्ञानिक अध्ययन में प्रतिभाशाली विद्वानों की रुचि एवं प्रवृत्ति निरन्तर बढ़ती रहे, जिससे भारत के जनजीवन एवं उसकी अनुभूतियों को अभिव्यक्ति प्रदान करनेवाली भाषा का वास्तविक स्वरूप समझा जा सके। भारत के सांस्कृतिक विकास के लिए इसका महत्त्व बहुत अधिक है।

आधुनिक भारतीय-आर्य-भाषाओं के सम्बन्ध में अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन आदि विदेशी भाषाओं में अनेक पाण्डित्यपूर्ण वैज्ञानिक विवेचनात्मक ग्रंथ प्रस्तुत किए गए हैं। परन्तु हिंदी में इस कोटि का कोई ग्रंथ आज तक प्रकाशित नहीं हुआ था। मेरी इस कृति का यह परम सौभाग्य है कि राष्ट्रभाषा हिंदी में इस प्रकार का प्रथम-ग्रन्थ होने का श्रेय इसे प्राप्त है। परन्तु इसी कारण इस सौभाग्य के साथ-साथ अनेक कठिनाइयों का भी इसको सामना करना पड़ा है। हिंदी में भाषा-वैज्ञानिक शब्दावली एवं संकेत-चिन्हों का निर्धारण एक जटिल

समस्या वनकर लेखक के सामने आई और प्रेस के कर्मचारियो को भी इस प्रकार के प्रकाशन से पहली भेंट होने के कारण कम परेशानी नहीं उठानी पड़ी। अतः बहुत सावधानी एवं सतर्कता से कार्य करने पर भी अशुद्धियों का रह जाना स्वाभाविक ही था। पुस्तक के अंत में दिये गये शुद्धि-पत्र को ध्यान में रखने का कष्ट सहृदय पाठक अवश्य स्वीकार करे।

आधुनिक भारतीय - आर्य - भाषाओ के वैज्ञानिक - अध्ययन के जिज्ञासुओ के लिए पुस्तक को उपादेय बनाने का मैंने यथाशक्ति प्रयत्न किया है; परन्तु महाकवि कालिदास के शब्दो मे—

आपरितोषाद्विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम्।
बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः॥

मैं उन सभी विद्वज्जनो के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ जिनकी कृतियो से मुझे प्रस्तुत ग्रंथ की रचना में सहायता मिली है। साथ ही अधिकारी विद्वानो से प्रार्थना करता हूँ कि वे अपने सुझावो एवं इस रचना की त्रुटियो से मुझे अवगत कराने की कृपा करें, जिसमें अगले सस्करण में उन्हे दूर किया जा सके।

अलोपीबाग, प्रयाग
महाशिवरात्रि, संवत् २०१०

उदयनारायण तिवारी

इ० ग्रा० अ० = इवोल्यूशन ग्राव अवधी
इ० ए० = इण्डियन एण्टीक्वेरी
इ० ब्रि० = इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका
इ० लि० भा० = इण्डियन लिंग्विस्टिक भाग
उ० = उडिया
उ० पु० = उत्तम पुरुष
उ० व्य० प्र = उक्तिव्यक्ति प्रकरणम्
उ० श० = उधार लिए हुए शब्द
ए० व० = एकवचन
ऋ० वे० स० = ऋग्वेदसंहिता
क० ग्र० = कबीर-ग्रथावली
क० वा० = कर्मवाच्य
का० = कारक
ख० बो० = खड़ी बोली
गॉ० = गॉथिक
ग्रा० ओ० वे० रा० = ग्रामर ग्राव ओल्ड वेस्टर्न राजस्थानी
ग्री० = ग्रीक
गु० फो० = गुजराती फोनोलॉजी
गो० = गोरखपुरी
गौ० ग्रा० = गौडियन ग्रामर
तु० दा० = तुलसीदास
तृ० = तृतीया
द्वि० = द्वितीया
द्वि० प्रे० = द्विगुणित प्रेरणार्थक
द्वि० सस्क० = द्वितीय सस्करण
दे० = देखो
न० लि० = नपुसक-लिङ्ग
ना० प्र० = नागरीप्रचारिणी
ने० = नेपाली
ने० डि० = नेपाली डिक्शनरी
ट० = टर्नर
टि० = टिप्पणी
जे० आर० ए० एस० = जर्नल ग्राव द रायल एशियाटिक सोसाइटी
जे० ए० एस० बी० = जर्नल ऑव द एशियाटिक सोसाइटी ग्राव बङ्गाल
ज़े० डी० एम० जी० = साइत् श्रिफत् देर् दायशेन् मारगेन् लॅंदिशेन् गेजेल् शाफत्
प० = पंजाबी
प० ब० = पश्चिमी बगाली
प० भो० पु० = पश्चिमी भोजपुरी
प० हि० = पश्चिमी हिंदी
प्र० = प्रथमा
प्रा० = प्राकृत
प्रा० को० = प्राचीन कोसली
प्रा० फा० = प्राचीन फारसी
प्रा० ब० = प्राचीन बगला
प्रा० भा० आ० भा० = प्राचीन भारतीय-आर्य-भाषा
प्रा० भो० पु० = प्राचीन भोजपुरी
पु० लि० = पुल्लिग
पू० हि० = पूर्वी हिन्दी
प्रे० = प्रेरणार्थक
पृ० = पृष्ठ
फा० = फारसी
ब० = बगला
ब० व० = बहुवचन
बना० = बनारसी
बु० आ० द ओ० स्ट० ल० = बुलेटिन ग्राव द ओरियटल स्टडीज, लदन
बैं० लैं० = बैङ्गाली लैंग्वेज
बो० चा० = बोल चाल (की भाषा)
भा० = भारोपीय
भू० = भूमिका
भू० का० कृ० = भूतकालिक कृदन्त
भो० पु० = भोजपुरी
म० = मगही
म० पु० = मध्यम पुरुष
म० ब० = मध्य (युगीन) बगला
म० भा० आ० भा० = मध्य-भारतीय-आर्य-भाषा
मा० = मागधी
मा० प्रा० = मागधी-प्राकृत

मार० = मारवाड़ी
मि० = मिलाओ
मिर्जा० = मिर्जापुरी
मै० = मैथिली
मै० ग्रा० = मैथिली ग्रामर
रा० = राजस्थानी
रा० मा० = रामचरित-मानस
लँ० = लँहदी
लिथु० = लिथुआनीय
लिं० स० = लिंग्विस्टिक सर्वे (आव इण्डिया)
लाँ० म० = लाँग मराठे
लै० = लैटिन
व० र० = वर्ण-रत्नाकर
वि० = विकारी
वि० ए० व० = विकारी एकवचन
वि० फि० ले० = विल्सन फिलॉलॉजिकल लेक्चर्स
वि० ब० व० = विकारी बहुवचन
विशे० = विशेषण
वै० = वैदिक
वै० स० = वैदिक-संस्कृत
व्र० = व्रजभाषा
सं० = संस्कृत
सं० को० = संस्कृत-कोष
सम्प्र० = सम्प्रदान (कारक)
सम्ब० विशे० = सम्बन्धीय विशेषण
सम्ब० विशे० अवि० = सम्बन्धीय विशेषण अविकारी
सम्ब० विशे० वि० = सम्बन्धीय विशेषण विकारी
सा० = सारन (की बोली)
सि० = सिन्धी
स्त्री लि० = स्त्रीलिङ्ग
से० ग्रा० वि० लै० = सेवन ग्रामर्स आव विहारी लैंग्वेज
हिं० = हिन्दी
श्री० कृ० की० = श्रीकृष्णकीर्तन

विषय-सूची

उपोद्घात— पृ० १

संसार की भाषाओं का वर्गीकरण १-५; भारोपीय-परिवार ६-१७; भारत-ईरानी अथवा आर्य वर्ग १७-२०; भारतीय-आर्यभाषा २०-२१; प्राचीन-भारतीय-आर्य भाषा २१-३० मध्य-भारतीय-आर्य-भाषा, ३०-५१, नवीन-भारतीय-आर्य-भाषा-हिन्दी ५१-५६, आधुनिक आर्यभाषाओं तथा बोलियों का वर्गीकरण ग्रियर्सन तथा चटर्जी, ६०-७६; हिन्दी शब्द की निरुक्ति, ७६; हिन्दी के अन्य नाम-हिन्दुई, हिन्दवी, हिन्दवी दक्खिनी, दखनी या दकनी, हिन्दुस्तानी, हिन्दुस्तानी, कॉंग्रेस की हिन्दुस्तानी, गाँधी जी की हिन्दुस्तानी, रेख्ता, रेख्ती, उर्दू, ७७-६३; हिन्दी-उर्दू समन्वय की आवश्यकता ६३; हिंदी के विभिन्न तत्त्व ६३-६७; हिन्दी में विदेशी शब्द ६८-१०२; हिन्दी की ग्रामीण बोलियाँ पूर्वी तथा पश्चिमी हिन्दी में अन्तर १०२-१०६; पश्चिमी हिन्दी की ग्रामीण बोलियाँ-हिन्दोस्तानी, १०६-११४; बाँगरू ११४-११७; ब्रजभाखा अथवा अन्तर्वेदी ११७-१२६; कनौजी १२६-१३१; बुन्देली अथवा बुन्देलखंडी १३१-१३८; पूर्वी हिन्दी १३८-१३६; अवधी १४०-१४१; गहोरा बोली १४२; जूहर १४२-१४३; अवधी की उत्पत्ति १४३-१४५; अवधी की उसकी अन्य बोलियों से तुलना तथा उसका महत्त्व १४५-१४८; अवधी का संक्षिप्त व्याकरण १४८-१५५; बघेली-१५५-१६२; छत्तीस गढ़ी, लरिया या खल्टाही-१६२-१६६ बिहारी-वर्गीकरण, उत्पत्ति १६६-१७५; बिहारी तथा हिन्दी १७५-१७६; बिहारी बोलियों की आन्तरिक एकता-१७६-२०१; मैथिली-मैथिली के अन्य नाम तथा इसका उल्लेख-मैथिली का क्षेत्र, मैथिली की विभाषाएँ अथवा बोलियाँ, मैथिली का संक्षिप्त व्याकरण २०२-२१६; मगही या मागधी पूर्वी मगही २१७-२१६; मगही का संक्षिप्त व्याकरण-२१६-२२७।

प्रथम-खंड १—६६

पहला अध्याय-प्रवेशक—

भोजपुरी का नामकरण १-८, भोजपुरी की सजीवता ८-६; भोजपुरी में साहित्य का अभाव ६, भोजपुरी का विस्तार ६-१०, भोजपुरी की बोलियाँ या विभाषाएँ ११-१२, भोजपुरी बोलियों की तुलना १२-१८, मधेसी भोजपुरी १८-१६, थारू भोजपुरी १६-२०, भोजपुरी का शब्द-कोष २०-२१, भोजपुरी में व्यवहृत फारसी - अरबी शब्द २१-२२, भोजपुरी-संस्कृति तथा भाषा-भाषी २३-२४।

दूसरा अध्याय—साहित्य— २५—६६

भोजपुरी - साहित्य २५, कबीर २५-२६, धर्मदास २६-३०, शिव नारायण ३१-३२, लक्ष्मी सखी ३३-३४, डा० जार्ज ए० ग्रियर्सन ३५-३६, ह्यू ग फ्रेजर —जे० बीम्स ए० जी० शिरेफ—रामनरेश त्रिपाठी, ३७-३८, कृष्णदेव उपाध्याय ३८, दुर्गाशंकर सिंह ३६, बिसराम ४०, तेग अली—बा० रामकृष्ण वर्मा ४१, पं० दूधनाथ उपाध्याय ४१-४२, बा० अम्बिका प्रसाद ४२-४३, रघुवीर शरण ४३-४४, भिखारी ठाकुर ४४-४५, मनोरञ्जन प्रसाद सिनहा ४५, रामविचार पाण्डेय ४६-४७, प्रसिद्ध नारायण सिंह ४७-४६, श्याम बिहारी तिवारी ४६-५०, कविवर चंचरीक ५०-५१, स्वामी जगन्नाथ दास जी ५२, अशान्त ५३-५४, फुटकर पुस्तकें ५४-५६, भोजपुरी-गद्य ५६-५७, अवध बिहारी सुमन ५८-५६, भोजपुरी लोकगाथाओं में गद्य ५६, नाटक—रविदत्त शुक्ल ६०, भिखारी ठाकुर ६१, राहुल बाबा—'नइकी दुनिया', 'ढुनमुन-नेता', 'मेहरारून के दुरदसा', 'जोंक', 'ई हमारलड़ाई', 'देश-रच्छक', 'जपनिया राछछ', 'जरमनवा के हार निहचय' ६१-६५, गोरखनाथ चौबे—'उल्टा जमाना' ६५-६६।

द्वितीय-खंड—व्याकरण— ७१—३०७

ध्वनि - तत्त्व

पहला-अध्याय—ध्वनि—

भोजपुरी-ध्वनियाँ—(क) व्यञ्जन ७१, (ख) स्वर ७२, ध्वनियों का विशेष विवरण मूल-स्वर ७३-७५, अनुनासिक-स्वर ७६, संयुक्त स्वर ७६-७७, संध्यक्षर ७७-७८, व्यञ्जन ७८-८०, अनुनासिक-व्यञ्जन ८०-८१, पार्श्विक-व्यञ्जन-लुण्ठित-व्यञ्जन ८२-८३, संघर्षी ८३, अर्धस्वर या अन्तस्थ (य्) ८३-८४, अर्धस्वर (व्) संयुक्त-व्यञ्जन ८४-८५, व्यञ्जन वर्णों का द्वित्वभाव या दीर्घीकरण ८५-८६, स्वराघात-वाक्य स्वराघात ८६-८७, सुर या उदात्तादि-स्वर ८७-६१।

दूसरा अध्याय—

प्राचीन तथा मध्यकालीन भारतीय आर्य-भाषा के स्वरों का भोजपुरी में परिवर्तन—अन्त्य-स्वर ६२-६३।

तीसरा अध्याय—

आदि-स्वर ६४, आदि-स्वर-परिवर्तन ६४-६८।

चौथा अध्याय—

शब्द के अभ्यन्तर के स्वर, ६६-१००।

पाँचवाँ अध्याय—

भोजपुरी के भीतरी स्वरों का अक्षुण्ण रहना १०१-१०२।

छठा अध्याय—

सम्पर्क-स्वर १०३-१०५, सम्पर्क स्वर का संयोग १०५-१०६, म० भा० आ० भा० के 'ऋ' का भोजपुरी में परिवर्तन १०७-१०८, मध्यकालीन तथा आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओं के अनुनासिक—(१) अन्त्य-अनुस्वार १०८, (२) म० भा० आ० भा० के वर्गीय तथा आभ्यन्तरिक अनुस्वार १०८-११०, स्वतः अनुनासिकता ११०-११२।

सातवाँ अध्याय—

स्वरागम—स्वरभक्ति तथा विप्रकर्ष ११३, आदि-स्वरागम ११३-११४, अपिनिहिति ११४।

आठवाँ अध्याय—

भोजपुरी-स्वरों की उत्पत्ति ११५-११८।

नवाँ अध्याय—

प्रा० भा० आ० भा० के व्यञ्जन-परिवर्तन के सामान्य रूप ११६-१२०, भोजपुरी युग तक के परिवर्तन के सम्बन्ध में सामान्य विचारधारा १२०-१२४, हकार का आगम तथा लोप १२४-१२५, हकार अथवा प्राण का लोप १२५, घोषत्व तथा अघोषत्व १२५, वर्ण-विपर्यय १२६, ध्वनि-लोप १२६, प्रतिध्वनित-शब्द १२६, सामासिक शब्द १२६-१२७ संयुक्त समास १२७, सम्पर्की-व्यञ्जन १२७, समीकरण १२७, विषमीकरण १२७।

दसवाँ अध्याय—

भोजपुरी-व्यञ्जनों की व्युत्पत्ति १२८, 'क्' की व्युत्पत्ति १२८ 'ख्' की व्युत्पत्ति १२६, 'ग्' की व्युत्पत्ति १२६-१३०, 'घ्' की व्युत्पत्ति १३०, 'च्' की व्युत्पत्ति १३०-१३१, 'छ्' की व्युत्पत्ति १३१, 'ज्' की व्युत्पत्ति १३१-१३२, 'झ्' की व्युत्पत्ति १३२-१३३, 'ट्' की व्युत्पत्ति १३३-१३४, 'ठ्' की व्युत्पत्ति १३४, 'ड्' की व्युत्पत्ति १३५, 'ढ्' की व्युत्पत्ति १३६, 'त्' की व्युत्पत्ति १३७, 'थ्' की व्युत्पत्ति १३८, 'द्' की व्युत्पत्ति १३८-१३६, 'ध्' की व्युत्पत्ति १३६, 'प्' की व्युत्पत्ति १३६-१४०, 'फ्' की व्युत्पत्ति १४०-१४१, 'ब्' की व्युत्पत्ति १४१, 'भ्' की व्युत्पत्ति १४१-१४२, आधुनिक भोजपुरी के अनुनासिक (ङ्, ञ्, ण्, म्) १४२-१४५, अर्ध-स्वर य्-व् १४५-१४६, र्-ल् की व्युत्पत्ति १४६-१४८, शिन्-ध्वनि—तालव्य 'श्' तथा दन्त्य 'स्' की व्युत्पत्ति १४८-५०, कण्ठ्य संघर्ष-घोष तथा अघोष 'ह्' की व्युत्पत्ति १५०-१५१।

रूप-तत्त्व

पहला अध्याय—प्रत्यय-उपसर्ग

प्रत्यय—'अ', 'इल्', 'अक्कड्' १५५; -अत, -अती, -अन् १५६; -अना तथा-ना, -अनी, -नी, -अन्त, -आ १५७; -आई १५८; -आइत १५८-१५६; -आऊ, -आक्, -आँक्, -आन १५६; -आप्, -प्, -आर्, -आरि या-आरी, -आव्,

-आवट् १६०, -इयार्, -इला, -ई, -उ, -उआ १६३; -उत्, -ऊ, -एरा, -एल, -एला, -ओला १६४; -क् -अक्, -इक्, -उक् १६४-१६५; -अक अे, अका, -अकी १६५ १६६; -अक्कड़, -अटर्, -ठ्, -ठा, -ड्-डी १६६; -डा १६७; -ड, -डा, -डी (स्वार्थे) १६७-१६८; -ता, नि, -इनि, -र १६८; -वार्, -वाला, -वाँ, -वीं, -ई, -नु, -सी, -सर्, -सरा, १६६; -हन्, -हर्, -हार्, -हारा १७०; -आना, -खाना, -खोर्, -गर्, -गिरी, -चा १७१; -ची १७१-१७२; -दान्- -दानी, -दार्, -नवीस्, बन्द, -बन्दी, -बाज्, -वान् १७२।

उपसर्ग (स्वदेशी)—तद्भव तथा तत्सम—अ-, -औ, -अन्, -अनि, -अव्-अप्-अ-<से अव्, कु-, दुर्-, निर्—१७३; उपसर्ग (विदेशी)-फारसी-कम्-, खुश्-, गर्-, गयर्, दर्-, ना-, फी-, बद्—१७४, बे-, हर्-१७५;—अंग्रेजी—हेड्-, हाफ्-, सब्—१७५।

दूसरा अध्याय—समास।

द्वन्द्व समास १७७-१७८ व्याख्यान मूलक या आश्रय मूलक समास—तत्पुरुष १७८-१८०, कर्मधारय १८०-१८१, द्विगु १८१ १८२; बहुव्रीहि १८२।

तीसरा अध्याय—संज्ञा के रूप।

प्रातिपदिक शब्द १८३ १८४, संज्ञा के रूप १८४-१८५, लिंग १८५-१८६—संज्ञापद के स्त्रीलिंग रूप १८६-१८७—वचन १८७-१८८—बहुवचन ज्ञापक-शब्दावली १८८—कारक-रूप—कर्त्ता १८९—करण १८९-१९०—अधिकरण १९०-१९१, सम्बन्ध कारक १९१-१९३, अपादान १९३—परसर्गीय-शब्दावली १९३-१९८।

चौथा अध्याय—विशेषण।

विशेषण के तीन रूप, लघु, गुरु और अनावश्यक १९९, प्रयोग में विशेषणों के रूप १९९, तुलनात्मक-श्रेणियाँ २००, संख्यावाचक विशेषण—भेद २००—गणनात्मक संख्यावाचक विशेषण २०१-२०६, क्रम-वाचक-संख्या २०६-२०७—गुणात्मक संख्याएँ २०७-२०८—समूह वाची संख्याएँ २०८-२०९—संख्यावाची-समास-संबंधी शब्द २०९—समानुपाती संख्याएँ २०९, आवृत्तात्मक संख्यावाचक २०९—प्रत्येकवाची-संख्या-विशेषण २०९ २१०—भिन्नात्मक-संख्याएँ २१०—निश्चित-संख्यावाचक-विशेषण २१०—अनिश्चित-संख्यावाचक-विशेषण २१०-२११।

पाँचवाँ अध्याय—सर्वनाम

पुरुषवाचक सर्वनाम २१२-२१६, उल्लेख सूचक या वाचक सर्वनाम—निकटवर्ती उल्लेख सूचक २१६-२२२, दूरवर्ती उल्लेख सूचक २२२-२२५, सम्बन्ध-वाचक-सर्वनाम २२६-२२७, संगति-मूलक या वाचक सर्वनाम २२७-२३०, प्रश्नवाचक-सर्वनाम २३०-२३४, अनिश्चयवाचक सर्वनाम २३४ २३६, निजवाचक अथवा आत्मवाचक सर्वनाम २३६-२३८, सर्वनाम-जात-विशेषण रीतिवाचक या गुण-वाचक २३८-२३९, परिमाण तथा संख्यावाचक २३९-२४०, सर्वनामजात

क्रिया विशेषण—रीतिवाचक २४०, कालवाचक २४०, स्थानवाचक २४०-२४१, दिशावाचक २४१-२४२ ।

छठा अध्याय—क्रियापद

भोजपुरी धातुएँ-भेद २४३-२४४, सिद्ध धातु २४४-२४७, णिजन्त से उत्पन्न सिद्ध-धातुएँ २४७-२४८, साधित-धातुएँ २४८-२४६, नाम धातु २४६-२५१, मिश्रित अथवा संयुक्त एवं प्रत्यययुक्त धातुएँ २५१-२५४; भोजपुरी के अनुकरणात्मक क्रियापदों के उदाहरण २५४-२५५, भोजपुरी की धातुएँ तथा क्रिया विशेष्य पद २५५, अकर्मक तथा सकर्मक क्रियाएँ २५५-२५६, प्रकार इच्छाद्योतक या विधिलिङ्—घटनान्तरापेक्षित या संयोजक-आज्ञाद्योतक या अनुज्ञा २५६-२५८, वाच्य—प्रत्यय - संयोगी - कर्मवाच्य २५८-२५६, विश्लेषणात्मक-कर्मवाच्य २६०, आ-कर्मवाच्य २६०-२६१, कर्म-कर्तृवाच्य २६१, काल—भेद २६१-२६२, सरल या मौलिक-काल :—(a) मूलात्मक-काल २६२-२६६, (b) स - ह् भविष्यत् या प्रत्यय संयोगी-भविष्यत् २६६-२६७, (c) कृदन्तीय-काल २६७ २७४, (d) ला-युक्त वर्तमान २७५, सहायक क्रिया २७५-२८३, मिश्र या यौगिक काल-समूह—(a) घटमान-काल-समूह २८३-२८४ (b) कारणात्मक या सम्भाव्य-काल २८४-२८५; (c) पुराघटित-काल समूह २८५-२८६, (d) पुराघटित-सम्भाव्य २८६, स्वरान्त धातुएँ २८७, ईकारान्त २८७-२८८, इकारान्त-ओकारान्त २८८; अनियमित-क्रिया पद २८८-२६२, कृदन्तीय रूप या क्रियामूलक विशेषण २६३, असमापिका अथवा पूर्वकालिक-क्रिया २६४, णिजन्त अथवा प्रेरणार्थक-क्रिया २६४-२६६, नामधातु २६६-२६७, क्रियावाचक विशेष्य पद २६७-२६८, द्वैत-क्रियापद २६८, संयुक्त क्रियापद २६८-२६६, संज्ञापद-युक्त २६६-३००, क्रियापद-युक्त ३००-३०१ ।

सातवाँ अध्याय—अव्यय

कालवाचक ३०२, स्थानवाचक ३०२-३०३, प्रकारवाचक ३०३, संख्यावाचक ३०३, परिमाणवाचक ३०३, स्वीकार या निषेध वाचक ३०३-३०४, सम्बन्ध वाचक—(१) समान-वाक्य-संयोजक ३०४-३०५, (२) आश्रित-वाक्य-संयोजक ३०५-३०६, मनोभाव वाचक ३०६-३१० ।

परिशिष्ट १ (क) सोढर ३११-३१४ ।

परिशिष्ट १ (ख) पुराने कागद - पत्र ३१५-३३१ ।

परिशिष्ट २ आधुनिक भोजपुरी के उदाहरण ३३२-३६० ।

परिशिष्ट ३ शब्दों की अनुक्रमणिका पृ० १-२४

शुद्धि - पत्र पृ० २५-

उपोद्‌घात

उपभाषाओं अथवा बोलियों को छोड़कर संसार की भाषाओं की संख्या दो सहस्र के लगभग है। इनमें से प्रसिद्ध तथा प्रधान भाषाओं का तो थोड़ा बहुत अध्ययन अवश्य हुआ है, किन्तु आज भी अमेरिका, अफ्रीका तथा प्रशान्त महासागर के दुर्गम प्रदेशों एवं द्वीपों की अनेक ऐसी भाषाएँ हैं जिनका नाममात्र का ही अध्ययन हुआ है। कठोरकाल के प्रहार से अतीतकाल की अनेक भाषाएँ लुप्त हो चुकी हैं और संस्कृत-भाषाओं (Classical Languages)के प्रहार तथा वैज्ञानिक अध्ययन के अभाव में अनेक बोलचाल की साधारण भाषाएँ विनष्ट होने के मार्ग में हैं।

भाषा-विज्ञान के आचार्यों ने भाषाओं की विभिन्नता में एकता ढूँढकर ही उनका पारिवारिक वर्गीकरण किया है। इसके परिणाम-स्वरूप परस्पर सम्बन्ध रखनेवाली भाषाओं को एक परिवार के अन्तर्गत रखा गया है। यहाँ परस्पर सम्बन्ध का भी स्पष्ट अर्थ जान लेना आवश्यक है। बात यह है कि प्रत्येक परिवार की विभिन्न भाषाओं का समय की प्रगति के साथ-साथ विकास हुआ है। किन्तु जब हम किसी एक परिवार के विकास-क्रम का अध्ययन करते हुए अतीत अथवा प्राचीन युग की ओर बढ़ते हैं तब हमें एक ऐसी मूल-भाषा मिलती है जिससे ये सब भाषाएँ उद्‌भूत हुई हैं। प्रत्येक परिवार की इन्हीं मूल-भाषाओं को लेकर विभिन्न परिवारों की सृष्टि हुई है और एक परिवार की विभिन्न भाषाओं के पारस्परिक सम्बन्ध का भी यही रहस्य है। इस सूत्र के अनुसार अध्ययन करने से यह स्पष्ट विदित होता है कि संस्कृत, अवेस्ता की भाषा, प्राचीन फारसी, आर्मेनीय, प्राचीन स्लाविक, प्राचीन ग्रीक, लैटिन, प्राचीन जर्मेनिक, प्राचीन केल्तिक आदि भाषाएँ एक विशेष वर्ग अथवा परिवार की हैं। इस वर्ग की भाषाओं को 'भारोपीय' अथवा 'भारत-योरोपीय' या 'इन्दोयोरोपीय' के नाम से अभिहित किया गया है; क्योंकि भारत से लेकर योरोप तक इनका प्रसार है।

इस सम्बन्ध में एक और बात उल्लेखनीय है। यथेष्ट सामग्री के अभाव अथवा संपर्कित भाषाओं के लुप्त हो जाने के कारण, आज कई प्राचीन तथा अर्वाचीन भाषाओं का वर्गीकरण नितान्त कठिन है। इन भाषाओं में मैसोपोटामिया की प्राचीन भाषा 'सुमेरी' (Sumerian), पश्चिमी ईरान के सूसा प्रान्त की भाषा एलामीय (Elamite), पूर्वी मैसोपोटामिया की भाषा 'मितन्नी' (Mitanni), क्रीट द्वीप की प्राचीन भाषा, इटली की प्राचीन भाषा 'एत्रस्कन' आदि मुख्य हैं। इसी प्रकार आधुनिक भाषाओं में फ्रांस तथा स्पेन के मध्य, पिरेनिज़ पर्वतमाला के पश्चिम में बोली जानेवाली 'बास्क' (Basque), दक्षिणी-पश्चिमी अफ्रीका की 'बुशमान' (Bushman) एवं 'हॉटनटॉट' (Hottentot) भाषाएँ तथा जापान, कोरिया एवं आस्ट्रेलिया की प्राचीन भाषाओं का अब तक वर्गीकरण नहीं हो पाया है।

ऊपर की भाषाओं को छोड़कर अध्ययन एवं विश्लेषण के पश्चात्, संसार की अन्य भाषाओं को निम्नलिखित वर्गों अथवा परिवारों मे विभाजित किया गया है—(क) भारोपीय अथवा भारत-योरोपीय, (ख) सामी-हामी अथवा सेमेटिक-हेमेटिक वर्ग, (ग) बंटू-वर्ग, (घ) फिन्नो-उग्रीय-वर्ग, (ङ) तुर्क-मंगोल-मञ्चू-वर्ग, (च) काकेशीय-वर्ग, (छ) द्रविड़-वर्ग, (ज) आस्ट्रिक-वर्ग, (झ) भोट-चीनी-वर्ग, (ञ) उत्तरी-पूर्वी सीमान्त की भाषाएँ, (ट) एस्किमो-वर्ग, (ठ) अमेरिका के आदि-वासियों की भाषाएँ।

भारोपीय परिवार की भाषाओं का विस्तृत परिचय आगे दिया जायेगा। यहाँ अन्य भाषाओं का परिचय दिया जाता है।

सामी-हामी अथवा सेमेटिक-हेमेटिक-वर्ग—इस परिवार के अन्तर्गत सामी तथा हामी, दो प्रधान शाखाएँ हैं। अनेक भाषा-तत्त्वविद् इन दोनों शाखाओं को स्वतंत्र परिवार की भाषाएँ मानते हैं। इस परिवार के नामकरण के संबंध में बाइबिल का आख्यान प्रसिद्ध है। हज़रत नूह के ज्येष्ठ-पुत्र 'सैम' दक्षिणी-पश्चिमी एशिया के अरब, असीरिया और सीरिया के निवासियों एवं यहूदियों के आदि पुरुष माने जाते हैं। इसी प्रकार सैम के छोटे भाई 'हैम' अफ्रीका के मिस्र, फोनीशिया, इथियोपिया आदि के निवासियों एवं कनानीय लोगों के पूर्वज बतलाए जाते हैं। इन्हीं 'सैम' तथा 'हैम' के नाम पर इस वर्ग का यह नाम पड़ा है।

सामी भाषा की पूर्वी उपशाखा के अन्तर्गत ही 'असीरीय' (Assyrian), 'आक्कदीय' (Accadian) अथवा 'बाबिलोनीय' (Babylonian) जैसी प्राचीन भाषाएँ आती हैं। इन दोनों भाषाओं में कीलाक्षर में प्रस्तर तथा मिट्टी के खपरैलों पर लिखित २५०० वर्ष ईसवी सन् पूर्व के प्रत्न लेख मिले हैं। पश्चिमी उपशाखा के उत्तर वर्ग के अन्तर्गत 'कनानीय' (Cananite), 'फिनिशीय' (Phoenician), तथा 'आरामीय' (Aramaic) भाषाएँ आती हैं। बाइबिल के 'ओल्ड टेस्टामेंट' की मूल भाषा 'हिब्रू' भी इसी परिवार की है। पश्चिमी उपशाखा के दक्षिण-वर्ग के अन्तर्गत अरबी तथा अबीसीनिया की बोलचाल की भाषाएँ आती हैं। इनमें अरबी तो जीवित भाषा के रूप में सम्पूर्ण उत्तरी अफ्रीका में परिव्याप्त है। इस्लाम के प्रचार तथा प्रसार के साथ-साथ इसने पूर्व एशिया की अनेक भाषाओं को दबाकर शक्तिशाली रूप धारण कर लिया है। अरबी में उपलब्ध प्राचीनतम लेख ३२८ ई० का है।

हामी शाखा का एकमात्र उदाहरण है प्राचीन मिस्र की भाषा। ईसवी पूर्व चार सहस्र वर्ष के इसके नमूने उपलब्ध हैं। मिस्र की प्राचीन भाषा से ही 'काप्टिक' (Coptic) की उत्पत्ति हुई है। इसमें दूसरी-तीसरी शताब्दी बाद का ईसाई तथा इस्लामी साहित्य मिलता है। इसके शब्द-समूह पर ग्रीक-भाषा का अत्यधिक प्रभाव है। सत्रहवीं शताब्दी से काप्टिक-भाषा विलुप्त हो गई है और तब से सम्पूर्ण मिस्र में बोलचाल की भाषा के रूप में अरबी का व्यवहार हो रहा है।

इस वर्ग की दो उपशाखाओं का उल्लेख आवश्यक है। इनमें एक है 'बर्बर' (Berber) अथवा 'लीबीय' (Lybian) और दूसरी 'कुशीय' (Kushite) अथवा 'एथियोपीय' (Ethiopean)। बर्बर भाषाएँ अफ्रीका स्थित पश्चिमी सहारा,

मोरक्को तथा अल्जीरिया आदि स्थानों में बोली जाती हैं। कुशीय उपशाखा के अन्तर्गत भी अनेक कथ्य भाषाएं हैं। इनमें सोमाली भाषा व्यापारियों के बड़े काम की है।

बाण्टू-वर्ग—इस परिवार की भाषाएं दक्षिण और मध्य अफ्रीका में नैटाल और पाँच अंश देशान्तर के बीच बोली जाती हैं। 'बा-एटू' का अर्थ है 'मनुष्यों'। इसमें 'बा' बहुवचनार्थक उपसर्ग है। भाषाविद् इसके अन्तर्गत डेढ़ सौ विभाषाओं की गणना करते हैं जिनमें परस्पर थोड़ा-बहुत अन्तर है। इन विभाषाओं को अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से, पूर्वी, मध्यवर्ती तथा पश्चिमी वर्गों में भी विभाजित किया जाता है। इस परिवार की सबसे महत्त्वपूर्ण भाषा है जंजीबार की स्वाहिली। यह सम्पूर्ण पूर्वी अफ्रीका-तट की भाषा है। इसमें थोड़ा-बहुत साहित्य भी है और आजकल यह स्कूलों में पढाई भी जाती है। तुर्की की भाँति यहाँ भी अरबी-लिपि के स्थान पर अब लिखने के लिए रोमन-लिपि का प्रयोग होने लगा है। बाण्टू के अन्तर्गत आनेवाली गंडा, वेम्बा, ग्ज़ोसा, ज़ूलू आदि वि-भाषाओं के प्रचार तथा प्रसार के लिए दक्षिणी अफ्रीका की सरकार उद्योग कर रही है। सरकार द्वारा प्राचीन बाण्टू के ग्राम-गीतों, ग्राम-कथाओं तथा ग्राम-गाथाओं के जो संग्रह प्रकाशित हुए हैं उनमें जन-इतिहास तथा भाषा-विज्ञान सम्बन्धी प्रभूत सामग्री है।

फिन्नो-उग्रीय-वर्ग—इसके अन्तर्गत फिनलैण्ड की 'फिन्नीय' तथा हुँगेरी की हुँगेरीय अथवा मग्यार (Magyar) भाषाएँ आती हैं। फिन्नीय के अन्तर्गत फिनलैण्ड तथा उत्तरी रूस से श्वेत-सागर तक एस्थोनिया, लिवोनिया तथा लैपलैण्ड में बोली जानेवाली अनेक विभाषाएँ आती हैं। इनमें फिनलैण्ड की फिन्नीय अथवा सुओमी सभ्य स्तर की भाषा है। इसमें तेरहवीं शताब्दी से अवतक का अच्छा साहित्य भी मिलता है। कलेवल इस भाषा का राष्ट्रीय महाकाव्य है। फिन्नीय तथा मग्यार भाषाओं पर जर्मन का अत्यधिक प्रभाव है। एक ओर इनमें जर्मन शब्दावली ग्रहण करली गई है, तो दूसरी ओर जर्मन पदरचना का भी मग्यार पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा है।

तुर्क-मङ्गोल-मञ्चू-वर्ग—इस परिवार के तीन विभाग हैं—तुर्क-तातार, मङ्गोल एवं मंचू। भाषा-विज्ञान के अनेक आचार्य इन तीन विभागों को तीन स्वतंत्र परिवार मानते हैं। प्रथम विभाग की भाषाओं में तुर्क (Turkish), तातार (Tartar), किरगिज़ (Kirgiz), उज्बेग आदि उल्लेखनीय हैं। अभी कुछ समय पूर्व तक तुर्की-भाषाओं में अरबी-फ़ारसी शब्दों का बाहुल्य था, परन्तु राष्ट्रीय नेता कमालपाशा के समय से भाषा और साहित्य में पुनरुज्जीवन की लहर दौड़ गई है। अरबी-लिपि की जगह रोमन-लिपि अपना ली गई है तथा विदेशी अरबी-फ़ारसी शब्दों का स्थान तुर्की शब्दों ने ले लिया है।

मङ्गोल-शाखा की भाषाएँ केवल मंगोलिया की सीमा में ही नहीं बोली जातीं अपितु एशिया के बाहर योरोप स्थित रूस तक इनका विस्तार है।

मञ्चू के अन्तर्गत मञ्चूरिया की मञ्चू-भाषा तथा येनिस्सी नदी से पूर्व और दक्षिण दिशाओं में ओखोतस्क तथा जापान तक के भूभाग की तुङ्गुज लोगों की तुङ्गुज-भाषा आती है। तुङ्गुज भाषियों की संख्या बीस सहस्र के लगभग है। इन भाषाओं में साहित्य का अभाव है।

काकेशीय-वर्ग—इस वर्ग की भाषाओं का क्षेत्र कृष्ण-सागर से कैस्पियन सागर के बीच काकेशस पर्वत-श्रृंखला है। पर्वतीय-प्रकृति के कारण यहाँ की विभाषाओं की विविधता

बहुत अधिक बढ़ गई है। अत्यन्त प्राचीन-काल से ही यह प्रदेश आक्रमणकारियों से आतंकित जातियों का शरण-स्थल रहा है। इस कारण इन भाषाओं की पद-रचना में बाह्य-प्रभावों के कारण क्लिष्टता एवं जटिलता का आ जाना सर्वथा स्वाभाविक है। काकेशीय-वर्ग की उल्लेखनीय भाषा जार्जिया की जार्जीय (Georgian) भाषा है।

द्रविड़-वर्ग—इस परिवार की भाषाओं के बोलनेवाले आजकल दक्षिण भारत में निवास करते हैं। विद्वानों का मत है कि आर्यों के आगमन से पूर्व ये लोग सिन्ध तथा पंजाब तक के भूभाग में फैले हुए थे और मोहिंजोदड़ो एवं हड़प्पा की सभ्यताओं के यही जनक थे। इस समय भारत के लगभग ७ करोड़ १० लाख व्यक्ति विभिन्न द्रविड भाषाओं का व्यवहार करते हैं। इसप्रकार भारतीय जनसंख्या के २० प्रतिशत व्यक्ति द्रविड़-भाषा-भाषी हैं। इन भाषाओं में चार ऐसी हैं जिनमें प्राचीन काल से ही लिखित-साहित्य उपलब्ध हैं। ये हैं—(क) तेलुगु या आन्ध्र (२ करोड ६० लाख), (ख) कन्नड़ (१ करोड १० लाख), (ग) तमिल या द्रमिड़ या द्रविड़ (भारत में २ करोड़ तथा सिंहल मे २० लाख), (घ) मलयालम या केरल इसके अन्तर्गत लाक्षाद्वीपीय भाषा भी है (६० लाख से ऊपर)।

इन साहित्य-सम्पन्न द्रविड-भाषाओं के अतिरिक्त आदिम उपजातियों में प्रचलित कतिपय अन्य द्रविड भाषाएँ भी दक्षिण में प्रचलित हैं; यथा तुलू (१ लाख ६२ हजार), कोडगू या कुर्ग-प्रदेश की भाषा (४८ हजार), तोदा (केवल ६००), गोंडी भाषा (१० लाख, २६ हजार से ऊपर, मद्रास प्रदेश तथा हैदराबाद में), कन्ध या कुई (५ लाख, ८६ हजार उड़ीसा मे), कुँड़ख़ू या ओरांव (१० लाख, ३८ हजार, बिहार, उड़ीसा और आसाम प्रदेश में) तथा माल्तो (७१ हजार, राजमहल की पहाड़ियों मे)। इन समस्त साहित्यविहीन द्रविड-भाषा-भाषियों को अपनी मातृभाषा के अतिरिक्त एक-न-एक पड़ोस की संस्कृत-सम्पन्न भाषा अवश्य सीखनी पडती है।

साहित्य-सम्पन्न द्रविड़-भाषाओं में तमिल का स्थान ऊँचा है। इसमें ईसा के बाद की दूसरी-तीसरी शताब्दी के काव्य-ग्रंथ वर्तमान हैं। यह साहित्य 'चङ्कम साहित्य' अर्थात् संघ या प्राचीन तमिल-साहित्य संघ द्वारा अनुमोदित साहित्य के नाम से प्रसिद्ध है। इन काव्य-ग्रंथों से प्राचीन तमिल संस्कृति का सुन्दर परिचय मिलता है। परवर्ती तमिल में वैष्णव अळ्वार भक्तों द्वारा पदों की रचना हुई है जिनका भारतीय आध्यात्मिक चिंतन के इतिहास में गौरवपूर्ण स्थान है।

कन्नड़-साहित्य प्राचीनता मे प्रायः तमिल के ही समकक्ष है। इसमें ईसा की सातवीं शताब्दी के शिलालेख उपलब्ध हैं। प्राचीन कन्नड़-भाषा ('पले कन्नड़' या 'हले कन्नड़') ही वस्तुतः आधुनिक कन्नड़ ('पोस-कन्नड़' या 'होस-गन्नड़') में परिवर्तित हो गई है। अत्यन्त प्राचीन काल से ही कन्नड पर संस्कृत-भाषा का प्रभाव पड़ा है।

तेलुगु-साहित्य का प्राचीनतम ग्रंथ नन्नय भट्ट का महाभारत है। इसका रचनाकाल १००० ई० है। इसके पूर्व भी तेलुगु मे साहित्यिक-रचना अवश्य हुई होगी। अत्यंत प्राचीनकाल से ही तेलुगु पर संस्कृत का यथेष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। परन्तु कभी-कभी तेलुगु पण्डितों ने 'अच्च-तेलुगु' (ठेठ या संस्कृत-विहीन तेलुगु) में साहित्य-रचना करने का प्रयास किया है।

मलयालम की उत्पत्ति प्राचीन तमिल से हुई है। इसे तमिल की छोटी बहिन कहा जाता है। पंद्रहवीं शताब्दी में इसमें स्वतंत्र साहित्य-रचना का प्रारम्भ हुआ था। सापेक्षिक दृष्टि से मलयालम कन्नड़ से भी अधिक संस्कृत से प्रभावित है।

आस्ट्रिक वर्ग—इसका दूसरा नाम निषाद भी है। इस वर्ग की दो शाखाएँ हैं—(१) आस्ट्रो-एशियाटिक (Austro-Asiatic) एवं आस्ट्रोनेशियन (Austronesian)। प्रथम शाखा की दो उपशाखाएँ हैं—(१) मॉनख्मेर (Mon khmer) तथा (२) कोल या मुण्डा। मानख्मेर उपशाखा की भाषाएँ बर्मा, स्याम तथा निकोबार द्वीप समूह में बोली जाती हैं। कोल और मुण्डा उपशाखा की भाषाएँ भारतवर्ष के अनेक स्थानों—पश्चिम बङ्ग, छोटानागपुर, मध्य-प्रदेश तथा मद्रास-प्रदेश के पूर्वोत्तर भाग—में बोली जाती हैं। संथाली इसीके अन्तर्गत आती है। संथाल-लोग विहार के निवासी हैं। संथाली से ही सम्बन्ध रखनेवाली मुण्डारी, हो, भूमिज खड़िया आदि भाषाएँ विहार के कोल-भाषा-भाषियों द्वारा बोली जाती हैं। असम-प्रान्त के खसिया पहाड़ की खसी बोली भी इसी के अन्तर्गत आती है। द्वितीय उपशाखा की उल्लेखनीय भाषाएँ- मलय (Malay) जवद्वीपीय (Javanese), बलिद्वीपीय (Balinese) आदि हैं। इनके अतिरिक्त फिलिपाइन द्वीप समूह, न्यूजीलैण्ड, हवाई तथा फिजी आदि प्रशान्त महासागर के द्वीपों में भी यह प्रचलित है।

भोट-चीनी-वर्ग—इस वर्ग की तीन शाखाएँ—(१) चीनी (Chinese), (२) थाई (Tai) एवं (३) भोट-बर्मी (Tibeto-Burman) हैं। बोलनेवालों की संख्या की दृष्टि से चीनी-भाषा संसार की सबसे बड़ी भाषा है। इसके प्राचीनतम नमूने ईसा-पूर्व दो सहस्र वर्ष के उपलब्ध हैं। द्वितीय शाखा की भाषा स्याम देश में बोली जाती है। तृतीय शाखा की तीन प्रधान उपशाखाएँ हैं—(१) भोट अथवा तिब्बती, (२) बर्मी एवं (३) बोडो। बोडो की अन्य उपजातियाँ गारो लुशेई, नागा आदि हैं।

उत्तरी-पूर्वी-सीमांत की भाषाएँ—इस वर्ग की भाषाएँ एशिया के उत्तरी-पूर्वी सीमांत में बोली जाती हैं। इनके बोलनेवालों की संख्या भी अत्यल्प ही है। इनमें एकमात्र उल्लेखनीय भाषा है चुक्ची (Chukchee)।

एस्किमो-वर्ग—इस वर्ग की भाषाएँ उत्तर सीमान्त देशों से ग्रीनलैण्ड होते हुए एलूशियन द्वीप-समूह तक के भू-भाग में बोली जाती हैं।

अमेरिका के आदिवासियों की भाषाएँ—अमेरिका के आदि-वासियों के ध्वंस के साथ-साथ वहाँ की भाषाएँ भी विनष्ट हो गई हैं और उनका स्थान योरोप की अंग्रेजी, फ्रेंच तथा स्पेन की भाषाओं ने लिया है। किन्तु आज भी कहीं-कहीं ये आदिवासी बच गए हैं। इनकी भाषाओं को आठ प्रधान वर्गों में बाँटा जा सकता है। ये है—(१) आलगङ्क्वियन (Algonquian), (२) आथाबास्कन (Athabascan), (३) इरोकोयीयन (Iroquoian), (४) मुस्कोगियन (Muskogean), (५) सियोयन (Siouan), (६) पिमन (Piman), (७) शोशोनियन (Shoshonean), तथा (८) नाहुआँट्लन (Nahuatlan)। शेष वर्ग की आज़्टेक (Aztec) भाषा उल्लेखनीय है।

भारोपीय परिवार

जिस मूलभाषा से भारोपीय परिवार की विविध भाषाओं की उत्पत्ति हुई है उसके नमूने आज उपलब्ध नहीं है। फिर भी इस परिवार की प्राचीन भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन के पश्चात् विद्वानों ने उस मूलभाषा की कल्पना अवश्य की है। इस कल्पना के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अनुमानतः २७००-२६०० वर्ष ईसा पूर्व, उस मूल-भाषा से इस परिवार की प्राचीन भाषाओं की उत्पत्ति हुई होगी और समय के साथ-साथ ये भाषाएँ योरोप तथा एशिया के विभिन्न देशों में फैली होंगी। भारोपीय-भाषा-भाषियों का आदिम अथवा मूल-स्थान कहाँ था, इस संबंध में भी विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है, किन्तु इस परिवार की परवर्ती भाषाओं के गहरे अध्ययन के बाद पण्डित लोग इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि यह स्थान योरोप में ही था।

भारोपीय-परिवार के अन्तर्गत निम्नलिखित दश भाषाओं की गणना की जाती है। ये हैं—(१) केल्तिक, (२) इतालिक, (३) जर्मनिक अथवा ट्यूटनिक, (४) ग्रीक, (५) बाल्तो-स्लाविक, (६) आल्बनीय, (Albanian), (७) आर्मेनीय, (Armenian), (८) खत्ती अथवा हत्ती (Hittite), (९) तुखारीय (Tokharian), (१०) भारत-ईरानी अथवा आर्य।

ऊपर की भाषाओं में से खत्ती तथा तुखारीय भाषाएँ लुप्त हो चुकी हैं। शेष आठ भाषाएँ अद्यावधि प्रचलित हैं। इन भाषाओं के संक्षिप्त परिचय के पूर्व मूल-भारोपीय भाषा की विशेषता के सम्बन्ध में थोड़ा-बहुत विचार करना आवश्यक है।

भारोपीय भाषा की प्राचीन भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन से विदित होता है कि इसमें निम्नलिखित ध्वनियाँ वर्तमान थीं—

(क) ह्रस्व—अ (a), इ (i), उ (u), ए (e), ओ (o)

दीर्घ—आ (ā), ई (ī), ऊ (ū), ए (ē), ओ (ō)

अति ह्रस्व— अ (ə)

(ख) अर्द्ध-व्यञ्जन— ह्रस्व—ऋ (r̥), ऌ (l̥)

दीर्घ—ॠ (r̥̄), ॡ (l̥̄), एवं

ह्रस्व तथा दीर्घ—न् (n̥), म् (m̥)।

(ग) अर्द्ध-स्वर—य् (y), व् (w)।

(घ) (१) व्यञ्जन (स्पर्श)

(१) पुरः कण्ठ्य*[1]—क्́, ख्́, ग्́, घ्́, ङ्́ (K, Kh, g, gh, n̥)

*[1] इन ध्वनियो को योरोप के भाषा-विज्ञानियो ने तालव्य संज्ञा दी है, और वहाँ भाषा-विज्ञान की पुस्तकों में यही मिलता है; किन्तु वास्तव में ये ध्वनियाँ संस्कृत की तालव्य ध्वनियो के समान नही है, अपितु ये कण्ठ्य-ध्वनियो के समान है। डा० चैटर्जी के अनुसार ये Advanced Velar अथवा पुरः कण्ठ्य ध्वनियाँ है।

(२) कण्ठ्य अथवा पश्चात् कण्ठ्य *[2]—क्, ख्, ग्, घ्, ङ् q, qh, g, gh., ṇ)

(३) कण्ठोष्ठ्य*[3]—क्, ख्, ग्, घ्, ङ् (qw, qwh, gw, gwh, ṇ)

(४) दन्त्य अथवा दन्तमूलीय—त्, थ्, द्, घ्, न् (t, th, d, dh, n)

(५) ओष्ठ्य—प्, फ्, ब्, भ्, म् (p, ph, b, bh, m)

(२) कम्पित—र् (r)

(३) पार्श्विक—ल् (l)

(४) ऊष्म—

(१) पुरः कण्ठ्य, पश्चात् कण्ठ्य (कण्ठ्य), कण्ठोष्ठ्य—
क् (ख्), ग् (घ्) (x, γ)

(२) दन्त्य तथा दन्तमूलीय—
स्, ज्, त् (थ्), द् (ध्)
(s, z, θ, δ)

पहले भाषाविज्ञानियों का यह मत था कि भारोपीय के स्वर आर्य (भारत-ईरानी) वर्ग में पूर्णरूप से सुरक्षित हैं, किन्तु बाद में तुलनात्मक अध्ययन के परिणामस्वरूप यह सिद्ध हुआ कि संस्कृत की अपेक्षा ग्रीक तथा लैटिन में ये अधिक सुरक्षित हैं। इस सम्बन्ध में वस्तुस्थिति यह है कि भारोपीय की 'अ', ह्रस्व 'ए' तथा 'ओ', ध्वनियाँ भारत-ईरानी वर्ग में 'अ' तथा इनकी दीर्घ-ध्वनियाँ आ में परिणत हो जाती हैं। ग्रीक तथा लैटिन में भारोपीय की मूल स्वर-ध्वनियाँ उसी रूप में सुरक्षित हैं। इसके उदाहरण नीचे दिए जाते हैं। मूलभाषा के शब्द काल्पनिक हैं। अतएव उन्हें पुष्पांकित कर दिया गया है।

* ago > सं॰ अजामि, अवे॰ अज़ामि, ग्री॰ अगो, लै॰ अगो।

* esti > सं॰ अस्ति, ग्री॰ एस्ति, लै॰ एस्त्; गॉ॰ इस्त् अंग्रे॰ इज़्।

* domo-s, * domu-s > सं॰ दमः, ग्री॰ डोमोस्, लै॰ डोमुस्।

* bhrāter > सं॰ भ्राता, ग्री॰ फ्रातेर, लै॰ फ्रातेर प्राचीन आयरिश—ब्राथिर्, अंग्रे॰ ब्रादर्।

* dhe > सं॰ दधामि, ग्री॰ टिथेमि।

* dōno-m > सं॰ दानम्, लै॰ डोनुम्।

भारोपीय की 'इ' 'ई' तथा 'उ' 'ऊ' ध्वनियाँ प्रायः—भारोपीय की सभी शाखाओं में इसी रूप में वर्तमान हैं। यथा—

* i-d > सं॰ इदम् लै॰ इद्, गॉ॰ इट्, अंग्रे॰ इट्।

---

*[2] इन्हें योरोप के भाषाविदो ने Velar अथवा कण्ठ्य की संज्ञा दी है। किन्तु डा॰ चैटर्जी के अनुसार ये Back velar (पश्चात् कण्ठ्य) अथवा Uvular (अलिजिह्वजात) ध्वनियाँ हैं।

*[3] ये labialized velar अथवा Uvular (कण्ठोष्ठ्य) ध्वनियाँ हैं।

* gwīwos 7 सं॰ जीवस्, लै॰ वीवुस्।

* dhugetē (r) 7 सं॰ दुहित (र्), ग्री॰ थुगातेर, अंग्रे॰ डाटर, लिथु॰ डुक्टे।

* dhūmó-s 7 सं॰ धूमः, ग्री॰ थूमॉस्, लै॰ फूमस्।

अतिह्रस्व 'अ' (ə) किसी भाषा में सुरक्षित नहीं है। कतिपय भाषाओं में यह 'इ' तथा अन्य में यह 'अ' में परिणत हो जाता है, यथा—

* petēr 7 सं॰ पिता, ग्री॰ पतेर्, लै॰ पतेर्, गॉ॰ फदर, अं॰ फॉदर

दीर्घ ॠ तथा ॡ किसी भी भाषा में सुरक्षित नहीं हैं। ह्रस्व ऋ केवल आर्य शाखा में सुरक्षित है एवं ह्रस्व 'ऌ' आर्य शाखा में 'ऋ' में परिणत हो जाता है, यथा—

* krd 7 सं॰ *हृद्, ग्री॰ कर्दिअ, लै॰ कोर्दिस्।

* wl̥quos 7 सं॰ वृकः, ग्री॰ लुकास्, प्राचीन स्लाव व्लुकु, अंग्रे॰ वुल्फ।

अर्द्ध-व्यञ्जन (ह्रस्व तथा दीर्घ) 'न्', 'म्' किसी भी शाखा में सुरक्षित नहीं हैं। आर्य तथा ग्रीक में ये ह्रस्व तथा दीर्घ व्यञ्जन क्रमशः 'अ' तथा 'आ' में परिणत हो जाते हैं। यथा—

* Km̥tóm 7 सं॰ शतम्, ग्री॰ हेकटोन्, लै॰ केण्टम्।

* n̥-mr̥tos>सं॰ अमृतः, ग्री॰ अम्ब्रोतोस्।

* egwm̥t>सं॰ अगात्, ग्री॰ एवा (एवे)।

अर्ध-स्वर 'य्' तथा 'व्' अधिकांश भाषाओं में वर्तमान हैं। ग्रीक में वस्तुतः 'व्' का लोप हो गया है। यथा—

* yugam>सं॰ युगम्, ग्री॰ जुगॉन, लै॰ जुगम्, गॉ॰ जुक्, अं॰ योक्।

* woikos>सं॰ वेशस्, ग्री॰ उइकास्, लै॰ वीकुस्।

भारोपीय की पुरःकण्ठ्य स्पर्शव्यञ्जन ध्वनियों (क् इत्यादि) का ग्रीक, लैटिन, केल्तिक, हत्ती तथा तुखारीय शाखाओं में पश्चात्-कण्ठ्य (क् आदि) ध्वनियों के साथ एकाकार हो गया; किन्तु आर्य (संस्कृत), वाल्तोस्लाविक, आल्बनीय एवं आर्मेनीय शाखाओं में मूल-भाषा भारोपीय की 'कं्' ध्वनि 'स्' अथवा 'श्' में परिणत हो गई। मूल-भाषा के इसी ध्वनि-परिवर्तन ने भारोपीय-परिवार की भाषाओं को दो समूहों—'कतम्' अथवा 'केण्टुम्' एवं 'सतेम्' अथवा 'शतम्' वर्गों—में विभक्त कर दिया। भारोपीय के 'शत' वाचक शब्द का लैटिन एवं अवेस्तीय (अवेस्ता की भाषा का) प्रतिरूप ग्रहण करके ही इन दोनों समूहों अथवा वर्गों का नामकरण किया गया। भारोपीय-भाषा के * km̥to'm 'शत' शब्द ने दोनों वर्गों में इस प्रकार रूप धारण किया—

[कतम् अथवा केण्टुम वर्ग] ग्री॰ 'हेकटोन', लै॰ केण्टुम्, गॉ॰ खुन्द, अं॰ हुण्ड एवं हण्ड्रेड, वेल्श- 'कन्त' आयरिश 'केद्', तुखारीय 'कत्'।

[सतेम् अथवा शतम् वर्ग] सं॰ शतम्, अवेस्तीय 'सतेम्', प्रा॰ फारसी 'सत', लिथुयानीय 'शिम्तास्', स्लाविक, सुतो आदि।

अब भारोपीय की अन्य पुरःकण्ठ्य ध्वनियों पर यहाँ विचार किया जाता है। भारोपीय का पुरःकण्ठ्य 'गं्' आर्यभाषा (भारत-ईरानी) में सघोष तालव्य ऊष्म 'ज़्' में परिणत हो गया और आगे चलकर यही संस्कृत में 'ज्' हो गया। यथा—

* genos>सं० जनस्, अवेस्तीय जनो, प्रा० फा० दन, ग्री० गेनोस्, लै० गेनुस्, वेल्श गेनि, गॉ० कुनि, अं० किन्।

भारोपीय पुरःकण्ठ्य 'घं्' आर्यभाषा (भारत-ईरानी) में 'झ़्' में परिणत हो गया और यही आगे चलकर संस्कृत में 'ह्' बन गया। यथा—

* egho (m)>सं० अहम्, अवेस्तीय अज़ेम, प्रा० फा० अदम्, ग्री० एगो, लै० एगो, गॉ० इक्, अं० आइ।

पाश्चात् कण्ठ्यध्वनि ('क्' आदि) भारोपीय की सभी भाषाओं में वर्तमान हैं। कण्ठोष्ठ्य (क़् आदि) ध्वनियों की ग्रीक, लैटिन, जर्मनिक शाखाओं में अपनी-अपनी विशेषताएँ सुरक्षित हैं; किन्तु अन्यत्र पश्चात्-कण्ठ्यध्वनि ('क्' आदि) के साथ इनका एकाकार हो गया है और 'इ', 'ई' तथा 'ए' प्रभृति तालव्य-ध्वनियों के अव्यवहित अनुगमन से ये (भारोपीय की कण्ठ्य एवं कण्ठोष्ठ्य-ध्वनियाँ) तालव्य (च्-वर्ग) में परिणत हो जाती हैं। यथा—

* qotero-s>सं० कतरः, ग्री० पोतेरॉस, गॉ० ह्वाथर।
* penqtis>सं० पंक्तिः, ग्री० पेम्पास्।
* qwarqw>सं० कर्कः, कर्कटः, ग्री० कर्किनास्, लै० कैन्सर्।
* qwe->सं० च, अवेस्तीय- च, प्रा० फा० च, ग्री० ते लै० के।
* gwous>सं० गौः, ग्री० बोउस्, लै० बोस्, अं० कॉउ।

* gwhormos * gwhermos>सं० घर्मः, अवे० गरेमो, ग्री० थेर्मोस्, लै० फोर्मुस्, अं० वार्म।

भारोपीय की दन्त्य तथा ओष्ठ्य ध्वनियाँ प्रायः अन्य शाखाओं में भी सुरक्षित हैं। इनके उदाहरण ऊपर के उदाहरणों में वर्तमान हैं। इसी प्रकार भारोपीय के अनुनासिक व्यञ्जन 'ङ्' 'न्' तथा 'म्' भी अन्य भाषाओं में सुरक्षित हैं। यथा—

* oṅko-s>सं० अङ्कः, लै० उङ्कुस्।
* nébhos>सं० नभस्, ग्री० नेफोस्, लै० नेबुला।

* mātē (r)>सं० माता, ग्री० मेटेर, लै० माटेर।

भारोपीय की सभी शाखाओं में 'र्' तथा 'ल्' वर्तमान थे। आर्यशाखा (भारत-ईरानी) में 'र्' तथा 'ल्' का 'र्' में एकाकार हो गया है। वैदिक-भाषा में 'ल्' का प्रयोग अत्यल्प मिलता है, अधिक स्थानों में इसके बदले 'र्' ही प्रयुक्त हुआ है। यही कारण है कि पुराने भाषा-विज्ञानी 'ल्' की अपेक्षा 'र्' को अधिक प्राचीन मानते थे, किन्तु आज भाषा-विज्ञानियों का यह स्पष्ट मत है कि भारोपीय में 'र्' तथा 'ल्' दोनों साथ-साथ वर्तमान थे। यथा—

* rudhros> सं० रुधिरस्, ग्री० एरुथ्रोस्, लै० रुबेर्, अं० रेड्।

*leuq—> सं० रोचस्, प्रा० फा० रउच, ग्री० लेउकास्, लै० लुक्स्, अं० लाइट्।

भारोपीय में ऊष्म-ध्वनियों में मुख्य ध्वनि स-कार थी। यह प्रायः सभी शाखाओं में सुरक्षित हैं, किन्तु स्वर-ध्वनि के बीच का स-कार, ग्रीक तथा ईरानी उपशाखा में ह-कार में परिणत हो जाता है। यथा—

*esti >सं० अस्ति, अवेस्तीय अस्ति, प्रा० फा० अस्ती, ग्री० एस्ति, लैं० एस्त्, गॉ० इस्त् > अं० इज्।

*septn > सं० सप्त, ग्री० हेप्त, लै० सेप्टेम्, गॉ० सिबुन्, लिथु० सेप्त्यनि।

*senos > सं० सनस्, ग्री० हेनोस्, लै० सेनेस् आयरिशसेन्, वेल्श हेन्।

भारोपीय की सभी शाखाओं की प्राचीन भाषाओं (संस्कृत, ग्रीक, लैटिन आदि) के अध्ययन से स्वर-परिवर्तन का एक विशिष्ट रूप दृष्टिगोचर होता है। चूँकि ग्रीक में भारोपीय के अधिकांश स्वर अपरिवर्तित रूप में सुरक्षित हैं, अतएव वहाँ यह विशेषता सर्वाधिक दृष्टिगोचर होती है। वह विशेषता यह है कि भारोपीय के एक ही धातु या शब्द में अथवा एक ही प्रत्यय या विभक्ति के योग से निष्पन्न धातु, शब्द प्रत्यय या विभक्ति में निर्दिष्ट क्रमानुसार स्वर-ध्वनि में परिवर्तन हो जाता है। इसप्रकार के स्वर-ध्वनि परिवर्तन को अपश्रुति (Ablaut) कहते हैं। अपश्रुति के तीन क्रम (grade) हैं। प्रथम क्रम मे धातु अथवा प्रत्यय-विभक्ति की मूल-स्वर-ध्वनि अविकृत रहती है, द्वितीय-क्रम में स्वर-ध्वनि दीर्घीभूत हो जाती है, तथा तृतीय-क्रम में ह्रस्व-स्वर-ध्वनि लुप्त हो जाती है, एवं दीर्घ-स्वर-ध्वनि अति ह्रस्व 'अ' ध्वनि में परिणत हो जाती है। इन तीन क्रमों के क्रमशः नाम हैं 'साधारण' (Normal या Strong), दीर्घीभूत (Lengthened) एवं ह्रस्वीभूत (weak)। संस्कृत-वैयाकरणों ने भी संस्कृत-भाषा में धातु के स्वर में इसीप्रकार के परिवर्तन को लक्ष्य करके इन तीन क्रमों का 'गुण' 'वृद्धि' एवं 'सम्प्रसारण' नामकरण किया था। नीचे अपश्रुति का उदाहरण दिया जाता है—

	प्रथम क्रम	द्वितीय क्रम	तृतीय क्रम
भारोपीय	*ped- *pod-	*pēd *pōd-	*pd-*bd-
ग्रीक	पोदोस्		एपिब्दइ
लैटिन	पेदिस्	पेस्	×
संस्कृत	पदस्	पात्	उपब्द

भारोपीय का व्याकरण अत्यन्त जटिल था। शब्द एवं धातु-रूपों के अनेक भेद थे। संस्कृत एवं ग्रीक शब्दों एवं धातुओं के रूपों से यह स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। शब्द-रूपों में तीन लिंग, तीन वचन, तथा सम्बन्ध एवं सम्बोधन को लेकर आठ कारक थे। सर्वनाम के रूपों में भी विविधता थी। धातु-रूप में तीन वचन, तीन पुरुष, दो वाच्य (आत्मनेपद तथा परस्मैपद), चार काल (वर्तमान या लट्; असम्पन्न या लङ्, सामान्य या लुङ्, एवं सम्पन्न या लिट्) तथा पाँच भाव (निर्देश, अनुज्ञा, सम्भावक,

अभिप्राय एवं निर्बन्ध) थे। प्रत्येक वाच्य एवं काल के साथ अनेक असमापिका क्रियाएँ थीं। भारोपीय की क्रिया के काल का आजकल की भाँति, समय से कोई सम्बन्ध न था। यह वस्तुतः क्रिया की अवस्था का द्योतक था। उदाहरण-स्वरूप, वर्तमान-काल से तात्पर्य था—'क्रिया का होना, हो चुकना, अथवा होते रहना'। असम्पन्न-काल वर्तमान-काल का ही एक भेद था। इसका यह तात्पर्य था कि क्रिया कुछ समय पूर्व हो चुकी है। सामान्य काल सद्यः पूर्ण कार्य का द्योतक था (अंग्रेजी में प्रेजेण्ट-परफेक्ट की भाँति ही यह था)। भारोपीय में सम्पन्न-काल का अर्थ बहुत कुछ वर्तमान की ही भाँति था। इससे यह भाव द्योतित होता था कि अतीत-क्रिया के परिणाम-स्वरूप ही वर्तमान क्रिया चल रही है। उदाहरण-स्वरूप, भारोपीय 'वोइद्' (* woida)>ग्री॰ ओइद् (oida), संस्कृत 'वेद्' का अर्थ था—'मैं जानता हूँ' अर्थात् पूर्ववर्ती कार्य के परिणाम-स्वरूप मुझे वर्तमान का ज्ञान उपलब्ध है। भारोपीय के विश्लिष्ट रूप धारण करने के पश्चात् जब विभिन्न भाषाएँ अस्तित्व में आईं तब धीरे-धीरे उनका 'काल' समय गत हो चला। इतने पर भी ग्रीक तथा वैदिक संस्कृत में सामान्य एवं सम्पन्न-काल के प्राचीन अर्थ सम्पूर्ण रूप से विलुप्त नहीं हुए हैं।

भारोपीय में अतीतकाल के अर्थ को द्योतित करनेवाला * 'ए' था। ग्रीक में इसका रूप 'ए' ही रहा, किन्तु संस्कृत एवं प्राचीन फारसी में यह 'अ'—हो गया। उदाहरण-स्वरूप, भारोपीय √दृक्-'देखना' को लिया जा सकता है। इसका दीर्घीभूत रूप *'दोर्क' (* dork) तथा द्वित्व रूप दे-दोर्क (de-dórk) हुआ। इसमें —'अ' लिङ् जोड़कर 'दे-दोर्क' (de-dórk-a) रूप सिद्ध हुआ। मूलरूप में यह वर्तमान का ही रूप था—'मैं देखने की क्रिया को पूर्ण करने की बाद की अवस्था में हूँ।' इसीसे विभिन्न भाषाओं में पूर्णभूत तथा अतीतकाल विकसित हुए। संस्कृत में यही ददर्श तथा ग्री॰ दे-दोर्क (de-dórk-a) रूप में लिट् का बोधक हुआ।

अतीत-काल सम्पन्न करने के लिए *'ए' अव्यय अथवा उपसर्ग का प्रयोग भारोपीय-प्रसूत सभी भाषाओं में हुआ हो, यह बात नहीं है। केल्तिक, लैटिन तथा जर्मेनिक भाषाओं में इसका सर्वथा अभाव है। पाणिनीय-संस्कृत तथा प्राचीन-फारसी में इसका सदैव प्रयोग होता है, किन्तु वैदिक-संस्कृत तथा अवेस्ता में इसका कभी-कभी प्रयोग होता है।

दो शब्दों को मिलाकर समास करना भारोपीय की विशेषताओं में से है। बाद में अनेक शब्दों को मिलाकर संस्कृत में समास की सृष्टि होने लगी। भारोपीय की एक अन्य उल्लेखनीय विशेषता उसकी स्वर-प्रक्रिया (Accent System) भी है। अनेक स्थलों में ग्रीक तथा वैदिक-संस्कृत में भारोपीय के स्वर (Accent) उसी रूप में मिलते हैं। भारोपीय से पृथक् होकर जब इस वर्ग की अन्य भाषाएँ अस्तित्व में आने लगीं, तब स्वर के साथ-साथ स्वराघात का प्राबल्य प्रारम्भ हो गया। भारोपीय के* √एस्-धातु के वर्तमान-काल, प्रथम पुरुष बहुवचन के रूप में आदि स्वर 'ए' का लोप इसका अच्छा उदाहरण है। यथा—* एसोन्ति, *एसेन्ति> *सेन्ति * सोन्ति> सं॰ सन्ति, ग्री एन्ति, लै॰ सुन्त् इत्यादि।

भारोपीय-वर्ग की भाषाओं का संक्षिप्त-परिचय

केल्तिक—यह भाषा एक समय में समग्र पश्चिमी तथा मध्य-योरोप में प्रचलित

थी ; किन्तु परवर्ती युग में इटैलिक (इतालिक) एवं जर्मेनिक भाषाओं के प्रसार से धीरे-धीरे इसका लोप हो गया। इस वर्ग की भाषाओं मे आयरिश मुख्य है। इसके प्राचीनतम नमूने ईसा की पाँचवीं शती के उपलब्ध हैं। आधुनिक आयरिश का आरम्भ १७ वीं शताब्दी से होता है। राष्ट्रीय जागरण तथा स्वतन्त्रता के साथ-साथ आयरिश लोग अपनी भाषा की ओर विशेष रूप से आकृष्ट हो रहे हैं।

केल्तिक वर्ग की दूसरी उल्लेखनीय भाषा किमरिक् अथवा वेल्श है। यह सजीव तथा सशक्त भाषा है। आज भी इसके बोलनेवालों की संख्या दस लाख के लगभग है। इसमें ८०० ई० तक के पुराने कागज-पत्र मिलते हैं। १००० ई० से १२०० ई० के बीच मे इसमे सर्वोत्कृष्ट साहित्य की रचना हुई थी।

इतालिक—इतालिक का केल्तिक के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। आरम्भ में ये दोनों भाषाएँ एक ही थीं ; किन्तु बाद में इनका स्वतन्त्र रूप में विकास हुआ। यही कारण है कि अनेक भाषा-विद् इन दोनों को स्वतन्त्र भाषाएँ न मानकर इन्हें 'केल्तिक—इतालिक' रूप में एक साथ ही लेते हैं।

इस शाखा की दो प्राचीन भाषाएँ ओस्कन (Oscan) तथा अम्ब्रियन (Umbrian) अब विलुप्त हो चुकी हैं। इनमें ओस्कन तो दक्षिणी इटली में प्रथम शताब्दी ईसवी तक बोली जाती थी। इन दोनों भाषाओं के सम्बन्ध की सामग्री अब केवल पुरालेखो में सुरक्षित है।

इतालिक शाखा की सबसे प्रधान एवं उल्लेखनीय भाषा है, लैटिन। आरंभ में यह लेटियम (Latium) प्रदेश की भाषा थी ; किन्तु रोम की प्रभुत्व वृद्धि के साथ-साथ यह रोम-साम्राज्य की भाषा बन गई। इसके प्राचीन लेख ३०० ई० पू० के उपलब्ध हैं। संस्कृत के समान ही उन्नीसवीं शताब्दी के मध्यभाग तक लैटिन योरोप के पण्डितों तथा धर्म की भाषा थी, रोम-साम्राज्य के विस्तार के साथ-साथ यह योरोप के समग्र दक्षिणी भाग में फैल गई तथा वहाँ की बोलचाल की भाषाओं को दबाकर इसने अपना एकच्छत्र प्रभुत्व स्थापित कर लिया। लैटिन के इसी बोलचाल के रूप से आधुनिक इतालिक अथवा रोमान्स भाषाओं की उत्पत्ति हुई है। इसके अन्तर्गत इटली की इटालीय (इतालिक), फ्रांस की फ्रेन्च, पोर्तुगाल की पोर्तुगीज; स्पेन की स्पेनीय तथा रोमानी आदि भाषाएँ आती हैं।

जर्मेनिक अथवा ट्यूटनिक—भारोपीय परिवार की भाषाओं में जर्मेनिक अथवा ट्यूटानिक शाखा की भाषाएँ अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। अंग्रेजी, जो वर्तमान काल में विश्व-भाषा के रूप में प्रतिष्ठित है, इसी शाखा के अन्तर्गत है। संभवतः जर्मन शब्द का प्रयोग ईसवी पूर्व की पहली शताब्दी में केल्तिक लोगों में पड़ोसी के अर्थ में किया था। इस शाखा को भौगोलिक दृष्टि से तीन उपशाखाओं में विभक्त किया जा सकता है। ये हैं—(१) पूर्व जर्मनिक (२) उत्तर जर्मनिक (३) पश्चिम जर्मनिक।

पूर्व जर्मनिक शाखा आज लुप्त हो चुकी है। इसकी प्राचीन भाषा गॉथिक में बाइबिल के कुछ अनूदित अंश मिलते हैं। ईसा की चौथी शताब्दी में पादरी उल्फिला (Wulfila) ने यह अनुवाद किया था। गॉथिक में अनूदित इस बाइबिल में ही जर्मनिक शाखा के प्राचीनतम नमूने आज उपलब्ध हैं।

उत्तर जर्मनिक भाषाएँ डेनमार्क, नार्वे तथा स्वेडन तक फैली हुई हैं। इसके अन्तर्गत नार्वेजियन (नार्वे की भाषा), स्वीडिश (स्वेडन की भाषा), डैनिश (डेनमार्क की भाषा) तथा आइसलैण्डिक (आइसलैंड की) भाषाएँ आती हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से इन भाषाओं में एक महान् साहित्यिक आन्दोलन चल पड़ा है और इसके कई लेखक तो विश्व के महान साहित्यकारों में स्थान पा चुके हैं। आइसलैण्ड की प्राचीन 'नार्स' भाषा में लिखित एड्डा (Edda) साहित्य के रूप में इसके प्राचीन नमूने उपलब्ध हैं। इसकी रचना ७०० ई० के लगभग हुई थी। यह पद्य तथा गद्य, दोनों में है तथा इसका आधार प्राचीन पौराणिक गाथाएँ हैं।

पश्चिमी जर्मनिक उपशाखा के दो मुख्य वर्ग हैं—(१) उच्च जर्मन (२) निम्न जर्मन। निम्न जर्मन के अन्तर्गत ही प्राचीन निम्न फ्रैंक तथा मध्य फ्रैंक से होते हुए नेदरलैण्ड की विभाषाएँ विकसित हुई हैं। इनमें डच तथा फ्लैमिश मुख्य हैं। इनमें सुन्दर साहित्य उपलब्ध है। निम्न जर्मन के ही एक अन्य वर्ग आंग्ल-सैक्सन से अंग्रेजीभाषा विकसित हुई है। ब्रिटेन में पहले केल्तिक शाखा की भाषाएँ प्रचलित थीं; किन्तु ईसा की छठीं शताब्दी में जर्मन जाति की आंग्ल, सैक्सन तथा जुठ जातियों ने ब्रिटेन को अपना निवास-स्थान बनाया। इन्हीं के द्वारा यहाँ केल्तिक के स्थान पर जर्मन शाखा की भाषा, अंग्रेजी की प्रतिष्ठा हुई। अंग्रेजी के प्राचीनतम नमूने ७०० ई० के लगभग के उपलब्ध हैं। साहित्य तथा बोलनेवालों की संख्या की दृष्टि से अंग्रेजी आज विश्व की श्रेष्ठ भाषाओं में से है। उच्च जर्मन के अन्तर्गत ही आधुनिक जर्मन भाषा आती है। यह मध्य जर्मन से होते हुए कालान्तर में विकसित हुई है।

जर्मन शाखा में मूल भारोपीय स्पर्श-व्यञ्जनों का परिवर्तन हो गया है। इन परिवर्तन सम्बन्धी नियमों को सूत्र रूप में ग्रथित करने का श्रेय प्रसिद्ध भाषा-विज्ञानी जेकब ग्रिम (Jacob Grimm) को है। इसीकारण ध्वनि-परिवर्तन सम्बन्धी इन नियमों अथवा सूत्रों को ग्रिम-सूत्र अथवा नियम के नाम से अभिहित किया गया है। ये सूत्र इस प्रकार हैं—

भारोपीय के चतुर्थ, तृतीय एवं प्रथम व्यञ्जन वर्ण, जर्मनिक शाखा में क्रमशः तृतीय, प्रथम एवं द्वितीय में परिणत हो जाते हैं, केवल द्वितीय वर्ण की ध्वनियाँ स्पर्श

न रहकर ऊष्म हो जाती हैं। यथा—* पेकु > गॉ० फेहु, अं० फी; * द्वो > गॉ० द्वा अं० टू; * भेरो > गॉ० बेर, अं० बेयर आदि।

ग्रिम के नियमों द्वारा जर्मनिक शाखा में भारोपीय के स्पर्श-व्यञ्जन के परिवर्तन की साधारण रूप में व्याख्या मिल जाती है; किन्तु फिर भी इसके अनेक अपवाद रह जाते हैं। इन अपवादों के समाधान का श्रेय बाद के दो भाषा-शास्त्रियों, ग्रॉसमान (Grassmmann) एवं वर्नर (Verner) को है। ग्रॉसमान ने यह स्पष्ट रूप से दिखलाया कि सं० बन्ध् = अं० बाइण्ड (bind) में जो ग्रिम-नियम का अपवाद मिलता है, वह वास्तविक अपवाद नहीं है। सच तो यह है कि यहाँ संस्कृत में प्राप्त व्यञ्जन-ध्वनि को भारोपीय की मूल व्यञ्जन-ध्वनि से अभिन्न मान लेने से ही यह अपवाद प्रतीत होता है। वास्तव में संस्कृत बन्ध् का रूप भारोपीय में * भेन्द् था * बेन्ध् नहीं।

अतः भारोपीय ❀ भेन्द् से अंग्रेजी में बाइण्ड (bind) हो जाना ग्रिम नियम के अनुकूल ही है। ग्रॉसमान द्वारा आविष्कृत इस नियम से तथाकथित अनेक अपवादों का स्वाभाविक रीति से समाधान हो गया। ग्रॉसमान का नियम इस प्रकार है —भारोपीय के किसी शब्द में जब पास-पास दो चतुर्थ वर्ण की ध्वनियाँ रहती है, तब ग्रीक तथा आर्य-शाखाओं में, उनमें से एक तृतीय वर्ण की ध्वनि में परिवर्तित हो जाती है। यथा—

❀ √भेन्ध् > सं० वन्ध् , ग्री० पेन्थ् ; ❀√भेउध् > सं० बुध् , ग्री० पेउथ् इत्यादि।

इनके अतिरिक्त जो अपवाद अवशिष्ट रह गए थे उनकी मीमांसा वर्नर द्वारा आविष्कृत नियम द्वारा हुई। यह नियम इस प्रकार है—

अव्यवहित रूप में भारोपीय के यदि पूर्ववर्ती अक्षर पर स्वराघात (Accent) न हो तो उसकी प्रथम वर्ण-ध्वनि जर्मनिक में द्वितीय (उष्म) वर्ण न होकर तृतीय (स्पर्श) वर्ण-ध्वनि में परिणत हो जाती है। यथा—

* Klutós > (ग्री० क्लुतोस् , सं० श्रुतस्) > प्राचीन अंग्रे० ह्लुद्, अं० लाउड ; ❀ Kmtóm > गॉ० हुन्द्, अं० हुंड् , हंड्रेड, इत्यादि।

ग्रीक—प्राचीनकाल में ग्रीक-भाषा ग्रीस, एशिया माइनर के प्रदेश, साइप्रेस द्वीप तथा एजियन उपसागर के द्वीप समूहों में प्रचलित थी। इसकी अनेक उपभाषाएँ थीं, जिनमें 'एटिक' (Attic), आयोनिक (Ionic) एवं डोरिक (Doric) प्रधान थीं। होमर द्वारा रचित इलियड तथा ओडेसी की भाषा में यद्यपि कई बोलियों का सम्मिश्रण है ; किन्तु इनमें आयोनिक की प्रधानता है। होमर ने इन काव्यों की रचना ईसा से ९०० वर्ष पूर्व की थी। होमर के परवर्ती काल के गद्य-ग्रंथों की भाषा 'एटिक' है। डोरिक तथा आयोनिक एवं एटिक में यत्किञ्चित् ध्वनि-संबंधी अन्तर है। डोरिक में भारोपीय का दीर्घ 'आ' सुरक्षित है ; किन्तु आयोनिक-एटिक में यह दीर्घ 'ए' में परिणत हो जाता है—भारोपीय का ❀ 'माटेर' (mater) डोरिक में इसी रूप में मिलता है ; किन्तु आयोनिक-एटिक में यह 'मेटेर' (meter) हो जाता है। ग्रीक में ईसापूर्व ६०० वर्ष के शिलालेख उपलब्ध हैं। प्राचीन ग्रीक 'एखेनियन' नाम से प्रसिद्ध थे। उस युग में एटिक-शाखा में अनेक प्रसिद्ध नाटकों तथा गद्य-ग्रंथों की रचना हुई थी। योरोप में ग्रीक-साहित्य के समकक्ष प्रौढ एवं उच्च-साहित्य कोई दूसरा न था। आधुनिक योरोपीय साहित्य एवं संस्कृति को ग्रीक साहित्य एवं संस्कृति से बहुत प्रेरणा मिली है। ईसवी सन् के पूर्व ही ग्रीक की कई बोलियों के संमिश्रण के परिणाम-स्वरूप एक आदर्श अथवा स्टैण्डर्ड भाषा की उत्पत्ति हुई थी जिसका नाम कोइने (koine) था। यह भाषा ही ग्रीस देश के जनसाधारण के बोलचाल की भाषा बन गई। इसीसे आधुनिक ग्रीक की उत्पत्ति हुई है। इतालिक, जर्मनिक, बाल्तोस्लाविक एवं भारत-ईरानी वर्ग की भाषाओं के समक्ष आज ग्रीक का विस्तार बहुत कम है।

बाल्तोस्लाविक—इस शाखा की भाषाओं के अन्तर्गत दो उपशाखाएँ—(१) बाल्तिक (२) स्लाविक आती हैं। प्रथम उपशाखा के अन्तर्गत तीन भाषाएँ—(क) प्राचीन प्रशन, (ख) लिथुयानिया की भाषा लिथुयानियन तथा (ग) लाटेविया की भाषा लेटी आती हैं। इनमें प्राचीन 'प्रशन' सत्रहवीं शताब्दी में ही लुप्त हो गई थी। लिथुयानीय भाषा जीवित

भारोपीय भाषाओं में सबसे प्राचीन है। इसमें वैदिक संस्कृत तथा प्राचीन ग्रीक की भाँति ही संगीतात्मक स्वराघात मिलता है। विशेष भौगोलिक स्थिति के कारण लिथुयानीय में अत्यल्प परिवर्तन हुआ है। उसमें भारोपीय के प्राचीनतम रूप सुरक्षित मिलते हैं और भाषाविज्ञान के पण्डितों के लिए यह अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। लेटी लिथुयानीय से अधिक परिवर्तित हो चुकी है। रूस में बोल्शेविक क्रांति के परिणाम स्वरूप पिछले दो दशकों में वहाँ की भाषाओं में पुनर्जागरण की लहर दौड़ गई है।

स्लाविक-समूह की भाषाएँ बाल्तिक की अपेक्षा अधिक विस्तृत एवं बहुमुखी हैं। दक्षिण-स्लाविक के अन्तर्गत सर्वीय एवं बुल्गेरीय, दो भाषाएँ आती हैं। इनमें बाइबिल के अनुवाद तथा नवीं शताब्दी के ईसाई सन्तों की रचनाएँ मिलती हैं। यह बाल्तो-स्लाविक शाखा की प्राचीनतम सामग्री है। पश्चिम स्लाविक के अन्तर्गत चेक, स्लावेकीय, एवं पोलिश भाषाओं की गणना है। इनमें से प्रथम दो तो चेकोस्लोवेकिया की भाषाएँ हैं और तिसरी पोलैण्ड की। रूस एवं वहाँ की उपभाषाएँ पूर्व स्लाविक के अन्तर्गत आती हैं।

आल्बनीय—एड्रियाटिक सागर के पूर्वी तट पर आल्बनीय भाषा का क्षेत्र है। सत्रहवीं शताब्दी से पूर्व की आल्बनीय भाषा का कोई साहित्य नहीं मिलता। भारोपीय भाषाओं में आल्बनीय सबसे अधिक विकृत है। इसके शब्द-भाण्डार में लैटिन, ग्रीक, स्लाविक, इतालीय एवं तुर्की आदि प्राचीन एवं अर्वाचीन भाषाओं के अनेक शब्द आ मिले हैं।

आर्मेनीय—आर्मेनिया में आर्मेनीय भाषा ईसा पूर्व सातवीं-आठवीं शताब्दी से प्रचलित है। वर्तमान समय में यह आर्मेनिया के बाहर भी कहीं-कहीं बोली जाती है। पहले विद्वानों की यह धारणा थी कि आर्मेनीय ईरानी की ही एक विभाषा है; किन्तु बाद में इसकी स्वतंत्र सत्ता सिद्ध हो गई। आर्मेनीय में ईरानी के लगभग दो सहस्र शब्द हैं। ये विविध युगों में ग्रहण किए गए थे। आर्मेनीय वस्तुतः बाल्तोस्लाविक तथा आर्य भाषाओं के मध्य की एक शृंखला है। यह भारोपीय परिवार के शतम् वर्ग की भाषा है। इस पर काकेशीय तथा सभी भाषाओं का भी पर्याप्त प्रभाव पड़ा है।

खत्ती अथवा हत्ती—सन् १९०६-७ ई० में ह्यूगो विंकलर (Hngo Winkler) नामक जर्मन विद्वान् ने एशिया माइनर के अन्तर्गत प्राचीन कप्पादोकिया प्रदेश के बोगाजकुई ग्राम में अनेक पुरालेखों को खोज निकाला। ये लेख मिट्टी की पट्टिकाओं पर कीलाक्षरों (Cuneiform) में लिखे हुए हैं। बोगाजकुई वस्तुतः ईसापूर्व पंद्रहवीं शताब्दी से तेरहवीं शताब्दी तक द्वितीय हत्ती-साम्राज्य की राजधानी थी। लेख हत्तीसाम्राज्य के पुराने रेकर्ड अथवा कागज-पत्र हैं। इनमें से कतिपय दो भाषाओं (हत्ती-अक्कादीय) तथा अन्य तीन भाषाओं (हत्ती-अक्कादीय-सुमेरीय) में लिखित हैं। यद्यपि ये लेख ईसापूर्व पंद्रहवीं से तेरहवीं शताब्दी के मध्य में ही लिखे गए थे तथापि इनमें से कई प्रथम हत्ती साम्राज्य (ईसा पूर्व १९वीं से १७वीं शताब्दी) के लेखों की प्रतिलिपि हैं। इस प्रकार इनमें ईसा पूर्व १९वीं से १७वीं शताब्दी तक की भाषा एवं लिपि के नमूने भी उपलब्ध हैं।

हत्ती पुरालेखों में अश्वविद्या के सम्बन्ध में एक ग्रंथ मिला है। इसके कतिपय पारिभाषिक शब्दों में भारतीय-आर्य-भाषा के आदिम रूप मिलते हैं। उदाहरण स्वरूप इसमें एक शब्द 'अइक वर्त्तन' मिला है। इसका संस्कृत रूप 'एक-वर्त्तन' है। संस्कृत एक शब्द का प्राचीन रूप 'अइक' था। यह अन्यत्र नहीं मिलता है। हत्ती में अनेक शब्द मितन्नी-राजसभा की भाषा से आए हैं। मैसोपोटेमिया के पूर्व में स्थित मितन्नी की राजसभा की भाषा से भारतीय-आर्य भाषा का घनिष्ठ सम्बन्ध था। इस सम्पर्क के प्रमाण उपलब्ध हैं। एक हत्ती पुरालेख में हत्ती राज सुपिलुल्युमस् तथा मितन्नी-राज मतिराज की पुत्र-कन्या के विवाह के उल्लेख हैं। यह एक प्रकार का संधि-पत्र है। इसमें अनेक विशिष्ट वैदिक देवताओं के नाम का उल्लेख मिलता है। इसके उदाहरण नीचे दिए जाते हैं—

शुरियस् (Shuriash) = वेद-पूर्व आर्यभाषा शुरियस्, वैदिक सूर्यः; मरुत्तश (Maruttash) = वेद-पूर्व मरुतस्, वै० मरुतः ; इन्दर् (Indara) (स्वर-भक्ति युक्त रूप) = वै० इन्द्रः ; उरुवन (Uruwna) वै० वरुणः, आदि।

कई मितन्नी नामों में भी भारतीय-आर्य-भाषा की विशेषता परिलक्षित होती है। यथा—

अबिरत्तश (= वै० अभिरथः), अर्त्तमन्यु (= वै० ऋतमन्युः) बिरिदश्व (= वै० वृद्धाश्वः) ; अइतगाम (= वै० एतगाम), शुबन्द (= वै० सुबन्धु) ; शुमित्तरश (= वै० सुमित्रः) आदि।

सुमेरीय तथा अक्कादीय भाषाओं से अत्यधिक प्रभावित होने पर भी हत्ती का भरोपीय स्वरूप नष्ट न हो सका। यही नहीं भारोपीय की अनेक विशेषताएँ तो केवल हत्ती में ही सुरक्षित हैं। उदाहरण-स्वरूप *√एस् के वर्तमानकाल परस्मैपद प्रथम पुरुष के बहुवचन के रूप में आदि-स्वर 'ए' केवल हत्ती में ही वर्तमान है। मूल-भाषा में रूप था* एसोन्ति। इसके बाद मूल-भाषा से एकार का लोप हो गया और तब *सोन्ति अथवा *सेन्ति रूप बना। इससे ही संस्कृत 'सन्ति', ग्री० 'एन्ति', लै० 'सुन्त' आदि रूप सिद्ध हुए। किन्तु हत्ती में 'असन्ज़ि' (asanzi) रूप मिलता है। इसप्रकार हत्ती का रूप मूल-भाषा के *एसेन्ति अथवा *एसोन्ति से ही आया है, परवर्ती रूप *सोन्ति या *सेन्ति से नहीं। हत्ती की इस प्राचीनता का अनुभव कर कतिपय भाषाविज्ञानियों की यह स्पष्ट धारणा है कि एक ओर जहाँ आदिम भाषा से भारोपीय की उत्पत्ति हुई है, वह दूसरी ओर हत्ती की भी। इसका विवरण इस प्रकार है—
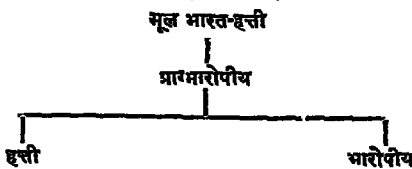
तुखारीय—हत्ती की भाँति ही तुखारीय अथवा तोखारीय का आविष्कार भी वर्तमान शताब्दी में ही हुआ है। मध्य-एशिया स्थित चीनी-तुर्किस्तान में अंग्रेज, फ्रेंच, रूसी तथा जर्मन विद्वानों के अन्वेषणों के फल-स्वरूप सन् १६०४ ई० में अनेक हस्तलिखित ग्रंथ तथा कागज-पत्र प्राप्त हुए। इन ग्रंथों तथा लेखों की लिपि खरोष्ठी एवं ब्राह्मी है। प्रो० सीग

(Sieg) ने इन ग्रंथों में प्रयुक्त भाषा का विशेष अध्ययन किया और यह भारोपीय परिवार के कतम् (केण्टुम) वर्ग की प्रमाणित हुई। चूँकि इस भाषा के बोलनेवाले 'तुखार' अथवा 'तोखार' लोग थे, अतएव इस भाषा का नामकरण तुखरीय अथवा तोखारीय किया गया। सातवीं शताब्दी के लगभग यह भाषा लुप्त हो गई थी।

तुखारीय ग्रंथों में स्पष्टरूप से दो विभाषाएँ प्रयुक्त हुई हैं। इन्हें विद्वानों ने 'अ' और 'ब' विभाषाएँ कहा है। इनमें प्रथम वास्तव में तुखारों की भाषा है और इसको तुखारीय कहना उपयुक्त है। द्वितीय कूचा-प्रदेश की भाषा है। अतएव इसे प्राचीन कूची कहना ठीक होगा। कई बातों में तुखारीय भाषा केल्तिक तथा इतालीय भाषाओं से साम्य रखती है।

भारत-ईरानी अथवा आर्यवर्ग

भारत-ईरानी भाषा-भाषी अपने को आर्य कहकर सम्बोधित करते थे। यही कारण है कि इस वर्ग की भाषा को 'भारत-ईरानी अथवा आर्य' नाम से अभिहित किया जाता है। भारोपीय परिवार की भाषाओं में भारत-ईरानी वर्ग में सबसे प्राचीन साहित्यिक सामग्री उपलब्ध है। इसकी दो उपशाखाएँ हैं—(१) ईरानीय (२) भारतीय। ईरानीय के अन्तर्गत भी दो भाषाएँ हैं। इनमें एक है अवेस्ता की भाषा तथा दूसरी है प्राचीन फारसी भाषा। जरथुस्त्र के (सं० जरठोष्ट्र) के उपासक पारसी लोग अवेस्ता को उसी प्रकार सम्मान की दृष्टि से देखते हैं जिस प्रकार हिंदू वेद को। ईरान के उत्तर पूर्व उत्तर पूर्व के प्रदेश की बोलचाल की भाषा ही वस्तुतः अवेस्ता की आधारभूता भाषा थी। अवेस्ता के प्राचीनतम अंश उसकी गाथाएँ हैं। गाथाओं की भाषा अन्य अंशों की भाषा से प्राचीन है। ऋग्वेद की भाषा से इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है। विद्वानों के अनुसार ऋषि जरथुस्त्र ने इसकी रचना ईसा पूर्व सातवीं-आठवीं शताब्दी में की होगी। अर्वाचीन अवेस्ता के अन्य अंशों की रचना अनुमानतः ईसा पूर्व तृतीय-चतुर्थ शताब्दी में हुई होगी। किन्तु अवेस्ता का संकलन बहुत बाद में हुआ। यह कार्य सासानीय-वंश के राजत्व-काल में ईसवी तीसरी शताब्दी से सातवीं शताब्दी के बीच सम्पन्न हुआ था। इसके पूर्व प्राचीन अवेस्ता साहित्य का बहुत अंश विनष्ट हो चुका था। आज अवेस्ता के रूप में जो साहित्य उपलब्ध है, वह प्राचीन विराट् साहित्य का अवशेष मात्र ही है।

जरथुस्त्र के पूर्व के ईरानीय आर्य भारतीय आर्यों की भाँति ही यज्ञ-परायण तथा देवोपासक थे। अवेस्ता में आज भी उस प्राचीन धर्म के चिह्न उपलब्ध हैं। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि जरथुस्त्रीय धर्म ग्रहण करने के पश्चात् भारतीय तथा ईरानीय आर्यों में पारस्परिक विद्वेष हो गया। इसके प्रमाण 'देव' तथा 'असुर' शब्द हैं। ईरानीय में 'देव' का अर्थ है 'अपदेवता' अथवा राक्षस। इसप्रकार आर्यों के प्राचीन देवता 'नासत्य' एवं 'इन्द्र' आदि ईरानियों के लिए अपदेवता बन गए। अवेस्ता में देव शब्द का अर्थ यही है। ठीक इसी प्रकार संस्कृत में असुर शब्द के अर्थ में विपर्यय हो गया है। ऋग्वेद के प्राचीन-मंत्रों में 'असुर' शब्द वरुण आदि देवताओं के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है। अवेस्ता में भी ईश्वर को 'अहुरमज़्दा' (असुरमेधाः) कहा गया है; किन्तु आगे चलकर वैदिक-साहित्य में ही 'असुर' शब्द देव विरोधी अथवा राक्षस-वाची हो गया है। इस प्रकार

इन दो शब्दों में ईरानीय तथा भारतीय आर्यों के धार्मिक-कलह का इतिहास सन्निविष्ट है। यह होते हुए भी कतिपय ऐसे देवता हैं जो ईरानीय एवं भारतीय आर्यों द्वारा समान रूप से पूजित हैं। इनमें 'मित्र', 'अर्यमा' एवं 'सोम' उल्लेखनीय हैं।

ऊपर यह कहा जा चुका है कि भारतीय आर्य-भाषा (वैदिक-संस्कृत) तथा ईरानीय-आर्य-भाषा (अवेस्ता की भाषा) में अत्यधिक साम्य है। नीचे अवेस्ता से एक पद लेकर उसे संस्कृत में अनूदित किया जाता है। इससे दोनों भाषाओं की समता स्पष्ट हो जायेगी। यह अवेस्ता के यस्न ९ का प्रथम पद है। इसका छन्द भी प्रायः अनुष्टुप है।

अवेस्ता का पद

हावनीम् आ रतूम आ
हओमो उपाइत् ज़रथु.श्त्रेम्,
आत्रे॑म पइरियओज़् दथ्॑न्ते॑म्,
गाथाओ॑स्च स्रावयन्ते॑म्।
आ-दिम् पे॑रे॑सत् ज़रथु.श्त्रो, 'को नरे॑ अही?
यिम् अज़े॑म् वीस्पहे अङ्हेउश्
अस्तवतो स्रएश्ते॑म् दादरेस्'॥

संस्कृत-रूप

सावने आ ऋतौ आ
सोम उपैत् (उपागात्) जरठोष्ट्रम;
अथरं परि-योस्-दधतम्,
गाथाश्च श्रावयन्तम्।
आतं (अ) पृच्छत् जरठोष्ट्रः; 'को नरो असि?
यं अहं विश्वस्य असोः (असुमतः)
अस्थन्वतः श्रेष्ठं ददर्श॥'

अनुवाद—

सवनवेला (प्रातःकाल) में होम (सोम) जरथुश्त्र के पास आया जो अग्नि को उज्ज्वल कर रहा था और उसको गाथा सुना रहा था। उससे जरथुश्त्र ने पूछा, 'आप कौन पुरुष हैं, जिन्हें मैं सभी अस्थिधारियों (जीवधारियों अथवा प्राणियों) में श्रेष्ठ देख रहा हूँ।'

अवेस्ता को जिस समय संकलित एवं लिपिबद्ध किया गया था, उस समय तक ईरानीय भाषा में पर्याप्त परिवर्तन एवं रूपान्तर हो गया था, यही कारण है कि इसके शब्द-रूप आदि में बहुत अन्तर मिलता है। अर्वाचीन अवेस्ता में स्वरों का बाहुल्य, ह्रस्व-दीर्घ का विपर्यय, व्यञ्जन-वर्णों का ऊष्मीकरण तथा अत्यधिक मात्रा में अपिनिहिति के रूप मिलते हैं। गाथिक (पुरानी अवेस्ता) में उच्चारण एवं व्याकरण-सम्बन्धी इसप्रकार की अव्यवस्था का अभाव है।

प्राचीन फ़ारसी—ईरान के दक्षिण-पश्चिम प्रदेश की भाषा थी। इस प्रदेश का पुराना नाम पारस था। इसके अधिवासी हखामनीशीय-वंश के अभ्युदय के साथ-साथ

इनकी मातृ-भाषा प्राचीन-फारसी भी ईरान की राज्य-भाषा हो गई। इस वंश के सम्राट् दारयवउश (सं० धारयद्वसुः Dareios or Darius —ईसा पूर्व ५२१-४८५) तथा उसके पुत्र ज़रक्सीज़ (सं० क्षयार्ष Xerxes) अत्यधिक प्रतापी हुए। इन दोनों के जो शिलालेख तथा ताम्रलेख मिले हैं, उन्हीं से प्राचीन-फारसी की सामग्री उपलब्ध हुई है। प्राचीनकाल में मैसोपोटामिया तथा एशियामाइनर में जो कीलाक्षर प्रचलित थे, उसीके एक रूप में प्राचीन फारसी के ये पुरालेख मिले हैं।

नीचे दारयवउश के अभिलेख की कतिपय पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं। अवेस्ता की भाषा के समान ही प्राचीन-फारसी का संस्कृत से कितना अधिक साम्य है, यह इससे स्पष्ट हो जायेगा।

फारसी अभिलेख की पंक्तियाँ—

"थातिय् दारयवउश् ख्शायथिय इमत्यमना कर्तम् पसाव यथा ख्शायथिय अबवम्। कम्बूजिय नाम कूरउश् पुत्र् अमाखम् तउमाया हउवम् इदा ख्शायथिय आह; अवह्या कम्बूजियह्या भ्राता बर्दिय नाम आह हमाता हमपिता कम्बूजियह्या; पसाव कम्बूजिय अवम् बर्दियम् अवाजन्। यथा कम्बूजिय बर्दियम् अवाजन् कारह्या नईय अज़्दा अबवत्य बर्दिय अवजत। पसाव कम्बूजिय मुद्रायम् अशियव। यथा कम्बूजिय मुद्रायम् अशियव पसाव कार अरिक अबव; पसाव द्रउग दह्यउवा वसिय अबव उता पार्सइय् उता मादइय् उता अनियाउवा दह्युशु वा॥"

संस्कृत-रूप—

"शास्ति धारयद्वसुः क्षियन् (=क्षत्रियः) इदं त्यत् मया कृतं पश्चात् अवत् (एतत्) यदा क्षियन् (=क्षत्रियः) अभवम्। कम्बुजो नाम कुरोः पुत्रः अस्माकं तोकस्य (=कुलस्य)—असौ इध (=इह) क्षियन् (=क्षत्रियः) आस; अस्य कम्बुजस्य भ्राता बर्दियो नाम आस समातृकः सपितृकः कम्बुजस्य; पश्चात् अवत् (=एतत्) कम्बुजः तं बर्दियं अवाहन्। यदा कम्बुजो बर्दियं अवाहन्, कारस्य (=लोकस्य) न एतत् अद्धा अभवत् त्यत् (=सः) बर्दिय अवाहन्यत। पश्चात् अवत (=एतत्) कम्बुजो मिस्र (देशं) अभ्यवत्। यदा कम्बुजो मिस्रदेशं अभ्यवत् पश्चात् अवत् (एतत्) काराः (=लोकाः) अरिका अभवन्; पश्चात् अवत् द्रोहः दस्यौ (देशे) आ वशी अभवत, उत पारस (देशे), उत मद (देशे), उत अन्येषु आ दस्युषु (देशेषु) आ॥"

अनुवाद—

राजा दारयवउश (धारयद्वसु) कहता है; जब मैं राजा हुआ, उसके पश्चात् मैंने यह किया। हमारे कुल का कम्बुज नाम का कुरु का पुत्र—वह यहाँ का शासक था। कम्बुज का बर्दिय नामक समातृक सपितृक भाई था; इसके पश्चात् कम्बुज ने बर्दिय का वध कर दिया। जब कम्बुज ने बर्दिय का वध किया, जनता को यह विदित न हुआ कि बर्दिय मारा गया है। इसके पश्चात् कम्बुज मिस्र चला गया। जब कम्बुज मिस्र चला गया, इसके पश्चात् लोग शत्रु हो गए। इसके पश्चात् समस्त देश में द्रोह फैल गया, फारस में और मद (मीडिया Media) देश में और अन्य देशों में (द्रोह फैल गया)।

जिस प्रकार प्राचीन-भारतीय-आर्य-भाषा (वैदिक-संस्कृत) का विवर्तन पालि, प्राकृत तथा आधुनिक-भारतीय-आर्य-भाषाओं के रूप में हुआ उसीप्रकार प्राचीन-ईरानीय ने मध्य-ईरानीय (पहलवी) तथा अर्वाचीन फारसी को जन्म दिया।

मध्य-ईरानीय-भाषा को 'पहलवी' (<प्रा०फा० पर्थ्व, सं० पह्लव, फा० पह्लव 'योद्धा') के नामसे अभिहित किया जाता है। ईसा की तीसरी से नवीं शताब्दी तक यह भाषा प्रचलित थी। इसमें ईरानीय शब्दों के साथ-साथ अरबी शब्दों का प्रयोग होने लगा और अनेक अरबी शब्द ईरानीय प्रत्यय लगाकर व्यवहृत हुए। इसप्रकार पहलवी प्राचीन फारसी की अपेक्षा आधुनिक फारसी के अधिक निकट है। इसमें लिङ्ग-भेद के कारण शब्द के रूप में भिन्नता समाप्त हो गई और सुप्-विभक्तियों का काम अव्ययों से लिया जाने लगा।

पहलवी के अतिरिक्त कुछ अन्य उपभाषाएँ भी मध्य-ईरानीय के अंतर्गत थीं। इनमें 'शक' भाषा उल्लेखनीय है। इस भाषा में अनेक बौद्ध-ग्रंथों का अनुवाद हुआ था।

आधुनिक फारसी मे अरबी भाषा का प्रभाव इतना अधिक बढ़ गया है कि प्राचीन फारसी से इसकी समानता अल्पांश में ही दिखाई देती है। प्राचीन फारसी में प्रधानतया सुप्-विभक्तियों के प्रयोग से शब्दों का पारस्परिक सम्बन्ध एवं क्रिया के साथ सम्बन्ध प्रकट किया जाता था; परंतु अर्वाचीन फारसी मे अव्ययों आदि के प्रयोग से तथा वाक्य में शब्दों की स्थिति से यह सम्बन्ध व्यक्त किया जाता है। अफगानी अथवा पश्तो एवं कास्पियन सागर के आसपास की कुछ भाषाएँ भी अर्वाचीन-ईरानीय के अन्तर्गत हैं।

ग्रियर्सन आदि भाषाविज्ञान के कुछ पण्डितों ने भारत के उत्तर-पश्चिमी सीमांत-प्रदेश एवं पामीर की उपत्यका की भाषाओं तथा काश्मीरी को भारतीय एवं ईरानीय-आर्य-भाषाओं के मध्य में स्थान दिया है और इनको 'दर्दीय' (Dardic) नाम से अभिहित किया है। इन भाषाओं मे ईरानीय एवं भारतीय आर्य-भाषाओं की विशेषताओं का सम्मिश्रण अभिलक्षित होता है।

भारतीय-आर्य-भाषा

भारत में आर्यों का आगमन किस काल मे हुआ, यह प्रश्न अत्यंत विवाद-ग्रस्त है; परन्तु साधारणतया यह माना जाता है कि २०००-१५०० ई० पू० भारत के उत्तर-पश्चिमी सीमांत-प्रदेश में आर्यों के दल आने लगे थे। वहाँ पहले से बसी हुई अनार्य-जातियों को परास्त कर आर्यों ने सप्तसिंधु (आधुनिक पंजाब) देश मे आधिपत्य स्थापित कर लिया। यहाँ से वह धीरे-धीरे पूर्व की ओर बढ़ते गए और मध्य-देश, काशी-कोशल, मगध-विदेह, अङ्ग-बङ्ग तथा कामरूप मे स्थानीय अनार्य-जातियों को अभिभूत कर उन्होंने अपने राज्य स्थापित कर लिये। इस प्रकार समस्त उत्तरापथ मे आर्यों का आधिपत्य जम गया। अब आर्य-संस्कृति ने दक्षिण-पथ मे प्रवेश किया और जब यूनानी राजदूत मेगास्थनीज भारत में आया था तब तक आर्य-संस्कृति सुदूर-दक्षिण तक में फैल चुकी थी।

आर्यों की विजय राजनीतिक विजय मात्र न थी। वह अपने साथ सुविकसित भाषा एवं यज्ञ-परायण संस्कृति लाये थे। राजनीतिक विजय के साथ-साथ उनकी संस्कृति एवं भाषा भी भारत मे प्रसार पाने लगी। परन्तु स्थानीय अनार्य जातियों के प्रभाव के यह

सर्वथा मुक्त न रह सकीं। हड़प्पा एवं मोहिंजोदड़ों की खुदाइयों से सिन्धु-घाटी की जो सभ्यता प्रकाश में आई है, उससे स्पष्ट विदित होता है कि यायावर, पशु-पालक आर्यों के आगमन से पूर्व सिन्धु-घाटी में नागरिक सभ्यता का बहुत विकास हो चुका था। अतः यह सर्वथा संभव है कि आर्यों की भाषा, संस्कृति तथा धार्मिक विचारों पर अनार्य-जातियों के सम्पर्क का बहुत प्रभाव पड़ा होगा।

भारत में आर्यों का प्रसार सरलतया सम्पन्न न हुआ था। उनको अनेक प्राकृतिक एवं मानुषिक बाधा-विरोधों का सामना करना पड़ा था। अतः प्रसार के इस कार्य में अनेक शताब्दियाँ लग गईं। इस काल-क्रम में भाषा भी स्थिर न रही। उसके रूप में परिवर्तन-विवर्तन होता गया। सौभाग्य से भारतीय-आर्य-भाषा का अत्यन्त प्राचीन काल से लेकर आधुनिक-काल तक का रूप उसके अविश्रृंखलित रूप से उपलब्ध साहित्य में बहुत कुछ सुरक्षित है। अतः इस भाषा के विकास की प्रत्येक कड़ी को प्रकाश में लाना भाषा-विज्ञान के आचार्यों के लिए अपेक्षाकृत सरलता से संभव हो सका है।

विकास-क्रम के विचार से भारतीय-आर्य-भाषा के तीन विभाग किए जाते हैं—(१) प्राचीन-भारतीय-आर्य-भाषा (वैदिक-संस्कृत), (२) मध्य-भारतीय-आर्य-भाषा (अशोक के अभिलेखों की भाषा, पालि, प्राकृत एवं अपभ्रंश) और (३) आधुनिक भारतीय-आर्य-भाषा (हिन्दी, बंगाली, गुजराती, मराठी, पंजाबी-सिन्धी आदि)।

प्राचीन-भारतीय-आर्य-भाषा

ऊपर कहा जा चुका है कि भारत में आनेवाले आर्यों के दल अपने साथ यज्ञ-परायण संस्कृति लाये थे। प्राचीन-ईरानीय संस्कृति के अध्ययन से विदित होता है कि भारत में प्रवेश करने से पहले से ही आर्यों में इन्द्र, मित्र, वरुण आदि देवताओं की उपासना प्रचलित थी। भारत में बस जाने पर यज्ञों के विधि-विधान में विकास होता गया और आर्य-ऋषि देवताओं की प्रशंसा में सूक्तों की रचना करते गए। यह सूक्त परम्परागत रूप में ऋषि-परिवारों में सुरक्षित रखे जाने लगे। बाद में विभिन्न ऋषि-परिवारों से सूक्तों का संग्रह किया गया। इस संकलन का फल है ऋग्वेद-संहिता। उस अविज्ञात अत्यंत प्राचीन-काल से वेदाध्ययन-परायण मनीषियों ने श्रुति-परम्परा से 'ऋक्संहिता' को अविकलित रूप में सुरक्षित रखकर भारोपीय-परिवार के प्राचीनतम साहित्य को हम तक पहुँचाया है।

यज्ञों के विकास के साथ-साथ वैदिक वाङ्मय में वृद्धि होती गई। वैदिक-साहित्य के तीन विभाग हैं—(१) संहिता, (२) ब्राह्मण एवं (३) उपनिषद्। संहिता-भाग में ऋक्संहिता के अतिरिक्त 'यजुः संहिता', 'साम-संहिता' तथा 'अथर्व-संहिता' है। 'यजुः संहिता' में यज्ञों के कर्म-काण्ड में प्रयुक्त मंत्र संगृहीत हैं। इसके मंत्र यज्ञों में प्रयोग के क्रम से रखे गए हैं और पद्य के साथ-साथ गद्य में भी अनेक मन्त्र उपलब्ध होते हैं। यजुः संहिता—'कृष्ण' एवं 'शुक्ल'—इन दो रूपों में है। कृष्ण-यजुर्वेद-संहिता में मंत्र-भाग के साथ ही व्याख्यात्मक गद्य भाग भी संकलित है, परन्तु शुक्ल-यजुर्वेद-संहिता में केवल मन्त्र-भाग हैं। 'सामवेद-संहिता' में सोम-यागों में गाए जानेवाले सूक्तों को गेय पदों के रूप में सजाया गया है। इसके अधिकांश सूक्त ऋग्वेद-संहिता से लिये गए हैं।

'अथर्व-संहिता' में जन साधारण में प्रचलित मंत्र-तंत्र, टोने-टोटकों का संकलन हुआ है। इसकी सामग्री ऋक्संहिता से कम प्राचीन नहीं है, परन्तु चिरकाल तक वेद के रूप में मान्यता प्राप्त न होने के कारण इसकी भाषा का प्राचीन रूप सुरक्षित नहीं रह पाया है।

ब्राह्मण-भाग में कर्म-काण्ड की व्याख्या की गई है और इसी प्रसंग में अनेक उपाख्यान भी दिए गए हैं। प्रत्येक 'वेद' के अपने-अपने 'ब्राह्मण' हैं। इन ग्रंथों की रचना गद्य में हुई है। ऋग्वेद का प्रधान ब्राह्मण-ग्रंथ 'ऐतरेय ब्राह्मण' है। ब्राह्मण-ग्रंथों में यह सबसे प्राचीन;है और इसका रचना काल अनुमानतः १००० ई० पू० है। 'सामवेद' के ब्राह्मण-ग्रंथों में ताण्ड्य अथवा पञ्चविंश-ब्राह्मण विशेष उल्लेखनीय है। 'शतपथ-ब्राह्मण' शुक्ल यजुर्वेद का ब्राह्मण-भाग है। 'तैत्तिरीय-ब्राह्मण' आदि कृष्ण यजुर्वेद के ब्राह्मण-ग्रंथ हैं। 'अथर्ववेद' को 'वेद' के रूप में स्वीकार कर लेने पर इसके साथ भी ब्राह्मण-ग्रन्थ जोड़े गए।

'उपनिषद्' ब्राह्मण-ग्रंथों के परिशिष्ट भाग हैं। इनमें वैदिक-मनीषियों के आध्यात्मिक एवं पारमार्थिक चिंतन के दर्शन होते हैं। इनमें आर्यों के ज्ञानकाण्ड का उदय एवं विकास हुआ। इनकी सरल प्रवाहमयी भाषा एवं हृदयग्राहिणी शैली अत्यन्त प्रभावशाली है।

भारत में प्रवेश करनेवाले आर्यों के विभिन्न दलों की भाषा में थोड़ी-बहुत भिन्नता अवश्य थी, परन्तु उनमें साहित्यिक-भाषा का एक सर्वमान्य रूप विकसित हो चुका था। इसी साहित्यिक-भाषा में 'ऋक्संहिता' के सूक्तों की रचना हुई। दीर्घ-काल तक ये श्रुति-परम्परया ऋषि-परिवारों में सुरक्षित रखे जाते रहे। परंतु जैसे-जैसे बोलचाल की भाषा में सूक्तों की भाषा से भिन्नता बढ़ती गई और वह दुर्बोध होने लगी, वैसे-वैसे इसके प्राचीन रूप को सुरक्षित रखने के लिए संहिता के प्रत्येक पद को संधि-रहित अवस्था में अलग-अलग कर 'पद-पाठ' बनाया गया तथा 'पद-पाठ' से 'संहिता-पाठ' बनाने के नियम निर्धारित किए गए। इसप्रकार प्रत्येक वेद की विभिन्न शाखाओं के 'प्रातिशाख्यों' की रचना हुई। प्रातिशाख्यों में अपनी-अपनी शाखा के अनुरूप वर्ण-विचार, उच्चारण-विधि, पद-पाठ से संहिता-पाठ बनाने की विधि आदि विषयों पर पूर्णतया विचार किया गया है। 'पद-पाठों' एवं 'प्रातिशाख्यों' से यह असंदिग्ध रूप से विदित होता है कि इनकी रचना के समय 'संहिता' का जो रूप था, वही अविकल रूप में हमें आज उपलब्ध हुआ है। यहाँ पर वैदिक-भाषा के वर्ण-समूह एवं शब्द तथा धातु-रूपों पर कुछ प्रकाश डाला जाता है।

स्वर-ध्वनियाँ

भारत में प्रवेश करने से पहले ही आर्य-भाषा में मूल-भारोपीय-भाषा की 'अ' तथा ह्रस्व 'ए', 'ओ' के स्थान पर 'अ' तथा इनकी दीर्घ-ध्वनियों के स्थान पर 'आ' का प्रयोग होने लगा था। परन्तु यह बात ध्यान देने योग्य है कि भारोपीय के 'ए' का स्थान ग्रहण करनेवाले प्राचीन-भारतीय-आर्यभाषा के 'अ' से पूर्व भारोपीय कंठ्य-ध्वनि तालव्य-ध्वनि में परिणत हो गई है, यथा—ग्री अगेइ वै० सं० अजति में 'ज्' का परवर्ती 'अ' भारोपीय 'ए' के स्थान पर आया है, अतः भारोपीय कंठ्य 'ग्' भी भारतीय प्रतिरूप में 'ज्' में परिणत हो गया है। प्राचीन-भारतीय आर्यभाषा के 'अ' एवं 'आ' बहुधा मूल ह्रस्व एवं दीर्घ अर्धव्यञ्जन 'न्', 'म्'

के स्थान में भी प्रयुक्त हुए हैं और अनुदात्त 'अन्' एवं 'अम्' का स्थान ग्रहण करते हैं, यथा—'सन्त्-अम्' और सत्-आ', 'अ-गम्-अत्' और 'गत' तथा 'खा-त' (√खन् 'खोदना' से) आदि उदाहरणों में स्पष्ट है।

इस प्रकार प्राचीन-भारतीय-आर्य-भाषा में ह्रस्व एवं दीर्घ मिलाकर निम्नलिखित तेरह स्वर-ध्वनियाँ रह गईं—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ए, ओ, ऐ, औ।

इनमें से पहले की नौ स्वर-ध्वनियों को प्रातिशाख्यों में 'समानाक्षर' तथा बाद की चार स्वर-ध्वनियों को 'संध्यक्षर' संज्ञा दी गई है। संध्यक्षरों में भी 'ए' 'ओ' गुण तथा 'ऐ' 'औ' वृद्धि स्वर हैं। 'ए' तथा 'ओ' क्रमशः 'अ + इ' तथा 'अ + उ' की गुण-संधि के परिणाम हैं और 'ऐ' तथा 'औ' क्रमशः 'आ + इ' एवं 'आ + उ' की वृद्धि-संधि के। परन्तु कुछ शब्दों में द्, ध् अथवा ह् का पूर्ववर्ती 'ए' = मूल 'अज्' के, यथा—'एधि' (∠√'अस्' 'होना' 'अवे' '(अ) ज् धि), नेदीय 'समीप' (अवे॰ नज् द्यो'), देहि अथवा धेहि (अवे॰ दज़् दि)। इसीप्रकार सुप्-प्रत्यय के भ् एवं कृत-प्रत्यय के 'य्' 'व्' से पूर्ववर्ती 'ओ' = मूल 'अज् के', यथा—रक्षोभिः ('रक्षस्' का तृतीय बहुवचन का रूप), दुवो-यु 'दान का इच्छुक' (अन्य रूप 'दुवस्यु'), एवं 'सहोवत्' (अन्य रूप 'सहस्वन्त)।

संधि में 'ऐ' 'औ' का 'आय्', 'आव्' में परिणत होना, यही प्रदर्शित करता है कि इनका मूलरूप 'आइ' 'आउ' ही है।

वैदिक-भाषा की एक प्रधान विशेषता है 'स्वर' अथवा 'संगीतात्मक-स्वराघात' (Pitch accent)। प्रधान-स्वरयुक्त स्वर-ध्वनि को 'उदात्त' (acute), स्वरहीन स्वर-ध्वनि को 'अनुदात्त' (unaccented) तथा उदात्त-स्वर की अव्यवहित परवर्ती निम्नगामी स्वर-ध्वनि एवं उदात्त में उठकर अनुदात्त-स्वर में ढलनेवाले अक्षर की 'स्वरित' (circumflex) संज्ञा है। इस स्वराघात-परिवर्तन के कारण शब्दों के अर्थ तक में परिवर्तन हो जाता है। आद्युदात्त (जिसका आदि का स्वर 'उदात्त' हो) 'ब्रह्मन्' शब्द नपुंसकलिङ्ग है और इसका अर्थ है 'प्रार्थना' परन्तु यही शब्द 'अन्तोदात्त' (ब्रह्मन्) होने पर पुंल्लिङ्ग हो जाता है और तब इसका अर्थ होता है 'स्तोता'। ऋक्संहिता में अनुदात्त स्वर प्रकट करने के लिए अक्षर के नीचे पड़ी—रेखा तथा स्वरित के लिए अक्षर के ऊपर खड़ी (⊥) रेखा खींची जाती है, यथा जुहोति (इसमें 'जु' अनुदात्त, 'हो' उदात्त एवं 'ति' स्वरित है)।

भारोपीय-मूल-भाषा के प्रसंग में 'अपश्रुति' (Ablaut) का उल्लेख किया जा चुका है। संस्कृत-वैयाकरण इसप्रकार के स्वर-परिवर्तन से परिचित थे और 'अपश्रुति' के विभिन्न-क्रमों को उन्होंने 'गुण', 'वृद्धि' एवं 'सम्प्रसारण' के नाम से अभिहित किया। परन्तु संस्कृत-वैयाकरणों और आधुनिक भाषा-विज्ञानियों की व्याख्या में कुछ अन्तर है। संस्कृत-वैयाकरणों ने 'इ, उ, ऋ, ऌ, को प्रकृत-स्वर मानकर 'ए, ओ, अर्, अल्, को इनका दीर्घीभूत रूप बतलाया। परन्तु वास्तव में 'इ, उ, ऋ, ऌ प्रकृत-स्वर न होकर 'ए, ओ, अर्, अल्' के ह्रस्वीभूत रूप हैं। √पत्-'गिरना' के 'पतामि' (ग्री॰ पेतोमइ) में धातु का अविकृत रूप, 'अपप्तम्' में ह्रस्वीभूत-रूप, एवं 'अपाति' में दीर्घीभूत रूप स्पष्ट हैं।

स्वर-ध्वनियों के उच्चारण में वैदिक-काल की कुछ विशेषताएँ उल्लेखनीय हैं। 'अ' का उच्चारण प्रातिशाख्यों के समय में अति-ह्रस्व-संवृत (Closed) स्वर के रूप में होने लगा था, परंतु विद्वानों का अनुमान है कि मंत्रों के रचना-काल में यह विवृत-स्वर रहा होगा। 'ऋ' का उच्चारण आजकल 'रि' किया जाता है। परन्तु वैदिक-काल में इसका उच्चारण ऐसा न था। ऋक्प्रातिशाख्यमें 'ऋ' को रेफ-युक्त स्वर-ध्वनि कहा गया है। इनसे जान पड़ता है कि इसका उच्चारण प्राचीन ईरानीय 'ऍ रें' के समान रहा होगा। प्राचीन ईरानीय में 'ऋ' के स्थान पर 'ऍ रें' आया है। यही बात 'ऌ' के उच्चारण के विषय में भी है। 'ऌ' का प्रयोग अत्यल्प रहा होगा, क्योंकि यह स्वर-ध्वनि केवल √'क्लृप्' धातु और इसके 'क्लृप्ति' आदि रूपों में ही मिलती है। 'ऐ' 'औ' का उच्चारण आजकल 'अइ, अउ' के समान है, परन्तु संधि में इन संध्यक्षरों के परिवर्तन पर ध्यान देने और मंत्रों के छंद की लय के निर्वाह के विचार से इनका उच्चारण 'आइ' 'आउ' रहा होगा, ऐसा जान पड़ता है।

'ऋक्संहिता' में छन्द की लय ठीक रखने के लिए 'र्' युक्त-व्यञ्जन के बीच अति ह्रस्व स्वर-ध्वनि का सन्निवेश आवश्यक हो जाता है। इस स्वर-सन्निवेश को 'स्वर-भक्ति' कहते हैं। इसप्रकार 'इन्द्र' का उच्चारण 'इन्द्र अर' करना पड़ता है।

व्यंजन-ध्वनियाँ

प्राचीन-भारतीय-आर्य-भाषा में मूल भारोपीय भाषा की व्यंजन-ध्वनियाँ अन्य भाषाओं की अपेक्षा अधिक पूर्णतया सुरक्षित रहीं। व्यंजन-ध्वनियों में मूर्धन्य 'ट-वर्ग' क सन्निवेश भारतीय-आर्य-भाषा की निजी विशेषता है। संभवतः ट-वर्ग की उत्पत्ति द्रविड़ प्रभाव के फलस्वरूप हुई। ऋक्संहिता में मूर्धन्य-व्यंजन केवल पद के मध्य एवं अन्त में ही आए हैं। यह मूर्धन्य व्यंजन-ध्वनियों, मूर्धन्य 'ष्' (मूल, स्, श्, ज् ह्) अथवा 'र्' से अनुगमित दन्त्य-व्यंजनों के परिवर्तन के परिणाम हैं, यथा 'दुष्टर्' 'अजेय' (='दुस्तर'), 'वष्टि' (='वश् + ति' 'इच्छा करता है'), मृष्ट (='मृज्-त') 'प्रक्षालित', 'नीड' (='निज्-द्') 'घोंसला', दूढी (='दुज्-धी') 'अस्वस्थ', 'दृढ' (='दृह्-त'), 'नृणाम्' (नृ—'-नाम्') इत्यादि।

'ट'-वर्ग के समावेश से प्राचीन-भारतीय-आर्य-भाषा में व्यंजन-ध्वनियों के उच्चारण स्थान के अनुसार निम्नलिखित पाँच वर्ग हो गए—

(१) कंठ्य-कवर्ग (क्, ख्, ग्, घ्, ङ्),
(२) तालव्य-चवर्ग (च्, छ्, ज्, झ्, ञ्),
(३) दन्त्य-तवर्ग (त्, थ्, द्, ध् न्),
(४) ओष्ठ्य-पवर्ग (प्, फ्, ब्, भ् म्) तथा
(५) मूर्धन्य-टवर्ग (ट्, ठ्, ड्, ढ् ण्)।

इन पाँच वर्गों के अतिरिक्त इसमें चार अर्ध-स्वर-ध्वनियाँ 'य्, व्, र्, ल्', तीन ऊष्म-ध्वनियाँ 'श्, ष्, स्', प्राण-ध्वनि 'ह्', अनुनासिक — (ṃ) तथा विसर्जनीय (:), जिह्वामूलीय (ẖ) एवं उपध्मानीय (ḫ) विद्यमान हैं। वर्ग के अन्तर्गत वैदिक-भाषा में ळ (ḷ) तथा ळह (ḷh) भी सम्मिलित हैं, जो ऋक्संहिता में क्रमशः स्वरमध्यग 'ड्, ढ्' का स्थान ग्रहण करते हैं, यथा—'ईळे' (परन्तु 'ईड्य'), 'मीळ्हुषे' (परन्तु 'मीढ्वान्')।

मूल-भारोपीय-भाषा की व्यञ्जन-ध्वनियों ने आर्य-भाषा में क्या रूप ग्रहण किया, यह पीछे लिखा जा चुका है। यहाँ पर प्राचीन-भारतीय-आर्य-भाषा की व्यञ्जन-ध्वनियों की कुछ विशेषताओं का उल्लेख किया जाता है। ङ्, ञ्, न्, म्, ण्, इन पाँच नासिक्य-स्पर्श-व्यञ्जनों में केवल 'न्' एवं 'म्' ही पद में किसी भी स्थान पर स्वतन्त्र रूप से मिलते हैं; शेष तीन नासिक्य पद के आरम्भ में नहीं आते और ञ् तथा ण् पदान्त में भी स्थान नहीं पाते तथा इन तीनों नासिक्य-ध्वनियों की स्थिति अपने समीपस्थ व्यञ्जन पर निर्भर रहती है। कण्ठ्य ङ् पदान्त में केवल उन्हीं पदों में मिलता है जिनमें पदान्त क् अथवा ग् का लोप हुआ हो अथवा जिन पदों के अंत में 'दृश्' का योग हो, यथा 'प्रत्यङ्' ('प्रत्यक्' 'प्रत्यञ्च्' का प्रथमा एक वचन), 'कीदृङ्' ('कीदृश्' का प्रथमा एक व०)। पद के मध्य में ङ् केवल कण्ठ्य व्यञ्जनों के पूर्व ही नियमित रूप से आता है, यथा—'अङ्क' 'अङ्ख', 'अङ्ग', 'जङ्घा'। पद के मध्य में अन्य व्यजनों से पूर्व यह तभी आता है जब उनसे पूर्व 'क्' अथवा 'ग्' का लोप हो गया हो, यथा—युङ्धि ('युङ्ग्धि' के स्थान पर)। तालव्य-स्पर्श-नासिक्य व्यञ्जन 'ञ्' केवल 'च्' या 'ज्' के पहले अथवा बाद में और 'छ्' के पूर्व ही आता है, यथा—'पञ्च', 'यज्ञ' (= यज्ञ्), वाञ्छन्तु। मूर्धन्य 'ण्' केवल मूर्धन्य-स्पर्श-व्यञ्जनों के पूर्व आता है अथवा ऋ', 'र्' या 'ष्' के परवर्ती दन्त्य 'न्' का स्थान ग्रहण करता है, जैसे 'दण्ड', 'नृणाम्' (= 'नृ-नाम्') वर्ण, उष्ण इत्यादि। दन्त्य 'न्' भारोपीय 'न्' का सूचक है, परन्तु किन्हीं प्रत्ययों से पूर्व यह 'द्' 'त्' अथवा 'म्' का स्थान भी ग्रहण करता है, यथा—'अन्न' (< 'अद्' 'खाना') 'विद्युन्-मन्त' = (विद्युत्-मन्त), 'मृन्मय' (= मृद्-मय,) 'यन्त्र' (= 'यम्-त्र')।

ओष्ठ्य 'म्' भारोपीय 'म्' के सदृश है, यथा 'नामन्', लै० नोमेन् (Nomen)। इनके अतिरिक्त प्रा० भा० आर्य-भाषा में एक शुद्ध नासिक्य-ध्वनि है, जिसको 'अनुनासिक' तथा 'अनुस्वार' संज्ञा दी गई है। स्वर-ध्वनि से पूर्व यह नासिक्य ध्वनि 'अनुनासिक' कही जाती है और ँ लिखी जाती है तथा व्यञ्जन से पूर्व इसकी 'अनुस्वार' संज्ञा होती है और यह ं लिखी जाती है।

प्रा० भा० आर्य-भाषा का अर्ध-स्वर 'र्' भारोपीय 'र्' तथा बहुधा 'ल्' के स्थान में भी प्रयुक्त हुआ है। प्राचीन-ईरानीय में भी भारतीय 'र्', 'ल्' दोनों के स्थान में 'र्' मिलता है। इससे विदित होता है कि भारत-ईरानीय काल में भी 'र्' के स्थान में भी 'ल्' के प्रयोग की प्रवृत्ति चल पड़ी थी। भारतीय-आर्य-भाषा में 'र्' और 'ल्' ध्वनियों के प्रयोग की भिन्नता पर विचार कर भाषाविज्ञानी इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि भारतीय-आर्य-भाषा का विकास तीन शाखाओं में हुआ। एक शाखा में केवल 'र्' ध्वनि थी, दूसरी में 'र्' एवं 'ल्' दोनों तथा तीसरी में केवल 'ल्' ध्वनि ही विद्यमान थी। श्रीर, श्रील एवं श्लील-एक ही शब्द के यह तीन रूप इन शाखाओं के परिचायक हैं।

प्रा० भा० आर्य-भाषा में मूल-भारोपीय-भाषा की शब्द एवं धातु-रूपों की समृद्धि पूर्णतया सुरक्षित रही। शब्द एवं धातुओं के अनेकानेक रूपों ने वैदिक-भाषा को भाव-प्रकाशन में अपूर्व क्षमता प्रदान की। परन्तु विभिन्न सुप्, तिङ् एवं अन्य प्रत्ययों के योग

के साथ-साथ शब्द एवं धातु के विविध रूपों में, इनके प्रकृत- रूप में, जो विकार उत्पन्न होते हैं, वह इतने अधिक हैं कि इनसे वैदिक-भाषा बहुत जटिल हो गई है।

प्राचीन भा० आ० भाषा के प्रातिपदिकों (सुप्-प्रत्यय के योग से पूर्व शब्द के रूप) को दो विभागों में बाँटा गया है—अजन्त (स्वरान्त) एवं हलन्त (व्यञ्जनान्त)। अजन्त-प्रातिपदिकों में ह्रस्व एवं दीर्घ 'अ, इ, उ, ऋ' कारान्त शब्द हैं। हलन्त प्रातिपदिक अन्तिम प्रकृत अथवा प्रत्ययान्त व्यञ्जन के अनुसार अनेक प्रकार के हैं, यथा—'क्, च्, त्, थ्, द्, ध्, भ्, स्, श्' में अन्त होने वाले तथा 'वत्, तात्, इत्, उत्, त्, अन्त्, मन्त्, वन्त्, अन्, मन्, इन् मिन्, विन्, अर्, तर्' इत्यादि प्रत्ययान्त शब्द। शब्दों के तीन लिङ्ग, तीन वचन एवं सम्बन्ध तथा सम्बोधन को मिलाकर आठ कारकों में रूप चलते हैं।

शब्द-रूपों (विशेषतया व्यञ्जनान्त शब्दों के रूपों) में प्रधान विशेषता यह लक्षित होती है कि कर्त्ता एवं कर्म कारक के एक-वचन तथा द्विवचन तथा कर्त्ताकारक में बहुवचन के रूपों मे 'प्रातिपदिक' (base) का रूप अविकृत (strong) रहता है तथा अन्य कारकों एवं वचनों मे इसका ह्रस्वीभूत (weak) रूप आता है, यथा—'राजन्' शब्द के कर्त्ताकारक के तीनों वचनों, तथा कर्म-कारक के एक और द्विवचन में क्रमशः 'राजा', 'राजानौ', 'राजानः', 'राजानम्', 'राजानौ' रूप होते हैं, परन्तु कर्मकारक बहुवचन में 'राज्ञः' (='राज्-नः), करण-कारक एक वचन में 'राज्ञा' रूप बनते हैं। कर्ता—एवं कर्मकारक के इन पाँच रूपों को संस्कृत-वैयाकरणों ने 'सर्वनाम' स्थान' संज्ञा दी है और आधुनिक भाषा-विज्ञानी इनको प्रकृत-रूप अथवा अविकृत रूप (strong cases) तथा अन्य रूपों को ह्रस्वीभूत रूप (weak-cases) कहते है।

कुछ शब्दों में ह्रस्वीभूत रूपों में भी दो भेद है—(१) अति-ह्रस्वीभूत (weakest cases) जो उन सुप्- प्रत्ययों के योग से बनते हैं जिनके आदि में स्वर हैं (करण, सम्प्र०, अपा०, सम्ब० अधिकरण के एक वचन, सम्ब० अधि० के द्विवचन तथा सम्ब० के बहुवचन में) और (२) सामान्यतः ह्रस्वीभूत (middle cases), जो आदि में व्यञ्जन वाले सुप् प्रत्ययों से निष्पन्न होते हैं (करण, सम्प्र०, अपादान एवं अधि० के बहुवचन में)। 'राजन्' शब्द का अति-ह्रस्वीभूत रूप 'राज्ञ्' (राज्न्) हो जाता है, यथा 'राज्ञा' राज्ञे (राज्न्-ए) इत्यादि में तथा सामान्यतः ह्रस्वीभूत रूप में 'राज' ही रह जाता है, यथा 'राज्-भ्याम्' इत्यादि में।

प्रातिपदिक में इस भिन्नता का कारण स्वराघात (accent) का स्थान-परिवर्तन है। सर्वनाम-स्थान में 'स्वराघात' प्रातिपदिक पर रहता है, अतः उसका प्रकृत-रूप अविकृत रहता है, परन्तु अन्य स्थानों पर वह 'सुप्-प्रत्यय' पर आ जाता है, जिससे प्रातिपदिक का रूप ह्रस्वीभूत हो जाता है। नपुंसक लिङ्ग शब्दों में केवल कर्ता तथा कर्म-कारक के बहुवचन की ही 'सर्वनाम-स्थान' संज्ञा होती है तथा जिन नपुंसक लिङ्ग 'प्रातिपदिकों' में 'अति-ह्रस्वीभूत' तथा सामान्यतः ह्रस्वीभूत का भेद रहता है, उनमें कर्ता तथा कर्मकारक द्विवचन में 'अति-ह्रस्वीभूत' एवं कर्ता तथा कर्मकारक एकवचन में सामान्यतः ह्रस्वीभूत रूप होते हैं, यथा—'प्रत्यक्' (कर्त्ता-कर्म, ए० व०), प्रतीची (द्वि० व०), प्रत्यञ्चि (ब० व०)

बहुधा प्रातिपदिक एवं सुप्-प्रत्यय के मध्य किसी व्यञ्जन-ध्वनि का आगम होता है। अ, इ, उकारान्त नपुंसकलिंग प्रातिपदिक के कर्त्ता-कर्मकारक बहुवचन में सुप्-प्रत्यय 'इ' से पूर्व 'न्' का आगम होता है, यथा—'फलानि', 'आस्यानि' ('आस्य = 'मुख') वारीणि (वारि = 'जल'), मधूनि (मधु = 'शहद')। इसीप्रकार सम्बन्ध-कारक बहुवचन में भी अजन्त प्रातिपदिक एवं सुप्-प्रत्यय के मध्य 'न्' का आगम होता है, यथा 'रामाणाम्', 'फलानाम्', 'कन्यानाम्'। पुल्लिंग एवं नपुंसक-लिंग प्रातिपदिकों के करण-कारक एकवचन में भी 'सुप्-प्रत्यय' 'आ' से पूर्व 'न्' का आगम होता है, यथा—'हरिणा', 'भानुना', 'वारिणा', 'मधुना', परन्तु स्त्रीलिंग में 'मत्या' (मति) धेन्वा (धेनु = 'गाय')। वैदिक-भाषा में कहीं-कहीं स्त्रीलिंग शब्दों के भी करण-कारक एकवचन में सुप् प्रत्यय से पूर्व 'न्' का आगम दिखाई देता है, यथा—धासिना; और कहीं-कहीं पुल्लिंग एवं नपुंसकलिंग शब्दों में भी यह आगम नहीं दिखाई देता, यथा—'उर्मिया' (पुल्लिग), 'मध्वा' (नपुंसकलिंग)।

आठों कारकों के एकवचन एवं बहुवचन के रूप भिन्न-भिन्न सुप्-प्रत्ययों के योग से बनते हैं, परन्तु द्विवचन के रूप केवल तीन सुप्-प्रत्ययों से निष्पन्न होते हैं—(१) कर्ता, कर्म-सम्बोधन में 'आ' अथवा 'औ' के योग से यथा—अश्विना अश्विनौ, देवा-देवौ इत्यादि, (२) करण-सम्प्रदान-अपादान में 'भ्याम्' के योग से, यथा—रामाभ्याम्, हरिभ्याम्, भानुभ्याम् इत्यादि और (३) सम्बन्ध अधिकरण में 'ओस्' के योग से, यथा—रामयोः इत्यादि।

कुछ कारकों एवं वचनों में वैदिक-भाषा में शब्द के एकाधिक रूप मिलते हैं, यथा—कर्ताकारक बहुवचन में देवाः देवासः, करण कारक बहुवचन में देवैः देवेभिः, नपुंसकलिंग कर्त्ता-बहुवचन में युगा युगानि, भूरि भूरीणि इत्यादि।

विशेषण एवं संख्यावाचक शब्दों के रूप-संज्ञा शब्दों के समान सुप् प्रत्ययों के योग से निष्पन्न होते हैं, परन्तु सर्वनाम शब्दों की रूप निष्पत्ति में संज्ञा शब्दों से बहुत भिन्नता लक्षित होती है। पुरुष वाचक सर्वनाम शब्दों के रूपों में दो विशेषताएँ उल्लेखनीय हैं। एक तो विभिन्न कारकों एवं वचनों में प्रतिपादित रूप ही भिन्न है और दूसरे 'अम्' प्रत्यय का प्रयोग बहुलता से हुआ है। भिन्न-भिन्न वचनों के प्रातिपदिकों में भिन्नता स्वाभाविक ही है; क्योंकि जैसे 'रामौ' = राम + राम, उसीप्रकार 'आवाम्' (हम दो) = अहम् + अहम् (मैं + मैं) नहीं हो सकता; वह या तो 'अहम् + त्वम्' (मैं + तुम) अथवा 'अहम् + सः' (मैं + वह) ही हो सकता है। भारोपीय परिवार की प्राचीन भाषाओं के अध्ययन से विदित होता है कि मूल भारोपीय-भाषा में मध्यम-पुरुष सर्वनाम का प्रातिपदिक-रूप 'तु' था। ऋग्वेद में भी 'तु' का प्रयोग हुआ है और गॉथिक-अवेस्ता में 'तु' का अर्थ सर्वत्र 'तुम' होता है। इस 'तु' शब्द में 'सुप्-प्रत्यय 'अम्' का संयोग आर्य-ईरानीय काल में ही होने लगा था, जैसा अवेस्ता के रूप 'त्वेम्' से विदित होता है। इसी प्रकार वै० सं० 'अहम्', लै० एगोम्, अवे०, अज़ेम् (azem) प्रा० फा० 'अदम्' (adam); वै० सं० माम्, ल० मे, अवे० मंम्, प्रा० फा० माम् वै० त्वा-त्वाम्, ग्री० ते, लै० ते अवे० थ्वम् थ्वा प्रा० फा० थुवाम् आदि समान

रूपों से इनकी प्राचीनता लक्षित होती है। एक ही कारक एवं वचन में दो-दो रूपों (यथा, अस्मत्-नः, युष्मान्-वः इत्यादि) के अस्तित्व का कारण यह प्रतीत होता है कि मूल-भारोपीय-भाषा में पुरुष-वाचक सर्वनामों के उदात्त (accented) एवं अनुदात्त (Unaccented) दोनों प्रकार के रूप विद्यमान थे, जिनमें- से कुछ भारोपीय-भाषाओं ने उदात्त एवं कुछ ने अनुदात्त-रूप अपनाए। लैटिन ने स्वरहीन अनुदात्त, नौस्'- 'वौस्' रूप ग्रहण किया। भारतीय-आर्य-भाषा ने दोनों प्रकार के रूपों को सुरक्षित रखा।

भारोपीय-परिवार की भाषाओं में ग्रीक एवं प्राचीन० भा० आर्य-भाषा ने धातु-रूपों की विविधता को सुरक्षित रखा। ग्रीक के समान वैदिक-भाषा में भी धातु-रूपों में तीन-वचन, तीन पुरुष, दो वाच्य (आत्मनेपद एवं परस्मैपद), चार काल (वर्तमान या लट्, असम्पन्न या लङ्, सामान्य या लुङ् एवं सम्पन्न या लिट्) तथा पाँच भाव (निर्देश, अनुज्ञा, सम्भावक, अभिप्राय एवं निर्बन्ध) विद्यमान है।

धातु-रूपों की तीन विशेषताएँ अनुलक्षणीय हैं—(१) धातु के पूर्व 'अ' उपसर्ग (augment) का प्रयोग (२) धातु का द्वित्व (reduplication) तथा (३) धातु एवं तिङ् प्रत्यय के मध्य 'विकरण' का सन्निवेश।

धातु से पूर्व 'अ' उपसर्ग का प्रयोग 'असम्पन्न' (लङ् Imperfect), सामान्य (लुङ् aorist) एवं 'क्रियातिपत्ति' (लृङ् conditional) में प्रायः होता है, यथा-अभवत् (√भू- असम्पन्न), अभार् (√भृ- 'धारण करना', सामान्य), 'अभविष्यत्' (√भू- क्रियाविपत्ति) इत्यादि।

धातु का द्वित्व 'वर्तमान या लट्' में किन्हीं धातुओं में, सम्पन्न या लिट्' में, 'सामान्य या लुङ्' के एक भेद में तथा 'सन्नन्त' (इच्छार्थक), एवं 'यङन्त' (अतिशयार्थक) प्रक्रियाओं में होता है।

'विकरण' की भिन्नता के अनुसार धातुएँ दश गणों में विभक्त हुई हैं—(१) 'अ'-विकरणवाली (भ्वादिगण), यथा- पठति (पठ्-अ-ति), (२) विकरण रहित (अदादिगण) यथा, 'अत्ति' (अद्- ति), (३) विकरण-रहित परन्तु धातु के द्वित्ववाली- जुहोत्यादिगण, यथा- जुहोति (जु-हो-ति (√ हु), (४) य- विकरण वाली- दिवादिगण, यथा दीव्यति (दीव्-य-ति ∠ √दिव्- = 'क्रीड़ा करना'), (५) नु-विकरण वाली- स्वादिगण, यथा-शक्नोति (√शक्- 'समर्थ होना'), (६) स्वराघात युक्त अ- विकरण वाली- तुदादिगण, यथा-तुदति (तुद्- अ- ति ∠ तुद्- 'कष्ट देना'), (७) धातु के अंतिम व्यंजन से पूर्व 'न' अथवा 'न्' के आगम वाली- रुधादिगण, यथा भुनक्ति (√भुज् 'खाना'), (८) 'उ'-विकरणवाली तनादिगण, यथा- तनोति (√तन् 'फैलाना'), (९) 'ना' विकरणवाली- क्र्यादिगण, यथा- पृणाति (√पृ 'पालन करना') और (१०) 'अय्-' विकरणवाली- चुरादिगण, यथा-चोरयति (√चुर् 'चुराना'।

इन दश-गणों के भी दो विभाग किए गए हैं—(१) जिनमें 'अङ्ग' (धातु का विकरणयुक्त रूप, जिसमें तिङ् प्रत्यय जोड़े जाते हैं) अकारान्त हो (thematic) तथा (२) जिनमें 'अङ्ग' अकारान्त न हो (nonthematic)।

वैदिक-भाषा में 'वर्तमान' 'सम्पन्न' तथा 'सामान्य' काल के पाँचों भावों (Moods) में रूप मिलते हैं। परस्मैपद एवं आत्मनेपद के तिङ्-प्रत्यय भिन्न-भिन्न हैं और इनके भी पुनः दो रूप हैं—(१) अविकृत (Primary) एवं (२) विकृत (Secondary)। सम्पन्न-काल एवं 'अनुज्ञा' भाव के रूप भिन्न-भिन्न तिङ् प्रत्ययों के योग से निष्पन्न होते हैं।

धातुओं के इन विविध रूपों के अतिरिक्त वैदिक भाषा में अनेक प्रकार के क्रियाजात विशेषण एवं असमापिका पद (infinitives) विद्यमान थे। इससे विदित होता है कि वैदिक-भाषा में धातु-रूप अत्यंत समृद्ध-अवस्था में थे और इनकी विधि बहुत जटिल थी।

ऋक्संहिता के सभी सूक्तों की रचना एक ही समय में नहीं हुई थी। अतः कालगत भेद के साथ-साथ उनमें भाषागत भिन्नताएँ भी परिलक्षित होती हैं। दशम मण्डल की भाषा अन्य मण्डलों की भाषा से कुछ बातों में भिन्न है। यहाँ 'र्' के स्थान में 'ल्' का प्रयोग अधिक दिखाई देता है; प्राचीन-भाषा के 'भ्रुच', 'रभ्', 'रोमन्' आदि यहाँ 'म्लुच्' 'लभ्' 'लोमन्' हो गए हैं। प्राचीन वैदिक-भाषा में 'ग्रभ्' धातु के 'भ्' के स्थान मे 'ह्' केवल 'ऋ' के पश्चात् ही दिखाई देता है, यथा 'हस्तगृह्य', परन्तु दशम-मण्डल में सर्वत्र ही 'ह' मिलता है, यथा—गृहाण' (प्रा० वै० गृभाय), जग्राह। इसीप्रकार 'अनुज्ञा' (imperative) मध्यम पुरुष एकवचन के तिङ्-प्रत्यय 'धि' के स्थान पर दशम मण्डल में 'हि' का प्रयोग हुआ है। प्राचीन-वैदिक-भाषा में 'कृ' धातु के रूप 'नु' विकरण के योग से निष्पन्न हुए हैं, यथा—कृणुमः, परन्तु दशम-मण्डल में इससें 'उ' विकरण लगाकर 'कुर्मः' आदि रूप बनाए गए हैं। प्राचीन-वैदिक के 'देवासः देवेभिः, आदि अतिरिक्त रूप दशम मण्डल में अत्यल्प प्रयुक्त हुए हैं। इन भिन्नताओं के अतिरिक्त प्राचीन-वैदिक में प्रयुक्त अनेक शब्द उसके अर्वाचीन अंशों में लुप्त हो गए हैं। इस प्रकार स्वयं ऋक्संहिता में ही भाषा के विकास के दर्शन होने लगते हैं।

ऋक्संहिता के सूक्तों की रचना पंजाब प्रदेश में हुई थी; परन्तु आर्यों के दल निरन्तर पूर्व की ओर बढते जा रहे थे और स्थानीय अनार्य जातियों को अभिभूत कर उनमें अपनी संस्कृति एवं भाषा को प्रतिष्ठित कर रहे थे। यजुःसंहिता एवं प्राचीन ब्राह्मण-ग्रंथों के प्रणयन-काल में मध्य-देश (गंगा-यमुना का अन्तर्वर्ती प्रदेश) आर्य-संस्कृति का केन्द्र बन चुका था। स्थानीय अनार्य-जातियों के सम्पर्क एवं स्थान-भेद के कारण भाषा-गत भिन्नताएँ बढती जा रही थीं। ऋग्वेद-संहिता के प्राचीन एवं अपेक्षाकृत नवीन अंशों में जो भाषागत-भेद ऊपर बतलाया गया है वह निरन्तर बढ़ता गया। इस प्रकार यजुः संहिता के गद्य-भाग एवं प्राचीन ब्राह्मण-ग्रंथों मे 'ल्' और 'मूर्धन्य व्यञ्जनों' का प्रयोग पहले से बहुत बढ गया है; शब्द एवं धातु-रूपों की अनेकरूपता में ह्रास हो गया है, और अनेक प्राचीन शब्द लुप्त हो गए हैं। वैदिक-वाङ्मय के अन्तिम विभाग 'उपनिषदों' में तो प्राचीन-भाषा का रूप इतना सरल हो चुका है कि वह 'संस्कृत' के सर्वथा समीप आ गई है।

प्राचीन-भारतीय-आर्य-भाषा का वह रूप जिसका पाणिनि की 'अष्टाध्यायी' में विवेचन किया गया है, 'संस्कृत' कहलाता है। ईसा पूर्व छठी शताब्दी अथवा इससे कुछ पहले पाणिनि ने अपने समय की शिष्ट-समाज के व्यवहार की भाषा को आदर्श-रूप में ग्रहण कर उसके आधार पर प्रसिद्ध-व्याकरण-ग्रंथ 'अष्टाध्यायी' की रचना की। ब्राह्मण-

ग्रंथों में अनेक स्थानों पर इस बात का उल्लेख हुआ है कि उस समय 'उदीच्य-भाषा' (पश्चिमी पंजाब-प्रदेश की भाषा) आदर्श-भाषा मानी जाती थी। इसमें आर्य-भाषा का प्राचीनतम रूप बहुत कुछ सुरक्षित था। मध्य-देश एवं पूर्व अंचल की भाषा में प्राचीन-आर्य-भाषा का स्वरूप कुछ परिवर्तित होने लगा था। पाणिनि तक्षशिला के समीप शालातुर के निवासी थे। औदीच्य होने के कारण शिष्ट-समाज में आदृत उदीच्य-भाषा से वह पूर्ण परिचित थे। इन बातों से स्पष्ट है कि पाणिनि के व्याकरण की आदर्श-भाषा उदीच्य-प्रदेश की लोक-भाषा थी, जो तत्कालीन शिष्ट-समाज के भी व्यवहार की भाषा थी। अष्टाध्यायी द्वारा 'संस्कृत' का स्वरूप सदैव के लिए स्थिर हो गया। अब यह सांस्कृतिक भाषा रह गई। जैसे-जैसे जन-भाषाओं में भिन्नताएँ बढ़ती गईं, संस्कृत का भी अन्तर्प्रान्तीय महत्त्व बढ़ने लगा और कालान्तर में यह भारत की अन्तर्प्रान्तीय एवं एशिया की अन्तर्राष्ट्रीय भाषा बन गई।

वैदिक-भाषा एवं संस्कृत में जो भिन्नताएँ हैं वह उस विकास की प्रक्रिया का फल है जो हम ऋग्वेद-संहिता के प्राचीन एवं अर्वाचीन अंशों में देख चुके हैं। वैदिक-भाषा के अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्वराघात संस्कृत में लुप्त हो गए। शब्द-रूपों में 'देवासः, देवेभिः, अश्विना' आदि रूप संस्कृत में न आ सके। जहाँ वैदिक-भाषा में किसी शब्द के एकाधिक रूप प्रचलित थे, वहाँ संस्कृत में प्रायः एक ही रूप ग्रहण किया गया। वैदिक एवं संस्कृत में सर्वाधिक भिन्नता धातु-रूपों में दिखाई देती है। संस्कृत में 'अभिप्राय' एवं 'निर्बन्ध' भावों के रूप लुप्त हो गए। अभिप्राय-भाव के उत्तम-पुरुष के रूप 'अनुज्ञा' (लोट्) भाव में मिला लिये गए और 'निर्बन्ध' भाव के रूपों का प्रयोग केवल निषेधार्थक 'मा' अव्यय के साथ ही रह गया। संस्कृत में केवल वर्तमान-काल में ही धातु के विभिन्न भावों में रूप उपलब्ध होते हैं। वैदिक-भाषा के अनेक प्रकार के क्रियाजात-विशेषणों एवं असमापिका पदों को संस्कृत ने कुछ ही अंश में ग्रहण किया। अनेक नवीन धातुएँ संस्कृत में चल पड़ीं। वैदिक-भाषा में 'प्र, परा' इत्यादि उपसर्ग धातु से दूर भी रह सकते थे, परन्तु संस्कृत में उनकी यह स्वतंत्र अवस्थिति समाप्त हो गई। इसप्रकार संस्कृत में वैदिक-भाषा के शब्द एवं धातु-रूप लुप्त हो गए।

व्याकरण के नियमों में जकड़ जाने से 'संस्कृत' का विकास रुक गया, परन्तु लोक-भाषा का विकास निरन्तर होता जा रहा था। इसमें कालगत एवं स्थानगत भिन्नताएँ बढ़ती जा रही थीं और ईसा पूर्व छठी शताब्दी के आसपास भारतीय-आर्य-भाषा विकास के मध्य-काल में पहुँच गई।

मध्य-भारतीय-आर्य-भाषा

तथागत भगवान बुद्ध के जन्म (५०० ई० पू०) तक भारतीय-आर्य-भाषा विकास के मध्य-काल में प्रवेश कर चुकी थी। ईसा पूर्व १०००-६०० वर्ष तक का काल उत्तरापथ में आर्यों के प्रसार एवं जनपदों के निर्माण का काल था। इस समय तक उत्तर-पश्चिम में गांधार से लेकर पूर्व में विदेह (उत्तर-बिहार) एवं मगध (दक्षिण-बिहार) पर्यन्त आर्य-राज्य स्थापित हो चुके थे और स्थानीय अनार्य-जातियों में आर्य-भाषा प्रतिष्ठित हो चुकी थी। अनार्य-जातियों के मुख में आर्य-भाषा का प्राचीन रूप अविकृत न रह सका। यह

स्वाभाविक ही था। आर्य-भाषा उनके लिए नई-नई भाषा थी। अतः इसको ग्रहण करने में उनको अनेक कठिनाइयाँ हुईं। ताण्ड्य-ब्राह्मण के निम्न लिखित शब्दों में इसका संकेत मिलता है—'अदुरुक्तवाक्यं दुरुक्तमाहुः।' (१७,४)—'सरलता पूर्वक बोले जा सकनेवाले वाक्य को वह उच्चारण करने में कठिन बताते हैं।' आर्य लोग जिस भाषा को सरलता से बोलते थे, उसकी कुछ ध्वनियों (ऋ, संध्यक्षर ऐ, औ तथा संयुक्त व्यंजन) के उच्चारण में अनार्यों को कठिनाई होती थी। अतः उनके बीच आर्य भाषा का रूप बहुत कुछ परिवर्तित हो गया। प्राचीन-आर्य-भाषा की 'ऋ', 'ऌ' ध्वनियाँ लुप्त हो गईं; ऐ, औ के स्थान में 'ए', 'ओ' का का प्रयोग होने लगा तथा 'अय्', 'अव्' का स्थान भी 'ए', 'ओ' ने ग्रहण किया। पदान्त-व्यंजनों का लोप हो गया और पदान्त 'म्' ने अनुस्वार का रूप धारण कर लिया। श्, ष्, स्—इन तीन उष्म ध्वनियों के स्थान में, उदीच्य-भाषा के अतिरिक्त अन्य जनपदीय-भाषाओं में केवल एक ऊष्म-व्यंजन (मगध की भाषा में श् एवं अन्यत्र 'स्') व्यवहृत हुआ। परन्तु प्राचीन आर्य-भाषा की ध्वनियों में सबसे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन यह हुआ कि संयुक्त-व्यंजन ध्वनियाँ समीकृत होने लगीं और इसके फल-स्वरूप 'क्त्', 'ल्क्', 'प्त्' 'क्र्' के स्थान में क्रमशः 'त्त्', 'क्क', 'त्त्' तथा 'क्क' का व्यवहार होने लगा और ऊष्म-ध्वनियों एवं अर्ध-स्वरों में परिवर्तन हो गया, यथा—स्प् > प्फ्, स्न् > न्न्, स्ल् > ल्ल्, त्य् > च्च्, क्व् > क्क् इत्यादि।

प्राचीन-भारतीय-आर्य-भाषा के संगीतात्मक स्वराघात का लोप होकर अधिकांश जनपदीय-भाषाओं में बलात्मक-स्वराघात (Stress accent) की प्रवृत्ति चल पड़ी। यह स्वराघात प्रायः पद के अन्तिम भाग में दीर्घ स्वर पर होता था।

ध्वनियों से भी अधिक परिवर्त्तन शब्द एवं धातु रूपों में प्रकट हुए। द्विवचन का सर्वथा लोप हो गया। पदान्त-व्यंजनों के लोप से हलन्त-प्रातिपदिक समाप्त हो गए और स्वर-ध्वनियों में परिवर्तन के परिणामस्वरूप अजन्त-प्रातिपदिकों के वर्गों की संख्या भी घट गई। सब प्रातिपदिकों के रूप अकारान्त प्रातिपदिक के समान बनाने की प्रवृत्ति बढ़ने लगी। प्राचीन-भा० आ० भाषा में प्रातिपदिक के अंतिम स्वर में भिन्नता के कारण 'अश्वस्य' (अश्व-अकारांत), मुनेः (मुनि-इकारान्त), साधोः (साधु-उकारान्त) तथा पितुः (पितृ-ऋकारान्तः) सम्बन्ध कारक एक वचन के रूपों में भिन्नता है, परन्तु अब इन सबके रूप 'अश्वस्स', 'मुनिस्स', 'साधुस्स', 'पितुस्स', अकारान्त शब्द के समान हो गए। सर्वनामों के विशेष प्रकार के रूपों का संज्ञा-शब्दों में भी विधान होने लगा, यथा—सं० 'तस्मिन् गृहे' का पालि में 'तस्मिन घरस्मिन' अथवा 'तम्हि घरम्हि' हो गया।

धातुओं के कालों एवं भावों की संख्या में ह्रास हुआ। अभिप्राय (Subjunctive) लुप्त ही हो गया और सामान्य (aorsist) एवं असम्पन्न के रूप एक 'भूतकाल' में मिला लिए गए तथा सम्पन्न (Perfect) का भी धीरे-धीरे लोप हो गया। धातुओं के 'सन्नन्त', 'यङन्त' आदि रूपों का प्रयोग घट गया। प्राचीन- आ० भा० में दश- गणों में विभक्त धातुओं को एक ही गण के अन्तर्गत लाने की प्रवृत्ति चल पड़ी। असमापिका क्रिया-पदों की संख्या बहुत कम हो गई।

ऐसे परिवर्तनों से प्राचीन भा० आ० भाषा को नवीन रूप प्राप्त हुआ। ये परिवर्तन समस्त उत्तरापथ में समान गति से सम्पन्न न हुए। उदीच्य-भाषा (उत्तर-पश्चिम-सीमांत

एवं पंजाब की भाषा) प्राचीन-आर्य-भाषा के बहुत समीप बनी रही। इसमें परिवर्तन की गति बहुत मंद थी। मध्य-देश की भाषा इन परिवर्तनों से प्रभावित अवश्य हुई; परन्तु उच्चारण की शिथिलता उसमें अधिक न आ पाई। प्राच्य-भाषा (वर्तमान अवध, उत्तर-प्रदेश के पूर्वी- भाग तथा बिहार की भाषा) में परिवर्तन की गति सर्वाधिक तीव्र थी। सबसे पहले यहीं आर्य-भाषा का रूप परिवर्तित होना प्रारम्भ हुआ। धीरे-धीरे मध्य-देशीय एवं उदीच्य-भाषा पर भी इन परिवर्तनों का प्रभाव परिलक्षित होने लगा और सर्वत्र आर्य-भाषा का मध्य-कालीन स्वरूप प्रस्फुटित हो गया।

जनपदीय-भाषाओं का स्वरूप निरन्तर परिवर्तित-विवर्तित होता रहा। ६०० ई० पू० से १००० ई० तक के १६०० वर्षों में भारतीय-आर्य-भाषा विभिन्न प्राकृतों एवं तत्पश्चात् 'अपभ्रंश' के रूप में विकसित होती हुई आधुनिक भारतीय-आर्य-भाषाओं की जननी बनी। आर्य भाषा के मध्य-कालीन स्वरूप के विकास का अध्ययन करने के लिए इस काल को निम्नलिखित पर्वों में बाँटा जाता है—

(१) प्रथम-पर्व- ६००—२०० ई० पू० तक प्रारम्भ-काल एवं २०० ई० पू०- २०० ई० तक संक्रान्ति-काल।

(२) द्वितीय-पर्व—२००-६०० ई०।

(३) तृतीय पर्व—६००-१००० ई०।

प्रथम-पर्व के प्रारम्भिक-काल (२०० ई० पू०- २०० ई०) में भाषा के विकास के अध्ययन की सामग्री पालि-साहित्य एवं अशोक के अभिलेखों में प्राप्त होती है।

पालि में बौद्ध-धर्म के थेरवाद (स्थविरवाद) अथवा हीनयान सम्प्रदाय का धार्मिक-साहित्य लिखा गया है। मगध-सम्राट् अशोक के पुत्र राजकुमार महिन्द (महेन्द्र) ने सिंहल में थेरवाद का प्रचार किया था और सिंहल-नरेश वट्टगामणि के संरक्षण में थेरवाद का 'त्रिपिटक' (बुद्ध के उपदेशों का संग्रह) लिपिबद्ध हुआ था। तब से सिंहल में पालि-साहित्य की सुरक्षा एवं अभिवृद्धि हुई। मूल-त्रिपिटक पर 'अट्ठकथा' (= अर्थ-कथा = 'व्याख्या') लिखी गई और 'विसुद्धिमग्ग' 'दीपवंस एवं 'मिलिन्दपञ्हो' जैसे बौद्ध-धर्म संबंधी ग्रंथों का प्रणयन हुआ। सिंहल से थेरवाद का प्रचार वर्मा, स्याम आदि देशों में हुआ और वहाँ भी पालि-ग्रन्थों का अध्ययन होने लगा। इन देशों में अपनी-अपनी लिपि में पालि-ग्रन्थ लिखे गए। वास्तव में 'पालि' शब्द किसी भाषा की अभिधा नहीं है। इसका अर्थ है 'मूल-पाठ' अथवा 'बुद्ध-वचन' और 'अट्ठ-कथा' से मूल-पाठ की भिन्नता प्रदर्शित करने के लिए इस शब्द का व्यवहार किया गया है, यथा—'इमानि ताव पालियं अट्ठकथायं पन' (ये तो 'पालि' हैं, परन्तु 'अट्ठकथा' में तो)। पालि-भाषा न कहकर केवल 'पालि' शब्द से ही 'थेरवाद' के धार्मिक-साहित्य की भाषा को अभिहित करने की प्रथा आधुनिक-काल में चल पड़ी है।

'पालि' शब्द से इसका कुछ भी संकेत नहीं मिलता कि यह किस प्रदेश की लोक-भाषा थी। सिंहल के बौद्धों की यह धारणा है कि पालि मगध की भाषा है और बुद्ध-वचन का मूल-रूप इसी में सुरक्षित है। इस सिंहली परम्परा के लिए पर्याप्त कारण भी हैं। सिंहल में बौद्ध-धर्म का प्रचार मगध के राजकुमार महेन्द्र के द्वारा हुआ था। अतः उनका यह सोचना स्वाभाविक ही है कि महेन्द्र जिस 'त्रिपिटक' को सिंहल में लाये, उसकी भाषा मागधी है

और तथागत-बुद्ध ने चूँकि मगध में ही धर्म-प्रचार किया था, अतः सिंहल-निवासियों को, जो भारतीय-भाषाओं से यथातथ्य-रूप से परिचित न थे, यह धारणा पुष्ट हुई कि पालि त्रिपिटक की भाषा ही बुद्ध की भाषा थी।

परन्तु पालि और मागधी भाषा में कुछ ऐसी मौलिक भिन्नताएँ हैं जिनके कारण 'पालि' को 'मागधी' भाषा नहीं माना जा सकता। प्राकृत-वैयाकरणों ने जिस मागधी-भाषा का निरूपण किया है और जो संस्कृत नाटकों में प्रयुक्त हुई है, वह पालि से बहुत बाद की भाषा है। परन्तु अशोक के धौली, जौगड, सारनाथ आदि प्राच्य-अभिलेखों एवं इनसे भी पूर्व के मौर्य-काल के अभिलेखों से जिस मागधी-भाषा का पता लगता है, उसमें और पालि में भी वही भिन्नताएँ परिलक्षित होती हैं, जो उत्तरकालीन मागधी और पालि में। मागधी में संस्कृत के तीनों उष्म-व्यञ्जनों, 'श्, ष्, स्' के स्थान पर 'श्' का प्रयोग हुआ है परन्तु पालि में दन्त्य 'स्' का। मागधी में केवल 'ल्' ध्वनि है, परन्तु पालि में 'र्', 'ल्' दोनों विद्यमान हैं। पुल्लिङ्ग एवं नपुंसकलिङ्ग अकारान्त शब्दों के कर्त्ताकारक एकवचन में मागधी में 'ए' परन्तु पालि में 'ओ' प्रत्यय लगता है, यथा मागधी—धम्मे, पालि—धम्मो। अतः स्पष्ट है कि पालि मगध की भाषा नहीं है।

इस सम्बन्ध में वस्तु-स्थिति यह है कि त्रिपिटक का संकलन प्राच्य-भाषा के अतिरिक्त संस्कृत एवं तत्कालीन अनेक लोक-भाषाओं (प्राकृतों) में भी हुआ था। आधुनिक खोजों से यह बात प्रमाणित हो रही है। एक प्रसिद्ध तिब्बती परम्परा के अनुसार 'मूल सर्वास्तिवाद' के ग्रंथ संस्कृत में, 'महासांघिक' के प्राकृत में, 'महासम्मतिय' के 'अपभ्रंश' में और 'स्थविर' सम्प्रदाय के 'पैशाची' में थे। यह सब बौद्ध-धर्म के विविध सम्प्रदाय हैं। आधुनिक खोजों एवं गवेषणाओं से यह तिब्बती-परम्परा बहुत-कुछ सत्य सिद्ध हो रही है। अतः यह स्पष्ट है कि बुद्ध-वचन का संग्रह विभिन्न जन-भाषाओं में किया गया था। स्वयं बुद्ध भी यह चाहते थे कि लोग अपनी-अपनी भाषा में उनके उपदेश ग्रहण करें। इस प्रसंग में बुद्ध का आदेश 'अनुजानामि भिक्खवे सकाय निरुत्तिया बुद्धवचनं परियापुणितु' (भिक्षुओ, अपनी-अपनी भाषा में बुद्ध-वचन सीखने की अनुज्ञा देता हूँ), उल्लेखनीय है। यहाँ विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि विभिन्न बौद्ध-सम्प्रदायों के विभिन्न-भाषाओं में ग्रथित त्रिपिटक स्वयं को ही बुद्ध-वचन का मूल-रूप बतलाते हैं। ऐसी स्थिति में पालि-त्रिपिटक ही मूल-त्रिपिटक है, यह कहना कठिन है। अशोक ने भाब्रू-अभिलेख में जो बुद्ध-वचन उद्धृत किए हैं वह पालि में न होकर प्राच्य-भाषा में हैं। भाब्रू-अभिलेख में यह वचन उद्धृत हुए हैं—'उपतिसपसिने लाघुलोवादे मुसावादं अधिगिच्य विनय समुकसे।' इसका पालि-प्रतिरूप यह होगा—'उपतिसपञ्हो राहुलोवादो मुसावादं अधिकिच्च विनय समुकसो।' इससे यह स्पष्ट है कि अशोक के समय में त्रिपिटक प्राच्य-भाषा में भी था और इसीका अशोक ने अध्ययन भी किया था।

मागधी से मूलतः भिन्न होते हुए भी पालि मे मागधी के अनेक रूप विद्यमान हैं, यथा, भिक्खवे, सुवे, पुरिसकारे इत्यादि। संस्कृत-त्रिपिटक में भी मागधी के कुछ रूप मिलते हैं। इनका विवेचन कर सिल्वाँ लेवी एवं लूडर्स इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि त्रिपिटक का संग्रह पहले मागधी भाषा में हुआ और तब अन्य लोक-भाषाओं में। संग्रह-कर्त्ताओं की असावधानी अथवा [illegible]

में भी रह गए। बुद्ध के निर्वाण के पश्चात् उनके वचनों के संकलन के लिए बौद्ध-सभा हुई थी। इसमें भाग लेनेवाले भिक्षुओं में 'महाकस्सप' प्रमुख थे। यह मध्य-देश के निवासी थे। बहुत संभव है, इन्होंने मध्यदेशीय-भाषा (प्राचीन-शौरसेनी, जो मथुरा से उज्जैन तक के प्रदेश में बोली जाती थी) में भी बुद्ध-वचनों का संकलन किया हो। मध्य-देश उस समय ब्राह्मण एवं जैन-धर्मों का केन्द्र था। अतः मध्य-देश की भाषा में त्रिपिटक का होना अनिवार्य समझा गया हो। राजकुमार महेन्द्र ने त्रिपिटक का अध्ययन इस मध्य-देश की भाषा में किया होगा, क्योंकि उनका जन्म एवं लालन-पालन उज्जैन में हुआ था। यही त्रिपिटक वह सिंहल ले गए, जिसको सिंहल-वासियों ने भूल से मागधी-भाषा का त्रिपटक समझ लिया। अतः ऐतिहासिक प्रमाणों से पालि-भाषा मध्य देश की भाषा सिद्ध होती है। शौरसेनी प्राकृत एवं खारवेल के उदयगिरि-शिलालेख तथा अशोक के गिरनार-शिलालेख की भाषा से पालि की समानता निर्विवाद सिद्ध करती है कि पालि मूलतः मध्य-देश की भाषा थी। साहित्यिक रूप ग्रहण कर लेने पर इसमें अन्य भाषाओं के रूप भी स्थान पाने लगे। इसीलिए पालि में एक-एक शब्द के दो-दो रूप भी मिलते हैं। संस्कृत का इसपर पर्याप्त प्रभाव अभिलक्षित होता है और प्राच्य-भाषा एवं पैशाची के भी कुछ रूप इसमें मिल जाते हैं।

मध्य-भारतीय-आर्य-भाषा के प्रारम्भ-काल की सभी प्रवृत्तियाँ पालि में पूर्णतया विद्यमान है। प्रा० भा० आ० भाषा की 'ऋ' 'लृ' ध्वनियाँ यहाँ लुप्त हो गई हैं। 'ऐ' 'औ' स्वर 'ए' 'ओ' में परिणत हो गए हैं, यथा—चैत्यगिरि > चेतियगिरि, औषध > ओषध। 'ए' 'ओ' का भी पालि में ह्रस्व एवं दीर्घ उच्चारण विकसित हुआ। पालि में संयुक्त-व्यञ्जन से पूर्व ह्रस्व-स्वर ही आ सकता था। अतः संयुक्त-व्यञ्जन से पूर्व 'ए' 'ओ' का उच्चारण भी ह्रस्व हो गया, यथा—मैत्री > मे॑त्ती, ओष्ठ > ओ॑ट्ठ। वैदिक भाषा के समान स्वरमध्यग 'ड्' 'ढ्' यहाँ भी 'ळ' 'ळ्ह' में परिणत हुए।

प्रा० भा० आ० भाषा में स्वरों के मात्रा-काल का निर्धारण शब्द की प्रकृति एवं प्रत्यय के अनुसार होता था। परन्तु म० भा० आ० भाषा में प्रकृति-प्रत्यय का ज्ञान लुप्त होने लगा। अतः उच्चारण की सुकरता के अनुसार स्वरों का मात्रा-काल निर्धारित होने लगा। ध्वनि-लोप एवं समीकरण इत्यादि द्वारा शब्दों का रूप इतना बदल गया था कि साधारण बोलनेवाले के लिए प्रकृति-प्रत्यय का ठीक-ठीक ज्ञान कठिन हो गया। अतः प्रा० भा० आ० भाषा के स्वरों में विपर्यय होने लगा। उच्चारण की सुविधा के अनुसार ह्रस्व के स्थान पर दीर्घ एवं दीर्घ के स्थान पर ह्रस्व-स्वर का प्रयोग होने लगा। इसप्रकार अनुदक > अनूदक, पच्चनीका 7 पच्चनिका जैसे रूप बन गए। यह प्रवृत्ति भा० आ० भाषा के अगले विकास-क्रमों में निरन्तर बढ़ती गई। बलात्मक स्वराघात के कारण भी स्वर-लोप हुआ। यथा—अलंकार शब्द में 'लं' पर स्वराघात होने के कारण 'अ' का उच्चारण अस्पष्ट होकर लुप्त हो गया और इस शब्द का रूप 'लंकार' हो गया।

पालि में स्वरों का मात्रा-काल किन्हीं निश्चित नियमों का अनुसरण करता है। दीर्घ-स्वर केवल असंयुक्त व्यञ्जनों के ही पूर्व आ सकता था। अतः प्रा० भा० आ० भाषा के जिस शब्द में संयुक्त-व्यञ्जन से पूर्व दीर्घ स्वर था, उसके पालि-प्रतिरूप में दीर्घ-स्वर ह्रस्व हो गया, यथा—मार्ग > मग्ग, जीर्ण > जिण्ण, चूर्ण > चुण्ण; कहीं कहीं पूर्व

व्यञ्जन का लोप कर ह्रस्व-स्वर दीर्घ कर दिया गया अथवा पहले से वर्तमान दीर्घ रहने दिया गया, यथा—सर्षप>सासप, वल्क>वाक, दीर्घ>दीघ, लाक्षा 7 लाखा। कहीं-कहीं इसका विपर्यय भी हुआ, अर्थात् दीर्घ-स्वर + असंयुक्त-व्यञ्जन 7 ह्रस्व-स्वर + संयुक्त-व्यञ्जन, यथा—नीड 7 निड्ड, उदूखल 7 उदुक्खल, कूबर 7 कुब्बर; कहीं-कहीं संयुक्त-व्यञ्जन में से एक का लोप कर पूर्व के ह्रस्व-स्वर को सानुनासिक कर दिया गया, यथा—मत्कुण 7 मंकुण, शर्वरी 7 संवरी, शुल्क 7 सुंक।

जहाँ संस्कृत-शब्द में क्रमशः 'अ-अ-अ' स्वर-क्रम है, वहाँ पालि-प्रतिरूप में इनका क्रम बहुधा 'अ-इ-अ' हो गया—यथा—चन्द्रमा 7 चन्दिमा; चरम 7 चरिम, परम 7 परिम।

इन परिवर्तनों के अतिरिक्त वर्ण-विपर्यय, समीकरण, विप्रकर्ष अथवा स्वरभक्ति द्वारा एवं शब्द में अवस्थित विभिन्न स्वर-ध्वनियों के पारस्परिक प्रभाव अथवा समीपस्थ व्यंजनों के प्रभाव से भी पालि की स्वर-ध्वनियों के प्रकार एवं मात्रा में परिवर्तन हुए।

पालि में असंयुक्त-व्यंजन-ध्वनियाँ प्रायः अविकृत रहीं। 'प्रायः' इसलिए कहा जा रहा है, क्योंकि जैसा पीछे लिखा जा चुका है, साहित्यिक-भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो जाने पर, पालि में बाद में अन्य जन-भाषाओं के रूप भी स्थान पाने लगे। अतः सागल< शाकल, सुजा<सुचा, पटिगच<प्रतिकृत्य, उदाहो>उताहो, पसद<पृष्ट, रूद< रूत, प्रवेधते<प्रव्यथथे, कवि<कपि, पल<फल, इत्यादि रूप भी पालि में मिलते हैं और एक ही शब्द के अनेक रूप प्रयोग में आए हैं, यथा पञ्च' शब्द के ही 'पन्नरस', (पञ्चदस भी), पण्णुवीस (पञ्चवीस भी), 'पञ्चास' अथवा 'पण्णास' (सं० पञ्चाशत्) रूपों में अनेक प्रतिरूप विविध-जन-भाषाओं के प्रभाव के कारण पालि में विद्यमान हैं।

वर्ण-विपर्यय के कारण पालि मे 'ह्ण' 'ह्न' 'ह्म' 'ह्व' के स्थान में क्रमशः 'ण्ह' 'न्ह' 'म्ह' 'व्ह' हो गया है, यथा पूर्वाह्ण>पुब्बण्ह, चिह्न>चिन्ह, जिह्म>जिम्ह, वाह्य>वय्हा, इत्यादि।

संयुक्त-व्यंजनों में समीकरण (Assimilation) की प्रवृत्ति पालि में पूर्णतया परिलक्षित होती है। साधारणतया समीकरण की प्रक्रिया का क्रम यह है—(१) स्पर्श-व्यंजन + ऊष्म, नासिक्य अथवा अंतस्थ व्यंजन>स्पर्श + स्पर्श, यथा-निष्क>निक्ख,आश्चर्य >अच्छेर; लग्न>लग्ग, स्वप्न>सोप्प; कर्क>कक्क, किल्विषि>किब्बिस; (२) ऊष्म + नासिक्य अथवा अन्तस्थ 7 ऊष्म + ऊष्म, यथा—मिश्र>मिस्स अवश्यम्> अवस्सं, वयस्व>वयस्य इत्यादि और (३) नासिक्य + अन्तस्थ 7 नासिक्य + नासिक्य, यथा- किन्व>किण्ण, रम्य>रम्म, इत्यादि।

पालि में शब्द- एवं धातु रूपों में सरलीकरण की प्रवृत्ति तो है ही, परन्तु साथ ही पालि में अनेक शब्दों के वे वैदिक रूप भी मिलते हैं जिनको संस्कृत में स्थान न मिल सका। पालि के देवासे (वै० देवासः), देवेहि (वै० देवेभिः), गोनं अथवा गुन्नं (वै० गोनाम्) एवं पतिना (वै० पतिना) इत्यादि रूप वैदिक-भाषा का स्मरण कराते हैं।

हलन्त प्रतिपदिक, पालि में लुप्त हो गए, परन्तु हलन्त प्रक्रिया के स्मारक कुछ रूप विद्यमान रहे, यथा- वाचा ('वाक्' का तृ० ए० व०), राजानं ('राजन्' का द्वि० ए० व०), तचो (तच् < त्वच् , प्र० व० व०), पमुदि ('पमुद्' सप्त० ए० व०) । सरलीकरण की अन्य सभी प्रवृत्तियों, यथा, द्विवचन का लोप, मिथ्या-सादृश्य के कारण इकारांत उकरांत शब्दों के अकारांत शब्दों के समान रूप एवं कुछ कारकों में सर्वनाम शब्दों के समान रूप, कारकों की संख्या में ह्रास आदि प्रवृत्तियाँ पालि ने ग्रहण कीं ।

धातु-रूपों में भी पालि ने सरलीकरण की प्रवृत्ति को अपनाते हुए भी प्राचीन विविधता को अन्य समकालीन जन भाषाओं की अपेक्षा अधिक सुरक्षित रखा । आत्मनेपद के 'अम्हसे' (∠ अस्), अभिकीररे इत्यादि कुछ रूप इसमें मिल जाते हैं । अभिप्राय भाव (Subjunctive) भी यहाँ विद्यमान है, परन्तु सम्पन्न-काल लुप्त हो गया है । इस प्रकार पालि में मध्यदेशीय-भाषा की प्राचीनता को सुरक्षित रखते हुए नवीन रूपों को ग्रहण करने की प्रवृत्ति पूर्णतया अभिलक्षित होती है ।

अशोक के अभिलेखों की भाषा

मौर्य-सम्राट् अशोक (२५० ई० पू०) ने हिमालय से मैसूर एवं बंगाल की खाड़ी से अरब सागर पर्यन्त विस्तृत अपने विशाल-साम्राज्य के विभिन्न भागों में, अपने धर्म एवं शासन-सम्बन्धी अनुशासनों को जनसाधारण के बोध के लिए स्थानीय जन-भाषाओं में चट्टानों, स्तम्भों, गुफाओं की भित्तियों इत्यादि पर उत्कीर्ण करवाया था । इन अभिलेखों में उत्तर-पश्चिम, दक्षिण-पश्चिम एवं प्राच्य-प्रदेश की जन-भाषाओं का तत्कालीन स्वरूप सुरक्षित है । मध्य-देशीय - भाषा का शुद्ध-स्वरूप इनमें नहीं मिलता क्योंकि उस पर प्राच्य-भाषा की गहरी छाप लगी है ।

उत्तर-पश्चिम-प्रदेश में अवस्थित (शाहबाज गढ़ी एवं मानसेरा) शिलालेखों की भाषा में निम्नलिखित प्रमुख विशेषताएँ हैं । 'र्' एवं 'स्' युक्त व्यञ्जन यहाँ सुरक्षित हैं, यथा—प्रिय, स्त्रियक, अस्ति इत्यादि । य् युक्त व्यञ्जन का समीकरण हो गया है, यथा—कर्तव्यः > कटवो = कट्टव्वो, कल्याणं > कलणं = कल्लाणं । स्म, स्व > स्प यथा—विनीतस्मिन् > विनितस्पि,स्वर्गम् > स्पग्रम् ,स्वामिकेन > स्पामिकेन । 'श्' 'ष्' 'स्' यह तीनों ऊष्म-व्यञ्जन यहाँ सुरक्षित हैं, यथा—प्रियद्रशिस' दोषं । 'त्वा' प्रत्यय का प्रतिरूप यहाँ 'त्वि' मिलता है, यथा—द्रशेति ∠ *दर्शयित्वि ∠ दर्शयित्वा; तिस्तिति ∠ *तिष्ठित्वि, ∠ स्थित्वा ।

उत्तर-पश्चिम प्रदेश के ये दोनों शिलालेख खरोष्टीलिपि में उत्कीर्ण हैं । इनमें दीर्घ स्वरों के स्थान पर भी ह्रस्व-स्वर लिखे गए हैं । अतः स्वरों की मात्रा की यथार्थ स्थिति का ठीक-ठीक पता इनसे नहीं लगता ।

दक्षिण-पश्चिम की भाषा गिरनार (गुजरात) आदि शिलालेखों में मिलती है । यह भी प्राचीन भा० आ० भाषा के बहुत समीप है । इसकी प्रमुख विशेषताएँ यह हैं । 'श्' एवं 'ष्' के स्थान में यहाँ 'स्' का व्यवहार हुआ है, यथा—प्रियदसिना ∠ प्रियदर्शिना, दोसम् ∠ दोषम् । स-युक्त व्यञ्जन सुरक्षित है और 'र्'-युक्त व्यंजनों का

समीकरण भी कहीं-कहीं ही हुआ है, यथा—स्तुतः, सहस्रानि, स्वामिकेन, प्रियेन। संयुक्त-व्यंजन में अवस्थित 'य्' का स्पर्श-व्यंजन में तिरोभाव हो गया है, यथा—सकं ∠ शक्यम्, कलाण ∠ कल्याण, परन्तु 'व्य्' का समीकरण नहीं हुआ, यथा—कतव्यो ∠ कर्तव्यः। त्व्-त्म् 7 त्प्, यथा—चत्पारो ∠ चत्वारः, आलोचेत्पा ∠ आलोचयित्वा, आत्पा ∠ आत्मा। द्व 7 दुव्, यथा—द्वादश 7 दुवादस। दृ 7 रि यथा—एतादृश 7 एतारिस, यादृश > यारिस। अनेक शब्दों में 'अय', 'अव' अविकृत हैं यथा—पूजयति, भवति। अधिकरण-कारक एकवचन का विभक्ति प्रत्यय स्मिन् 7 म्हि, यथा—विजितम्हि ∠ विजितस्मिन्। यहाँ आत्मनेपद के भी कोई-कोई रूप मिलते हैं, यथा—मन्ते, आरभरे, अनुवर्तरे आदि।

प्राच्य-भाषा पूर्व अंचल के अभिलेखों में मिलती है। यह तत्कालीन राज-भाषा भी थी। अतः अन्य जनपदीय भाषाओं पर भी इसका पर्याप्त-प्रभाव पड़ा है। प्राच्य-भाषा में 'र्' ध्वनि का सर्वथा लोप हो गया है और इसका स्थान 'ल्' ने ले लिया है, यथा—राजा 7 लाजा, पूर्वम् ∠ पलुवं, मयूराः > मजुला। संयुक्त-व्यंजन में अवस्थित 'र्' एवं 'स्' का तिरोभाव हो गया है, यथा—पियदसिना ∠ प्रियदर्शिना, पानानि ∠ प्राणाः - पालतिकाये ∠ पारत्रिकाय, अथि ∠ अस्ति, मितसंथुतेना ∠ मित्रसंस्तुतेन। व्यंजन + य् अथवा व् के मध्य इ अथवा उ का सन्निवेश हुआ है, यथा—कर्तव्य 7 कटविय, द्वादश > दुवादस। 'अहम्' (मैं) का प्रतिरूप यहाँ 'हकम्' है। कर्ताकारक एकवचन का प्रत्ययः अः 7 ए, यथा—जनः 7 जने, और अधिकरण-कारक एकवचन की प्रत्यय 'स्मिन्' 7 स्सि यथा—तस्मिन् 7 तस्सिं। प्रत्यय-त्वा 7 -तु, यथा—आरभित्वा 7 आलभितु, दर्शयित्वा 7 दसयितु, श्रुत्वा 7 सुतु।

अशोक के प्राच्य-अभिलेखों में ऊष्म-व्यंजन 'श्' का प्रयोग नहीं हुआ है। हम अन्यत्र लिख चुके हैं कि मगध की जन-भाषा में 'श्, ष्, स्' तीनों के स्थान पर 'श्' का व्यवहार होता था, परन्तु यह प्रवृत्ति जन-साधारण तक ही सीमित प्रतीत होती है। पाटलिपुत्र को राजसभा की शिष्टभाषा ने 'श्' का प्रयोग न अपनाकर 'स्' ही रहने दिया। इसलिए अशोक के प्राच्य-अभिलेखों में 'श्' नहीं दिखाई देता। लेकिन मिर्जापुर के रामगढ़ पर्वत के जोगीमारा गुफा में एक छोटा सा अभिलेख मिला है। इसमें प्राच्य-भाषा की अन्य विशेषताओं के साथ-साथ 'श्, ष्, स्' ऊष्म-व्यंजनों के स्थान पर 'श्' का प्रयोग हुआ है। इस अभिलेख की पंक्तियाँ यह हैं—

* 'शुतनुक नम देवदशिक। तं कमयिथ बलनशेये देवदिने नम लुपदखे।' संस्कृत में इसका रूपान्तर होगा 'सुतनुका नाम देवदासिका तां अकामयिष्ट वाराणसेयः देवदत्तः नाम रूपदक्षः।'

इस अभिलेख के प्रथम शब्द 'शुतनुका' पर इसका नाम 'सुतनुका-अभिलेख' पड़ गया है। लघु होने पर भी भाषा के इतिहास की दृष्टि से इसका कम महत्त्व नहीं है।

ईसा पूर्व काल के दो अन्य प्राकृत अभिलेख प्रस्तुत प्रसंग में उल्लेखनीय हैं—(१) कलिङ्गराज खारवेल का हाथीगुम्फा-अभिलेख और (२) यवन-राजदूत भागवत

* हिन्दी अनुवाद—वाराणसी के देवदत्त नामक ने 'सुतनुका नामक देवदासी की कामना की।'

हिलिओदोरस (Heliodoros) का वेसनगर अभिलेख। हाथीगुम्फा अभिलेख के संशोधित-पाठ की कुछ पंक्तियाँ यह हैं—'नमो अरहन्तानं, नमो सव्वसिद्धानं। *अइरेन महाराजेन महामेघवाहनेन चेतिराजवंसवद्धनेन पसथसुभलक्खणेन चतुरन्तलुंठनगुणउपेतेन कलिंगाधिपतिना सिरिखारवेलेन पन्दरस वस्सानि, सिरि कळारसरीर-वता कीळिता कुमार कीलिका। ततो लेखरूपगणनाव वहारविधिविसारदेन सव्वविज्जावदातेन नव वस्सानि योवरज्यं पसासितं। सप्पुण्णचतुवीसतिवस्सो तदानि वद्धमानसेसयोवनाभिविजयो ततिये कलिंग-राजवंसेपुरिसयुगे महाराजाभिसेचनं पापुनाति।

इसका संस्कृत-प्रतिरूप होगा, 'नमः अर्हतां, नमः सर्वसिद्धानाम्। ऐलेन महाराजेन महामेघवाहनेन चेदिराजवंसवर्द्धनेन प्रशस्तशुभलक्षणेन चतुरन्त-लुण्ठनगुणोपेतेन कलिंगाधिपतिना श्रीखारवेलेन पञ्चदश वर्षाणि श्रीकडार-शरीरवता क्रीडिताः कुमारक्रीडिकाः। ततः लेखरूप गणनाविधि विशारदेन सर्वविद्यावदातेन नववर्षाणि यौवराज्यं प्रशासितम्। सम्पूर्णचतुर्विंशतिवर्षः तदानी वर्द्धमानशेषयौवनाभिविजयः तृतीये कलिंग राजवंशे पुरुषयुगे महाराजाभिषेचनं प्राप्नाति (प्राप्नोति)।

पालि के साथ इस अभिलेख की भाषा का साम्य सुस्पष्ट है। साथ ही संस्कृत की गंभीर-शैली का प्रभाव भी अनुलक्षणीय है। वेसनगर-अभिलेख में भी संस्कृत का प्रभाव स्पष्ट है। यवनराज अन्तिअलिखित (Antıalkıdas) के राजदूत हिलिओदोरस ने भगवान वासुदेव के नाम पर वेसनगर में एक गरुडध्वज का निर्माण कराया था। इस पर ये पंक्तियाँ उत्कीर्ण हैं—

'देवदेवस वासुदेवस गरुडध्वजे अयं कारिते इअ हिलिउदोरेण भागवतेन दियस पुत्रेण तखसिलाकेन योनदूतेन आगतेन महाराजस अंतलिकिसत उपन्ता सकासं रञो कासीपुतस भागभद्रस त्रातारस वसेन चतुदसेन राजेन वधमानस।'

इसका संस्कृत प्रतिरूप होगा—'देवदेवस्य वासुदेवस्य गरुडध्वजः अयं कारितः इह हेलिउदोरेण भागवतेन दियस्य पुत्रेण तक्षशिलाकेन यवनदूतेन आगतेन महाराजस्य अन्तलिखितस्य उपान्तात्सकाशं राज्ञः काशीपुत्रस्य भागभद्रस्य त्रातारस्य (=त्रातुः) वर्षेण चतुर्दशेन राज्येन वर्धमानस्य।'†

---

*हिन्दी अनुवाद—अर्हतो को नमस्कार। सभी सिद्धो को नमस्कार। कलिङ्गाधिपति श्री खारवेल वीर महीपति महामेघवाहन, चेदि राजवश शिरोमणि ने, जो प्रशसित और शुभलक्षणो से युक्त था तथा चारो दिशाओ को लूटपाट करने के गुणो से समलकृत था, श्री कटार के जैसे शरीर से पन्द्रह वर्ष तक राजक्रीडा की।_ इसके उपरान्त उन लेखरूप (सिक्के ?) गणना और व्यवहार विधि में कुशल और सब विद्याओ में पारङ्गत कुमार ने नौ वर्ष तक युवराज के रूप में शासन किया। तब बढते हुए शैशव के अनन्तर चौबीस वर्ष की यौवनावस्था में कलिङ्ग राजवश की तीसरी पीढ़ी मे महाराज के पद पर अभिषिक्त हुआ।

†महाराज अन्तिलिखित के समाप से, चौदह वर्ष के राज्य से वर्धमान, शरणागत पालक, काशीपुत्र राजा भागभद्र के पास आये हुए, दियेक पुत्र तक्षशिला-निवासी, यवनदूत भागवत, हिलिओदोरस ने देवाधिदेव वासुदेव के इस गरुड़ध्वज का यहाँ (वेसनगर) में 'निर्माण' कराया।

इन दोनों अभिलेखों से विदित होता है कि धीरे-धीरे संस्कृत का प्रभाव पुनः बढ़ने लगा था। बुद्ध एवं अशोक के प्रयत्नों से लोक-भाषाओं का सार्वजनिक एवं राजकीय कार्यों में व्यवहार होने लगा था। परन्तु काल-क्रम के साथ लोक-भाषाओं की पारस्परिक भिन्नताएँ इतनी बढ़ गईं कि एक जनपद-निवासी के लिए अन्य जनपद की भाषा को समझ सकना सरल न रह गया। अतः शिष्ट-समाज की भाषा संस्कृत ही राज-व्यवहार एवं विभिन्न जनपदों में पारस्परिक विचार-विनिमय का माध्यम बन गई। अतः ईसा के बाद प्राकृत-अभिलेख अत्यल्प मिलते हैं।

मध्य-भारतीय-आर्य-भाषा के संक्रान्ति-काल में एक नवीन परिवर्तन ने भाषाओं के स्वरूप को बदलना प्रारम्भ किया। स्वरमध्यग अघोष-स्पर्श-व्यञ्जनों के स्थान पर सघोष व्यञ्जनों का व्यवहार होने लगा। इस प्रकार क्-ग्, च्-ज्, त्-थ्, ट्-ड्, प्-फ् 7 ग्-घ्, ज्-झ्, द्-ध्, ड्-ढ्, ब्-भ्, यथा—शुक 7 सुग, मखादेव 7 मघादेव, निर्यातितः 7 नियदियो, रथ 7 रध, ज्ञापक 7 ञावक इत्यादि। धीरे-धीरे इन सघोष व्यञ्जनों का उच्चारण ऊष्म-ध्वनि-युक्त होकर बहुत शिथिल हो गया और तब कहीं-कहीं इनका लोप होने लगा। इस काल के प्राकृत अभिलेखों में यह प्रवृत्ति चल पड़ी है और आगे चलकर इसने इतना जोर पकड़ा कि भाषाओं का स्वरूप ही बदल गया।

संक्रांति-कालीन मध्य-भा॰ आ॰ भाषा के अध्ययन की सामग्री तत्कालीन प्राकृत-अभिलेखों तथा मध्य-एशिया में आधुनिक खोजों से प्राप्त प्राकृत-साहित्य मे उपलब्ध होती है। यहाँ अश्वघोष (१००-२०० ई॰) के दो संस्कृत-नाटकों की खण्डित-प्रतियाँ मिली हैं। लूडर्स महोदय ने इनका सम्पादन किया है। इन नाटकों के प्राकृत अंशों से संक्रान्ति-काल में भाषा के स्वरूप का कुछ परिचय मिलता है। इन नाटकों के अतिरिक्त 'धम्मपद' का प्राकृत संस्करण भी उपलब्ध हुआ है। सर ऑरेल स्ताइन महोदय की खोजों के परिणाम स्वरूप मध्य-एशिया के खान-शान राज्य के राजकीय-पत्र प्राप्त हुए हैं। इनकी भाषा तत्कालीन प्राकृत की एक शाखा है। 'निय' नामक स्थान में इसकी अधिकांश सामग्री प्राप्त होने के कारण इसको 'निय-प्राकृत' के नाम से अभिहित किया गया है।

अश्वघोष के नाटकों की प्राकृतें

अश्वघोष के नाटकों में तीन प्रकार की प्राकृत का प्रयोग हुआ है—(१) दुष्ट की भाषा, (२) गणिका एवं विदूषक की भाषा और (३) गोभम की भाषा। इन विभिन्न प्राकृतों का स्वरूप अशोक के अभिलेखों की प्राकृतों के समान है। साहित्यिक-रचना होने के कारण इन पर संस्कृत का भी यथेष्ट प्रभाव पड़ा है। इनमें स्वरमध्यग अघोष-स्पर्श-व्यञ्जन के स्थान पर सघोष-स्पर्शव्यञ्जन के प्रयोग का केवल एक उदाहरण 'सुरद (∠सुरत) मिलता है। इन नाटकों का रचना-काल ईसा की प्रथम अथवा द्वितीय शताब्दी है।

दुष्ट के मुख में नाटककार ने जो भाषा रखी है, उसमें प्राचीन मागधी की सभी विशेषताएँ हैं। इसमें 'र्' के स्थान पर 'ल्' का प्रयोग मिलता है, यथा—कालना ∠ कारणात्; 'ष्' 'स्' के स्थान पर भी 'श्' का व्यवहार हुआ है, यथा—किश्श ∠ * किष्य (∠ कस्य); और 'अः' एवं 'ओ' का स्थान 'ए' ने ग्रहण किया है, यथा—वुत्ते ∠ वृत्तः,

कलेमि ∠ करोमि। प्राचीन मागधी के समान इसमें भी 'अहम्' का प्रतिरूप 'अहकं' है और सम्बन्ध-कारक एकवचन का रूप—'हो' प्रत्यय के योग से बना है, यथा—मक्कटहो ∠ मर्कटस्य।

गणिका एवं विदूषक की बोली प्राचीन शौरसेनी के सदृश है। पालि से इसकी समानता स्पष्ट है। अतः इसमें हमें मध्यदेशीय-भाषा के मध्यस्तर के संक्रान्ति-काल के दर्शन होते हैं। 'ऋ' के स्थान पर इसमें 'इ' आया है, यथा—हिदयेन ∠ हृदयेन; पदान्त 'अः' के स्थान पर 'ओ' का प्रयोग हुआ है, यथा— दुक्करो ∠ दुष्करः; 'न्य्' एवं 'ज्ञ्' का प्रतिरूप 'ञ्' हो गया है, यथा—हञ्ञन्तु ∠ हन्यन्तु, अकितञ्ञ ∠ अकृतज्ञ; व्य् 7 व्व, तथा—धारयितव्वो ∠ धारयितव्यः; क्ष् 7 क्ख्, यथा—पेक्खामि ∠ प्रेक्षामि, सक्खी ∠ साक्षी। वर्तमान-कालिक कृदन्त प्रत्यय 'मान' का प्रयोग हुआ है— यथा—भुञ्जमानो इत्यादि। इनके अतिरिक्त कुछ विचित्र रूप भी इस प्राकृत में मिलते हैं, यथा—तुवम (सं० त्वम्, प्राचीन इरानीय 'तुवम्') इमस्स ∠ * इमस्य (= अस्य,), कधिं ∠ *कधिम्, करोथ (= कुरुथ), भवाम् ∠ भवान्, करिय (= कृत्वा)।

गोभम् द्वारा प्रयुक्त प्राकृत को लूडर्स महोदय ने अर्धमागधी का प्राचीन रूप माना है। इसमें 'र्' के स्थान पर ल्' और 'अः' के स्थान पर 'ए' आया है, परन्तु 'श्' का प्रयोग नहीं हुआ है।

द्वितीय-पर्व—साहित्यिक-प्राकृते

मध्य-भारतीय-आर्य-भाषा के संक्रान्ति-काल (ई० पू० २०० से २०० ई० तक) में हम देख चुके हैं कि स्वरमध्यग अघोष स्पर्श-व्यंजन सघोष होने लगे थे। ईसा की तीसरी-चौथी शती में उच्चारण की इस प्रवृत्ति में अभिनव परिवर्तन प्रकट हुए, जिन्होंने भाषा का रूप बहुत बदल दिया। स्वरमध्यग सघोष-स्पर्श-व्यंजनों के उच्चारण में शिथिलता आ गई, जिससे वह ऊष्म-ध्वनि के समान बोले जाने लगे। यह स्थिति बहुत काल तक स्थित न रही। कुछ समय पश्चात् शिथिलतापूर्वक उच्चरित यह सघोष-व्यंजन-ध्वनियाँ लुप्त होने लगीं। इस परिवर्तन से भाषा का स्वरूप इतना बदल गया कि वह पिछले पर्व की भाषा से भिन्न प्रतीत होने लगी। मध्य-भारतीय-आर्य-भाषा के द्वितीय पर्व का यह सर्वप्रधान लक्षण है। निम्नलिखित उदाहरणों से यह परिवर्तन-क्रम स्पष्ट हो जायेगा—

शुक 7 सुग 7 *सुग़ 7 सुअ; सुख 7 सुघ 7 *सुघ़ 7 सुह; हित 7 हिद 7 * हिद़ 7 हिअ; कथा 7 कधा 7 *कध़ा 7 कहा; अपर 7 अवर 7 *अव़र 7 अअर।

सघोष स्पर्श व्यंजन के इस शिथिल ऊष्म उच्चारण को प्रकट करने के लिए लिपि में किसी नवीन चिह्न का प्रयोग न किया गया। इस प्रकार 'सुग़' 'हिद़' इत्यादि रूप 'सुग' 'हिद' ही लिखे जाते रहे; अतः लिखित भाषा में परिवर्तन-क्रम की यह कड़ी प्रकट न हो सकी और उत्तर-कालीन प्राकृत वैयाकरणों ने समझ लिया कि अघोष स्पर्श व्यंजनों के घोषवत् उच्चारण तथा सघोष व्यंजनों के लोप की प्रक्रिया समकालीन हैं। ऊष्मवत्-उच्चारण की स्थिति से परिचित न होने के कारण वह भाषा के क्रमिक विकास को न समझ सके। यही कारण है कि उन्होंने भाषा के घोषवत् उच्चारण युक्त रूप को तथा सघोप व्यंजनों के लोप से परिवर्तित

स्वरूप को एक ही कालक्रम में रखकर विभिन्न नामों से अभिहित किया। परिवर्तन की द्वितीय-स्थिति में वर्तमान भाषा को उन्होंने 'महाराष्ट्री' संज्ञा दी। परन्तु वास्तव में 'शौरसेनी' एवं 'महाराष्ट्री' एक ही मध्यदेशीय भाषा के आगे-पीछे के रूप हैं।

व्यंजन-ध्वनियों में इस क्रान्तिकारी परिवर्तन के साथ-साथ शब्द एवं धातु-रूपों में सरलीकरण की प्रक्रिया चलती रही। शब्द-रूपों की भिन्नताएँ बहुत कुछ प्रथम-पर्व में ही मिट चुकी थीं। द्वितीय-पर्व में अवशिष्ट रूप-भेद भी समाप्त होने लगे और सभी शब्दों के रूप प्रायः अकारान्त शब्द के समान बनने लगे। कारकों की संख्या भी कम हो गई। सम्प्रदान-सम्बन्ध-कारक के रूप समान हो गए। कर्त्ता-कर्म-कारक बहुवचन का काम एक ही रूप देने लगा। द्विवचन, प्रथम-पर्व में ही समाप्त हो चुका था। धातु-रूपों में आत्मनेपद के एक आध रूप ही बच रहे और वह भी मूल अर्थ का त्यागकर। लङ्, लिट् तथा विविध प्रकार के लुङ् रूपों का प्रचलन न रहा। कारक एवं क्रिया का अथवा संज्ञा शब्दों का पारस्परिक सम्बन्ध प्रकट करने के लिए कारकान्वयों एवं कृदन्त-रूपों का व्यवहार प्रारम्भ हो गया। इस प्रकार 'रामाय दत्तम्' न कहकर 'रामाय कए (कृते) दत्तम्' अथवा 'रामस्य कए दत्तम्' तथा 'रामस्य गृहम्' न कहकर 'रामस्स केरक (कार्यक) घरम्' कहा जाने लगा। यही कारकान्वय आगे चलकर आधुनिक-भारतीय आर्य-भाषाओं में अनुसर्ग अथवा परसर्ग बने। इसप्रकार भारतीय-आर्य-भाषा विश्लेषणात्मक (Analytic) बनने लगी। परन्तु अब भी भाषा का रूप इतना न बदला था कि संस्कृत सर्वथा दुर्बोध हो जाए। शिष्ट-समाज में संस्कृत का बोलबाला था। साधारण जन प्राकृत बोलते थे, परन्तु संस्कृत वाक्यों का भाव अवश्य समझ लेते थे। संस्कृत-नाटकों में विविध प्राकृतों के प्रयोग की प्रणाली से यह स्पष्ट विदित होता है।

जिस प्रकार प्रा० भा० आर्यभाषा को साधारणतया संस्कृत कहा जाता है, उसी प्रकार मध्य भारतीय आर्य-भाषा को 'प्राकृत' संज्ञा दी जाती है। प्राकृत-वैयाकरण पालि एवं अशोक के अभिलेखों आदि की भाषा से परिचित न थे; अतः उन्होंने उन्हीं प्राकृतों का विवेचन किया, जो साहित्य में व्यवहृत हुईं। संस्कृत-नाटकों तथा कुछ काव्य-ग्रंथों में प्रयुक्त मागधी, शौरसेनी, महाराष्ट्री, पैशाची तथा जैन-आगमों की भाषा अर्ध-मागधी पर ही प्राकृत-वैयाकरणों ने विचार किया और इन्हीं के अर्थ में 'प्राकृत' संज्ञा रूढ़ हो गई। मध्य० भा० आ० भा० के द्वितीय-पर्व की अध्ययन-सामग्री हमे इन्हीं प्राकृतों में रचित साहित्यिक एवं धार्मिक-ग्रंथों में मिलती है। यहाँ संक्षेप में हम इनकी विशेषताओं का उल्लेख करेंगे।

शौरसेनी—प्राकृत, शूरसेन (मथुरा) प्रदेश तथा इसके आस-पास की लोक-भाषा थी। आर्य-संस्कृति के केन्द्र मध्यदेश की भाषा होने के कारण इसपर संस्कृत का निरन्तर प्रभाव पड़ता रहा और यह संस्कृत के बहुत समीप बनी रही। इसकी प्रमुख विशेषताएँ यह हैं। स्वर मध्यग 'द्' 'ध्' यहाँ सुरक्षित हैं, यथा—'आगदो ∠ आगतः, कधेदु ∠ कथयतु, कद-किद ∠ कृत। क्ष 7 क्ख, यथा—कुच्छि 7 कुक्खि, इक्षु 7 इक्खु। संयुक्त-व्यंजनों में से एक का लोपकर पूर्ववर्ती स्वर को दीर्घ करने की प्रवृत्ति इसमें अधिक नहीं मिलती। विधिलिङ् के रूप यहाँ संस्कृत के समान ही हैं। महाराष्ट्री एवं अर्ध-मागधी के समान इसमें—'एज्ज' प्रत्यय नहीं लगता, यथा—वट्टे- (महाराष्ट्री एवं अ० मा०

'वट्टेज्ज') ∠ वर्तते । प्रत्यय- 'य' 7 'ईअ', यथा—पुच्छीअदि (सं० पृच्छ्यते), गमीअदि (सं० गम्यते)।

मागधी-प्राकृत प्राच्य-भाषा थी। अन्य प्राकृतों की अपेक्षा इसमें वर्ण-विकार इत्यादि बहुत अधिक हुए। इसमें सर्वत्र र् 7 ल्, यथा—राजा 7 लाजा, पुरुषः 7 पुलिशे, समर 7 शमल। स्, ष् के स्थान पर 'श्' का प्रयोग मागधी की एक प्रमुख विशेषता है, यथा—शुष्क 7 शुश्क, समर 7 शमल। ज् 7 य्, झ् 7 य्ह्, य्य, यथा—जानाति 7 याणादि, जायते 7 यायदे, झटिति 7 य्हति। द्य्, र्ज्, र्य् 7 य्य, यथा—अद्य 7 अय्य, आर्य 7 अय्य, अर्जुन 7 अय्युण, कार्य 7 कय्य। ण्य्, न्य्, ज्ञ्, ञ्ज् 7 ञ्ञ्, यथा—पुण्य 7 पुञ्ञ, अन्य 7 अञ्ञ, राज्ञः 7 लञ्ञो, अञ्जलि 7 अञ्ञलि। इसमें ऊष्म-व्यंजन + व्यंजन में समीकरण नहीं होता, यथा—शुष्क 7 शुश्क हस्त 7 हश्त। च्छ् 7 श्च्, यथा—गच्छ 7 गश्च, पृच्छ 7 पुश्च। क्ष् 7 श्क्, यथा—पक्ष 7 पश्क, प्रेक्षते 7 प्रेश्कदि। शौरसेनी के समान मागधी में भी स्वरमध्यग 'द्' सुरक्षित रहा, यथा—भविष्यति 7 भविश्शदि। कर्ताकारक एकवचन का प्रत्यय 'अः' 7 'ए', यथा—सः 7 शे।

अर्धमागधी—काशी-कोशल प्रदेश की लोक-भाषा थी। इसमें मागधी एवं शौरसेनी दोनों के लक्षण मिलते हैं। इसमें 'र्' और 'ल्' दोनों ध्वनियाँ विद्यमान हैं। कर्ताकारक एकवचन का रूप 'एकारान्त' (मागधी के समान) एवं 'ओकारान्त' (शौरसेनी के समान), दोनों प्रकार का मिलता है। ऊष्म-व्यञ्जन-ध्वनि केवल 'स्' है।—स्म 7 —र, यथा—लोकस्मिन् 7 लोयंसि, तस्मिन् 7 तंसि। अर्ध-मागधी की एक प्रमुख विशेषता यह है कि स्वरमध्यग स्पर्श-व्यञ्जन का लोप होने पर उसके स्थान में 'य्' आ जाता है। इसको 'य्-' श्रुति कहते हैं, यथा—सागर 7 सायर, स्थित 7 ठिय, कृत 7 कय (हिंदी 'किया')। कहीं-कहीं स्वरमध्यग-सघोष स्पर्श-व्यञ्जन सुरक्षित है, यथा—लोगंसि ∠ लोकस्मिन्; स्स 7 स् और इसका पूर्ववर्ती स्वर दीर्घ हो गया है, यथा—वास (∠ वस्स) ∠ वर्ष। अन्य प्राकृतों की अपेक्षा अर्धमागधी में दन्त्य-व्यञ्जनों के मूर्धन्यीकरण की प्रवृत्ति अधिक है। संस्कृत के पूर्वकालिक-क्रिया के प्रत्यय—'त्वा' एवं—'त्य' अर्धमागधी में—'त्ता' एवं—'च्च' के रूप में चले आए। 'तुमुन्नन्त' शब्दों का प्रयोग अर्ध-मागधी में पूर्वकालिक-क्रिया के समान हुआ, यथा— सं० कृत्वा के स्थान पर काउं ∠ कर्तुम्।

महाराष्ट्री-प्राकृत को वैयाकरणों ने आदर्श प्राकृत माना है। संस्कृत-नाटकों में प्राकृत-पद्य महाराष्ट्री में लिखे गए। इसमें 'गउडवहो' 'सेतुबन्ध' 'गाथा सत्तसई' इत्यादि काव्य-ग्रन्थों की रचना हुई।

वास्तव में महाराष्ट्री-प्राकृत शौरसेनी का विकसित रूप है। महाराष्ट्र में जाकर यह, स्थानीय भाषा से भी प्रभावित हुई और वहाँ स्वतंत्र-रूप से इसका विकास हुआ। तब वहाँ से यह साहित्यिक-भाषा के रूप में उत्तरभारत में आकर आदृत हुई।

महाराष्ट्री—प्राकृत की सर्वप्रमुख विशेषता यह है कि इसमें स्वरमध्यग स्पर्श व्यञ्जन लुप्त हो गए हैं। इससे स्वर मध्यग अल्पप्राण व्यञ्जन सर्वथा समाप्त हो गए और महाप्राण व्यञ्जनों में केवल प्राण-ध्वनि 'ह्' बच रही, यथा—प्राकृत 7 पाउअ, प्राभृत 7 पाहुड, कथयति 7 कहेइ। कहीं-कहीं ऊष्म-व्यञ्जन 7 ह्, यथा—पाषाण 7 पाहाण; अनुदिवस

7 अनुदिअहं। इसमें अपादान-कारक एकवचन में प्रायः -'आहि' प्रत्यय मिलता है, यथा, दूराहि (सं० दूरात्); अधिकरण एकवचन में -म्मि', अथवा—'ए' प्रत्यय प्रयुक्त हुए हैं, यथा—लोअम्मि अथवा लोए ∠ * लोकस्मिन् (= लोके)। यहाँ 'कृ' धातु के रूप वैदिक-संस्कृत के समान बने हैं, यथा—कुणइ ∠ कृणोति। 'आत्मन्' का प्रतिरूप यहाँ 'अप्प' मिलता है (शौर० माग० 'अत्त'); कर्मवाच्य का प्रत्यय—'य' 7 'इज्ज', यथा—पुच्छिज्जइ ∠ पृच्छ्यते, गमिज्जइ ∠ गम्यते। पूर्वकालिक क्रिया के रूप—'ऊण' प्रत्यय के योग से बने हैं यथा:—पुच्छिऊण ∠ (सं० पृष्ट्वा)।

पैशाची प्राकृत की कोई साहित्यिक-रचना उपलब्ध नहीं है। प्राकृत वैयाकरणों ने पैशाची प्राकृत की दो प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख किया है :—(१) सघोष-व्यञ्जनों के स्थान पर समान स्थानीय अघोष व्यञ्जनों का प्रयोग; यथा :—नगर 7 नकर, राजा 7 राच (२) स्वर मध्यग सघोष व्यञ्जनों का अस्तित्व।

गाथा

प्राकृतों के साथ-साथ गाथा के सम्बन्ध में भी यहाँ विचार करना आवश्यक है। महायान बौद्ध-सम्प्रदाय के महावैपुल्यसूत्र के अन्तर्गत ललितविस्तर, सद्धर्मपुण्डरीक, रत्नोल्काधारिणी, आर्यसिंह, चन्द्रप्रदीपसूत्र, विमलकीर्त्तिनिर्देश आदि अनेक ग्रंथ आते हैं। इन ग्रंथों के पद्य अंश को गाथा कहकर उल्लेख किया गया है। इसी कारण इनके पद्य की भाषा को भी गाथा ही कहा जाता है।

गाथा की भाषा न तो विशुद्ध संस्कृत है और न प्राकृत ही, अपितु इसमें इन दोनों का विचित्र सम्मिश्रण हुआ है। प्राचीन पण्डितों—डा० राजेन्द्रलाल मित्र, मैक्समूलर, वेबर तथा बर्नॉफ—के अनुसार गाथा, संस्कृत तथा पालि के बीच की भाषा है। आप लोगों के मत से भगवान् बुद्ध के पूर्व, गाथा ही देशभाषा के रूप में प्रचलित थी। इसकी उत्पत्ति संस्कृत से हुई थी और आगे चलकर इसीसे पालि की उत्पत्ति हुई। किन्तु आधुनिक विद्वान् इस मत से सहमत नहीं हैं। इसका कारण यह है कि गाथा की प्रकृति तथा उसके व्याकरण की रूपरेखा पर विचार करने से यह स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि यह न तो पालि से पूर्व की ही भाषा है और न यह इतनी प्राचीन ही है। इसमें प्रथमा, द्वितीया तथा सप्तमी, इन तीन विभक्तियों का प्रयोग नहीं मिलता। यदि पालि की उत्पत्ति गाथा से हुई होती तो कम-से-कम पालि की भाँति ही उसका व्याकरण भी होता। इसके अतिरिक्त गाथा में प्रायः पद के अन्त में इकार तथा उकार मिलता है जो स्पष्टरूप से अपभ्रंश का लक्षण है। गाथा की भाषा की परीक्षा के पश्चात् आधुनिक विद्वान् इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि यह प्राकृत तथा संस्कृत के संमिश्रण से निर्मित एक कृत्रिम भाषा है। इसका समय भी प्रायः साहित्यिक प्राकृतों का ही समय है।

नीचे पालि तथा विभिन्न प्राकृतों के उदाहरण दिए जाते हैं। इनके संस्कृत रूप भी इसलिए दिए गए हैं जिससे पाठक सहज ही में सापेक्षिक तथा तुलनात्मक दृष्टि से भारतीय आर्यभाषा के विभिन्न स्तरों को समझ सकें।

पालि (बावेरु-जातक)

अतीते बाराणसियं ब्रह्मदत्ते रज्जं कारेन्ते बोधिसत्तो मोरयोनियं निब्बत्तित्वा वुद्धिं अन्वाय सोभग्गप्पत्तो अरञ्ञे विचरि। तदा एकच्चे वाणिजा दिसाकाकं गहेत्वा नावाय

बावेरूरट्ठं अगमंसु। तस्मिं किर काले बावेरूरट्ठे सकुणा नाम नत्थि। आगतागता रट्ठवासिनो तं कूपग्गे निसिन्नं दिस्वा "पस्सथिमस्स छविवण्णं, गलपरियोसानं मुखतुण्डकं मणिगुळ सदिसानि अक्खीनी' ति, काकमेव पसंसित्वा ते वाणिजके आहंसु 'इमं अय्यो सकुणं अम्हाकं देथ। अम्हाकं हि इमिना अत्थो, तुम्हे अत्तनो रट्ठे अञ्ञं लभिस्सथा' ति। 'तेन हि मूलेन गण्हथा' ति। कहापणेन नो देथा' ति। 'न देमा' ति। अनुपुब्बेन वड्ढेत्वा 'सतेन देथा'ति वुत्ते 'पुम्हाकं एस बहूपकारो, तुम्हेहि पन सद्धिं मेत्ती होतू' ति कहापणसतं गहेत्वा अदंसु। ते तं गहेत्वा सुवण्णपञ्जरे पक्खिपित्वा नानप्पकारेन मच्छमंसेन चेव फलाफलेन च पटिजग्गिंसु। अञ्ञेसं सकुणानं अविज्जमानट्ठाने दसहि असद्धम्मेहि समन्नागतो काको लाभग्गयसग्गप्पत्तो अहोसि।

संस्कृत-रूप

अतीते वाराणस्यां ब्रह्मदत्ते राज्यं कुर्वति बोधिसत्त्वो मयूरयोन्यां निर्वृत्य वृद्धिमन्वेत्य सौभाग्यप्राप्तः अरण्ये व्यचारीत्। तदा एकत्वे वणिजो दिशाकाकं गृहीत्वा नाव्या बावेरू-राष्ट्रमगमन्। तस्मिन् किल काले बावेरूराष्ट्रे शकुना नाम न सन्ति। आगतागताः राष्ट्रवासिनस्तं कूपाग्रे निषण्णं दृष्ट्वा 'पश्यतास्य छविवर्णं, गलपर्यवसानं मुखतुण्डकं मणि गुलसदृशे अक्षिणी' इति काकमेव प्रशंस्य ते वणिजः अवोचन्—'इमं आर्यः शकुनं अस्मभ्यं ददातु। अस्माकं हि अनेनार्थः, यूयं आत्मनो राष्ट्रे अन्यं लप्स्यध्वे' इति। 'तेन हि मूल्येन गृह्णीत' इति। 'कार्षापणेन नो दत्त'। 'न दद्मः' इति। आनुपूर्व्येण वर्धयित्वा 'शतेन दत्त' इत्युक्ते 'अस्माकं एष बहूपकारः, युष्माभिः पुनः सार्धं मैत्री भवतु' इति कार्षापणशतं गृहीत्वा अदुः। ते तं गृहीत्वा सुवर्णपञ्जरे प्रक्षिप्य नानाप्रकारेण मत्स्यमांसेन चैव फलाफलेन च प्रत्यग्रहीषुः। अन्येषां शकुनानां अविद्यमानस्थाने दशभिः असद्धर्मैः समन्वागतः काकः लाभाग्रयशोग्रप्राप्तो अभूत्।

हिन्दी-रूप

प्राचीनकाल में जब ब्रह्मदत्त काशी में राज्य कर रहे थे तो बोधिसत्व मोरयोनि में उत्पन्न होकर बुद्धि को प्राप्तकर सौभाग्य युक्त हो वन में विचरते थे। उसी समय एक बार वणिक लोग किसी दिशा काक को लेकर बावेरू राज्य में गए। उस समय बावेरू राज्य में पक्षी बिल्कुल न थे। आने जानेवाले राज्यवासी लोग उसको कुएँ पर बैठा देखकर कहने लगे—'इसके सुन्दर वर्ण को देखो, कैसा कंठ, कैसा मुख, कैसी चोंच, मणि गोलक की तरह सुन्दर आँखें हैं, इसप्रकार कौए की प्रशंसा कर वे वणिकों से बोले, इस पक्षी को हमलोगों को दे दीजिए। हमलोगों का इससे बड़ा काम निकलेगा, तुम लोग अपने राज्य में दूसरा ले लेना।' 'तब मूल्य से लो।' कार्षापण लेकर दो।' 'नहीं देंगे।' इस प्रकार क्रम से मूल्य बढ़ाकर राज्यवासियों ने कहा, 'सौ लेकर हमको दो, हमारा इससे बड़ा उपकार होगा।' 'तुम लोगों के साथ मेरी मित्रता रहे;' इस तरह सौ कार्षापण लेकर वणिकों ने उसको दिया। वे लोग उसे लेकर तथा उसे सोने के पिंजड़े में रखकर अनेक प्रकार के मत्स्यमांस तथा फलादि से उसका सत्कार करने लगे। अन्य पक्षियों के अविद्यमान होने के कारण दस असद्धर्मों से युक्त कौआ भी पूजा जाने लगा।

—

शौरसेनी [शकुन्तला, अङ्क ५ से]

राजा के सामने शकुन्तला जिसे वह भूल गया है (स्वगतम्) इमं अवत्थतरं गदे तादिसे अणुराए किं वा सुमराविदेण। अत्ता दाणिं मे सोअणीओत्ति ववसिदं एदं। (प्रकाशम्) अज्जउत्त (इत्यर्धोक्ते) संसइदो दाणिं एसो समुदाआरो। पोरव,ण जुत्तं णाम दे तह पुरा अस्सम पदे सहावुत्ताण हिअअं इमं जणं समअपुव्वं पतारिअ ईदिसे हिं अक्खरेहिं पच्चाचक्खिदुं।

संस्कृत-रूप—

(स्वगतम्) इदमवस्थान्तरं गते तादृशेऽनुरागे किं वा स्मारितेन। आत्मेदानीं मे शोचनीय इति व्यवसितमेतत्। (प्रकाशम्) आर्यपुत्र, (इत्यर्धोक्ते) संशयित इदानीम् एष समुदाचारः। पौरव, न युक्तं नाम ते तथा पुराऽऽश्रमपदे स्वभावोत्तान हृदयमिमं जनं समयपूर्वं प्रतार्येदृशैरक्षरैः प्रत्याख्यातुम्।

हिन्दी-रूप—

(आप ही आप) जब वह स्नेह ही न रहा तो अब स्मरण दिलाने से क्या (प्रयोजन)? अब यह तो निश्चित हो गया कि मेरी आत्मा दयनीय दशा को प्राप्त हो गई। (प्रकट) आर्यपुत्र! (आधा कहकर रुक जाती है) इस समय यह शिष्टाचार तो समुचित नहीं है। पौरव, क्या यह तुमको उचित है कि उस समय तपोवन में मुझ सीधे स्वभाववाली को शपथों से प्रतारित करके अब तुम ऐसे शब्दों से मेरा प्रत्याख्यान करो?

महाराष्ट्री [शकुन्तला; प्रस्तावना से]

(१) ईसीसिचुम्बिआइं भमरेहिं सुउमार केसरसिहाइं।
ओदंसयन्ति दअमाणा पमदाओ सिरीसकुसुमाइं।

संस्कृत-रूप

ईषदीषच्चुम्बितानि भ्रमरैः सुकुमारकेसरशिखानि।
अवतंसयन्ति दयमानाः प्रमदाः शिरीषकुसुमानि।

हिन्दी-रूप

दयार्द्र प्रमदा शिरीष कुसुमों के कर्णावतंस बना रही हैं जिनकी सुकुमार केसर (किञ्जल्क) के सिरे भौंरों से थोड़े-थोड़े चूमे गए हैं।

(२) महाराष्ट्री [शकुन्तला; चतुर्थ अङ्क से]

उग्गलिअदब्भ कवला मिआपरिच्चत्तणच्चणा मोरा।
ओसरिअ पण्डुपत्ता मुअन्ति अस्सू विअ लदाओ।

संस्कृत-रूप

उद्गलितदर्भकवला मृग्यः परित्यक्तनर्तना मयूराः।
अपसृतपाण्डुपत्रा मुञ्चन्त्यश्रूणीव लताः।

हिन्दी-रूप

(शकुंतला की विदाई के समय शोक से) मृगों ने दर्भ (घास) के कौर को उगल दिया है, मोरों ने नाचना छोड़ दिया है, लताएँ जिनसे पीले पत्ते झड़ रहे हैं, मानों आँसू बहा रही हैं ।

अर्धमागधी

तेणं कालेणं तेणं समएणं सिन्धुसोवीरेसु जणवएसु वीयभए नामं नयरे होत्था ; उदायणे नामं राया, पभावई देवी । तीसे जेट्ठे पुत्ते अभिई नामं जुवराया होत्था ; नियए भाइणेज्जे केसी नामं होत्था । से नं उदायणे राया सिन्धु-सोवीर-पामोक्खाणं सोलसण्हं जणवयाणं वीयभए-पामोक्खाणं तिण्हं तेसट्ठीणं नयर-सयानं महसेण—पामोक्ख णं दसण्हं रायाणं बद्धमउडाणं विइण्ण-सेय-चामर-वाय—वीयणाणं अन्नेसिं च राईसर—तलवर-पभिईणं आहेवच्चं कुणमाणे विहरई एवं च ताव एयं ।

संस्कृत-रूप

तस्मिन् काले तस्मिन् समये सिन्धुसोवीरेषु जनपदेषु वीतभयं नाम नगरं आसीत् । उदायनो नाम राजा प्रभावती देवी । तस्य ज्येष्ठः पुत्रः अभिजित नाम युवराज आसीत् । तस्य भ्रातृजः केसी नाम आसीत् । सोऽयम् उदायनो राजा सिन्धु-सोवीरप्रमुखानां षोडशजनपदानां वीतभय-प्रमुखानाम् त्रिषष्ठ्यधिक शतत्रयनगराणाम् महासेन प्रमुखानां बद्धमुकुटानां दशानां राज्ञाम् वितीर्णश्वेत-चामरव्यजनवीजनानाम् प्रभुरासीत् । अन्यैश्च राजेश्वरप्रधान प्रभृतिभिः सह आधिपत्यं कुर्वाणः विहरति । एवञ्च तावदयम् ।

हिन्दी-रूप—

उस समय सिन्धु-सोवीर देश में वीतभय नाम का नगर था । उदायण वहाँ का राजा था और प्रभावती उसकी रानी । उसके बड़े लड़के का नाम अभिजित था । वही युवराज था और उसका केसी नाम का एक भतीजा था । वह उदायण सोलह जनपदों का जिनमें सिन्धु सोवीर प्रधान थे, तीन सौ तिरसठ नगरों का, जिनमे वीतभय प्रधान था दस अभिषिक्त राजाओं का जिनका मुखिया महासेन था, जिसको कि चामर डुलाने का, स्वत्व मिला हुआ था, प्रभु था । इसके अतिरिक्त और भी युवराज और प्रधानादि थे । और इसी तरह था ।

मागधी [शकुन्तला; अङ्क ६, प्रवेशक]

रक्खिणो (ताडयित्वा)—अले कुम्भीलआ, कहेहि कहिं तुए एशे मणिबन्धणुक्किण्ण-णामहेए लाअकीलए अङ्गुलीअए शमाशादिए ?

संस्कृत-रूप—

अरे कुम्भीरक, कथय, कुत्र त्वमेतन्मणि-बन्धनोत्कीर्णनामधेयं राजकीय मङ्गुलीयकं समासादितम् ।

हिन्दी-रूप—

सिपाही—(डाँटकर) बता रे तस्कर ! तूने यह नाम खुदी हुई मणियुक्त राजकीय अँगूठी कहाँ पाई है ?

पुरुष :—(भीतिनाटितकेन) पशीदन्दे भावमिश्शे । हगेगा ईदिशकम्मकाली ।

संस्कृत-रूप—

प्रसीदन्तु भावमिश्राः । अहं नेदृशकर्मकारी ।

हिन्दी-रूप—

धीवर—(भय प्रदर्शित करता हुआ) दया करो, महानुभाव ! मैं ऐसा कर्म करनेवाला नहीं हूँ ।

प्रथम :—किं शोहणे बह्मणे ते कलिअ लज्जा पडिग्गहे दिण्णे ।

संस्कृत-रूप—

किं शोभनो ब्राह्मण इति कलयित्वा राज्ञा प्रतिग्रहो दत्तः ।

हिन्दी-रूप—

पहिला सिपाही—तो क्या तू श्रेष्ठ ब्राह्मण है, यह सोचकर राजा ने तुझे दान में दी है ।

पुरुष :—शुणुध दाणिं । हगे शक्कावदालब्भन्तलवाशी धीवले ।

संस्कृत-रूप—

शृणुतेदानीम् । अहं शक्रावताराभ्यन्तरवासी धीवरः ।

हिन्दी-रूप—

धीवर—पहले मेरी बात सुन लो । मैं शक्रावतार (तीर्थ) के अभ्यन्तर का वासी धीवर हूँ ।

द्वितीय :—पाडच्चला, किं अह्मेहिं जादी पुच्छिदा ?

संस्कृत-रूप—

पाटच्चर, किमस्माभिर्जातिः पृष्टा ?

हिन्दी—

चरकटे, क्या हम तेरी जाति पूछते है ?

श्याल :—सूअअ, कहेदु सव्वं अणुक्कमेण । मा णं अन्तरा पडिबन्धह ।

संस्कृत-रूप—

सूचक, कथयतु सर्वमनुक्रमेण । मैनमन्तरे प्रतिबध्नस्व ।

हिन्दी—

सूचक, इसे सारा ब्योरा इच्छा पूर्वक कहने दो । बीच में न रोको ।

उभौ—जं आवुत्ते आणवेदि कहेहि ।

संस्कृत—

यदावुत्त आज्ञापयति, कथय ।

हिन्दी—

जैसा श्रीमान् आज्ञा दें, करो ।

पुरुष :—अहके जालुग्गालादीहिं मच्छबन्धणोवाएहिं कुडुम्बभलणं कलेमि ।

संस्कृत—

अहं जालोद्गालादिभिर्मत्स्यबन्धनोपायैः कुटुम्बभरणं करोमि।

हिन्दी—

मैं जाल और बडिश से मछली पकड़कर कुटुम्ब का भरण (पोषण) करता हूँ।

श्याल :—(विहस्य) विसुद्धो दाणिं आजीवो।

संस्कृत—

विशुद्ध इदानीमाजीवः।

हिन्दी—

(हँसकर) आजीविका तो तुम्हारी अत्यन्त शुद्ध है।

पुरुष :—शहजे किल जे विणिन्दिए ण हु दे कम्म विवज्जणीअए।
पशुमालणकम्मदालुणे अणुकम्पामि दुएव्व शोत्तिए।

संस्कृत—

सहजं किल यद्विनिन्दितं न खलु तत्कर्म विवर्जनीयम्।
पशुमारणकर्मदारुणोऽनुकम्पामृदुरेव श्रोत्रियः।

हिन्दी—

जो अपना स्वाभाविक कर्म है, वह चाहे निन्दित ही क्यों न हो, छोड़ने योग्य नहीं है। श्रोत्रिय लोगों को दयार्द्र होते हुए भी पशुओं के मारने के काम में निष्ठुर होना पड़ता है।

तृतीयपर्व—अपभ्रंश

मध्य भारतीय-आर्य-भाषा के तृतीय-पर्व (६०० ई० से १००० ई०) को अपभ्रंश नाम से अभिहित किया जाता है। आधुनिक-काल मे प्रवेश करने के पहले प्रत्येक भारतीय आर्य-भाषा को अपभ्रंश की स्थिति में आना पड़ा है। वैसे अपभ्रंश शब्द का व्यवहार व्याकरण एवं नाट्यशास्त्र के ग्रंथों मे प्रथम शताब्दी में किया जाने लगा था। ईसा पूर्व दूसरी शती में महाभाष्यकार पतञ्जलि ने 'अपाणिनीय' प्रयोगों के लिए अपभ्रंश शब्द का व्यवहार किया है। उन्होंने 'गो' शब्द के 'गावी' 'गोणी' 'गोता' रूपों को अपभ्रंश बतलाया है। ये रूप विभिन्न प्राकृतों में बनते हैं। अतः महाभाष्यकार ने इस शब्द का प्रयोग किसी भाषा विशेष के अर्थ में नहीं किया। भाषा के अर्थ में अपभ्रंश शब्द का व्यवहार ईसा की छठी शताब्दी से प्रारम्भ हुआ। इस समय तक भारतीय-आर्य-भाषा, प्राकृत-स्तर से आगे बढ़ चुकी थी। यद्यपि साहित्य में प्राकृत का व्यवहार प्रचलित था, परन्तु जन-भाषा बदल चुकी थी और इसमें लोक-साहित्य की रचना प्रारम्भ होने लगी थी। लोक में प्रतिष्ठित हो जाने पर शिष्ट समुदाय का ध्यान इस भाषा की ओर गया। अतएव शिष्ट-साहित्य में भी अपभ्रंश का व्यवहार होने लगा। ग्यारहवीं शताब्दी में पुरुषोत्तम ने अपभ्रंश को शिष्ट समुदाय की भाषा मानकर उसका विवेचन किया तथा बारहवीं शताब्दी में जैन-विद्वान् हेमचन्द्र ने अपभ्रंश का विस्तृत व्याकरण प्रस्तुत किया। इसप्रकार अपभ्रंश में छठी शताब्दी से कुछ-कुछ साहित्यिक-रचना प्रारम्भ हुई और आठवीं शताब्दी तक यह साहित्यिक-भाषा के रूप

में पूर्णतया प्रतिष्ठित हो गई; जैन आचार्य अपभ्रंश में ग्रंथ-रचना करने लगे। 'भविस्सत-कहा' एवं 'सनतकुमार चरिअउ' आदि अपभ्रंश के प्रसिद्ध जैन-ग्रंथ हैं। पूर्वी अपभ्रंश में सिद्ध-साहित्य की रचना हुई। जैन आचार्य हेमचन्द्र ने अपने प्रसिद्ध व्याकरण में अनेक अपभ्रंश के पद्य, उदाहरण स्वरूप दिए हैं। मध्यदेश की प्राकृत शौरसेनी ने भी अपभ्रंश अवस्था में प्रवेश किया। शौरसेनी-प्राकृत के समान शौरसेनी-अपभ्रंश अथवा नागर-अपभ्रंश भी समस्त उत्तर-भारत की साहित्यिक-भाषा स्वीकृत हुई। राजस्थान, गुजरात एवं पूर्वी प्रदेशों में भी इसी में साहित्यिक-रचना होने लगी। अतः शौरसेनीअपभ्रंश का स्वरूप हमें साहित्यिक-रचनाओं में उपलब्ध हो जाता है। मध्य-भारतीय-आर्य-भाषाओं के प्रथम एवं द्वितीय पर्व के परिवर्त्तनों के अतिरिक्त शौरसेनी-अपभ्रंश में जो नवीन परिवर्त्तन परिलक्षित हुए वे संक्षेप में इस प्रकार है—

(१) पदान्त 'आ' 'ए' 'ओ' 7 'अ' 'इ' 'उ', यथा :—माता 7 माआ (द्वितीय-पर्व में) 7 माअ (अपभ्रंश), कृष्णः 7 कण्हो (शौर० प्रा०) 7 कण्हु (शौ० अप०)।

(२) स्वर मध्यग अथवा पदान्त 'म' 'न' 7 वँ, यथा कमल 7 कवँल, गमन 7 गवँन।

(३) अपभ्रंश में सानुनासिक संयुक्त-व्यंजन से अनुगमित स्वर को सानुनासिक बनाने की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है।

(४) स्वर-संकोच अधिक नियमित हो गया; यथा—लोकेन 7 लोएण 7 लोएं 7 लोएँ, स्वयम् 7 सइँ, अवश्यम् 7 अवस्सइँ, अवसे, अवसिँ।

(५) अपभ्रंश तक आते-आते सभी प्रातिपदिक स्वरान्त बन गए थे। रायाणो ∠ राजानः, बंभण 7 ब्राह्मणः, आदि व्यंजनान्त-प्रातिपदिक-रूप अपवाद-स्वरूप हैं। अपभ्रंश में प्रायः सभी प्रातिपदिकों के रूप अकारान्त के समान बनने लगे।

(६) प्रातिपदिकों में एक समता लाने का प्रभाव लिंग-विधान पर भी पड़ा। नपुंसक-लिङ्ग लुप्त हो गया और 'इ, उ' कारान्त पुलिङ्ग एवं स्त्रीलिंग शब्दों के अनेक रूपों में समानता आ जाने से लिङ्गभेद विस्मृत होने लगा तथा पदान्त 'आ' के ह्रस्व हो जाने से स्त्रीलिंग आकारान्त शब्द पुलिंग अकारान्त बन गए। इस प्रकार पुलिंग की प्रधानता स्थापित हो गई।

(७) कारक-सम्बन्ध प्रकट करने के लिए कुछ अनुसर्ग अथवा परसर्ग नियमित रूप से व्यवहृत हुए। सम्बन्ध-कारक प्रकट करने के लिये 'केरक, केर' 'केरा' अधिकरणमें 'माँझ' 'उप्परि' आदि, करण में 'सों' सजो, 'सहुँ', सम्प्रदान में 'केहि' इत्यादि अनुसर्गों का प्रयोग बहुलता से होने लगा।

(८) कर्त्ता-एक वचन में 'उ' विभक्ति-प्रत्यय का प्रयोग हुआ और कर्त्ता-कर्म बहु-वचन (स्त्रीलिंग) में भी इसका व्यवहार हुआ। यथाः—कुमारीउ, खट्टाउ इत्यादि। कहीं-कहीं कर्त्ता-कर्म-एक वचन में प्रातिपदिक-रूप का ही प्रयोग हुआ; यथा—'णर (नर) गच्छइ; करण कारक में 'एण-एँ' अथवा

केवल अनुस्वार मिलता है यथा, दइएण, दइएँ, रइएँ, महुएँ, महुँ। सम्बोधन बहुवचन में विभक्ति-प्रत्यय 'हो' का व्यवहार हुआ। यथा— अग्गिहो महिलाहो। अपादान कारक में 'हुँ' अथवा 'हे', यथा—रुच्छहुँ रुच्छहे; सम्बन्ध-कारक एक वचन में, 'हे' - 'हो' - 'सु' तथा कहीं-कहीं 'स्स' यथा—रुच्छहे, रुच्छहो, रुच्छसु रुच्छस्सु; अधिकरण-एक वचन में -'हिँ', सम्बन्ध एवं सम्प्रदान कारक बहुवचन में 'हं' 'हु', हँ, यथा—रुच्छहं, तरुंहु तरुहँ, तथा अपादान-सम्बन्ध-अधिकरण (स्त्रीलिंग) एकवचन में -'हे' 'हँ' यथा—खट्टाहे, रइहें, विभक्ति प्रत्ययों का प्रयोग हुआ।

(९) उत्तम-पुरुष एवं मध्यम-पुरुष सर्वनामों के निम्न रूप मिलते हैं :—

एकवचन	बहुवचन
१ कर्त्ता—अहयं, हं, हउँ, तुहुँ, तुहु।	अम्हे, तुम्हे,
२ कर्म—मं, ममं, मइँ, तइँ।	अम्हहँ, तुम्हहँ,
३ करण—मए, मइ, मे, मइँ, तइँ,	तुम्हाइँ, अम्हेहिं
४, ५, ६ सम्प्र०-अपा०-सम्ब०—मम, मे महु, मज्झु, मज्झं, तुह, तुहु, तुज्झ।	अम्ह, अम्हाण, अम्हाणं, अम्हार, तुम्हार।

विशेषणात्मक सर्वनामों के 'एह' (हिंदी:, यह), तेह (वह), जेह (वह) केह (क्या), किस (क्यों), किए (क्यों), ये अपभ्रंश रूप अनुलक्षणीय हैं।

(१०) तिङन्त रूपों के बदले कृदन्त-रूपों का व्यवहार बहुत बढ़ गया। वर्त्तमान एवं भविष्यत्काल में तिङन्त-तद्भव रूप प्रचलित रहे, परन्तु अन्य कालों के प्रकट करने के लिये कृदन्त-रूपों से सहायता ली गई। विधि-लिङ् के रूपों में धातु एवं प्रत्ययों के मध्य 'ज्ज' का आगम उल्लेखनीय है, यथा—किज्जउँ, करिज्जउ, करिज्जंतु। भूतकाल कर्तृवाच्य का स्थान भूतकालिक कृदंत ने ग्रहण किया। इसप्रकार संस्कृत के 'अगच्छत्' (वह गया) के स्थान पर गअं (सं० गतः) का प्रयोग चल पड़ा। मागधी अपभ्रंश में 'अल्ल' अथवा 'इल्ल' प्रत्यय जोड़कर भूतकालिक कृदन्त रूप को और दृढ़ बनाया गया, यथा—गअल्ल' गइल्ल।

अनेक धातुओं के अभिनव रूप अपभ्रंश में चल पड़े, यथा—बोल्ल (सं० √वद्), मुक्क-मुअ (सं० √मुच्), चअ (सं० √शक्), वेल्ल-वेढ (स० वेष्ट्य) बुड्ड बुप्प, (सं० √मस्ज्)। जिस प्रकार शौरसेनी-प्राकृत शौरसेनी-अपभ्रंश के रूप में अवतरित हुई, उसीप्रकार मागधी, महाराष्ट्री इत्यादि प्राकृतें भी अपभ्रंश अवस्था में पहुँचीं। पर अपभ्रंश-काल में साहित्यिक-रचना के लिये शौरसेनी-अपभ्रंश ही अपनाई गई। अतः इन अन्य अपभ्रंशों का परिचय पाने के लिये कोई साहित्यिक-रचना आज हमें नहीं मिलती।

अपभ्रंश और आधुनिक हिन्दी का सामीप्य निम्न उद्धृत पद्यों में देखा जा सकता है।

भल्ला हुआ जु मारिया, बहिणि, महारा कन्तु।
लज्जेजं तु वअस्सिअहु, जइ भग्गा घर एन्तु॥

(भला हुआ, बहिन, जो मेरा कन्त मारा गया ; जो भागा (भाग कर) घर आता तो वयस्याओं (सखियों) में मुझे लाज आती ।

पुत्तें जाए कवणु गुणु, अवगुणु कवणु मुएण ।
जा बप्पिक्की भुम्हडी, चम्पिज्जइ अवरेण ।।

[पूत जना (पैदा हुआ) तो, कौन गुण, मुआ (मरा) तो कौन अवगुण ? जिसके बाप की भूमि चाँपी जाए (हथियाई जाए) और से ।

नवीन-भारतीय-आर्य-भाषा; हिन्दी

ईसा की दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी तक भारतीय-आर्य-भाषा आधुनिक काल में पदार्पण कर चुकी थी । पैशाची, शौरसेनी, महाराष्ट्री एवं मागधी अपभ्रंश भाषाओं ने क्रमशः आधुनिक सिन्धी, पंजाबी, हिन्दी (ब्रजभाषा खड़ीबोली इत्यादि) राजस्थानी, गुजराती, मराठी, पूर्वी, हिन्दी (अवधी इत्यादि), बिहारी-बंगाली-उड़िया भाषाओं को जन्म दिया । प्राचीन-भारतीय-भाषा में परिवर्त्तन एवं ह्रास की जो क्रिया मध्यकाल के प्रारम्भ (लगभग ६०० ई० पूर्व) में चल पड़ी थी, वह आधुनिक भाषाओं के रूप में पूरी हुई । प्रारम्भ से ही हम देखते आए हैं कि परिवर्त्तन की गति आर्यावर्त्त के पूर्वीभाग में सबसे तीव्र रही है; इसके विपरीत उत्तर-पश्चिमप्रदेश में परिवर्त्तन की गति बहुत शिथिल रही है और वहाँ भाषा का स्वरूप बहुत धीरे-धीरे बदला है । मध्यदेश में जहाँ नवीन परिवर्त्तनों को प्रश्रय मिला, वहाँ प्राचीन रूप भी भाषा में सुरक्षित रहे । यही बात आधुनिक-भारतीय-आर्य-भाषाओं में भी परिलक्षित होती है । सिंधी-पंजाबी में आर्य-भाषा का मध्यकालीन स्वरूप बहुत कुछ सुरक्षित है; परन्तु प्राच्य-भाषा, बिहारी-बंगाली में मध्यकालीन आर्य-भाषा का स्वरूप बहुत बदल गया है, गुजराती, प्राचीन व्याकरण को बहुत अपनाए हुए है और हिंदी भी वर्णों के उच्चारण आदि में संस्कृत से अधिक दूर नहीं है ।

मध्य-भारतीय-आर्य-भाषा के प्रारम्भकाल से ही प्रकृति-प्रत्यय का ज्ञान धुंधला होने लगा था, जिससे स्वरों के मात्रा-काल में अनेक परिवर्त्तन हुए । नवीन-आर्य-भाषा की प्राचीन आर्य-भाषा से तुलना करने पर स्पष्ट विदित होता है कि व्युत्पत्ति-ज्ञान के लोप हो जाने से नवीन आर्य-भाषा में स्वरों के मात्राकाल में बहुत परिवर्त्तन हो गया है । बलात्मक-स्वराघात के परिणाम स्वरूप प्रायः नवीन भारतीय-आर्य-भाषाओं में स्वरों का लोप देखा जाता है । शब्द की उपधा में बलात्मक-स्वराघात होने पर अन्तिम दीर्घ स्वर ह्रस्व हो जाता है, यथा— कीरत् ∠ कीर्ति, रास् ∠ राशि; शब्द के आदि स्वर का लोप भी बलात्मक-स्वराघात का परिणाम है; यथा अभ्यन्तरं 7 हिं० भीतर, मराठी भीतरीं, अरघट्ट 7 हिं० रहट (प्रा० अरहट्ट)' ।

स्वरों तथा व्यञ्जनों के उच्चारण में भी किन्हीं आधुनिक-भारतीय आर्य-भाषाओं में नवीनता लक्षित होती है । बंगाली में 'अ' लुंठित निम्न-मध्य-पश्च स्वर है । मराठी में च्, ज् का उच्चारण 'त्स्' द्ज् हो गया है । पश्चिमीहिंदी एवं राजस्थानी में 'ऐ' 'औ' अग्र एवं पश्च-निम्न-मध्य ध्वनियाँ हैं । आधुनिक आर्य-भाषाओं में परिवर्त्तन की गति निम्नलिखित रूप में रही है—

(१) प्राकृत के समीकृत-संयुक्त-व्यंजनों 'क्क्, क्ख्, ग्ग्, ग्घ् इत्यादि' में से केवल एक व्यञ्जन ध्वनि लेकर पूर्ववर्त्ती ह्रस्व स्वर को दीर्घ करना, पञ्जाबी-सिंधी के अतिरिक्त सभी नवीन-भारतीय-आर्य-भाषाओं में दिखाई देता है, यथा—कर्म 7 प्राकृ० कम्म 7 हिं० काम (पं० कम्म); अद्य 7 प्राकृ० अज्ज 7 हिं० आज (पं० अज्ज), अष्ट 7 प्राकृ० अट्ठ 7 हिं० आठ (पं० अट्ठ)।

(२) नासिक्य व्यञ्जन + व्यञ्जन में नासिक्य—व्यञ्जन ध्वनि क्षीण होते-होते लुप्त हो गई और पूर्ववर्त्ती स्वर सानुनासिक हो गया। सिंधी-पंजाबी इस परिवर्त्तन से भी प्रायः मुक्त हैं, यथा दन्त 7 हिं० दाँत (पं० दन्द); कण्टक 7 प्रा० कण्टअ 7 हि० काँटा (सिन्धी कंडो); कम्प- 7 प्रा० कम्प- 7 हिं० काँप (सिन्धी-पं० कम्ब)।

(३) अग्रपश्चात् स्वर-ध्वनि-युक्त 'ड्, ढ्' अधिकांश नवीन-भारतीय-आर्य-भाषाओं में ताड़ित 'ड़्, ढ़्' अथवा कम्पित 'र्—र्ह' में परिणत हो गया है, यथा—दण्ड 7 प्रा० दण्ड-दण्ड 7 दाँड, डाँड़ आदि।

(४) पदान्त अथवा पदमध्यवर्त्ती इ (ई) + अ एवं उ (ऊ) + अ क्रमशः ई तथा ऊ (ऊ) में परिणत हो गए हैं, यथा घृत 7 प्रा० घिअ 7 आ० भा० घी; मृत्तिका 7 प्रा० मट्टिआ 7 आ० भा० माटी (हि० मिट्टी); वत्सरूप 7 प्रा० वच्छरुअ 7 आ० भा० भो० पु० बछरू, बं० बाछुर हि० बछड़ा।

(५) ध्वनि-परिवर्त्तन के साथ-साथ आधुनिक आर्य-भाषाओं में लिङ्ग-विपर्यय भी द्रष्टव्य है। संस्कृत, पालि, तथा प्राकृत में तीन लिङ्ग, पुंल्लिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग तथा क्लीब लिङ्ग, थे; किन्तु आधुनिक भाषाओं में पदान्त स्वरध्वनि में विकार उत्पन्न हो जाने अथवा उनका लोप हो जाने के कारण केवल दो लिङ्ग—पुंल्लिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग—रह गए। आधुनिक भाषाओं में गुजराती तथा मराठी ने आज भी क्लीब-लिङ्ग का कुछ-कुछ अस्तित्व वर्त्तमान है। सिंहली में प्राणी तथा अप्राणी वाचक शब्दों को लेकर प्राणवान तथा प्राणहीन, दो ही लिङ्ग हैं। अन्य आर्य-भाषाओं में जहाँ दो ही लिङ्ग—पुंल्लिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग मिलते हैं, वहाँ भी संस्कृत के पुल्लिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग का अनुगमन नहीं किया गया है। ध्वनि-विपर्यय अथवा अज्ञान के फलस्वरूप संस्कृत के अनेक पुंल्लिङ्ग तथा क्लीबलिङ्ग शब्द आधुनिक भाषाओं में स्त्रीलिङ्ग में परिणत हो गए हैं। यथा—

संस्कृत	आधुनिक भाषा
पुं० अग्नि	स्त्री०* अग्निका स्त्री० आग (हिं०) आगि (प्राचीन बंगला तथा भोजपुरी) अग्ग (पंजाबी)
पुं० इक्षु,* उक्षु	स्त्री० ईख, ऊख (हि) ऊस (गुजराती) पुं० ऊस (मराठी), इक्ख (पंजाबी)
पुं० देह	स्त्री० देह (हिन्दी, पंजाबी, गुजराती) पुं० देह (मराठी)
क्ली० दधि०	स्त्री० दही, दहीं (पंजाबी) डही (सिन्धी) पुं० दही (हिन्दी) क्ली० दहीं (मराठी, गुजराती)

(६) पदान्त में ध्वनि-परिवर्त्तन के परिणामस्वरूप शब्द-रूप के कतिपय चिह्न जो अपभ्रंश में बचे थे, उनका भी आधुनिक भाषाओं में लोप हो गया। दो एक को छोड़कर संस्कृत की विभक्तियाँ भी लुप्त हो गईं। इसीप्रकार कई कारकों का भी लोप हो गया और उनके अर्थ को स्पष्ट करने के लिए अनुसर्गों अथवा परसर्गों (Postpositions) का प्रयोग होने लगा। यदि ध्यानपूर्वक विचार किया जाय तो आधुनिक भाषाओं में केवल दो ही कारक रह गए हैं—(१) कर्त्ता अथवा (Direct) कारक (२) तिर्यक अथवा अप्रधान (Oblique) कारक। इनमें संस्कृत के प्रथम एवं तृतीया विभक्ति युक्त पद प्रधान कारक (Direct) तथा षष्ठी एवं सप्तमी विभक्ति-युक्त पद अप्रधान कारक (Oblique) के अन्तर्गत आयेंगे। आधुनिक आर्य-भाषाओं में वस्तुतः अप्रधान कारक (Oblique) में ही अनुसर्ग अथवा परसर्ग (Postposition) का प्रयोग होता है।

सिन्धी, मराठी तथा पश्चिमी-हिन्दी को छोड़कर अन्य आधुनिक भाषाओं में कर्त्ताकारक के एक वचन तथा बहुवचन के रूप एक हो गए हैं। इसका एक परिणाम यह हुआ है कि इन भाषाओं में बहुवचन वाचक शब्द अथवा षष्ठी विभक्ति से प्रसूत अनुसर्ग अथवा परसर्ग के योग से बहुवचन के रूप बनाये जाते हैं। यथा :—बंगला, लोकेरा < लोक-कार्य ; उड़िया, पुरुष-माने < पुरुष-मानवक—असमिया,—बोर < -बहुल,-हँत < सन्त; मैथिली, लोकनि, भोजपुरी, लोगनि < लोकानाम् ; घोड़वन < घोटकानाम् इत्यादि।

सिन्धी, मराठी तथा पश्चिमी-हिन्दी में कर्त्ता कारक बहुवचन के कई रूप आज भी उपलब्ध हैं। यथा :—

	एकवचन	बहुवचन
सिन्धी	पिउ (< पिता)	पिउर (< पितरः)
	डेह् (< देशः)	डेह (< देशाः)
मराठी	माल् (< माला)	माला (< मालाः)
	रात् (< रात्रिः)	राती (< रात्रयः)
	सूत् (< सूत्रम्)	सूतें (< सूत्राणि)
पश्चिमी-हिंदी	बात् (< वार्त्ता)	बातइँ < बातें (< * वार्त्तानि)

पश्चिमी-हिन्दी में अकारान्त संज्ञा के चार ऐसे रूप उपलब्ध हैं जिनका प्राचीन कारक-रूपों से सम्बन्ध है। वे हैं—प्रथमा एकवचन, तृतीया बहुवचन, सप्तमी एकवचन तथा षष्ठी बहुवचन के रूप। इनमें तृतीया बहुवचन का रूप तो कर्त्ता बहुवचन में प्रयुक्त होता है। नीचे हिन्दी की अन्य बोलियों के रूपों से तुलना करते हुए इसपर विचार किया जाता है।

आधुनिक हिन्दी तत्सम तथा तद्भव संज्ञा-पदों से संस्कृत की प्रथमा विभक्ति लुप्त हो गई है; किन्तु पुरानी हिन्दी, नेपाली तथा हिमालय की पर्वतीय बोलियों में 'उ' विभक्ति के रूप में यह वर्तमान है। यह 'उ' वस्तुतः प्राकृत तथा संस्कृत की प्रथमा एकवचन विभक्ति ओ एवं—अस् (सु) का प्रतिरूप है। उदाहरणस्वरूप सं० देशः >प्रा० देस-7 ऊपर की बोलियों में देसु। इसी प्रकार सं० लाभः 7 प्रा० लाहो 7 (रामचरित मानस की

अवधी लाहु), आधुनिक हिन्दी लाभ। किन्तु आधुनिक हिन्दी के तद्भव, आकारान्त, प्रथमा एक वचन के रूप संस्कृत अकारान्त में स्वार्थे—क प्रत्यय जोड़ने के बाद प्रसूत हुए हैं यथा :—हिं० घोड़ा < सं० घोटकः (व्रजः—घोड़ौ, मारवाड़ी :—घोड़ो) ।

आधुनिक हिन्दी के कर्त्ता बहुवचन का रूप घोड़े वस्तुतः संस्कृत के तृतीया बहुवचन के रूप से निष्पन्न हुआ है। यथा :—वै० सं० घोटकेभिः = हि० कर्त्ता, बहुवचन घोडहिं > घोडे।

घोडे शब्द तिर्यक अथवा अप्रधान (Oblique cases) कारकों के एक वचन में भी प्रयुक्त होता है। इसकी उत्पत्ति संस्कृति के अधिकरण, एक वचन के रूप से हुई है। यथा :—घोटकथि = घोडअहि 7 घोड़े।

इसीप्रकार आधुनिक हिन्दी के तिर्यक्, बहुवचन के रूप घोड़ों की उत्पत्ति, संस्कृत के षष्ठी के बहुवचन के रूप घोटकानाम् से हुई है। हिन्दी की ग्रामीण बोलियों में घोडन तथा घोडाँ रूप भी मिलते हैं।

व्यंजनान्त शब्दों के रूप तो हिन्दी में और भी सरल तथा कम हो गए हैं यथा :—सं० प्रथमा, ए० व० पुत्रः 7 हिन्दी, पूत ; प्रथमा व० व० पुत्राः 7 हिन्दी पूत ; सप्तमी ए० व० पुत्रे 7 पूत ; षष्ठी व० व० पुत्राणाम् 7 हिन्दी, पूतों।

हिन्दी अनुसर्गों अथवा परसर्गों (Postpositions) की उत्पत्ति

यह अन्यत्र कहा जा चुका है कि आधुनिक भाषाओं में कारकों की संख्या कम हो जाने के कारण जब अर्थ अथवा भाव स्पष्ट करने में कठिनाई होने लगी तो उसे दूर करने के लिए अनुसर्गों (Postpositions) का प्रयोग होने लगा। इसप्रकार के अनुसर्ग (Postpositions) आधुनिक हिन्दी, बँगला, मराठी, गुजराती, सिन्धी, उड़िया तथा असमिया आदि सभी भाषाओं में मिलते हैं। इनकी उत्पत्ति का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है।

हिन्दी के कर्त्ता कारक में 'ने' अनुसर्ग का प्रयोग होता है। पहले भाषा विज्ञानियों का विचार था कि इसकी उत्पत्ति संस्कृत के अकारान्त संज्ञाओं के करण कारक के चिह्न 'एन' से हुई हैं, किन्तु बाद में ध्वनि-परिवर्तन एवं ऐतिहासिक व्याकरण-सम्बन्धी कठिनाइयों के कारण यह मत अस्वीकृत हो गया। बीम्स तथा बेली इसकी उत्पत्ति का सम्बन्ध नेपाली 'ले' अनुसर्ग से,बतलाते हैं। आप लोगों के अनुसार उसकी उत्पत्ति 'लग्' धातु से निम्नलिखित रूप में हुई हैं :—

संस्कृत भूतकालिक कृदन्तीय रूप लग्य 7 प्रा० लग्गिओ 7 हिन्दी, लगि, लै, ले ने। डा० चटर्जी (दे० इंडो एरियन एंड हिन्दी पृ० ११८) तथा डा० सुकुमारसेन के अनुसार इसकी उत्पत्ति 'कर्णे' से निम्नलिखित रूप में हुई है :—

सं० कर्णे 7 प्रा० करण—7 अन—7 ने

राजस्थानी—गुजराती के सम्प्रदान कारक में ने, पंजाबी के सम्प्रदान कारक में नुँ तथा गुजराती के सम्बन्ध कारक में नो, नी ना नु अनुसर्ग प्रयुक्त होते हैं। इनकी भी उत्पत्ति वस्तुतः 'ने' की भाँति सं० कर्णे से ही हुई है।

हिन्दी में कर्म तथा सम्प्रदान के लिए प्रायः एक ही अनुसर्ग को का प्रयोग किया जाता है। बीम्स तथा चटर्जी, दोनों, इसकी व्युत्पत्ति कक्ष से निम्नलिखित रूप में मानते हैं—कक्ष 7 कक्ख > कख 7 कह 7 हिं० चतुर्थी रूप कहु 7 को। डा० सुकुमार सेन हिन्दी 'को' (कर्म तथा चतुर्थी) तथा हिन्दी के षष्ठी 'का' 'की' एवं बंगला और उड़िया के सम्बन्ध कारक के अनुसर्ग—'क' की उत्पत्ति कृत 7 प्रा० कअ से मानते हैं।

सं० कार्य (अर्द्धतत्सम रूप ॐ कैर) 7 कैर—केल से बंगला षष्ठी कारक के—'एर,—र' की उत्पत्ति है, किन्तु इसी कार्य के तद्भव रूप कय्य 7 कज्ज से सिन्धी सम्बन्ध कारक चिह्न—जो, जी की उत्पत्ति हुई है।

मराठी में षष्ठी का चिह्न चा, ची तथा चे हैं। इसकी उत्पत्ति सं० कृत्य 7 प्रा० कच्च से हुई है।

हिन्दी में करण तथा अपादान में से, सों अनुसर्गों का प्रयोग होता है। इसकी उत्पत्ति संस्कृत तथा प्राकृत सम से हुई है।

इसीप्रकार हिन्दी तथा गुजराती के अधिकरण में मों मैं मों अनुसर्ग प्रयुक्त होते हैं। इनकी उत्पत्ति निम्नलिखित रूप में हुई है—

मध्य > मध प्रा० ॐ मध, मह 7 मैं, मों में

हिन्दी-काल-रचना

हिन्दी की काल रचना को समझने के लिए संस्कृत के काल तथा प्रकारों (Tenses and moods) को हृदयङ्गम कर लेना अच्छा होगा। ये इस प्रकार है—

(१) वर्तमान काल	लट्	(Present tense)
(२) आज्ञा	लोट्	(Imperative mood)
(३) विधि	विधिलिङ्	(Potential mood)
(४) अनद्यतन भूत	लङ्	(Imperfect tense)
(५) परोक्षभूत	लिट्	(Perfect tense)
(६) सामान्यभूत	लुङ्	(Aorist)
(७) अनद्यतनभविष्य	लुट्	(First future)
(८) सामान्यभविष्य	लृट्	(Simple future)
(९) आशीः	आशीर्लिङ्	(Benedi ctive)
(१०) क्रियातिपत्ति	लृङ्	(Conditionl)

पाणिनीयव्याकरण में इन्हें दस लकार भी कहते हैं। प्राकृत तथा अपभ्रंश में इन लकारों की संख्या बहुत कम हो गई और आधुनिक भाषाओं में तो इनकी संख्या और भी कम हो गई। हिन्दी में इनमें से केवल तीन ही, लट् (वर्तमान), सामान्यभूत (जि की उत्पत्ति कर्मवाच्य कृदन्तीय रूपों से हुई) तथा लृट् (सामान्यभविष्य) के रूप मिलते हैं। अध्ययन की सुविधा तथा उत्पत्ति की दृष्टि से हिन्दी कालों का वर्गीकरण निम्नलिखित रूप में किया जा सकता है।—

(१) मूलात्मक काल (Radical tense) इसकी उत्पत्ति संस्कृत लिट् से हुई है।

(२) कृदन्तीय काल

(क) वर्तमान के कृदन्तीय रूप अथवा शब्द अन्त से प्रसूत।
(ख) भूतकालिक कृदन्त—त अथवा—इतसे प्रसूत।
(i) ष्य> —ह भविष्य के रूप।
(ii) —व— भविष्य के रूप।
मूलात्मक काल अथवा (Radical tinse) वर्तमान काल

वर्तमान काल

	एक वचन			बहुवचन		
	संस्कृत	प्राकृत	हिन्दी तथा उसकी बोलियों के रूप	संस्कृत	प्राकृत	हिन्दी तथा उसकी बोलियों के रूप
१	चलामि	चलामि, चलम्हि	चलऊँ, चल्यौ [चलूँ] आदि	चलामः	चलम, चलम्हो, चलम्ह	चला, चलउँ, चलूँ, चलहिं, [चलैं] [चलें] चलिं, चलन चलीं आदि
२	चलसि	चलसि	चलसि, चलहि, चलह [चलै] [चले]	चलथ	चलाम्रु, चलधम, चलह	चलुह, चलउ [चलो], चला आदि
३	चलति	चलदि चलह चलत्थि	चलहि, चलह, चलै [चले]	चलन्ति	*चलहन्ति चलेन्ति चलज	चलहिं चलन, चलइं [चलैं] [चलें] चलै चलीं, चले आदि,

* "ऊपर की तालिका में हिन्दी (खड़ी बोली) क्रिया के रूप कोष्ठ [ ] में दिए गए हैं।

हिन्दी के आज्ञा के रूपों (वह चले) आदि पर संस्कृत के वर्तमान काल तथा आज्ञा, दोनों, के रूपों का प्रभाव पड़ा है, यथा चलति+चलतु>चलदु, चलउ> चले। प्रायः हिन्दी की अन्य बोलियों में भी यही प्रक्रिया चली है। बीम्स और उनके

आधार पर कैलॉग तो केवल संस्कृत आज्ञा के रूपों से हिन्दी के आज्ञावाची रूपों की व्युत्पत्ति मानते हैं। नीचे की तालिका में ये रूप दिए जाते हैं—

	एकवचन			बहुवचन		
	संस्कृत	प्राकृत	हिन्दी	संस्कृत	प्राकृत	हिन्दी
१	चलानि	चलामु	[चलूँ]	चलाम	चलामो	[चलें]
२	चल	चलसु चलहि चल	[चल]	चलत	चलह, चलधं	चलहु, चलउ [चलो]
३	चलतु	चलदु, चलउ	चलु [चले]	चलन्तु	चलन्तु	[चलें]

ऊपर की तालिका में हिन्दी के रूप कोष्ठ में दिए गए हैं। इन रूपों की पहले की तालिका [वर्तमान] के रूपों से तुलना करने से स्पष्ट हो जाता है कि केवल मध्यमपुरुष के रूपों को छोड़कर अन्यरूप वर्तमान के ही समान हैं। इसी कारण ग्रियर्सन का यह स्पष्ट मत है कि ये रूप भी संस्कृत लट् (वर्तमान) के रूपों से ही प्रसूत हुए हैं।

हिन्दी में, मध्यमपुरुष बहुवचन में, आदर प्रदर्शित करने के लिए, कभी-कभी लीजिये, कीजिये, आदि आज्ञा के रूपों का प्रयोग होता है। इसकी उत्पत्ति संस्कृत के-य कर्मवाच्य से हुई है। संस्कृत में, धातु में, —य जोड़कर कर्मवाच्य का रूप सम्पन्न होता था। प्रथम प्राकृत युग में यह—य,-इय—इय्य, ईय, रूप में तथा बाद की प्राकृत में—-इज्ज, या—ईअ रूप में मिलता है। आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में—इज्ज>—ईज तथा ईअ>इअ हो गया है। यह अपभ्रंश से आया है, किन्तु सभी भाषाओं में वर्तमान नहीं है। आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओं के इतिहास के प्रारम्भिक युग से ही कर्मवाच्य का भाव विश्लेषणात्मक रीति से प्रकट किया जाने लगा तथा प्रत्यय के संयोग से कर्मवाच्य बनाने की विधि का लोप होने लगा। पश्चिम की भाषाओं तथा बोलियों में प्रत्यय के संयोग से निर्मित कर्मवाच्य पद मिलते हैं, किन्तु मध्यदेश, दक्षिण तथा पूरब की भाषाओं में इनका लोप हो गया है और केवल पुरानी भाषाओं में इसके कहीं-कहीं उदाहरण मिलते हैं।

प्रत्यय-संयोगी-कर्मवाच्य [Inflected passive] सिन्धी तथा वैकल्पिक रूप से राजस्थानी [मारवाड़ी], नेपाली, तथा पंजाबी में मिलता है। यह धातु में निम्नलिखित प्रत्ययों के जोड़ने से सम्पन्न होता है। यथा—

सिन्धी—इज् राजस्थानी (मारवाड़ी)—ईज्
नेपाली—इय पंजाबी —ई
यथा—सिन्धी—दिजे, पिजे, दिये जाने दो, पिए जाने दो।

नैपाली—पढ़िये।

पंजाबी—पढ़िए।

मारवाड़ी—पढ़ीजै आदि।

(५) कृदन्तीयकाल

आधुनिक हिन्दी में यह दो रूपों में मिलता है। (क) वर्तमान कृदन्तीय अथवा शतृवाचक वर्तमान के रूप में, यथा करता, देखता, चलता होता आदि। इनकी उत्पत्ति शतृ—अन्त से हुई है। [ख] भूतकालिक कृदन्त—त अथवा—इत से; यथा गतः>गअ, गया, चलितः>चलिअ>चला आदि। कृदन्तीय रूप होने के कारण इनके स्त्रीलिङ्ग रूप भी, हिन्दी में, स्वाभाविक रूप में आए हैं। यथा—संस्कृत—स गतः (पुंल्लिङ्ग)>हिन्दी—वह गया (पुल्लिङ्ग) किन्तु संस्कृत सा गतवती (स्त्रीलिङ्ग)>हिन्दी—वह गयी (स्त्रीलिङ्ग) (२) खड़ी बोली में, भविष्यत् के रूप—गा लगाकर सम्पन्न होते हैं। यथा, मैं जाऊँगा, वह चलेगा आदि। किन्तु व्रजभाषा तथा कन्नौजी आदि में—स्य>ह—भविष्यत के रूप वर्तमान हैं, यथा, चलिहौं देखिहौं आदि। नीचे की तालिका से इन रूपों की व्युत्पत्ति स्पष्ट हो जायेगी।

	एकवचन			बहुवचन		
	संस्कृत	प्राकृत	व्रज	संस्कृत	प्राकृत	व्रज
१	चलिष्यामि	चलिस्सामि, चलिहिमि, चलिस्सउँ	चलिहिउँ, चलिहौं	चलिष्यामः	चलिस्सामो, चलिहिमो, चलिस्सहुँ	चलिहिहुँ, चलिहैं
२	चलिष्यसि	चलिस्ससि, चलिस्सहि, चलिस्सइ, चलिहिसि, चलिहिहि, चलिहिइ	चलिहै	चलिष्यथ	चलिस्सह, चलिस्सहु, चलिहिहु, चलिहिह	चलिहौ
३	चलिष्यति	चलिस्सइ, चलिस्सहि, चलिस्सइ, चलिहिइ, चलिहिहि, चलिहिइ	चलिहै	चलिष्यन्ति	चलिस्सन्ति, चलिस्सहिं, चलिहिहिं	चलिहैं

भोजपुरी मध्यपुरुष एक वचन, तथा बहुवचन एवं अन्य पुरुष एक वचन में भी ह—भविष्यत्
S S
के रूप वर्तमान हैं। यथा—तू चलिह, तोहन लोग चलिह, उ चलिहें आदि। अवधी में भी ह-भविष्यत् के रूप वर्तमान हैं ; यथा, होइहें वही जो राम रचि राखा। (मानस)

ब—भविष्यत् के रूप अवधी, भोजपुरी, मैथिली, मगही, बँगला आदि प्राच्य-भाषाओं तथा बोलियों में वर्तमान हैं। इसकी उत्पत्ति संस्कृत-कर्म वाच्य-कृदन्तीय-प्रत्यय-तव्य से हुई है। अवधी उत्तम पुरुष एक वचन में आउब, जाब रूप होते हैं। यथा—पुनि आउब इहि बिरियाँ काली (रामचरित मानस)। इसी प्रकार भोजपुरी में हम आइबि, जाइबि रूप मिलते हैं।

हिन्दी-संयुक्तकाल

आधुनिक खड़ीबोली', हिन्दी में, अँग्रेजी की भाँति ही 'हूँ', 'है' 'था' तथा 'गा' सहायक क्रियाओं की सहायता से संयुक्तकाल की रचना होती है। नीचे अस्त्यर्थक 'होना' धातु के रूप विभिन्न कालों में दिए जाते हैं :—

शतृवाचकवर्तमान	=	होता।
सामान्यवर्तमान	=	है।
संम्भाव्यवर्तमान	=	हो, होवे।
घटमानवर्तमान	=	होता है।
पुराघटितवर्तमान	=	हुआ है।
सामान्यअतीत	=	था (अस्तित्व वाचक)।
		हुआ (घटना वाचक)।
घटमानअतीत	=	होता था।
पुराघटितअतीत	=	हुआ था।
सामान्यभविष्यत्	=	होगा।
घटमानभविष्यत्	=	होता होगा।
सम्भाव्यभविष्यत्	=	हुआ होगा।

इसी प्रकार अन्य धातुओं से भी सहायक क्रियाओं की सहायता से क्रिया पद सम्पन्न होते हैं। नीचे इन सहायक क्रियाओं की व्युत्पत्ति दी जाती है।

हूँ तथा है की उत्पत्ति अस् से निम्नलिखित रूप में हुई है—

अस्मि > अस्मि अम्हि > हूँ।

अस्ति > अत्थि > अहइ, अहै > है।

भवति > होइ > होवे।

'था' की व्युत्पत्ति में किञ्चित् मतभेद है। कुछ लोग इसकी व्युत्पत्ति निम्नलिखित ढंग से देते हैं—

स्थित > थिअ > था; किन्तु इसकी ठीक व्युत्पत्ति इसप्रकार प्रतीत होती है—

सन्त के स्थान पर असन्त > अहन्त > हन्तौ > हतौ > था इसीप्रकार भविष्यत् के—गा [चलेगा] की उत्पत्ति गतः से इस रूप में हुई है—

गतः > गअ > गा।

आधुनिक आर्यभाषाओं तथा बोलियों का वर्गीकरण

भीतरी तथा बाहरी उपशाखा

सन् १८८० में, आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के अध्ययन के आधार पर डा० ए० एफ० आर० हार्नले ने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि भारत में आर्यों के कम से कम दो आक्रमण हुए। पूर्वागत आक्रमणकारी आर्य, पंजाब में बस गए थे। इसके बाद आर्यों का दूसरा आक्रमण हुआ। मध्यएशिया से चलकर आर्यों के इस दूसरे समूह ने काबुल नदी के मार्ग से गिलगित एवं चित्राल होते हुए मध्यदेश में प्रवेश किया। मध्यदेश की सीमा उत्तर में हिमालय, दक्षिण में विन्ध्यपर्वत, पश्चिम में सरहिन्द तथा पूरब में गंगा-यमुना के संगम तक थी। इस दूसरे आक्रमण का परिणाम यह हुआ कि पूर्वागत आर्यों को तीन दिशाओं—पूरब, दक्षिण तथा पश्चिम में फैलने के लिए बाध्य होना पड़ा। इन नवागत आर्यों ने ही वस्तुतः सरस्वती, यमुना तथा गंगा के तट पर यज्ञपरायण संस्कृति को पल्लवित किया। उन्हें मध्यदेश अथवा केन्द्र में होने के कारण केन्द्रीय या भीतरी आर्य के नाम से अभिहित किया गया और चारों ओर फैले हुए पूर्वागत आर्य बाहरी आर्य कहलाये।

डा० हार्नले के ऊपर के सिद्धान्त का डा० ग्रियर्सन ने अपने भाषा सम्बन्धी अन्वेषणों के आधार पर पहले लिंग्विस्टिक सर्वे भाग १ खण्ड १ पृ० ११६ में तथा बाद में 'बुलेटिन ऑव द स्कूल ऑव ओरियंटल स्टडीज, लंडन इंस्टिट्यूशन' भाग १, खंड ३, १९२० पृ० ५२ में समर्थन किया है। डा० ग्रियर्सन का दूसरा निबन्ध पहले की अपेक्षा विस्तृत और बड़ा है। इसमें आपने विविध आधुनिक भाषाओं से उदाहरण देकर अपने सिद्धान्त का समर्थन किया है। यद्यपि आर्यों के आक्रमण आदि के सम्बन्ध में ग्रियर्सन का हार्नले से मौलिक मतभेद है तथापि जहाँ तक भीतरी तथा बाहरी भाषाओं से सम्बन्ध है, दोनों विद्वानों का मत एक है। डा० ग्रियर्सन ने लिंग्विस्टिक सर्वे भाग १ खंड १ पृ० १२० में आधुनिक आर्य भाषाओं का निम्नलिखित वर्गीकरण दिया है—

[क] बाहरी उपशाखा

I उत्तर पश्चिमी समुदाय

१. लहंदा अथवा पश्चिमी पंजाबी

२. सिन्धी

II दक्षिणी समुदाय

३. मराठी

III पूर्वी समुदाय

४. उड़िया

५. बिहारी

६. बंगाली

७. असमिया

[ख] मध्य-उपशाखा

IV बीच का समुदाय

८. पूर्वी हिन्दी

[ग] भीतरी उपशाखा

V केन्द्रीय अथवा भीतरीसमुदाय

९. पश्चिमी हिन्दी

१०. पंजाबी

११. गुजराती

१२. भीली

१३. खानदेशी

१४. राजस्थानी

VI पहाड़ी समुदाय

१५. पूर्वी पहाड़ी अथवा नेपाली

१६. मध्य या केन्द्रीय पहाडी

१७. पश्चिमी पहाड़ी

यह कहा जा चुका है कि नवागत आर्यों ने मध्यदेश को ही अपना निवास-स्थान बनाया था और यहीं पर यज्ञपरायण वैदिक-संस्कृति की नींव पड़ी थी। वास्तव में इस मध्य-देश को ही दृष्टि में रखकर ग्रियर्सन ने आधुनिक आर्य-भाषाओं तथा बोलियों का विभाजन, दो मुख्य उपशाखाओं में किया है। इनमें से एक उपशाखा की भाषा तो आज भी उस क्षेत्र में बोली जाती है जो प्राचीन मध्यदेश था तथा दूसरी उपशाखा की भाषा उस वृत्त के तीन चौथाई भाग में प्रचलित है; जो पाकिस्तान स्थित हज़ारा ज़िले से प्रारम्भ होकर पश्चिमी पंजाब, सिन्ध, महाराष्ट्र, मध्यभारत, उड़ीसा, बिहार, बंगाल तथा असम प्रदेश को स्पर्श करता है। गुजरात की भाषा को ग्रियर्सन ने केन्द्रीय अथवा भीतरी उपशाखा के अन्तर्गत ही रक्खा है; क्योंकि वस्तुतः मध्यदेश स्थित मथुरावालों ने इस प्रदेश पर आधिपत्य किया था। इस प्रकार भौगोलिक दृष्टि से बाहर स्थित होते हुए भी गुजरात, भाषा की दृष्टि से, केन्द्रीय अथवा भीतरी समूह के अन्तर्गत है।

बाहरी तथा केन्द्रीय या भीतरी उपशाखा सम्बन्धी उपरी वर्गीकरण का आधार, डा० ग्रियर्सन के अनुसार, वस्तुतः इन दोनों उपशाखाओं में प्रचलित भाषाओं के व्याकरण की भिन्नता है। इस सम्बन्ध में नीचे विचार किया जाता है।

ध्वनितत्त्व—ध्वनितत्त्व की दृष्टि से दोनों उपशाखाओं में पर्याप्त अन्तर हैं। सबसे पहले ऊष्म वर्णों (श, ष, स) को लिया जाता है। केन्द्रीय अथवा भीतरी उपशाखा में ये दन्त्य स के रूप में उच्चरित होते हैं। प्राचीन प्राकृत-वैयाकरणों के अनुसार प्राच्य (मागधी) में यह 'स' 'श' में परिणत हो गया है। बंगाल तथा महाराष्ट्र के कुछ भाग में 'स' आज भी 'श' रूप मे ही उच्चरित होता है, किन्तु पूर्वी बंगाल तथा असम (आसाम) प्रदेश में यह 'ख्' हो जाता है। इसके विपरीत उत्तरी-पश्चिमी-सीमान्त-प्रदेश तथा कश्मीर मे यह 'ह' हो गया है।

शब्दरूप—संज्ञा के शब्द रूपों में भी इन दोनों उपशाखाओं में स्पष्ट अन्तर है। केन्द्रीय (भीतरी) उपशाखा की भाषाएं तथा बोलियाँ वस्तुतः विश्लेषणात्मक अवस्था में

है। इनमें प्राचीन कारकों के रूप, विलुप्त हो चुके हैं और संज्ञा पदों के रूप का, की, से आदि अनुसर्गों (Postpositions) की सहायता से सम्पन्न होते हैं। बाहरी उपशाखा की भाषाएँ विकास की परम्परा में एक कदम आगे बढ गई हैं। पहले संस्कृत की भाँति ही ये संश्लिष्टावस्था मे थीं, इसके बाद ये विश्लेषावस्था से संश्लिष्टावस्था की ओर उन्मुख हैं। इसका सर्वोत्तम उदाहरण बंगाल की–एर विभक्ति है जो संज्ञा से संश्लिष्ट हो जाती हैं—यथा, हिन्दी—राम की पुस्तक ; किन्तु बंगला—रामेर बोई।

क्रियारूप—इन दोनों उपशाखाओं के क्रिया रूपों में भी भिन्नता है। इस सम्बन्ध में विशेष रूप से विचार करने की आवश्यकता है। मोटे तौर पर आधुनिक आर्य-भाषाओं तथा बोलियों में संस्कृत के दोनों कालों (Tenses) तथा तीन कृदन्तों (Participles) के रूप मिलते है। ये हैं, वर्तमान (लट्), भविष्यत् (लृट) तथा वर्तमान कर्तृवाच्य एवं अतीत और भविष्यत् के कर्मवाच्य के कृदन्तीय रूप। संस्कृत के अतीतकाल के रूप, आधुनिक आर्य-भाषाओं से विलुप्त हो गए। प्राचीन वर्तमान अथवा लट् के रूप प्रायः सभी भाषाओं में वर्तमान हैं। हाँ, यह अवश्य है कि इनमे ध्वन्यात्मक तथा अर्थगत परिवर्तन हुए हैं; उदाहरण स्वरूप कश्मीरी में ये भविष्यत् निर्देशक (Future Indicative) हो गए हैं तथा हिन्दी मे इनका प्रयोग सम्भाव्य वर्तमान (Present Subjunctive) के रूप में होता है। भविष्यत् (लृट्) के रूप, ह-भविष्यत् के रूप में, केवल पश्चिमी भारत की भाषाओं तथा बोलियों में वर्तमान है। अन्य आधुनिक आर्यभाषाएँ ब—भविष्यत् के रूप में संस्कृत के भविष्यत्काल के कर्मवाच्य के कृदन्तीय रूप का प्रयोग करती हैं। इसप्रकार जब इनके बोलनेवाले यह कहना चाहते हैं—मैं पीटूँगा तो वास्तव में वे कहते हैं—यह मेरे द्वारा पीटा जानेवाला है। संस्कृत के अतीतकाल के रूप आधुनिक आर्य-भाषाओं में लुप्त हो गए हैं और उनके स्थान पर अतीत कर्मवाच्य के कृदन्तीयरूप व्यवहृत होते हैं। इसप्रकार मैंने उसे पीटा के स्थान पर आधुनिक भाषाओं में वह मेरे द्वारा पीटा गया प्रयुक्त होता है। इस सम्बन्ध में केन्द्रीय अथवा भीतरी उपशाखा तथा बाहरी उपशाखा की भाषाओ एवं बोलियों मे उल्लेखनीय अन्तर है। यहाँ यह विचारणीय है कि कर्मवाच्य कृदन्तीय रूपों के साथ कर्त्ता 'मैं' वस्तुतः 'मेरे द्वारा' में परिणत हो जाता है। संस्कृत में मेरे द्वारा के 'मया' तथा लघु रूप में 'मे', दो रूप मिलते हैं। इनमें मया की तो स्वतन्त्र सत्ता थी, किन्तु मे अपने पूर्व शब्द के साथ जुट जाता था। इसीप्रकार मध्यम पुरुष सर्वनाम के 'त्वया' 'ते' रूप मिलते हैं। लैटिन तथा इतालीय भाषाओं में भी यही प्रक्रिया चलती है। आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओं के अध्ययन से यह स्पष्ट विदित होता है कि बाहरी उपशाखा की भाषाओं का सम्बन्ध प्राचीन संस्कृत की उस बोलचाल की भाषा से है जो कर्मवाच्य के कृदन्तीय रूपों के साथ सर्वनाम के लघु रूपों को व्यवहृत करती थी, किन्तु केन्द्रीय अथवा भीतरी उपशाखा की भाषाओं की उत्पत्ति उस बोलचाल की प्राचीन संस्कृत से हुई है जो सर्वनाम के इन लघु रूपों का व्यवहार करती थी। इसका परिणाम यह हुआ है कि केन्द्रीय अथवा भीतरी उपशाखा की भाषाओं में प्रत्येक पुरुष तथा वचन मे क्रिया के एक ही रूप का व्यवहार होता है। उदाहरणस्वरूप मैंने मारा, हमने मारा, तू ने मारा, तुमने मारा, उसने मारा, उन्होंने मारा, आदि में 'मारा' रूप अपरिवर्तित रहता है; किन्तु बाहरी उपशाखा में सर्वनाम के लघुरूप,

कृदन्तीय रूपों में अन्तर्भुक्त हो जाते हैं और इसके फलस्वरूप विभिन्न पुरुषों के क्रियापदों के रूप भी परिवर्तित हो जाते हैं। क्रिया के इन दोनों प्रकार के रूपों ने भीतरी तथा बाहरी उपशाखा की भाषाओं को दो विभिन्न दिशाओं की ओर उन्मुख किया है। भीतरी उपशाखा की भाषाओं तथा बोलियों का व्याकरण बाहरी उपशाखाओं की भाषाओं तथा बोलियों के व्याकरण से अपेक्षाकृत संक्षिप्त तथा सरल है।

अपने दूसरे निबन्ध में ग्रियर्सन ने भीतरी तथा बाहरी उपशाखा के सम्बन्ध में और भी गहराई के साथ विचार किया है। जिसके अनुसार आधुनिक आर्यभाषाएँ तथा बोलियाँ, दो भागों में, विभक्त हो जाती हैं। अपने इस लेख में ग्रियर्सन ने भीतरी उपशाखा के अन्तर्गत केवल पश्चिमी हिन्दी को स्थान दिया है। इसके अतिरिक्त भारत की आधुनिक अन्य आर्यभाषाएँ बाहरी अथवा अवैदिक अथवा असंस्कृत अथवा हार्नले की तथाकथित मागधी के अन्तर्गत आती हैं। सिंहल की सिंहली भाषा तथा भारत के बाहर की जिप्सी भाषा भी इस बाहरी उपशाखा के अन्तर्गत ही आती है।

प्रसिद्ध भाषा-शास्त्री डा० सुनीति कुमार चटर्जी ने ग्रियर्सन के इस वर्गीकरण की आलोचना अपनी पुस्तक 'ओरिजिन एण्ड डेवलपमेंट आफ बेंगाली लैंग्वेज' के परिशिष्ट 'ए' के पृष्ठ १५० से १५६ में की है। नीचे दोनों विद्वानों के विचार दिए जाते हैं।

ध्वनितत्त्व

(डा० ग्रियर्सन)

(१) बाहरी उपशाखा की उत्तरीपश्चिमी तथा पूर्व की बोलियों में अन्तिम स्वर—इ,—ए, (तथा—उ) वर्तमान हैं; किन्तु भीतरी उपशाखा की पश्चिमी हिन्दी में, ये स्वर लुप्त हो गए हैं; यथा—कश्मीरी, अछि, सिन्धी, अखि, बिहारी (मैथिली-भोजपुरी) आँखि किन्तु हिन्दी, आँख।

(डा० चटर्जी)

प्रायः सभी भारतीय आर्यभाषाओं में किसी-न-किसी समय अन्तिम स्वर वर्तमान थे। उड़िया तथा पूर्वीहिन्दी एवं पश्चिमीहिन्दी की कई उपभाषाओं में अन्तिम स्वर आज भी विद्यमान हैं। मैथिली, भोजपुरी तथा सिन्धी इसी अवस्था में हैं, यद्यपि मैथिली तथा भोजपुरी की कई बोलियों से अन्तिम स्वर लुप्त होने के मार्ग में हैं। (बनारस की पश्चिमी भोजपुरी में आँखि>आँख्)। हिन्दी, मराठी तथा गुजराती से भी अन्तिम स्वर लुप्त हो चुके हैं; यथा—बँगला आँख्। इसीप्रकार हिन्दी, सुमिरन्, सन्ताप्, दाग्, उचित्, सुख्, दुख्, तथा पुत्र्, कलत्र्, आदि से अन्तिम स्वर का लोप हो गया है। १७ वीं शताब्दी के मध्य तक हिन्दी (ब्रजभाषा) में भी अन्तिम स्वर वर्तमान थे। यह बात उस युग के ब्रजभाषा के ग्रंथों के देखने से स्पष्ट हो जाती है। आज भी मध्यदेश की प्रतिनिधि बोलियों—ब्रजभाषा तथा कन्नौजी—में, अन्तिम स्वर -इ, उ वर्तमान हैं, यथा—बाँटु (हिस्सा, अलीगढ़ की ब्रजभाषा), मालु (हिन्दी, माल्=धन), सबु (=हिन्दी सब्), अकालु (=हिन्दी अकाल्), कंगालु (हि० कंगाल्), फिरि (=हि० फिर्) रामचरितमानस की कोसली (अवधी) में भी अन्तिम -इ, -उ के अनेक उदाहरण मिलते हैं। आधुनिक कोसली में भी ये स्वर वर्तमान हैं; यथा—साँचु, झूठु, हाथु, दिनु, अगहनु, आदि।

ऊपर के अपवादों के रहते हुए, अन्तिम स्वर -इ तथा -उ की उपस्थिति के आधार पर आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का भीतरी तथा बाहरी उपशाखाओं में विभक्त करना युक्ति-युक्त न होगा।

(२) (ग्रियर्सन)

बाहरी उपशाखा की भाषाओं—विशेषतया पूर्वी मागधी (बँगला, उड़िया तथा असमिया)—में अपिनिहिति (Epenthesis) वर्तमान है। इसीप्रकार उत्तर तथा पश्चिम की कतिपय भाषाओं में भी अपिनिहिति वर्तमान है। अपिनिहिति वास्तव में बाहरी उपशाखा की विशेषता है।

(डा० चटर्जी)

इसमें सन्देह नहीं कि पूर्वी मागधी भाषाओं में अपिनिहिति (Epenthesis) वर्तमान है; किन्तु दूसरी ओर बाहरी उपशाखा की मराठी तथा सिन्धी में इसका अभाव है। उधर गुजराती, लहँडी तथा कश्मीरी में अपिनिहिति मिलती है। इसके अतिरिक्त यहाँ यह भी स्मरण रखने की आवश्यकता है कि प्राचीन बँगला में अपिनिहिति का अभाव है और इसका आरम्भ मध्ययुग की बँगला से होता है। मैथिली, पश्चिमी पंजाबी तथा कश्मीरी में भी अपिनिहिति का विकास बहुत बाद में हुआ। इसप्रकार अपिनिहिति के आधार पर भीतरी तथा बाहरी उपशाखा में आधुनिक आर्यभाषाओं को विभाजित करना उचित न होगा।

(३) (ग्रियर्सन)

बाहरी उपशाखा की भाषाओं—विशेष कर बंगला—में इ>ए तथा उ>ओ।

(चटर्जी)

पूरब की भाषाओं, विशेषतया, बँगला में, 'इ' तथा 'उ' शिथिल स्वर हैं। अतएव इनके उच्चारण में जब जिह्वा बहुत ऊपर नहीं उठती तो स्वाभाविक रूप में 'ए' तथा 'ओ' का उच्चारण होने लगता है प्राकृतकाल में भी दो व्यञ्जनों के बीच का इ>ए तथा उ>ओ यथाः सं० बिल्व>प्रा० बेल्ल तथा सं० पुष्कर>प्रा० पोक्खर। पश्चिमी-हिन्दी में इ- ए, उ- ओ में परिवर्तन नहीं है, ऐसी बात नहीं है—यथा, व्रजभाखा:- मोहि-मुहि, तोहि-, तुहि। इसीप्रकार पश्चिमीहिन्दी के णिजन्त तथा अन्य क्रियारूपों में भी इसप्रकार के परिवर्तन का अभाव नहीं है। यथा; बोलना-बुलाना; देखना-दिखाना; एक- इकट्ठा आदि। इन उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि बाहरी उपशाखा की बँगला आदि की भाँति ही भीतरी उपशाखा की पश्चिमी हिन्दी में भी इ उ का उच्चारण शिथिल था।

(४) (ग्रियर्सन)

बाहरी उपशाखा—विशेषकर पूर्वी भाषाओं—में उ>इ।

(चटर्जी)

उ का इ में परिवर्तन वस्तुतः बाहरी उपशाखा की पूर्वी भाषाओं की ही विशेषता नहीं है, अपितु अन्य आधुनिक भाषाओं में भी यह विशेषता पाई जाती है। पश्चिमी-हिन्दी में भी यह वर्तमान है, यथा, खिलना, खुलना; छिगुली, छुँगुली, <*छुल्ल अङ्गुलिका; फिसलाना, फुसलाना। इसके विपरीत पश्चिमी- हिन्दी बालू <सं०

वालुका = बँगला बालि, देखो, पश्चिमी हिं० गिनना = बंगला गुनना (यहाँ संस्कृत 'अ' पश्चिमीहिन्दी में 'इ' तथा बँगला में 'उ' हो गया है।)

(५) (ग्रियर्सन)

'ऐ' < अइ तथा औ < अउ बाहरी उपशाखा की पूरवी भाषाओं में विवृत 'ए' तथा 'ओ' में परिणत हो गए हैं।

(चटर्जी)

ऐ तथा औ का 'ए' तथा ओ में विवृत उच्चारण, केवल पूरवी भाषाओं की ही विशेषता नहीं है, अपितु यह राजस्थानी-गुजराती सिन्धी लहँदी तथा अन्य पश्चिमी-भाषाओं में भी इसीरूप में वर्तमान है। पश्चिमी-हिन्दी में भी यह हैट, मैनेजर, हैरिसन डौटर (डॉटर) आदि में उसीरूप में मिलता है।

(६) (ग्रियर्सन)

संस्कृत के च तथा ज बाहरी उपशाखा की पूरवी भाषाओं में त्स (स्) तथा द्-ज् (ज़) में परिवर्तित हो गए हैं।

'च' तथा 'ज' का त्स (स) तथा द्-ज् (ज़) में परिवर्तन केवली पूर्वीबँगला तथा असमिया में ही मिलता है। पश्चिमीबँगला तथा बिहारी तक में इसका अभाव है। पूर्वी बँगला तथा असमिया में संघर्षी तालव्य 'च', 'ज' का दन्त्य उच्चारण सम्भवतः तिब्बती-बर्मी तथा पर्वतिया भाषाओं के प्रभाव के कारण है। इसीप्रकार दक्षिणी उड़िया के दन्त्य उच्चारण पर तेलगु का प्रभाव है। किन्तु असमिया तथा पूर्वी बँगला में 'च' तथा 'ज' का सर्वथा अभाव नहीं है। इस सम्बन्ध में एक और बात पर भी ध्यान देना आवश्यक है। वस्तुतः आधुनिक भाषाओं में संघर्षी दन्त्य की उपस्थिति से इन भाषाओं तथा बोलियों की पारस्परिक एकता नहीं सिद्ध होती। ग्रियर्सन ने स्वयं प्राकृत-वैयाकरणों के तालव्य उच्चारण के सम्बन्ध में विचार प्रकट करते हुए यह स्पष्ट किया है कि शौरसेनी तथा महाराष्ट्री में, संस्कृत के 'च', 'ज' के उच्चारण 'त्स', 'द्-ज़' हो गए हैं। उत्तरी शौरसेनी में तो 'त्स' 'द्-ज़' एकबार पुनः 'च', 'ज' में परिणत हो गए हैं। यहाँ यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि शौरसेनी भीतरी उपशाखा तथा पश्चिमीहिन्दी की मातृस्थानीया भाषा है। एक ओर 'च' 'ज' के दन्त्यकरण में जहाँ बाहरी उपशाखा की मागधी भाषा भीतरी उपशाखा की शौरसेनी की विरोधी है, वहाँ दूसरी ओर शौरसेनी उसी बात में बाहरी उपशाखा की महाराष्ट्री के समान है।

(७) (ग्रियर्सन)

'र', ल तथा ड ड़ के उच्चारण की भिन्नता भीतरी तथा बाहरी उपशाखा की भाषाओं को विभाजित करती है।

(चटर्जी)

'ल' के स्थान पर 'र' तथा 'ड' के स्थान पर ड़ पश्चिमी-हिन्दी में उसीरूप में मिलता है जिसरूप में सिन्धी तथा बिहारी में। सूरदास, बिहारी लाल तथा ब्रजभाषा के अन्य कवियों की कृतियों में इसप्रकार के अनेक उदाहरण उपलब्ध हैं। नीचे वे दिए जाते हैं—

वर (वल), गर (गल), जरै (जलै, जले), पकरै (पकड़ै), लरिहौ (=लड़ँगा), विगरै (=बिगड़े), बीरा (बीड़ा), किवार (किवाड़), बिजुरी (बिजली), सार (श्याल), स्यार (=शृगाल) आदि।

(८) (ग्रियर्सन)

पूर्व तथा पश्चिम की भाषाओं में द् तथा ड परस्पर परिवर्तित हुए हैं, किन्तु मध्यदेश की भाषा में इस प्रक्रिया का अभाव है।

(चटर्जी)

ब्रजभाषा में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जिनसे ग्रियर्सन के ऊपर के मत का खण्डन हो जाता है। यथा, डीठि (=दृष्टि), ड्योढ़ी (=देहली), आदि। आधुनिक हिन्दी के डाढ़ी (दंष्ट्रिका), डँसना (=√दंश्), डेढ़=बंगला, देड़ आदि शब्द ग्रियर्सन के सिद्धान्त को अन्यथा सिद्ध करते हैं।

(९) (ग्रियर्सन)

बाहरी उपशाखा की भाषाओं में—म्ब>म तथा भीतरी उपशाखा में म्ब>ब में परिवर्तित हो गए हैं।

(चटर्जी)

पश्चिमीहिन्दी तथा बँगला में जो उदाहरण मिलते हैं उनसे ऊपर के सिद्धान्त का खण्डन हो जाता है। यथा, पश्चिमी हि० जामन<जम्बु-; नीम<निम्ब; किन्तु बोलचाल की बंगला में आम तथा तामा के अतिरिक्त आँब (आम्र), तथा ताँबा (ताम्र), आदि रूप भी मिलते हैं।

(१०) (ग्रियर्सन)

दो स्वरों के बीच के 'र' का बाहरी उपशाखा की भाषाओं में लोप हो गया है, किन्तु भीतरी उपशाखा में यह वर्तमान है।

(चटर्जी)

इस सम्बन्ध में पश्चिमीहिन्दी में जो उदाहरण मिलते हैं उनसे ऊपर के मत का खंडन हो जाता है। यथा, अपर>अवरु>औरु, अरु>और, औ। इसीप्रकार परि>पर, पै, आदि। बाहरी उपशाखा की बँगला में तो ऊपर के 'र' का कभी लोप नहीं होता।

(११) (ग्रियर्सन)

बाहरी उपशाखा में स्वरमध्यग स>ह।

(चटर्जी)

स्वरमध्यग 'स' का 'ह' में परिवर्तित होना, केवल, बाहरी उपशाखा की भाषाओं की ही विशेषता नहीं है अपितु इसके उदाहरण पश्चिमी-हिन्दी में भी मिलते हैं। यथा, तस्य>तस्स>तास>ताह>ता (ता-को, ता-हि, आदि में), करिष्यति>करिस्सदि>करिसइ करिहइ। इसके अतिरिक्त बाहरी उपशाखा की पश्चिमी भाषाओं तथा बोलियों में तो 'स' वर्तमान है, यथा, गुजराती : करशे, राजस्थानी (जयपुरी) करसी, लहँदी, करेसी। अंकवाची शब्दों में तो प्रायः स>ह; यथा, इगारह या ग्यारह, बारह, चौहत्तर आदि। ब्रजभाषा में भी केहरि<केसरिन् मिलता है।

बोलचाल की बँगला में शब्द के आदि का 'स' (=श), 'ह' तथा असमिया में 'ख' में परिणत हो जाता है। सिंहली तथा कश्मीरी में भी यह इसीरूप में परिवर्तित होता है; किन्तु इसप्रकार का परिवर्तन तो ईरानीय, ग्रीक तथा केल्तिक (वेल्श) में भी मिलता है, अतएव केवल इस परिवर्तन के आधार पर बोलचाल की बँगला तथा कश्मीरी में, बाहरी उपभाषा के रूप में, सम्बन्ध स्थापित करना उचित न होगा।

(१२) श, ष, स का 'श' में परिवर्तन, मागधी की अपनी विशेषता है। यह परिवर्तन किसी स्वर पर आश्रित नहीं है; किन्तु मराठी तथा गुजराती में यह परिवर्तन इ, ई, ए अथवा य के प्रभाव से होता है। वस्तुतः इन स्वरों के पूर्व का 'स', 'श', 'श' में परिणत हो जाता है। यथा, मराठी दू-जोशी (=सं० ज्योतिषिन्), शिक्णें (=शिक्षणं), किन्तु सक्णे (= <√शक्), सण (=शण); गुजराती कर्शे (=करिष्यति), किन्तु साद् (=शब्द)। प्राकृत-वैयाकरणों के अनुसार बाहरी उपशाखा की महाराष्ट्री प्राकृत में 'स' का ही प्रयोग होता था, 'श' का नहीं। ठीक यही स्थिति भीतरीशाखा की मध्यदेशीय प्राकृत शौरसेनी में भी थी, अतएव 'स' के 'श' परिवर्तन के आधार पर बाहरी तथा भीतरी उपशाखा का वर्गीकरण युक्ति संगत न होगा।

(१३) (ग्रियर्सन)

महाप्राण वर्णों के अल्पप्राण में परिवर्तन होने के आधार पर भी भीतरी तथा बाहरी उपशाखा का वर्गीकरण किया जा सकता है। बाहरी उपशाखा में तो यह क्रिया मिलती है; किन्तु भीतरी उपशाखा की पश्चिमीहिन्दी में इसका अभाव है।

(चटर्जी)

ख्, घ्, छ्, झ्, ठ्, ढ, थ्, ध्, फ्, भ्, एवं ढ़्, न्ह्, म्ह्, ल्ह् आदि महाप्राण वर्ण, बँगला में अल्पप्राण में परिवर्तित हो जाते हैं; किन्तु यह परिवर्तन बाद की चीज है। महाप्राण का अल्पप्राण तथा अल्पप्राण का महाप्राण में परिवर्तन, अन्य भाषाओं तथा बोलियों में भी हुआ है। भीतरी उपशाखा की पश्चिमी हिन्दी भी इसका अपवाद नहीं है; यथा, बहिन <*भइनी <भगिनी, मिलाओ, उड़िया, भैणी तथा पंजाबी भैण; चाटना <*चाठना <*चट्ठनअ <चष्ट-; ईंट या ईंटा <*ईंठा < इष्टक; किन्तु मध्यदेश की भाषाओं तथा बोलियों में इसके अल्प उदाहरण ही उपलब्ध हैं। हाँ, इसके विपरीत अल्पप्राण से महाप्राण की प्रवृत्ति मध्यदेश की भाषाओं में अधिक है। यथा, भेस <बेश <वेश; भभूत <विभूति <विभूति आदि। इसप्रकार प्राण का आधार लेकर भीतरी तथा बाहरी उपशाखा का वर्गीकरण नहीं हो सकता।

(१४) (ग्रियर्सन)

द्वित्व-व्यञ्जनवर्णं के सरलीकरण तथा पूर्व स्वर के दीर्घीकरण के आधार पर भी भीतरी एवं बाहरी उपशाखा का वर्गीकरण किया जा सकता है।

(चटर्जी)

इस सम्बन्ध में वस्तुस्थिति को भलीभाँति जान लेना परमावश्यक है। प्राच्य-भाषा (बंगला, असमिया, उड़िया, मैथिली, भोजपुरी तथा पूर्वी हिन्दी) एवं गुजराती-राजस्थानी तथा मराठी द्वित्व-व्यञ्जन-वर्ण के सरलीकरण तथा पूर्व स्वर के दीर्घीकरण में मध्यदेश की भाषाओं तथा बोलियों से समानता रखती हैं; केवल पूर्वीमगधी में 'इ' तथा 'उ' का

दीर्घीकरण नहीं होता, उसमें भीख के स्थान पर भिख तथा पूत के स्थान पर पुत मिलता है। वास्तव में ह्रस्व इ, उ पर संस्कृत के भिक्षा तथा पुत्र के वर्तनी का प्रभाव है। इस प्रकार द्वित्वव्यञ्जनवर्णों के सरलीकरण तथा पूर्व स्वर के दीर्घीकरण में, मध्यदेश तथा प्राच्य-भाषाओं में पारस्परिक एकता है; किन्तु पश्चिम की सिन्धी पंजाबी तथा लहंदी भाषाएँ इस सम्बन्ध में इनके विपरीत हैं तथा वे कश्मीरी भाषाओं से समानता रखती हैं। इससे पश्चिमी आधुनिक आर्यभाषाओं तथा दर्द या पिशाच भाषाओं में जहाँ एक ओर समानता सिद्ध होती है वहाँ दूसरी ओर दक्षिणी पश्चिमी तथा पूरब की आधुनिक आर्य भाषाओं से उनकी असमानता प्रकट होती है।

मध्यदेश की भाषाओं में अनेक ऐसे उदाहरण मिलते हैं जहाँ पर द्वित्व-व्यञ्जन-वर्णों का सरलीकरण तो हुआ है किन्तु पूर्व स्वर दीर्घ न होकर ह्रस्व ही रह गया है। इसका एक कारण यह हो सकता है कि उत्तर-पश्चिम-प्रदेश की भाषाओं ने मध्यदेश की भाषाओं को प्रभावित किया होगा और तत्पश्चात् वहाँ से ये शब्द पूर्व दक्षिण तथा पश्चिम प्रदेश की भाषाओं की बोलियों में प्रविष्ट हुए होंगे। यथा, पश्चिमीहिन्दी में साच या साँच के स्थान पर सच्च अथवा सच बंगला का साँच्चा पश्चिम से उधार लिया हुआ प्रतीत होता है, यहाँ का मूल शब्द साँचा है। इसीप्रकार काल के स्थान पर कल तथा बड़े, लख, भेला सब आदि शब्दों में भी पूर्व स्वर ह्रस्वरूप में ही मिलते हैं।

[ख] रूपतत्त्व

(१) (ग्रियर्सन) स्त्री-प्रत्यय के रूप में ई वस्तुतः बाहरी उपशाखा की पश्चिमी एवं पूर्वी, दोनों, भाषाओं में मिलती है।

(चटर्जी) इस सम्बन्ध में वस्तुस्थिति यह है कि आधुनिक सभी आर्य-भाषाओं में स्त्री-प्रत्यय के रूप में यह ई वर्तमान है। संस्कृत का—आ अपभ्रंश में-अँ हो गया और आधुनिक आर्य-भाषाओं में इसने—ई का रूप धारण कर लिया। पश्चिमी हिन्दी में भी यह स्त्री-प्रत्यय के रूप में वर्तमान है। अतएव इसके आधार पर आधुनिक आर्य-भाषाओं का भीतरी तथा बाहरी उपशाखा में वर्गीकरण नहीं किया जा सकता।

(२) (ग्रियर्सन) बाहरी उपशाखा की भाषाएँ पुनः संश्लेषावस्था में प्रविष्ट कर रही हैं; किन्तु भीतरी उपशाखा की भाषाएँ विश्लेषावस्था में हैं।

(चटर्जी) वास्तविक बात यह है कि प्राचीन कारक रूपों के कतिपय अवशिष्ट रूप प्रायः सभी आधुनिक आर्य-भाषाओं में मिलते हैं। यह बात दूसरी है कि सभी में एक ही रूप नहीं मिलते। मध्यदेश की आधुनिक आर्य-भाषाओं में तिर्यक (Oblique) के रूपों में कर्ण अथवा सम्बन्ध कारक के रूप विशेष रूप में द्रष्टव्य हैं।

यथा, पश्चिमीहिन्दी घोड़े-का <घोड़हिकअ=घोटस्य + कृत ? अथवा घोटक + तृतीया के बहुवचन प्रत्यय हिं<—भिः + कृतः ? वहाँ घोड़े के रूप में प्राचीन संश्लिष्ट कारक का रूप वर्तमान है; किन्तु बंगला के घोड़ार = घोटक + कर तथा बिहारी, घोड़क = घोटक + कृत ? या घोटक + —क ; क ? में वस्तुतः पुराने संश्लिष्ट रूप का अवशिष्ट नहीं वर्तमान है अपितु ये सामासिक रूप हैं। पश्चिमीहिन्दी बंगला मराठी तथा गुजराती के शब्द-रूपों पर गहराई के साथ विचार करके डा० चटर्जी इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि इनके आधार पर बाहरी एवं भीतरी उपशाखा का वर्गीकरण नहीं किया जा सकता।

(३) जैसा कि पहले दिया जा चुका है ग्रियर्सन ने आधुनिक क्रिया-रूपों एवं प्रयोगों का आधार लेकर भी आधुनिक आर्यभाषाओं का बाहरी एवं भीतरी उपशाखा में वर्गीकरण किया है। इस सम्बन्ध में डा० चटर्जी के निम्नलिखित विचार हैं—

प्राचीन संस्कृत के रूपों की समाप्ति के बाद, प्राकृत-युग में, क्रिया के कृदन्तीय रूपों का प्रयोग होने लगा। इनमें सकर्मक क्रियाओं में क्रिया के कृदन्तीय-रूप विशेषण के रूप में कर्म से सम्बन्ध स्थापित करते हैं तथा इनमें कर्त्ता तृतीया के रूप में अथवा कर्ण के रूप में प्रयुक्त होता है। प्रायः सभी आधुनिक आर्य-भाषाओं की सकर्मक क्रियाओं में, कर्मवाच्य के रूप में, इसप्रकार के कृदन्तीय रूपों की पद्धति चल पड़ी है, किन्तु एक ओर जहाँ बाहरी उपशाखा की पश्चिमी एवं दक्षिणी आधुनिक आर्यभाषाओं—लहंडी, सिन्धी, गुजराती-राजस्थानी मराठी में—कर्मवाच्य के रूप सुरक्षित हैं, वहाँ मागधी-प्रसूत प्राच्य-भाषाओं तथा बोलियों में ये कर्मवाच्य से कर्तृवाच्य के रूप में उन्मुख हो गए हैं। इन भाषाओं में वस्तुतः कर्मवाच्य-कृदन्तीय के रूप अपने में अन्य पुरुष के सर्वनामीय-प्रत्ययों के रूपों को अन्तर्भुक्त करके क्रिया-पद का रूप धारण कर चुके हैं।

पश्चिम की लहंडी तथा सिन्धी के कर्मवाच्य के रूपों में भी सर्वनामी-रूप जोड़े गए हैं; किन्तु फिर भी इनमें प्राचीन कर्मवाच्य के रूप इस अर्थ में वर्तमान हैं कि उनमें लिङ्ग तथा वचन का अन्वय कर्म के साथ होता है। इस आधार पर आधुनिक-आर्य-भाषाओं को प्राच्य अथवा कर्तरि एवं पश्चिमी अथवा कर्मणि भागों में विभक्त किया जा सकता है। नीचे के उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जायगी।

पश्चिमी भाषा समूह

[कर्मणि प्रयोग]

पश्चिमी हिन्दी	:	मैंने पोथी पढ़ी।
गुजराती	:	में पोथी वाँची।
मराठी	:	मीं पोथी वाचिली।

मेरे द्वारा पुस्तक पढी गई (स्त्रीलिंग)

सिन्धी	:	(मूँ) पोथी पढ़ी-मे।
लहँडी	:	(मैं) पोथी पढ़ी-म।

(मेरे द्वारा) पोथी पढी गई (स्त्रीलिंग) + मेरे द्वारा

उत्तर की पहाड़ी—खसकुरा, गढ़वाली, कुमायूँनी तथा पश्चिमीपहाड़ी—भाषाओं का ऊपर की भाषाओं के साथ घनिष्ठ सम्पर्क है। अतएव उनके क्रियापद भी ऊपर की भाषाओं के समान ही हैं।

प्राच्य अथवा पूर्वी भाषा समूह

[कर्तरि प्रयोग]

पूर्वी हिन्दी	:	मैं पोथी पढ़ेउँ।
भोजपुरी	:	हम पोथी पढ़लीं।
मैथिली	:	हम पोथी पढ़लहुँ।
बँगला	:	आमि पुथि पड़िलाम।
		(मुइ पुथि पड़िलि-लुम)

उड़िया : आम्भे पोथि पढ़िलुँ।
(मुँ पोथि पढ़िलि)

मैंने पुस्तक पढ़ा (यहाँ क्रिया का सम्बन्ध कर्ता 'मैं' से है, कर्म पोथी से नहीं)

ऊपर के उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि पश्चिमीभाषा समूह में क्रिया का भावे प्रयोग वर्तमान है, किन्तु पूर्वी भाषाओं में उसका लोप हो गया है।

(४) (ग्रियर्सन)

बाहरी उपशाखा की कई भाषाओं में भारोपीय से आगत विशेषणीय प्रत्यय —ल वर्तमान है; किन्तु मध्यदेश की भाषाओं तथा बोलियों में इसका अभाव है।

भारोपीय —ल-प्रत्यय मध्यदेश की भाषाओं में भी वर्तमान है। हाँ, इतना अवश्य है कि पूर्वीभाषाओं तथा मराठी में इसके द्वारा अतीतकाल सम्पन्न होता है तथा गुजराती एवं सिन्धी में इसकी सहायता से कर्मवाच्य के कृदन्तीय रूप सिद्ध होते हैं। पंजाबी तथा लहँडी में तो इस प्रत्यय का अभाव है। इसप्रकार बाहरी उपशाखा की भाषाओं में भी इस सम्बन्ध में समानता अथवा एकरूपता नहीं है। पश्चिमीहिन्दी में ल-प्रत्यय के अनेक रूप मिलते हैं। यथा, लजीला, रँगीला, कटीला, छैला आदि। पूर्वीहिन्दी में भी इसके उदाहरण मिलते हैं।

ऊपर की आलोचना के साथ-साथ डा० चटर्जी ने भाषाओं की विकास-परम्परा को ध्यान में रखते हुए आधुनिक भारतीय-आर्यभाषाओं का निम्नलिखित वर्गीकरण किया है—

[क] उदीच्य (उत्तरी)
- १. सिन्धी
- २. लहँडी
- ३. पूर्वी पंजाबी

[ख] प्रतीच्य (पश्चिमी)
- ४. गुजराती
- ५. राजस्थानी

[ग] मध्यदेशीय
- ६. पश्चिमी हिन्दी

[घ] प्राच्य (पूर्वी)

(i) ७. कोशली या पूर्वीहिन्दी

(ii) मागधी प्रसूत
- ८. बिहारी
- ९. उड़िया
- १०. बँगला
- ११. असमिया

[ङ] दाक्षिणात्य (दक्षिणी)
- १२. मराठी

कश्मीर की कश्मीरी भाषा की उत्पत्ति डा० चटर्जी दर्दभाषा से मानते हैं। इसी प्रकार पहाड़ी भाषाओं—पूर्वीपहाड़ी (खसकुरा अथवा नेपाली), मध्य-पहाड़ी (गढ़वाली

तथा कुमायूँनी) तथा पश्चिमी पहाड़ी (चमेआली, मंडेआली, कुल्लुई, किउँठाली, सिरमौरी आदि)—की उत्पत्ति डा० चटर्जी खस अथवा दर्दभाषा से मानते हैं। प्राकृत-युग में राजस्थानी से ये पहाड़ी भाषाएँ अत्यधिक प्रभावित हुई हैं।

नीचे आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का संक्षिप्त परिचय दिया जायेगा।

कश्मीरी—की उत्पत्ति के सम्बन्ध में ऊपर इंगित किया जा चुका है। अत्यन्त प्राचीनकाल से ही कश्मीर-निवासी सारस्वत ब्राह्मणों ने संस्कृत को अध्ययन-अध्यापन का विषय बनाया था। इसका परिणाम यह हुआ कि कश्मीरी पर संस्कृत का अत्यधिक प्रभाव है। गुणाढ्य ने 'बृहत्कथा' की रचना सम्भवतः प्राचीन कश्मीरी में ही की थी। ऐसा प्रतीत होता है कि १००० ई० के पहले से ही कश्मीरी में साहित्य-रचना होने लगी थी; किन्तु प्राचीन कश्मीरी-साहित्य का बहुत अंश विलुप्त हो गया। कश्मीर का प्रसिद्ध कवि लल्ला है। इसका समय १४ वीं शताब्दी है। ग्रियर्सन ने 'लल्लावाक्यानि' के नाम से इसकी रचना का प्रकाशन, लंदन, से किया था। पहले कश्मीर में ब्राह्मी से प्रसूत शारदा लिपि प्रचलित थी, किन्तु आज वहाँ फारसी लिपि का ही प्रचार है। भारतीय संविधान के अनुसार जो चौदह भाषाएँ स्वीकृत हैं, उनमें एक कश्मीरी भी है, किन्तु आज कश्मीर में इसके पठन-पाठन का प्रबन्ध नहीं है। आज से कई वर्ष पूर्व कश्मीर-निवासियों ने अपनी मातृभाषा को जागृत करने की चेष्टा की थी और इसमें पाठ्य-पुस्तकें भी तैयार की गई थीं; परन्तु राजनीतिक कारणों से आज यह आन्दोलन शिथिल है। कश्मीर में प्रारम्भिक शिक्षा का माध्यम आज उर्दू है।

१. सिन्धी—सिन्ध देश में सिन्धु नदी के दोनों किनारों पर सिन्धी भाषा बोली जाती है। आज यह पाकिस्तान राज्य में है तथा उसकी राजधानी भी है। इसकी उत्पत्ति व्राचड अपभ्रंश से हुई है। प्राचीन काल में सिन्ध के अन्तर्गत व्राचड-प्रदेश प्रसिद्ध था और इसीके नाम पर यहाँ की प्राकृत तथा अपभ्रंश का नाम पड़ा। सिन्धी की पाँच मुख्य बोलियाँ हैं जिनमें मध्यभाग की विचोली साहित्यिक-भाषा का स्थान लिए हुए है। सिन्धी की अपनी लिपि 'लंडा' है; किन्तु यह गुरुमुखी तथा फारसी लिपि में भी लिखी जाती है। इसमें 'ग' 'ज' 'ड' तथा 'व' का उच्चारण एक विचित्रढंग से कंठ-पिटक को बन्द करके सम्पन्न होता है।

सिन्धी में कई हिन्दू तथा मुसलमान कवियों ने सुन्दर काव्य-रचना की है। पहले कच्छी समेत इसके बोलनेवालों की संख्या ४० लाख के लगभग थी; किन्तु पाकिस्तान के निर्माण के बाद अधिकांश हिन्दू अपनी जन्मभूमि छोड़कर भारत के विभिन्न स्थानों में बस गए हैं। सिन्धीभाषा-भाषियों का एक बड़ा समूह तो अजमेर के पास बस गया है। इनमें द्रुतगति से हिन्दीभाषा तथा नागरीलिपि का प्रचार हो रहा है। सिन्धीभाषा के संरक्षण के लिए यह आवश्यक है कि उसमें उपलब्ध साहित्य को नागराक्षरों में मुद्रित किया जाय।

२. लहँडी—के पश्चिमीपंजाबी, हिन्दकी, जटकी, मुल्तानी, चिभाली पोठवारी आदि कई अन्य नाम भी हैं। इसी प्रदेश के अन्तर्गत प्राचीन कैकयदेश था जिसके नाम पर यहाँ की प्राकृत का नाम भी पड़ा। लहँडी का सम्बन्ध वस्तुतः इसी प्राकृत-अपभ्रंश से है। आज यह भूभाग पाकिस्तान के अन्तर्गत है। इसमें सिक्खधर्म से सम्बन्धित

'जनमसाखी' आदि कतिपय गद्य-कथाओं के अतिरिक्त साहित्य का अभाव है। पहले साहित्य-रचना के लिए, इस प्रदेश में, उर्दू, हिन्दी तथा पूर्वीपंजाबी का व्यवहार होता था तथा इसकी जन-संख्या ८१ लाख के लगभग थी; किन्तु इधर पाकिस्तान के निर्माण तथा हिन्दुओं के छिन्न-भिन्न हो जाने के कारण अब उर्दू का ही बोलबाला है। लहँडी की भी सिन्धी की भाँति अपनी लिपि 'लंडा' है, जो कश्मीर में प्रचलित शारदा लिपि की ही उपशाखा है।

३. पूर्वीपंजाबी—हिन्दी के पश्चिमोत्तर में बोली जाती है। पहले लहँडी से इसकी सीमा इसप्रकार मिली हुई थी कि उससे इसका पृथक करना कठिन था, किन्तु अब पाकिस्तान की राजीतिक सीमा के कारण यह सर्वथा पृथक हो गई है। पंजाबी का शुद्ध रूप अमृतसर के निकट बोला जाता है। इसकी उत्पत्ति 'टक' अपभ्रंश से हुई है किन्तु इस पर शौरसेनी का पर्याप्त प्रभाव है। पूर्वीपंजाबी की कई उपभाषाएँ हैं जिनमें डोगरी प्रसिद्ध है। यह जम्मू तथा काँगड़ा में बोली जाती है।

पूर्वीपंजाबी में, १६ वीं शताब्दि में रचित, सिक्ख गुरुओं के पद मिलते हैं। इधर पंजाब की सरकार ने गुरुमुखी पंजाबी तथा नागरी-हिन्दी, दोनों को, प्रदेश की भाषा स्वीकार कर लिया है। वस्तुतः लंडा लिपि में सुधार करके ही गुरुमुखी लिपि का निर्माण किया गया है। यह कार्य गुरु अंगद (१५३८-५२) ने सम्पन्न किया था। सिक्खों में प्रायः गुरुमुखी पंजाबी ही प्रचलित है, क्योंकि उनका धर्मग्रंथ 'गुरुग्रंथसाहब' इसी में है। पहले यहाँ साहित्य-रचना में उर्दू तथा फारसी-लिपि का ही अधिक प्रचार था; किन्तु इधर नागरी-हिन्दी द्रुतगति से बढ़ रही है। पूर्वीपंजाबी बोलनेवालों की संख्या १ करोड़ ५५ लाख है।

४. गुजराती—गुजराती और राजस्थानी में इतना घनिष्ट सम्बन्ध है कि भाषा-शास्त्री उसे एक ही मानते हैं। गुजराती पर गूजर जाति की भाषा का अत्यधिक प्रभाव है। किसी समय ये लोग पश्चिमोत्तर-प्रान्त में रहते थे; किन्तु बाद में इन्होंने राजस्थान तथा गुजरात को अपना निवास-स्थान बनाया। गुजराती तथा राजस्थानी दोनों पर मध्यदेश के शौरसेनी का अत्यधिक प्रभाव है। श्री एल० पी० टेसीटरी के अनुसार इनकी उत्पत्ति प्राचीन पश्चिमी-राजस्थानी से हुई हैं जिसके नमूने १२ वीं १३ वीं शताब्दी से लेकर १५वीं शताब्दी तक के जैन लेखकों की कृतियों में मिलते हैं। भाषा के पंडितों का मत है कि गुजराती प्राचीन पश्चिमी-राजस्थानी से सोलहवीं शताब्दी में पृथक् हुई होगी। गुजराती के प्रसिद्ध कवि नरसी मेहता हैं। इनका काल १५ वीं शताब्दी है। १२ वीं शताब्दी के प्रसिद्ध प्राकृत-वैयाकरण हेमचन्द्र भी गुजराती ही थे। आजकल गुजराती कैथी से मिलती जुलती लिपि में लिखी जाती है। यह देवनागरी के अत्यधिक समीप है। इसमें शिरो रेखा नहीं लगती।

गुजराती में मीरा तथा अन्य कृष्णभक्त कवियों की कृतियाँ उपलब्ध हैं। आधुनिक गुजराती में राष्ट्रपिता गाँधी जी ने अपनी आत्मकथा लिखी है। उनके निजी सहायक श्री महादेव भाई देसाई ने गाँधी जी के जीवन के सम्बन्ध में संस्मरण-ग्रंथ लिखे हैं जो अनेक भागों में पुस्तकाकार प्रकाशित हो रहे हैं। आधुनिक गुजराती साहित्य में श्री कन्हैयालाल

माणिकलाल मुंशी तथा उनकी पत्नी श्रीमती लीलावती मुंशी का भी ऊँचा स्थान है। गुजराती बोलनेवालों की संख्या १ करोड़ १० लाख है।

५. राजस्थानी—पंजाबी के ठीक दक्षिण में राजस्थानी-भाषा का क्षेत्र है। प्राचीन-काल से ही मध्यदेश से अति निकट का सम्बन्ध होने के कारण, राजस्थानी-भाषा पर मध्यदेश की शौरसेनी की पूरी छाप है। उपभाषाओं-सहित राजस्थानी एक करोड़ ४० लाख लोगों की भाषा है। राजस्थानी की निम्नलिखित उपभाषाएँ हैं—

(क) पश्चिमीराजस्थानी या मारवाड़ी—मेवाड़ी तथा शेखावाटी भी इसी के अन्तर्गत हैं। इसके बोलनेवालों की संख्या ६० लाख है। यह जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर तथा उदयपुर में बोली जाती है।

(ख) पूर्वीमध्य-राजस्थानी—जयपुरी तथा उसकी विभिन्न शैलियाँ, तथा अजमेरी और हाड़ौती इसी के अन्तर्गत हैं। इसके बोलनेवालों की संख्या ३० लाख के लगभग है। यह जयपुर, कोटा तथा बूँदी में बोली जाती है।

(ग) उत्तरी-पूर्वी-राजस्थानी—इसके अन्तर्गत मेवाड़ी तथा अहीरवाटी बोलियाँ आती हैं। इसके बोलनेवालों की संख्या लगभग १५ लाख है।

(घ) मालवी—इसका केन्द्र मालवा-प्रदेश का वर्तमान इन्दौर राज्य है। इसके बोलनेवालों की संख्या ४३ लाख है।

इनके अतिरिक्त राजस्थान की कतिपय और भाषाएँ हैं, जैसे भीली उपभाषा समूह, जिसके बोलनेवालों की संख्या २७ लाख के लगभग है। इसी प्रकार दक्षिण भारत के तमिळ देश में प्रचलित सौराष्ट्री तथा पंजाब एवं कश्मीर की गूजरी भी राजस्थानी के अन्तर्गत ही आती हैं।

६. पश्चिमीहिन्दी—यह मध्यदेश की भाषा है। आजकल मेरठ तथा बिजनौर के निकट बोली जानेवाली पश्चिमीहिन्दी की खड़ीबोली के रूप से ही वर्तमान साहित्यिक-हिन्दी तथा उर्दू की उत्पत्ति हुई है। पश्चिमी-हिन्दी की भाषाओं तथा बोलियों के सम्बन्ध में आगे विचार किया जायगा। इसका उपयुक्त नाम नागरी-हिन्दी है। भारत के संविधान में इसीको राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन किया गया है। प्राचीन युग में मध्यदेश की भाषा संस्कृत, पालि, शौरसेनी-प्राकृत तथा शौरसेनी-अपभ्रंश का जो स्थान था, आज हिन्दी ने भी राष्ट्रभाषा के रूप में वही स्थान ग्रहण किया है।

७. कोसली या पूर्वी हिन्दी—पूर्वीहिन्दी के पश्चिम में पश्चिमीहिन्दी तथा पूरब में बिहारी का क्षेत्र है। प्राचीनयुग में इस भूभाग में अर्द्धमागधी-प्राकृत तथा अर्द्धमागधी-अपभ्रंश प्रचलित थे। अर्द्धमागधी पर अधिक प्रभाव मागधी का ही है, तभी प्राकृत-वैयाकरणों ने इसे अर्द्ध-शौरसेनी न कहकर इस नाम से अभिहित किया है। अर्द्धमागधी-प्राकृत तथा अपभ्रंश को जैनप्राकृत तथा अपभ्रंश के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है। इसका मुख्य कारण यह है कि जैनसाहित्य का अधिकांश भाग इसी में है।

पूर्वी हिन्दी की तीन मुख्य बोलियाँ—कोसली (अवधी) बघेली तथा छत्तीसगढ़ी

हैं। इनमें कोसली साहित्य-सम्पन्न भाषा है। गोस्वामी तुलसीदास ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ, रामचरित मानस, की रचना इसी में की है। अवध के मुसलमान सूफी कवियों—कुतुबन, मंझन, जायसी आदि—ने कोसली को ही साहित्य-रचना का माध्यम बनाया था। बिहार के मुसलमान, जोलहा बोली के रूप में, आज भी कोसली का ही प्रयोग करते हैं।

मध्ययुग में ब्रजभाषा तथा आधुनिक युग में खड़ीबोली के प्रचार एवं प्रसार के कारण कोसली में साहित्य-रचना का कार्य बन्द हो गया था; किन्तु इधर नव जागरण के साथ-साथ कोसली में साहित्य-रचना की नवीन स्फूर्ति आ रही है। पूर्वीहिन्दी की उपभाषाओं के सम्बन्ध में आगे विचार किया जायेगा।

८. बिहारी—बिहारी का क्षेत्र पूर्वीहिन्दी तथा बँगला के बीच में है। बिहार के बाहर उत्तरप्रदेश के पूर्वी जिले—बनारस, मिर्ज़ापुर, गाज़ीपुर, बलिया तथा जौनपुर (केवल किराकत तहसील) एवं गोरखपुर, देवरिया, आजमगढ़ तथा बस्ती (हरैया तहसील छोड़कर)—भाषा की दृष्टि से बिहारी के ही अन्तर्गत हैं। बिहारी की उपभाषाओं में मैथिली, मगही तथा भोजपुरी की गणना है। इन तीनों की एक रूप में कल्पना ही वस्तुतः बिहारी नामकरण का कारण है। यह नामकरण भी ग्रियर्सन के द्वारा सम्पन्न हुआ है।

उत्पत्ति की दृष्टि से बिहारी का सम्बन्ध मागधी-अपभ्रंश से है। इस सम्बन्ध-सूत्र से जहाँ मैथिली, मगही एवं भोजपुरी सगी बहिनें हैं वहाँ बँगला, उड़िया तथा असमिया इनकी चचेरी बहिनें हैं। मैथिली की अपनी अलग लिपि है, जो बंगला से बहुत मिलती-जुलती है। इसीप्रकार—भोजपुरी और मगही कैथीलिपि में लिखी जाती है। बिहार में कचहरी की लिपि भी वस्तुतः कैथी ही है; किन्तु पुस्तकों के प्रकाशन तथा स्कूलों एवं कालेजों में देवनागरी लिपि का ही प्रयोग होता है।

बिहार की तीनों भाषाएँ, मैथिली, मगही तथा भोजपुरी, यद्यपि आज पृथक् हैं, तथापि एक भाषा के बोलनेवाले दूसरे को सरलतया समझ लेते हैं। इनमें मैथिली में बो प्राचीन साहित्य भी है। भोजपुरी में कबीर के कतिपय पुराने पद मिलते हैं, किन्तु मगही में साहित्य का सर्वथा अभाव है। यद्यपि शिक्षा की दृष्टि से बिहार हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्र है, किन्तु घरों में तथा पारस्परिक बातचीत में वहाँ विभिन्न बोलियों का ही व्यवहार होता है। इधर नवजागरण के साथ-साथ इनमें साहित्य-रचना की प्रवृत्ति भी चल पड़ी है। बिहारी भाषाओं के सम्बन्ध में आगे भी कुछ लिखा जायगा।

९. उड़िया—यह प्राचीन उत्कल अथवा वर्तमान, उड़ीसा की भाषा है। बँगला से इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है। ऐसा प्रतीत होता है कि सातवीं-आठवीं शताब्दी में उड़िया बँगला से पृथक् हुई थी। इसको पृथक् करनेवाले वस्तुतः ओड़ अथवा उड़ लोग थे जो दक्षिणी पश्चिमी बँगाल में सुह्म तथा कलिङ्ग के बीच रहते थे। उड़िया का प्राचीनतम प्रथम लेख १३९५ ई० में लिखित एक ताम्रपत्र है। इसके बाद के भी कई लेख मिले हैं। इन लेखों से यह स्पष्ट हो जाता है कि उस समय तक उड़ियाभाषा बहुत कुछ विकसित हो चुकी थी। उड़िया-लिपि बँगला की अपेक्षा बहुत कठिन है; किन्तु इसका व्याकरण बँगला से बहुत मिलता-जुलता है। कई शताब्दियों तक उड़ीसा, तेलुगु भाषा-भाषियों एवं मरहठों

के आधीन रहा, अतएव इसमें तेलुगु तथा मराठी के भी अनेक शब्द मिलते हैं। साहित्य-क्षेत्र में उड़िया बँगला से बहुत पीछे है। इसमें प्राचीन कृष्ण सम्बन्धी साहित्य है। आधुनिक उड़िया में द्रुतगति से साहित्य-रचना हो रही है।

१०. बँगला—बंगलाभाषा गंगा के मुहाने और उसके उत्तरपश्चिम के मैदानों में बोली जाती है। इसकी कई उपशाखाएँ हैं, जिनमें से पश्चिमी तथा पूर्वी मुख्य हैं। पश्चिमी बंगला का केन्द्र कलकत्ता है। यहीं के भद्र तथा अभिजातवर्ग की भाषा वस्तुतः आदर्श बंगला है। पूर्वीबंगला का केन्द्र ढाका है। आजकल पूर्वीबंगाल, पाकिस्तान राज्य का एक भाग हो गया है।

नवीन योरुपीय विचारधारा का सर्वप्रथम प्रभाव बंगलाभाषा तथा साहित्य पर ही पड़ा। कलकत्ताविश्वविद्यालय भारत के प्राचीनतम विश्वविद्यालयों में से एक है। किसी समय उत्तरीभारत और बाद में बिहारबंगाल में ज्ञान-विज्ञान-प्रचार एवं प्रसार का बहुत कुछ श्रेय इसी विश्वविद्यालय को है। योरुपीय, विशेषकर अंग्रेजी-साहित्य ने बंगला की उन्नति में बहुत योगदान दिया है। आधुनिक बंगला-साहित्य नव्य-आर्यभाषाओं में सर्वोत्कृष्ट है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर और शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय जैसे उत्कृष्ट लेखकों को उत्पन्न करने का श्रेय भी बंगला-साहित्य को ही है। बंगलाभाषाभाषियों को अपनी मातृभाषा के प्रति अत्यधिक अनुराग है। इसका परिणाम यह हुआ है कि जहाँ अन्य प्रान्तों में उच्चशिक्षा प्राप्त व्यक्तियों ने अंग्रेजी के माध्यम से अपने विचार प्रकट किए हैं वहाँ पर बंगलाभाषाभाषियों ने अपनी मातृभाषा का ही व्यहार किया है। बंगला की अपनी लिपि है; इसमें संस्कृत के लगभग ४४ प्रतिशत शब्द, तत्समरूप में व्यवहृत होते हैं।

११. असमिया—असमिया असम (आसाम) प्रदेश की भाषा है। उड़िया की भाँति बंगला से इसका भी घनिष्ठ सम्बन्ध है; किन्तु साहित्यिक-क्षेत्र में बंगला की तरह यह साहित्यसमृद्ध भाषा नहीं है। प्राचीन असमिया में शंकरदेव के पद मिलते हैं। ये कृष्ण सम्बन्धी हैं। असमिया की लिपि बंगला ही है, केवल दो-तीन अक्षर दूसरे हैं। प्रायः प्रत्येक शिक्षित असमिया स्वाभाविक ढंग से शुद्ध बंगला बोल लेता है। इसीप्रकार बंगला-साहित्य के रसास्वादन में भी उसे कोई कठिनाई नहीं होती। इसका स्पष्ट परिणाम यह हुआ कि असमिया-साहित्य को जिस रूप में विकसित होना चाहिए था, विकसित न हो सका। अभी कुछ वर्ष पूर्व तक इस प्रदेश का सम्बन्ध कलकत्ता विश्वविद्यालय से था; इधर हाल में ही गौहाटी में नवीन विश्वविद्यालय की स्थापना हुई है। आशा है निकट भविष्य में ही असमिया भी उच्च-साहित्य से सम्पन्न हो जायगी।

१२. मराठी—दक्षिण में, महाराष्ट्री-अपभ्रंश से प्रसूत मराठी भाषा का क्षेत्र है। भारत के पश्चिम किनारे के दमण गाँव से दक्षिण की ओर गोमंतक तथा उत्तर में नागपुर तक का प्रदेश महाराष्ट्र कहलाता है। मराठी-भाषा भाषियों की संख्या सवा दो करोड़ के लगभग है। इसके अन्तर्गत कोंकण की भाषा कोंकणी तथा बस्तर की भाषा हलबी है। कई आधुनिक भाषाविज्ञानी कोंकणी को मराठी से स्वतंत्र भाषा मानते हैं। इसीप्रकार बस्तर की हलबी भाषा पर मागधी का पर्याप्त प्रभाव है और यद्यपि उसके अनुसर्ग मराठी के हैं तथापि उसे मराठी की उपभाषा मानना उचित नहीं है।

गत सात सौ वर्षों में मराठी-साहित्य का केन्द्रस्थान बदलता रहा है। तेरहवीं शताब्दी में यह नागपुर के आस-पास था; किन्तु सोलहवीं शताब्दी में, एकनाथ के काल में, यह पैठण की ओर चला गया। सन्त तुकाराम तथा रामदास के समय में तो मराठी साहित्य का केन्द्र-स्थान बम्बई राज्य के मध्य में जा पहुँचा। आज भी साहित्यिक मराठी का आदर्श पूर्णे के आस-पास की भाषा है। मराठी की अपनी लिपि देवनागरी ही है; किन्तु नित्य के व्यवहार में मोडी लिपि का प्रचलन है। मराठी-साहित्य विशाल तथा प्राचीन है।

हिन्दी शब्द की निरुक्ति

हिन्दी शब्द किस प्रकार भाषा वाची बन गया, इसका लम्बा इतिहास है। प्राचीन काल में उत्तरी भारत को 'भारतखण्ड' तथा 'जम्बूद्वीप' के नाम से अभिहित किया जाता था। बौद्ध-धर्म के पालि ग्रंथों में भी उत्तरीभारत को जम्बूद्वीप ही कहा गया है। हमारे देश का 'हिन्द' नाम वस्तुतः सिन्धु का प्रतिरूप है। ईरान अथवा फारस के निवासी सिन्धु नदी के तट के प्रदेश को 'हिन्द' तथा यहाँ के रहनेवालों को हिन्दू कहते थे। [फारसी में 'स' 'ह' में परिवर्तित हो जाता है] ग्रीक लोगों ने सिन्धु नदी को 'इन्दोस' यहाँ के निवासियों को 'इन्दोई' तथा प्रदेश को 'इन्दिके' अथवा 'इन्दिका' नाम से सम्बोधित किया। यही आगे चलकर लैटिन रूप में 'इण्डिया' बना। आरम्भ में 'इन्दिका' अथवा 'इण्डिया' शब्द पश्चिमोत्तर प्रदेश का ही वाचक था; किन्तु धीरे-धीरे इसके अर्थ का विस्तार हुआ और वह समग्र देश के लिए प्रयुक्त होने लगा।

उधर देश के अर्थ में हिन्द शब्द फारस से अरब पहुँचा। जब अरब के निवासियों ने 'सिन्ध' को जीता तो उसे 'हिन्द' न कहकर 'सिन्द' ही कहा। इसका कारण यह था कि 'सिन्द' प्रदेश वस्तुतः हिन्द देश का ही एक भाग था। इस 'हिन्द' से ही 'हिन्दी' शब्द बना। 'हिन्दी' का एक अर्थ है 'हिन्दुस्तान का निवासी' [देखो, इक़बाल का 'तराना'— 'हिन्दी' हैं हम वतन हैं हिन्दोसताँ हमारा] किन्तु अमीरखुसरो के समय में इससे 'भारतीय मुसलमानों' से तात्पर्य था। खुसरो ने 'हिन्दू' तथा 'हिन्दी' में अन्तर स्पष्ट करते हुए लिखा है —

'बादशाह ने हिन्दुओं को तो हाथी से कुचलवा डाला। किन्तु मुसलमान, जो हिन्दी थे, सुरक्षित रहे।' *

इस प्रकार विदेशी मुसलमानों ने भारतीय मुसलमानों को 'हिन्दी' कहा और आगे चलकर उनकी भाषा का नाम भी हिन्दी ही पड़ा। यह वही भाषा थी, जिसका हिन्दू तथा भारतीय मुसलमान समान रूप से व्यवहार करते थे। संक्षेप में भाषा के अर्थ में 'हिन्दी' शब्द मुसलमानों की ही देन है और यह है भी बहुत प्राचीन।

---

*1200 "Whatever live *Hindu* fell into the king's hands was pounded into bits under the feet of elephants. The Musalmans who were *Hindis* (country born), had their lives spared."—Amir Khosru, in Elliot, III, 539. Hobson-Jobson page 315.

हिन्दी के अन्य नाम

भाषा के अर्थ में हिन्दी के अतिरिक्त 'हिन्दुई', हिन्दवी, हिन्दूवी; दक्खिनी, दखनी या दकनी; हिन्दुस्थानी, हिन्दुस्तानी, खड़ीबोली, रेख्ता, रेख्ती, उर्दू आदि का भी प्रयोग होता है। भाषा के अध्ययन करनेवालों को इन्हें स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए।

हिन्दी—प्राचीनता की दृष्टि से हमारी भाषा का यह नाम अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसके नामकरण के सम्बन्ध में अन्यत्र कहा जा चुका है। विकास की दृष्टि से इसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में भी संक्षेप में जान लेना आवश्यक है। भारत के इतिहास में गंगा-यमुना के बीच की भूमि अत्यधिक पवित्र मानी गयी है। अत्यन्त प्राचीन काल से ही हिमालय तथा विन्ध्यपर्वत के बीच की भूमि आर्यावर्त के नाम से प्रख्यात है। इसी के बीच में मध्यदेश है, जो भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता का केन्द्र-बिन्दु है। संस्कृत, पालि तथा शौरसेनी प्राकृत, इस मध्यदेश की विभिन्न युगों की भाषा थी। कालक्रम से इस प्रदेश में शौरसेनी अपभ्रंश का प्रचार हुआ। यह कथ्य (बोल-चाल) शौरसेनी अपभ्रंश ही कालान्तर में हिन्दी के रूप में परिणत हुआ। इसपर पंजाबी का भी पर्याप्त प्रभाव है। हिन्दू एवं मुसलमानों का यह समान रूप से रिक्थ है। चूँकि हिन्दी का केन्द्र आर्यावर्त है, इसलिए आर्यसमाज के प्रवर्त्तक स्वामीदयानन्द सरस्वती ने इसे अपने ग्रंथों में 'आर्य भाषा' कहा है।

हिन्दुई, हिन्दवी अथवा हिन्दूवी—कुछ लोगों के अनुसार 'हिन्दुई' हिन्दवी अथवा हिन्दूवी, दिल्ली के आस-पास की वह बोली अथवा भाषा थी ,जो हिन्दुओं द्वारा व्यवहृत होती थी तथा जिसमें फारसी-अरबी शब्दों का अभाव था; किन्तु इधर पं० चन्द्रबली पाँडे ने स्पष्ट रूप से सिद्ध कर दिया है * कि यह भी हिन्दी की भाँति ही शिक्षित हिन्दू-मुसलमानों की भाषा थी। सैयद इंशा द्वारा लिखित 'रानी केतकी की कहानी' की भाषा 'हिंदवी छुट है और इसमें किसी बोली की पुट नहीं है।' इसकी भाषा की निम्न-लिखित विशेषताएँ हैं —

(१) इसमें हिंदवीपन की कड़ी पाबन्दी की गई है।

(२) इसमें 'भाखापन' का बहिष्कार किया गया है।

(३) इसकी भाषा ऐसी है, जिसमें भले लोग अच्छों से अच्छे आपस में बोलते-चालते हैं।

(४) इसमें किसी भी अन्य भाषा की छाँह नहीं है।

अन्य भाषा से इंशा का तात्पर्य 'बाहर की बोली है', जिसका अर्थ है हिंदी के बाहर की बोली अर्थात् अरबी, फारसी, तुर्की आदि। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि अपनी इस प्रतिज्ञा में इंशा पूरे सफल हुए हैं और आपने अन्य भाषा के शब्दों का पूर्णरूप से बहिष्कार किया है। इसीप्रकार भाखापन से इंशा का तात्पर्य उन गँवारू बोलियों से है जो उस समय सीमित क्षेत्र में प्रचलित थीं।

---

* पं० चंद्रबली पाँडे—'उर्दू का रहस्य' पृ० ४०-४८ में 'सैयद इंशा की हिंदवी छुट' देखिए।

अब केवल एक ही बात पर विचार करना है कि वे 'भले लोग' कौन थे, जो इस भाषा का व्यवहार करते थे तथा जिनकी भाषा प्रामाणिक थी। श्री पाँडे जी ने 'दरिया-ए-लताफ़त' से उद्धरण देकर यह सिद्ध किया है कि इंशा के अनुसार दिल्ली के चुने हुए आदमियों की भाषा ही प्रामाणिक है और ये चुने हुए व्यक्ति भी प्रायः मुसलमान ही हैं। इसप्रकार सैयद इंशा जिस 'हिन्दवी छुट' में कहानी लिखने का संकल्प करते हैं उसके बोलनेवाले वस्तुतः वे शिष्ट मुसलमान हैं, जिन्हें इंशा भाषा के क्षेत्र में प्रमाण मानते हैं। इस मीमांसा के पश्चात् हिन्दुई, हिन्दवी अथवा हिन्दूवी को केवल हिन्दुओं की भाषा मानना तर्क संगत नहीं प्रतीत होता।

दक्खिनी, दखनी या दकनी—का प्रयोग भी हिन्दी की भाँति ही दो अर्थों में होता है। इसका एक अर्थ है दक्षिण निवासी मुसलमान तथा दूसरा अर्थ है, दक्खिनी या दकनी ज़बान (भाषा)। सन् १८८६ में प्रकाशित हाब्सन-जाब्सन कोश के अनुसार 'दकनी' हिन्दुस्तानी की एक विचित्र बोली है, जिसे दक्षिण के मुसलमान बोलते हैं।*[१] आगे चलकर इसी कोश में सन् १५१६ ई० का एक उद्धरण है जिसके अनुसार दक्खिनी देश की स्वाभाविक भाषा है।*[२] यहाँ यह प्रश्न उठता है कि उस समय देश की स्वाभाविक भाषा कौन थी? इसका स्पष्ट उत्तर है हिन्दी अथवा हिन्दवी। इस प्रकार दक्खिनी, हिन्दी की ही एक शैली है। इसका यह नाम देश परक है और इसमें अपेक्षाकृत विदेशी [अरबी-फ़ारसी] शब्दों की मात्रा भी कम ही है।

हिन्दुस्थानी—बंगाल, विशेषतया कलकत्ते के बंगाली, उत्तर भारत के निवासियों को 'पछिंया' अथवा 'हिन्दुस्थानी' और उनकी भाषा को 'हिन्दुस्थानी' कहते हैं। कलकत्ते के बालीगंज के पार्क का नाम 'हिन्दुस्थान पार्क' है, 'हिन्दुस्तान पार्क' नहीं। इस प्रकार भाषा के अर्थ में 'हिन्दुस्थानी' से, कलकत्ते में, हिन्दी से ही तात्पर्य है।

हिन्दुस्तानी—हिन्दुस्तानी की निरुक्ति हिन्दी से भी अधिक जटिल है, क्योंकि समय तथा व्यक्तियों के अनुसार इसकी परिभाषा परिवर्तित होती रही है। इसके कारण भ्रम भी पर्याप्त हुआ है, इसलिए तनिक विस्तार के साथ इसकी मीमांसा आवश्यक है।

प्रायः यह बात प्रसिद्ध है कि हमारी भाषा के लिए यह नाम यूरप के लोगों की देन है; किन्तु वास्तव में बात ऐसी नहीं है। हिन्दी, हिन्दुई, हिन्दवी अथवा हिंदी की भाँति इस नाम के सूत्रपात करनेवाले भी मुसलमान विजेता ही थे। हाँ, यह बात दूसरी है कि इसे सर्वाधिक प्रचलित करने में यूरप के लोगों का विशेष हाथ है। पं० ललिता प्रसाद सुकुल ने अपने 'यह बदनाम हिन्दुस्तानी' शीर्षक लेख में स्पष्ट किया है कि जब बाबर ने दौलत खाँ लोदी पर विजय प्राप्त की और जब वह उसके सामने लाया

---

*1. Deccany, adj, also used as subst. Properly *Dakhani* Coming from the Deccan. A (Mahommedan) inhabitant of the Deccan. Also the very peculiar dialect of Hindustani spoken by such people.

*2. 1516 "The *Decani* language, which is the natural language of the country."—Barbosa, *77*, Hobson-Jobson pp. 233-34.

गया तो एक दुभाषिए के द्वारा, बाबर ने उसे हिन्दुस्तानी में समझाया। बाबर के आत्म-चरित से नीचे उद्धरण दिया जाता है—

"मैंने उसे अपने सामने बिठाया और उसे विश्वास दिलाने के लिए, एक व्यक्ति के द्वारा जो हिन्दुस्तानी-भाषा जानता था, एक-एक वाक्य का भाव स्पष्ट कराया।"*[1]

श्री सुकुल जी का अनुमान है कि भाषा के अर्थ में हिन्दुस्तानी नाम ईरानियों और तुर्कों के साथ १५वीं और १६वीं शताब्दी में ही आ चुका था। इसकी पुष्टि हाब्सन-जाब्सन के सन् १६१६ ई० के उद्धरण से भी हो जाती है जो इस प्रकार है :—

१६१६—'इसके पश्चात् उन्होंने [श्री टॉम कोरियट ने] 'इन्दोस्तान' अथवा गँवारी भाषा में पूर्ण दक्षता प्राप्त कर ली। श्री राजदूत महोदय [श्री कोरियट] के निवास-गृह में एक ऐसी स्वतंत्र भाषिणी महिला थी, जो सूर्योदय से सूर्यास्त तक डॉट-डपट और हो-हल्ला किया करती थी। एक दिन उन्होंने [श्री राजदूत महोदय ने] उसे उसी की भाषा में डॉटा और आठ बजते-बजते उसकी ऐसी गत बना दी कि वह [महिला] एक शब्द भी न बोल सकी।'*[2]

ऊपर के दोनों उद्धरणों में हिन्दुस्तानी से स्पष्ट तात्पर्य है हिन्दी। बाबर के युग में तो उर्दू नाम की उत्पत्ति भी नहीं हुई थी। सन् १६१६ ई० के उद्धरण में तो हिन्दुस्तानी को स्पष्ट रूप से गँवारी भाषा कहा गया है। अतएव यहाँ हिन्दुस्तानी का उर्दू के साथ किसी प्रकार समीकरण नहीं हो सकता।

हिन्दुस्तानी की निरुक्ति में हाब्सन-जाब्सन [१८८६ ई०] ने निम्नलिखित विवरण दिया है—

'हिन्दुस्तानी शब्द वास्तव में विशेषण है; किन्तु संज्ञा के अर्थ में यह दो अर्थों में प्रयुक्त होता है—[क] हिन्दुस्तान का निवासी [ख] हिन्दुस्तानी ज़बान अथवा हिन्दुस्तान की भाषा; किन्तु वास्तव में उत्तरीभारत के मुसलमानों की भाषा। यही दक्षिण के मुसलमानों की भी भाषा है। आगरा तथा दिल्ली के आसपास की हिन्दी, फारसी तथा अन्य विदेशी शब्दों के सम्मिश्रण से यह विकसित हुई है। इसका दूसरा नाम उर्दू भी है। मुसलमानी राज्य में यह अन्तर्प्रान्तीय व्यवहार की भाषा थी। देश के अधिकांश भाग में और कतिपय श्रेणी के लोगों में यह इसी रूप में व्यवहृत होती है। मद्रास में,

---

*1. 'I have made him sit down before me and desired a man who understood the *Hindustani language* to explain to him what I said sentence by sentence in order to reassure him.' [Memoirs of Babar Lucas, king edition Vol. 2 pp. 170]—कमला देवी गर्ग—हिन्दी ही क्यों ? पृ० २१०

*2. 1616 'After this he [Tom Coryate] got a great mastery in the *Indostan*, or more vulgar language ; there was a woman, a landress, belonging to my Lord Embassador's house, who had such a freedom and liberty of speech, that she would sometimes scould, brawl, and rail from the sun-rising to the sun-set ; one day he undertook her in her own language. And by eight of the clock he so silenced her, that she had not one word more to speak,—Terry, Extracts relating to T. C.

[Hobson-Jobson, pp. 317]

यद्यपि यह बहुत कम प्रचलित है, तथापि वहाँ भी देशी सिपाही अपने अफसरों से इसी में बातचीत करते हैं। पुराने 'एंग्लो इण्डियन' इसे मूर [Moors] कहा करते थे।'*[1]

'ऊपर के उद्धरण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि १६वीं शताब्दी में 'हिन्दुस्तानी' शब्द उर्दू का वाचक बन गया था। इसीको पुराने 'एंग्लो-इण्डियन' मूर भी कहते थे। अब यहाँ विचारणीय यह है कि 'मूर' कौन थे और उनकी भाषा का क्या स्वरूप था? स्पेन तथा पुर्तगालवालों के अनुसार 'मूर', मुसलमान थे।*[2] सन् १५६९ के एक उद्धरण में 'मूर' से मुसलमानों का ही अर्थ लिया गया है।*[3] आगे चलकर इसी कोष में मूर भाषा की रूपरेखा निम्नलिखित रूप में निर्धारित की गई है —

'मूर भाषा' की लिपि संस्कृत तथा बँगला से भिन्न है। इसे नागरी कहते हैं।' *[4]

इस प्रकार मुसलमानों की मूर भाषा का क्या स्वरूप था, यह स्पष्ट हो जाता है। यह हिन्दी के अतिरिक्त अन्य भाषा नहीं थी और इसकी लिपि भी नागरी ही थी।

ऊपर के विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रारम्भ में किस प्रकार हिन्दुस्तानी शब्द भी हिन्दी का ही पर्याय था; किन्तु १६वीं शताब्दी में यह शब्द उर्दूवाची बन गया। इसका उर्दू अर्थ प्रचलित करने में 'एंग्लो-इण्डियन' तथा यूरप के लोगों का विशेष हाथ

---

*1. Hindustani, properly an adjective, but used substantively in two senses, viz (a) a native of Hindustan, and (b) (Hindustani Zaban), 'the language of that country', but infact the language of the Mahommedans of Upper India, and eventually of the Mahommedans of the Deccans devloped out of the Hindi dialect of *the Doab* cheifly, and of the territory round Agra and Delhi, with a mixture of Persian vocables and phrases, and a readiness to adopt other foreign words. It is also called *Oordoo* i.e. the language of the Urdu (Herde) or Camp. This language was for a long time a kind of Mahommedan linguafranca over All India, and still possesses that character over a large part of the country, and among certain classes Even in Madras, where it least prevails, it is still recognised in native regiments as the language of intercourse between officers and men. Old-fashioned Anglo-Indians used to call it the *Moors*. (Hobson-Jobson pp. 317.)

*2. But to the spaniards and Portuguese, whose contact was with the Musulmans of Mauritania, who had passed over and conquered the Peninsula, all Mahommedans were *Moors*.

(Hobson-Jobson pp. 445)

*3. 1569 ".. ... . always whereas I have spoken of Gentiles is to be understood idolaters and where as I speak of *Moores*. I mean Mahomets secte." (Hobson-Jobson 446)

*4. 1783. "The language called *'Moors'* has a written character differing both from the Sanskrit and Bengalee character, it is called *Naqree* which means writing. (Hobson-Jobson pp. 448)

था। आगे चलकर तो हिन्दुस्तानी की आड़ में उर्दू को इतना बढ़ावा दिया गया और उर्दू-हिन्दी-विवाद को इतना विस्तृत बना दिया गया कि एक ही भाषा की इन दो शैलियों के समन्वय की गुंजायश ही न रह गई। इसमें गहरी राजनीतिक चाल थी। यद्यपि काँग्रेस का जन्म सन् १८८५ ई० में हुआ, किन्तु इसके पूर्व ही दूरदर्शी अँग्रेजों ने भारतीय नवजागरण को स्पष्ट रूप से देख लिया था और वे इस तथ्य को समझ गये थे कि भविष्य में राष्ट्रीयता की बाढ़ को रोकना असम्भव होगा। उन्होंने यह भी अनुभव किया था कि इसका प्रतीकार केवल हिन्दू-मुसलमानों के विद्वेष से ही हो सकता है। अतएव भारत-स्थित यूरोपियन स्कूलों एवं कालेजों में उर्दू को ही स्वीकार किया गया। अधिकांश मिशनरियों तथा 'एँग्लो-इण्डियन' लोगों ने भी उर्दू को ही प्रोत्साहन प्रदान किया और इस प्रकार उर्दू-हिन्दी का विवाद १९वीं शताब्दी के मध्य में उग्र हो चला। इस सम्बन्ध में सन् १८७४ ई० की 'हरिश्चन्द्र मैगेज़िन' (बनारस) में 'बँगाल मैगेज़िन' से उद्धृत 'कॉमन हिन्दुस्तानी' (Common Hindustani) शीर्षक लेख द्रष्टव्य है। 'जिस उर्दू भाषा को पहले प्रोत्साहन दिया गया था, वह अँग्रेजों तथा उनके *[1] अनुगामी कचहरी के अमलों द्वारा पोषित उर्दू से अत्यधिक भिन्न थी।' आगे चलकर इसी लेख में यह भी कहा गया है कि 'मुगलसाम्राज्य के विध्वंश *[2] के बाद उर्दू तथा हिन्दी, दो नितान्त भिन्न दिशाओं की ओर अग्रसर हो रही हैं।'

लिंग्विस्टिक सर्वे के समय [खण्ड ६ भाग १, पश्चिमीहिन्दी का प्रकाशन सन् १९१४-१६ में हुआ] हिंदी तथा उर्दू में पर्याप्त अन्तर आ गया था। उधर यूरप के साहब तथा अफसर उर्दू के पोषण में व्यस्त थे, अतएव हिन्दी, उर्दू तथा हिन्दुस्तानी के विषय में पर्याप्त ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध होते हुए भी ग्रियर्सन जैसे भाषा-शास्त्री ने भी इस सम्बन्ध में उस समय प्रचलित विचार-धारा से ही सन्तोष कर लिया। ग्रियर्सन ने हिन्दुस्तानी, उर्दू तथा हिन्दी के सम्बन्ध में श्री ग्राउस की निम्नलिखित परिभाषाएँ स्वीकार कर लीं—

'हिन्दुस्तानी, मुख्य रूप से, गंगा के ऊपरी दोआब की भाषा है। यह हिन्दुस्तान के अन्तर्प्रादेशिक व्यवहार का माध्यम है। यह फारसी तथा देवनागरी, दोनों लिपियों, में लिखी जा सकती है तथा इसकी साहित्यिक शैली में अत्यधिक फारसी और संस्कृत शब्दों की उपेक्षा रहती है। तब उर्दू हिन्दुस्तानी की वह शैली है, जिसमें फारसी शब्द अधिक मात्रा में प्रयुक्त होते हैं और जो केवल फारसी लिपि में लिखी जा सकती है। इसीप्रकार हिन्दी, हिन्दुस्तानी की वह शैली है, जिसमें संस्कृत शब्दों

*1. The Urdu camp language, the formation of which they encouraged was very different from modern Urdu as patronised by English men and hangers-on English courts.

*2. Since the dissolution of Mughal empire the Hindi and Urdu have gone on diverging and pursuing the course of the two sides of a parabola.

हरिश्चन्द्र मैगेजिन १८७४ पृ० ११६।

का प्राचुर्य रहता है तथा जो केवल देवनागरी लिपि में लिखी जा सकती है।[*1]

ग्रियर्सन के अनुसार साहित्यिक भाषा के रूप में हिन्दुस्तानी के प्राचीनतम नमूने 'उर्दू', या 'रेख़्ता' में उपलब्ध हैं। साहित्य में इसका सर्वप्रथम प्रयोग १६वीं शताब्दी में, दक्खिन में आरम्भ हुआ था। इसके सौ वर्ष बाद, रेख़्ता के जनक, वली, औरंगाबादी, ने इसे प्रामाणिक रूप दिया। 'वली' के आदर्श पर ही दिल्ली में भी इसमें रचना होने लगी, जहाँ अनेक कवि हुए। इनमें सौदा (मृत्यु १७८०) तथा मीर तकी (मृत्यु १८१०) मुख्य थे।[*2]

ग्रियर्सन के अनुसार 'हिन्दुस्तानी' शब्द यूरप के लोगों की देन है।[*3] जैसा कि पहले स्पष्ट किया जा चुका है। यद्यपि यह सत्य नहीं है, तथापि यदि थोड़ी देर के लिए यह बात स्वीकार भी कर ली जाय तो फिर स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न उठता है कि यूरप के निवासियों के आगमन के पूर्व हमारी भाषा का नाम क्या था? इसके अतिरिक्त गम्भीरता से ग्रियर्सन के कथन पर विचार न करने से कभी-कभी ऐसा प्रतीत होता है कि हिन्दुस्तानी, रेख़्ता, उर्दू, दक्खिनी आदि पर्यायवाची हैं। भाषा के क्षेत्र में ग्रियर्सन की हिन्दुस्तानी से बहुत लोगों को भ्रम हुआ, यद्यपि उनका यह उद्देश्य कदापि न था। एक बात और, ग्रियर्सन ने हिन्दी को हिन्दुस्तानी की एक शैली अवश्य माना, किन्तु उन्होंने न तो 'हिन्दी' शब्द की निरुक्ति ही दी और न हमारी भाषा के इस नाम की प्राचीनता के सम्बन्ध में ही विचार किया। उर्दू की रूपरेखा तथा उसके नाम आदि के विषय में भी उन्होंने पूर्णरूप से मीमांसा नहीं की और फोर्ट विलियम कालेज के मुंशी, मीर अम्मन की 'बाग़ो बहार' की परिभाषा को ही मान लिया। 'उर्दू' के सम्बन्ध में आगे विचार किया जायगा। यहाँ ग्रियर्सन की हिन्दुस्तानी के सम्बन्ध में सर्वप्रथम विचार किया जाता है।

ग्रियर्सन के अनुसार 'हिन्दुस्तानी, अथवा 'वर्नाक्यूलर हिन्दोस्तानी' ही मूल भाषा है। भौगोलिक दृष्टि से इसका क्षेत्र गंगा का ऊपरी दोआब तथा पश्चिमी रुहेलखण्ड है। इस 'वर्नाक्यूलर हिन्दोस्तानी' से ही एक ओर साहित्यिक हिन्दुस्तानी तथा दूसरी ओर

---

*1. "We may now define the three varieties of Hindostani as follows—Hindostani is primarily the language of the Upper Gangetic Doab, and is also the lingua franca of India, capable of being written in both Persian and Deva-nagari characters, and without purism, avoiding alike the excessive use of either Persian or Sanskrit words when employed for literature. The name 'Urdu' can there be confined to that special variety of Hindostani in which Persian words are of frequent occurrence and which hence can only be written in the Persian character, and, similarly, 'Hindi' can be confined to the form of Hindostani in which Sanskrit words abound, and which hence can only be written in the Deva-nagari character."

[Linguistic Survey of India, Vol. IX Part I pp. 47]

*२. लिंग्विस्टिक सर्वे-खण्ड ९, भाग १, पृ० ४७।

*3. The word 'Hindostani' was coined under European influence and means the language of Hindustan. L. S. Vol. IX Part I p. 43.

साहित्यिक हिन्दी की उत्पत्ति हुई है। साहित्यिक हिन्दुस्तानी के प्राचीन नमूने दक्खिनी में उपलब्ध हैं और बाद में वली (औरंगाबादी) ने इसी में कविता की। अन्त में इसकी परिणति उर्दू में हुई। हिन्दुस्तानी की रूपरेखा निर्धारित करते हुए ग्रियर्सन पुनः लिखते हैं, "हिन्दुस्तानी की प्रत्येक शैली में फारसी शब्दों को स्थान मिला है। हिन्दी की गँवारू बोलियों तक में भी ये मौजूद हैं और बनारस के हरिश्चन्द्र जैसे हिन्दी के लेखक ने भी इनका प्रयोग किया है।······जब कोई शब्द हिन्दुस्तानी, में स्थान प्राप्त कर लेता है, तब वह चाहे जहाँ से आया हो, उसके प्रयोग के सम्बन्ध में आपत्ति करने का अधिकार किसी को नहीं है। हाँ, यह प्रश्न विवादास्पद हो सकता है कि किस शब्द को हिन्दी में नागरिकता का अधिकार मिलना चाहिए और किसे नहीं। किन्तु अन्ततोगत्वा यह शैली का प्रश्न है और अंग्रेज़ी की भाँति ही हिन्दुस्तानी की भी अनेक शैलियाँ हैं। इस विषय में जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, मैं उन सभी शब्दों को, जिनकी नागरिकता में सन्देह है, हिन्दुस्तानी से पृथक रखना ही पसन्द करता हूँ; किन्तु इसके साथ ही मैं यह भी स्वीकार करता हूँ कि यह केवल रुचि की बात है।"

ऊपर के उद्धरण में ग्रियर्सन ने हिन्दुस्तानी की जो रूपरेखा उपस्थित की है, वह सरल हिन्दी के अतिरिक्त अन्य भाषा नहीं हो सकती। आप हिन्दुस्तानी के अन्तर्गत उन्हीं विदेशी शब्दों के रखने के पक्ष में हैं, जो ठेठ ग्रामीण बोलियों तक में घुल-मिल गए हैं। इसके अतिरिक्त आप हिन्दुस्तानी में उन भारी भरकम शब्दों को भी रखने के पक्ष में नहीं हैं जो स्वाभाविक रीति से इसमें नहीं आए हैं। ग्रियर्सन की हिन्दुस्तानी में अरबी-फारसी के शब्द हैं; किन्तु ये शब्द तो आवश्यकतानुसार प्रायः सभी नव्य-आर्यभाषाओं में आए हैं। सिर्फ बंगला में अरबी-फारसी से उधार लिए हुए कुल शब्दों की संख्या ढाई हजार के लगभग है। हिन्दी में इस सम्बन्ध में विशेष अनुसन्धान नहीं हुआ है; किन्तु अनुमानतः एक लाख शब्दों में इस प्रकार के शब्दों की संख्या तीन-साढ़े-तीन हजार से अधिक न होगी। डा० ग्रियर्सन ने अपने लिंग्विस्टिक सर्वे में उत्तरी भारत की विभिन्न बोलियों के जो उदाहरण दिए हैं, उनमें अरबी-फारसी-शब्दों की संख्या प्रायः नगण्य है।

काँग्रेस की हिन्दुस्तानी

कॉंग्रेस ने हिन्दुस्तानी को कब और कैसे स्वीकार किया, इसे समझने के लिए इसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को समझना पड़ेगा। यद्यपि कॉंग्रेस का जन्म सन् १८८५ ई० में हो चुका था; किन्तु उसकी कार्यवाही अँग्रेजी में ही होती रही। इसके जनक श्री ह्यूम का उद्देश्य यह था कि भारतीय वैधानिक ढंग से शासन में स्थान प्राप्त करें; किन्तु पन्द्रह वर्षों के बाद ही पं० बालगंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय तथा श्री विपिनचन्द्र पाल जैसे नेताओं के कारण कॉंग्रेस क्रान्तिकारी संस्था में परिणत होने लगी। सन् १९०१ से १९१० के बीच का इतिहास वस्तुतः भारतीय नवजागरण का इतिहास है। इसी समय में लार्ड कर्ज़न ने बंग-भंग किया, जिसके कारण बंगाल में 'स्वदेशी आन्दोलन' का सूत्रपात हुआ। इसी समय सूरत की काँग्रेस के अधिवेशन में क्रान्तिकारी दल की विजय हुई और भारत के उदार दल [Moderate Party] का कॉंग्रेस से सदा के लिए निष्कासन हुआ। उधर विदेश-स्थित भारतीय सशस्त्र क्रान्तिकारियों का एक दल संगठित हुआ, जिसमें

महाराष्ट्र, बंगाली, पंजाबी, गुजराती आदि सभी प्रदेशों के नवयुवक थे। इस युग में राष्ट्रीयता की जो लहर उठी, उसने राष्ट्रभाषा की ओर भारतीयों का ध्यान आकर्षित किया और उसके परिणाम स्वरूप राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी राष्ट्रीयता का अविभाज्य अङ्ग बनने लगी।

इधर उत्तरी भारत में भी हिन्दी को समुन्नत करने तथा उसे राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन करने का आन्दोलन चल पड़ा। यह सर्वथा स्वाभाविक था। हिन्दी, उत्तरी भारत की जनता की मातृ-भाषा थी; किन्तु उसे कचहरियों तथा सरकारी कार्यालयों में उचित स्थान प्राप्त न था। इस आन्दोलन के प्रवर्तक महामना पं० मदनमोहन मालवीय थे। उत्तरप्रदेश [पुराने युक्तप्रान्त] की कचहरियों में वैकल्पिक रूप से, हिन्दी में लिखित अर्जियाँ भी ले ली जाया करें, इसके लिए लाखों व्यक्तियों के हस्ताक्षर कराकर, उस समय के गवर्नर, सर एन्थनी मैकडॉनेल के पास प्रार्थना-पत्र भेजा गया। इस कार्य में प्रयाग के एक तरुण राष्ट्रकर्मी, बाबू पुरुषोत्तमदास जी टंडन, ने भी मालवीय जी की सहायता की। सन् १८९३ में स्थापित, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, ने भी इस आन्दोलन में मालवीय जी का हाथ बँटाया। आगे चलकर १० अक्टूबर, सन् १९१० को हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की स्थापना हुई। इसका प्रथम अधिवेशन, नागरी-प्रचारिणी-सभा के तत्त्वावधान में, काशी में ही हुआ। इसके प्रथम सभापति भी पं० मदनमोहन मालवीयजी ही हुए। सम्मेलन का संगठन हुआ और उसके मंत्री बाबू पुरुषोत्तमदास जी टंडन मनोनीत हुए। सम्मेलन ने अपनी प्रथम नियमावली में ही हिन्दी को राष्ट्रभाषा तथा देवनागरी को राष्ट्रलिपि माना॥

हिन्दीसाहित्यसम्मेलन के साथ गाँधी जी का सहयोग

सन् १९१४ में गाँधी जी दक्षिणी अफ्रीका से भारत आए। एक बार उन्होंने बाबू पुरुषोत्तमदास जी टंडन को अपने एक पत्र में लिखा "मेरे लिए तो हिन्दी का प्रश्न स्वराज्य का प्रश्न है।" ठीक यही बात श्री टंडन जी के मन में भी थी। अतएव दो समानधर्मा आ मिले। संवत् १९७४ [सन् १९१७] में श्री टंडन जी की प्रेरणा से गाँधी जी हिन्दी साहित्यसम्मेलन, इन्दौर, के अधिवेशन में सभापति हुए। इसके बाद, दूसरी बार भी सं० १९९२ [सन् १९३५] में, इन्दौर में ही, आप सम्मेलन के सभापति बने। सम्मेलन में गाँधी जी के आगमन से, हिन्दी-राष्ट्रभाषा-आन्दोलन को बहुत बल मिला। आपकी ही प्रेरणा से सम्मेलन के तत्त्वावधान में, दक्षिण में हिन्दी का प्रचार-कार्य प्रारम्भ हुआ और दक्षिण-भारत-प्रचार-सभा की नींव पड़ी। सन् १९२१ के बाद, धीरे-धीरे, गाँधी जी, सम्पूर्ण भारत के पूज्य बापू तथा कर्णधार बन गए। अन्य राजनीतिक कार्यों के साथ राष्ट्रभाषा हिन्दी का भी आपको सदैव ध्यान रहा।

कानपुर-काँग्रेस में हिन्दुस्तानी का प्रस्ताव

सन् १९२६ में, काँग्रेस का वार्षिक अधिवेशन, कानपुर में हुआ। यद्यपि काँग्रेस के मंच पर कतिपय नेता हिन्दी में भी भाषण करते थे, किन्तु अभी भी काँग्रेस की कार्यवाही में अंग्रेजी का ही बोलबाला था। इसे राष्ट्रीय प्रतिष्ठा के प्रतिकूल समझ करके बाबू पुरुषोत्तमदासजी टंडन ने यह प्रस्ताव उपस्थित किया कि काँग्रेस की कार्यवाही भविष्य में हिन्दुस्तानी में हो। हिन्दुस्तानी से श्री टंडनजी का तात्पर्य किसी कृत्रिम

भाषा से न था; अपितु उन्होंने इस शब्द को हिन्दी तथा उर्दू के स्थान पर ही व्यवहृत किया था। उस समय की परिस्थिति को देखते हुए कोई अन्य बात सम्भव न थी। श्री टंडनजी का मुख्य उद्देश्य यह था कि कि किसी प्रकार काँग्रेस जैसी राष्ट्रीय संस्था का अंग्रेजी से पिण्ड छूटे। प्रस्ताव स्वीकृत हो गया; किन्तु इसके बाद भी इस सम्बन्ध में कोई कार्यवाही न हुई और उर्दू-हिन्दी को काँग्रेस में समुचित स्थान न मिला।

गाँधी जी हिन्दुस्तानी की ओर

यह ऊपर कहा जा चुका है कि महात्मा गाँधी, सन् १६३५ में इन्दौर-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के दूसरी बार सभापति हुए। भारतीय इतिहास में, सन् १६३० से १६४० का समय जिस प्रकार राजनीतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है, उसी प्रकार राष्ट्रभाषा की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। महात्माजी की प्रेरणा से सन् १६३६ ई० में, मद्रास को छोड़कर, शेष अहिन्दी प्रदेशों [सिन्ध, गुजरात, महाराष्ट्र, उत्कल, बंगाल तथा आसाम आदि] में हिन्दी के प्रचार के लिए राष्ट्रभाषा-प्रचार समिति के संगठन का प्रस्ताव स्वीकृत किया गया। नागपुर के सम्मेलन के जिस पच्चीसवें अधिवेशन में यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ, उसके सभापति श्री बाबू राजेन्द्रप्रसाद थे। इस समिति का संगठन सम्मेलन के अन्तर्गत ही हुआ और इसका कार्यालय वर्धा में रखा गया। समिति के उद्योग से, परीक्षाओं तथा अन्य साधनों के द्वारा, हिन्दीप्रचार तथा प्रसार का कार्य, अहिन्दी प्रदेशों में ज़ोर से बढ़ा। उधर इसी समय साम्प्रदायिक तथा पाकिस्तानी मनोवृत्ति से प्रेरित एक विशेष वर्ग के व्यक्तियों ने भी, उर्दू के देशव्यापी प्रचार एवं प्रसार के लिए दिल्ली में 'अंजुमन-तरक्किए उर्दू' की स्थापना की। बंगाल में, हिन्दू और मुसलमानों की बंगला में कोई अन्तर न था; किन्तु वहाँ भी, बँगला में, अरबी-फारसी शब्दों का सम्मिश्रण करके मुसलमानों की भाषा को पृथक् करने का उद्योग होने लगा। पाकिस्तानी प्रवृत्ति के लोग हिन्दी के प्रचार-प्रसार से अत्यधिक क्षुब्ध थे। उन्हें अभी तक यह निश्चय नहीं हो पाया था कि पाकिस्तान बन ही जायगा; किन्तु उन्हें यह बात भली भाँति ज्ञात थी कि गाँधीजी हिन्दू-मुस्लिम एकता तथा अखण्ड भारत के लिए छटपटा रहे हैं। फिर क्या था, उपयुक्त अवसर देखकर उन्होंने गाँधीजी के हिन्दी-प्रचार-कार्य की कड़ी आलोचना आरम्भ कर दी। इसका गाँधीजी पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा। उन्होंने राष्ट्रभाषा के लिए हिन्दी-हिन्दुस्तानी नाम पसन्द किया। साम्प्रदायिक मनोवृत्ति के लोगों को हिन्दुस्तानी के साथ हिन्दी का संयोग पसन्द न आया। उन्होंने इसके विरुद्ध आन्दोलन जारी रखा और अन्त में उनकी इच्छा पूरी हुई। गाँधीजी ने आगे चलकर राष्ट्रभाषा के नाम से हिन्दी शब्द को निकाल दिया और केवल 'हिन्दुस्तानी' को ही रखा। उन्होंने राष्ट्रभाषा के लिए नागरी तथा फ़ारसी, दोनों लिपियों को सीखना अनिवार्य बतलाया। यद्यपि गाँधीजी के परम भक्तों ने भी राष्ट्रभाषा के सम्बन्ध में उनकी इस नीति की स्पष्ट रूप से आलोचना की, तथापि गाँधीजी अपनी बात पर दृढ रहे। आगे चलकर बापू के जीवन-काल में ही देश स्वतन्त्र हो गया; किन्तु देश का विभाजन करके ही यह कार्य सम्पन्न हुआ। भारत का जब संविधान बनने लगा तब राष्ट्रभाषा का प्रश्न पुनः सामने आया और देश ने एक मत से यह पद नागरी-हिन्दी को दिया।

गाँधीजी ने राष्ट्रभाषा के लिए हिन्दुस्तानी नाम को पसन्द तो किया; किन्तु उनकी हिन्दुस्तानी की परिभाषा तथा रूपरेखा अपनी थी। उनकी हिन्दुस्तानी न तो उर्दू थी और न क्लिष्ट हिन्दी थी, अपितु इन दोनों के बीच की सरल शैली थी।

गाँधीजी के अतिरिक्त अंजुमन तरक्किए-उर्दू के सर्व-सर्वा डा० अब्दुल हक तथा शिबली एकेडेमी आज़मगढ़ के सैय्यद सुलेमान नदवी ने भी भाषा के अर्थ में हिन्दुस्तानी शब्द का प्रयोग किया; किन्तु इन दोनों महानुभावों की हिन्दुस्तानी उर्दू-ए-मुअल्ला के अतिरिक्त अन्य शैली न थी।

रेख़ता-रेख़्ती—हिन्दी की वह शैली है, जिसमें फारसी शब्दों का सम्मिश्रण हो। प्रायः लोग रेख़्ता तथा उर्दू को भ्रमवश एक दूसरे का पर्यायवाची समझ लेते हैं; किन्तु वास्तव में बात ऐसी नहीं है।। उर्दू की अपेक्षा रेख़्ता की व्याप्ति अधिक है। इस प्रकार उर्दू को रेख़्ते की एक विशिष्ट शैली कह सकते हैं; परन्तु रेख़्ते को उर्दू कहना अशुद्ध होगा। रेख़्ता वास्तव में पुरुषों की भाषा है। स्त्रियों की भाषा "रेख़्ती" कहलाती है। इस सम्बन्ध में एक और उल्लेखनीय बात यह है कि भाषा के अर्थ में रेख़्ता का प्रयोग उर्दू से पुराना है।

उर्दू—हेनरी यूल तथा आर्थर कोक बर्नेल ने सन् १८८६ में प्रकाशित अपने प्रसिद्ध कोष हाब्सन-जाब्सन के पृ० ४८८ में उर्दू के सम्बन्ध में निम्नलिखित विवरण दिया है :—"संज्ञा, हिन्दुस्तानी भाषा। उर्दू (तुर्की) शब्द से, तातारखान के पड़ाव अथवा खेमे से तात्पर्य है। वस्तुतः अंग्रेजी 'होर्ड' (Horde) तथा रूसी 'ओर्द' (Orda) शब्द उसीसे प्रसूत हैं। वोल्गा के तट पर स्थित 'गोल्डेन होर्ड' (Golden Horde) से प्रायः लोग तातार के एक विशेष कबीले का अर्थ लेते हैं, किन्तु इससे वास्तविक तात्पर्य है, सराय स्थित बातूवंश के खान का 'शाही पड़ाव' अथवा भवन। ....तुर्किस्तान स्थित ताशकन्द तथा खोकन्द में उर्दू का अर्थ है किला। 'शाही पड़ाव' के अर्थ में 'उर्दू' शब्द, भारत में, सम्भवतः बाबर के साथ आया और दिल्ली का राजभवन 'उर्दू-ए-मुअल्ला' अथवा 'महान शिविर' कहलाने लगा। दरबार तथा शिविर में एक मिश्रित भाषा का आविर्भाव हुआ जो 'ज़बाने उर्दू' कहलाई। इसी का संक्षिप्त रूप आगे चलकर 'उर्दू' कहलाया। पेशावर की सीमा पर आज भी उर्दू शब्द युद्ध में प्रवृत्त सैनिकों के 'शिविर' के लिए प्रयुक्त होता है।"*

---

*Oordoo—S. The Hindustani language. The (Turki) word *Urdu* means properly the camp of a Tartar Khan, and is, in another direction, the original of our word *'horde'* (Russian *orda*). The *'Golden' Horde* upon the Volga was not properly the name of a tribe of Tartars, as is often supposed, but was the style of the Royal Camp, eventually Palace, of the khans of the House of Batu at Sarai .... *Urdu* is now used in Turkistan, e g at Tashkand, Khokhand etc for a citadel. The word Urdu in the sense of royal camp, came into India probably with Baber and the royal residence at Delhi was styled *Urdu-i-mualla* the sublime camp. *The mixt language which grew up in the court and camp was called Zaban-i-Urdu* 'the camp language' and hence we have eliptically *Urdu.* On the Peshawar frontier the word *Urdu* is still in frequent use as applied to the camp of a field force. Hobson-Jobson, pp. 488.

ऊपर के उद्धरण से यह बात तो स्पष्ट ही हो जाती है कि उर्दू वास्तव में दरबारी भाषा है और जनसाधारण से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। इसकी पुष्टि उन अनेक प्रमाणों तथा उद्धरणों से भी हो जाती है जिन्हें पं० चन्द्रबली पाण्डे, एम० ए० ने अपने 'उर्दू के रहस्य', 'उर्दू का उद्गम' तथा 'उर्दू की ज़बान' आदि पुस्तकों एवं लेखों में प्रस्तुत किया है। वास्तव में इस सम्बन्ध में पाण्डेजी की गवेषणा अन्यतम है। आप की पुस्तिका 'उर्दू की ज़बान', पृष्ठ ३-४ से वह उद्धरण नीचे दिया जाता है जो इस विषय में आपने इंशा अल्ला के 'दरिया-ए-लताफ़त' से उद्धृत किया है—

"बहर हाल (कुछ भी हो) अपनी समझ और सलीक़ा (ढंग) के बमोजिब (अनुसार) बहुत ग़ौर (मनन) और तायम्मुल (गवेषणा) के बाद इस हेचमदां (विमूढ़) को यह मालूम होता है और ग़ालिब (संभव) है कि यह राय नाक़िस (तुच्छ विचार) दुरुस्त (ठीक) हो कि शाहजहाँबाद की ज़बान वह है जो दरबारी और मुसाहियत पेशा (सभासद) क़ाबिल अशख़ास (योग्य पुरुष), ख़ूबसूरत माशूक़ों (छैल-छबीलों), मुसलमान अहल हिरफ़ा (गुण्डे), शुहदों (गुंडों) और उमरा के शागिर्द पेशा (परिजनों) और मुलाज़िमों (नौकरों) हत्ता (यहाँ) तक कि उनके ख़ाकरोबों (मेहतरों) की ज़बान है। यह लोग जहाँ कहीं पहुँचते हैं उनकी औलाद (संतान) दिल्लीवाली और उनका मुहल्ला दिल्लीवालों का मुहल्ला बाजता है। और अगर तमाम शहर में फैल जाएँ तो शहर को उर्दू कहते हैं। लेकिन इन हज़रात (महाशयों) का जमघट सिवाय लखनऊ के और कहीं ख़ाकसार की राय में नहीं पहुँचता। अगरचे मुरशिदाबाद और अज़ीमाबाद (पटना) के बाशिंदे (निवासी) अपने ज़ोम (अभिमान) में ख़ुद को उर्दूदाँ और अपने शहर को उर्दू कहते हैं। क्योंकि अज़ीमाबाद में देहलीवाले एक महल्ले के अन्दाज़े (अनुमान) के रहते होंगे और नव्वाब सादिक़ अली ख़ान उर्फ़ (उपनाम) मीरन और नव्वाब क़ासिम अली ख़ान आलीजाह के ज़माने में उसी क़दर (मात्रा) या उससे कुछ ज़्यादा (अधिक) मुर्शिदाबाद में होंगे।" (दरियाए-लताफ़त, अंजुमन तरक्क़ी उर्दू, देहली, सन् १६३५ ई० पृ० १२१-२२)।

पाँडेजी अपनी पुस्तक 'भाषा का प्रश्न' पृ० १०६ में 'दरियाए-लताफ़त' का उद्धरण देकर निम्नलिखित विचार प्रस्तुत किया है—'सैयद इंशा साफ़-साफ़ कहते हैं कि लाहौर, मुल्तान, आगरा, इलाहाबाद की वह प्रतिष्ठा नहीं है जो शाहजहानबाद या दिल्ली की है। इसी शाहजहानबाद में उर्दू का जन्म हुआ है, कुछ मुल्तान, लाहौर या आगरा में नहीं।' उर्दू की जन्म-कथा यह है—'शाहजहानबाद में ख़ुशबयान लोगों ने एकमत होकर अन्य अनेक भाषाओं से दिलचस्प शब्दों को जुदा किया और कुछ शब्दों तथा वाक्यों में हेर-फेर करके दूसरी भाषाओं से भिन्न एक अलग नई भाषा ईजाद की और उसका नाम उर्दू रख दिया।'

ऊपर के विवरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि उर्दू की उत्पत्ति कहाँ और कैसे हुई तथा मूलतः यह किस की ज़बान थी। इधर जब से देश में, जनसत्तात्मक प्रणाली का सूत्रपात हुआ है तब से उर्दू के सम्बन्ध में इंशा अल्ला तथा उनके समान विचार रखनेवालों की विचारधारा को अन्यथा मानकर यह सिद्ध करने का उद्योग किया जा रहा है कि उर्दू जनसाधारण की भाषा है तथा इसके निर्माण में साधुओं संन्यासियों एवं

देशभक्तों का हाथ है। अभी हाल ही में [२६ जुलाई, सन् १९५३], अंजुमन तरक्किए उर्दू (हिन्द), अलीगढ़ के प्रधान डा० ज़ाकिर हुसेन ने, उर्दू को क्षेत्रीयभाषा बनाने के लिए आन्दोलन करनेवाली सभा में भाषण देते हुए, लखनऊ में, जो कुछ कहा है वह द्रष्टव्य है—

'इस समय तो उर्दू का ज़िक्र है, कैसा सितम है कि उर्दू के प्रेमियों पर कोई साम्प्रदायिकता का आरोप लगाये, हालाँकि उर्दू किसी सम्प्रदाय की भाषा नहीं है। किसी राज की चलाई हुई भाषा नहीं है, किसी ख़ास उद्देश्य में बनावटी और गढ़ी हुई भाषा नहीं है, यह तो जीवन की रेलपेल में मानव-जाति के मेलजोल का फल है, आप लोगों की और आम जनता की भाषा है, जिनके दिल को कुछ लगी थी और वह इसे दूसरे उन भाइयों तक पहुँचाना चाहते थे, जो उनसे प्रेम करते थे और कान धरकर उनकी बात सुनना चाहते थे, उनके दिलों की बोली है, यह साधुओं संन्यासियों और देशभक्तों की बोली है, बाज़ारों में कारबार और लेन-देन से बनी हुई बोली है, मंडियों में अनाजों के साथ-साथ विचारों के विनिमय से बनी हुई बोली है, उनकी भाषा है जो किसी ख़ास परम्परा से ऐसे लिपटे हुए नहीं थे, जो हर नई बात से भड़कें, हर नए चलन से बिदकें, लोगों ही से नहीं, शब्दों से भी घृणा करें, यह हृदय की उदारता की भाषा है, भाई चारेपन की भाषा है, प्रेम और मुहब्बत की भाषा है, इसीलिए फैले हुए दामनवाली ज़बान है, ऐसी उन्नतिशील भाषा है, ऐसी जानदार भाषा है। यह इसी देश के इसी उत्तरप्रदेश के क्षेत्र में बसनेवालों की हार्दिक और मानसिक सम्बन्ध का परिणाम है और इन बसनेवालों में हिन्दू-मुसलिम, सिख का कोई भेद नहीं।'

[डा० ज़ाकिर हुसेन का अभिभाषण, हिन्दी संस्करण पृ० ५-६]

ऊपर डाक्टर ज़ाकिर हुसेन महोदय ने उर्दू की जो रूपरेखा दी है, वह आधुनिक भारतीय वातावरण के सर्वथा अनुकूल है। अच्छा होता कि उर्दू ऐसी भाषा होती; किन्तु परम्परा तथा उर्दू का इतिहास इसके सर्वथा विरुद्ध है। इस सम्बन्ध में पंडित चंद्रबली पांडे द्वारा लिखित पुस्तिका, 'उर्दू की ज़बान', पृ० १० में, फरहंगे आसफिया से उद्धृत निम्नलिखित विवरण द्रष्टव्य है—

'यह बात सबने तसलीम (स्वीकृत) कर रखी थी कि असली (सच्ची) उर्दू शाहज़ादगाने तैमूरिया (तैमूरी राजकुमारों) की ही ज़बान है और लालकिला ही उस ज़बान की टकसाल है। इसलिए सैयद (अहमद देहलवी) ख़ास हमें और चंद और अज़ीज़ (प्रिय) शाहज़ादों को बुलाते थे, आम से ग़र्ज़ न थी।' [श्री अरशद गोरगानी, फ़रहंगे आसफिया, तकारीज़, जिल्द चहारुम, रफाहे आम प्रेस लाहौर, सन् १९०१ पृ० ८४९]।

आगे पांडेजी अपनी पुस्तिका के पृष्ठ ११ पर ऊपर के विवरण की आलोचना करते हुए लिखते हैं—

उर्दू की टकसाल में जो ज़बान पैदा की गई वह शाही और शाही लोगों की ज़बान थी, कुछ आम लोगों की ज़बान नहीं। 'आम से ग़र्ज़ न थी' से यह बात इतनी स्पष्ट हो गई है कि अब इसे और अधिक छिपा रखना संभव नहीं। लीजिए, यही सैयद साहब, सैयद मौलवी अहमद देहलवी स्वयं कहते हैं—'सब कुछ सही, मगर मेरा दिल इन बातों

को कभी कुबूल (स्वीकार) नहीं कर सकता कि सरतासर (एक सिरे से दूसरे सिरे तक) टकसाल बाहर ज़बान हो और यह बंदा उसकी तौसीफ़ (गुण-गीति) में हमातन 'रतबुल्लिसान (भरपूर निमग्न) हो। कोई लफ्ज़ क़वाअदे मन्ज़बत (शब्दानुशासन) से बाहर हो और हमारे दोस्त उसे सराहें। हम अपनी ज़बान को मरहठी बाजों, लावनी बाजोंकी, ज़बान, धोबियों के खंड, जाहिल (जपाट) ख़्यालबन्दों के ख़्याल, टेसू के राग याने बेसर व पा (बिना सिर-पैर के) अल्फाज़ का मजमूआ (समूह) बनाना कभी नहीं चाहते। और न उस आज़ादाना (स्वच्छंद) उर्दू को ही पसन्द करते हैं जो हिंदोस्तान के ईसाइयों, नवमुसलिम भाइयों, ताजा विलायत साहब लोगों, ख़ानसामाओं, ख़िद्मतगारों, पूरब के मनहियों (मनुष्यों) कँपन्वायों और छावनियों के सतबेभड़े वाशिंदों ने एख़्तयार कर रक्खी है। हमारे ज़रीफुल्लबा (विनोदप्रिय) दोस्तों ने मज़ाक़ से इसका नाम पुड़दू रख दिया है।" (फरहंगे आसफ़िया जिल्द अव्वल वही, पृ० २३ सबब तालीफ़)।

ऊपर के उद्धरण पर टिप्पणी करते हुए पाँडेजी 'उर्दू की ज़बान' पृ० ११-१२ पर पुनः लिखते हैं—

"जो लोग उर्दू की ज़बान को हिंदू-मुसलिम-मेल की निशानी समझते हैं उन्हें 'नव मुसलिम भाइयों' और जो लोग उर्दू को 'लश्कर' की चीज़ समझते हैं उनको इस 'छावनियों के सतबेभड़े वाशिंदों, पर विशेष ध्यान देना चाहिए और यह सदा के लिए टाँक लेना चाहिए कि वस्तुतः उर्दू 'उर्दू, की ज़बान' है, कुछ 'पुड़दू'' याने लश्कर और बाज़ार की सतबेभड़ी बोली नहीं। नीतिवश चाहे आज जो कुछ कहा जाय पर उर्दू का अतीत पुकार कर कहता है कि :—

'उर्दू के मालिक उन लोगों की औलाद (संतान) थे जो असल (वास्तव) में फ़ारसी ज़बान रखते थे। इसी वास्ते उन्होंने तमाम (सम्पूर्ण) फारसी बहरें (छन्द) और फ़ारसी के दिलचस्प (मनोरंजक) और रंगीन ख़्यालात (भावों) और अक़साम इंशापरदाज़ी (रचना प्रणालियों) का फोटोग्राफ, फ़ारसी से उर्दू में लिया।" (नज़्मे आज़ाद, नवल किशोर प्रेस प्रिंटिंग वर्क्स, लाहौर, १९१० ई०, पृ० १४)।

'शम्सुलउलमा मौलवी मुहम्मद 'आज़ाद' की इसी वाणी को उक्त सैयद मौलवी अहमद, देहलवी के मुँह से सुनिये और सच की दाद दे झूठ से तोबा कीजिए। कहते और किस ठिकाने से कहते हैं कि—'मज़हर अली 'विला' ने बैताल पचीसी अव्वल (प्रथम) भाका से उर्दू में की और इंशा अल्ला खाँ ने क़वायद उर्दू (उर्दू का व्याकरण) लिखकर जौदततबा (भावोल्लास) दिखाई। मगर इसमें भी अरबी व फ़ारसी अल्फ़ाज़ का चरबा (बिंब) उतारा जिससे और माहिराने सर्फ़ व नह्वो (व्याकरण विचक्षण) भी इसी डगर पर पड़ गए। उर्दू नज़्म (पद्य) ने भी फ़ारसी ही की तर्ज़ (रीति) एख़्तयार (ग्रहण) की, क्योंकि ये लोग तुर्की उलअस्ल (तुर्की वंश) थे या फ़ारसी उलअस्ल (फारसी वंश) या अरबी उल्नस्ल (अरबी वंश)। यह हिन्दी की मुताबक़त (अनुकूलता) किस तरह कर सकते थे? अगर इन्हें हिन्दी की दिलचस्प शाइरी और उसकी नाज़ुकख़्याली (कोमल भावना) का चसका होता तो उर्दू क़वायद

(व्याकरण) नीज़ (एवं) उर्दू शाइरी में और ही लुत्फ़ (रस) पैदा हो जाता।' (मोक़द्दमा फरहंगे आसफ़िया, जिल्द अव्वल, पृ० ८)।

पाण्डेजी की ऊपर की आलोचना के पश्चात्, उर्दू के इतिहास तथा उसकी वास्तविक स्थिति को समझने में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं रह जाती और यह स्पष्ट हो जाता है कि 'उर्दू' (लाल क़िले के बादशाही शाहज़ादों तथा उनके आसपास के अन्य लोगों) की ज़बान है। अब यहाँ इस बात पर भी विचार करना है कि उर्दू की उत्पत्ति कैसे हुई। चूँकि इस सम्बन्ध में, लोगों में आज भी भ्रम है, अतएव इसे स्पष्टरूप से जान लेना ही श्रेयस्कर है। नीचे इस सम्बन्ध में विद्वानों के मत दिए जाते हैं—

मुहम्मद हसन आज़ाद, अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'आबेहयात' के पृष्ठ ६ पर 'ज़बान उर्दू की तारीख़' शीर्षक के अन्तर्गत लिखते हैं—'इतनी बात हर शख़्स जानता है कि हमारी उर्दू ज़बान ब्रजभाषा से निकली है और ब्रजभाषा खास हिन्दुस्तानी ज़बान है।'

मीर अम्मन, देहलवी, के अनुसार 'उर्दू, बाज़ारी और लश्करी भाषा है।' आप 'बाग़ोबहार' की भूमिका पृष्ठ ४ में लिखते हैं—

'हक़ीक़त उर्दू की ज़बान की बुज़ुर्गों के मुँह से यों सुनी है कि दिल्ली शहर हिन्दुओं के नज़दीक चौजुगी है। उन्हीं के राजाप्रजा क़दीम से वहाँ रहते थे और अपनी-अपनी भाखा बोलते थे। हज़ार बरस से मुसलमानों का अमल हुआ। सुल्तान महमूद गज़नवी आया। फिर ग़ोरी और लोदी बादशाह हुए। इस आमदरफ़्त के बाइस कुछ ज़बानों ने हिन्दू-मुसलमानों की आमेज़िश पाई। आख़िरअमीर तैमूर ने, जिनके घराने में अब तक नाम निहाद सल्तनत का चला जाता है, हिंदोस्तान को लिया। उनके आने और रहने से लश्कर का बाज़ार शहर में दाख़िल हुआ। इस वास्ते शहर का बाज़ार उर्दू कहलाया।..........जब अकबर बादशाह तख़्त पर बैठे तब चारों तरफ़ के मुल्कों से सब क़ौम क़दरदानी और फ़ैज़रसानी इस ख़ान्दान लासानी की सुनकर हुज़ूर में आकर जमा हुए। लेकिन हर एक की गोयाई और बोली जुदा-जुदा थी। इकट्ठे होने से आपस में लेन-देन सौदा सुल्फ़, सवाल-जवाब करते-करते एक ज़बान उर्दू की मुक़र्रर हुई। जब हज़रत शाहजहाँ साहबे केरान क़िला मुबारक और जामा मसजिद और शहर पनाह तामीर फरमाया.........तब बादशाह ने ख़ुश होकर जश्न फरमाया और शहर को अपना दारुलख़िलाफ़त बनाया। तब से शाहजहानाबाद मशहूर हुआ।......और वहाँ के शहर को उर्दु-ए-मुअल्ला ख़िताब दिया। अमीर तैमूर के अहद से मुहम्मदशाह की बादशाहत तक, बल्कि अहमद शाह और आलमगीर सानी के वक्त तक, पीढ़ी ब पीढ़ी सल्तनत एक-साँ चली आई। निदान ज़बान उर्दू की मँजते-मँजते ऐसी मँजी कि किसी शहर की बोली उससे टक्कर नहीं खाती।'

श्री टी० ग्राहम बेली के अनुसार उर्दू की उत्पत्ति दिल्ली के आस-पास नहीं, अपितु पंजाब (लाहौर) में हुई। महमूद गज़नी ने सन् १०८७ में पंजाब जीता और लाहौर में अपनी सेना रखी। सन् ११८७ तक यह शहर गज़नी वंश के हाथ में रहा। उसके बाद मुहम्मद

पं० चंद्रबली पाँडे—भाषा का प्रश्न पृ० १०७-१०८।

गोरी ने उसपर आधिपत्य जमाया। उसने अपने प्रतिनिधि कुतुबुद्दीन एबक के हाथ में विजित प्रान्त सौंप दिया। एबक ने दिल्ली को सन् ११६३ में अपने अधिकार में ले लिया और अपने मालिक की मृत्यु के पश्चात् वह स्वयं सुल्तान बन बैठा। इसी समय से दिल्ली में विदेशी फौजों का आवागमन प्रारम्भ होता है। इसलिए भाषा की क्रिया-प्रतिक्रिया का कार्य लाहौर में ही प्रारम्भ हुआ। लाहौर में उस समय पुरानी खड़ीबोली प्रचलित थी। उसी को विदेशियों ने अपनी व्यवहार की भाषा बनाया। इसप्रकार फौज की भाषा, जो बाद में, उर्दू कहलाई 'खड़ीबोली' से उत्पन्न हुई।

जार्ज ग्रियर्सन बोलचाल की ठेठ हिन्दुस्तानी से ही साहित्यिक उर्दू तथा हिन्दी की उत्पत्ति मानते हैं। जैसा कि अन्यत्र कहा जा चुका है। यह बोलचाल की हिन्दुस्तानी, हिन्दी के अतिरिक्त कोई अन्य भाषा या बोली नहीं। इसका मूलस्थान उत्तरपश्चिम भारत के पंजाब की सीमा पर है तथा इसपर पंजाबी का अत्यधिक प्रभाव है। ग्रियर्सन ने अपने लिंग्विस्टिक सर्वे के खंड ६ भाग१ पृष्ठ ६९ से साहित्यिक हिन्दुस्तानी का उदाहरण देना प्रारम्भ किया है। इनमें पहला पं० सुधाकर द्विवेदी द्वारा अनूदित बाइबिल की वह कहानी है, जिसका अनुवाद ग्रियर्सन ने सभी बोलियों मे कराया है। यह ठेठ साहित्यिक हिन्दुस्तानी है। इसके सम्बन्ध में ग्रियर्सन लिखते हैं—'इस ठेठ हिन्दी में केवल एक या दो शब्द विदेशी हैं। ये शब्द फारसी बखरा (भाग या हिस्सा) तथा संस्कृत पाप हैं। यद्यपि ये शब्द विदेशी हैं ; किन्तु ये दैनिक जीवन में व्यवहृत होते हैं और इन्हें पूर्ण नागरिकता प्राप्त हो चुकी है'। आश्चर्य है कि ग्रियर्सन जैसे भाषा-शास्त्री भी संस्कृत को विदेशी भाषा मानते हैं तथा भारत में उसे वही स्थान देते हैं जो फ़ारसी को! किन्तु जिस युग में ग्रियर्सन ने लिंग्विस्टिक सर्वे का कार्य किया था, उस युग में संस्कृत तथा हिन्दी के प्रति वातावरण ही ऐसा था। एक बात और है। ऊपर ग्रियर्सन ने ठेठ साहित्यिक हिन्दुस्तानी को ठेठ हिन्दी कहा है। यह वस्तुतः उल्लेखनीय है। अच्छा तो, इस ठेठ हिन्दुस्तानी में विदेशी (अरबी-फारसी) शब्दों का अनुपात क्या है, इसका विश्लेषण भी आवश्यक है। पं० सुधाकर द्विवेदी द्वारा अनूदित ऊपर की कहानी में ४२६ शब्दों मे केवल एक शब्द ही फारसी का है। इस प्रकार बोलचाल की हिन्दी में, दशमलव दो प्रतिशत [·२%] के लगभग विदेशी शब्द हैं। उत्तरी भारत की अन्य बोलियों में भी विदेशी (अरबी-फ़ारसी) शब्दों का यही अनुपात है।

श्री ब्रजमोहन दत्तात्रय कैफी अपने ओरियंटल कान्फ्रेंस लखनऊ (अक्टूबर १६२१) के भाषण में उर्दू की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विचार करते हुए कहते हैं—'शौरसेनीप्राकृत में विदेशी शब्दों के सम्मिश्रण से ही उर्दू की उत्पत्ति हुई। इसे हिन्दुस्तानी भी कहा जा सकता है। कतिपय भाषाशास्त्रियों के अनुसार खड़ीबोली में फ़ारसी शब्दों के सम्मिश्रण से ही उर्दू की उत्पत्ति हुई। खड़ीबोली दिल्ली के आसपास की बोली है। व्याकरण की दृष्टि से उर्दू में खड़ीबोली का कुछ भी अंश नहीं है ; किन्तु पंजाबी में शौरसेनी के जो अवशिष्ट रूप वर्तमान है, वे उर्दू में मिलते हैं।' [प्रोसिडिंग्स एण्ड ट्रांजेक्शन्स ऑफ ऑल इण्डिया ओरियण्टल कान्फ्रेंस लखनऊ १६२१ पृ० २४७]

उर्दू की उत्पत्ति के सम्बन्ध में, ऊपर विभिन्न विद्वानों के विचारों का दिग्दर्शन कराया गया है। अब यहाँ आलोचनात्मक विचार प्रकट किया जाता है।

जहाँ तक मुहम्मद हुसन आज़ाद तथा मीर अम्मन के विचारों का सम्बन्ध है, भाषा-विज्ञान की दृष्टि से ये अमान्य हैं और इनमें वैज्ञानिकता का अभाव है। श्री टी० ग्राहम बेली तथा डा० ग्रियर्सन के मत प्रायः एक ही हैं और इनमें नाममात्र का भेद है। हाँ, श्री कैफी ने उर्दू तथा हिन्दुस्तानी को एक ही मानकर भ्रम अवश्य उत्पन्न किया है। इन मतों में भाषाशास्त्रीय दृष्टि से ग्रियर्सन का मत ही मान्य है। इसके अनुसार ठेठ हिन्दुस्तानी ही एक ओर उर्दू तथा दूसरी ओर साहित्यिक हिन्दी में परिणत हो जाती है। ऊपर यह स्पष्ट किया जा चुका है कि वास्तव में यह हिन्दुस्तानी ही ठेठ हिन्दी है और इसी को कतिपय लोगों ने खड़ीबोली की संज्ञा ही दी है। इसप्रकार उर्दू की उत्पत्ति हिन्दी से ही हुई है अथवा दूसरे शब्दों में उर्दू हिन्दी की ही शैली है। खड़ीबोली की जो निरुक्ति विभिन्न विद्वानों ने दी है, उससे भी बहुत भ्रम फैला है। जैसा कि पं० चंद्रवली पांडे ने लिखा है, खड़ीबोली से वस्तुतः 'प्रकृति' 'ठेठ' अथवा 'शुद्ध बोली' से ही तात्पर्य है। [देखो—पं० चंद्रवली पाँडे उर्दू का रहस्य, पृ० ७१] इसप्रकार ग्रियर्सन की हिन्दुस्तानी, ठेठ हिन्दी तथा खड़ीबोली पर्यायवाची हैं और एक ही भाषा के विभिन्न नाम हैं।

यह अन्यत्र लिखा जा चुका है कि हमारी भाषा का हिन्दी नाम वस्तुतः मुसलमानों की ही देन है और यही भारतीय हिन्दू और मुसलमानों का सम्मिलित रिक्थ है। उर्दू की 'ज़बान' वस्तुतः एक विशेष वर्ग की भाषा है और यह नितान्त कृत्रिम ढंग से हिन्दुस्तानी अथवा ठेठ हिन्दी या खड़ीबोली में अरबी फारसी शब्दों तथा मुहावरों का सम्मिश्रण करके बनाई गई है। यह कार्य भी दिल्ली में ही किला मुअल्ला में ही सम्पन्न हुआ। यही कारण है कि इसका नाम 'ज़बाने उर्दू-ए-मुअल्ला' पड़ा। पण्डित चंद्रवली पांडे ने अपनी पुस्तिका 'उर्दू की ज़बान' पृ० ६ पर सैयद इंशा अल्ला (१८०८) के दरिया-ए-लताफ़त से जो उद्धरण दिया है उससे उर्दू की उत्पत्ति के सम्बन्ध में स्पष्ट प्रकाश पड़ता है। यह इस प्रकार है—

यहाँ (शाहजहानाबाद) के .खुशबयानो (साधु वक्ताओं) ने मुत्तफ़िक़ (एकमत) होकर मुताद्दिक (परिगणित) ज़बानों से अच्छे अच्छे लफ़्ज़ निकाले और बाज़ी इबारतों (वाक्यों) और अल्फ़ाज़ (शब्दों) में तसर्रुफ़ (परिवर्तन) करके और ज़बानों से अलग एक नई ज़बान पैदा की जिसका नाम उर्दू रखा।

सैयद इंशा अल्ला ने '.खुशबयानों' के सम्बन्ध में भी लिखा है। यह इस प्रकार है—

'ज़बान उर्दू जो फ़साहत (शिष्टता) व बलाग़त (प्रौढ़ता) की कान (खान) मशहूर हैं, वह हिन्दोस्तान के बादशाह की [जिसके सर पर फ़साहत का ताज ज़ेब (शोभा) देता है] और चंद अमीरों और उनके मुसाहिबों (सभासदों) और चन्द मुख़द्दरात (महिलाओं) मिस्ल (जैसे) बेगम व ख़ानम की और कसबियों की ज़बान हैं। जो लफ़्ज़ उनमें इस्तेमाल हुआ, उर्दू हो गया। यह बात नहीं है कि जो कोई भी शाहजहानाबाद में रहता है वह जो कुछ बोले सनद (प्रमाण) है।'

अब प्रश्न यह है कि भाषा के अर्थ में 'उर्दू' का प्रयोग कब से प्रारम्भ हुआ।

डाक्टर बेली के अनुसार इस अर्थ में इसका सब से पुराना प्रयोग मसहफी (मृत्यु सन् १८२४ ई०) का है। मसहफ़ी का शेर है—

ख़ुदा रक्खे ज़ुबाँ हमने सुनी है मीर वो मिरज़ा का ;
कहें किस मुँह से हम ऐ 'मसहफ़ी' उर्दू हमारी है।

यह शेर मसहफ़ी ने कब कहा, इसका ठीक पता नहीं चलता। बेली के अनुसार मीर की मृत्यु सन् १७९९ में हुई थी। यदि यह ठीक है तो मसहफी की रचना के बाद सम्भवतः १८०० ई०, अथवा इसके भी बाद की होगी।

हिन्दी-उर्दू समन्वय की आवश्यकता

उर्दू की उत्पत्ति चाहे जिस परिस्थिति में हुई हो, वह हमारे देश की एक विशेष परिस्थिति तथा संस्कृति को द्योतित करती है,जिसका ऐतिहासिक महत्त्व है। यद्यपि सापेक्षिक दृष्टि से उर्दू में विदेशी विचारों एवं भावनाओं का ही प्राचुर्य है, तथापि हाली, चकबस्त तथा कतिपय अन्य कवियों की कविताओं में हमारी राष्ट्रीय भावनाओं का भी चित्रण है। इस प्रकार के समस्त साहित्य को नागराक्षरों में सुरक्षित रखने की आवश्यकता है। उर्दू-हिन्दी-विवाद बहुत पुराना है। इस सम्बन्ध में 'हरिश्चन्द्र मैगेज़िन' से अन्यत्र उदाहरण दिया जा चुका है। इस विवाद में विदेशी शासकों का भी कम हाथ न था। इनकी विभेद-नीति के कारण भी एक ही भाषा की दो शैलियाँ दूर हटती गईं। फ़ारसी लिपि ने भी इन दोनों के पार्थक्य में पर्याप्त सहायता पहुँचाई। चूँकि संस्कृत के सरलतम तत्सम, तद्भव एवं देशी शब्दों को शुद्ध रूप में लिखने में यह लिपि असमर्थ है, अतएव विदेशी (अरबी-फ़ारसी) शब्दों की भरमार इसमें आवश्यक हो गई। अतीत में चाहे उर्दू-हिन्दी में प्रतिद्वन्द्विता भले ही रही हो, आज उसका अन्त हो जाना चाहिए। आज नागरी-हिन्दी देश की राष्ट्रभाषा घोषित हो चुकी है। उसकी अपनी निश्चित शैली है। उर्दू को, समन्वय की दृष्टि से, धीरे-धीरे उसी ओर अग्रसर होना चाहिए। इस समन्वय की वस्तुतः दो आधार शिलाएँ हैं, (१) नागरीलिपि तथा (२) राष्ट्रीय भावना। इन्हीं के द्वारा भविष्य में हिन्दी-उर्दू समन्वय सम्भव हो सकेगा।

हिंदी के विभिन्न तत्त्व

यह अन्यत्र स्पष्ट किया जा चुका है कि भारत-हत्ती तथा भारोपीय भाषा ही क्रमशः भारत-ईरानी तथा भारतीय आर्य-भाषाओं के विविध स्तरों—वैदिक, पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश—से होती हुई आधुनिक आर्य-भाषाओं में परिणत हो गई। वैदिकभाषा में वस्तुतः उस युग की बोलचाल की भाषा तथा साहित्यिक भाषा, दोनों, के नमूने उपलब्ध हैं। आगे चलकर एक ओर जब पाणिनीय संस्कृत के साहित्यिक रूप में वैदिक संस्कृत का सहज रूप अवरुद्ध हो गया, तब भी दूसरी ओर बोलचाल की भाषा का अविच्छिन्न प्रवाह अबाधगति से चलता रहा। बुद्ध ने जनता की भाषा में ही उपदेश दिया; क्योंकि उन्हें जनसाधारण को ही उठाना था। किन्तु यहाँ प्रश्न यह उठता है कि वह भाषा कौन थी? बुद्ध, वस्तुतः, प्राच्य-प्रदेश के निवासी थे और उनके जीवन का अधिकांश भाग मगध में ही व्यतीत हुआ था। अतएव उनकी मातृभाषा, प्राच्यभाषा ही थी। कुछ विद्वानों के अनुसार

यह प्राचीन अर्धं मागधी थी, किन्तु यहाँ यह बात नहीं भूलनी चाहिए कि तबतक मागधी तथा अर्धमागधी स्पष्ट रूप से दो विभिन्न भाषाओं का रूप नहीं धारण कर सकी थीं। उस समय मुख्य रूप में केवल दो ही प्राकृतें थीं, एक पश्चिमी अथवा शौरसेनी, दूसरी प्राच्य अथवा मागधी। बुद्ध ने अपना उपदेश इसी मागधी में दिया था और सम्राट् अशोक ने मागधी त्रिपिटक को ही पढ़ा था। आगे चलकर बुद्ध के ये उपदेश पालि में परिवर्तित किये गये। पालि साहित्यिक भाषा है और इसके व्याकरण का ढाँचा मध्यदेश का है। यह दूसरी बात है कि इसमें मागधी के भी अनेक शब्द-रूप वर्तमान हैं। इस सम्बन्ध में अन्यत्र विचार किया जा चुका है।

समय की प्रगति के साथ-साथ विभिन्न प्राकृतें अस्तित्व में आईं; किन्तु बोलचाल की भाषा के रूप में अशोक तथा शुतनुका के लेखों के अतिरिक्त इनके नमूने अन्यत्र उपलब्ध नहीं हैं। इन अल्प उदाहरणों से ही उस समय की कथ्य-भाषा का थोड़ा-बहुत अनुमान किया जा सकता है। नाटकीय प्राकृतों—शौरसेनी, महाराष्ट्री, अर्धमागधी तथा मागधी—के रूप में इन प्राकृतों के उदाहरण अवश्य मिलते हैं; किन्तु ये वस्तुतः साहित्यिक भाषा के ही नमूने हैं। इनमें भी महाराष्ट्री तो शौरसेनी का ही विकसित रूप है और अर्ध मागधी पर, जैसा कि नाम से ही प्रकट है, मागधी का पूर्ण प्रभाव है। प्रादेशिक बोलचाल की प्राकृतों के साहित्यिक रूप धारण कर लेने पर भी कथ्य-भाषा का प्रवाह चलता रहा। बोलचाल की प्राकृतों की भाँति ही कथ्य-अपभ्रंश के नमूनों का भी अभाव ही है। आज विविध जैन भंडारों में अपभ्रंश का जो विशाल साहित्य उपलब्ध है, वह साहित्यिक-अपभ्रंश का ही है। वस्तुतः बोलचाल के विभिन्न प्रादेशिक अपभ्रंशों से ही नव्य-भारतीय भाषाएँ उत्पन्न हुई हैं।

परिवर्तन के निरन्तर प्रवाह के अनुभव करनेवाले भाषा-शास्त्र के विद्यार्थियों के लिए एक बात जो स्मरणीय है, वह यह है कि भाषा का प्रवाह संश्लिष्टावस्था से विश्लेषावस्था की ओर चलता रहा। भाषा के इस परिवर्तन का कारण वस्तुतः आर्यों के साथ अनार्यों—कोल या मुंडा, निषाद, किरात तथा द्रविड़ों आदि—का सम्पर्क तथा सम्मिश्रण था। प्रसिद्ध भाषाशास्त्री डा० सुनीति कुमार चटर्जी ने अपने अखिल-भारतीय-प्राच्यविद्या—परिषद् के सप्तदश अधिवेशन (अहमदाबाद, गुजरात) के सभापति के भाषण में यह स्पष्टरूप से प्रदर्शित किया है कि अनुलोम-प्रतिलोम विवाह द्वारा, प्राचीन भारत में जहाँ एक ओर विभिन्न जातियों का सम्मिश्रण हो रहा था, वहाँ दूसरी ओर आर्य तथा अनार्य भाषा एवं संस्कृति का भी संगम हो रहा था। इस पारस्परिक आदान-प्रदान के फलस्वरूप ही वैदिकभाषा में भी परिवर्तन प्रारम्भ हुआ और वह संश्लिष्टावस्था से विश्लेषावस्था में परिणत होने लगी। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने अपनी पुस्तक 'प्राचीन हिन्दी काव्यधारा' में अपभ्रंश को पुरानी हिन्दी के नाम से अभिहित किया है। श्री राहुलजी का यह कथन इसलिए अनुमोदनीय है कि व्याकरण की दृष्टि से अपभ्रंश, संस्कृत की अपेक्षा, आधुनिक भाषाओं के अधिक निकट है।

आधुनिक आर्यभाषाओं की उत्पत्ति के विषय में ऊपर के संक्षिप्त विवरण के उपरान्त अब इस सम्बन्ध में विचार करना है कि हिन्दी का निर्माण किन तत्त्वों से हुआ है। इन तत्त्वों पर विचार करते समय यह बात न भूलनी चाहिए कि परिवर्तन सम्बन्धी कुछ तत्त्व

ऐसे हैं जो सभी नव्य-आर्यभाषाओं में समानरूप से उपलब्ध हैं। उदाहरण स्वरूप यदि संस्कृत के ध्वनितत्त्व पर ही विचार किया जाय तो यह स्पष्ट हो जायगा कि उसके निर्माण काल में ही, आर्यों तथा अनार्यों के सम्पर्क के फलस्वरूप, भारोपीय के 'अ', 'ए' तथा 'ओ' स्वर, संस्कृत में 'अ' में परिवर्तित हो गए थे। इसीप्रकार संस्कृत के ध्वनिसमूह में ट-वर्ग का आगम भी द्रविड़ों के सम्पर्क से ही हुआ। प्राकृतों की चर्चा करते समय यह पहले ही कहा जा चुका है कि मागधी प्राकृत में 'स' का उच्चारण 'श' हो गया था। 'ष' का 'ख' तथा 'त' का 'ट' उच्चारण वस्तुतः प्राच्य में ही विकसित हुआ था। वैदिकसंस्कृत के विकृत, स्याल, वसिष्ठ, क्षुर आदि के संस्कृत के विकट, श्याल, वशिष्ठ, खुर आदि रूप यह सिद्ध करते हैं कि किस प्रकार आर्यों के विस्तृत भू-भाग में फैल जाने तथा अनार्यों के सम्पर्क में आने के कारण, बहुत पहले ही भाषा में परिवर्तन आरम्भ हो गया था। संस्कृत के उच्चारण तथा व्याकरण-सम्बन्धी उच्छृङ्खलता से क्षुब्ध होकर ही महर्षि पतञ्जलि को, ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी में, कहना पड़ा—व्यत्ययो हि बहुला (बहुत व्यत्यय = विपर्यय हो रहा है।) किन्तु जो हो, इन का व्यत्ययों का कारण ही तो, आगे चलकर, प्राकृत, अपभ्रंश तथा नव्य-आर्य-भाषाओं का जन्म हुआ। जहाँ तक हिन्दी का सम्बन्ध है, १००० ई० के लगभग यह अस्तित्व में आ चुकी थी।

हिन्दी जिन तत्त्वों से निर्मित हुई है, उनपर विचार करने से पूर्व इसकी प्रकृति से परिचय प्राप्त कर लेना आवश्यक है। वस्तुतः साहित्यरचना के लिए खड़ीबोली अथवा नागरी-हिन्दी का प्रयोग १७-१८वीं शती से पुराना नहीं है। भाषा के रूप में हिंदी की प्रकृति, रचनात्मक (Building) है। इस विषय में यह यूरप की भाषाओं में, जर्मन से समानता रखती है। जर्मनभाषा की यह विशेषता है कि अपने ही प्रत्ययों से वह नवीन शब्दों का निर्माण कर लेती है। अँग्रेजी में प्रायः इस शक्ति का अभाव है और आवश्यकता पड़ने पर जिस प्रकार आधुनिक बँगला, संस्कृत से तत्समरूप में, शब्द उधार ले लेती है, उसी प्रकार अँग्रेजी भी लैटिन, ग्रीक तथा संसार की अन्य प्राचीन अथवा अर्वाचीन भाषाओं से किञ्चित् ध्वन्यात्मक परिवर्तन करके शब्दों को उधार ले लेती है। प्रकृत्या, हिन्दी को हम उधार लेनेवाली भाषा (Borrowing Language) न कहकर रचनात्मक (Building Language) भाषा ही कहना ठीक समझते हैं। इस विषय में आर्य-भाषाओं में हिन्दी का अपना अलग व्यक्तित्व है।

तद्भव—हिन्दी की दूसरी विशेषता है, इसमें तद्भव शब्दों का प्राचुर्य। प्राकृत वैयाकरणों के अनुसार तद्भव वे शब्द है जो संस्कृत के उन्हीं शब्दों से किञ्चित् भिन्न रूप-वाले होते हैं। तद्भव का शाब्दिक अर्थ है, तद् = उससे, भव = उत्पन्न। यहाँ तद् से वस्तुतः संस्कृत से ही तात्पर्य है। हिन्दी तथा अन्य नव्य-आर्य भाषाओं में तद्भव वे शब्द हैं जो इन भाषाओं में मूल संस्कृत से प्राकृत से होते हुए आए हैं। उदाहरण स्वरूप हिन्दी के आज, काम, काज, भात, हाथ आदि शब्द तद्भव हैं; क्योंकि प्राकृत से होते हुए ये संस्कृत से निम्नलिखित रूप में उत्पन्न हुए हैं—

अद्य > अज्ज > आज; कर्म > कम्म > काम; कार्य > कज्ज > काज; भक्त > भत्त > भात; हस्त > हत्थ > हाथ आदि। वस्तुतः तद्भव शब्द ही हिन्दी के मेरुदण्ड हैं।

इस सम्बन्ध में हिन्दी की तुलना बँगला से की जा सकती है, जहाँ तद्भव शब्दों की संख्या हिन्दी से न्यून है।

तत्सम—हिन्दी में, स्वाभाविक रूप से, तत्सम शब्दों की संख्या कम है। तत्सम से वस्तुतः तात्पर्य है, तत् = उसके, सम = समान। यहाँ भी तत् से संस्कृत से ही तात्पर्य है। वस्तुतः तत्सम वे शब्द हैं जो नव्य-आर्यभाषाओं में, संस्कृत से उसी रूप में लिए गए हैं। आधुनिक आर्यभाषाओं में, बँगला में, तत्सम शब्दों की संख्या सबसे अधिक है।

हिन्दी में भी आज तत्सम शब्दों का बाहुल्य हो रहा है। इसके कई कारण हैं। हिन्दी अब केवल बोलचाल की भाषा मात्र ही नहीं है और न केवल वह प्रादेशिक भाषा ही है, अपितु राष्ट्रभाषा के रूप में वह संस्कृति-वाहिनी भाषा बन रही है। संस्कृत शब्दों के प्रयोग से एक यह भी लाभ है कि प्रायः सभी नव्य आर्यभाषाओं में वे समान रूप से प्रयुक्त होते हैं। इसके अतिरिक्त दक्षिण की तमिळ, तेळुगु, मलायालम तथा कन्नड आदि भाषाओं में भी संस्कृत के शब्द पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। इस प्रकार तत्सम् शब्दो के प्रयोग में किसी प्रकार की प्रादेशिक बाधा नहीं है। इस सम्बन्ध में एक और बात भी उल्लेखनीय है। वास्तव में आज, हिन्दी में, विभिन्न बोलियों के कोषों का अभाव है। अतएव किन्हीं शब्दों का क्षेत्र यद्यपि बहुत विस्तृत है और वे पंजाब से बँगाल तक एक ही रूप में व्यवहृत होते हैं, तथापि हिन्दी के लेखकों को उनका पता नहीं है और ग्राम्य अथवा स्थानीय दोषों के डर से वे उनके स्थान पर संस्कृत शब्दों का प्रयोग ही श्रेयस्कर समझते है।

अर्द्धतत्सम—तत्सम के साथ-ही-साथ प्रायः सभी नव्य-आर्यभाषाओं में अर्द्धतत्सम-शब्दों का भी प्रयोग होता है। जैसा कि नाम से ही प्रकट है, अर्द्धतत्सम से उन शब्दों से तात्पर्य है, जो तद्भव नहीं हैं तथा जो तत्सम के अति निकट हैं। प्राकृतयुग में भी संस्कृति-वाहिनी भाषा के रूप में संस्कृत का अध्ययन-अध्यापन आज की भाँति ही चलता रहा। अतएव प्राकृतों में संस्कृत शब्दों का आना अनिवार्य था। ऐसे शब्द जब प्राकृत में आते थे तथा जब वे संयुक्त व्यञ्जनवाले होते थे, तब प्राकृत के उच्चारण के प्रभाव से, उनमें तत्सम की अपेक्षा, कुछ-न-कुछ अन्तर आ ही जाता था। यह अन्तर उससे सर्वथा भिन्न था जो विकासक्रम से संस्कृत से प्राकृत तथा प्राकृत से नव्य-आर्यभाषाओं में परिणत हुए शब्दों मे होता था। दूसरे प्रकार के शब्द, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, तद्भव कहलाये; किन्तु पहले प्रकार के शब्दों को अर्द्धतत्सम संज्ञा से अभिहित किया गया। एक उदाहरण से यह स्पष्ट हो जायगा। संस्कृत तीक्ष्ण से प्राकृत का तिक्ख शब्द बना जो विकास क्रम से हिन्दी में तीखा में परिणत हो गया। यहाँ संयुक्त व्यञ्जन 'क्ष्ण' का 'क्ख' रूप में समीकरण प्राकृत के ध्वनि सम्बन्धी नियमों के सर्वथा अनुकूल था; किन्तु एक बार पुन' प्राकृत में तीक्ष्ण शब्द का प्रयोग होने लगा। प्राकृत उच्चारण के कारण इसका शुद्ध रूप में उच्चारण कठिन था, अतएव स्वरभक्ति अथवा विप्रकर्ष की सहायता से इसका तिखिण उच्चारण होने लगा। यह 'तिखिण' वस्तुतः अर्द्धतत्सम शब्द है। इस प्रकार के कई ऐसे शब्द हैं, जिनके प्राकृत में दो रूप मिलते हैं। कृष्ण का प्राकृत रूप कण्ह हुआ जो हिन्दी में कान्ह तथा बँगला में 'कानू' में परिणत हो गया; किन्तु प्राकृत में इसका एक रूप 'कसण' चलता रहा जो वास्तव में अर्द्धतत्सम था। इसी प्रकार संस्कृत

'पद्म' शब्द, प्राकृत में 'पोम्म' बना ; किन्तु इसका अर्द्धतत्सम रूप पदुम भी प्राकृतकाल में ही प्रचलित हो गया। इस पदुम से ही आगे चलकर प्राकृत में 'पउम' तथा अपभ्रंश में पउवँ शब्द बने। संस्कृत सर्षप से प्राकृत सस्सप शब्द निर्मित हुआ। इससे सस्सव से होते हुए हिन्दी में सासौ शब्द बनना चाहिए था ; किन्तु प्राकृत-युग में ही इसका अर्द्धतत्सम रूप सरिसव भी प्रचलित हो गया, जिससे बोलियों में सरिसौं तथा हिन्दी में स्वतः अनुनासिकता-युक्त सरसों शब्द बने। संस्कृत आदर्श, स्त्रीलिङ्ग रूप आदर्शिका से आदस्सिका, आदस्सिआ, आअस्सिआ होते हुए हिन्दी में आसी शब्द बनना चाहिए था ; किन्तु एकबार प्राकृत युग में आदर्शिका शब्द के पुनः प्रचलित हो जाने से *आअरसिआ होते हुए, हिन्दी में आरसी शब्द प्रतिष्ठित हुआ।

हिन्दी में किशन, चन्दर, लगन आदि शब्द, आज, अर्द्धतत्सम रूप में चल रहे हैं। इधर पंजाबी के प्रभाव के कारण भी हिन्दी में अर्द्धतत्सम शब्दों का प्रयोग बढ़ रहा है।

देशी—संस्कृत तथा प्राकृत में अनेक ऐसे शब्द हैं, जिनकी व्युत्पत्ति संस्कृत धातुओं तथा प्रत्ययों से नहीं दी जा सकती। जहाँ इसप्रकार के शब्द संस्कृत में मिलते हैं, वहाँ उनकी वैज्ञानिक व्युत्पत्ति न देकर, केवल आनुमानिक व्याख्या देकर ही सन्तोष कर लिया जाता है। प्राकृत के ऐसे शब्दों को, जिनकी व्युत्पत्ति संस्कृत से नहीं दी जा सकती, वैयाकरणों ने देशी नाम दिया है। वास्तव में देशी से उनका क्या तात्पर्य है, यह कहीं भी उन्होंने स्पष्ट नहीं किया है। अनुकरणमूलक शब्दों को भी कोषकारों ने प्रायः इसी श्रेणी में रखा है। इसप्रकार पोट्ट>पेट, गोड्ड>गोड़, तुप्प>तूप (मराठी में तूप घी को कहते हैं) आदि शब्द देशी बतलाये गए हैं।

आधुनिक समय में देशी शब्द किंचित् भिन्न अर्थ में प्रयुक्त होता है। आज इससे उन शब्दों का तात्पर्य लिया जाता है, जो भारत के आदिवासियों की भाषाओं तथा बोलियों से वैदिक तथा पाणिनीय संस्कृत एवं प्राकृत तथा नव्य आर्य भाषाओं में समय-समय पर आए हैं। आर्य भाषा में ऐसे शब्दों का आगमन वस्तुतः उस समय से होने लगा था, जिस समय आर्य तथा अनार्य एक दूसरे के सम्पर्क में आए थे। संस्कृत के ऐसे शब्दों के सम्बन्ध में आज भी अनुसन्धान कार्य सफलतापूर्वक चल रहा है और अब यह बात निर्विवाद सिद्ध हो चुकी है कि ऐसे अनेक शब्द संस्कृत में विद्यमान हैं, जो मूलतः द्रविड़ तथा अन्य अनार्य भाषाओं से आए हैं। आधुनिक भाषा-शास्त्रियों ने तो लगभग साढ़े चार सौ संस्कृत के ऐसे शब्दों को ढूँढ़ निकाला है, जिनका अनार्य स्रोत है। ऐसे शब्दों में काल, कला, पुष्प, पुष्कर, अणु, पूजा, वल्गु, नाना, घोटक, पिक, कीचक, तिंतिड़ी, बर्टिगण, मयूर, कदलि, कम्बल तथा बाण आदि की गणना है।

हिन्दी तथा अन्य नव्य-आर्य-भाषाओं में सैकड़ों देशी शब्द प्राकृत से होकर आए हैं। इनमें से अनेक शब्द तो प्राचीन तथा मध्ययुग में भी प्रचलित थे और समय की प्रगति से ये आज हिन्दी में भी वर्तमान हैं। किन्तु इस सम्बन्ध में यह बात उल्लेखनीय है कि किसी भी संस्कृत अथवा प्राकृत कोष में न तो ऐसे शब्दों की व्याख्या ही उपलब्ध है और न सूची ही प्राप्य है।

हिन्दी में विदेशी शब्द

संसार में आज कोई ऐसी भाषा नहीं है जो विशुद्ध है तथा जिसमें विदेशी शब्दों का समावेश नहीं है। ऊपर देशी शब्दों के सम्बन्ध में कहा जा चुका है। ये देशी शब्द भी एक प्रकार से इस अर्थ में विदेशी हैं कि ये विभिन्न कुल की भाषाओं अथवा बोलियों से उधार लिए गये हैं, किन्तु आज ये शब्द आर्यभाषा में इस प्रकार घुलमिल गए हैं कि देशी कहलाने लगे हैं। वैदिकयुग से लेकर आजतक, निरन्तर हमारी भाषा में, नये भावों तथा विचारों को प्रकट करने के लिए, विदेशी शब्द समाविष्ट होते रहे हैं। ये शब्द हमारे प्राचीन इतिहास पर भी पर्याप्त प्रकाश डालते हैं। उदाहरण स्वरूप संस्कृत लोह, हिन्दी, लोहा शब्द की उत्पत्ति सुमेरीय * रोध (देखो, संस्कृत रुधिर) से हुई है। समय की प्रगति से ही * रोध, * लोध तथा लोह में परिवर्तित हो गया है। इसी प्रकार, हिन्दी, मन (तौल सम्बन्धी बॉट) की उत्पत्ति वेबिलोनीय मिना शब्द से हुई है।

भारत में आर्यों के प्रतिष्ठापित हो जाने के बाद और प्राकृत-युग के आरम्भ में हखामनीश (एकेमेनीय), ग्रीक, शक आदि भारत में आए और एक ओर जहाँ वे भारतीय संस्कृति तथा भाषा से प्रभावित हुए, वहाँ दूसरी ओर उन्होंने स्वयं भी यहाँ की भाषा को प्रभावित किया। इसका एक परिणाम यह हुआ कि प्राकृत में अनेक विदेशी शब्द समाविष्ट हुए, जिनमें से कई तो संस्कृत में पुनः लिए गए। इनमें से कतिपय शब्द तो हिन्दी तथा अन्य नव्य-आर्य-भाषाओं में भी आए। उदाहरणस्वरूप, ग्रीक का द्रख्मे (Drakhme) शब्द एक ओर संस्कृत में द्रम्म हो गया तो दूसरी ओर वह द्रम्म, दम्म से होते हुए हिन्दी में दाम हो गया। इसीप्रकार ग्रीक का सेमिदालिस (Semidalis) शब्द हिन्दी में सेवइयाँ बन गया तथा पुरानीफारसी का पोस्त शब्द पुस्त होते हुए 'क' प्रत्यय के संयोग से पुस्तक हो गया।

ईसा के जन्म से तीन शताब्दी बाद जब गुप्तकाल में भारत का ईरान के साथ विशेष सम्बन्ध स्थापित हुआ तब पारस्परिक आदान-प्रदान के फलस्वरूप कतिपय शब्द ईरानी से संस्कृत में स्वीकृत हुए। ऐसे शब्दों में से कम-से-कम दो शब्द हिन्दी में आज भी प्रचलित हैं। इनमें से मध्य-फारसी का एक शब्द मोचक (घुटनों तक का जूता) है, जिससे मोचिका>मोची शब्द हिन्दी में आया है। मोचक शब्द ही आगे चलकर फ़ारसी में मोज़ा बन गया। इसीप्रकार मध्य-फ़ारसी का तश्त शब्द प्राकृत में टठ बन गया। इसीसे अवधी टाठी (थाली) शब्द सिद्ध हुआ। उधर तश्त (टठ) बनानेवाला टठकार कहलाया, जो हिन्दी में ठठेरा रूप में आया।

मिस्र का एक प्राचीन नाम मुद्रा (Mudra) है। इसीसे संस्कृत का मुद्रा शब्द सिद्ध हुआ, जिससे हिन्दी का मुँदरी शब्द निकला। उसीप्रकार सिरिया देश (सिरियन) का सिक्त (Sykt) शब्द संस्कृत में सेक्यकार (स्वर्णकार) बना, जिससे बंगला का शेकरा शब्द निकला। उधर हिन्दी में इसी सिक्त (Sykt) से सिक्का शब्द प्रचलित हुआ।

मुस्लिम विजय से पहले ही हिन्दी में पठान शब्द प्रचलित हो गया था। अफगान लोग अपने को पश्ताना तथा अपनी भाषा को पश्तो कहते थे। पश्ताना शब्द ही

उत्तरी भारत में पट्ठाण रूप में प्रचलित हुआ और इसीसे हिन्दी शब्द पठान बना। प्रो० सिल्वाँ लेवी के अनुसार ठाकुर (मालिक अथवा राजपूतों के नाम के आगे लगनेवाले आदरसूचक शब्द) की उत्पत्ति तुर्की 'तेगिन' शब्द से हुई है। आगे चलकर जब तुर्कों ने भारत को अधीन किया तब कतिपय तुर्की शब्द हिन्दी में आए; किन्तु ऐसे शब्दों की संख्या अल्प ही रही। इसका एक कारण यह भी था कि तुर्कों ने यहाँ आकर अपनी मातृभाषा के स्थान पर फ़ारसी का व्यवहार आरम्भ कर दिया। आज भी हिन्दी में निम्नलिखित तुर्की शब्द प्रचलित हैं—

(१) उर्दु>उर्दू (क़िला, बाद में उर्दू की ज़बान) (२) बोग्दीर (Bogadyr) बहादुर (३) ओज़बेक>हिन्दी, उज़्बक। (४) आका (मालिक) (५) कलगी (६) कैंची (७) काबू (८) कुली (९) कोर्मा (१०) खाँ (११) गलीचा (१२) चकमक (१३) चाकू (१४) चिक (१५) तमगा (१६) तुरुक (१७) तोप (१८) दरोगा (१९) बख्शी (२०) बवर्ची (२१) बीबी (२२) बेगम (२३) बकचा (२४) मुचलका (२५) लाश (२६) सौगात आदि। डा० सुनीतिकुमार चटर्जी के अनुसार हिन्दुस्तानी में लगभग सत्तर-अस्सी शब्द तुर्की के हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि तुर्कों की विजय के पश्चात् उनसे सम्बन्ध रखनेवाले कतिपय हिन्दुओं ने भी फ़ारसी पढ़ना आरम्भ किया; किन्तु इसका विशेष प्रभाव उत्तरीभारत की भाषाओं पर न पड़ा, क्योंकि शासन-सम्बन्धी कार्य हिन्दी, पंजाबी, गुजराती तथा बंगला के माध्यम से चलता रहा; किन्तु १६वीं शताब्दी के मध्य भाग में मुग़ल शासन में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ। अकबर के वित्तमन्त्री, राजा टोडरमल, की आज्ञा से देशी भाषाओं का स्थान फ़ारसी को मिला और सरकारी हिसाब-किताब और कागज-पत्र फ़ारसी में रखे जाने लगे। इसका तात्कालिक परिणाम यह हुआ कि कचहरी से सम्बन्ध रखनेवाले अमला लोग प्रत्येक प्रदेश में फ़ारसी से परिचित होने लगे और धीरे-धीरे निम्न मध्यमवर्ग के लोग फ़ारसी ज्ञाता हो गए। उत्तरीभारत के कायस्थ तथा बंगाल एवं गुजरात के ब्राह्मण इसमें अग्रगण्य थे। इनमें से अनेक फ़ारसी के अच्छे पण्डित थे तथा फ़ारसी की सूफ़ी कविता में विशेष रस लेते थे। इसप्रकार आधुनिक भाषाओं में फ़ारसी शब्द अबाधगति से आने लगे। वस्तुतः नव्य-आर्य-भाषाओं मे, १८वीं शताब्दी में, फ़ारसी शब्द अत्यधिक मात्रा में आए। बंगला में इसप्रकार के शब्दों की संख्या ढाई-तीन हजार के लगभग है। हिन्दी में, यह संख्या इससे अधिक होगी। आधुनिक हिन्दी के आदमी, औरत, बच्चा, हवा, आस्मान, जमीन, आहिस्ता, देर, मालूम, नजदीक, सब्र, कसूर, शर्म, हिसाब-किताब, सिपाही, फौज, मौज, मजा, मुर्दा, गुस्सा जैसे दैनिक जीवन के शब्द भी फारसी के हैं।

अरबी भाषा का प्रत्यक्ष प्रभाव भारतीय भाषाओं पर बहुत कम पड़ा। अरबवालों की सिन्ध-विजय वस्तुतः आकस्मिक घटना थी और उसका प्रभाव भी भारतीय इतिहास पर अस्थायी ही पड़ा। यद्यपि आलिम मुसलमान अरबी के अध्ययन में संलग्न रहे तथा साधारण मुस्लिम जनता भी नमाज मे अरबी का प्रयोग करती रही; किन्तु इसके अतिरिक्त इस देश में इसका प्रचार अति सीमित क्षेत्र मे ही रहा। हाँ, फ़ारसी का प्रचार यहाँ प्रमुख रूप से अवश्य था। फ़ारसी का खुदा (संस्कृत, स्वधा) शब्द यहाँ के

मुसलमानों में उतना ही प्रचलित रहा, जितना अरबी का अल्लाह्। इनके अतिरिक्त ग्रामीण मुसलमानों में तो ईश्वरवाची कर्तार गुसाईं (अवधी तथा भोजपुरी गोसइयाँ) आदि शब्द ही अत्यधिक प्रचलित रहे। इसीप्रकार पैग़म्बर, नमाज़, रोज़ा, आदि जैसे धार्मिक शब्द भी जनप्रिय रहे। यद्यपि आज भारतीय भाषाओं में सैकड़ों अरबी के शब्द प्रचलित हैं तथापि ये फ़ारसी के द्वारा इनमें आये हैं। यहाँ अरबी शब्दों का शुद्ध उच्चारण भी प्रचलित न हो सका। भारत में अरबी शब्दों का वैसी ही उच्चारण प्रचलित है, जैसा ईरान (फ़ारस) के लोग करते हैं। उदाहरण स्वरूप तो (ط), ज़ो (ظ), स्वाद् (ص) तथा ज़्वाद (ض) का फ़ारसी उच्चारण ही आज भारत में प्रचलित है और अरबी का क़ादी (قاضي) शब्द यहाँ काज़ी रूप में ही उच्चरित होता है। अरबी अल्क़ादी (القاضي) शब्द स्पेन की भाषा में अल्केड (Alcayde) रूप में अपना शुद्ध उच्चारण आज भी बहुत-कुछ सुरक्षित रखे हुए है। डा० चटर्जी की पद्धति का अनुसरण करके भोजपुरी में व्यवहृत होनेवाले अरबी-फ़ारसी शब्दों की सूची इस पुस्तक के पृ० २१-२२ में, आगे, दी गई है। किंचित ध्वनि-परिवर्तन के साथ ये प्रायः सभी शब्द, हिन्दी में भी, व्यवहृत होते हैं, अतएव स्थान संकोच से उन्हें यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

फ़ारसी-अरबी के बाद हिन्दी में पुर्तगाली शब्द आते हैं। सन् १४९७ ई० में पुर्तगाली यात्री वास्को-डि-गामा, दक्षिण भारत में, कालिकट में उतरा। सन् १५१० में पुर्तगालियों ने गोवा पर अधिकार किया और सोलहवीं शताब्दी के प्रथम चरण में ही उन्होंने महाराष्ट्र तथा गुजरात के कुछ भागों को भी अधीन कर लिया। सन् १५३७ई० में पुर्तगाली बंगाल में प्रतिष्ठित हुए और इसप्रकार पुर्तगाली शब्दों को मराठी, गुजराती, बंगाली तथा उड़िया में स्थान मिला। बिहार तथा उत्तरभारत की भाषाओं एवँ बोलियों पर पुर्तगाली भाषा का सीधा प्रभाव नहीं पड़ा। यह धीरे-धीरे बंगाल तथा बँगला भाषा के द्वारा ही आया। बँगला में पुर्तगाली भाषा के लगभग सौ शब्द प्रचलित हैं। हिन्दी में इसके निम्नलिखित शब्द द्रष्टव्य हैं—अनानास, अल्मारी, अचार, आल्पीन, आया, इस्पात, इस्त्री, कमीज़, कप्तान, कनस्तर, कमरा, काज़, काफ़ी, काजू, काकातुआ, क्रिस्तान, किरच, गमला, गारद, गिर्जा, गोभी, गोदाम, चाबी, तंबाकू, तौलिया, तौला, नीलाम, परात, पाव (=रोटी), पादरी, पिस्तौल, पीपा, फ़र्मा, फ़ीता, बपतिस्मा, बाल्टी, बिस्कुट, बटन (बँगला, बोताम), बोतल, मस्तूल, मिस्त्री, मेज, यीशू, लबादा, संतरा, साया, सागू, बंडल आदि।

पुर्तगालवालों की भाँति ही डच तथा फ्रेंच लोगों ने भी भारत में अपने उपनिवेश बनाए; किन्तु इनके बहुत कम शब्द आधुनिक आर्य भाषाओं में आ सके। डा० चटर्जी के अनुसार तो बँगला में इन भाषाओं से सीधे दस शब्द से अधिक नहीं आए। हिन्दी में तो यह संख्या और भी कम है। फ्रेंच के केवल तीन ही शब्द—कार्तूस, कूपन और अँग्रेज आज हिन्दी में प्रचलित हैं। इसीप्रकार डच से केवल पाँच शब्द हिन्दी में आए हैं; जिनमें तीन रुकावन (हुकुम), चिड़ी या चिड़िया (चिकिलन), तुरुप, ताश के पत्ते हैं। इनके अतिरिक्त ही अन्य शब्द इस्क्रूप (अं० स्क्रू = Screw) तथा बम (गाड़ी में प्रयुक्त आगे की लम्बी लकड़ी) हैं।

अँगेजी ने तो आधुनिक भाषाओं को इतना प्रभावित किया है कि अँग्रेजों के भारत छोड़ देने के बाद भी इसका बहिष्कार कठिन हो रहा है और बहुत लोग तो आज यह सोचने लगे हैं कि इससे भारत का पिण्ड कभी नहीं छूट सकता। इसमें सन्देह नहीं कि ज्ञान-विज्ञान की नवीन विचारधारा हमारे देश में अँग्रेजी के द्वारा ही आई है; किन्तु इसके साथ ही यह बात भी न भूलनी चाहिए कि इसने हमारी प्रादेशिक भाषाओं को बुरी तरह दबाया है और इसके अनुचित दबाव के कारण देश मौलिक चिन्तन के क्षेत्र में बौना बन गया है। जो हो, आज अँग्रेजी के अनेक शब्द दैनेक जीवन में घर कर गए हैं। कतिपय उल्लेखनीय शब्द इसप्रकार हैं—

लाल्टेन, इस्टेशन, टिकट, पल्टन, डाक्टर, डिप्टी, गारद, अर्दली, बेहरा, रसीद, रपट, माचिस, मिनट, मोटर, मास्टर, रासन, काड, लाइब्रेरी, लोट, बोट, समन, संतरी, पास, फेल, फीस, फोटो, बिल्टी, बैरंग, बुरुस, मसीन, लेक्चर, सिमेंट, जज, सिगरेट, साइंस, हाकी, हारमुनियम आदि।

हिन्दी में अन्य प्रादेशिक भाषाओं से भी अनेक शब्द आए हैं। इधर जब से हिन्दी राष्ट्रभाषा घोषित हुई है तब से प्रादेशिक भाषाओं के शब्दों के लिए हिन्दी ने अपना द्वार उन्मुक्त कर दिया है। भारत जैसे विशाल देश के लिए यह आवश्यक भी है। वस्तुतः कोई भी जीवित भाषा अन्य भाषाओं के शब्दों के आदान-प्रदान को अस्वीकार नहीं कर सकती। हिन्दी में अन्य प्रादेशिक भाषाओं से निम्नलिखित शब्द आए हैं—

पंजाबी—सिक्ख; गुजराती—गरबा, हड़ताल;

मराठी—वाङ्मय, पटेल, देशमुख, चौथ, श्रीखंड;

बंगला—उपन्यास, गल्प, कविराज, रसगुल्ला, सन्देश, चमचम, गमछा, छाता आदि।

अनार्य तथा बाहर की भाषाओं से भी हिन्दी में कई शब्द आए हैं। इनमें से कुछ शब्द तो अँग्रेजी के द्वारा आए हैं; जैसे चुरुट < अंग्रेजी—चेरुट = Cheroot < तमिळ- शुळुट्ट। द्रविड़ भाषाओं से पिल्ले, चेट्टी तथा भाषाओं के नाम तमिळ, तेलुगु, मलयालम्, कन्नड आदि शब्द भी हिन्दी में आए हैं। इसीप्रकार कोल भाषा से हॉड़ी (सन्थाली- हँड़े) तथा तिब्बती- बर्मी से लुङ्गी शब्द हिन्दी में लिए गए हैं।

हिन्दी के विभिन्न तत्वों के सम्बन्ध में विचार करते समय यह बात सदैव स्मरण रखनी चाहिए कि पाली की भाँति ही हिन्दी भी समन्वयात्मक भाषा (Composite Language) है और इसपर पड़ोस की विभिन्न भाषाओं और बोलियों का प्रभाव पड़ा है। हिन्दी में आज कतिपय ऐसे शब्द प्रचलित हैं, जिनमें संस्कृत 'अ', 'इ' में परिणत हो जाता है। यह सम्भवतः राजस्थानी के प्रभाव के कारण हैं, यथा—सं० गणना > हिं० गिनना; सं० हरिण > हिं० हिरण। राजस्थानी में आदि 'अ', 'इ' में परिवर्तित हो जाता है, यथा—चमकना > चिमकणा; पशमिना > पिशमिणा; वगैरह > विगैरह; पण > पिण आदि।

इसी प्रभाव के कारण संस्कृत का अम्लिका शब्द हिन्दी में इम्ली हो गया है। 'दिन-दहाड़ा' के 'दहाड़ा' में ड़ा- स्वार्थे प्रत्यय पर भी राजस्थानी प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

पूर्वीहिन्दी तथा भोजपुरी का बहुत कम प्रभाव आधुनिक नागरी हिन्दी पर है; किन्तु इसके निर्माणकाल में इन बोलियों का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। नागरीहिन्दी में मूर्धन्यउच्चारणवाले शब्द रूपों पर पूर्वीहिन्दी तथा भोजपुरी का प्रभाव है। पश्चिम में 'कृत' तथा 'मृत' के रूप 'किअ (किय-) तथा 'मुअ' होंगे; किन्तु पूरब में 'कट' तथा 'मट' हो जायँगे। इस 'मट' से बँगला का 'मड़' 'मड़ा' शब्द सिद्ध होंगे। इसीप्रकार पश्चिमी हिन्दी में 'अद्ध' 'अद्ध' होते हुए 'आधा' हो जायेगा; किन्तु पूरब में यह 'अड्ढ' रूप धारण कर लेगा। नागरी (पश्चिमी) हिन्दी के ढ़ाई आदि रूपो पर पूर्वी हिन्दी अथवा भोजपुरी का स्पष्ट प्रभाव है।

अइया तथा 'अउआ' प्रत्ययवाले शब्द रूपों पर भी पूर्वी बोलियों का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। इस प्रकार कृष्ण>काण्ह>कान्ह तथा कन्हाई> कन्हइया, कन्हैया, एवं जुन्हाई>जुन्हइआ, जुन्हैया और काक>*कावु>कवुआ कौआ, आदि शब्दरूपों पर पूर्वी भाषाओं तथा बोलियों का प्रभाव है। कन्हैया, जुन्हैया आदि शब्दों का तो सूरदास ने भी प्रयोग किया है। वस्तुतः अइया अथवा—इया प्रत्यय वाले शब्दरूप स्वाभाविक रूप से मधुर होते हैं। यही कारण है कि आज के फिल्मी गानों में कोयल के लिए कोइलिया तथा बेला के लिए बेइलिया एवं पुरवैया आदि रूप विशेषतया प्रयुक्त होते है।

हिन्दी की ग्रामीण बोलियाँ

भौगोलिक दृष्टि से हिन्दी का क्षेत्र उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण मे नर्मदा तक है। ग्रियर्सन ने इस समस्त भूभाग को पश्चिमी तथा पूर्वी हिन्दी क्षेत्रों मे विभाजित किया है। इनमें पश्चिमी हिन्दी के अन्तर्गत—(१) हिन्दोस्तानी (२) बाँगरू (३) ब्रजभाखा (४) कन्नौजी तथा (५) बुन्देली का समावेश है। इसी प्रकार पूर्वी हिन्दी के अन्तर्गत—(१) अवधी (२) बघेली तथा (३) छत्तीसगढ़ी बोलियाँ आती हैं। भाषाशास्त्र के विद्यार्थियों को यह स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए कि प्रसिद्ध भाषाविज्ञानी जार्ज ग्रियर्सन के अनुसार राजस्थानी एवं बिहार की मैथिली, मगही एवं भोजपुरी बोलियाँ, हिन्दीक्षेत्र के बाहर की हैं। पूरब में अवधी, बनारस जिले के मिर्ज़ामुराद थाने के पास, तमंचाबाद गाँव तक बोली जाती है। इसके आगे भोजपुरी का क्षेत्र है। उत्तरप्रदेश की गोरखपुर तथा बनारस कमिश्नरियों में भोजपुरी बोली जाती है। वस्तुतः भोजपुरी का समस्त भूभाग ग्रियर्सन के अनुसार हिन्दी की सीमा से बाहर है।

हिन्दी के विभिन्न तत्वों के सम्बन्ध में अन्यत्र विचार किया जा चुका है और यह भी कहा जा चुका है कि वर्तमान रूप मे हिन्दी एक समन्वयात्मक भाषा है तथा इसके व्याकरण का ढाँचा बहुत-कुछ वर्नाक्यूलर हिन्दोस्तानी अथवा खड़ीबोली या नागरीहिन्दी पर अवस्थित है। भौगोलिक दृष्टि से इसका क्षेत्र नितान्त पश्चिमी है। यही कारण है कि पश्चिमी तथा पूर्वी हिन्दी मे भी मौलिक अथवा तात्विक भेद है।

पूर्वी तथा पश्चिमी हिन्दी में अन्तर

[क] उच्चारण तथा शब्द रूप—(१) सर्वप्रथम यदि 'अ' के उच्चारण को ही लें तो पश्चिमी तथा पूर्वी हिन्दी में स्पष्टरूप से अन्तर प्रतीत होगा। पूरब की तीन-

भाषाओं—बँगला, उड़िया तथा असमिया—में 'अ' का उच्चारण 'ओ' की तरह होता है। किन्तु ज्यों-ज्यों हम पश्चिम (विहारी बोलियों) की ओर बढ़ते जाते हैं, त्यों-त्यों 'अ' का विलम्बित उच्चारण कम होता जाता है और पश्चिमी भोजपुरी में तो यह विवृत हो जाता है। पूर्वी हिन्दी में भी 'अ' का उच्चारण पश्चिमी भोजपुरी की ही भाँति ही होता है। पश्चिमी हिंदी में 'अ' के उच्चारण पर पंजाबी का प्रभाव पड़ने लगता है और यह अपेक्षाकृत और भी विवृत हो जाता है।

(२) पूर्वी हिन्दी तथा भोजपुरी, दोनों में, पश्चिमी हिन्दी की 'ड़', 'ढ़' मूर्धन्य ध्वनियाँ 'र' तथा 'र्ह' में परिणत हो जाती हैं—यथा, पश्चिमी हि० तोड़े, पूर्वी हिन्दी तथा भोजपुरी तोरे। किन्तु इसके अपवाद भी उपलब्ध हैं। यथा—पश्चिमी हि० तथा पूर्वी हिं० बाढ़, भो० पु० बाढ़ि।

इसीप्रकार पश्चिमी हिन्दी तथा पूर्वी हिन्दी एवं भोजपुरी में 'र', 'ल' के परिवर्तन में पर्याप्त भेद है। यथा—प० हिं० फल किन्तु पू० हिं तथा भो० पु० फर। वास्तव में पूर्वी हिन्दी तथा भो० पु० में मागधी के प्रभाव के कारण 'र' के स्थान पर सर्वत्र 'ल' ही होना चाहिए था; किन्तु पश्चिम की आदर्श भाषा तथा शिष्ट उच्चारण के कारण ऐसा नहीं हो पाया है और कहीं-कहीं तो पश्चिम का इतना अधिक प्रभाव पड़ा है कि जहाँ 'ल' सुरक्षित रहना चाहिए वहाँ भी 'र' हो गया है। यथा—पश्चिमी हिं० हल, किंतु पू० हिं० तथा भो० पु० हर; प० हि० जलै, किंतु पू० हि० तथा भो० पु० जरे; संस्कृत रज्जु, पू० हि० लजुरी [लेजुरी], भो० पु० रसरी।

(३) पश्चिमी हिन्दी में शब्द के मध्यग 'ह' का प्रायः लोप हो जाता है; किन्तु पूर्वी हिन्दी तथा भो० पु० में यह सन्ध्यक्षर रूप में आता है। यथा—पश्चिमी हिं० दिया, पू० हिं० देहेसि भो० पु०- दिहलसि।

(४) पश्चिमी हिन्दी में शब्द के आदि में 'य', तथा 'व' आता है; किन्तु पूर्वी हिन्दी तथा भो० पु० में यह 'ए' तथा ओ में परिणत हो जाता है और कभी-कभी संध्यक्षर रूप में, मध्य में, 'ह' भी प्रयुक्त होता है। यथा—पश्चिमी हिं० (ब्रजभाषा) यामें, वामें; किन्तु पू० हिं० तथा भो० पु० एमें, एहमें, ओमें, ओह में।

(५) पश्चिमी हिन्दी में दो स्वर प्रायः एक साथ नहीं आते हैं; किंतु पूर्वी हिंदी तथा भोजपुरी में इस प्रकार का कोई बन्धन नहीं है। इसका एक परिणाम यह हुआ है कि पश्चिमी हिन्दी के ऐ तथा औ, पूर्वी हिन्दी तथा भोजपुरी में 'अइ' एवं 'अउ' में परिणत हो जाते हैं। यथा—पश्चिमी हिं० कहै, पू० हि० कहइ; पश्चिमी हिं० और, मौर, पू० हि० तथा भो० पु० अउर, मउर, आदि।

(६) पश्चिमी हिन्दी के आकारान्त (ब्रज, ओकारान्त) शब्द पूर्वी हिंदी तथा भोजपुरी में अकारान्त अथवा व्यञ्जनान्त हो जाते हैं। यथा—पश्चिमी हिं० बड़ा (ब्रज, बड़ौ, बड़ो), किंतु पू० हि० तथा भोजपुरी बड़ अथवा बड़् [अवधी—बड़् मनई, भोजपुरी बड़ आदमी] इसीप्रकार पश्चिमी हि०, खड़ीबोली—भला, ब्रज-भलौ, भलो; किंतु पू० हिं० तथा भोजपुरी भल, भल्।

(७) पश्चिमी हिंदी में आकारान्त शब्द का रूप कर्त्ता में सुरक्षित रहता है; किंतु तिर्यक में 'आ', 'ए में परिणत हो जाता है। पूर्वीहिंदी तथा भोजपुरी में कर्त्ता तथा

तिर्यक, दोनों में, आकारान्त रूप सुरक्षित रहता है और उसमें परिवर्त्तन नहीं होता है। यथा—

पश्चिमी हिं० कर्त्ता —ए० व० घोड़ा
तिर्यक— ,, ,, घोड़े

पू० हिं० तथा भोजपुरी } कर्त्ता —ए० व० घोड़ा
तिर्यक—ए० व० घोड़ा

[ख] सर्वनाम—(१) पश्चिमी हिन्दी की खड़ीबोली तथा ब्रजभाषा में सम्बन्ध तथा सह-सम्बन्ध वाचक सर्वनामों के रूप जो सो तथा प्रश्नवाचक के रूप कौन होते हैं; किन्तु पूर्वी हिन्दी तथा भोजपुरी में ये क्रमशः जे, जवन, से, तवन तथा के कवन हो जाते हैं।

(२) अधिकारवाचक सर्वनाम के रूप के मध्य में पश्चिमी हिन्दी में 'ए' रहता है; किन्तु पूर्वी हिन्दी तथा भोजपु० में यह 'ओ' में परिणत हो जाता है। यथा—पश्चिमी हि० मेरा, किन्तु पूर्वी हि० तथा भो० पु० मोर।

(३) पश्चिमी हिन्दी (खड़ीबोली) के पुरुष वाचक सर्वनाम के एकवचन में तथा बहुवचन के हम रूप होते हैं। किन्तु पूर्वी हिन्दी तथा भोजपुरी में हम वस्तुतः एकवचन में ही प्रयुक्त होता है और इसके बहुवचन का रूप लोग संयुक्त करने से सिद्ध होता है। भोजपुरी में बहुवचन का रूप हमनिका होता है।

[ग] अनुसर्ग या परसर्ग

संज्ञा तथा सर्वनाम के रूपों में पूर्वी हिन्दी तथा भोजपुरी में पूर्ण समता है। दोनों के अनुसर्ग भी प्रायः एक ही हैं; किन्तु कहीं-कहीं इनमें भिन्नता भी है। उदाहरण स्वरूप, कर्म तथा सम्प्रदान में, पूर्वी हिन्दी में, का तथा काँ अनुसर्गों का प्रयोग होता है; किन्तु भोजपुरी तथा अन्य बिहारी बोलियों में यह के तथा कें रूप में मिलते हैं। इसीप्रकार अधिकरण कारक में, पूर्वी हिन्दी में, मा तथा माँ अनुसर्ग प्रयुक्त होते हैं; किन्तु बिहारी बोलियों में ये मे में का रूपधारण कर लेते हैं। यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि उपसर्ग रूप में का तथा मा पूर्वीहिन्दी की विशेषताओं में से हैं।

पश्चिमीहिन्दी की सबसे बड़ी विशेषता है 'ने' परसर्ग का प्रयोग। इसका पूर्वी हिन्दी तथा बिहारी (भोजपुरी तथा बिहारी की अन्य बोलियाँ—मैथिली, मगही) में सर्वथा अभाव है। उदाहरणस्वरूप, पश्चिमी हिन्दी में कहते हैं—उसने किया किन्तु अवधी में उ केहिसि तथा भोजपुरी में उ कइलसि एवँ मैथिली में उ कयलक हो जाता है।

[घ] क्रियारूप

क्रियारूपों के सम्बन्ध मे तो पूर्वी हिन्दी, पश्चिमी हिन्दी से और भी दूर है। 'मैं हूँ' के लिए पूर्वी हिन्दी, में अहेउँ तथा 'आहेउँ' होता है। अवध के पूर्वी भाग में यह बाटेउँ हो जाता है, जिसका सम्बन्ध स्पष्टरूप से भोजपुरी के बाटों, बाटी आदि से है। इसके अतिरिक्त मुख्य रूप से तीनकालों—सम्भाव्य वर्तमान, अतीत तथा भविष्यत्,—के रूपों की उत्पत्ति तो संस्कृत के वर्तमान काल से हुई है और इसके रूप प्रायः

सभी नव्य-आर्यभाषाओं में एक ही है। अतएव इसे छोड़कर, अन्य दो कालों के रूपों का तुलनात्मक अध्ययन यहाँ उपस्थित किया जाता है।

अतीतकाल—पश्चिमी तथा पूर्वी हिन्दी क्रियाओं के अतीतकाल के रूपों में बहुत अन्तर है अतएव इनके सम्बन्ध में विशेषरूप से विचार करने की आवश्यकता है। प्रायः सभी नव्य-आर्यभाषाओं में इस काल की उत्पत्ति, मूलतः भूतकालिक कृदन्त के कर्मवाच्य के रूपों से हुई है। उदाहरण के लिए पश्चिमीहिन्दी के 'मारा' क्रियारूप को लिया जा सकता है। इसकी उत्पत्ति संस्कृत के भूतकालिक कृदन्त के कर्मवाच्य के रूप 'मारितः' से हुई है। इसका यह अर्थ नहीं है कि 'मैंने मारा' अथवा 'उसने मारा'; किन्तु इसका वास्तविक अर्थ यह है कि 'वह उसके अथवा मेरे द्वारा मारा (पीटा) गया।' इसीप्रकार 'चला' ∠ चलितः का अर्थ 'वह चला (गया)' नहीं है, अपितु इसका ठीक अर्थ 'गया हुआ' है। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि ऊपर, संस्कृत-कर्मवाच्य-कृदन्त के जो दो रूप उद्धृत किये गए हैं, उनमें अन्त से पूर्व वाले अक्षर (syllable) में 'इ' वर्तमान है। यह प्रायः संस्कृत-कर्मवाच्य के कृदन्त के सभी रूपों में वर्तमान है और शौरसेनीअपभ्रंश से प्रसूत भाषाओं एवं बोलियों में तो इसका अस्तित्व विशेष-रूप से उल्लेखनीय है। संस्कृत का मारितः वस्तुत निम्नलिखित रूप में परिवर्तित हुआ है—

मारितः 7 शौ॰ प्रा॰ मारिदो 7 मारिओ 7 ब्रजभाखा मार्यौ।

ऊपर संस्कृत तथा प्राकृत का 'इ', ब्रजभाषा के 'य' में परिवर्तित हो गया है जिसका सम्बन्ध उच्चारण की अपेक्षा वर्तनी अथवा लिखावट से ही अधिक है। इस प्रकार यह 'इ' अथवा 'य' शौरसेनी प्रसूत भाषाओं एवं बोलियों की अतीतकाल की विशेषता है।

मागधी प्राकृत तथा अपभ्रंश से प्रसूत भाषाओं एवं बोलियों में इससे सर्वथा विपरीत बात है। शौरसेनी में मारित : तथा चलितः का 'त' पहले 'द' में परिणत हो जाता है और तत्पश्चात् इसका लोप हो जाता है। मागधी भाषाओं तथा बोलियों में इसके स्थान पर 'ल' हो जाता है। इस प्रकार 'मारा' का रूप बँगला में 'मारिल' तथा बिहारी में 'मारल' सिद्ध होता है। शौरसेनीअपभ्रंश की पछाहीं बोलियों—नागरीहिन्दी, ब्रजभाषा आदि की भाँति मागधी अपभ्रंश से प्रसूत भाषाओं तथा बोलियों में केवल भूतकालिक कृदन्त का ही प्रयोग नहीं होता, अपितु इनमें सर्वनाम के लघुरूप भी संयुक्त होते जाते हैं। इस प्रकार के सर्वनाम के अनेक रूप इन बोलियों में वर्तमान हैं, जिनका अर्थ है—'मेरे द्वारा' 'तुम्हारे द्वारा', 'उसके द्वारा' आदि। जब कोई बँगला में यह कहना चाहता है कि मैंने मारा' तो वह कहता है—मारिल (मारा) + अम (मेरे द्वारा) और बाद में, इन दोनों को संयुक्त करके एक शब्द बना देता है। इसी प्रकार 'चलिलाम' का मूल अर्थ बँगला में 'मेरे द्वारा चला गया' था ; किन्तु बाद में इसका अर्थ 'मैं चला' (गया) हो गया। समय की प्रगति से लोग इसके मूलरूप तथा अर्थ को भूल गए और बँगला में इनका रूप कर्तृवाच्य के समान ही समझा जाने लगा। मागधी-प्रसूत भाषाओं एवँ बोलियों में, सर्वनाम के ये लघुरूप विभिन्न रूपों में मिलते हैं। तुलनात्मक दृष्टि से यहाँ पूर्वी हिन्दी तथा भोजपुरी के रूपों का अध्ययन सुविधाजनक होगा।

पूर्वी हिन्दी में शौरसेनी तथा मागधी, दोनों, की विशेषताओं का समन्वय हुआ है। इसके भूतकाल के रूप में मागधी का 'ल' नहीं आता, अपितु शौरसेनी का 'इ'

अथवा 'य' आता है। दूसरी ओर शौरसेनी से प्रसूत बोलियों की भांति इसका भूतकालिक कृदन्त रूप अपने मूलरूप में ही नहीं रह जाता, अपितु इसमें भोजपुरी सर्वनामों के लघुरूप भी संयुक्त हो जाते हैं। तुलना के लिए नीचे पूर्वीहिन्दी तथा भोजपुरी के भूतकाल के पुँल्लिङ्ग एकवचन, के क्रियारूप दिए जाते हैं। स्पष्टता के लिए नागरी के साथ-साथ रोमन अक्षरों में भी क्रियापद दिए गए हैं। इनमें धातु, काल तथा सर्वनामों के लघुरूप हाइफन देकर लिखे गए हैं। पूर्वी हिन्दी के अन्तर्गत यहाँ वस्तुतः अवधी के रूप ही दिए गए हैं—

हिन्दी	पूर्वीहिन्दी	भोजपुरी
मैंने मारा	मारे-उँ (mār-e ũ)	मार-लो (mār-l-õ)
तूने मारा	मारि-स् (mār-i-s)	मार-लस् (mār-l-as)
उसने मारा	मारिस् (mār-i s)	मारलस् (mār-l-as)

यदि पूर्वी हिन्दी के ऊपर के शब्दरूपों की वर्तनी (spelling) निम्नलिखित ढंग से कर दें तो एक ओर शौरसेनी तथा दूसरी ओर भोजपुरी से उसका सम्बन्ध स्पष्टरूप से दृष्टिगोचर होगा—

मार्-यौं (mār-y-aũ)
मार्-यस् (mār-y-as)
मार्-यस् (mār-y-as)

वास्तव मे मूलरूप ऊपरवाले ही हैं और इन्हीं से बिगड़कर 'इ' तथा 'ए' वाले रूप बने हैं।

भूतकाल के अन्य पुरुष के एकवचन के पूर्वी हिन्दी के रूपों में, स्थानीय वर्तनी के अनुसार -इस्, -एस् तथा -यस् प्रत्यय लगते हैं। कलकत्ते में कहिस्, मारिस् क्रियापद, प्रायः सुनाई पड़ते हैं; किन्तु इस बात को बहुत कम लोग जानते हैं कि इन रूपों में, शौरसेनी तथा मागधी, दोनों, का समन्वय हुआ है।

इस काल के रूपों के सम्बन्ध मे एक बात और उल्लेखनीय है। यह अन्यत्र कहा जा चुका है कि मागधी से प्रसूत भाषाओं के बोलनेवाले यह बात प्रायः भूल चुके हैं कि अतीतकाल के ये रूप कर्मवाच्य के हैं। सर्वनाम के लघुरूप इनमें संयुक्त होकर वस्तुतः इन्हें कर्तृवाच्य सा बना चुके हैं। किन्तु पूर्वीहिन्दी मे इनके कर्मवाच्य के रूप को विस्मरण करने की प्रक्रिया अभी भी चल रही है। साहित्य में प्रयुक्त होने के कारण अवधी मे आज भी इनका कर्मवाच्य रूप सुरक्षित है। तुलसी तथा जायसी की रचनाओं मे कर्मवाच्य के रूप स्पष्टरूप से दृष्टिगोचर होते हैं। इनमें कर्त्ता, करण के रूप में आता है तथा 'ने' के अभाव में यह तिर्यक रूप होता है। इसके साथ ही यहाँ, वचन तथा लिङ्ग में, क्रिया का अन्वय कर्म के साथ होता है। इसके फलस्वरूप, अतीतकाल में, क्रिया के स्त्रीलिङ्ग रूप भी उपलब्ध होते हैं। ज्यों-ज्यों हम पश्चिम की ओर बढ़ते जाते हैं, त्यों-त्यों शौरसेनी के प्रभाव से यह कर्मवाच्य क्रिया का रूप और भी स्पष्ट होता जाता है। इस प्रकार पूर्वी अवध में 'उसने मारा' को 'ऊ मारिस्' कहते हैं यहाँ 'ऊ' कर्त्ता कारक में है और वस्तुतः वह का स्थानवाची है; किन्तु पश्चिमी अवध में स्थित उन्नाव जिले में, इसे 'उइ मारिस्' कहते हैं।

यहाँ पर उइ, वास्तव में तिर्यक रूप है और इसका अर्थ है, 'उसके द्वारा'। उइ, के कर्त्ता कारक एक वचन का रूप है 'वो'।

भविष्यत्काल—भविष्यत्काल का रूप भी इसी प्रकार सम्पन्न होता है; किन्तु उसमें और भी जटिलता है। "वह जायेगा" इसे संस्कृत मे दो प्रकार से कह सकते हैं—(१) कर्तृवाच्य रूप में (२) कर्मवाच्य रूप मे। कर्तृवाच्य रूप में तो 'वह जायेगा' होगा; किन्तु कर्मवाच्य रूप मे 'उसके द्वारा जाया जायेगा', होगा; संस्कृत में, प्रथम का रूप होगा—चलिष्यति, किन्तु भावेप्रयोग के रूप में दूसरे का रूप होगा—चलितव्यम्। चलिष्यति, वस्तुतः निम्नलिखित रूप में परिवर्तित होगा—

चलिष्यति 7 शौ० से० चलिस्सदि 7 पु० हि० चलिहइ।

यह रूप ब्रजभाषा तथा शौरसेनी-प्रसूत बोलियों में आज भी उपलब्ध है। ब्रजभाषा के रूप नीचे दिए जाते हैं—

		ए० व०	ब० व०
मैं मारूँगा आदि—	१.	मारि हौं	मारि हैं
	२.	मारि है	मारि हौ
	३.	मारि है	मारि हैं

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि शौरसेनी में ह-भविष्यत् के रूप प्रयुक्त होते हैं तथा ये—इह-प्रत्यय लगाकर सम्पन्न होते हैं।

पूरब की मागधी-प्रसूत बोलियों में भविष्यत्-भावे-कर्मवाच्य कृदन्तीय चलितव्यम् के रूप चलते हैं। इस कृदन्तीय रूप की भावेप्रकृति वस्तुतः उल्लेखनीय है। इससे यह स्पष्ट नहीं हो पाता कि वास्तव में जानेवाला कौन है? यह भाव सर्वनाम द्वारा स्पष्ट होता है। चलितव्यम् निम्नलिखित रूप में परिवर्तित होता है—

चलितव्यम् 7 चलिदव्वं 7 चलिअव्वं 7 चलब (अवधी)। भविष्यत् का यह रूप, पुरुष तथा वचन के अनुसार परिवर्तित नहीं होता। वास्तव में 'कौन जायेगा', यह सर्वनाम की सहायता से ही स्पष्ट होता है। यही कारण है कि यहाँ क्रिया का रूप अपरिवर्तित रहता है।

इसे स्पष्ट करने के लिए, पूरब की भाषाओं में से, बँगला से उदाहरण लिया जा सकता है। असमिया तथा उड़िया भी इस बात में, बँगला का ही अनुसरण करती हैं। जिस प्रकार बँगला, भूतकालिक कृदन्तीय क्रियाओं के रूपों में सर्वनाम के लघुरूपों को संयुक्त करती है, उसी प्रकार यह भविष्यत् के कृदन्तीय रूपों में भी सर्वनाम के लघुरूपों को जोड़े बिना आगे नहीं बढ़ती। बँगला-भविष्यत्काल का कृदन्तीय रूप—इब प्रत्यय से सम्पन्न होता है। इसप्रकार संस्कृत चलितव्यम्, प्राकृत में चलिअव्वं एवं आधुनिक बँगला में चलिब हो जायेगा। इसी प्रकार संस्कृत मारितव्यम् भी प्राकृत में मारिअव्वं तथा बँगला में मारिब, हो जायेगा। इसमें सर्वनाम के लघुरूप संयुक्त हो जायेंगे। जब कोई बँगला में कहना चाहता है—मैं मारूँगा तो वह मारिब (= यह मारा जानेवाला है) में सर्वनाम का लघु रूप -ओ (जो लिखते समय 'अ' रूप में रहता है) जोड़ देता है और तब रूप बन जाता है—मारिब (marib-a), किन्तु इसका उच्चारण होता

है—मारिबो (mārib-o) । बँगला में भविष्यत् के निम्नलिखित रूप होते हैं—

	ए० व०	ब० व०
मैं मारूँगा आदि	१. मारिब (mārıb-a)	मारिब (mār-ıb-a)
	२. मारिबि (mār-ıb-i)	मारिबे (mār-ıb-e)
	३. मारिबे (mār-ıb-e)	मारिबेन् (mār-ıb-en)

बिहारी (बोलियों) के भविष्यत् के रूप भी ऊपर के ही सिद्धान्त पर चलते हैं तथा उनमें ब-भविष्यत् के रूप ही प्रयुक्त होते हैं। हाँ, अन्य पुरुष के रूपों में कुछ कठिनाई अवश्य है। इस सम्बन्ध में वस्तुस्थिति यह है कि मैथिली तथा मगही क्रियाओं के अन्य पुरुष के रूप किंचित जटिल हैं; किन्तु भोजपुरी-अन्य पुरुष-भविष्यत् के रूप इह् प्रत्यय से सम्पन्न होते हैं। इस प्रकार भोजपुरी अन्य पुरुष के रूपों पर शौरसेनी की स्पष्ट छाप है। यह एक विचित्र बात है कि भोजपुरी उत्तम तथा मध्यम पुरुष के क्रियापदों में कर्मवाच्य भावे के रूप चलते हैं; किन्तु अन्य पुरुष में कर्तृवाच्य के रूप ही आते हैं। जैसा कि अतीतकाल के सम्बन्ध में कहा जा चुका है, भविष्यत्काल के सम्बन्ध में भी बात वही है। यहाँ भी लोग प्रायः कर्तृ तथा कर्मणि प्रयोग के अन्तर को भूल गए हैं। नीचे भोजपुरी क्रिया के भविष्यत् के रूप दिए जाते हैं—

	ए० व०	ब० व०
मैं मारूँगा आदि	१. मारबो (mār-abõ)	मारब (mār-ab)
	२. मारबे (mā̃r-ab-ē)	मारबह् (mar-ab-ah)
	३. मारिहे (mā̃rıhe)	मारिहेन् (mā̃rı hen)

ऊपर के उदाहरण में उत्तम तथा मध्यम पुरुष के क्रियापदों में सर्वनाम के लघुरूप संयुक्त हैं, जिनका अर्थ है 'मेरे द्वारा' अथवा 'तुम्हारे द्वारा' आदि। ऊपर अन्य पुरुष, एक वचन का जो रूप दिया गया है, वह आज बहुवचन में प्रयुक्त होता है और इसके स्थान पर 'मारी' रूप चल रहा है। वास्तव में यह इतना संक्षिप्त हो गया है कि आज यह पहचानना भी कठिन है कि यह भविष्यत् का रूप है।

पूर्वीहिन्दी के भविष्यत् के रूप भी इसीप्रकार चलते हैं। इसमें अवधी तथा भोजपुरी में पूर्ण साम्य है। नीचे अवधी के रूप दिए जाते हैं—

	ए० व०	ब० व०
मैं मारूँगा आदि	१. मारबूँ (mā̃r-ab-ũ)	मारब् (mā̃r-ab)
	२. मारबेस् (mā̃r-b-es)	मारबो (mā̃r- ab-ō)
	३. मारि है (mā̃rihai)	मारि है (mā̃rıhaĩ)

ज्यों-ज्यों हम पश्चिम की ओर बढ़ते जाते हैं त्यों-त्यों ऊपर के रूपों में परिवर्तन होता जाता है। उन्नाव की अवधी के निम्नलिखित रूप द्रष्टव्य हैं—

	ए० व०	ब० व०
मैं मारूँगा आदि	१. मारि हौं (mā̃rıhõu)	मारि हैं (mārıhaĩ)
	२. मारि है (mārıhaı)	मारि हौ (mā̃rıhou)
	३. मारि है (mārıhaı)	मारि हैं (mā̃rıhaĩ)

ऊपर के रूप विशुद्ध इ-भविष्यत् के हैं और ये—इह् प्रत्यय से सम्पन्न हुए हैं। ये व्रजभाषा के रूपों के समान ही हैं।

डा० केलॉग के अनुसार बघेली मध्यम मार्ग का अनुसरण करती है। यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि बघेली के उत्तमपुरुष, एकवचन का रूप मारब्येउँ, अन्यबोलियों की अपेक्षा, प्राकृत के मारिअव्वं रूप के अधिक निकट है। इसके रूप नीचे दिए जाते हैं—

	ए० व०	ब० व०
मैं मारूंगा आदि	१. मारब्येउँ (mār-ᵃvye-ũ)	मारब (ma͞r-ab)
	२. मारिबेस (mār-ib-es) या मारिहेस (mārihes)	मारिबा (mār-ib-ā)
	३. मारी (ma͞rī)	मारि हैं (mārihaĩ)

छत्तीसगढ़ी के भविष्यत्काल के रूपों में ब-भविष्यत् तथा इ-भविष्यत् के रूपों का एक विचित्र सम्मिश्रण मिलता है। नीचे इसके रूप दिए जाते हैं—

	ए० व०	ब० व०
मैं मारूँगा आदि	१. मरिहौं (marihaũ)	मारब (mār-ab) या मरिहन् (marihan)
	२. मरबे (mar-ᵃb-ē)	मरिहौ (marihau)
	३. मरिहै (marihai)	मरिहैं (morihaĩ)

ऊपर के विवरण एवं विवेचन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि अतीत तथा भविष्यत्काल के रूपों के सम्बन्ध में पूर्वीहिन्दी का स्थान शौरसेनी तथा मागधी के बीच है।

पूर्वीहिन्दी के सम्बन्ध में यह संक्षेप में कहा जा सकता है कि संज्ञा तथा सर्वनाम के विषय में यह मागधी भाषाओं तथा बोलियों से साम्य रखती है, किन्तु क्रियापदों के सम्बन्ध में यह मध्यम-मार्ग का अनुसरण करती है। यह शौरसेनी तथा मागधी, दोनों, के रूपों को अपनाती है और इसप्रकार यह प्राचीन अर्द्धमागधी का यथार्थ प्रतिनिधि है।

पश्चिमी हिन्दी की ग्रामीण बोलियाँ

पश्चिमी हिन्दी का क्षेत्र वस्तुतः प्राचीन मध्यदेश है और पश्चिम में सरस्वती से लेकर प्रयाग तक इसकी सीमा है। ग्रियर्सन के अनुसार पश्चिमी हिन्दी का क्षेत्र प्रयाग तक नहीं है—इसकी पूर्वी सीमा कानपुर तथा उन्नाव के पश्चिमी भाग तक ही है; किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से पश्चिमी हिन्दी की सीमा प्रयाग तक मानना उचित होगा। कथ्य भाषा के रूप में पश्चिमी हिन्दी, उत्तरप्रदेश के पश्चिमी भाग, पंजाब के पूर्वी भाग, पूर्वी राजस्थान, ग्वालियर, बुन्देलखण्ड तथा मध्यप्रदेश के उत्तरी-पश्चिमी भाग में बोली जाती है। इसीकी एक उपभाषा, हिन्दोस्तानी अथवा नागरीहिन्दी से साहित्यिक तथा राष्ट्रभाषा हिन्दी की उत्पत्ति हुई है।

पश्चिमी हिन्दी की उत्पत्ति तथा भाषागत सीमाएँ—पश्चिमी हिन्दी की उत्पत्ति सीधे शौरसेनी अपभ्रंश से हुई है। प्राकृतों में शौरसेनी संस्कृत की निकटतम भाषा है। वस्तुतः पश्चिमी हिन्दी उस केन्द्र की भाषा है, जिससे आर्य संस्कृति का प्रचार एवं प्रसार हुआ है।

पश्चिमीहिन्दी के उत्तर पश्चिम में पंजाबी, दक्षिण एवं दक्षिण-पश्चिम में राजस्थानी, दक्षिण-पूर्व में मराठी तथा पूरब में पूर्वी हिन्दी का क्षेत्र है। इसके उत्तर में भारतीय आर्य-वर्ग की, जौनसारी, गढ़वाली कुमायूँनी भाषाएँ बोली जाती हैं। इसकी विभिन्न सीमाओं पर पंजाबी, राजस्थानी तथा पूर्वीहिन्दी का प्रभाव पड़ने लगता है।

पश्चिमी हिन्दी के व्याकरण की विशेषताएँ—पश्चिमीहिन्दी की विभिन्न उपभाषाओं का संक्षिप्त व्याकरण यथा स्थान दिया जायेगा। जहाँतक नागरीहिन्दी का सम्बन्ध है, इसके व्याकरण का दिग्दर्शन अन्यत्र कराया जा चुका है। वास्तव में नागरी अथवा खड़ीबोली की एक उल्लेखनीय विशेषता है, उसकी अत्यधिक विश्लेषात्मकता। संज्ञा के रूपों में यह इतनी विश्लेषात्मक है कि इस में कर्ता तथा तिर्यक, दो प्रकार के ही रूप उपलब्ध हैं। इस तिर्यक के रूप में ही विभिन्न अनुसर्ग लगाकर इसके अन्य कारकों के रूप सम्पन्न होते हैं। इसमें कर्तरि, कर्मणि तथा भावे, तीनों प्रकार के प्रयोग मिलते हैं। इसमें वास्तव में केवल एक ही काल—सम्भाव्य वर्तमान—का प्रयोग होता है।

पश्चिमीहिन्दी की पाँच उपभाषाओं—हिन्दोस्तानी, बाँगरू, ब्रजभाखा, कन्नौजी तथा बुन्देली—की चर्चा अन्यत्र की जा चुकी है। अब, यहाँ, इनके सम्बन्ध में संक्षिप्त विवरण उपस्थित किया जायेगा।

हिन्दोस्तानी—इसके अन्य नाम खड़ीबोली, नागरीहिन्दी तथा सरहिन्दी भी हैं। यह पश्चिमी रुहेलखंड, गंगा के ऊपरी दोआब तथा अम्बाला जिले की बोली है। वर्तमान साहित्यिकहिन्दी तथा उर्दू से इसके सम्बन्ध की चर्चा अन्यत्र की जा चुकी है। इस्लाम के प्रभाव के कारण,हिन्दी की अन्य ग्रामीण बोलियों की अपेक्षा, इसमें अरबी-फारसी के कुछ अधिक शब्द आ गए हैं, किन्तु उनमें पर्याप्त ध्वन्यात्मक परिवर्तन भी हो गया है। उदाहरण स्वरूप इसमें इन्तकाल, काल, मतलब, मतबल तथा गुवाही, उगाही में परिवर्तित हो गए हैं।

क्षेत्र—खड़ीबोली, वस्तुतः, रामपुर, मुरादाबाद, बिजनौर, मेरठ मुजफ्फर नगर, सहारनपुर तथा देहरादून के मैदानी भाग में बोली जाती है। देहरादून के पहाड़ी भाग में, पहाड़ी वर्ग की जौनसारी बोली जाती है। ऊपरी दोआब के आगे, यमुना नदी के उस पार, पंजाब प्रारम्भ हो जाता है। यमुना के पश्चिमी किनारे पर दक्षिण से उत्तर की ओर दिल्ली कर्नाल तथा अम्बाला के जिले हैं। दिल्ली (शहर को छोड़कर जिले की) तथा कर्नाल की बोली बाँगरू अथवा जाटू है। इसपर पंजाबी तथा राजस्थानी का अत्यधिक प्रभाव है। अम्बाला में राजस्थानी का प्रभाव समाप्त हो जाता है। इस जिले के पूर्वी भाग तथा कलसिया एवं पटियाला की बोली वस्तुतः हिन्दोस्तानी ही है और इसपर पंजाबी का यत्किंचित ही प्रभाव है। पश्चिमी अम्बाला की बोली तो स्पष्टरूप से पंजाबी है। इधर पंजाबी तथा पश्चिमीहिन्दी की सीमा घग्घर (प्राचीन दृशद्वती) नदी है। ऊपर की सीमा में ही कथ्यभाषा के रूप में हिन्दोस्तानी अथवा खड़ीबोली व्यवहृत होती है। इसके बोलनेवालों की संख्या ५३ लाख के लगभग है।

खड़ीबोली अथवा हिन्दोस्तानी की विशेषताएँ—भौगोलिक दृष्टि से पश्चिमी-हिन्दी के उत्तरी पश्चिमी कोने में खड़ीबोली का क्षेत्र है। इसके पश्चिम में पंजाबी अथवा दिल्ली एवं कर्नाल की राजस्थानी मिश्रित उपभाषा बोली जाती है। इसके उत्तर में भारतीय आर्यपरिवार की पहाड़ी भाषाएँ बोली जाती हैं। इन पहाड़ी भाषाओं का सम्बन्ध वस्तुतः राजस्थानी से है तथा इसके दक्षिण एवं पूर्व में पश्चिमी हिन्दी की ब्रजभाखा का क्षेत्र है।

खड़ीबोली की भौगोलिक स्थिति को देखकर सहज में ही स्पष्ट हो जाता है कि यह तथा इसके आधार पर निर्मित साहित्यिक हिन्दी उस स्थान की भाषाएँ हैं जहाँ ब्रजभाखा शनैः-शनै पंजाबी में अन्तर्भुक्त हो जाती है। खड़ीबोली के व्याकरण के अध्ययन से यह सरलतया प्रमाणित हो जाता है कि वास्तव में बात भी ऐसी ही है।

खड़ीबोली को छोड़कर पश्चिमीहिन्दी की अन्य ग्रामीण बोलियों में, क्रिया के तद्भव कृदन्तीयरूप, विशेषण तथा संज्ञापद ओकारान्त अथवा औकारान्त होते हैं। उदाहरण स्वरूप, हिन्दी भला के भलो, भलौ, मारा के मारो, मार्‌यौ तथा घोड़ा के घोड़ो, घोड़्यौ रूप अन्य बोलियों में मिलते हैं। इसीप्रकार इन-बोलियों में सम्बन्ध कारक में, को या कौ अनुसर्ग व्यवहृत होते हैं—यथा घोड़े को अथवा घोड़े कौ आदि। पंजाबी में -ओ तथा -औ के स्थान पर -आ प्रत्यय का संयोग होता है। ठीक यही -आ प्रत्यय खड़ीबोली में भी प्रयुक्त होता है। इस प्रकार पंजाबी तथा खड़ीबोली, दोनों, में भला, मारा, तथा घोड़ा रूप होंगे। हाँ, सम्बन्ध-कारक में, खड़ीबोली में, घोड़े-का तथा पंजाबी में घोड़े-दा- अवश्य हो जायेगा। इस विवेचना से यह सिद्ध हो जाता है कि खड़ीबोली में -आ- प्रत्यय वस्तुतः पंजाबी से ही आया है। सम्बन्धकारक में, खड़ीबोली में पंजाबी के -दा अनुसर्ग को न अपनाकर उसके स्थान पर का को ही ग्रहण किया है। यह का भी वस्तुतः को या कौ का आकारान्त रूप ही है।

बोलचाल की नागरी (खड़ी) तथा साहित्यिक हिन्दी में अन्तर—जहाँ तक स्वरों का सम्बन्ध है, साहित्यिक हिन्दी का ऐ तथा औ, बोलचाल की नागरीहिन्दी में 'ए' एवं ओ में परिवर्तित हो जाते हैं। यथा—पैर>पेर; है>हे [सा० हिन्दी-जाता है>जाता हे]; हैं>हें। इसीप्रकार और>ओर; लौंडा>लोंडा; दौड़>दोड़। 'और' कभी-कभी अर्, पुनः प्राणध्वनि लेकर हर् हो जाता है। सहारनपुर तथा देहरादून में तो यह 'होर्' में परिणत हो जाता है। साहित्यिकहिन्दी का बैठ, बोलचाल की नागरी में बट्ट तथा मेरठ में बट्ट बन जाता है। बोलचाल की हिन्दी में स्वरपरिवर्तन तो एक साधारण बात है। इसमें कहा तथा केहा, दोनों का प्रयोग होता है। स्वराघातहीन अक्षरों में इ>अ; यथा—शिकारी, सिकारी>सकारी; मिठाई>मठाई। कभी-कभी स्वराघात हीन होने के कारण आरम्भ में 'इ' का लोप हो जाता है। यथा, इकट्ठा>कट्ठा।

व्यञ्जन—पंजाबी की भाँति ही, बोलचाल की नागरी में भी मूर्धन्य-व्यंजन वर्णों का अत्यधिक व्यवहार होता है। मध्य तथा अन्त्य, दन्त्य 'न' एवं ल क्रमशः 'ण' तथा 'ळ' में परिवर्तित हो जाते हैं। साहित्यिक हिन्दी में 'ळ' के उच्चारण का

अभाव है ; किन्तु राजस्थानी, पंजाबी एवँ गुजराती में इसका उच्चारण साधारण बात है। 'न' के 'ण' में परिवर्तन के निम्नलिखि उदाहरण इसमें मिलते हैं यथा—मानुस> माणुस, मनुष्य ; अपना> अपणा ; खोना> खोवण ; सुनना> सुणण। इसी-प्रकार 'ल' के 'ळ' में परिवर्तन के निम्नलिखित उदाहरण इसमें मिलते हैं। यथा—जंगल> जंगळ ; बलद> बळद, बैल ; बाल> बाळ (सिर का बाल)। एक और बात जो उल्लेखनीय है, यह है कि बोलचाल की नागरी में न का ण में परिवर्तन जितना क्रमबद्ध है, उतना 'ल' का 'ळ' में परिवर्तन नहीं है। यही कारण है कि इसमें 'चला' तथा 'मिलेगी' रूप मिलते हैं, चळा तथा मिळेंगी नहीं।

साहित्यिक हिन्दी तथा पूरब में 'ड' तथा 'ढ' का उच्चारण 'ड़' तथा 'ढ़' हो जाता है। इसप्रकार हिन्दी में बड़ा उच्चारण करते हैं, बडा नहीं। ऊपरी दोआब में 'ड' का उच्चारण प्रायः सुरक्षित है। यहाँ गाड़ी को गाडी या गाड्डी एवँ चढ़ना को चढना रूप में उच्चरित करते हैं।

स्वराघातयुक्त दीर्घस्वर के बाद के व्यञ्जन का इसमें द्वित्व हो जाता है; तब दीर्घ स्वर प्रायः ह्रस्व हो जाता है। इस प्रकार द्वित्व व्यञ्जन के पूर्व का ई, इ, ऊ, उ तथा ए एँ में परिणत हो जाता है। इसका अपवाद केवल 'आ' है जो लिखने में 'आ' ही रह जाता है, यद्यपि इसका उच्चारण भी किंचित ह्रस्व हो जाता है। बोलचाल की नागरी में व्यञ्जन को द्वित्व करने की यह प्रवृत्ति इतनी अधिक है कि वर्तमानकालिक कृदन्त का 'त' भी इससे नहीं बच सका है। इसके उदाहरण नीचे दिए जाते हैं—

बाप> बाप्पू, पिता ; बासन> बास्सन्ह, बर्तन ; गाड़ी> गाड्डी ; पाना से हिन्दी पाता> पात्ता ; जाना से हिन्दी जाता> जात्ता ; भूखा> भुक्खा ; बेटा> बेट्टा ; खेतों में> खेत्तों में ; देखा> देक्खा ; भेजा> भेज्जा ; रोटी> रो`ट्टी ; छोटा> छो`ट्टा ; लोगों-पै> लो`ग्गों पे आदि।

शब्दरूप (संज्ञा)

व्यञ्जनान्त संज्ञाओं के तिर्यक् के एक वचन के रूपों के अन्त में ओं तथा ऊँ आता है। यथा घरों मे (घर में) ; घरूँ पड़ रहा [घर पर रहा]। इसी प्रकार कभी-कभी तिर्यक के बहुवचन के रूप भी ऊँ मे अन्त होते हैं यथा—मरदूँ का (मर्दों का) ; बेट्यूँ का (बेटियों का) ; चो`क्खे याद्म्यूँ का (चोखे आदमियों का)। ईकारान्त कर्त्ता के बहुवचन के रूपों के अन्त में इं आता है। यथा—बेट्टीं (बेटियाँ)।

कर्त्ता का अनुसर्ग, यहाँ, ने या नें है। इसी प्रकार कर्म तथा सम्प्रदान में इसमें के, कूँ, अथवा को नूँ (नूँ, अनुसर्ग वस्तुतः पंजाबी का है) तथा ने का व्यवहार होता है। यथा—बाप के (बाप को) ; बीरबलकूँ, (बीरबल को) ; बाप्पू-नूँ, (बाप को) बन्दरने उस्ने देख लिया, (बन्दर ने उसे देख लिया) ; मठाई ने छोड़-दे [मिठाई (को) छोड दे] अधिकरण में 'पे' और 'प' तथा अपादान में सेत्ती व्यवहृत होते हैं।

सर्वनाम—उत्तम तथा मध्यम पुरुष के रूप नीचे दिए जाते हैं:—

कारक	उत्तम पुरुष		मध्यम पुरुष	
	एक वचन (मैं)	बहु वचन (हम)	एक वचन (तू)	बहु वचन (तुम)
कर्त्ता	मैं	हम	तू	तुम

	उत्तम पुरुष		मध्यम पुरुष	
	एकवचन (मैं)	बहुवचन (हम)	एकवचन (तू)	बहुवचन (तुम)
कर्तृ	मे	हम-ने	तें	तम-ने
तिर्यक	मझ, मुझ	हम	तझ, तुझ	तम
कर्म-सम्प्रदान	मझे, मुझे	हमें	तझे, तुझे	तमें
सम्बन्ध	मेरा	हमारा, म्हारा	तेरा	तुम्हारा, थारा

यह उल्लेखनीय है कि इन सर्वनामों के कर्तृ (Agent) एक वचन में 'ने' अनुसर्ग का प्रयोग नहीं होता। में (मे-ने, नहीं) भेज दिया-था (मैंने भेज दिया था); तें या चीज किस-के-ते लई ? (तू-ने यह चीज किससे ली ?)।

उल्लेखसूचकसर्वनाम (Demonstrative Pronoun) के कर्त्ता कारक के स्त्रीलिङ्ग रूप भी होते हैं। वे नीचे दिए जाते हैं—

	कर्त्ता (पुल्लिङ्ग)	कर्त्ता (स्त्रीलिङ्ग)
यह	यू, यह्	या
वह	ओं, ओ, ओंह्	वा

इस के अन्यरूप साहित्यिक हिन्दी की भाँति ही होते हैं। केवल कर्त्ता एकवचन वो बहुवचन में वें हो जाता है।

अन्य सर्वनामों के रूप नीचे दिए जाते हैं—

अपणा (अपना); जो, जोण (जो, जौन); कोण या के (कौन ?); के (क्या ?); कै (कितने); को (कोई); (तिर्यक, किसी); जोण-सा, जो-कुच्छ (जो कुछ); असा (ऐसा), इब् (अभी); इभी, इब्-जों (अभी भी); जिब् ('अब' और 'तब'); हॉ, हॉ-सी (वहाँ); जॉ (कहाँ)

क्रिया रूप—

वर्तमान काल के रूप इसमे इस प्रकार होते हैं—

	ए० व०	ब० व०
१.	हूँ	हैं
२.	है	हो
३.	है	हैं

अतीतकाल के रूप था लगाकर, साहित्यिक हिन्दी की भाँति ही बनते हैं।

कर्तृवाच्य-क्रियापद—हिन्दी में जो क्रियापद केवल सम्भाव्यवर्तमान का भाव द्योतित करते हैं, वे यहाँ साधारण-वर्तमान के मूल भाव को भी प्रकट करते हैं। इसप्रकार यहाँ में मारूँ का अर्थ, 'मै मारता हूँ' तथा 'मार सकता हूँ', दोनों होता है।

निश्चयार्थक-वर्तमान के रूप यहाँ साधारण-वर्तमान के रूपों से (कृदन्तीय रूपों से नहीं) सम्पन्न होते हैं। ये नीचे दिए जाते हैं—

		ए० व०	ब० व०
मैं मार रहा हूँ आदि	१	मारूँ-हूँ	मारें-हैं
	२	मारे-है	मारो-हो
	३	मारे-है	मारे-हैं

कभी कभी, साहित्यिकहिन्दी की भाँति, इसमें भी वर्तमान कृदन्तीय रूप प्रयुक्त होते हैं। यथा—होता-हे (होता है); जात्तें-हें (जाते हैं)।

निश्चयार्थक-वर्तमान (Present Definite) की भाँति ही, यहाँ, वर्तमान (Imperfect) के रूप भी, वर्तमान के बदले, अतीत के रूप देकर सम्पन्न होते हैं। यथा—मैं मारूँ-था या मे मारता-था। प्रायः यह काल, जैसा कि राजस्थानी कभी-कभी, ब्रजभाखा में भी होता है, ए—क्रियावाचक विशेष्य-पद (Verbal Noun) में अतीतकाल की सहायकक्रिया संयुक्त करके सम्पन्न होता है। यथा—मारे-था (वह, तू अथवा मैंने मारा था); मारे-थे (वे, तुम अथवा हम'')। इसप्रकार के रूप बिहारी की मगाही में भी उपलब्ध होते हैं।

वर्तमान तथा भविष्यत् में, दीर्घस्वरान्त क्रियापदों के रूप संक्षिप्त हो जाते हैं। यथा—खाएँ-हें>खाँ-हे; जाऊँगा>जाँ-गा; खाऐ-गा>खागा; खाएँ-गे>खाँ-गे आदि।

इसमें खाना, खाणा में परिणत हो जाता है। इसके तिर्यक रूप णे संयुक्त करके सम्पन्न होते हैं। यथा—खाणे को (खाने के लिए)। इसीप्रकार खोवणा (खोना), पड़णा (पड़ना, गिरना), मरण-को (मरने के लिए) आदि रूप सम्पन्न होते हैं।

करणा क्रिया के अतीत काल में करा तथा किया, दोनों रूप होते हैं। इसी प्रकार जाणा के अतीतकाल के रूप गया तथा गिया (पंजाबी रूप), दोनों होते हैं।

नकारार्थक में नहीं का प्रयोग होता है; किन्तु इसके लिए ने तथा नी भी व्यवहृत होते हैं। नी का प्रयोग उत्तमपुरुष में होता है—यथा—मैं नी चला (मैं नहीं गया; किन्तु ने का व्यवहार अन्य पुरुष में होता है। यथा—उसे को ने देता (इसे कोई नहीं देता)।

बाँगरू—वस्तुतः बाँगर प्रदेश की बोली है। बाँगर से उस उच्च एवं शुष्क भूमि से तात्पर्य है जहाँ नदी की बाढ़ नहीं पहुँच पाती। बाँगरू, करनाल, रोहतक तथा दिल्ली जिलों में बोली जाती है। यह दक्षिणी पूर्वी पटियाला, पूर्वी हिसार तथा रोहतक एवं हिसार के बीच नाभा एवं झींद में भी बोली जाती है। पूरब में बाँगर प्रदेश को ऊपरी दोआब से यमुना नदी पृथक् करती है। इसके उत्तर में अम्बाला, दक्षिण में गुड़गाँव पश्चिम में पटियाला तथा और दक्षिण में हिसार है। हिसार जिले के पूरब तथा उसके आसपास का भूमिभाग हरियाना नाम से प्रख्यात है।

बाँगरू के कई स्थानीय नाम है। हरियाना के पड़ोस में यह हरियानी, देसवाली अथवा देसली कहलाती है; रोहतक तथा दिल्ली के आस पास जाटों की अधिक आबादी के कारण इसे जाटू तथा दिल्ली में चमारों की आबादी के कारण इसे चमरवाबोली भी कहते हैं। अन्य स्थानों में इसे बाँगरू नाम से ही अभिहित किया जाता है। बाँगरू बोलनेवालों की संख्या लगभग २१ लाख है। नामों में स्थानीय भेद रहते हुए भी वास्तव में बोली में भेद नहीं है। नीचे बाँगरू के व्याकरण की विशेषता संक्षेप में दी जाती है।

उच्चारण—बाँगरू में स्वरों का उच्चारण बहुत निश्चित नहीं है। यथा—कहाऊँ>कोहाऊँ; रहा>रेह्या; जवाब>जुवाब; बहुत>बोहत। ए तथा ऐ स्वरों का प्रायः परिवर्तन होता रहता है और करण सम्प्रदान के अनुसर्ग ने, नै तथा सम्प्रदान-अपादान के अनुसर्ग ते, तै रूप में लिखे जाते हैं। इसीप्रकार तिर्यक के सम्बन्ध

कारक के अनुसर्ग के, कै रूप में मिलते हैं। खड़ीबोली की भाँति ही, इसमें भी न तथा ल क्रमशः ण तथा ळ में परिवर्तित हो जाते हैं। यथा—अपना>अपणा; होना>होणा; काल>काळ; चलन>चळण; किन्तु जब द्वित्व 'ल' आता है तब उसका मूर्धन्य उच्चारण नहीं होता। यथा—चाल्लणा, चलना (चाळ्ळणा नहीं), घाल्लणा, भेजना (घाळ्ळणा नहीं)। ड़ के बदले यहाँ भी 'ड' का ही अधिक व्यवहार होता है। यथा—बड़ा>बडा। खड़ीबोली की भाँति ही, इसमें भी जब मध्य व्यञ्जन द्वित्व होता है तब आरम्भ का स्वर दीर्घ से ह्रस्व हो जाता है; किन्तु 'आ' इसका अपवाद है। यथा—चला>चाल्ल्या; छाल्ल्या, भेजा; लाग्गे, उन्होंने आरम्भ किया; राज्जी, भीतर>भित्तर; भूका>भुक्का आदि।

संज्ञा के रूप

खड़ीबोली की भाँति ही यहाँ भी संज्ञा के रूप चलते हैं; किन्तु तिर्यक बहुवचन के रूप ओं में अन्त न होकर आँ में अन्त होते हैं। दक्खिनी, पंजाबी तथा राजस्थानी में भी इसीप्रकार के रूप मिलते हैं। नीचे ये रूप दिये जाते हैं—

एकवचन		बहुवचन	
कर्त्ता	तिर्यक	कर्त्ता	तिर्यक
घोड़ा	घोड़े	घोड़े	घोड़ाँ
बाब्बू (पिता)	बाब्बू	बाब्बू	बाब्बुआँ
दिन	दिन	दिन	दिनाँ
खेत	खेत	खेत	खेताँ
माणस (मनुष्य)	माणस	माणस	माणसाँ
बरस	बरस	बरस	बरसाँ
छोरी (लड़की)	छोरी	छोर्‌याँ	छोर्‌याँ
बय्यर (स्त्री)	बय्यर	बय्यराँ	बय्यराँ

इसमें अनुसर्गों का प्रयोग अनिश्चित है; क्योंकि एक ही अनुसर्ग कई कारकों में प्रयुक्त होता है। इसमें सम्बन्ध का अनुसर्ग खड़ीबोली की ही भाँति 'का' है। पुँलिङ्ग के विभिन्न रूपों के साथ के-कै अनुसर्ग प्रयुक्त होता है। ने-नै अनुसर्ग का प्रयोग केवल कर्तृ (Agent) में ही नहीं होता, अपितु कर्म तथा सम्प्रदान में भी होता है। इसप्रकार जहाँ खड़ीबोली में को अनुसर्ग प्रयुक्त होता है, वहाँ बाँगरू में ने आता है। यथा—परदेश-को (खड़ीबोली), परदेस-ने (बाँगरू)। ती, ते, तै अनुसर्ग अपादान में प्रयुक्त होते हैं; किन्तु कर्म-सम्प्रदान में भी ये व्यवहृत होते हैं। यथा—मै-ने छोरे-ती मार्‌या, [मैंने छोरे (लड़के) को मारा]। खड़ीबोली में, अनुसर्ग रूप में, जहाँ में का प्रयोग होता है, वहाँ बाँगरू में में-मैं प्रयुक्त होते हैं। अपादान में कानी-ती तथा करण में सिते का व्यवहार, यहाँ, अनुसर्ग रूप में होता है। यथा—जिवरियाँ-सिते (जेंवरी (रस्सी) से)। ती, ते अथवा तै का प्रयोग, दो अर्थों में, निम्नलिखित उदाहरण में द्रष्टव्य है। यथा—रोपय-ती उस-ती ले लो (रुपयों को उससे ले लो)।

इसमें सर्वनाम के कई विचित्र रूप मिलते हैं। उत्तम तथा मध्यम पुरुष के रूप नीचे दिये जाते हैं—

कारक	उत्तमपुरुष		मध्यमपुरुष	
	एकवचन (मैं)	बहुवचन (हम)	एकवचन (तू)	बहुवचन (तुम)
कर्त्ता	मैं	हम, हमें	थूँ, तूँ, तौं	थम, तम्हें
कर्तृ	मैं-ने, मन्ने, मन्नै	म्हा-ने, -नै	तैं-ने, तन्ने, तन्नै	था-ने, -नै
सम्प्रदान	मन्ने, मन्नै	म्हा-ने, -नै	तन्ने, तन्नै	था-ने, -नै
सम्बन्ध	मेरा, मरा	म्हारा	तेरा, तरा	थारा

अन्य सर्वनामों के रूप नीचे दिये जाते हैं—

उल्लेख सूचक—यउँह्, योह्, यु, (हिन्दी, यह); कर्त्ता (स्त्री० लि०) याह; तिर्यक, ए० व० इस; कर्त्ता, ब० व० ये, यैं; तिर्यक, इन्, अउँह्, ओह, (हिन्दी, वह); कर्त्ता (स्त्री लिं०) वाह; तिर्यक, ए० व० उस्,; ब० व० वैं, ओह्; तिर्यक, उन्। सम्बन्धवाचकसर्वनाम (Relative pronoun) जो या जौण, तिर्यक, ए० व० जिस। प्रश्नवाचकसर्वनाम—कौण (हिन्दी, कौन), तिर्यक, ए० व० किस; के या कै (हिन्दी, क्या), इब (हिन्दी, अब)।

क्रियारूप

सहायक क्रिया के वर्तमानकाल के रूप निम्नलिखित हैं—

	ए० व०	ब० व०
१.	सूँ, साँ (मैं हूँ)	सैं, सें, साँ
२.	सै, से	सो
३.	सै, से	सैं, सें

ऊपर के रूप ही व्यवहृत होते हैं; किन्तु कभी कभी 'स' के स्थान पर 'ह' भी प्रयुक्त होता है और इसप्रकार हूँ आदि रूप सम्पन्न होते हैं। अतीतकाल के रूप, इसमें खड़ीबोली की भाँति ही 'था' आदि की सहायता से बनते हैं।

कर्तृवाच्यक्रिया के रूप

खड़ीबोली में जो क्रियापद सम्भाव्यवर्तमान का भाव द्योतित करते हैं, वे यहां साधारण वर्तमान के मूल भाव को प्रकट करते हैं। इनके रूप नीचे दिये जाते है। ये दक्खिनी हिन्दी के समान ही हैं—

	ए० व०	ब० व०
१.	मारूँ, माराँ (मैं मारता हूँ)	मारैं, मारें, माराँ
२.	मारै, मारे	मारो
३.	मारै, मारे	मारैं, मारें

वर्तमान के कृदन्तीय अथवा साधारण-वर्तमान में सहायकक्रिया के वर्तमानकाल के रूप संयुक्त करके निश्चित-वर्तमान के रूप सम्पन्न होते हैं। यथा - मैं मारदा-सूँ अथवा मैं मारूँ-सूँ, (मैं मारता हूँ)

वतमान (Imperfect) के रूप यहाँ क्रिया के वर्तमानकाल के कृदन्तीय रूप में सहायक क्रिया के अतीत के रूप संयुक्त करके अथवा खड़ीबोली की भाँति ही ए-क्रियावाचक विशेष्य (Verbal Noun) की सहायता से बनते हैं। यथा—मैं मारदा-था अथवा मै मारे-था ('मैं मारता था')। रोहतक की बाँगरू में तो निश्चित वर्तमान की भाँति ही यह काल सम्पन्न होता है। यथा — मैं मारूँ था।

खड़ीबोली की भाँति ही साधारण अथवा सामान्य-वर्तमान में गा (गे, गी) संयुक्त करके भविष्यतकाल बनता है। यथा—मारों-गा, 'मारूँगा'।

अतीतकाल के कृदन्तीय रूपों की सहायता से ही, नियमानुसार अतीतकाल सम्पन्न होता है। यथा—मन्ने मार् या, (मैंने मारा)।

वर्तमान के कृदन्तीय रूप (Present participle)—मारदा (त' के स्थान पर 'द') अतीत के कृदन्तीय रूप (past participle)—मार् या; (पुं० लिं०) तिर्यक— मारे (स्त्री० लिं०) मारी।

धातुरूप—मारण या मारणा।

जाण (जाना) के अतीतकाल के कृदन्त का रूप गया तथा गिया दोनों होते हैं।'

व्रजभाखा अथवा अन्तर्वेदी

व्रजभाखा का अन्य नाम व्रजभापा भी है। यह व्रजमण्डल की भाषा है। गंगा-यमुना का दोआब आर्यों की पवित्र यज्ञभूमि होने के कारण अन्तर्वेद कहलाता है। इसी कारण व्रजभाषा को अन्तर्वेदी (अन्तर्वेदी) भी कहते हैं। इन दोनों नामों में से किसी के द्वारा व्रजभाषा के सम्पूर्ण क्षेत्र का भलीभाँति बोध नहीं हो पाता। व्रजमण्डल का क्षेत्र मोटे तौर पर आधुनिक मथुरा जिला है। इसी के अन्तर्गत कृष्ण की लीलाभूमि- गोकुल तथा वृन्दावन है; किन्तु व्रजभाषा का क्षेत्र इससे अधिक विस्तृत है।

व्रजभाखा के लिए प्रायः संक्षिप्तरूप में 'व्रज' शब्द का ही प्रयोग किया जाता है। उधर दोआबे—आगरा, एटा, मैनपुरी, फर्रुखाबाद तथा इटावा की बोली को अन्तर्वेदी कहा जाता है। इनमें से फर्रुखाबाद तथा इटावा की भाषा तो कन्नौजी तथा शेष की भाषा व्रज है।

क्षेत्र—यदि मथुरा को केन्द्र मान लिया जाय तो दक्षिण में व्रजभाखा आगरा, भरतपुर के अधिकांश भाग, धौलपुर, करौली, ग्वालियर के पश्चिमी भाग तथा जयपुर के पूर्वीभाग में बोली जाती है। उत्तर में, यह गुड़गाँव के पूर्वी भाग में बोली जाती है। उत्तर-पूरब, दोआबे, में यह बुलन्दशहर, अलीगढ़ एटा, मैनपुरी तथा गंगापार के बदायूँ बरेली तथा नैनीताल की तराई में बोली जाती है। इसका कुल क्षेत्रफल २७ हज़ार वर्गमील तथा बोलनेवालों की संख्या ७९ लाख के लगभग है।

विभिन्न बोलियाँ— विभिन्न स्थानों की व्रजभाषा में यत्किञ्चित् अन्तर आ जाता है। मथुरा, अलीगढ़ तथा पश्चिमी आगरे की व्रजभाषा आदर्श है। अलीगढ़ के उत्तर में बुलन्दशहर है, जहाँ भाषा में खड़ीबोली का अत्यधिक सम्मिश्रण हो जाता है। जहाँ तक

ब्रजभाषा-व्याकरण का सम्बन्ध है, मुख्य अन्तर यह है कि इधर ब्रज का औ- प्रत्यय, ओ में परिणत हो जाता है। इसप्रकार यहाँ चल्यौ को चल्यो बोलते हैं।

आगरे के पूरब, धौलपुर तथा करौली के मैदानी भाग एवं ग्वालियर के पड़ोस में प्रायः आदर्श ब्रजभाखा ही चलती है; किन्तु इधर एक अन्तर अवश्य मिलता है और वह यह है कि अतीतकाल के कृदन्तीय रूप से 'य्' का लोप हो जाता है और चल्यौ के स्थान पर चलौ प्रयुक्त होने लगता है। दोआब के जिलों—एटा, मैनपुरी—एवं बुलन्दशहर में भी 'य्' का लोप हो जाता है तथा औ, ओ में परिणत हो जाता है। इसप्रकार इधर चल्यौ का रूप चलो हो जाता है। यही विशेषता गंगापार के बदायूँ तथा बरेली जिलों की ब्रजभाखा में भी मिलती है। इधर ब्रजभाखा, कन्नौजी में अन्तर्मुक्त हो जाती है जहाँ नियमित रूप से चलो का ही प्रयोग होता है। पुनः ग्वालियर के उत्तर-पश्चिम में भी औ, ओ में परिवर्त्तित हो जाता है और यहाँ भी 'य्' का लोप हो जाता है। इधर ब्रजभाखा का बुन्देली की उपभाषा भदौरी में अवसान हो जाता है।

भरतपुर तथा इसके दक्षिण की डाँग बोली में 'य्' सुरक्षित मिलता है और औ कभी ओ में परिवर्तित होता है और कभी नहीं भी होता है। इधर ब्रजभाखा का राजस्थान की जयपुरी बोली में अवसान हो जाता है जहाँ 'य्' वर्तमान है; किन्तु प्रत्यय रूप में 'ओ' का ही व्यवहार होता है, औ का नहीं। इसीप्रकार गुड़गाँव में, ब्रजभाखा, मेवाती में अन्तर्मुक्त हो जाती है और यहाँ भी औ, ओ में परिणत हो जाता है; किन्तु इधर भी 'य्' सुरक्षित है। अन्त में, नैनीताल की तराई में, ब्रजभाखा एक मिश्रित भाषा का रूप धारण कर लेती है। इसे वहाँ भुक्सा कहते हैं; क्योंकि इसके बोलनेवाले भुक्सा लोग हैं। इसे ग्रियर्सन ने ब्रजभाखा के अन्तर्गत रखा है; किन्तु आपका यह मत है कि इसे खड़ी-बोली अथवा कन्नौजी के अन्तर्गत भी रखा जा सकता है।

ब्रजभाखा बोलनेवाले ऊपर की विशेषताओं को नहीं स्वीकार करते, फिर भी वे इसकी कई विभिन्न बोलियों से परिचित हैं। उदाहरणस्वरूप, ये लोग, पूरब की कन्नौजी में अन्तर्मुक्त होने वाली, ब्रजभाखा को अन्तर्वेदी कहते हैं। ग्वालियर के उत्तर पूरब के कोने में, धौलपुर के सामने, सिकरवाड़ राजपूतों के कारण यहाँ की ब्रजभाखा सिकरवाड़ी नाम से प्रख्यात है। करौली के मैदान की तथा चम्बल पार की बोली जादो (यादव) राजपूतों के कारण जादोबाटी कही जाती है। भरतपुर के दक्षिण ऊबड़-खाबड़ तथा करौली एवं जयपुर के पूरब का प्रदेश 'डाँग' नाम से अभिहित किया जाता है। अतएव इधर के पहाड़ों के गूजरों की बोली डाँगी कहलाती है। जयपुर में तो इसकी कई छोटी छोटी उपभाषाएँ हो जाती हैं। जैसे—डाँगी, डूँगरवारा, कालीमाल तथा डाँगभाँग। जैसा पहले कहा जा चुका है, नैनीताल की तराई की ब्रजभाखा भुक्सा कहलाती है।

अतीतकाल के कृदन्तीय रूप के—यौ, औ, यो, अथवा ओ को कसौटी मानकर ग्रियर्सन ने ब्रजभाखा का निम्नलिखित विभाजन किया है—

१ आदर्श ब्रज (चल्यौ)

मथुरा

अलीगढ़

पश्चिमी आगरा

२ आदर्श ब्रज (चल्यो)

बुलन्दशहर

३ आदर्श ब्रज [चलौ)

४ कन्नौजी में अन्तर्मुक्त ब्रज (चलो)

एटा

मैनपुरी

बदायूँ

बरेली

५ भदौरी में अन्तर्मुक्त ब्रज (चलो)

सिकरवाड़ी (ग्वालियर के उत्तर पश्चिम की बोली)

६ राजस्थानी (जयपुरी) में अन्तर्मुक्त ब्रज (चल्यौ) या (चल्यो)

भरतपुर

डाँग बोली

७ राजस्थानी (मेवाती) में अन्तर्मुक्त ब्रज (चल्यो)

गुड़गाँव

८ नैनीताल की तराई की मिश्रित ब्रजभाखा

अलीगढ़ तथा आगरे ज़िले के पूरब में अन्यपुरुष सर्वनाम वह' के लिए एक विचित्र रूप 'गव' तथा 'गु' मिलता है। इसीप्रकार डाँगी बोली में एक रूप 'ह्' मिलता है, जिससे 'गव' तथा 'गु' की व्युत्पत्ति स्पष्ट हो जाती है। ब्रजभाषा के पूरब के जिलों में 'र्' के बाद के व्यञ्जन का द्वित्व हो जाता है। यह विशेषता पड़ोस की बुन्देली की उपभाषा भदौरी में भी मिलती है। यथा—खर्चु>खच्चु (मैनपुरी), मरत>मत्त, मरता (सिकरवाड़ी); ठाकुर-साहिब>ठाकुस्सा (एटा); अलीगढ़ तक में नौकरनी>नौकन्नी आदि।

अलीगढ़ की ब्रजभाखा में आ', ओ, आदि दीर्घ स्वरों के बाद का 'व', 'म' में परिणत हो जाता है। यथा—मनावन (हिन्दी, मनाना)>मनामन; बावन>बामन; रोवति>रोमति।

यहाँ वय, कभी कभी च तथा 'द्' के पूर्व का 'ज्', 'द्' में परिणत हो जाता है। इस प्रकार क्यों>चों; भेज्-दयौ>भेद् दयौ। कभी कभी यहाँ महाप्राण ध्वनि, अल्पप्राण में परिणत हो जाती है। यथा—हाथ>हात। क्रिया रूप ह्वै-गयो>है-गयौ।

बदायूँ तथा बुलन्दशहर जिलों की ब्रजभाखा मे, पड़ोस की, हिन्दोस्तानी (खड़ी-बोली) का सम्मिश्रण हो जाता है। बुलन्दशहर में कन्नौजी से भी इसका सम्मिश्रण होता है। यहाँ एक बात और उल्लेखनीय है। ब्रजभाषा के अधिकांश भाग में करण कारक में—अन् प्रत्यय लगता है। यथा—भूखन् (भूख से), आगरा तथा धौलपुर में यह -अनि प्रत्यय में परिणत हो जाता है। [अवधी तथा भोजपुरी में भी ठीक इसी कारक में;-अन् तथा -अनि प्रत्यय प्रयुक्त होते हैं। यथा भूखन् , भूखनि। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि 'ने' अनुसर्ग किसी समय करण तथा कर्तृ, दोनों में, प्रयुक्त होता था।

दक्षिणी भरतपुर करौली तथा पूर्वी जयपुर की गूजर जातियाँ भी ब्रजभाखा-भाषी हैं। इनकी बोली में अनेक स्थानीय विशेषताएँ हैं। वास्तव में इधर की ब्रजभाखा में राजस्थानी का सम्मिश्रण मिलता है और इसप्रकार यह राजस्थानी तथा ब्रजभाखा के बीच की कड़ी है।

ब्रजभाखा की विशेषताएँ तथा हिन्दी से उसका अन्तर—ग्रियर्सन के अनुसार हिन्दुस्तानी की अपेक्षा, ब्रजभाखा, पश्चिमी हिन्दी का श्रेष्ठतर प्रतिनिधि है। व्याकरण सम्बन्धी विशेषता की दृष्टि से भी इसका हिन्दुस्तानी से अधिक महत्व है। वस्तुतः हिन्दोस्तानी, पश्चिमीहिन्दी के उत्तरी-पश्चिमी कोने की बोली है और इस पर पंजाबी का पर्याप्त प्रभाव है। पंजाबी की भाँति ही हिन्दोस्तानी में भी तद्भव संज्ञापद ओकारान्त तथा औकारान्त न होकर आकारान्त होते हैं। यथा—घोड़ा, (घोड़ो या घोड़ौ नहीं)। इसीप्रकार हिन्दुस्तानी का भविष्यत्काल —गा- प्रत्यय से सम्पन्न होता है।

ब्रजभाखा में कभी-कभी नपुंसक लिंग भी मिलता है। यह इसकी प्राचीनता का द्योतक है। उत्तरी भारत की अधिकांश बोलियों से यह लिंग लुप्त हो चुका है—इन बोलियों में नपुंसक संज्ञापद पुँल्लिंग में परिवर्तित हो गए हैं। किन्तु ब्रजभाषा में कहीं-कहीं यह लिंग आज भी सुरक्षित है। उदाहरणस्वरूप, क्रियाबोधक संज्ञा (Infinitive) का लिंग इसमें मूलतः नपुंसक था। यही कारण है कि ब्रजभाखा में केवल पुंलिंग रूप मारनो (हिन्दी, मारना) ही नहीं मिलता, अपितु अधिकतर इसका नपुंसक रूप मारनौ ही मिलता है। साहित्यिक ब्रजभाषा की अपेक्षा ग्रामीण ब्रजभाषा में नपुंसक का रूप ही अधिक प्रचलित है। उदाहरणस्वरूप, 'सोने' का नपुंसक रूप सोनौ अथवा सोनो ही ग्रामीण ब्रजभाखा में प्रचलित है। इसीप्रकार अपनौ अथवा अपनो धन में, अपनौ - अपनो, विशेषण, नपुंसक लिङ्ग में हैं।

ऊपर यह कहा जा चुका है कि ब्रजभाखा में हिन्दी 'आ' - प्रत्यय के बदले औ - प्रत्यय ही प्रयुक्त होता है। पूरब की ब्रजभाखा में, कन्नौजी के प्रभाव से, औ का ओ उच्चारण आरम्भ हो जाता है। आदर्श, दोआब तथा रुहेलखंड की ब्रजभाखा में - औ - प्रत्यय नहीं प्रयुक्त होता है। इनमें औ के स्थान पर आ ही प्रत्यय संयुक्त होता है। इसप्रकार इनमें घोड़ा रूप ही चलता है, घोड़ौ नहीं। हिन्दी की भाँति ही, यहाँ की बोलियों में भी तिर्यक एकवचन एवं कर्ता बहुवचन के रूप में ए संयुक्त करके सम्पन्न होते हैं। किन्तु जब हम मथुरा से दक्षिण की ओर प्रस्थान करते हैं तब ये संज्ञापद ओकारान्त अथवा औकारान्त हो जाते है। वस्तुतः ऐसा राजस्थानी प्रभाव के कारण ही होता है। विशेषण पद—जिसमे सम्बन्ध तथा क्रिया के कृदन्तीय रूप भी सम्मिलित हैं— सर्वत्र ओकारान्त तथा औकारान्त ही होते हैं। इसप्रकार आदर्श ब्रज में घोड़े-कौ, ब्रज में, घोड़ा - कौ (घोड़े का); भलौ, भला; चल्यौ, चला; आदि रूप होंगे।

हिन्दी से तुलना करने पर ब्रज के सर्वनामरूपों में पर्याप्त भिन्नता परिलक्षित होती है। ब्रज के आगे दिए हुए संक्षिप्त-व्याकरण से यह बात स्पष्ट हो जायगी। यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि ब्रज में, हिन्दी 'मैं' के लिए प्रायः हौं सर्वनाम ही प्रयुक्त होता है।

जहाँ तक क्रिया का सम्बन्ध है, सहायकक्रिया के वर्तमान काल के रूप प्रायः हिन्दी के रूपों के समान ही हैं; किन्तु अतीतकाल के रूपों में विशेष भेद है, क्योंकि यहाँ सहायकक्रिया के रूप में हौ तथा हुतौ का प्रयोग होता है। हिन्दी में इसके लिए था व्यवहृत होता है।

वर्तमान कृदन्तीय (शतृ) के कर्तृवाच्य के रूप -तु अथवा -त प्रत्ययान्त होते हैं। यथा—मारतु या मारत। हिन्दी में इसके लिए -ता- प्रत्यय प्रयुक्त होता है, यथा—मारता। आदर्श ब्रज का अतीत-काल के कृदन्त का रूप वस्तुतः उल्लेखनीय है। यह -यौ- प्रत्ययान्त होता है; यथा- मार्‌यौ (हिन्दी, मारा)। ज्यों-ज्यों हम पूरब की ओर बढ़ते जाते हैं, त्यों-त्यों 'य्' के लोप की प्रवृत्ति दिखलाई पड़ती है और चलौ तथा चलो जैसे रूप मिलने लगते हैं। दक्षिण में इसके सर्वथा विपरीत प्रवृत्ति दिखलाई पड़ती है और उधर विशेषण में भी 'य्' संयुक्त किया जाने लगता है। इसप्रकार इधर आछ्‌यौ (अच्छा), तिहार्‌यौ (तुम्हारा), आदि रूप मिलते हैं। यह 'य्' वस्तुतः संस्कृत के भूतकालिक कृदन्त 'इ' का अवशिष्ट मात्र है। इसकी विभिन्न अवस्थाएँ इसप्रकार हैं—सं० मारितकः>प्रा० मारिदओ, मारिअवो, मारिओ >ब्रजमार्‌यौ।

हिन्दी के सम्भाव्य वर्तमान का रूप वास्तव में वर्तमान काल का ही रूप है। ब्रजभाषा में यह वर्तमान काल के मूलभाव को ही प्रकाशित करता है; किन्तु जब इसे निश्चित-वर्तमान (Present Definite) का रूप देना होता है, तब इसमें वर्तमान-काल की सहायकक्रिया का रूप भी संयुक्त कर देते हैं। यथा—हौं मारौं-हौं (मैं मारता हूँ), तू मारै-है (तू मारता है)। निश्चित-वर्तमान का दूसरा रूप ब्रजभाखा में हिन्दी की भाँति ही बनता है। इसीप्रकार घटमान (Imperfect) के रूप वर्तमान के कृदन्तीयरूपों की सहायता से बनते हैं। ब्रज के कुछ क्षेत्रों में घटमान के रूप पूर्णक्रिया (Substantive verb) के अतीतकाल के रूपों में साधारण-वर्तमान के अन्यपुरुष एकवचन की सहायकक्रिया के रूप संयुक्त करने से सम्पन्न होते हैं; यथा- मारै-हौ (मैं, तू अथवा वह मारता था), मारैं-हे (हम, तुम अथवा वे मारते थे)।

ब्रजभाखा में भविष्यत्काल के रूप, साधारण-वर्तमान के रूपों में—गौ संयुक्त करने से सम्पन्न होते हैं; यथा—मारौ-गौ (मारूँगा)। किन्तु यहाँ प्रायः धातु में —इह अथवा -एह प्रत्यय जोड़ करके भविष्यत् के रूप बनते हैं; यथा—मारि-हौं, (मैं मारूँगा)। यह रूप वस्तुतः सीधे संस्कृत से ब्रजभाखा में आया है। इसकी विभिन्न अवस्थाएँ इस प्रकार हैं:—

सं० मारिष्यामि>प्रा० मारिस्सामि, मारिहामि, मारिहौं; ब्रजभाखा-मारिहौं।

आगे ब्रजभाखा का संक्षिप्त व्याकरण दिया जाता है। विभिन्न स्थानीय रूपों का उल्लेख पहले किया जा चुका है।

ब्रजभाखा का संक्षिप्त व्याकरण

१. शब्दरूप

	पुल्लिंग		स्त्रीलिंग	
एकवचन	दीर्घ	ह्रस्व	दीर्घ	ह्रस्व
कर्त्ता	घोड़ा	घर, घरु	नारी	बात्
तिर्यक	घोड़ा, घोड़े, घोड़ै	घर, घरु	नारी	बात
बहुवचन	घोड़ा, घोड़े, घोड़ै,	घर, घरु	नारीं, नारियाँ	बातैं
कर्त्ता	घोड़े, घोड़ैं,			
तिर्यक	घोड़ौं, घोड़ा,	घरौं, घरिन,	नारियौं,	बातौं,
	घोड़नि, घोड़न्	घरन्, घरनु,	नारियानि,	बातनि
			नारिन्।	बातन्

अनुसर्ग—
कर्तृ—नें, नैं
कर्म-संप्रदान—कुँ, कूँ, कौं, कैं, कें
करण-अपादान—सों, सूँ, तें, ते
सम्बन्ध—कौ, तिर्यक (पुल्लिंग) के (स्त्रीलिंग) की
अधिकरण—में, मैं, पै, लौं

विशेषण प्रायः खड़ीबोली की भाँति ही होते हैं; किन्तु दीर्घ पुँल्लिंग आकारान्त शब्द यहाँ औकारान्त हो जाते हैं। इनके तिर्यक्रूप एकवचन के रूप 'ऐ' अथवा 'ए' और पुँल्लिंग बहुवचन के रूप '—ए'-एँ' 'ऐ' या—'एं' प्रत्ययान्त होते हैं।

सर्वनाम

एकवचन	मैं	तू	वह (पु० वा०) वह (संकेत वा०)	यह	कौन	वह (संकेत वा०)	कौन (प्र० वा०)	क्या (प्रा० वा०)
कर्तृ	मै, हौं, हों	तू, तै, तैं	वो, वह, वुह	यह, यिह	जौ, जौन	सो, तौन	को, कौ, कौन	कहा, का
तिर्यक	मो, मुज मोहि, मुहि	तो, तुज तोहि तुहि	विस, वा, वाहि	इस, या, याहि	जिस, जा, जाहि	तिस, ता, ताहि	किस, का, काहि	काहे
कर्म-संप्रदान	मोंहि, मुहि मोय मोय मोइ, मो	तोहि, तुहि, तोए तोय तोइ तो	वाहि, वाए वाय, विसे	याहि, याए याय इसे	जाहि, जाए, जाय, जिसे	ताहि, ताए, ताय तिसे	काहि, काए काय, किसे	...
सम्बन्ध	मेरौ, मेर्‌यौ	तेरौ, तेर्‌यौ	...	...	जासु	तासु	...	...
बहुवचन कर्तृ	हम	तुम	वे, वै	ये, यै,	जौ,	सो, ते,	को, कौ,	...
तिर्यक	हम, हमों हमनि, हमन	तुम, तुम्हों	उनि, उन उन्हों विनि, विन विन्हों	इनि, इन इन्हों	जिनि, जिन् जिन्हों	तिनि, तिन् तिन्हों	किनि, किन् किन्हों	...
कर्म-संप्रदान	हमैं	तुम्हैं	उन्हैं, विन्हैं	इन्हैं, इहैं	जिन्हैं	तिन्हैं	किन्हैं	...
सम्बन्ध	हमारौ हमार्‌यौ	तुम्हारौ तुम्हार्‌यौ तिहारौ तिहार्‌यौ	...	...	...	...	...	...

उपर्युक्त (प्रमुख रूप से उत्तम तथा मध्यमपुरुष) बहुवचन के रूपों का प्रयोग प्रायः एकवचन में भी होता है। इसीप्रकार व के स्थान पर ऊपर 'ब' तथा 'य' के स्थान पर 'ज' का प्रयोग भी चलता है।

क्रिया-रूप—(क) सहायक तथा पूर्णक्रिया—

वर्तमान—मैं हूँ।		भूत—मैं था।
एकवचन	बहुवचन	एकवचन पुँल्लिंग—हौ, हो
१. हौं	हैं	,, ,, स्त्रीलिंग—ही
२. है	हौ	बहुवचन पुल्लिंग—हे, हें
३. है	हैं	,, ,, स्त्रीलिंग—हीं

भूतकाल में, कनौजी की भाँति हुतौ, हुती, हुते और हुतीं आदि रूप भी मिलते हैं। इनमें पुरुष की दृष्टि से कोई परिवर्तन नहीं होता।

(ख) कर्तृवाचक-क्रियापद—क्रियाबोधकसंज्ञा (Infinitive) मारन्, मारनौ या मारनौं।

तिर्यक—मारने या मारनै; या मारिवौ या मारिवौ, मारिवे या मारिवै (हि० मारना) मारिवौ के स्थान पर प्रायः मारवौ होता है।

वर्तमानक्रियाबोधकविशेषण (Present Participle) मारतु, मारत (हि०मारते हुए)

अतीतक्रियाबोधकविशेषण (Past Participle) मार्‍यौ (हि० मारा हुआ)

असमापिकाक्रिया (Conjunctive Participle) मारि, मारि, कै, मारि-कारि (हि० मार करके)। इन सभी शब्दों की अन्त- 'इ' का कभी कभी लोप हो जाता है। और कभी-कभी 'कै' के स्थान पर 'के' हो जाता है। किन्तु, कै एवँ को इसके अपवाद हैं।

वर्तमानकाल या सम्भाव्य वर्तमान मैं मारता हूँ या मार सकता हूँ।		भविष्यत् (मैं मारूँगा)।	
एक वचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
१. मारौ, मारूँ	मारैं, मारहिं	मारिहौं, मारैहौ, मारौगौ मारूँगौ	मारिहैं, मारै हैं, मारैगौ
२. मारै, मारहि	मारौ, मारहु	मारिहै, मारैहै, मारैगौ	मारिहौ, मारैहौ, मारौगै।
३. मारै, मारहि	मारैं, मारहिं	मारिहै मारैहै, मारैगो	मारिहैं, मारैहैं, मारैंगै।

आज्ञार्थक (Imperative), मार, मारहि, मारि (तू मार) मारौ (तुम मारो); मारियो, मारियै, मारिजै (कृपया मारें)

अन्य काल, साहित्यिक हिन्दी की भाँति ही होते हैं।

(ग) अनियमितक्रियापद (Irregular verbs) होनौं (होना)।

(१) क्रियाबोधकसंज्ञा (Infinitive) होनौ या हैवौ।

(२) अतीतक्रियाबोधकविशेषण (Past Participle) भयौ (पुँल्लिंग, तिर्यक—भये या भए; स्त्रीलिंग भयी या भई)

(३) असमापिका क्रियापद (Conjunctive Participle) ह्वै, ह्वै-कै आदि।

(४) वर्तमान :—होऊँ आदि।

(५) भविष्यत् :—ह्वैहौं, होइहौं, होउँगौ आदि। शेष रूप नियमानुकूल ही चलते हैं, केवल मध्यम पुरुष बहुवचन भविष्यत् हौंगे और भूतक्रियाबोधकविशेषण (Past Participle) हूत होगा।

देनौ (देना)

(१) क्रियाबोधकसंज्ञा (Infinitive) देनौ या दैवौं

(२) भूतक्रियाबोधकविशेषण (Past participle) दियौ या दयौ (पुँल्लिंग तिर्यक, दये, दए स्त्रीलिंग, दयी दई); या दीन्हौ अथवा दीनौ।

(३) वर्तमान—देऊँ आदि।

(४) भविष्यत्—दैहौं, देऊँगौ आदि।

लेनौ (लेना) देना की तरह ही होता है।

ठाननौं (ठानना)

(१) भूतक्रियाबोधकविशेषण (Past participle) ठयौ (पुल्लिंग तिर्यक, ठये ठए ; स्त्री० लि० ठयी, ठई)

करनौं (करना)

(१) क्रियाबोधकसंज्ञा (Infinitive) वैकल्पिक रूप में कीनौं

(२) अतीतक्रियाबोधकविशेषण (Past participle) कर्यौ, कियौ, कीन्हौ या कीनौ।

(३) असमापिका क्रियापद (Conjunctive participle)—कै-कै या किर-कै

(४) भविष्यत्—करिहौं या कैहौं।

जानौं (जाना)

(१) अतीतक्रियाबोधकविशेषण (Past participle) गयौ (पुँल्लिंग तिर्यक, गये या गए स्त्री०, गयी या गई)।

(घ) कर्मवाच्य :—यह प्रायः खड़ी बोली की भाँति ही जानौं के साथ अतीत-क्रियाबोधकविशेषण (Past participle) का संयोग करके बनाया जाता है। कभी-कभी धातु में—'इय' लगाकर भी कर्मवाच्य बनाया जाता है। यथा, मारियै (वह मारा जा रहा है)।

(ङ) निश्चित-वर्तमान (Definite present) का द्योतन करने के लिए कभी कभी ब्रजभाखा राजस्थानी के नियमों का अनुसरण करती है। ऐसे स्थानों पर सामान्य-वर्तमानकाल के साथ वर्तमानक्रियाबोधकविशेषण (Present parti-

ciple) के स्थान पर पूर्णक्रिया का प्रयोग होता है। इस तरह मारतु हौ आदि के स्थान पर निम्नलिखित रूप होते हैं :—

	एक वचन	बहु वचन
१	मारौँ-हौं	मारैं हैं
२	मारै - है	मारौ-हौ
३	मारै - है	मारैं - हैं।

(च) णिजन्त—यह क्रिया के रूपों में—आव प्रत्यय संयुक्त करके बनाया जाता है, किन्तु दोहरे णिजन्त के प्रयोग में वाव् या 'वा' लगता है। इस तरह चलनौ के लिए चलावनौं तथा दोहरे णिजन्त के रूप में चलवावनौं या चलवानौं होगा। कभी-कभी 'आव' का ह्रस्व होकर 'व' हो जाता है। इस तरह पुजावै या पुजवै रूप होते हैं। अतीतक्रियाबोधकविशेषण (Past participle) का अन्तिम 'व' प्रायः लुप्त हो जाता है। जैसे बुलायौ, बुलवयौ नहीं।

कनौजी

कनौजी का नामकरण कनौज नगर के नाम पर हुआ है। यह नगर गंगा के तट पर फरूखाबाद ज़िले में आज भी वर्तमान है। कनौज शब्द वस्तुतः कान्यकुब्ज का विकसित रूप है। प्राचीनकाल में यह अत्यन्त प्रसिद्ध एवँसमृद्धनगर था। रामायण में भी इसका उल्लेख मिलता है तथा अरब इतिहास-लेखकों ने भी इसकी चर्चा की है। पाँचवीं शती ईस्वी के मध्यभाग में इसे राठौर राजपूतों ने हस्तगत किया। इसका अन्तिम राजा जय-चन्द्र था जिसे ११९३-९४ में महमूद गोरी ने युद्ध में परास्त कर कनौज नगर एवं प्रदेश को अपने अधिकार में कर लिया। प्राचीनयुग में कान्यकुब्ज-प्रदेश की इतनी अधिक प्रतिष्ठा बढ़ी कि ब्राह्मणेतर जातियों ने भी इसे अपने नाम के साथ संयुक्त करने में अपना गौरव माना। कनौजी से वस्तुतः इस कनौज-प्रदेश की भाषा से ही तात्पर्य है।

क्षेत्र—आजकल शुद्ध कनौजी, दोआबे के, इटावा, फरूखाबाद एवं गंगा के उत्तर, शाहजहाँपुर ज़िलों में बोली जाती है। यह कानपुर तथा हरदोई ज़िलों में भी बोली जाती है, किन्तु हरदोई में पूर्वीहिन्दी की उपभाषा, अवधी से इसका सम्मिश्रण होने लगता है। इसीप्रकार कानपुर की कनौजी पर अवधी के अतिरिक्त बुन्देली का भी प्रभाव परिलक्षित होता है। शाहजहाँपुर के उत्तर में स्थित पीलीभीत की बोली भी कनौजी ही है, परन्तु इधर ब्रजभाखा का सम्मिश्रण प्रारम्भ हो जाता है।

भाषागत सीमायें—कनौजी के पश्चिम तथा उत्तर पश्चिम में ब्रजभाखा तथा दक्षिण में बुन्देली का क्षेत्र है। कनौजी की भाँति ही, दोनों, वस्तुतः पश्चिमीहिन्दी की ही विभाषाएँ हैं।

विभिन्न बोलियाँ—कनौजी का क्षेत्र बहुत विस्तृत नहीं है और सीमाओं पर यह पड़ोस की बोलियों से पर्याप्तरूप से प्रभावित है। कनौजी में भिन्नताएँ भी कम ही हैं। इसकी एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि गंगा के उत्तर तथा कानपुर की कनौजी में, व्यञ्जनान्त-पदों से एक लघु 'इ' संयुक्त कर दी जाती है। यथा—देत् के लिए देति तथा

बाद के लिए बादि। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, कानपुर तथा हर्दोई की कनौजी में, पड़ोस की अन्य बोलियों का सम्मिश्रण हो गया है। हर्दोई के पूर्वीभाग (मुख्यतया संडीला तहसील) की भाषा में तो इतना अधिक सम्मिश्रण है कि यह निर्णय करना कठिन है कि यहाँ की भाषा कनौजी है अथवा ब्रज। ठीक यही दशा कानपुर ज़िले तथा हमीरपुर के समाने, यमुना किनारे की बोली की भी है। इस पर बुन्देली का अत्यधिक प्रभाव है और इसे तिरहारी बोली कहा जाता है। यमुना के दक्षिणी किनारे की बोली भी तिरहारी ही कहलाती है। इसके सम्बन्ध में अवधी के अन्तर्गत आगे लिखा जायेगा। कनौजी भाषा-भाषियों की संख्या ४५ लाख के लगभग है।

कनौजी का व्याकरण तथा ब्रजभाखा से उसका सम्बन्ध—कनौजी तथा ब्रजभाखा में इतना अधिक साम्य है कि वस्तुतः इसे अलग भाषा मानना युक्ति संगत नहीं प्रतीत होता। इसमें ब्रजभाषा का औ प्रत्यय ओ हो जाता है, किन्तु ब्रजभाखा की विभाषाओं में भी यह ओ मौजूद है। इसके अतिरिक्त कनौजी तथा ब्रजभाखा, दोनों, में हिन्दीव्यञ्जनान्त पदों के अन्त में 'उ' प्रत्यय संयुक्त होता है।

कनौजी में दो स्वरों के बीच के "ह्" का लोप हो जाता है। यथा—कहिहौं> कैहौं। हिन्दी के आकारान्त पुल्लिङ्ग, तद्भव विशेषणपद, कनौजी में ओकारान्त हो जाते हैं। यथा—छोटा> छोटो। कनौजी आकारान्त पद, कभी-कभी तिर्यक में भी एकारान्त में नहीं परिणत होते। लरिका, लरिका-को (लरिके-को नहीं)।

हिन्दी के ह्रस्व व्यञ्जनान्त तद्भवशब्द विकल्प से कनौजी में उकारान्त हो जाते हैं। यथा—हिन्दी, घर्> कनौजी, घर् अथवा घरु। यह 'उ' प्रत्यय विकल्प से तिर्यक रूपों में भी सुरक्षित रहता है। यथा—घर्-को अथवा घरु-को।

हिन्दी के संकेत अथवा उल्लेखवाचकसर्वनाम, वह तथा यह बुन्देली में वो तथा जो हो जाते हैं। कनौजी में इन दोनों के रूपों का सम्मिश्रण मिलता है। इसमें वह के लिए वहु तथा वौ एवँ यह के लिए यहु तथा जौ रूप मिलते हैं।

कनौजी में, अतीतकाल अन्यपुरुष की क्रिया का एक विचित्र रूप में भावे प्रयोग होता है। यथा—लरिका-ने चलो-गओ (लड़का गया = लड़के के द्वारा चला गया)। आदर्श हिन्दी में इसप्रकार का प्रयोग चिन्त्य माना जाता है। निम्नलिखित उदाहरणों में, 'कहना तथा पूछना' क्रियायें अतीत काल (स्त्रीलिङ्ग) में प्रयुक्त हुई हैं। इनका अन्वय वस्तुत कर्मपद "बात" से हुआ जो यहाँ लुप्त है। यथा—उसने कही (= उसने (बात) कही); उसने पूछी (= उसने (बात) पूछी)।

बुँदेली की भाँति ही कनौजी में भी देना, लेना, तथा जाना के अतीतकाल के रूप दओ, लओ तथा गओ होते हैं। इसीप्रकार सहायकक्रिया के अतीत के रूप रहो, हतो अथवा थो होते हैं। बुँदेली में ये रहो, हतो अथवा तो तथा ब्रजभाखा में ये रहौ, हुतौ अथवा हौ हो जाते हैं।

आगे कनौजी का संक्षिप्त-व्याकरण दिया जाता है। कनौजी में साहित्य का अभाव है और इस क्षेत्र के कवियों ने साहित्य-रचना में ब्रजभाखा को ही अपनाया है।

कनौजी का संक्षिप्त-व्याकरण

(क) शब्द रूप—

	पुंलिंग		स्त्रीलिंग	
	दीर्घ	ह्रस्व	दीर्घ	ह्रस्व
एकवचन कर्त्ता	घोड़ा	घर या घरु	नारी	बात्
तिर्यक	घोड़ा, घोड़े	घर् या घरु	नारी	बात्
बहुवचन कर्त्ता	घोड़ा, घोड़े	घर्, घरु	नारीं	बातें
तिर्यक	घोड़न्	घरन्, घरुन, घरनु	नारिन्	बातन्

अनुसर्ग—कर्तृ—ने

कर्म-संप्रदान— को, कॉ,

करण-अपादान—से, सेती, सन्, तें, ते, करि, कर-के,

सम्बन्ध—को (तिर्यक,-के) स्त्री० लि० की,

अधिकरण—में, मैं, मॉ, मों, पर, लों,

कभी कभी संज्ञा या सर्वनाम के बहुवचन के रूपों में हार या हारु का प्रयोग होता है। इसमें तिर्यक बहुवचन के रूप कभी-कभी एक वचन में भी प्रयुक्त होते हैं; यथा—जादा दामन को (अधिक कीमती) आदि। कभी-कभी करणकारक एकवचन में ओं या अन् और अधिकरण में 'ए' का प्रयोग भी होता है। यथा—

करण—भूखो या भूखन् (भूख से)।

अधिकरण—घरे (घर में)।

कनौजी के विशेषण खड़ी बोली के समान ही होते हैं, केवल पुंलिंग के दीर्घरूपों का अर्थ 'आकारान्त' के स्थान पर 'ओकारान्त' से होता है।

	सर्वनाम								
	मैं	तुम	वह (पु०सं०वा०)	यह	कोन	वह (संकेत)	कौन (प्र०वा०)	क्या (प्र०वा०)	कोई
एकवचन कर्त्ता	मैं	तू	वहु, वुहि, उहि वौ, वहु	यहु, यिहु, इहु ये, जै, जहु	जौन, जौनु जो	तौन, तौनु, सो	कौन, कौनु, को	कहा, का	कोऊ, कोई कौनो
तिर्यक	मो	तो	उहि, वहि, वा	इहि, या	जेहि, जा	तेहि, ता	कंहि, का	काहे	कौनो, कसू
कर्म-संप्रदान	मोहि	तोहि	उसे, उसै	इसे, इसै	जिसे, जिसै	तिसे, तिसै	किसे, किसैं	—	—
सम्बन्ध	मेरौ	तेरौ	—	—	—	—	—	—	—
बहुवचन कर्त्ता	हम्	तुम्	वे, वै, वे,	जे, जै	जौन, जो	सो	को	—	—
तिर्यक	हम्	तुम्	उन्, उन्हों	इन्, इन्हों	जिन्, जिन्हों	तिन्, तिन्हों	किन्	—	—
कर्म-संप्रदान	हमें, हमैं	तुम्हें तुम्हैं	उन्हें, उन्है	इन्हें, इन्है	जिन्हें जिन्हैं	तिन्हें, तिन्है	किन्हें, किन्है	—	—
सम्बन्ध	हमारो	तुम्हारो	—	—	—	—	—	—	—

बहुवचन के किसी भी रूप में बहुवचन सूचक हार या हारू का प्रयोग किया जा सकता है। जैसे —हम-हार (हमलोग)।

कुछ के लिए 'कछु' या 'कुछु' का प्रयोग होता है।

पुरुषवाचक बहुवचन सर्वनामों का प्रयोग प्रायः एकवचन में भी होता है।

निजवाचक सर्वनाम के लिए 'आप्' या 'आपु' सम्बन्ध, आपन् अपनु, या अपनो का प्रयोग होता है।

(ख) क्रिया-रूप

(१) सहायक क्रिया :—

		एकवचन	बहुवचन
वर्तमान—मैं हूँ :—	१	हूँ	हैं, हैं-गे
	२	है, है-गो	हो, हो गे
	३	है है-गो,	हैं, हैं-गे
अतीत—मैं था—	१ पु०	थो, हतो	थे, हते
	स्त्री०	थी, हती	थीं, हतीं

कभी-कभी रहो या रहीं का भी प्रयोग मिलता है।

(२) कर्तृवाचक क्रिया—

क्रियाबोधक संज्ञा (Infinitive)—मारन्, मारनु, मारनो या मारिबो (तिर्यक मारिबे), (हि० मारना)

वर्तमान क्रियाबोधक विशेषण (Present Participle)—मारत् या मारतु (मारते हुए)

अतीत क्रियाबोधक विशेषण (Past Participle) मारो (मारा हुआ)

असमापिका क्रिया (Conjunctive Participle) मार-के या मारि-के (मार करके)

(३) वर्तमानसूचक अथवा सम्भाव्य वर्तमान—

		एकवचन	बहुवचन
मैं मारता हूँ।	१	मारों, मारूँ	मारें
या मैं मार सकता हूँ।	२.	मारे	मारो
	३.	मारे	मारे।

(४) भविष्यत् मैं मारूँगा—

	एकवचन	बहुवचन
१.	मारिहों, मारिहों, मारेहूँ, मारिहैं, मारेंगे मारोगो।	
२.	मारिहै, मारेगो	मारिहो मारोगे
३.	मारिहै, मारेगो	मारिहैं, मारेंगे

	एकवचन	बहुवचन
(५) आज्ञार्थ (विधि-क्रिया)—	मार	मारो
(६) आदर (आदरार्थ)—	मारियो	मारिये

अन्य कालों के रूप व्रजभाषा की भाँति ही होते हैं, केवल पुँल्लिंग में औ-प्रत्यय के स्थान पर—'ओ' हो जाता है।

(ग) अनियमित क्रियापद (Irregular verbs):—

१. होन (होना)

२. अतीत क्रियाबोधक विशेषण (Past participle) भयो या भओ। अन्य रूप वैसे ही होते हैं।

देन (देना) लेन (लेना) — भूतक्रिया बोधकविशेषण—दओ, लओ (Past participle)

जान (जाना) — भूतक्रियाबोधकविशेषण गओ या गयो.

करन (करना) मरन (मरना) — अतीतकालिकक्रियाबोधकविशेषण करो, मरो

इसमें कर्मवाच्य के रूप व्रजभाषा की तरह ही बनते हैं। कनौजी में भी कभी कभी राजस्थानी के वर्तमानरूपों को (व्रजभाषा की तरह ही) प्रयुक्त किया जाता है।

बुन्देली अथवा बुन्देलखंडी

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, बुन्देली अथवा बुन्देलखंडी वस्तुतः बुन्देलखंड की भाषा है। बुन्देले राजपूतों की प्रधानता के कारण ही इस प्रदेश का नाम बुन्देलखंड तथा इसकी भाषा का नाम बुन्देली पड़ा। इंडिया गजेटियर के अनुसार बुन्देलखंड की सीमा—उत्तर में यमुना नदी, उत्तर तथा पश्चिम में चम्बल नदी, दक्षिण में मध्यप्रदेश के जबलपुर तथा सागर जिले तथा दक्षिण पूरब में रीवाँ अथवा बघेलखंड एवं मिर्जापुर के पहाड़ है। किन्तु वास्तव में बुन्देली की भी यही सीमा नहीं है। उदाहरणस्वरूप बाँदा इस सीमा के अन्तर्गत है, किन्तु यहाँ की बोली बुन्देली नहीं, अपितु पूर्वी-हिन्दी की बघेली है। इसके सम्बन्ध में पूर्वी-हिन्दी के अन्तर्गत लिखा जायेगा। इसके अतिरिक्त झाँसी कमिश्नरी के अन्य जिले - झाँसी, जालौन तथा हमीरपुर बुन्देली भाषा-भाषी ही हैं।

चम्बल नदी वस्तुतः ग्वालियर की उत्तरी तथा पश्चिमी सीमा निर्धारित करती है, किन्तु उत्तर में बुन्देली चम्बल नदी तक ही नहीं बोली जाती अपितु उसके पार, आगरे, मैनपुरी तथा इटावे के दक्षिण में भी बोली जाती है। पश्चिम में यह चम्बल नदी तक नहीं बोली जाती क्योंकि पश्चिमी ग्वालियर में व्रजभाषा तथा राजस्थानी की विभिन्न उपभाषाएँ बोली जाती हैं। दक्षिण में, इसकी सीमा, बुन्देलखंड की सीमा से बहुत दूर तक आगे चली जाती है। इधर यह केवल सागर, दमोह तथा भोपाल के पूर्वी भाग में ही नहीं बोली जाती अपितु मध्यप्रदेश के नरसिंहपुर, हुशंगाबाद तथा सिवनी तक पहुँच जाती है। बालाघाट के लोधी तथा छिंदवाड़ा के मध्य भाग की जनता भी एक प्रकार की मिश्रित बुन्देली बोली, बोलती है। इसीप्रकार, नागपुर के मैदान की भाषा, यद्यपि मराठी है, तथापि यहाँ भी मिश्रित बुन्देली बोलनेवाली अनेक जातियाँ बस गई हैं। बुन्देली भाषा-भाषियों की संख्या लगभग ७० लाख है।

भाषागत सीमा—बुन्देली के पूरब में, पूर्वी हिन्दी की बघेली बोली का क्षेत्र है, उत्तर तथा उत्तर-पश्चिम में, पश्चिमी हिन्दी की कनौजी तथा व्रजभाषा एवं यमुना

नदी के दक्षिणी किनारे पर स्थित हमीरपुर की तिरहारी बोली बोली जाती है। इसके दक्षिण में मराठी तथा दक्षिण पश्चिम में राजस्थान की विभिन्न बोलियों का क्षेत्र है। इनमें मालवी मुख्य है।

बुन्देली की विभिन्न बोलियाँ—बुन्देली में भाषागत विशेषताएँ बहुत कम हैं। इसके अपने क्षेत्र में प्रायः एक प्रकार की ही भाषा प्रचलित है। इसके बोलनेवालों के अनुसार इसकी दो या तीन उपशाखायें भी हैं, किन्तु उनमें केवल कतिपय स्थानीय विचित्रताओं के अतिरिक्त अन्य कोई विशेषता नहीं है। इसके उत्तर में अन्य बोलियों के कुछ रूप अवश्य आ जाते हैं और इसीप्रकार इसके दक्षिण की बोली भी मिश्रित ही है। आदर्श बुन्देली भाषा भाषियों के अनुसार इसकी उपभाषाओं के अन्तर्गत पँवारी, लोधान्ती अथवा राठौरी एवं खटोला बोलियों का समावेश है। पँवारी बोली ग्वालियर के उत्तर पूरब, दतिया तथा उसके पड़ोस में बोली जाती है। इधर पँवार राजपूतों की प्रधानता है। लोधान्ती अथवा राठौरी बोली हमीरपुर के राठ परगने तथा जालौन के पड़ोस में बोली जाती है, क्योंकि इधर लोधी लोगों की आबादी अधिक है। हमीरपुर के मध्य में तथा राठ परगना से सटे हुए चरखारी के बावन चौरासी परगना, सरिला तथा जिगनी आदि स्थान पड़ते हैं। पहले यह क्षेत्र बुन्देलखण्ड एजेन्सी के अन्तर्गत था। इधर भी लोधान्ती अथवा राठौरी बोली ही बोली जाती है। बुन्देली की खटोला बोली बुन्देलखण्ड एजेन्सी के दक्षिणपूरब तथा उसके पड़ोस में बोली जाती है। यही बोली मध्यप्रदेश के दमोह जिले में भी प्रचलित है।

मिश्रित बोलियों में पूरब की बनाफरी, कुंडी तथा निभट्टा हैं, जो क्रमशः पूरब की पूरबीहिन्दी में तथा पश्चिम में ब्रजभाषा की भदावरी में अन्तर्भुक्त हो जाती हैं। इनमें बनाफरी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह हमीरपुर के दक्षिणपूर्व तथा बुन्देलखण्ड एजेन्सी के पूर्व में बोली जाती है। इधर बनाफर राजपूत प्रबल हैं, जिनकी गाथा आल्हखण्ड में सर्वत्र उत्तरीभारत में प्रचलित है। बनाफरी में स्थानीय भेद अत्यधिक है। हमीरपुर के पास तो इसमें बघेली का अत्यधिक सम्मिश्रण हो जाता है। कुंडी बोली हमीरपुर तथा बाँदा को पृथक करनेवाली केन नदी के दोनों तटों पर बोली जाती है। बाँदा की ओर की कुंडी में तो बघेली का अधिक सम्मिश्रण हो जाता है। इसीप्रकार हमीरपुर ओर की कुंडी भी मिश्रित बोली है, किन्तु इसमें बुंदेली की ही प्रधानता है। हमीरपुर के उत्तरी छोरपर यमुना के दक्षिणी तट पर; एक पतली पट्टी चली गयी है, जहाँ पर बघेली मिश्रित तिरहारी बोली बोली जाती है। यह तिरहारी जालौन जिले तक चली जाती है जहाँ वह आदर्श बुन्देली में अन्तर्भुक्त हो जाती है; किन्तु इन दोनों के सन्धिस्थल की भाषा निभट्टा कहलाती है। भदावरी अथवा तोवँरगढ़ी वस्तुतः भदावर तथा तोवँरगढ़ इलाकों की बोली हैं। ये इलाके, चम्बल नदी के किनारे उस स्थल पर स्थित हैं जहाँ चम्बल नदी ग्वालियर राज को इटावा तथा आगरा से पृथक करती है। चम्बल नदी के उत्तर में इटावा के निकट ही आगरा तथा मैनपुरी भी बुन्देली का क्षेत्र है। ग्वालियर नगर में भी यही प्रचलित है, किन्तु उसके पश्चिम तथा पूरब में ब्रज तथा राजस्थानी बोलियों का क्षेत्र है। आदर्श बुन्देली, जालौन, हमीरपुर, झाँसी, सागर, ग्वालियर, भूपाल, सिवनी, नरसिंहपुर होशंगाबाद ओरछा तथा दतिया आदि में बोली जाती है। बुन्देली भाषा-भाषी पँवारी, लोधान्ती अथवा खटोला को आदर्श बुन्देली के अन्तर्गत नहीं मानते।

दक्षिण की लोधी, कोष्टी, कुम्भारी तथा नागपुरी बोलियाँ वस्तुतः मराठी और बुन्देली की सम्मिश्रण हैं। इनके बोलनेवाले कभी एक वाक्य एक बोली का तथा दूसरा वाक्य दूसरी बोली का बोलते है। लोधी बोली बालाघाट में स्थित लोधी लोग बोलते हैं और कोष्टी के बोलनेवाले छिन्दवाड़ा, चाँदा तथा भण्डारा के कोष्टी लोग हैं। इसीप्रकार छिन्दवाड़ा तथा बुलढाना के कुम्भार लोग कुम्भरी बोली बोलते हैं। नागपुरी हिन्दी नागपुर ज़िले में बोली जाती है।

बुन्देली में अधिक साहित्य नहीं है। आल्हखण्ड मूलतः बुन्देली में लिखा गया होगा; किन्तु इसका वर्तमान रूप फर्रुखाबाद के कलक्टर ने आज से पचीस वर्ष पूर्व अल्हैतों से गवाकर तैयार कराया था, जिसमें विभिन्न बोलियों का समावेश हो गया। केशव कृत रामचन्द्रिका में भी यत्र-तत्र बुन्देली शब्द मिलते हैं; किन्तु लाल-कृत छत्रप्रकाश की भाषा अधिकांश रूप में बुन्देली है।

आगे बुन्देली का संक्षिप्त कोष एवं व्याकरण दिया जाता है।

बुन्देली का शब्दकोष

बुन्देली में अनेक ऐसे शब्द प्रचलित हैं, जिनका हिन्दी में व्यवहार नहीं होता। कतिपय ऐसे शब्द नीचे दिये जाते हैं—

बाबा, बड़े बाबा = पितामह
दाई = पितामही
दादा, भाऊ, भैया, बापू = पिता
दीदी, ऐया, माई = माता
दादू = चाचा
ककिही = चाची (दादू की पत्नी)
भैया, दाऊ, दादा, नाना = बड़े भाई
भोभी, भौजी = बड़े भाई की पत्नी, भाभी
लहुरी, गुटुई, = छोटे भाई की पत्नी
दुलहन, लुगाई, मेहरिया, बसही, जुरूआ, गोटानी } = पत्नी
दीदी = बहन
बिटिया, बुइया, छौनी = पुत्री
लाला, दादू, छौना, बूआ = पुत्र
फुवा, बुवा = मौसी
जीजा = बहन का पति
पाहुन, नात = दामाद
सार सारो = साला, पत्नी का भाई
सद्दो, राउत, महूतौ = श्वसुर

भानिज, भैनें = बहन का पुत्र,
गरै, लोटिया = लोटा
गेडुवा, झारी, करोरा = टोंटीदार लोटा
थरिया, थार, टाठी = थाली
बटुवा = बटुवा, बटलोही
खोरा, खोरवा, खोरिया, वेलिया = कटोरा
कोपरी = परात
चम्बू = पीतल का कटोरा
कलसा = पीतल का घड़ा
तमेहरा = ताँबे का घड़ा
करहिया = कड़ाही
गंगाल = मिट्टी का घड़ा
पानडब्बा = पान का डब्बा
सनसी = सँड़सी

व्याकरण

उच्चारण—जब ए तथा ओ ह्रस्व-रूप में उच्चरित होते हैं तो वे क्रमशः 'इ' तथा 'उ' में परिणत हो जाते हैं। यथा—बेटी>बिटिया ; घोरो>घुरवा (बेटिया एवं घोरवा नहीं)। इसीप्रकार ऐ तथा औ, क्रमशः 'ए' तथा 'ओ' में परिणत हो जाते हैं। यथा—कैहौं>केहो ; जैहे>जेहे ; और>ओर। 'अ' के स्थान पर बुन्देली में कभी-कभी 'इ' भी व्यवहृत होता है। यथा—बरोबर (हिन्दी, बराबर)>बिरोबर।

व्यञ्जनों में ड़ का उच्चारण 'र' में परिणत हो जाता है। यथा—पड़ो>परो ; दौड़-के>दौर-के ; घुड़वा>घुरवा ; हकीगत<हकीक़त में क>ग। स्वर मध्यम 'ह', प्रायः लुप्त हो जाता है। यथा—कही>कयी, कै ; रहन् (हि०, रहना)>>रन् ; कहावे-के लाइक>कुआवे-के लाक ; पहिरा देओ>पैरा देओ। जब 'आ' के बाद 'ह' आता है तो उसके बाद का 'अ', 'उ' में परिणत हो जाता है। यथा—चाहत>चाउत ; रहि-के>रेइ-के ; रहती-हैं>रतीं-हैं ; रहा था>रओ तो ; बहुत>भउत। आदि स्थित 'य', 'ज' में तथा 'व', 'ब' में परिणत हो जाता है। यथा, यह>जो ; वह>बो।

शब्द-रूप—

बुन्देली में, संज्ञा के गुरु अथवा दीर्घान्त रूपों का प्रयोग प्रायः होता है। ऐसे पुँल्लिङ्ग शब्दों के अन्त में -वा तथा स्त्रीलिङ्ग के अन्त में -आ आता है। यथा—घोरो, घुरवा, घोड़ा ; बेटी, बिटिया। कभी-कभी संज्ञा के अतिरिक्त अथवा अनावश्यक रूप भी व्यवहृत होते हैं। ऐसे पद -अइया प्रत्ययान्त होते हैं। यथा—बिलइया, बिल्ली ; चिरइया, चिड़िया।

हिन्दी के पुँल्लिङ्ग आकारान्त शब्द बुन्देली में ओकारान्त हो जाते हैं। यथा—हि०, घोड़ा>बुन्देली, घोरो। इसके कतिपय अपवाद भी उपलब्ध होते हैं। यथा—दद्दा

(हिं० दादा); मोड़ा, लड़का ; कक्का (हिं० काका)। इसीप्रकार दीर्घान्त रूप भी आकारान्त होते हैं। यथा—घुरवा।

हिन्दी में जहाँ स्त्री प्रत्यय के रूप में -इन् प्रत्यय व्यवहृत होता है, वहाँ बुन्देली में -नी हो जाता है। यथा—हिं० तेलिन>बु०, तेलनी, हुरकिनी, वेश्या।

हिन्दी की भाँति ही बुन्देली संज्ञाओं के रूप भी बनते हैं। ओकारान्त पुँल्लिङ्ग, तद्भव शब्दों के रूप तिर्यक, एकवचन तथा कर्त्ता बहुवचन में, ए संयुक्त करने से सम्पन्न होते हैं। इसीप्रकार तिर्यक, बहुवचन के रूप में -अन प्रत्यय लगता है। नीचे बुन्देली घोरो शब्द के रूप दिये जाते हैं।

	ए० व०	ब० व०
कर्त्ता	घोरो	घोरे
तिर्यक	घोरे	घोरन

अन्य पुल्लिङ्ग संज्ञापद, एकवचन तथा कर्त्ता, बहुवचन में अपरिवर्तित रहते हैं; किन्तु तिर्यक बहुवचन में ये अन् प्रत्यय संयुक्त करते हैं। सामान्य नियम यही है, परन्तु कभी-कभी आकारान्त संज्ञापदों के कर्त्ता बहुवचन के रूप आँ अथवा अन् संयुक्त करके सम्पन्न होते हैं। यथा—हिन्ना, कर्त्ता, ब० व० हिन्नाँ (हिरणों) : कुत्ता, कर्त्ता तथा तिर्यक बहुवचन कुत्तन्।—इया प्रत्ययान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप कर्त्ता बहुवचन में -इयाँ तथा तिर्यक बहुवचन में -इयन् संयुक्त करने से सम्पन्न होते हैं। अन्य स्त्रीलिङ्ग, संज्ञापदों के कर्त्ता के बहुवचन के रूप -एँ, किन्तु यदि वे इकारान्त हैं तो ईं तथा तिर्यक बहुवचन के रूप -अनें या ईन संयुक्त करके सम्पन्न होते हैं। इनके उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

एकवचन		बहुवचन	
कर्त्ता	तिर्यक	कर्त्ता	तिर्यक
लोरो (छोटा)	लोरे	लोरे	लोरन्
दद्दा (पिता)	दद्दा	दद्दा	दद्दन्
कु-करम (कुकर्म)	कुकरम्	कुकरम्	कुकरमन्
चाकर (नौकर)	चाकर्	चाकर्	चाकरन्
साँड़	साँड़्	साँड़न्	साँड़न्
रहाइया (रहने वाला)	रहाइया	रहाइया	रहाईयन्
नगरिआ (उँगली)	नुगरिआ	नुगरिआँ	नुगरिअन्
हुरकिनी (वेश्या)	हुरकिनी	हुरकिनीं	हुरकिनिन्
गतकी (चीज, धमाका)	गतकी	गतकीं	गतकिन्

कभी-कभी हिन्दी के साधारण प्रयोग भी इसमें मिलते हैं। यथा—बातें; हेतिओं-के संग, मित्रों के साथ; पावों-मे, पैरों में आदि। इसीप्रकार घरे, भूखन् के मारे आदि रूप भी उल्लेखनीय हैं।

बुन्देली में भी अन्य नव्यआर्यभाषाओं की भाँति ही अनुसर्गों की सहायता से विभिन्न कारक सम्पन्न होते हैं। ये अनुसर्ग इस प्रकार हैं:—

कर्त्ता—ने, ने

कर्म-सम्प्रदान—कों, खो

अपादान—से, से खों
अधिकरण—मैं, में
लैं अथवा लाने (के लिए)

सम्बन्ध-को, तिर्यक, पुं० लि० के; स्त्री० लि०, कर्त्ता तथा तिर्यक की। सम्बन्धकारक के तिर्यक कभी-कभी खों की सहायता से भी सम्पन्न होते हैं। यथा— ताखों पीछे, उसके पीछे।

सम्बन्ध कारक की भाँति ही विशेषण के ओकारान्त तत्सम रूपों में भी परिवर्तन होते हैं। पुंल्लिंग तिर्यक के रूप ए तथा इसके स्त्रीलिंग के कर्त्ता एवं तिर्यक के रूप—ई संयुक्त करके सम्पन्न होते हैं। यथा—सबरो, सभी; तिर्यक पुं० लि० सबरे; स्त्री० लि० सबरी।

उत्तम तथा मध्यमपुरुष सर्वनामों के रूप नीचे दिये जाते हैं—

कारक	एकवचन		बहुवचन	
	उत्तम पुरुष	मध्यम पुरुष	उत्तम पुरुष	मध्यम पुरुष
कर्त्ता	मे, में, मै	तूँ, तै	हम	तुम
कर्तृ	मैं-नें	तैं-नें	×	×
सम्बन्ध	मो-को, मेरो मोरो, मोनो	तो-को, तेरो, तोरो, तोनो	हमको, हमारो हमाओ	तुम-को, तुमारो तुमाओ
तिर्यक	मोय, मोए, मो	तोय, तोए, तो	हम	तुम

वह (पुंल्लिङ्ग) के लिए बुन्देली में वो तथा ऊँ व्यवहृत होता है, किन्तु वह (स्त्री० लि०) वा हो जाता है। दोनों के लिए तिर्यक एकवचन में वा ऊ, ऊँ, अथवा वा रूप मिलते हैं। 'उसके लिए' बुन्देली में वाय तथा वाए हो जाता है। कर्त्ता बहुवचन में वे तथा तिर्यक बहुवचन के रूप तिन् तथा उन हो जाते हैं।

'यह' तथा 'कौन' दोनों के लिए, बुन्देली में जो (स्त्री० लि० जा); तिर्यक एकवचन जा तथा कर्त्ता बहुवचन जे रूप हैं। 'यह' के लिए यहाँ 'ए' भी प्रयुक्त होता है। इसके तिर्यक बहुवचन का रूप 'इन' हो जाता है।

हिन्दी 'आप' बुन्देली में इसी रूप में प्रयुक्त होता है किन्तु सम्प्रदान में यह अपन-खों हो जाता है। 'अपना' का रूप यहाँ अपनो हो जाता है। सम्बन्धकारक के अन्य सर्वनामों में नियमानुसार परिवर्तन होते हैं। यथा—मेरा=पुं० मेरो, स्त्री० लि० मेरी। इसीप्रकार अपनो, अपनी आदि। 'क्या' का रूप बुंदेली में का होता है। इसका तिर्यक रूप काये होता है। 'कोई' के लिए बुंदेली में कोऊ तथा तिर्यक में काऊ रूप होते हैं। 'कुछ' यहाँ 'कछू' रूप धारण कर लेता है तथा 'कितने' के लिए इसमें कतेक, कितेक अथवा 'के' रूप मिलते हैं।

क्रिया-रूप

(क) सहायकक्रिया—

वर्तमान—मैं हूँ—	एकवचन	बहुवचन
	१ हो, औंउँ या औंव	हैं आँय।
	२ है, आय	हो, आव।
	३. है, आय	है, आँय।

अतीत—मैं था :—

एकवचन		बहुवचन	
पुंल्लिंग	स्त्रीलिंग	पुंल्लिंग	स्त्रीलिंग
१. हतो तो	हती, ती	हते, ते	हतीं, तीं
२. हतो, तो	हती, ती	हते, ते	हतीं, तीं
३. हतो, तो	हती, ती	हते, ते	हतीं, तीं

भविष्यत्—मैं हूँगा :—हुहों या होऊँ-गो

सम्भाव्य—यह हो सकता है—हुए

हुआ—(पुं०) भओ (स्त्री०) भये (पु०, व० व० भये)

मैं नहीं हूँ—नइयाँ

वह नहीं है—नइया (इसी तरह दूसरे रूप भी होते हैं)

(ख) कर्तृपदी क्रियाएँ—न होना चाहिए—भएँ ना चाहिये।

मारना—(१) वर्तमान सम्भाव्य—मैं मार सकता हूँ—

	एकवचन	बहुवचन
	१. मारूँ	मारें
	२. मारे	मारो
	३. मारे	मारें
भविष्यत्—मैं मारूँगा—	१. मारिहों	मारिहें
	२. मारिहे	मारिहो
	३. मारिहे	मारिहें

क्रियाबोधक संज्ञा और क्रियावाचक विशेष्यपद (Infinitive and verbal noun)— मारन और मारबो

वर्तमान क्रियाबोधक विशेषण (Present Participle)— (तिर्यक) मारबे, मारें मारत

अतीत क्रियाबोधक विशेषण (Past Participle) मारो।

नोट—भविष्यत्काल में प्रायः 'इ' के स्थान पर 'अ' हो जाता है। यथा—मरहों भविष्यत् काल का दूसरा रूप वर्तमान संभावनार्थ के रूपों में गो जोड़ कर भी बनाया जाता है तथा लिंग और वचन के अनुसार गो के स्वर का परिवर्तन भी हो जाता है। यथा—

एकवचन		बहुवचन	
पुंल्लिंग	स्त्रीलिंग	पुंल्लिंग	स्त्रीलिंग
१. मारूँ-गो	मारूँ-गी	मारें-गे	मारें-गीं

इसीप्रकार मध्यम तथा अन्य पुरुषों के रूप भी सम्पन्न होते हैं।

वर्तमान निश्चयार्थ—मैं मार रहा हूँ—मारत-हों या मारतोंव। सहायक क्रिया का प्रायः लोप हो जाता है। इस तरह वर्तमान क्रिया बोधक (Present Participle) के रूपों का ही सभी पुरुषों और वचनों में प्रयोग होता है।

वर्तमान (Imperfect) मारत्-हतो या मारत्तो इत्यादि (मैं मार रहा था)। सहायक क्रिया में वचन, लिंग और पुरुष के अनुसार परिवर्तित हो जाते हैं। आज्ञार्थ-यह वर्तमान संभावनार्थ की भाँति ही होता है। केवल मध्यम पुरुष एकवचन का रूप उससे भिन्न (मार्) होता है।

सकर्मक क्रियाओं के अतीतकालिक रूप बुन्देली में भी हिन्दी की भाँति ही बनते हैं और कर्ताकारक के ने अनुसर्ग के साथ व्यवहृत होते हैं। यथा, मैं-ने मारो (मैंने मारा) और मैंने मारो-तो (मैंने मारा था)।

अपवाद—जिन क्रियाओं का मूलरूप आकारान्त होता है, उनके वर्तमान क्रिया-बोधक विशेषण (Present pasticipte) के रूप प्रायः आत् लगाकर बनते हैं। यथा, जात (जाते हुए) किन्तु कुछ क्रियाओं के रूपों में 'उ' का आगम चाउत (चाहते हुए) आउत (आते हुए) हो जाता है। ऐसे ही राउत (रहते हुए) भी होता है। देन और लेन के रूप क्रमशः देत और लेत होते हैं।

करन (करना) क्रिया के अतीतकालिक रूप स्वाभाविक ढंग से चलते हैं। यथा करो। 'देन' का भूतकालिक रूप दओ और 'लेन' का लओ और 'जान' का गओ होता है। किन्तु बहुवचन या स्त्रीलिंग में प्रयोग करते समय य का आगम हो जाता है। यथा दये दयी आदि। यह उल्लेखनीय है कि 'कन्' (कहना) क्रिया के अतीतकालिक रूपों का प्रयोग बात के अनुसार स्त्रीलिंग में ही होता है। यथा (उसने कही) कयी या 'कई'।

असमापिकाक्रिया (Conjunctive participle) के रूपों का अन्त के या के से होता है यथा—मार के या मार के (मारकर के)।

कभी-कभी कर्ता के साथ 'ने' अनुसर्ग का प्रयोग एक विचित्र ढंग से होता है। यथा—वाने-बैठो (वह बैठा) वरने लगी (उसने आरम्भ किया)।

बा-ने चाउत-तो (वह चाहता था) में भी ने के प्रयोग से यह प्रतीत होता है कि वर्तमान क्रियाबोधकविशेषण (Present participle) के साथ भी ने का प्रयोग मिलता है।

पूर्वीहिन्दी

पश्चिमीहिन्दी तथा बिहारी के बीच में पूर्वीहिन्दी का क्षेत्र है। अपनी स्थिति के कारण वास्तव में यह मध्य की बोली है। पूर्वी हिन्दी बोलियों का समूह है, यद्यपि इसकी एक बोली—अवधी—में विपुल साहित्य है।

भौगोलिक सीमा—पूर्वीहिन्दी के अन्तर्गत अवधी, बघेली तथा छत्तीसगढ़ी, इन तीन बोलियों का समावेश है। ये पाँच प्रान्तों—उत्तरप्रदेश, बघेलखंड, बुन्देलखंड, छोटा-नागपुर तथा मध्यप्रदेश में फैली हुई हैं। हरदोई तथा फैजाबाद के कुछ भाग को छोड़कर समस्त अवध पूर्वी हिन्दी के अन्तर्गत है। उत्तरप्रदेश में बनारस तथा बुन्देलखण्ड में स्थित हमीरपुर के बीच के क्षेत्र में इसका प्रसार है। समस्त बघेलखण्ड, बुन्देलखंड के उत्तर पश्चिम, मिर्जापुर जिले में, सोन नदी के दक्षिण के कुछ भाग, चन्द्भकार सरगुजा, कोरिया, जशपुर के कुछ भाग तथा छोटानागपुर में भी पूर्वीहिन्दी बोली जाती है। मध्यप्रदेश के जबलपुर, मण्डला तथा छत्तीसगढ के जिले भी पूर्वीहिन्दी की भौगोलिक सीमा के अन्तर्गत आते हैं।

बोलियाँ—पूर्वीहिन्दी की तीनों बोलियों, अवधी बघेली तथा छत्तीसगढ़ी में पूर्ण समता है। वास्तव में बघेली और अवधी में बहुत कम अन्तर है और एक दृष्टि से इसको पृथक् रखना भी उपयुक्त नहीं है किन्तु जार्ज ग्रियर्सन ने जनता में प्रचलित भावना का ध्यान रखकर ही इसे पृथक् बोली के रूप में लिंग्विस्टिक सर्वे में स्थान दिया है। मराठी और उड़िया के प्रभाव के कारण छत्तीसगढ़ी की स्थिति अवश्य पृथक् है। परन्तु अवधी के साथ तो उसका भी घनिष्ट सम्बन्ध स्पष्ट है। पूर्वीहिन्दी की अवधी तथा बघेली बोलियाँ तो उत्तरप्रदेश, बुंदेलखंड, बघेलखंड, चन्दभकार, जबलपुर तथा मंडला तक फैली हुई हैं। मध्यप्रदेश के दक्खिनी तथा पश्चिमी जि़लों में भी कुछ जातियाँ अवधी एवं बघेली बोलियाँ बोलती हैं। अवधी और बघेली की सीमाओं को पृथक् करनेवाली वस्तुतः यमुना नदी है जो फतेहपुर और बाँदा जि़ले में होते हुए प्रयाग में गंगा से जाकर मिल जाती है। यह सीमा बहुत ठीक नहीं है; क्योंकि फतेहपुर में यमुना के उत्तरी किनारे पर तिरहारी बोली बोली जाती है जिसमें बघेली का सम्मिश्रण है, और इलाहाबाद के दक्षिण पूर्व की बोली यद्यपि बघेली कहलाती है तथापि उसमें अवधी एवं बघेली का सम्मिश्रण है। पूर्वीहिन्दी का शेषभाग छत्तीसगढ़ी का क्षेत्र है।

छत्तीसगढ़ी उदयपुर, कोरिया, सरगुजा तथा जशपुर रियासत के कुछ भाग छोटानागपुर एवं छत्तीसगढ़ जिले के अधिकांश भाग में बोली जाती है।

पूर्वी हिन्दी एक प्रकार से नेपाल की तराई से लेकर मध्यप्रदेश के बस्तर स्टेट तक की बोली है। यह ७५० मील की लम्बाई एवं २२५ मील की चौड़ाई तथा १८७५०० वर्गमील के क्षेत्र में बोली जाती है। इसके अतिरिक्त बिहार के मगही तथा मैथिली क्षेत्रों के मुसलमान भी पूर्वीहिन्दी की अवधी बोली बोलते हैं। ग्रियर्सन ने इसे जोलहा बोली कहा है। पूर्वी हिन्दी बोलनेवालों की संख्या ३ करोड़ के लगभग है।

पूर्वीहिन्दी की उत्पत्ति—पूर्वीहिन्दी की उत्पत्ति अर्द्धमागधी बोलचाल अपभ्रंश से हुई है। प्राचीनकाल में उत्तरी भारत मे शौरसेनी तथा मागधी, दो प्राकृतें, प्रचलित थीं। इनमें शौरसेनी का मुख्य केन्द्र मध्यदेश स्थित मथुरा तथा मागधी का केन्द्र पटना के निकट था। वस्तुतः शौरसेनी तथा मागधी के बीच जो प्राकृत प्रचलित थी, उसे अर्द्धमागधी प्राकृत के नाम से अभिहित किया जाता था; क्योंकि इसमें शौरसेनी तथा मागधी, दोनों के लक्षण विद्यमान थे। कालक्रम से इस क्षेत्र में अर्द्धमागधी अपभ्रंश उत्पन्न हुआ जिससे पूर्वीहिन्दी की उत्पत्ति हुई।

पूर्वीहिन्दी की भाषागत सीमा—पूर्वीहिन्दी के उत्तर में पहाड़ी भाषाएँ, विशेषतया नेपाली बोली जाती है। इसके पश्चिम में पश्चिमी हिन्दी की दो बोलियाँ, कन्नौजी एवं बुन्देलखण्डी स्थित हैं। इसके पूरब में पश्चिमी भोजपुरी तथा नगपुरिया बोलियाँ बोली जाती हैं। इसकी दक्षिणी सीमा पर मराठी बोली जाती है। इस प्रकार पूर्वीहिन्दी दो ओर शौरसेनी से और एक ओर मागधी से घिरी हुई है।

पूर्वी तथा पश्चिमीहिन्दी में जो तात्त्विक अन्तर है, वह अन्यत्र दिया जा चुका है। यहाँ उसकी तीन बोलियों—अवधी, बघेली तथा छत्तीसगढ़ी—का विवरण उपस्थित किया जाता है।

अवधी

पूर्वीहिन्दी की सबसे महत्त्वपूर्ण बोली अवधी है। इसके नाम से ऐसा प्रतीत होता कि यह केवल अवध की बोली है, किन्तु वास्तव में बात ऐसी नहीं है। एक ओर यह हरदोई, खीरी तथा फैजाबाद के कुछ भाग में नहीं बोली जाती तो दूसरी ओर यह अवध के बाहर फतेहपुर, इलाहाबाद, केराकत तहसील छोड़कर जौनपुर, तथा मिर्जापुर के पश्चिमी भाग में बोली जाती है। इसके अन्य नाम पूर्वी तथा कोसली भी हैं। पूर्वी से वास्तव में पूरब की बोली से तात्पर्य है। कभी-कभी अवधी तथा भोजपुरी, दोनों को पूर्वी बोलियों के नाम से अभिहित किया जाता है, किन्तु वास्तव में पूर्वीशब्द पूर्वीहिन्दी के लिए ही प्रयुक्त होता है। कोसली से कोसल राज्य की भाषा से तात्पर्य है और यदि इस प्राचीन नाम को स्वीकार कर लिया जाय तो छत्तीसगढ़ी भाषा भी इसके अन्तर्गत आ जायेगी, किन्तु इधर तुलसीकृत 'रामचरितमानस' के कारण 'अवध' शब्द इतना अधिक प्रचलित हो गया है कि इस प्रदेश की बोली के लिए अवधी नाम सर्वथा उपयुक्त है। अवधी के स्थान पर कभी-कभी बैसवाड़ी शब्द भी व्यवहृत होता है [देखो, लिंग्विस्टिक सर्वे भाग ६, पृ० ६] किन्तु बैसवाड़ी तो अवधी के अन्तर्गत एक सीमित क्षेत्र की बोली है। वास्तव में बैस राजपूतों की प्रधानता के कारण उन्नाव, लखनऊ, रायबरेली तथा फतेहपुर के कुछ भाग को बैसवाड़ा कहते हैं और बैसवाड़ी इसी क्षेत्र की बोली है।

बैसवाड़ी, अवधी की अपेक्षा कर्णकटु बोली है। इसमें 'ए' का उच्चारण 'य्', 'ओ' का उच्चारण 'व' एवं ए के उच्चारण 'या' तथा ओ के उच्चारण 'वा' में परिणत हो जाते हैं।

अवधी की भाषागत सीमाएँ—अवधी के पश्चिम में, पश्चिमीहिन्दी की दो बोलियाँ—कनौजी और बुन्देली हैं और इसके पूरब में भोजपुरी का क्षेत्र है। कनौजी तथा बुन्देली से अवधी की तुलना करने पर निम्नलिखित भिन्नताएँ मिलती हैं:—

(१) पश्चिमीहिन्दी की दोनों बोलियों कनौजी तथा बुन्देली में कर्त्ता का ने अनुसर्ग वर्तमान है; किन्तु अवधी में इसका सर्वथा अभाव है।

(२) कनौजी तथा बुन्देली के संज्ञा, विशेषण तथा भूतकालिक कृदन्त पदों में—ओ तथा—औ प्रत्यय लगते हैं; किन्तु अवधी में—आ प्रत्यय ही व्यवहृत होता है।

अवधी तथा भोजपुरी से तुलना करने पर निम्नलिखित भिन्नताएँ मिलती हैं—

(१) पश्चिमी भोजपुरी के वर्त्तमानकाल में—ला प्रत्यय लगता है; किन्तु अवधी में—ला वाले रूपों का सर्वथा अभाव है।

(२) भोजपुरी के भूतकाल में—अल्,—इल् प्रत्यय-लगते हैं; किन्तु अवधी में इनका अभाव है।

(३) भोजपुरी (शाहाबाद की बोली) में अपादान का अनुसर्ग—ले है; किन्तु अवधी में यह से है।

ऊपर की विशेषताओं को ध्यान में रखकर अवधी की सीमा सरलतापूर्वक निर्धारित की जा सकती है।

पश्चिम में ओकारान्त रूप (औकारान्त तथा ओकारान्त रूप पश्चिमीहिन्दी की कनौजी तथा ब्रज बोलियों की विशेषता है) खीरी जिला स्थित गोला गोकर्ण नाथ से प्रारम्भ

हो जाते हैं। यदि एक सीधी रेखा गोला गोकर्णनाथ से सीतापुर ज़िले के नेरी स्थान तक खींची जाय तो यह कनौजी और अवधी की सीमा होगी। नेरी से गोमती नदी अवधी की दक्षिणी-पश्चिमी सीमा बनाती हुई, उस स्थान तक चली जाती है जहाँ वह हरदोई ज़िले को लखनऊ से पृथक करती है। यहाँ से दक्षिण-पश्चिम की ओर लखनऊ, हरदोई तथा उन्नाव ज़िलों को सीमा से होती हुई एक रेखा वहाँ तक खींची जा सकती है जहाँ उन्नाव की सीमा समाप्त हो जाती है। यहाँ से कानपुर तो पश्चिमीहिन्दी के क्षेत्र में है और उन्नाव, फतेहपुर तथा इलाहाबाद ज़िले, अवधी के अन्तर्गत आते हैं।

लिंग्विस्टिक सर्वे के भाग ९, पृष्ट १३२ से १२९ तक में तिरहारी बोली के नमूने दिए गए हैं। इनमें से कुछ तो बुन्देली के अन्तर्गत आते हैं; किन्तु शेष अवधी के निकट हैं। उदाहरण स्वरूप लि० स० के पृ० १३३ पर, २८ नं० का उदाहरण बाँदा की [बघेली] तिरहारी बोली का दिया गया है। यह इस प्रकार है—

कौनें उँ मड़ई-के दुइ गद्याल रहैं। उन अपने. बाप-तन कहिन कि अरे मोरे बाप तैं हमरे हीसन-का माल टाल हमै बाँटि दे। तब मड़ै-ने आप सब लैया पुँजिया द्वानौं गद्यालन- का बाँटि दिहिस।

ऊपर के उदाहरण में अवधी 'गदेल' के लिए 'गद्याल' शब्द उल्लेखनीय है। 'मड़ै-ने' में पश्चिमी हिन्दी के कर्त्ता कारक चिह्न ने वर्तमान है किन्तु बाँटि दिहिस क्रिया-पद विशुद्ध अवधी का है।

लिंग्विस्टिक सर्वे के पृ० १३८ पर बघेली तिरहारी बोली का नमूना दिया गया है। इसके आरम्भ के कतिपय वाक्य नीचे उद्धृत किए जाते हैं—

याक मणई-के दुइ बेंटवा रहैं। उन-माँ लहुरवा बेंटवा अपने बाप-ते कहसि जौन म्वार हीसा होय तौन बाँटि-द्याव। औ थोरे दिनन-माँ लहुरवा बेंटवा आपनि सब जमा बटुरियाय-कैं दूरी परद्यासै चला गवा औ हुाँ आपन सब जमा कुचाल माँ बहाय दिहिसि।

ऊपर की तिरहारी बोली का नमूना विशुद्ध अवधी का है। हाँ, इसमें, बैसवाड़ी के प्रभाव से 'ए'; 'य' में अवश्य परिणत हो गया है।

लिंग्वैस्टिक सर्वे के पृ० १४० पर, हमीरपुर की बघेली तिरहारी बोली का नमूना दिया गया है। इसके भी कतिपय वाक्य नीचे उद्धृत किए जाते हैं—

उई मनई के दुइ लाल रहैं। उई-माँ-ते छुटका-ने दादा-से कहिस कि बापू धन-माँ-से-जो मोर होइ सो मुँह-का दैं ववा। वह-ने वह-का आपन धन बाँट दीन। बहुत दिन न गै-रहैं कि लहुरवा लाला बहुत कुछ जोर-कें परदेस चलो-गा।

ऊपर के उदाहरण में कई बातें उल्लेखनीय हैं। इसमें बुन्देली का अधिक सम्मिश्रण है। हमीरपुर की तिरहारी में बघेली अथवा बुन्देली के क्रियापद, बोलने वालों के इच्छानुसार आते हैं। उदाहरण स्वरूप 'छुटकवा-ने कहिस' बघेली वाक्य है; किन्तु वह-ने बाँट दीन, वस्तुतः बुन्देली का वाक्य है। इसमें पश्चिमी हिन्दी का कर्त्ता का अनुसर्ग-ने वर्तमान है; किन्तु इसमें अवधी के क्रियापद भी वर्तमान हैं।

गहोरा बोली

यमुना के दक्षिणी किनारे के क्षेत्र को छोड़कर बाँदा जिले के पूर्वी भाग में, बागैं नदी तक जो बोली बोली जाती है, वह 'गहोरा' कहलाती है। यह तिरहारी से बहुत मिलती जुलती है, अन्तर केवल इतना ही है कि इसमें उचारा (= न) शब्द बुन्देली का है। इसकी दो उपभाषाएँ हैं—(१) पथा (२) अन्तर्पथा। इनमें से पहली तो दक्षिण पूर्व में तथा दूसरी बाँदा के दक्षिण में बोली जाती है। बाँदा जिले की गहोरा बोली का नमूना, लिंग्वस्टिक सर्वे के पृष्ठ १५० पर दिया गया है। इसका किंचित् अंश नीचे उद्धृत किया जाता है—

कौनो मड़ई-के दुइ लरिका रहैं। उइँ लरिका अपने बाप-से कहिन कि अरे बाप तैं हमरे हींसा कै जजाति हम-का बाँट दे। तबै बाप आपन जजाति दोनहुँन लरिकन-का बाँट दिहिस। औ थोरे दिनन-माँ चुनकउना वैटौना सब द्यारा बाँटुर कै लिहिस औ बहुत दूरी परग्यास-का निकरि गा।

ऊपर की गहोरा बोली का नमूना वस्तुतः विशुद्ध अवधी का है।

जूड़र

यह बाँदा जिले की दूसरी बोली है। इसके बोलनेवालों की संख्या सवा लाख के लगभग है। यह केन तथा बागैं नदी के बीच की बोली है। गहोरा अथवा तिरहारी की अपेक्षा इसमें बुन्देली का अधिक सम्मिश्रण है; किन्तु कालिंजर के निकट जो बोली प्रचलित है, उसकी अपेक्षा कम ही है। इसके अन्तर्गत निम्नलिखित तीन बोलियों का समावेश है—

(१) कुण्ड्री—यह बाँदा जिले के उत्तर-पश्चिम में बोली जाती है।

(२) बन्नावल—यह बाँदा जिले के दक्षिण पश्चिम की बोली है।

(३) अघर—यह बाँदा जिले के मध्य की बोली है।

जूड़र का एक उदाहरण लिग्वस्टिक सर्वे के पृ० १२३ पर दिया गया है। उससे कुछ अंश नीचे उद्धृत किए जाते हैं—

कौनेउ मँड़ई-के दुई बेंटवा रहैं। जिन्हन-ने अपने बाप-से कहो कि अरे बाप मोरे हींसा-का द्यारा मोंही दै-दे। तब बाप आपन द्यारा लड़कन-का बाँटि दीन्हेंसि। थोड़े दिनन-मा छोट बेटवा अपने हींसा-का सब द्यारा डाँड़ी बाँटुर कर-कें बहुत दूरी परदेसै निकरी-गा। वहाँ जाय-कै सब आपन द्यारा उठाय-डारेंसि। जब सब वहि-का रुपया उठि-गा और जौने थासै गा-तै हाँ बड़ा भारी अकाल परि-गा और वहि-का रोज-के खाँय खरिन्न-कैं तंगई होंइ लागि तब वा वा थास-के एक रहैया-के हाँ गा। वा रहैया-ने अपने खेतन-माँ सोरी चरावे-का पठै दीन्हेंसि।

ऊपर के उदाहरण में "जिन्हन-ने अपने बाप से कहो" वाक्य स्पष्टरूप से बुन्देली है; किन्तु उसके बाद के ही वाक्य में दीन्हेंसि क्रिया बघेली की है। इसी प्रकार गा—तै में—तै प्रत्यय बघेली का है यह तै = हिन्दी, था तथा बुन्देली तो। पुनः 'वा रहैया ने पठै दीन्हेंसि' वाक्य भी उल्लेखनीय है। इसमें दीन्हेंसि क्रिया स्पष्ट रूप से बघेली की है; किन्तु रहैया के साथ ने प्रत्युसर्ग बुन्देली प्रभाव के कारण है।

अवधी की विशेषताएँ—जैसा कि अन्यत्र कहा जा चुका है, अवधी का क्षेत्र पश्चिमीहिन्दी तथा बिहारी के बीच में है। संज्ञापद के तीन रूपों—लघु (ह्रस्व), दीर्घ तथा दीर्घतर में से, पश्चिमी हिन्दी (खड़ीबोली) में आकारान्त दीर्घ (घोड़ा), तथा अवधी एवं बिहारी में घोड़, घोड़ा, घोड़वा रूप मिलते है। प्रयाग की अवधी में एक और अतिरिक्त रूप घोड़ौना भी मिलता है, किन्तु बिहारी में इसक अभाव है।

संज्ञा तथा विशेषण के लिंग के सम्बन्ध में पश्चिमीहिन्दी में कड़े नियम हैं, अवधी के नियम ढीले हैं तथा बिहारी एक प्रकार से इन नियमों से मुक्त है।

व्यञ्जनान्त संज्ञापदों के कर्त्ता एकवचन के रूपों मे, अवधी में 'उ' लगता है—यथा, घरु, मनु, वनु आदि। पश्चिमीहिन्दी, विशेषतया खड़ीबोली अथवा हिन्दुस्तानी में इस 'उ' का अभाव है—यथा, घर्, मन्, वन् आदि। इसीप्रकार अवधी की कतिपय बोलियों मे कर्त्ता कारक, बहुवचन का रूप— ऐं लगाने से बनता है।

अनुसर्गों के सम्बन्ध में अवधी तथा पश्चिमीहिन्दी में सबसे बड़ा उल्लेखनीय अन्तर यह है कि इसमें कर्त्ताकारक के अनुसर्ग ने का सर्वथा अभाव है। इस विषय में अवधी तथा बिहारी में पूर्ण समता है। कर्म-सम्प्रदान का अनुसर्ग अवधी में का, कें, पश्चिमी हिन्दी में को, कौं तथा बिहारी में के है। अधिकरण का अनुसर्ग अवधी में 'मा' तथा पश्चिमी हिन्दी एवं बिहारी में 'में' है।

सर्वनामों के सम्बन्ध में अवधी में और विभिन्नता है। अवधी का सम्बन्धकारक का सर्वनाम तोर मोर, पश्चिमीहिन्दी में तेरा मेरा हो जाता है। इसी प्रकर अवधी हमार का तिर्यक रूप हमरे हो जाता है; किन्तु पश्चिमीहिन्दी में यह हमारे हो जाता है। सम्बन्ध तथा प्रश्नवाचक सर्वनामों के कर्त्ताकारक एकवचन के रूप जो को होते हैं; किन्तु बिहारी में थे जे के में परिणत हो जाते हैं।

वर्तमानकाल की सहायक क्रिया के रूप पश्चिमीहिन्दी में है आदि, अवधी में है, अहै, बाट्, बाटै तथा बिहारी में बाड़्, बाड़ै एवं आछ्, आछै मिलता है। अवधी के अतीतकाल के घटमाने के रूप (Imperfect Participle) में कोई प्रत्यय नहीं लगता, (केवल पश्चिमी अवधी में 'इ' प्रत्यय लगता है), किन्तु पश्चिमीहिन्दी में—आ (यथा, जाता, खाता) अथवा —उ (यथा, जातु, खातु) प्रत्यय लगते हैं। पश्चिमीहिन्दी के अतीतकाल में कोई प्रत्यय नहीं लगता, (यथा गया <गअ <गतः); किन्तु अवधी में- इसि,—इस् प्रत्यय लगते हैं—यथा, कहिसि, कहिस् आदि। पश्चिमी हिन्दी में भविष्यत में केवल ह—रूप व्यवहृत होते हैं; किन्तु अवधी ह तथा ब, दोनों रूप प्रयुक्त होते हैं।

अवधी की उत्पत्ति

पूर्वीहिन्दी की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अन्यत्र कहा जा चुका है। अब प्रश्न यह है कि अवधी की उत्पत्ति कैसे हुई? अवधी के पश्चिम में जो भाषाएँ तथा बोलियाँ प्रचलित हैं, उनका सम्बन्ध शौरसेनी प्राकृत तथा अपभ्रंश से है। इसीप्रकार इसके पूरब में मागधी बोलियों का क्षेत्र है। ग्रियर्सन ने इसी कारण पूर्वीहिन्दी की बोलियों का सम्बन्ध अर्द्ध-मागधी से निर्धारित किया। किन्तु अवधी की उत्पत्ति सम्बन्ध में डा० बाबूराम सक्सेना का

डा० ग्रियर्सन से किंचित् मतभेद है। अपने मत की पुष्टि में डा० सक्सेना ने निम्नलिखित तर्क दिए हैं*—

संस्कृत के 'त' एवँ 'थ', शौरसेनी में 'द' एवँ 'ध' में परिवर्तित हो गए हैं। महाराष्ट्री प्राकृत में तो महाप्राणवर्ण 'ह' में परिणत हो गए हैं और कहीं-कहीं उनका लोप भी हो गया है। पुनः शौरसेनी में कर्त्ता, एकवचन के रूप ओकारान्त एवं मागधी में एकारान्त होते हैं। शौरसेनी का दन्त्य 'स' मागधी में तालव्य 'श' में परिणत हो जाता है। इसीप्रकार शौरसेनी 'र', मागधी में 'ल' हो जाता है। अर्द्धमागधी में, मागधी 'श' एवँ 'ल', दोनों, का अभाव है। इस सम्बन्ध में वह शौरसेनी के समान है और इसमें 'स' एवं 'र' ही व्यवहृत होते हैं। किन्तु अर्द्धमागधी, कर्त्ताकारक, एकवचन के रूप 'एकारान्त' तथा 'ओकारान्त' दोनों होते हैं तथा इसमें देवो अथवा देवे, सो या से, एवं 'के' जे आदि रूप भी मिलते हैं।

जब हम अर्द्धमागधी की विशेषताओं से अवधी की तुलना करते हैं, तो इसकी कतिपय बोलियों में वर्तमान कृदन्तीय रूपों (Imperfect Participle) में—इ तथा पुराघटित कृदन्तीय (Perfect Participle) के एकवचन के रूपों में—ए मिलता है। इसके संज्ञापदों तथा अनुसर्गों में के को छोड़कर अन्यत्र-ए नहीं मिलता। इसके विपरीत यहाँ कर्त्ता के एकवचन के रूप में जो—उ मिलता है, वह स्पष्ट रूप से शौरसेनी ओ का रूपान्तर है। जहाँ तक इसमें इकारान्त एवँ एकारान्त पदों का सम्बन्ध है, वे पड़ोस की पश्चिमी बोलियों में भी वर्तमान हैं। इसके आगे डा० सक्सेना लिखते हैं—पूर्वीहिन्दी का सम्बन्ध जैन अर्द्धमागधी की अपेक्षा पाली से ही अधिक है; किन्तु वास्तव में पाली, जैन अर्द्धमागधी से पुरानी भाषा है। इधर जैन अर्द्धमागधी ग्रंथों का सम्पादन तो ईस्वी सन् की पांचवी शताब्दी में हुआ था। इससे हम यह कल्पना कर सकते हैं कि प्राचीन अर्द्ध-मागधी, बाद की अर्द्धमागधी से भिन्न थी और इस प्राचीन अर्द्धमागधी से ही अवधी की उत्पत्ति हुई।

ऊपर अवधी की उत्पत्ति के विषय में डा० सक्सेना का मत दिया गया है। इसके सम्बन्ध में अनेक कठिनाइयाँ हैं। डा० सक्सेना के अनुमान के अनुसार पुरानी अर्द्धमागधी का स्वरूप बहुत कुछ पछाँही होगा; क्योंकि आधुनिक अर्द्धमागधी में जितना मागधी पन है, उतना भी अवधी में नहीं है। यही नहीं, डा० सक्सेना के अनुसार तो अवधी का सम्बन्ध, अर्द्धमागधी की अपेक्षा पाली से ही अधिक है। इधर पाली के सम्बन्ध में जो अनुसन्धान हुए हैं, उनसे यह स्पष्ट हो गया है कि इसके व्याकरण का ढाँचा मध्यदेश का है। इसके अतिरिक्त पाली तो वस्तुतः साहित्यिक भाषा हैं और अवधी की उत्पत्ति किसी-न-किसी बोल-चाल की भाषा से ही हुई होगी। अब प्रश्न है कि यह कौन भाषा थी? डा० सक्सेना के अनुसार यह पुरानी अर्द्धमागधी होगी। किन्तु इस सम्बन्ध में दूसरा प्रश्न यह यह है कि इस पुरानी अर्द्धमागधी का स्वरूप क्या था? सच बात तो यह कि बोलचाल के अर्द्धमागधी-अपभ्रंश के नमूने का आज सर्वथा अभाव है। तब पूर्वीहिन्दी (जिसके अन्तर्गत अवधी भी है) की उत्पत्ति के अनुसन्धान का एक ही साधन है और वह यह है कि इसकी विभिन्न

* सक्सेना—इवोलूशन आव अवधी—पृ० ६—८

(Infinitive) के कर्त्ता तथा तिर्यक् के रूपों में— अन् प्रत्यय लगता है। यथा— कहन् लगिस (वह कहने लगा), खान्-से ज्यादा (खाने से ज्यादा या अधिक), यह भी वस्तुतः छत्तीसगढ़ी का ही रूप है। असमापिकाक्रिया का चिह्न के तथा कर है। यथा—सुन-केर, सुनकर, देख-केर, देख कर आदि। यह बात विशेषरूप से उल्लेखनीय है कि आर्यपरिवार की समस्त भारतीय भाषाओं में असमापिका का सम्बन्ध, सम्बन्ध कारक से है। पृष्ठ १६० पर मंडला जिले की बघेली (गोंडवानी) का नमूना इस-प्रकार है—

कोई आदमी केर दो लरका रहे। उन-कर-में-से नान लरका अपन दादा-से कहिस हे दादा सम्पत-में-से जो मोर हिसा हो मो-ला दो। तब ऊ अपन सम्पत उन-के बाँट दे-दीइस। बहुत दिन नहीं बीतिस कि लहुरा बेटा सब कुछ जमा-कर-के दूर मुलुक चल दीइस और वुहाँ लुचाई-में दिन काटने-से अपन सब सम्पत उड़ाय डालिस।

अवधी तथा छत्तीसगढ़ी—अवधी के दक्षिण में पूर्वीहिन्दी की, दूसरी बोली, छत्तीसगढ़ी का क्षेत्र है। इसमें कई ऐसी विशेषताएँ हैं जो इसे अवधी से पृथक् करती हैं। संक्षेप में, ये नीचे दी जाती हैं—

(१) संज्ञा तथा सर्वनाम के बाद निश्चयार्थ—हर का प्रयोग। यथा—छोकरा-हर, छोटे-हर आदि।

(२) बहुवचन में—मन का प्रयोग। यथा— घेंटा-मन (सूअरों)

(३) कर्म—सम्प्रदान में परसर्ग का के साथ—ला का भी प्रयोग यथा—ओ-ला, उसके लिए अथवा उसको।

(४) करण कारक के परसर्ग से के साथ लें का प्रयोग। यथा—नोकर-ला कहिस, नौकर से कहा।

छत्तीसगढ़ी के सर्वनाम भी अवधी से भिन्न हैं और उसपर भोजपुरी का प्रभाव है।

अवधी के उत्तर में नेपाल राज्य है। इसका अधिकांश भाग जंगल तथा बंजर है। इस भाग में थारू लोगों के कहीं-कहीं गाँव हैं जो आदिवासी हैं। इधर कई मंडियाँ हैं जहाँ पीलीभीत, खीरी, बहराइच तथा गोंडा से व्यापारी आकर व्यापार करते हैं। वे नेपाली लोगों से कम्बल तथा ऊन खरीदते हैं तथा उनके हाथ तम्बाकू और गहने आदि बेंचते हैं। ये मंडियाँ मई से दिसम्बर तक बन्द रहती हैं, अतएव इधर अवधी तथा नेपाली का निकट का सम्पर्क नहीं हो पाता।

नेपाल की तराई में अवधी रुम्मनदेई (प्राचीन लुम्बिनी) तथा बुटवल में बोली जाती है; किन्तु गोरखपुर जिले में, नेपाल की तराई में स्थित ओ० टी० आर० के नौतनवा स्टेशन के आसपास भोजपुरी बोली जाती है।

अवधी की पूर्वी सीमा पर भोजपुरी है। पूरब में अवधी तथा गोंडा जिले की सीमा एक ही है। वहाँ से घाघरा नदी के साथ-साथ यह सीमा पूरब में टाँडा तक जाती है। यदि टाँडा से जौनपुर तक और वहाँ से मिर्जापुर तक एक सीधी रेखा खींची जाय तो यह अवधी की दक्षिणी-पूर्वी सीमा होगी। मिर्जापुर शहर के पश्चिम ओर कुछ मील की दूरी से ही अवधी आरम्भ हो जाती है। यहाँ से दक्षिण पूर्व में इलाहाबाद जिले की सीमा

तथा पूर्व में रीवां राज्य की सीमा वस्तुतः अवधी की पूर्वी सीमा है। मिर्जापुर के दक्षिणी पूर्वी त्रिभुजाकार (सोनपार के) क्षेत्र में भोजपुरी मिश्रित अवधी बोली जाती है। इस सोनपारी अवधी की दक्षिण ओर छत्तीसगढ़ी की सरगुजा बोली का क्षेत्र है।

अवधी का महत्त्व—अवधी भाषा भाषियों की संख्या सवा दो करोड़ के लगभग है। वस्तुतः यह जिस क्षेत्र की भाषा है; उसका भारतीय इतिहास में अत्यधिक महत्त्व है। प्राचीनकाल में यह प्रदेश कोसल नाम से प्रसिद्ध था और साकेत (वर्तमान अयोध्या) इसकी राजधानी थी। बौद्धकाल में भी यह जनपद अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था। बुद्ध ने अपने जीवन का अधिकांश भाग सावत्थी (गोंडा जिले में बलरामपुर के पास सहेट-महेट) तथा कोसल राज्य में व्यतीत किया था। प्रयाग अथवा इलाहाबाद भी अवधी क्षेत्र में ही है जिसका गुप्त, मुगल तथा ब्रिटिश काल में महत्त्वपूर्ण स्थान रहा। मुगलों के अन्तिम काल मे फैजाबाद तथा लखनऊ भी महत्त्वपूर्ण स्थान थे और अवध के शिया नवाब तो अपनी शान-शौकत तथा उच्च संस्कृति के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध थे। लखनऊ का महत्त्व आज भी अक्षुण्ण है।

अवधी के अन्तर्गत ही बघेली है जिसका केन्द्र रीवाँ राज्य है। यहाँ के राजा लोग केवल विद्या एवं कलानुरागी ही नहीं थे, अपितु वे कवि भी थे। भारत के संगीतज्ञों मे शिरोमणि तानसेन पहले रीवाँ के राजा रामचन्द्र सिंह के दरबार मे थे जहाँ से वे अकबर के यहाँ गये।

अवधी में प्रचुर साहित्य रचना हुई है। प्रेम-मार्गी सूफि कवियों—कुतुबन, मंझन, जायसी, नूर मुहम्मद, उस्मान—ने इसमें रचना की है। गो० तुलसीदास ने इसे रामचरित मानस की रचना से अलंकृत किया है। आजकल अवधी क्षेत्र की साहित्यिक भाषा हिन्दी है, किन्तु साधारण जनता पारस्परिक बातचीत में प्रायः अवधी का व्यवहार करती है। उधर बीच मे इसमे साहित्य-रचना का कार्य बन्द हो गया था, किन्तु इधर नवजागरण के साथ-साथ अवधी मे पुनः साहित्यिक रचना प्रारम्भ हुई है। ऐसे साहित्यिकों में पं० वंशीधर शुक्ल रमईकाका आदि प्रसिद्ध हैं।

अवधी की विभाषाएँ—डॉ० बाबूराम सक्सेना के अनुसार अवधी की तीन विभाषाएँ—पश्चिमी, केन्द्रीय तथा पूर्वी हैं। खीरी (लखीमपुर), सीतापुर, लखनऊ, उन्नाव तथा फतेहपुर की अवधी, पश्चिमी, बहराइच, बाराबंकी तथा रायबरेली की केन्द्रीय एवं गोंडा, फैजाबाद, सुल्तानपुर, प्रतापगढ़, इलाहाबाद, जौनपुर तथा मिर्जापुर की अवधी पूर्वी के अन्तर्गत आती हैं।

अवधी का संक्षिप्त व्याकरण आगे दिया जाता है—

१. संज्ञा

अवधी संज्ञाओं के तीन रूप—ह्रस्व, दीर्घ तथा अनावश्यक—मिलते हैं। ये इस प्रकार है—

ह्रस्व	दीर्घ	अनावश्यक
घोड़ (हिं०, घोडा)	घोड़वा	घोड़ौना
नारी (हिं०, स्त्री)	नरिया	नरौवा

बोलियों की विशेषताओं का अध्ययन कर बोलचाल की अर्द्धमागधी का आनुमानिक व्याकरण तैयार किया जाय।

अवधी की उसकी अन्य बोलियों से तुलना

अवधी तथा बघेली—भाषा-सम्बन्धी विशेषताओं की दृष्टि से अवधी तथा बघेली मे नाम मात्र का अन्तर है, अतएव अवधी से अलग बोली के रूप में इसे स्वीकार करने की आवश्यकता न थी, किन्तु बघेलखंड की जनता की भावना का आदर करने के लिए ही डा० ग्रियर्सन ने अपने लिंग्विस्टिक सर्वे में इसका पृथक् अस्तित्व स्वीकार किया। ग्रियर्सन के अनुसार अवधी तथा बघेली में निम्नलिखित अन्तर हैं—

(१) बघेली की अतीतकाल की क्रिया में—तै अथवा—तै संयुक्त किया जाता है; किन्तु अवधी में इसका अभाव है।

(२) अवधी के उत्तम तथा मध्यम पुरुष के भविष्यत्काल के रूप—ब संयुक्त करके सम्पन्न होते हैं; किन्तु बघेली में ये—ह जोड़कर बनाये जाते हैं। यथा—अवधी—देखवौं, किन्तु बघेली—देखिहौं।

(३) अवधी व बघेली में ब में परिणत हो जाता है। यथा—

अवधी—अवाज>बघेली अबाज

अवधी—जवाव>बघेली जवाब

ऊपर की विभिन्नताओं पर विचार करते हुए डा० बाबूराम सक्सेना लिखते है—*

"ते तथा तै वस्तुतः हता, हतै अथवा हती के लघुरूप हैं। इसप्रकार के लघुरूप केवल अवधी तथा छत्तीसगढी ही में नहीं मिलते, अपितु पश्चिमीहिन्दी की बोलियों में भी ये पाये जाते हैं। इसी प्रकार ह—भविष्यत् के रूप लखीमपुर, सीतापुर, लखनऊ तथा बाराबंकी की बोलियों में भी पाये जाते हैं। व का ब मे परिवर्तन भी अवधी की बोलियों में मिलता है, किन्तु इनके अतिरिक्त बघेली की निम्नलिखित दो विशेषताओं का अवधी मे प्रायः अभाव है—

(१) बघेली विशेषण-पदों के दीर्घान्त रूपों में—हा संयुक्त होता है। यथा—निकहा, अच्छा, भला। (भोजपुरी में निकहा तथा निकहन, दोनों, इसके लिए प्रयुक्त होते हैं)।

(२) आदरार्थ, आज्ञा का रूप देई (भोजपुरी मे यह देईं हो जाता है, यथा—रउवाँ देईं)।

ऐसा प्रतीत होता है कि ये विशेषताएँ अवधी में भोजपुरी से आई हैं।

ऊपर की विवेचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि अवधी तथा बघेली में नाममात्र का ही अन्तर है और बघेली को अवधी से पृथक् रखने की कोई आवश्यकता नहीं है।

अवधी तथा मण्डलाहा बोली—लिंग्विस्टिक सर्वे के पृ० १२८ पर गोंडवानी अथवा मण्डलाहा के सम्बन्ध में निम्नलिखित सामग्री उपलब्ध है—

मण्डला जिला वस्तुत. प्राचीन गढा मण्डला का मुख्य केन्द्र था। यह मध्यप्रदेश में स्थित प्राचीन गोंडवाना के चार राज्यों में से एक था। १६वीं शताब्दी में गोंड राजाओं

* डा० सक्सेना—इवोलूशन आव अवधी—पृ० ३

की अड़तालीसवीं पीढ़ी के संग्राम साह ने गढ़ा मंडला से चलकर बावन गढ़ों को जीता। ये गढ़ विन्ध्यप्रदेश में स्थित, भोपाल, सागर, दमोह, नर्मदा के काँठे में स्थित होशंगाबाद, नरसिंहपुर, जबलपुर तथा सतपुरा पर स्थित, मंडला तथा सिवनी में थे। आज भी मंडला की आबादी में गोंड तथा बैगा जातियों की ही संख्या अधिक है। मंडला की जनसंख्या साढ़े तीन लाख के लगभग है, जिनमें ढाई लाख व्यक्ति मंडलाहा बोली बोलते हैं, इसे वहाँ वाले गोंडवानी कहते हैं।

गोंडवानी वस्तुतः पूर्वीहिन्दी का ही एक रूप है। यह अन्य बोलियों की अपेक्षा बघेली के अधिक निकट है। अवधी से तुलना करने पर इसमें निम्नलिखित विशेषताएँ मिलती हैं—

(१) अतीतकालिक क्रिया के साथ—तै का प्रयोग।

(२) उत्तमपुरुष एकवचन में—ब-भविष्यत् की अपेक्षा ह-भविष्यत् का प्रयोग।

मंडला के पूरब बिलासपुर जिला है जहाँ छत्तीसगढ़ी बोली जाती है। इधर की बोली में छत्तीसगढ़ी तथा गोंडवानी का खूब सम्मिश्रण हुआ है; किन्तु छत्तीसगढ़ी बहुवचन के चिह्न-मन का इसमें सर्वथा अभाव है।

लिंग्विस्टिक सर्वे में मंडलाहा अथवा गोंडवानी के जो उदाहरण दिये गये हैं, उनमें व्याकरण सम्बन्धी निम्नलिखित विशेषताएँ उल्लेखनीय हैं—

कर्म तथा सम्प्रदान का अनुसर्ग—के, किन्तु इसमें छत्तीसगढ़ी का ला-अनुसर्ग भी मिलता है।

अधिकरण का अनुसर्ग—में, यह वास्तव में बुन्देली से आया है।

सम्बन्ध का अनुसर्ग—केर, किन्तु इसके स्त्रीलिङ्ग तथा तिर्यक्रूप नहीं होते। करण कारक में पूर्वीहिन्दी की बोलियों में—अन् आता है; यथा—भूखन, गोंडवानी में—ओं हो जाता है। यथा—भूखों।

इसमें सर्वनाम के निम्नलिखित रूप उल्लेखनीय है—तोय = तुम; इ-कर = इसका; उ-कर तथा ओ-कर = उसका; इसके सम्बन्ध के बहुवचन के रूप में अनुसर्ग संयुक्त करके तिर्यक् रूप सिद्ध होते हैं। यथा—उन-कर-में-से [उनमें से] इसमें अपने के लिए अपन तथा आपन, दोनों, का प्रयोग होता है। हिन्दी 'क्या' का रूप इसमें का तथा इसका तिर्यक् रूप काहिन होता है तथा हिन्दी 'कोई' अथवा 'किसी' के लिए इसमें कोई अथवा कोही प्रयुक्त होते हैं।

मंडलाहा में क्रिया के रूप इस प्रकार हैं—हूँ (मैं हूँ), हो (तुम हो), है (वह है)। ये तीनों क्रियापद वस्तुतः इसमें बुन्देली से आये हैं। वर्तमान का रूप डारथूँ (मैं डरता हूँ) वस्तुतः छत्तीसगढ़ी से आया है। भविष्यत्काल के रूपों जाहूँ (मैं जाऊँगा), तथा कहूँ (मैं कहूँगा), पर स्पष्टरूप से बघेली का प्रभाव है। अतीत के रूप इसमें टारों (टाला), करे (बनाया) दीइस (दिया) आदि मिलते हैं। पुराघटित (Perfect) के रूप इसमें करे-हों (किया है), है।

छत्तीसगढ़ी की भाँति ही इसमें अतीतकाल के कृदन्तीय रूप के अन्त में—ए आता है। यथा—करे (किया), गये (गया) आदि। इसके क्रियासूचक संज्ञाओं

एँहि तथा ओहि की वर्तनी क्रमशः यहि एवँ वहि भी मिलती है।
हिन्दी, 'क्या' के रूप अवधी मे का एवँ काव् मिलते हैं। इनके तिर्यक् रूप कयि, कइ तथा काहे मिलते हैं।
हिन्दी 'कोई' के रूप अवधी में केहू, केऊ, केँऊ, कौनो, कवनौ होते हैं। इनके तिर्यक् रूप केँऊ तथा केहू होते हैं।
हिन्दी 'कुछ' के रूप अवधी मे कुछ ही होते हैं; 'स्वयं' के रूप आपु तथा 'अपना' का रूप 'आपन्' होता है। इसका तिर्यक् रूप अपने होता है।

३ (क) सहायकक्रियाएँ

वर्तमान काल—मैं हूँ

	प्रथम रूप				द्वितीय रूप			
	एकवचन		बहुवचन		एकवचन		बहुवचन	
	पुँल्लिंग	स्त्रीलिंग	पुँल्लिंग	स्त्रीलिंग	पुँल्लिंग	स्त्रीलिंग	पुँल्लिंग	स्त्रीलिंग
१	बाट्येउँ	बाटिउँ	बाटी	बाटिन्	अहेउँ	अहिउँ	अही	अहिन्
२	बाटे, बाटस् बाटेस्, बाट्	बाटिस्	बाटेव्, बाट्यो, बाट्ये	बाटिव्	अहे, अहस्, अहसि, अहेस्	अहिस्	अहेव्, अह्यो, अह, अहें	अहिव्
३	बाटै, बाटइ	बाटई	बाटें	बाटीं	आ, अहै, है, अय्	अहई	अहीं अहईं	अहईं

अतीतकाल-मैं था आदि

	एकवचन		बहुवचन	
	पुंल्लिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग	पुंल्लिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग
१	रहेउँ	रहिउँ	रहे, रहा	रही
२	रहेस्, रहिस्	रहिस्	रहेउ, रहा	रहीं
३	रहेस्, रहिस रहा, रहै	रही	रहेन्, रहिन् रहे, रहइँ	रही

(ख) सकर्मक क्रिया

क्रिया सूचक संज्ञा—(Infinitive) देखब्।

कर्तृवाच्य, वर्तमान, कृदन्तीय रूप (Pres. Part. Act.) देखत्, देखित्, देखता।

कर्मवाच्य, अतीत कृदन्तीय रूप (Past Part. Pass.) देखा।

कर्मवाच्य भविष्यत्, कृदन्तीय रूप (Fut. Part. Pass.) देखब्।

असमापिका के कृदन्तीय रूप (Conjunctive Part.) देख् कै, -के।

अवधी वाक्य कर्तृ प्रधान होते हैं, हिन्दी की भाँति कर्म प्रधान नहीं।

शब्द रूप

एकवचन	कर्त्ता—	घोड़वा (हिं, घोड़ा)	घर्	नारी (स्त्री)
	तिर्यक्—	घोड़वा	घर् , घरहि घरै, घरे	नारी नारिहि
बहुवचन	कर्त्ता—	घोड़वें घोड़वने घोड़वन्	घरने घरन्	नारिन्
	तिर्यक्	—घोड़वन्	घरन्	नरिन्

करण एकवचन का रूप—अन् संयुक्त करके बनता है। यथा—भूखन्; भूख से।

कर्म सम्प्रदान—अनुसर्ग— का, कॉ, का,

सम्प्रदान— बाड़े,

करण-अपादान— से, सेनी, सेन्

सम्बन्ध—केर, कर, के, तिर्यक्— के, स्त्री॰ लिं॰ कै

अधिकरण— में, म, पर

विशेषण में भी कभी-कभी लिंग-परिवर्तन होता है। यथा—पुं॰ आपन, स्त्री॰ आपनि, पुं॰ ऐस्, स्त्री॰ ऐसी, पुं॰ ओकर (हिं, उसका), स्त्री॰ ओकरी।

२ सर्वनाम

	मैं	तू	आप	यह	वह	जो	सो	कौन
एकवचन कर्ता	मैं	तैं, तूँ	आपु	ई, यु	ऊ, वै	जे, जवन, जौन	से, तवन	के, कवन
तिर्यक्	मो	तो	आपु	ए, एँह, एँहि	ओ, ओह्, ओहि	जे	ते	के
सम्बन्ध	मोर	तोर		ए-कर, तिर्यक् (एँ-करे)	ओ-कर तिर्यक् (ओ-करे)	जे-कर, तिर्यक् (जेक रे)	ते-कर, तिर्यक् (तेक-रे)	केकर, तिर्यक् केक-रे)
बहुवचन कर्ता	हम	तुम	आप्	इन्, ए	ओन् उन्, ओ	जे	ते	के
तिर्यक्	हम् हमरे	तुम् तुमरे	आप	इन्	ओन्, उन्	जेन् जेन्ह्	तेन् तेन्ह्	केन् केन्ह्
सम्बन्ध	हमार् तिर्यक् (हमरे)	तुमार्, तिर्यक् (तुमरे) तोहार, तिर्यक् (तोहरे)	आप-कर्	इन्-कर् तिर्यक् (इन्करे)	ओन्-कर् तिर्यक् (ओन्करे)	जेन् कर् तिर्यक् (जेन-करे)	तेन्-कर् तिर्यक् (तेन् करे)	केन्-कर् तिर्यक् (केन् करे)

	सम्भाव्य वर्तमान (यदि मैं देखूँ आदि)		आज्ञा अथवा विधि क्रिया तुम देखो आदि	भविष्यत (मैं देखूँगा आदि)	
	एक वचन	बहु वचन		एक वचन	बहु वचन
१	देखौँ	देखो	×	देँखवूँ	देँखव
२	देख् , देखस्	देखउ, देखव्	ए० व० देख् , देखस् ब० व० देखा, देखौ, देखब आदरार्थ—देखज्	देँखबे, देखबेस्	देँखबो
३	देखइ	देखैं	×	देखे, देखिहै	देखिहैं

	अतीत, मैंने देखा आदि				सम्भाव्य अतीत (यदि) मैं देखा होता आदि			
	एक वचन		बहु वचन		एक वचन		बहु वचन	
	पुंल्लिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग	पुंल्लिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग	पुंल्लिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग	पुंल्लिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग
१	देखेउँ	देखिउँ	देखा, देखन् देखेन्	देखीं	देखतेउँ	देखतिउँ	देखित्	देखित्
२	देखेस्, देखिस्	देखिस् देखिसि	देखेउ देखा	देखीं	देखतेस् देखतिस्	देखतिस्	देखतेहु, देखतेउ	देखतिन्
३	देखेस् देखिस् देखिसि देखै	देखी देखिसि	देखेन्, देखिन् देखे, देखैं	देखीं, देखिनि	देखत्	देखित्	देखतेन् देखतिन्	देखतिन्

वर्तमान—मैं देखता हूँ आदि = देखत् अहेउँ आदि।
घटमान (अतीत)—मैं देखता था आदि = देखत् रहेउँ, आदि।
पुराघटित—मैंने देखा है आदि।

	एकवचन		बहुवचन	
	पुँल्लिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग	पुँल्लिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग
१	देखेउँ-हौं	देखिउँ-हौं	देखे-अहीं	देखे-अहीं
२	देखेस्-है देखिस्-है	देखिस्-है देखिस्-है	देखउ-हैं	देखिउ-हैं
३	देखेस्-है देखिस्-है	देखी है देखिसि-है	देखेन्-हैं देखिन्-हैं	देखिनि-है

अतीतकाल में अकर्मक सम्भाव्य का रूप रहेउँ की भाँति चलता है। अनियमित क्रिया रूप—'जाव' का अतीत कृदन्तीय रूप ग, गा, गै अथवा गय् होता है। स्त्रीलिंग मे इसका रूप गै हो जाता है। इसी प्रकार होब के रूप भ, भा, भय् अथवा भै (स्त्री० लिं० भै) अथवा भवा (स्त्री० लिं० भै) होते हैं। करब् (करना), देब, (देना), लेब् (लेना) आदि के कीन्ह्, दीन्ह्, तथा लीन्ह्, रूप होते हैं। इनके अतीतकाल के रूप किहिस्, (किया); दिहिस् (दिया) ; लिहिस् (लिया) होते है। स्वरान्त धातुओं में सन्ध्यक्षर रूप में 'व्' आता है, 'य् ' नहीं। इसी प्रकार बनावा रूप होता है, बनाया नहीं। आव् का अतीतकाल का रूप आय (वह आया) होता है। आकारान्त धातुओं के अतीत काल में न् प्रत्यय संयुक्त होता है—यथा दयान् (उसने दया किया ; रिसान्, (वह क्रुद्ध था)।

बघेली

बघेली वस्तुवः बघेलखंड की बोली है। इसका नामकरण बघेले राजपूतों के नामपर हुआ है जिनकी इधर प्रधानता है। इसका एक नाम रीवाँई भी है क्योंकि रीवाँ बघेलखण्ड का मुख्य स्थान है। बघेली छोटानागपुर के चन्द्भकार तथा रीवाँ के दक्षिण मंडला जिले में भी बोली जाती है। यह मिर्जापुर तथा जबलपुर के भी कुछ भाग में बोली जाती है। इसी प्रकार फतेहपुर, बाँदा तथा हमीरपुर भी उसी के अन्तर्गत हैं, किन्तु इधर की बघेली में पड़ोस की बोलियों का सम्मिश्रण हो जाता है। मंडला के दक्षिण-पश्चिम की बघेली भी वस्तुतः मिश्रित ही है।

राजनीतिक दृष्टि से बाँदा जिला बुन्देलखण्ड के अन्तर्गत है, इसके परिणाम स्वरूप कुछ लोग बाँदा की बोली बुन्देली ही मानते हैं। इस सम्बन्ध में यह बात उल्लेखनीय है कि बाँदा की बोली तथा बघेली के सादृश्य को प्रायः सभी स्वीकार करते हैं; किन्तु इसके साथ ही लोग भ्रमवश यह भी समझते हैं कि बुन्देली तथा बघेली में कोई अन्तर नहीं है और ये दोनों पर्यायवाची नाम हैं। यह भारी भ्रम है। वास्तव में बुन्देली तथा बघेली, दोनों सर्वथा पृथक बोलियाँ हैं और यद्यपि बाँदा जिला बुन्देलखण्ड के अन्तर्गत है किन्तु यहाँ की बोली बघेलखंडी ही है।

भाषागत सीमायें—बघेली के उत्तर में दक्षिणी-पश्चिमी इलाहाबाद की अवधी तथा मध्य मिर्ज़ापुर की पश्चिमी भोजपुरी बोली जाती है। इसके पूर्व में छोटानागपुर तथा विलासपुर की छत्तीसगढ़ी का क्षेत्र है। इसके दक्षिण में बालाघाट की मराठी तथा पश्चिम-दक्षिण में बुन्देली का क्षेत्र है। बघेली भाषा-भाषियों की संख्या ४० लाख से ऊपर है।

बघेली की मिश्रित बोलियाँ पश्चिम तथा दक्षिण में बोली जाती हैं। पश्चिम में मिश्रित बघेली फतेहपुर, बाँदा तथा हमीरपुर में बोली जाती है। इधर की भाषा में यद्यपि बघेली की ही प्रधानता है तथापि उसमें बुन्देली का भी सम्मिश्रण हुआ है। जब हम पश्चिम ओर बढ़ते हुए जालौन जिले में पहुँचते हैं तो वहाँ निभट्टा बोली, बोली जाती है। यह भी एक मिश्रित बोली है किन्तु इसमें बुन्देली की ही प्रधानता है। इधर की मिश्रित बोलियों के बोलने वालों की संख्या लगभग १ लाख है।

दक्षिण की मिश्रित बोली को मंडला जिले की विविध जातियाँ बोलती हैं। इसमें बघेली का मराठी तथा बुन्देली से सम्मिश्रण हुआ है। पश्चिम की मिश्रित बोलियों से इसमें यह अन्तर है कि यह किसी क्षेत्र विशेष में नहीं बोली जाती अपितु इसे विभिन्न जातियों के लोग ही बोलते हैं। इसके बोलने वालों की संख्या प्रायः एक लाख है।

आगे बघेली का संक्षिप्त व्याकरण दिया जाता है।

१. संज्ञा—इसके रूप निम्नलिखित हैं—

	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता	घ्वाड़, (घोड़ा)	घ्वाड़े, घ्वाड़ैं
तिर्यक	घ्वाड़	घ्वाड़न्

अनुसर्ग

कर्म-सम्प्रदान—का, कहा।

करण-अपादान—से, ते, तार।

सम्बन्ध—कर्

अधिकरण—म

इसमें कर्त्ता के अनुसर्ग ने का अभाव है तथा सम्बन्ध के अनुसर्ग में लिंग के अनुसार परिवर्तन नहीं होते। इसी प्रकार विशेषण के रूप भी स्त्रीलिंग तथा पुंल्लिंग में एक ही रहते हैं और उनमें परिवर्तन नहीं होता।

२ सर्वनाम

	मैं	तू	आप	स्वयं	यह	वह	जौन	तौन	कौन ?
एकवचन कर्त्ता	मँय्	तँय्	अपना	...	या	वह्	जौन् जऊनँय्	तौन् तऊनँय्	कऊन्
तिर्यक्	म्वहि, म्वाँ म्वारे	त्वहि त्वाँ त्वारे	अपना अपाने	...	यहि , या	वहि	जउनै, - ज्यहि, जेहि ज्या	तऊनै त्यहि, तेहि त्या	क्यहि, केहि, क्या
सम्बन्ध	म्वार्	त्वार्	...	...	ए, यहि-कर् आदि	वहि-कर् आदि	ज्यहि-कर् आदि	त्यहि कर् आदि	क्यहि-कर् आदि
बहुवचन कर्त्ता	हम्ह्	तुम्ह्	...	...	ए, एँन्ह्	ओ, उन्ह्	जेँन्ह्	तेँन्ह्	केँन्ह्
तिर्यक्	हम्ह् हम्हारे	तुन्ह् तुम्हारे	...	...	यन्, यन्ह्	उन्, उन्ह्	जेँन्ह् ज्यन् जहन्ह्	तेँन्ह् , त्यन् त्यन्ह्	क्यन् क्यन्ह्
सम्बन्ध	हम्हार्	तुम्हार्	...	...	यन्-कर् आदि	उन्-कर आदि	जेन्ह्-कर् आदि	तेँन्ह्-कर् आदि	केँन्ह्-कर् आदि

हिन्दी, 'क्या', बघेली में काह् होता है। इसके तिर्यक् रूप कई अथवा कयी होते हैं, 'कोई' इसमें कउनो तथा कोऊ हो जाता है। तिर्यक् में भी इसके रूप अपरिवर्तित ही रहते हैं। हिन्दी, 'कुछ' का रूप भी बघेली में अपरिवर्तित रहता है।

३. क्रिया (क) सहायकक्रियाएँ

	वर्त्तमान – मैं हूँ आदि		अतीत—मैं था आदि			
			प्रथम रूप		द्वितीय रूप	
	एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
१.	हूँ, आँ	है	रहेंउँ, रहये	रहेन्	......	तेँ
२.	है	हौ, अहेन्	रहा, रहे	रहेन्	ते	तें
३.	है, आ	हैं, अहेंन्, अहेँ, आँ	रहा	रहेन्	ते, तो, ता	तें

	वर्तमान सम्भाव्य (यदि) मैं होऊँ		भविष्यत् – मैं होउँगा		अतीत—मैं हुआ	
	एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
१.	होऊँ	होन्	होब्येउँ	होब्, होबै	भयोँ	भयेन्
२.	हास्	हाव्	होइहेस्	होवा	भयेस्	भयेन्
३.	हाय्	हाँय्	होई	होंयिहैं	भ	भयेन्

(ख) क्रियापद

सकर्मक क्रिया के अतीत के रूप कर्तृवाच्य में ही चलते हैं।

क्रियासूचक संज्ञा—देखब, देखना।

कृदन्तीय रूप—वर्तमान, देखत् (देखते हुए), अतीत—देख (देखा)।

असमापिका— देख - कै (देखकर)।

	वर्तमान सम्भाव्य यदि मैं देखूँ आदि		भविष्यत्-मैं देखूँगा आदि		आज्ञा अथवा विधिक्रिया तुम देखो आदि
	एक वचन	बहु वचन	एक वचन	बहु वचन	
१	देखौं	देखन्	देंख्न्येउँ	देखिबं, देखब् देंखबै	
२	देखस्	देखन्, देखब्	देंखिहेंस् देखिबेस्	देंखिबा	देखस्, देखब
३	देखि	देखाँय्	देखी	देखिहैं	

	अतीत—मैंने देखा आदि				अतीत (सम्भाव्य) (यदि) मैं देखा होता			
	एक वचन		बहु वचन		एक वचन		बहु वचन	
	पुँल्लिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग	पुँल्लिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग	पुँल्लिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग	पुँल्लिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग
१	देखेँहुँ	देखी	देखेँन्	देखिन्	देँखत्येहुँ	देँखत्यिहुँ देँखित्यौँ	देखत्येन्	देँखत्यिन्
२	देखेँह	देखिह्	देखेँह्	देँखिह्	देँखत्येह्	देँखत्यिह्	देँखत्येँह्	देँखत्यिहि
३	देखी	देखी	देखेन्	देखिन्	देँखत्येइ	देँखत्यिइ	देँखत्येन्	देँखत्यिन्

ऊपर के रूपों में 'त्य्' के स्थान पर 'त्' का प्रयोग होता है।

	निश्चित वर्तमान-मैं देख रहा हूँ आदि		घटमान अतीत-मैं देख रहा था आदि	
	एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
१	देखताँ	देखत्ये - हैँ	देखत् - रहेउँ	देखत् { - तेँ / - रहेन्
२	देखते - है	देखत हेन्	देखत् { - तेँ / - रहा	देखत् { - तेँ / - रहेन्
३	देखता	देखताँ	देखत् { - ते, -ता / - रहा	देखत् { - तैं / - रहेन्

	मैंने देखा है आदि		मैंने देखा था आदि	
	एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
१.	देख हौं	देख-हैं	देखे-हुँ { -ते,-ता —रहा	देखेन् { —तें —रहें न्
२.	देखे स-है	देखे देखेन् } —हन्	देखेह् { -ते,-ता —रहा	देखेंह् { —तें — रहें न्
३.	देखे स-है	देखे देखन् } —अहेन्	देखी { —ते,-ता —रहा	देखें न् { —तें रहें न्

अतीतकाल में अकर्मक क्रियाओं का रूप—भयों की भाँति ही चलता है।

ग. अनियमित क्रियारूप

होव् , (होना) का अतीत कृदन्तीय रूप 'भ' हो जाता है। इसीप्रकार जाव (जाना) का अतीत कृदन्तीयरूप 'ग' हो जाता है। धातुओं के अन्त का ए, या, में परिवर्तित हो जाता है और पुनः उनके रूप होव् की तरह चलते हैं। दयात् 'देता हुआ' तथा धावा, 'तुम होगे' ; होता है। देय (देना) लेय (लेना) तथा करव् (करना) के अतीत कृदन्तीय के रूप दीन्ह्, लीन्ह् तथा कीन्ह् होते हैं।

छत्तीसगढ़ी, लरिया या खल्टाही

छत्तीसगढ़ी के लिए ऊपर के दो अन्य नाम भी प्रयुक्त होते हैं। यह वस्तुतः छत्तीसगढ़ की भाषा है। बिलासपुर जिले का एक भाग भी इसी के अन्तर्गत आता है और इसे पड़ोस के बालाघाट जिले में खलोटी कहते हैं। छत्तीसगढ़ी बालाघाट के भी कुछ भागों में बोली जाती है और वहाँ पर खल्टाही अथवा खलोटी की भाषा कहलाती है। छत्तीसगढ़ के मैदान के पूरब में पूर्वी सम्भलपुर का उड़ीसा का प्रदेश है। वहाँ के लोग अपने पश्चिम में स्थित, छत्तीसगढ प्रदेश को लरिया नाम से पुकारते हैं और इस प्रकार इधर छत्तीसगढ़ी का नाम लरिया पड़ जाता है।

क्षेत्र—छत्तीसगढ़ के अन्तर्गत, मध्यप्रदेश के, रायपुर तथा बिलासपुर जिले आते हैं। यहाँ तथा सम्भलपुर जिले के पश्चिमी भाग में, विशुद्ध छत्तीसगढ़ी बोली जाती है। इधर रायपुर के दक्षिणी पश्चिमी भाग मे उड़िया की एक विभाषा प्रचलित है। पुनः काँकेर, नन्दगाँव, खैरागढ, छुइखदान तथा कवर्धा एवं चाँदा जिले के उत्तर-पूरब मे तथा बालाघाट के पूरब में भी शुद्ध छत्तीसगढ़ी ही प्रचलित है। बिलासपुर के पूरब मे, यह सक्ती तथा रायगढ़ एवं सारंगगढ के कुछ भागों में भी प्रचलित है। इनके उत्तर तथा पूरब में कोरिया, सरगुजा, उदयपुर तथा जशपुर राज्य है। इनमें से प्रथम तीन में तो छत्तीसगढ़ी

की ही एक विभाषा सरगुजिया प्रचलित है। जशपुर के पश्चिमी भाग में भी वस्तुतः यही प्रचलित है। विशुद्ध छत्तीसगढ़ी बोलनेवालों की संख्या ४० लाख के लगभग है।

छत्तीसगढ़ी वस्तुतः पड़ोस के उड़िया प्रदेश एवं वस्तर में भी बोली जाती है। वस्तर की भाषा वस्तुतः हलबी है। डा० ग्रियर्सन के अनुसार, यह मराठी की ही एक उपभाषा है; किन्तु डा० सुनीति कुमार चटर्जी, ग्रियर्सन के इस मत में सहमत नहीं हैं। हलबी में, यद्यपि मराठी अनुसर्गों का प्रयोग होता है, तथापि डा० चटर्जी के अनुसार यह मागधी की ही एक उपभाषा है।

इसके अतिरिक्त इधर की अनार्य जातियाँ भी छत्तीसगढ़ी बोलती हैं। उनकी भाषा में छत्तीसगढ़ी तथा उनकी मातृभाषा का पर्याप्त सम्मिश्रण रहता है। आगे छत्तीसगढ़ी का संक्षिप्त व्याकरण दिया जाता है।

१. संज्ञा-बहुवचन—संज्ञा के बहुवचन के रूप—मन संयुक्त करके सम्पन्न होते हैं; किन्तु कभी-कभी इसका व्यवहार नहीं भी होता है। यथा— मनुख, मनुष्य, किन्तु मनुख मन, मनुष्यों। इसी प्रकार सब् सबो, सब्बों, जमा, अथवा जम्मा शब्द भी कभी-कभी मनुष्य के साथ संयुक्त होते हैं और कभी-कभी नहीं होते हैं। यथा— जम्मा पुतो-मन् , पुत्रवधू। बहुवचन का एक प्राचीन रूप— अन् प्रत्ययान्त भी मिलता है। यथा—बइला, बैल ; बहुवचन—बइलन, बैलों। निश्चयार्थक में संज्ञा के साथ— हर शब्द भी जोड़ दिया जाता है। यथा— गर्, (गर्दन) गर-हर (निश्चयार्थक) शब्दरूप—संज्ञा के साथ निम्नलिखित अनुसर्गों का प्रयोग होता है—

कर्म-सम्प्रदान— का, ला, बर।

करण-अपादान—ले, से।

सम्बन्ध—के

अधिकरण— माँ।

सम्बन्ध के अनुसर्ग में के लिंग के अनुसार परिवर्तन नहीं होता। इसके उदाहरण हैं—लइका, (लड़का), लइका-का (लड़के के लिए), लइका के (लड़के का); लइका-मन-के (लड़कों का) यहाँ भी—अन् प्रत्यय से करण का रूप सम्पन्न होता है। यथा—भूखन (भूख से)। आकारान्त विशेषण के रूप स्त्रीलिंग में इकारान्त हो जाते हैं। यथा—छोटका बाबू, (छोटा लड़का), छोटकी नोनी (छोटी लड़की)। अन्य विशेषण पदों में लिंग के अनुसार परिवर्तन नहीं होता।

२. सर्वनाम

	मैं	तू	तुम (आदरार्थ)	स्वयं (अपने)	यह	वह
एकवचन कर्त्ता	में, मैं	तें, तैं	तु, तुह	अपन्	ये, इया	वो
तिर्यक्	मो, मोर्	तो, तोर्	तुह्, तुहार्	अपन्	ये, ये-कर्	वो, वो-कर्
सम्बन्ध	मोर्	तोर्	तुहार्	अपन्	ये-के, ये-कर्	वो-के, वो-कर्
बहुवचन कर्त्ता	हम्, हम्मन्	तुम, तुम्मन्	तुह्-मन्	अपन् अपन्	इन्, ये-मन्	उन्, वो-मन्
तिर्यक्	हम्, हमार्	तुम्ह्, तुम्हार्	तुह्-मन्	अपन् अपन्	इन् इन्ह्	उन्, उन्ह
सम्बन्ध	हमार्	तुम्हार्	तुहार-मन्	अपन् अपन्	इन्ह्-के इन्ह्-कर्	उन्ह्-के उन्ह-कर्

	जो	तो, तौन	कौन ?	क्या ?	कोई	कुछ
एकवचन कर्त्ता	जे, जोन्, जउन्	ते, तोन्, तउन्	कोन्, कउन्	का, कायें	कोनो, कउनो	कुछू
तिर्यक्	जे, जोन्, जउन्	ते, तोन्, तउन्	का, कोन्, कउन्	काहे, कायें, का	कोनो, आदि	कुछू
सम्बन्ध	जे-कर्	ते-कर्	का-कर्, कोन्-के	काहें-कें	कोनो-कें, आदि	कुछू-कं
बहुवचन कर्त्ता	जिन्, जे-मन्	तिन्, ते-मन्	कोन्-मन्, आदि	का-का	कोनो-कोनो	कुछू-कुछू
तिर्यक्	जिन्, जिन्ह्	तिन्, तिन्ह्	कोन्-मन् आदि	काहें-काहें	कोनो-कोनो	कुछू-कुछू
सम्बन्ध	जिन्ह्-के जिन्ह् कर्	तिन्ह्-के तिन्ह्-कर्	......	......	......	......

अपनत्ववाचक सर्वनाम का रूप इसमें आपुस् या आपुसी (आपस में) होता है ।

३. क्रिया (क) सहायकक्रिया

	मैं हूँ (क) अशिष्ट		(ख) शिष्ट		मैं था आदि	
	एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
१	ह्वउँ	ह्वन्	हौं, आँव	हन्	रहेंव्, रहौं	रहेन्
२	हवस्	ह्वौ	हस्	हौ	रहे, रहेंस्, रहस्	रहेव्
३	ह्वै	ह्वैं	है, अय्	हैं	रहिस्, रहै, रहय्	रहिन्, रहैं, रहैय्

(ख) क्रियापद—इसमें सकर्मक तथा अकर्मक क्रियाओं के रूप एक ही प्रकार से चलते हैं।

क्रियासूचक संज्ञाएँ—(१) देख; तिर्यक्, देखे (२) देखन् (३) देखव् देखना।

कृदन्तीयपद—वर्तमान—देखत्, देखते (देखते हुए),
अतीत—देखे (देखा हुआ)
असमापिका—देख्-के (देखकर)।

	वर्तमान सम्भाव्य (यदि) मैं देखूँ		आज्ञा अथवा विधिक्रिया		भविष्यत्—मैं देखूँगा आदि			
					अशिष्ट		शिष्ट	
	ए० व०	ब० व०	ए० व०	ब० व०	ए० व०	ब० व०	ए० व०	ब० व०
१	देखौं	देखन्	...	देखी	दे`ख-हूँ	दे`ख-बो दे`ख-बों	दे`खिहौं	दे`खिहन् देखब्
२	देखस्	देखन्	देख् देखे	देखौ (शिष्ट, देखी, देखा	दे`खबे दे`खिबे	दे`खहू	दे`खबे दे`खिबे	दे`खिहौ
३	देखैं देखय	देखैं देखँय	देखे	देखैं	दे`खहीं	दे`खहीं	दे`खि-है देखी	दे`खि-हैं

	अतीत—मैंने देखा		अतीत सम्भाव्य (यदि) मैं देखा होता	
	एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
१	देखेंव्, देख्यौं	देखेन्	देंखतेंव्, देंखत्यौं	देंखतेन्
२	देखे, देखेंस्	देंखेव्	देंखते, देंखतेंस्	देंखतेंव्
३	देंखिस्	देखिन्	देंखतिस्	देंखतिन्

वर्तमान निश्चित (मैं देख रहा हूँ) के अशिष्ट रूप देखत्-हवउँ तथा शिष्ट रूप देखत्-हौं होते हैं। इनका संक्षिप्त रूप देंखथों भी कभी-कभी प्रयुक्त होता है।

अतीत घटमान के रूप—(मैं देखता था), देखत्-रहेंव् होता है,

घटमान वर्तमान (मैंने देखा है) आदि के रूप, अशिष्ट में, देखें-हवउँ तथा शिष्ट मे देंखे-हौं होते हैं। इसीप्रकार "मैं देख रहा था" का देखत्-रहेंव् होता है।

'मैंने देखा है' के रूप अशिष्ट में देखें-हवउँ तथा शिष्ट में देखें हौं होते हैं। -हवै संयुक्त करके भी शिष्ट रूप सम्पन्न होते हैं। यथा—देखेंव्-हवै (मैंने देखा है)।

'मैंने देखा था' का रूप देखें-रहेंव् होता है।

(ग) स्वरान्त धातुएँ—मड़ान्, रखना; वर्तमान सम्भाव्य—(१) मड़ाऔं या मड़ाँव् (२) मड़ास या मड़ावस् आदि। भविष्यत्—(१) मड़ाहौं (२) मड़ावे आदि। अतीत—मड़ायेंव्; वर्तमान कृदन्तीय रूप—मड़ात्।

झपो, संयुक्त करना या जोड़ना; वर्तमान सम्भाव्य—(१) झपोऔं (२) झपोस् या झपोवस् आदि; भविष्यत्—झपोहौ; अतीत—झपोयेंव्; वर्तमान कृदन्तीय रूप—झपोत्। इसीप्रकार अन्य क्रियाओं के रूप भी चलते हैं।

(घ) अनियमितक्रियापद

क्रियासूचक संज्ञा—होन् (होना); जान् (जाना); करन् (करना); देन् (देना); लेन् (लेना) आदि।

अतीत के कृदन्तीयरूप—(अनियमित)—होयें या भयें;

असमापिका—भय्; 'वह गया' के लिए गये, गय् या गये रूप होते हैं। इसी प्रकार करे, किये या किहे, दिये, दिहे तथा लिये या लिहे रूप होते हैं।

(ङ) कर्तृवाच्य—के रूप अतीत के कृदन्तीय रूप में जान् संयुक्त करके सम्पन्न होते हैं। यथा—देखें गयेव—मैं देखा गया।

(च) छत्तीसगढ़ी के णिजन्त रूप हिन्दी की भाँति ही होते हैं।

(५) अव्यय—के ए, च तथा एच्, लघुरूप 'तक' अर्थ में तथा, ओ, ओच्
एवँ हू रूप 'भी' अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। यथा—दाई-च-का, 'मा तक को' तोर्-ओच्—
तुम्हारा भी।

बिहारी

डाक्टर ग्रियर्सन ने पश्चिमी मागधी बोलियों का बिहारी नामकरण किया है।
बिहारी से ग्रियर्सन का उस एक भाषा से तात्पर्य है जिसकी मगही, मैथिली तथा भोजपुरी
तीन बोलियाँ हैं। बिहारी नामकरण के निम्नलिखित कारण हैं:—

(१) पूर्वीहिन्दी तथा बंगला के बीच में बिहारी की अपनी विशेषताएँ हैं जो
ऊपर की तीनों बोलियों में सामान्यरूप से वर्तमान हैं।

(२) भाषा के अर्थ में-ई प्रत्ययान्त, बिहारी, नाम भी गुजराती, पंजाबी, मराठी
आदि की श्रेणी में आ जाता है।

(३) ऐतिहासिक दृष्टि से भी यह नाम उपयुक्त है। बौद्ध बिहारों के नाम पर ही
इस प्रदेश का नाम (बिहार) पड़ा। प्राचीन बिहारी भाषा ही वस्तुतः प्रारम्भिक बौद्धों
तथा जैनों की भाषा थी।

(४) बिहारी में साहित्य का सर्वथा अभाव है, ऐसी बात भी नहीं है। उत्तर
बिहार की भाषा—मैथिली—में प्राचीन साहित्य उपलब्ध है।

बिहारी का भौगोलिकक्षेत्र—पश्चिम में बिहारी, उत्तरप्रदेश की गोरखपुर
तथा बनारस कमिश्नरियों में बोली जाती है। दक्षिण में यह छोटानागपुर के पठारों में
प्रचलित है। उत्तर में हिमालय की तराई से दक्षिण में मानभूम तक तथा दक्षिण-पश्चिम में
मानभूम से लेकर उत्तर-पश्चिम में बस्ती तक इसका विस्तार है।

बिहारी की भाषागत सीमाएँ—बिहारी के उत्तर में हिमालय की तिब्बती-
बर्मी भाषाएँ, पूरब में बँगला, दक्षिण में उड़िया तथा पश्चिम में पूर्वीहिन्दी की छत्तीसगढ़ी
बघेली तथा अवधी बोलियाँ प्रचलित हैं।

बिहारी का वर्गीकरण—बिहारी का वर्गीकरण पहले विद्वानों ने, बीच की भाषा,
पूर्वीहिन्दी की बोलियों—अवधी, बघेली तथा छत्तीसगढ़ी—के साथ किया। इसके कई
कारण थे। वस्तुतः ऐतिहासिक दृष्टि से बिहारी भाषा बोलनेवालों का सम्बन्ध उत्तरप्रदेश से
ही अधिक है। समय-समय पर उत्तरप्रदेश की विभिन्न जातियाँ ही बिहार में जाकर
बस गईं और बिहारी भाषा-भाषी बन गईं। विवाहादि सम्बन्ध से भी बिहार का सम्बन्ध,
बंगाल की अपेक्षा, उत्तरप्रदेश से ही अधिक रहा। उत्तरप्रदेश की ब्रजभाषा का, मध्ययुग
में, बिहार मे पर्याप्त आदर था और आज की नागरीहिन्दी अथवा खड़ीबोली समस्त
बिहार की शिक्षा का माध्यम है। यद्यपि बंगाल तथा बिहार में अत्यन्त प्राचीन काल से,
निकट का सम्बन्ध है और इधर हाल तक, राजनीतिक दृष्टि से, बिहार, बंगाल का ही एक
भाग था, तथापि शिक्षित बंगाली तथा बिहारी कभी इस बात का अनुभव न कर सके कि
उनकी मातृभाषाओं का स्रोत वस्तुतः एक ही है। बँगला भाषा-भाषियों ने बिहारियों को
'पश्चिमा' तथा उनकी भाषा को सदैव पश्चिमीहिन्दी की ही एक विभाषा माना। बंगाल से
अलग हो जाने पर तो बंगाल एवं बिहार में और भी अधिक पार्थक्य हो गया है और इन

दोनों प्रदेशों में मनमुटाव की जो दरार पड़ गई है वह आज भी पट नहीं सकी है। यह सब होते हुए भी, यह निर्विवाद सत्य है कि बिहारी, पूर्वीहिन्दी से पृथक् भाषा है तथा इसका सम्बन्ध बंगला, उड़िया तथा असमिया से ही है।

बिहारी तथा बंगाली संस्कृति—बिहार तथा बंगाल में केवल भाषा-सम्बन्धी ही एकता नहीं है, अपितु दोनों में सांस्कृतिक एकता का भी दृढ़ बन्धन है। जिस प्रकार बंगाल शक्ति का उपासक है, उसीप्रकार समस्त बिहार भी प्रधान रूप से शाक्त ही है। प्रायः मिथिला तथा बंगाल का सम्बन्ध सूत्र तो सभी लोग स्वीकार करते हैं, किन्तु भोजपुरी प्रदेश को मागधी संस्कृति से पृथक् मानते हैं। यह भी वास्तव में भ्रम ही है। भोजपुरी भाषा-भाषी प्रदेश यद्यपि बिहार के पश्चिमी छोर पर है, तथापि उसकी तथा बंगाल की संस्कृति में अत्यधिक साम्य है। बंगला की भाँति ही, प्रत्येक भोजपुरी गाँव में कालीबाड़ी (काली स्थान अथवा मन्दिर) की प्रथा है। इसके अतिरिक्त इधर मुख्य रूप से शिव तथा दुर्गा की पूजा का ही प्रचलन है। प्रत्येक परिवार की इष्ट देवी का सम्बन्ध भी शाक्त परमपरा से ही है। विवाह के अवसर पर भोजपुरी प्रदेश में सर्वप्रथम शक्ति (माता) के ही गीत गाए जाते हैं।

शक्ति के गीतों के बाद, विवाह में 'सगुन' (शकुन) गाने की प्रथा है। आदर्श भोजपुरी में निम्नलिखित शकुन प्रचलित हैं—

पहिल सगुनवा दहि माछरि रे,
दोसरे डँठाइल पान,
सगुनवा भल पावल, लगनिया अकुताइल।
एहि सगुने अइले, मोर कवन दुलहा,
ए बिहसत पइसे लें अवास,
सगुनवा भल पावल, लगनिया अकुताइल।

[प्रथम शकुन दही तथा मछली है, दूसरे डंठलदार पान। यह सुन्दर शकुन प्राप्त है, लग्न अति निकट है। इसी शकुन पर मेरे अमुक दूल्हा आए, वे मुस्कराते हुए घर में प्रविष्ट हुए। यह सुन्दर शकुन प्राप्त हुआ है तथा लग्न निकट है।]

ऊपर का शकुन वस्तुतः विचारणीय है। बंगाल में विवाह के प्रथम शकुन के अवसर पर दूल्हे के घर दही एवं मछली भेजने की प्रथा है। मिथिला में भी यह प्रथा इसीरूप में अक्षुण्ण है; परन्तु भोजपुरी में यह प्रथा अब लुप्त हो गई है, हाँ सगुन के गीत में तो इसका उल्लेख आज भी मिलता है। सगुन के बाद शिव-विवाह के गीत गाने की प्रथा है और तब अन्य गीत गाए जाते हैं।

शक्ति और शिव की उपासना के साथ-साथ, बिहारी भाषा-भाषी क्षेत्र में विष्णु की पूजा भी प्रचलित है। यह पूजा शालिग्राम, राम तथा हनूमान के रूप में ही होती है। अयोध्या के निकट होने तथा तुलसीकृत 'रामचरितमानस' के विशेष प्रचार के कारण ही राम तथा उनके परम भक्त हनूमान की उपासना बिहार—विशेषतया भोजपुरी क्षेत्र—में प्रचलित है। वीर भोजपुरियों का महावीर हनूमान की ओर, विशेष आकर्षण स्वाभाविक है।

मागधी संस्कृति के फलस्वरूप, प्राचीनकाल में, भोजपुरी क्षेत्र में, जयदेवकृत 'गीतगोविन्द' का भी प्रचार था; परन्तु आजकल इसका स्थान 'रामचरितमानस' ने ले लिया

है। बंगाल का प्रसिद्ध छन्द पयार तो किसी समय सम्भवतः समस्त बिहार में प्रचलित था और आज भी अहीरों के बिरहों की कड़ियों में यह छन्द सुनाई पड़ता है।

बिहारी भाषा की उत्पत्ति—ऊपर यह कहा जा चुका है कि बिहारी—मैथिली, मगही, भोजपुरी—एवं बँगला, उड़िया तथा असमिया की उत्पत्ति मागधी प्राकृत तथा अपभ्रंशों से हुई है। यह प्राकृत मूलतः उन आर्यों की भाषा थी जिसे हार्नेली तथा ग्रियर्सन ने बाहरी आर्यों के नाम से अभिहित किया है। ग्रियर्सन के अनुसार, अत्यन्त प्राचीनकाल में, मागधी का प्रसार उत्तरी भारत में भी था; किन्तु कालान्तर में शौरसेनी के प्रभाव के कारण, मागधी दक्षिण तथा पूरब की ओर भी फैल गई। उस युग में इस मागधी का ठीक ठीक स्वरूप क्या था, यह आज कहना कठिन है। ऐसा प्रतीत होता है कि दक्षिण तथा पूरब के प्रसार में, मागधी ने कई अनार्य भाषाओं पर विजय प्राप्त किया होगा।

शौरसेनी तथा मागधी के बीच अर्द्धमागधी का क्षेत्र है। जैसा कि अन्यत्र कहा जा है, अर्द्धमागधी में शौरसेनी तथा मागधी दोनों की विशेषताएँ वर्तमान हैं; किन्तु वस्तुतः अर्द्धमागधी पर मागधी का ही अधिक प्रभाव है, अन्यथा प्राचीन वैयाकरण इसे अर्द्ध-शौरसेनी नाम से अभिहित किये होते।

समय की प्रगति से शौरसेनी अपने केन्द्र मध्यदेश से, पूरब की ओर बढ़ी और इसने अर्द्धमागधी के पश्चिमी क्षेत्र पर अधिकार कर लिया। उधर मागधी भी अर्द्धमागधी के पूर्वी क्षेत्र की ओर बढ़ी; किन्तु पश्चिम की ओर बढ़ने में उसे अधिक सफलता नहीं मिली और वह इलाहाबाद तथा जबलपुर के बीच से होती हुई महाराष्ट्रप्रदेश की ओर चली गई। इधर पहले अर्द्धमागधी अथवा विकृत शौरसेनी प्रचलित थी। ग्रियर्सन के अनुसार दक्षिणी भाषाएँ—मराठी, कोंकणी आदि—यद्यपि मागधी प्रसूत हैं, तथापि इनपर शौरसेनी का प्रभाव है। इसीप्रकार उत्तरी भाषाएँ—गढ़वाली, कुमायूँनी, नेपाली आदि—यद्यपि शौरसेनी प्रसूत हैं, तथापि इनपर मागधी का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। ग्रियर्सन के निम्नलिखित विवरणपट से, उत्पत्ति की दृष्टि से, आधुनिक आर्यभाषाओं की स्थिति बहुत कुछ स्पष्ट हो जाती है—

प्राचीन संस्कृत [बोलचाल रूप में थी]
प्राचीन कथ्य प्राकृत
कथ्य शौरसेनी प्राकृत
कथ्य मागधी प्राकृत
बोलचाल की भाषाएँ
पश्चिमी गौडीय
उत्तरी गौडीय
दक्षिणी गौडीय
पूर्वी गौडीय
भाषाएँ
सिन्धी
गुजराती
पंजाबी
पश्चिमीहिंदी
गढवाली
कुमायूनी
नेपाली
मराठी
बिहारी
बंगला
उड़िया
आसामिया
बोलियाँ
राजस्थानी
बाँगरू
वर्नाक्यूलर हिन्दोस्तानी या नागरी हिन्दी या खड़ी बोली
ब्रजभाषा
कन्नौजी
बुन्देली
दक्षिणी
कोंकणी
भोजपुरी
मैथली
मगही
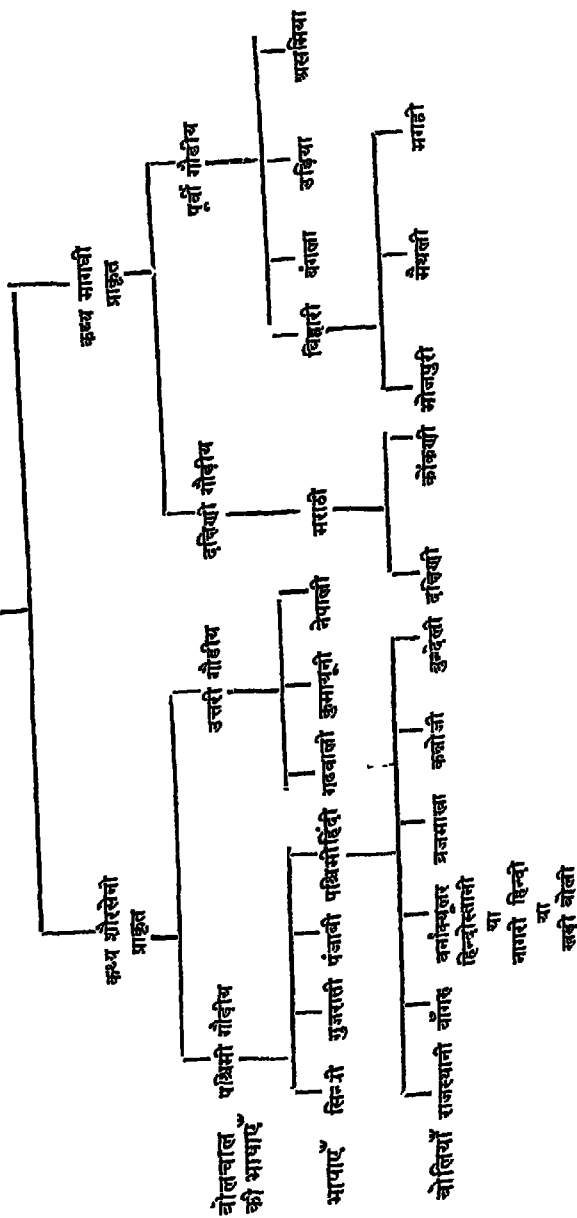
आधुनिक आर्य भाषाओं की उत्पत्ति के सम्बन्ध में डा० सुनीतिकुमार चटर्जी का मत ग्रियर्सन से तनिक भिन्न है। आपके अनुसार पहाड़ी भाषाओं की उत्पत्ति खश अपभ्रंश से हुई है। उत्तर हिमालय के निवासी किसी समय खश अथवा दर्द भाषा-भाषी थे। प्राकृत युग में राजस्थान के निवासी इधर जा बसे और उन्होंने यहाँ की बोलियों को प्रभावित किया। इसीके परिणामस्वरूप पहाड़ी बोलियाँ अस्तित्व में आईं। इसीप्रकार जैसा कि अन्यत्र स्पष्ट किया जा चुका है, डा० चटर्जी, ग्रियर्सन की भीतरी तथा बाहरी आर्यों की भाषा सम्बन्धी सिद्धान्त को भी नहीं मानते। आपने उत्पत्ति की दृष्टि से, आधुनिक आर्यभाषाओं का एक विवरणपट तैयार किया है जो आगे दिया जाता है।

भारत ईरानी
भारतीय आर्य (प्राचीन वैदिक बोली)
उदीच्य
उत्तर की पहाड़ी भाषाएँ जो मूलतः खश भाषा रही थीं किन्तु जो प्राकृत युग में राजपूताने की बोलियों से प्रभावित हुईं
प्रतीच्य (दक्षिण-पश्चिम)
मध्यदेशीय
प्राच्य
दाक्षिणात्य
व्राचड अपभ्रंश
सिन्धी
कैकय मद्र तथा आदि
शौरसेनी से प्रभावित
पूर्वी पंजाबी
पश्चिमी पंजाबी या लहंदी
खश अपभ्रंश
पहाड़ी भाषाएँ
पूर्वी (खसकुरा या नेपाली)
मध्य (गढ़वाली, कुमाऊनी)
पश्चिमी (चमेआली, कुल्लुई आदि)
नागरी शौरसेनी, आभीरी तथा अवन्ती आदि किन्तु शौरसेनी से विशेष प्रभावित
नागर अपभ्रंश
राजस्थानी
मालवी तथा निमाड़ी
मेवाती, गूजरी
जयपुरी हाड़ौती
पश्चिमी
मारवाड़ी
गुजराती
शौरसेनी
शौरसेनी अपभ्रंश
पश्चिमी हिन्दी
बुन्देली
कन्नौजी
ब्रजभाषा
बाँगरू
हिन्दुस्तानी या नागरी हिन्दी जिससे आधुनिक हिन्दी का निर्माण हुआ
अर्धमागधी
अर्ध मागधी अपभ्रंश
अवधी
बघेली
छत्तीसगढ़ी
मागधी
मागधी अपभ्रंश
पश्चिमी मागधी
मैथिली
मगही
भोजपुरी
पूर्वी मागधी
असमिया
बंगला
उड़िया
महाराष्ट्री
महाराष्ट्री अपभ्रंश
मराठी तथा कोंकणी

दोनों विवरणपटों के देखने से जो एक बात स्पष्ट हो जाती है, वह है कि हिन्दी तथा बिहारी की उत्पत्ति दो विभिन्न प्राकृतों से हुई है। बिहार की बोलियों का वस्तुतः बंगला से तथा हिन्दी का राजस्थानी एवं पंजाबी से ही अतिनिकट का सम्बन्ध है। इसमें अतिशयोक्ति भी नहीं है। एक अशिक्षित तथा निरक्षर बिहारी, बंगाल में जाकर अल्पप्रयास से ही शुद्ध बंगला बोलने लगता है; किन्तु साधारणरूप में शिक्षित एवं साक्षर बिहारी के लिए भी शुद्ध हिन्दी बोलना सरल कार्य नहीं है। हाँ, यह बात दूसरी है कि अनेक कारणों से, बिहार में शिक्षा का माध्यम हिन्दी ही रहेगी। यह वास्तव में बिहारी भाषा बोलनेवालों का सौभाग्य ही है कि एक ओर वे बंगला के ललित साहित्य का आनन्द ले सकते हैं तो दूसरी ओर वे पश्चिम की बलिष्ट भाषा, हिन्दी के माध्यम से अपने हृदय के भावों का प्रकाशन कर सकते हैं। बिहार मे, व्यावहारिक दृष्टि से, आज, उच्च शिक्षा का माध्यम हिन्दी के अतिरिक्त कोई अन्य भाषा नहीं हो सकती।

यद्यपि साहित्यिक भाषा के रूप में, बिहारी भाषा-भाषी क्षेत्र में आज हिन्दी की ही प्रतिष्ठा है तथापि बिहारी—मैथिली, मगही तथा भोजपुरी—बोलनेवालों की अपनी-अपनी बोलियों के प्रति अत्यधिक ममता है। बिहारी की इन बोलियों की जड़ें यहाँ की जनता के हृदय में बहुत दूर तक चली गई हैं और यह आशा करना कि निकट भविष्य में, बोलचाल में भी, हिन्दी इनका स्थान ले लेगी, दुराशामात्र है। इन बोलियों के अनेक शब्द आज समर्थ बिहारी लेखकों द्वारा हिन्दी में प्रयुक्त होकर उसे सशक्त बना रहे हैं। आज हिन्दी तथा बिहार की इन बोलियों में किसीप्रकार की प्रतिद्वन्द्विता नहीं है। ये वस्तुतः हिन्दी की पूरक ही हैं।

बिहारी तथा हिन्दी

सर्वप्रथम बिहारी तथा हिन्दी के उच्चारण के सम्बन्ध में विचार करना उपयुक्त होगा।

(१) हिन्दी मूर्धन्य 'ड' तथा 'ढ' का उच्चारण, बिहारी में 'र्' तथा रह् (rh) हो जाता है। यथा—हिं०, पड़ना>बि० परल या परब। इसीप्रकार हिन्दी 'ल्', बिहारी में, 'र्' तथा 'न्' मे परिणत हो जाता है। यथा—हिं० फल>बि० फर; हिं० गाली>भो०पु० गारी; हिं० लंगोट>भो० पु० लंगोट, तथा नंगोट; हिन्दी लँगोटी>भो० पु० लंगोटी, नँगोटी तथा निंगोटी। बँगला में भी प्रायः यही प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। यथा—हिं० तथा संस्कृत लक्ष्मी>आदर्श बँ० लक्खी किन्तु ग्रामीण बँगला नक्खी एवँ हिन्दी लँगोटी>बँ० नेग्टी।

(२) हिन्दी मे सघोष 'ह्' का लोप हो जाता है, किन्तु बिहारी (भो० पु०) में यह सन्ध्यक्षर रूप में मौजूद है। यथा—हिं० दिया>बि० दिहलस्।

(३) बिहारी तथा बँगला में, विस्मयादिबोधक को छोड़कर, शब्द के आदि में 'य' तथा 'व' नहीं आते, किन्तु पश्चिमी हिन्दी की ब्रजभाखा मे ये 'य' तथा 'व' आते हैं।

हिन्दी = हिं० ; बिहारी = बि० ; बँगला = बँ० ; ब्रजभाखा = ब्र० भा० भोजपुरी = भो० पु० ; मैथिली = मै०।

खड़ी बोली में तो ये 'इ' तथा 'उ' में परिणत हो जाते हैं। यथा—बिहारी (भो० पु०) एमें, ओमे>ब्र० भा० यामे, वामे, किन्तु हिन्दी इसमें उसमें।

(४) बिहारी तथा बँगला में ह्रस्व एँ, ऐं ओं एवँ औं का प्रयोग होता है; किन्तु हिन्दी में इनका अभाव है। यथा—बि० बेंटिया, बोलावत्, तथा बं० एँक्, बेंकि (व्यक्ति) तथा गोंम (गेहूँ); किन्तु, हिन्दी बिटिया, बुलाना आदि।

(५) बिहारी में, दो स्वर, अइ तथा अउ एक साथ आते हैं; किन्तु हिन्दी में ये ऐ तथा औ में परिणत हो जाते हैं। यथा—बि० बइसे>हिं० बैठे; बि० अउर> हिं० और।

शब्दरूप

(१) बिहारी में आकारान्त—घोड़ा, भला, बड़ा आदि—शब्द हिन्दी से ही आए हैं। हिन्दी के भी थे अपने शब्द नहीं हैं अपितु इसमें भी ये पंजाबी से आए हैं। बिहारी के वास्तविक शब्द हैं—घोड़ भल् आदि। ब्रजभाखा में इनके ओकारान्त तथा औकारान्त रूप हो जाते हैं। यथा—घोड़ो, घोड़ौ; भलो, भलौ आदि। हिन्दी के जो सर्वनाम का रूप ब्रजभाखा में जो, जौ होता है, किन्तु बिहारी (भो० पु०) में यह जे हो जाता है।

(२) बिहारी के व्यक्तिवाचक सर्वनाम के सम्बन्ध कारक के एकवचन के रूप के मध्य में ओ आता है; किन्तु खड़ीबोली तथा ब्रजभाखा में यह ए में परिणत हो जाता है। यथा—बि० मोर, हिं० मेरा, ब्र० भा० मेरौ।

(३) हिन्दी में केवल कर्त्ता तथा तिर्यक् के रूप ही मिलते हैं, किन्तु बिहारी में करण तथा अधिकरण के रूप भी मिलते हैं। यथा—मैथिली घोड़े (सं० घोटकेन), घोड़े (सं०घोटके), भो० पु० डंटे, (डंडे, से) घरें (घर में)।

(४) बिहारी में कर्त्ता कारक के संज्ञापदों के साथ ने प्रयुक्त नहीं होता। पूर्वीहिन्दी में भी इस अनुसर्ग का अभाव है; किन्तु हिन्दी की सभी बोलियों में यह वर्तमान है यथा—बि० कइलसि; ब्र० भा० वाने कियौ; हि० उसने किया।

(५) बिहारी में आकारान्त, तिर्यक् एकवचन का रूप आकारान्त ही रहता है, किन्तु हिन्दी में यह एकारान्त हो जाता है। यथा—बि०, कर्त्ता—घोड़ा, तिर्यक्—घोड़ा; हि० तिर्यक्— घोड़े

(६) व्यञ्जनान्त संज्ञापदों के तिर्यक् रूप बिहारी में 'अ' अथवा एँ संयुक्त करके सम्पन्न होते हैं। यथा—मगही—घरे से; किन्तु हिं० घर से। इससे बिहारी में 'ए' से अन्त होनेवाले क्रिया विशेष्यपदों ((Verbal Nouns) के रूपों की स्पष्ट व्याख्या हो जाती है। बिहारी (भो० पु०) तथा हिन्दी के इच्छाद्योतक वाक्य की तुलना से यह स्पष्ट हो जायेगा। यथा—भो० पु० उ बोंले के चाहेला; हिं०—वह बोला चाहता है।

(७) बिहारी में, ल से अन्त होनेवाले, क्रियाविशेष्य पदों के तिर्यक् रूप, आ से अन्त होते हैं। यथा—बि० (भो० पु०)—मारल तिर्यक्—मॉरला। हिन्दी में इस प्रकार के रूपों का अभाव है।

(८) बिहारी तथा हिन्दी अनुसर्गों में पर्याप्त अन्तर है।

(६) हिन्दी-सम्बन्धकारक में, कौ (ब्रजभाखा) तथा नागरीहिन्दी (खड़ीबोली) में का, के तथा की अनुसर्ग प्रयुक्त होते हैं। हिन्दी में इनके प्रयोग दो बातों पर निर्भर करते हैं—(१) अनुसर्गों के बाद के संज्ञापद, कर्त्ता अथवा तिर्यक् रूप में हैं ; (२) अनुसर्गों के बाद के संज्ञापद स्त्रीलिंग अथवा पुँल्लिंग हैं। यथा—(हिं०), उसका घोड़ा, उसके घोड़े पर, उसकी घोड़ी। बिहारी में इस प्रकार के प्रयोग नहीं मिलते। यहाँ दो प्रकार के सम्बन्ध के अनुसर्ग हैं—(क) जो कभी परिवर्तित नहीं होवे, यथा—ओंकर घोड़ा ओकर घोड़ा पर, ओकर घोड़ी तथा (ख) जो अनुसर्ग के के बाद के कर्त्ता अथवा तिर्यक् के रूपों के अनुसार परिवर्तित होते हैं; लिंग के अनुसार नहीं। यथा—(भो० पु०) ओंकरे घोड़ा ; ओंकरे घोड़ी ; ओंकरा घोड़ा पर, ओंकरा घोड़ी पर।

बिहारी की कतिपय बोलियों में इससे सर्वथा विपरीत बात है। यहाँ लिंग के अनुसार तो परिवर्तन होता है, किन्तु कर्त्ता अथवा तिर्यक् के रूपों के अनुसार परिवर्तन नहीं होता। यथा— (मगही) ओंकरा घोड़ा, ओंकरा घोड़ा पर, ओंकरी घोड़ी, ओंकरी घोड़ी पर।

यह बात उल्लेखनीय है कि बिहारी तथा बँगला के सम्बन्ध कारक के अनुसर्गों में पूर्ण साम्य है। यथा—उहार् घोड़ा, , उहार घोड़ाय, उहार घोड़ी, उहार घोड़ीते।

क्रियारूप

(१) बिहारी की कतिपय बोलियों में वर्तमान के रूप, प्राचीन (संस्कृत) के वर्त्तमान के रूप में ला संयुक्त करके सम्पन्न होते हैं। यथा— देखिला, मैं देखता हूँ। हिन्दी में यह काल नहीं होता।

(२) हिन्दी में, वर्तमान कृदन्तीय (शतृ) के रूपों में ही सहायकक्रिया संयुक्त करके मिश्र अथवा यौगिक वर्तमान (periphrastic present) की रचना होती है, किन्तु बिहारी की कतिपय बोलियों में क्रियाविशेष्यपदों (verbal Nouns) में सहायकक्रिया जोड़कर, यह काल सम्पन्न होता है। यथा—मगही—हम देंखेहि, हि० मैं देखता हूँ।

(३) बिहारी में अतीतकाल— अल् प्रत्यय संयुक्त करके सम्पन्न होता है, किन्तु हिन्दी (खड़ीबोली) में—आ तथा ब्रज में—औ एवँ—ओ जोड़कर यह बनता है। यथा— बि० (भो० पु०) रहल् , हि, रहा (=था) ब्रज—रह्यौ। बँगला में इसका रूप होता है— रोंहिलों।

(४) पुराघटितवर्तमान तथा अतीत (perfect, present and past) के रूप हिन्दी में, अतीत के कृदन्तीय रूपों में सहायक क्रिया जोड़कर सम्पन्न होते हैं। यहाँ सहायक क्रिया के रूप ही चलते हैं। यथा—मैं गिरा हूँ, तू गिरा है, वह गिरा है आदि। बिहारी में इसप्रकार के रूप तो बनते ही हैं, इनके अतिरिक्त, अन्यपुरुष, एकवचन की सहायक क्रिया के रूप को, अतीत के रूप में जोड़कर भी कतिपय कालों के रूप सम्पन्न होते हैं। बिहारी में अतीत के रूप ही चलते हैं, सहायक क्रिया के रूप नहीं।

यथा—मगही— हम गिर्‌ल् हूँ,मैं गिरा हूँ ; तो गिर्‌ले है, तू गिरा है; उ गिरल् है, वह गिरा है, आदि।

(५) अकर्मकक्रिया के मिश्र या यौगिककाल में, बिहारी में, पुराघटित कृदन्तीय (perfect participle) के रूप, तिर्यक् रूप में प्रयुक्त होते हैं, किन्तु हिन्दी में ऐसा नहीं होता। यथा—हम देख्‌ले बाटी (बानी), मैंने देखा है।

(६) बँगाली की भाँति ही, बिहारी में भी, भविष्यत् के रूप— अब् संयुक्त करके सम्पन्न होते हैं; किन्तु व्रजभाषा में ये इह् की सहायता से सम्पन्न होते हैं, खड़ीबोली में यह रूप एक अन्य ढंग से सम्पन्न होता है। यथा—बि० (भो० पु०) करब, बं० करिबो, ब्र० भा— करिहौं खड़ीबोली—करूँगा।

(७) बिहारी में, पाँचकाल, सीधे धातु या कृदन्तीय (participle) के रूप से सम्पन्न होते हैं; ये वस्तुतः मौलिक (Simple Tenses) हैं, मिश्र या यौगिक (periphrastic) नहीं। ये पाँचो काल हैं—वर्तमान, अतीत, भविष्यत् एवं सम्भाव्य वर्त्तमान एवं अतीत के रूप। किन्तु खड़ीबोली हिन्दी में, केवल एक ही काल है और वह है सम्भाव्यवर्तमान। आज्ञा अथवा विधि का रूप, इस सम्भाव्य के रूप का ही एक प्रकार है और इसी में—गा प्रत्यय जोड़कर भविष्यत् के रूप सम्पन्न होते हैं।

(८) क्रियारूपों के सम्बन्ध में, केवल सम्भाव्यवर्तमान के एक-दो रूपों को छोड़कर, बिहारी तथा हिन्दी के क्रियापदों में किसी प्रकार की समानता नहीं है। इसके विपरीत बंगला तथा बिहारी के क्रियापदों के प्रायः सभी रूपों में, निकट का सम्बन्ध स्पष्टरूप से दृष्टिगोचर होता है।

(९) बिहारी में वर्तमान कृदन्तीय (Present Participle) के रूप एत तथा— अत से सम्पन्न होते हैं, किन्तु खड़ीबोली मे ये ता जोड़कर बनते हैं। यथा—मं० देखैत्, भो० पु० देखत् ख० बो० देखता।

(१०) हिन्दी मे क्रियाविशेष्यपद (Verbal Nouns) तीन रूपों में मिलते है। ये हैं—(१)—अन्, (२)—न. ना तथा (३) इ ; तिर्यक्—आ प्रत्ययान्त। इसके उदाहरण क्रमशः हैं— चलन्यौं, चलन्यौ, चलना, चली तिर्यक्—चला। बिहारी में—अब् प्रत्ययान्त रूप तो मिलता है ; किन्तु अन्य दो रूप नहीं मिलते; इनके स्थान पर एक—अल प्रत्ययान्त तथा दूसरा केवल धातु रूप मे ही क्रियाविशेष्यपद मिलते हैं। इसके उदाहरण, बिहारी मे, चलब्, चलल् तथा चल् हैं। अन्तिम का तिर्यक् रूप चले होता है। ब तथा—ल प्रत्ययान्त, क्रियाविशेष्य के तिर्यक् रूप, बँगला में भी मिलते हैं। यथा—चोलिबार, चलने के लिए ; चोलिले, चलने पर या चलकर। अन्तिम रूप को बँगला में असमापिका क्रिया कहते हैं।

(११) बिहारी में णिजन्त (प्रेरणार्थक) के रूप साधारण क्रिया मे आव् प्रत्यय संयुक्त करके सम्पन्न होते हैं, किन्तु खड़ीबोली में ये आ (आय) जोड़कर बनते हैं। यथा—बि० (भो० पु०) करावल्, ख० बो० कराना।

(१२) बिहारी तथा हिन्दी में एक तात्त्विक अन्तर यह भी है कि हिन्दी की सकर्मक क्रियाओं में जहाँ कर्मणिप्रयोग चलता है, वहाँ बिहारी—मैथिली, मगही तथा भोजपुरी—मे कर्त्तरिप्रयोग प्रचलित है। मागधी-प्रसूत, बंगला, उड़िया आदि भाषाओं मे भी

कर्तरिप्रयोग ही प्रचलित है; यथा— हिं० मैंने घोड़ा देखा ; मैंने घोड़ी देखी ; किन्तु बिहारी (भो० पु०) में— हम घोड़ा देखलीं ; हम घोड़ी देखली।

(१३) बिहारी तथा हिन्दी कतिपय साधारण शब्दों एवं प्रयोगों में भी एक दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं। उदाहरणस्वरूप बिहारी (भो० पु०) में अन्यपुरुष, एक वचन वर्तमान की सहायकक्रिया बाटे (भो० पु० उ बाटे = हिं० वह है), तथा अतीतक्रिया रहल (भो० पु० उ रहल = हिं० वह था) हैं, किन्तु हिन्दी (खड़ीबोली) में ये क्रमशः है तथा था हैं। भोजपुरी की भाँति ही बँगला में भी बोटे (वह है) का प्रयोग होता है।

पुनः नकारात्मक रूप में बिहारी में जिन, जनि तथा मति शब्द व्यवहृत होते हैं, किन्तु हिन्दी में केवल मत का प्रयोग होता है। इसी प्रकार बिहारी में सम्प्रदान के अनुसर्ग रूप में बदे, खातिर, लागि लेल् एवं ले का व्यवहार होता है, किन्तु हिन्दी (खड़ीबोली) में इनके स्थान पर केवल लिए प्रयुक्त होता है।

ऊपर के विवरण एवं विवेचन से यह स्पष्ट हो जायेगा कि बिहारी (मैथिली, मगही तथा भोजपुरी) एवं पश्चिमीहिन्दी (खड़ीबोली, ब्रजभाखा आदि) में तात्विक अन्तर है। इन दोनों की उत्पत्ति दो विभिन्न प्राकृतों से हुई है तथा उच्चारण, व्याकरण, वाक्यगठन एवं शब्दों के प्रयोग में ये सर्वथा विभिन्न हैं। सबसे महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि बिहारी—मैथिली, मगही तथा भोजपुरी—का जिन बातों में पश्चिमीहिन्दी से पार्थक्य है, उन्हीं बातों में इसका बँगला से साम्य है। बिहारी बोलियों की पारस्परिक एकता इस बात को स्पष्टरूप से प्रमाणित करती हैं कि इनकी उत्पत्ति मागधी अपभ्रंश से हुई है।

बिहारीबोलियों की आन्तरिक एकता

ऊपर यह कहा जा चुका है कि डा० ग्रियर्सन ने मैथिली, मगही तथा भोजपुरी को एक भाषा के रूप में ही देखा था तथा इसका बिहारी नामकरण किया था। वस्तुतः बिहार की इन तीन बोलियों के व्याकरण के तुलनात्मक अध्ययन के पश्चात् ही ग्रियर्सन इस परिणाम पर पहुँचे थे और वैज्ञानिकदृष्टि से उनकी यह खोज अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है; किन्तु इधर कुछ लोग ग्रियर्सन की इस खोज को अन्यथा सिद्ध करने का उद्योग कर रहे हैं। अभी हाल ही में श्री जयकान्त मिश्र ने अँग्रेजी में 'ए हिस्ट्री आव मैथिली लिट्रेचर' थीसिस लिखकर प्रयाग विश्वविद्यालय से डी० फिल्० की उपाधि प्राप्त की है। डा० मिश्र अपनी थीसिस के पृ० २१ पर 'मैथिली तथा भोजपुरी' शीर्षक के अन्तर्गत लिखते हैं—

'भोजपुरी के सम्बन्ध में पुनः यह बात दुहराई जा सकती है कि बिहार की अपेक्षा उसका सम्बन्ध उत्तरप्रदेश से ही अधिक है। अपने मत की पुष्टि में डॉ० मिश्र ने डा० चटर्जी की पुस्तक "ओरिजिन एण्ड डेवलपमेंट आव बैंगाली लैंग्वेज" के पृ० ९९ से कतिपय पंक्तियाँ उद्धृत की हैं जहाँ उन्होंने यह कहा है कि भोजपुरी क्षेत्र पर सदैव पश्चिम का प्रभाव रहा है तथा वहाँ पश्चिमीहिन्दी की ब्रजभाखा तथा हिन्दुस्तानी का ही साहित्यिकभाषा के रूप में प्रयोग होता रहा है। पुनः इसी पृष्ठ पर डॉ० मिश्र लिखते हैं— 'डॉ० ग्रियर्सन ने भोजपुरी को बिहारी के अन्तर्गत रखकर भूल की है। इसके बाद आपने कतिपय साधारण व्याकरण-सम्बन्धी बातों में मैथिली तथा भोजपुरी की तुलना करके, भोजपुरी को बिहारी तथा मागधी के टाट से बाहर कर दिया है।

डॉ० मिश्र तथा उन्हीं के समान अन्य व्यक्तियों की ऊपर की विचारधारा के सम्बन्ध में यही कहा जा सकता है कि इन महानुभावों ने ग्रियर्सन तथा चटर्जी जैसे भाषाशास्त्रियों के मन्तव्य को गम्भीरतापूर्वक समझने का उद्योग नहीं किया है। इन दोनों पण्डितों ने यह ठीक ही कहा है कि भोजपुरी भाषाभाषी प्रदेश पर पश्चिम का प्रभाव रहा है, किन्तु इन्होंने कहीं भी यह नहीं कहा कि भोजपुरी की उत्पत्ति शौरसेनी अथवा अर्धमागधी प्राकृत से हुई है। साहित्यिकरूप में पश्चिम के शौरसेनी अपभ्रंश का किसी युग में, बंगाल तक प्रभाव था, किन्तु इससे यह नहीं कहा जा सकता कि बंगला की उत्पत्ति शौरसेनी से हुई। इसीप्रकार आज समस्त विहार—मैथिली, मगही तथा भोजपुरीक्षेत्रों—में साहित्यिकभाषा के रूप में हिन्दी का ही प्रचलन है; किन्तु इससे यह परिणाम नहीं निकाला जा सकता कि विहारीबोलियों की उत्पत्ति उसी प्राकृत से हुई है जिससे हिन्दी की। सच बात तो यह है कि आज बिहारी बोलियों में जितना पार्थक्य है, उसकी अपेक्षा इनमें एकता अधिक है। इसी सम्बन्ध में नीचे विचार किया जायेगा।

उच्चारण—सर्वप्रथम 'अ' के उच्चारण के सम्बंध में विचार करना आवश्यक है। डॉ० मिश्र अपनी पुस्तक के पृ० ६२ में लिखते हैं—'भोजपुरी में 'अ' का उच्चारण, यू० पी० की भाँति ही होता है, पूरब के वर्तुलाकार उच्चारण की तरह नहीं।'

यू० पी० के उच्चारण से डा० मिश्र का तात्पर्य पश्चिमीहिंदी के उच्चारण से ही है। आपके अनुसार भोजपुरी में 'अ' का उच्चारण ठीक खड़ीबोली 'अ' के उच्चारण की भाँति ही होता है। यह अशुद्ध है। इस पुस्तक के पृ० ७१ में, भोजपुरी 'अ' के उच्चारण के सम्बंध में पूर्णरूप से विचार किया गया है। उसके देखने से यह स्पष्ट हो जायेगा कि वस्तुतः मैथिली तथा भोजपुरी दोनों, में 'अ' का उच्चारण समानरूप से ही होता है।

निम्नलिखित दशाओं में भी मैथिली तथा भोजपुरी में 'अ' के उच्चारण में समानता है—

(१) अन्य नव्यभारतीयआर्यभाषाओं [पंजाबी, हिन्दी, बंगला, मराठी, गुजराती] की भाँति ही मैथिली, मगही तथा भोजपुरी में भी पदान्त स्थित, 'अ' का उच्चारण नहीं होता; यथा—फल, दाल, भात आदि में 'ल' 'त' में अ का उच्चारण नहीं होता, यद्यपि इन्हें सस्वर लिखने की प्रथा है। किन्तु कभी-कभी इन तीनों में 'अ' का अपवाद स्वरूप उच्चारण होता भी है।

(क) नहीं के अर्थ में 'न' का विलम्बित उच्चारण मगही, मैथिली तथा भोजपुरी, तीनों, में समानरूप से होता है।

(ख) शास्त्र, प्रिय, ग्राह्य आदि तत्सम शब्दों में भी, विहार की तीनों बोलियों में 'अ' का उच्चारण होता है।

(ग) कतिपय क्रियारूपों में भी विहारी की तीनों बोलियों में 'अ' का उच्चारण होता है। यथा देखिह के 'ह' में।

(२) जहाँ दो पदों का समास होता है, वहाँ भी पहले पद के अन्त के 'अ' का उच्चारण विहार की तीनों बोलियों में होता है। यथा—फल + दायक में 'फल' के 'ल' में 'अ' का उच्चारण होता है। इसीप्रकार ह'मरा तथा दे'खल आदि में 'म' तथा 'ख' में 'अ' का उच्चारण होता है; क्योंकि ये स्वराघात के बाद आये हैं।

इ ई, उ ऊ आदि स्वरों के उच्चारण के सम्बन्ध में भी मैथिली मगही तथा भोजपुरी में पूर्ण साम्य है। स्थान-संकोच से इस विषय में लिखने का लोभ संवरण करना पड़ता है।

हिन्दी तथा बिहारी में उच्चारण सम्बन्धी जो अन्तर है, वह 'बिहारी तथा हिन्दी' शीर्षक के अन्तर्गत स्पष्ट किया जा चुका है। वहाँ बिहारी के अधिकांश उदाहरण भोजपुरी से ही लिए गए हैं। बीच-बीच में बँगला से भी उदाहरण दिए गए हैं। इससे बिहारी बोलियों के उच्चारण-सम्बन्धी स्थिति का बहुत-कुछ पता चल जाता है।

संज्ञा के रूप

मैथिली, मगही तथा भोजपुरी, तीनों, में संज्ञा तथा विशेषण के कई रूप होते हैं जिनके अर्थ में विशेष अन्तर नहीं होता। ये रूप हैं—लघु (Short), गुरु (Long) तथा अनावश्यक या अतिरिक्त (Redundant)। लघु रूप भी निर्बल (Weak) तथा सबल (Strong) हो सकते हैं।

लघु रूप ही वस्तुतः अति प्रचलित रूप हैं। निर्बल तथा सबल, इन दो रूपों में से निर्बलरूप वस्तुतः संज्ञा के अति लघु रूप हैं। निर्बल रूपों के अन्त में व्यञ्जन अथवा ह्रस्व 'इ' रहता है। इनमें 'आ' लगाने अथवा अन्तिम स्वर को दीर्घ करने से सबलरूप सिद्ध होते हैं। यथा— घोड़्, घोड़ा; लोह्, लोहा; छोट्, छोटा; मारि, (मारपीट) छोटि, छोटी आदि।

लघुरूपों में—या तथा वा संयुक्त करके ही बिहारी (मैथिली, मगही तथा भोजपुरी) में गुरुरूप सिद्ध होते हैं। यथा—पोँथिया, घोँड़वा आदि।

संज्ञा की भाँति ही विशेषण के लघुरूपों में भी—का तथा का (स्त्री० लिं०—की की) संयुक्त करके गुरु रूप सिद्ध होते हैं। यथा—बड़. का गुरुरूप बड़+का, एवं छोट् का छो'टका होगा। इसीप्रकार भारी का गुररूप भरिका होगा तथा छोटि (स्त्री० लिं०) का गुरुरूप छोँटकी होगा।

बहुवचन के रूप

वचन के सम्बन्ध में मैथिली तथा भोजपुरी की तुलना करते हुए, डा० जयकांत मिश्र पुस्तक के पृष्ठ ६३ में लिखते हैं—"मैथिली में बँगला की भाँति ही बहुवचन के रूप बनते हैं किन्तु भोजपुरी में-नि—न तथा न्ह् प्रत्यय संयुक्त करके ये रूप बनते हैं।" यह भी सत्य नहीं है। भोजपुरी में जहाँ एक ओर ऊपर के प्रत्ययों की सहायता से बहुवचन के रूप सिद्ध होते हैं, वहाँ मैथिली तथा बँगला की भाँति समुदायसूचक शब्दों के योग से भी बहुवचन के रूप बनते हैं। कभी-कभी तो भोजपुरी बहुवचन के रूपों में -नि—न—न्ह् तथा सभ् या लोगनि एक ही साथ लगते हैं। मैथिली तथा भोजपुरी दोनों, में 'सभ' संज्ञा के पहले या बाद में आवश्यकतानुसार प्रयुक्त होता है। नीचे भो० पु० लरिका, मै० नेना (लड़का) के सम्बन्ध कारक के बहुवचन के रूप दिए जाते हैं। यथा—भो० पु० लरिकन, लरिकनि, लरिकन्हि के अथवा लरिका सभ् के या लरिकन सभ के या लरिका लोगनि के= मै० नेना सभक, नेना सबहिक; नेना लोगनिक। यहाँ एक बात यह उल्लेखनीय है

कि भोजपुरी तथा मैथिली दोनों, में सभ तो संज्ञापदों के आदि में आ सकता है; किन्तु लोगनि तथा लोकनि सदैव बाद में ही आते हैं। यथा—भो॰ पु॰ सभ लरिका के या सभ लरिकन के = मैं॰ सभ नेनाक सबहि नेनाक।

साधारणतया सर्वनामों के भी बहुवचन के रूप, मैथिली तथा भोजपुरी में; ऊपर के नियमों से ही बनते हैं किंतु, यहाँ—कभी-कभी प्रत्ययों का भी व्यवहार होता है। अवधी में भी सर्वनामों के बहुवचन के रूप 'पचन' शब्द की सहायता से सम्पन्न होते हैं। यथा—हम पचन (हमलोग) तू पचन (तुम लोग) आदि।

अनुसर्ग

भोजपुरी तथा मैथिली अनुसर्गों की तुलना करते हुए डा॰ मिश्र अपनी पुस्तक के पृष्ठ ६३ में लिखते हैं—'भोजपुरी मे, सम्बन्ध कारक में, अनुसर्ग रूप में के व्यवहृत होता है, किन्तु पूरब की भाषाओं मे क, -कर अथवा केर का प्रयोग होता है।'

डा॰ मिश्र की ऊपर की धारणा भी मिथ्या ही है। ऐसा प्रतीत होता है कि आप केवल मैथिली को ही पूरबी अथवा मागधी का मानदण्ड मानकर उसकी तुला पर अन्य पूरबी भाषाओं को तौलना चाहते हैं। केवल भोजपुरी में ही सम्बन्ध-कारक का अनुसर्ग के नहीं है, अपितु मगही में भी यह इसी रूप में मिलता है। इस के का भी मागधी अपभ्रंश से उतना ही सम्बन्ध है, जितना -क, -कर तथा -केर का। इसकी व्युत्पत्ति का विश्लेषण इस पुस्तक के अनुच्छेद §२२८ में किया गया है। वस्तुतः अवधी में यह अनुसर्ग भोजपुरी (मागधी) से ही गया है, अवधी से भोजपुरी में नहीं आया है।

मैथिली -क अनुसर्ग का भोजपुरी में सर्वथा अभाव है, यह बात भी नहीं है। प्राचीन भोजपुरी गीतों में यह वर्तमान है। सम्बन्ध कारक में -कर अनुसर्ग, आधुनिक भोजपुरी में केवल सर्वनाम मे ही मिलता है। यथा—केकर (किसका), जेकर, तेकर (तिसका), ओकर, होकर (उसका), आदि। ये रूप किंचित परिवर्तन के साथ मैथिली में भी वर्तमान हैं।

सर्वनाम तथा सहायकक्रिया

इस सम्बन्ध मे अपनी पुस्तक के ऊपर के पृष्ठ में ही डा॰ मिश्र लिखते हैं—'भोजपुरी में आदरप्रदर्शक सर्वनाम रउरे तथा सहायक क्रिया बाटे का व्यवहार होता है, किन्तु इसका मैथिली में अभाव है। इसीप्रकार भोजपुरी में, मैथिली की भाँति, कर्म के अनुसार क्रिया रूपों में भी परिवर्तन नहीं होता।'

भोजपुरी मे आदरसूचक सर्वनाम के रूप मे राउर तथा अपने का व्यवहार होता है। इनकी व्युत्पत्ति आगे अनुच्छेद §४२६-४२८ में दी गई है। अपने का व्यवहार तो मैथिली तथा बँगला मे भी होता है। किन्तु जिस प्रकार मैथिली के आदरसूचक सर्वनाम अइस, आइस, अहाँ आदि का प्रयोग भोजपुरी में नहीं होता, उसी प्रकार बँगला में भी

इनका अभाव है। क्या इस कारण यह कथन युक्ति संगत होगा कि बँगला की उत्पत्ति मागधी से नहीं हुई है अथवा उसका सम्बन्ध मागधी से नहीं है।

सहायक क्रिया बाटे की व्युत्पत्ति आगे अनुच्छेद §४६४ में दी गई है। यह भी √वृत्, वर्तते का मागधी रूप ही है, जो भोजपुरी (मागधी) से अवधी में गया है।

अब रह गई मैथिली में, कर्म के अनुसार क्रिया में परिवर्तन की बात। इस सम्बन्ध में तनिक ब्योरे के साथ विचार करने की आवश्यकता है। बात यह है कि मैथिली में कर्त्ता तथा कर्म, दोनों के अनुसार क्रियारूपों में परिवर्तन होता है। यथा—

१ अनादरसूचक कर्ता, अनादरसूचक कर्म ;

२ अनादरसूचक कर्ता, आदरसूचक कर्म ;

३ आदरसूचक कर्ता , अनादरसूक कर्म ;

४ आदरसूचक कर्ता , आदरसूचक कर्म ;

द्वितीय तथा चतुर्थ रूप की क्रियाओं के अन्त में मैथिली में न्हि प्रत्यय लगता है। यथा—देखलथिन्हि = उसने (राजा ने) उसको (राजा को) देखा अथवा उसने (दास ने) उसको (राजा) को देखा। प्रथम रूप में क्रिया का रूप देखलक होता है = उसने (दास ने) उसको (दास को) देखा। तृतीय रूप में क्रिया का रूप होता है, देखलथि = उसने (राजा ने) उसको (दास को) देखा।

मगही में भी यही प्रक्रिया चलती है, किन्तु भोजपुरी में थोड़ी भिन्न व्यवस्था है। यहाँ प्रत्येक दशा में क्रिया कर्ता के अनुसार ही रहती है। यदि कर्ता आदरसूचक है तो क्रिया भी आदरसूचक होती है, किन्तु यदि कर्ता अनादरसूचक है तो क्रिया भी अनादरसूचक होती है। यथा—दास ने दास को देखा अथवा दास ने राजा को देखा = देखलसि ; किन्तु राजा ने राजा को देखा अथवा राजा ने दास को देखा = देखलन्हि। भोजपुरी के इन दोनों रूपों का प्रभाव स्पष्ट रूप से अवधी पर भी पड़ा है जहाँ अनादर तथा आदरसूचक कर्ता के अनुसार क्रिया के क्रमशः देखिस तथा देखेन रूप मिलते हैं।

ऊपर के विवरण से यह स्पष्ट हो जायेगा कि जहाँ भोजपुरी में केवल दो क्रिया रूप मिलते हैं, वहाँ मैथिली में तीन। मैथिली क्रियापदों की इस जटिलता का बँगला में भी अभाव है। यह आधुनिक मैथिली की अपनी विशेषता है। विद्यापति तथा वर्णरत्नाकर की मैथिली में भी इस जटिलता का प्रायः अभाव है। आगे भोजपुरी, मगही तथा मैथिली अनुसर्गों, संज्ञारूपों, सर्वनामों एवं क्रियारूपों की तुलनात्मक तालिकाएँ दी जाती हैं, जिनसे यह स्पष्ट हो जायेगा कि इनमें कितनी अधिक पारस्परिक एकता है। अन्त में मैथिली एवं मगही भाषाओं का संक्षिप्त परिचय भी दिया गया है।

अनुसर्ग (Postpositions)

	हिन्दी	भोजपुरी	मगही	मैथिली
कर्म-सम्प्रदान	को	के, कें, ला, ले, लागि खातिर	के लागी, लेल्, ला खातिर	के, कें, कै, कं, कौं लागी, लेल्, लै, ले खातिर्
करण (Agent)	ने	...	...	...
अपादान	से	से, सें	से, से मतीं	से से, सै, स, सों, सं
सम्बन्ध	का, की, के	के, कें, कर्	केर्,केरा, (स्त्रीलिङ्ग) केरी	कर्, केर्
अधिकरण	में, पर	में, पर, परि	मे, में, मो	में, मो

नोट—'क' वाले रूप कर्म तथा सम्प्रदान दोनों के हैं, किन्तु अन्य रूप केवल सम्प्रदान में प्रयुक्त होते हैं।

आकारान्त घोड़ा शब्द (पुँल्लिङ्ग)

		हिन्दी (ख० बो०)	भोजपुरी	मगही	मैथिली
एकवचन	कर्ता	घोड़ा	घोड़ा, घोरा	घोड़ा	घोड़ा
	कर्म	घोड़े को	घोड़ा के, कें	घोड़ा के	घोड़ा के, कें, कै, कैं
	सम्प्रदान	घोड़े को	घोड़ा के, ले	घोड़ा के, ले ल्	घोड़ा के, ले
	अपादान-करण	घोड़े से	घोड़ा से, सें	घोड़ा से, सें	घोड़ा से, सै, स, सँ
	सम्बन्ध	घोड़े का	घोड़क्, घोड़ा के	घोड़क् घोड़ा-केर, केरा, के	घोड़क्, घोड़ाक्, घोड़ाकेँ, क, केर, कर्
	अधिकरण	घोड़े में, पर	घोड़ा में, मों, पर	घोड़ा में, मैं, मो	घोड़ा में, मों
	सम्बोधन	घोड़े	घोड़ा, घोँड़ऊ	घोड़ा	घोड़ा, घोँड़ऊ
बहुवचन	कर्ता	घोड़े	घोड़न्, घोड़न्ह्, घोड़ा सभ्	घोड़न्	घोँड़नि, घोड़ा सभ्
	कर्म	घोड़ों को	घोड़न क के, घोड़न्ह के के, घोड़ा सभ के, के	घोड़न के	घोँड़नि के कें, कै, कैं
	सम्प्रदान	घोड़ों को	घोड़न्, घोड़न्ह् के, ले	घोड़न् के, लेल्	घोँड़नि के, ले
	अपादान करण	घोड़ों से	घोड़न् घोड़न्ह् से, सें	घोड़न् से, सें	घोँड़नि से, सै, स, सँ
	सम्बन्ध	घोड़ो का	घोड़न्, घोड़हनक् घोड़न्ह्, के	घोँड़नक्, घोड़न् केर्, केरा, के	घोँड़नक्, घोँड़नि के, क केर् कर्
	अधिकरण	घोड़ों में, पर्	घोड़न्, घोड़न्ह्, में, मों, पर्	घोड़न में, मैं, मों	घोँड़नि में, मों
	सम्बोधन	घोड़ो	घोड़न	...	घोँड़नि

व्यञ्जनान्त घर् शब्द (पुंल्लिङ्ग)

एकवचन

	हिन्दी	भोजपुरी	मगही	मैथिली
कर्ता	घर्	घर्	घर्	घर्
तिर्यक	घर्	घर्	घर्, घरे	घर्
करण (प्राचीनरूप	...	घरें	घरें	घरें, घरैं, घरहिं
अधिकरण (प्राचीन रूप)	...	घरे	घरे	घरे

बहुवचन

	हिन्दी	भोजपुरी	मगही	मैथिली
कर्ता	घर्	घर्न, घरन्हि	घरन्	घरन
तिर्यक	घरों	घरन्	घरन्	घरन्

नोट:—मैथिली के बहुवचन में सभ् तथा लोकनि प्रयुक्त होते हैं और भोजपुरी में लोगनि का व्यवहार होता है।

ईकारान्त नारी शब्द (स्त्रीलिङ्ग)

एकवचन

	हिन्दी	भोजपुरी	मगही	मैथिली
कर्त्ता	नारी	नारी	नारी	नारी
तिर्यक	नारी	नारी	नारी	नारी
करण (प्राचीनरूप)	....	नरियें	×	(नरियें) *
अधिकरण (प्राचीनरूप)	....	नरिये	×	×

* नारियें या नरियें रूप का अत्यल्प प्रयोग मिलता है।

बहुवचन

	हिन्दी	भोजपुरी	मगही	मैथिली
कर्त्ता	नारियाँ	नारिन्, नारिन्ह्, नारी सभ्	नारिन्	नारिन्
तिर्यक	नारियों	नारिन्, नारिन्ह्, नारी सभ्	नारिन्	नारिन्

नोट—भोजपुरी तथा मैथिली, दोनों में ऊपर के बहुवचन के रूपों के स्थान पर सभ् तथा लोकनि, लोगनि संयुक्त करके बहुवचन के रूप बनते हैं।

व्यञ्जनान्त बात् शब्द (स्त्रीलिङ्ग)

एकवचन

	हिन्दी	भोजपुरी	मगही	मैथिली
कर्त्ता	बात्	बात्	बात्	बात्
तिर्यक	बात्	बात्	बात्	बात्
करण (प्राचीनरूप)	....	बातें	×	बतै
अधिकरण (प्राचीनरूप)	....	बाते, बते		बते

बहुवचन

	हिन्दी	भोजपुरी	मगही	मैथिली
कर्त्ता	बातें	बातन्, बातन्ह् बात सभ्	बातन्	बातन् बतियनि
तिर्यक	बातों	बातन्, बातन्ह् बात सभ्	बातन्	बातन् बतियनि

सर्वनाम के रूप

उत्तमपुरुष सर्वनाम

मैं

		हिन्दी	भोजपुरी	मगही	मैथिली
एकवचन	कर्त्ता	मैं	[मैं] मयँ, हम्	हम्	हम, हमे, हम्मे, हम्मै
	कर्म-सम्प्रदान	मुझे, मुझको	मोरा, मोरा के के हमरा, हमरा के केला	मोरा, मोरा के हमरा हमरा लेल्	मोरा, मोरा कें हमरा, हमरा लेल्
	करण (Agent)	मैं ने	...	...	...
	अपादान	मुझ् से	मोरा, हमरा सें	मोरा, हमरा सें	मोरा, हमरा से
	सम्बन्ध	मेरा	मोर्, मोरे, मोरा हमार्, हमरे हमरा	मोर्, मोरा हम्मर्, हमरा हमार, हमरे	मोर्, मोरे, मोर हमर्, हमर्, हमरे
	अधिकरण	मुझ { में / पर	मोरा, हमरा में	मोरा, हमरा में	मोरा, हमरा में
बहुवचन	कर्त्ता	हम्	हमनीका, हमरन्	हमनी, हमरनी	हमनी, हमें, हम् (सभ्) हमरा सभ्के
	कर्म-सम्प्रदान	हमें हमको	हमनी, हमनी हमरन्, हमरन् { के / ला	हमनी, हमनी हमरनी, हमरनी { के / ले- / ल्	हमरा सभ { के / ले- / ल
	करण (Agent)	हमने	..	..	..
	अपादान	हमसे	हमनी, हमरन् सें	हमनी, हमरनी सें	हमरा सभ् सें
	सम्बन्ध	हमारा	हमनी, हमरन, के, का	हमनी, हमरनी, के केर्, केरा	हमरा सभ् के
	अधिकरण	हम { में / पर	हमनी, हमरन् में, पर्	हमनी, हमरनी में	हमरा सभ में

मध्यमपुरुष सर्वनाम
तू

		हिन्दी	भोजपुरी	मगही	मैथिली
एक वचन	कर्ता	तू	तें, तूँ	तूँ, तों	तोंह, तोंहें, तों, तूँ
	कर्म सम्प्रदान	तुझे तुझको	तोरा, तोरा } के, कें तोंहरा, तोंहरा } ला	तोरा, तोरा } के तोंहरा, तोंहरा } लेल्	तोरा, तोरा } कें तोंहरा, तोंहरा } लेल्
	करण (Agent)	तू ने	...	...	...
	अपादान	तुझ से	तोरा, तोहरा सें	तोरा, तोंहरा सें	तोरा, तोंहरा सें
	सम्बन्ध	तेरा	तोर, तोरें, तोरा तोंहार, तोंहरें, तोंहरा	तोर, तोरा, तोहर्, तोंहार्, तोंहरें, तोंहरा	तोर, तोर, तोरें तोहर्, तोंहर्, तोंहरें
	अधिकरण	तुझ { में / पर्	तोरा तोंहरा में	तोरा तोंहरा में	तोरा, तोंहरा में

		हिन्दी	भोजपुरी	मगही	मैथिली
बहुवचन	कर्ता	तुम	तोँहनीका, तोँहरन्	तोँहनी, तोहरनी	तोँह्, तोहँ, तोँ तोँहरा, तोरा } सभ्
	कर्म—सम्प्रदान	तुम्हें तुमको	तोँहनी, तोँहनी तोँहरन, तोँहरन } के, कें ला	तोँहनी तोहरनी } के लेल्	तोँहरा सभ्
	करण (Agent)	तुमसे	...	...	...
	अपादान	तुम से,	तोँहनी, तोँहरन् सें	तोँहनी, तोहरनी सें	तोँहरा सभ् सें
	सम्बन्ध	तुम्हारा	तोँहनी, तोँहरन्, के, का	तोँहनी तोहरनी } केँ, केर् केरा	तोँहरा सभ् के
	अधिकरण	तुम { में पर्	तोँहनी तोँहरनी { में	तोँहनी, तोँहरनी में	तोँहरा सभ् में

निकटवर्ती उल्लेखसूचक सर्वनाम—यह

		हिन्दी	भोजपुरी	मगही	मैथिली
एकवचन	कर्ता	यह	ऊ, एऊ, एह एहि, ए, इहाँ	ई	ई, इ, इअ, ऐ, ऐं, एँ हई, हे, इहे, इहाय
	कर्म, सम्प्रदान	इसे इसको	ए के, ए कर, ए करा हे करा इहि, इहका, हिनि, हिन्हका, इहौंक { के, कें	ए क ए करा { के, लें, ल	एहि, एई, एई एकरा हेकरा { के, लें, ल
	करण (Agent)	इसने	...	...	..
बहु वचन	कर्ता	यह, ये	इन्हनका, हिन्हनका इन्हनीका, हिन्हन्हीका इहवोंका	इ, इंन्ह कनी	इन्, इन्ह हिनि, हिन्हि
	कर्म, सम्प्रदान	इन्हें इन्, इन्ह { को	इन्हे, हिन्हें, इन्हन हिन्हन, इहवों सभ, इनका { के, कें	इन्ह इन्हकरा { के, लें, ल	इन्ह, हिन्ह, इन्हकरा, इनका, हिन्हकरा, हिनका { के, लें, ल
	करण (Agent)	इन इन्हों { ने	...	...	...

दूरवर्ती उल्लेखसूचक सर्वनाम—वह

		हिन्दी	भोजपुरी	मगही	मैथिली
एकवचन	कर्त्ता	वह	उ, ऊ, उन्हि, हुन्हि	ऊ	उ, ऊ, उअं, ओ, ओ, इऊ, हौ, वे वैं वह्नाय
	कर्म-सम्प्रदान	उसे, उसको	ओ, ओहि, ओ करा, हो करा, ओहों, उनका } के, के	ओ, ओ करा } के, ले, ला	ओ हि, ओ इ, ओ, ऊ, ओ करा, हो करा } के, ले, ल
	करण (Agent)	उसने	...	...	...
बहुवचन	कर्त्ता	वह, वे	उन्हन्, उन्हनी, हुन्हन्, हुन्हनी, लोग्, ओ करन	ऊ, उन्हकनी	उन्ह, उन्, हुन्हि, हुनि
	कर्म-सम्प्रदान	उन्, उन्ह } को	उन्हन्, उन्हनी, हुन्हन्, हुन्हनी, ओ करन } के, के	उन्ह, उन्हकरा } के, ले, ल	उन्ह, हुन्ह, उन्हकरा, उनका, हुन्हकरा, हुनका } के, ले, ला
	करण (Agent)	उन, उन्हों } ने	...	...	...

सम्बन्धवाचक सर्वनाम—जो

		हिन्दी	भोजपुरी	मगही	मैथिली
एकवचन	कर्ता	जो	जे, जौन्, जवन्	जे, जऊन्, जौन्	जे, जें, जैं
	कर्म-सम्प्रदान	जिसे जिसको	जे, जौना, जवना जेह्, जिन्हि } के, कें, ला	जेह, जेंकरा } के, लेल	जेंहि, जाहि, जें जकरा, जेंकरा } के, लेल्
	करण (Agent)	जिसने	...	...	...
	सम्बन्ध	जिसका	जेंह के, जेकर, जेंकरे, तिर्यक- जेंकरा	जेंह कें, जेकर्, जेंकरा, (स्त्री॰ लिं॰) जे करी	जेंहि, जाहि, जें (के) जेकर, जेकर्, जकर
बहुवचन	कर्ता	जो	जे, जौन्, जवन् लोग्, जिन्हन्	जे, जिन्हकरी	जिन्, जिन्ह्, जिन्हि जिन्हीं
	कर्म-सम्प्रदान	जिन् जिन्ह् } को	जेंकरन, जिन्ह्, जिन्हका } के, ला	जिन्ह्, जिन्हकरा } (के) लेल्	जिन्ह्, जिन्हकरा, जनिका- } लेल्
	करण (Agent)	जिन जिन्हो } ने	...	...	...

सह-सम्बन्धवाचक सर्वनाम—सो

		हिन्दी	भोजपुरी	मगही	मैथिली
एकवचन	कर्ता	सो	ते, से, तौन्, तवन्	से, तउन्, तौन्	से, ते, तें
	कर्म-सम्प्रदान	तिसे तिसको	तेंह्, तेकरा, तौना } के ला	तेंह्, तेंकरा } के लेल्	तेंहि, ताहि, ते तकरा, तेंकरा } के लेल्
	करण (Agent)	तिसने			
	सम्बन्ध	तिसका	तेंह कें, तेकर्, तेंकरे, (तिर्यक) तेंकरा	तेंह के, तेकर्, तेकरा (स्त्रीलिङ्ग) तेंकरी	तेंहि, ताहि, तें (कें) तेकर्, तकर्, तेंकर्
बहुवचन	कर्ता	सो	से, ते, तौन्, तवन् तिन्हन्	से, तिन्हकनी	तिन्, तिन्ह तिन्हि, तिन्ही
	कर्म-सम्प्रदान	तिन्ह्, तिन् { को	तिन्हन्, तिन्हनी तिन्ह्, तिन्हका } के ला	तिन्ह तिन्ह्करा } के लेल्	तिन्ह, तिन्हकरा तिनका } के लेल्
	करण (Agent)	तिन तिन्ह } ने			

प्रश्नवाचक सर्वनाम—कौन

		हिन्दी	भोजपुरी	मगही	मैथिली
एकवचन	कर्त्ता	कौन	के, कॅवन्, कवन् , कौन्	के, को, कऊन्, कौन्	कं, कौन्
	कर्म-सम्प्रदान	किसे, किसको	केह्, केहि, के केकरा, कौना } के / ला	केह्, केकरा } के / तें / ल्	के हि, के, केकरा, ककरा } के / ले
	करण (Agent)	किसने	..	..	..
बहुवचन	कर्त्ता	कौन्	के, कवन, कौन्, (लोग्)	के, किन्हकनी	किन्, किन्ह्, किन्हि, किन्ही
	कर्म-सम्प्रदान	किन्ह्, किन् } को	किन्हन्, केकरन्, किन्ह् } के / ला	किन्ह, किन्ह-करा } के / ते / ल	किन्ह, किन्ह-करा, कनिका } के / ले
	करण (Agent)	किन (ने)	..	..	..

अनिश्चितवाचक सर्वनाम—कोई

		हिन्दी	भोजपुरी	मगही	मैथिली
एकवचन	कर्त्ता	कोई	के̄हू, केऊ, के̄ऊ कवनो, कोनो	कंहू, केऊ, कोई, कउनों, कौनों	केऊ, कोइ कोय, के̄ओ̄, कउनो̄, कौनो̄
	कर्म-सम्प्रदान	किसी को	के̄हू, केऊ के̄ऊ, कवनो, कौनो, के̄करो, कथियो, केथियो } के/ला	के̄करो̄ कौनो } के/ले̄/ल्	ऊपर के सभी रूप तथा के̄करो, के̄करौ̄, ककरहुँ, केकरहौ̄, किथिओ } के/ले
	करण (Agent)	किसी ने	..	...	..

	हिन्दी	भोजपुरी	मगही	मैथिली
कर्ता	क्या	का, कथी, केथी	का, की, कौंची	का, की, कथी, केँथी
कर्म सम्प्रदान }	काहे को	ऊपर के रूप तथा काहे, का के थी. कथी } के / ला	काहे / कौंची } के / ले / ल	ऊपर के सभी रूप तथा काहे, कहि, किये, किथी, केँथी, कथी } के / ले
अव्यय रूप	कुछ	कुछ, कुच्छो, किछु, कछुवा, कछुओ, किछुओ	कुछु, कुच्छो, कुच्छओ	कुछ, कुछु, किछु, किछियो

सर्वनामजात विशेषण

	हिन्दी	भोजपुरी	मगही	मैथिली
परिमाण-वाचकविशेषण	इतना इत्ता	अतेक, अतहत्, इतहत् अतना एतना, एत्ता	एत्तेक, एतना	एतेक, एतवाय,[1] एतवे[2] एतै,[1] एतना
	उतना उत्ता	ओतेक, ओतहत्, होतहत ओतना होतना	ओत्तेक्, ओतना	ओतवाय,[1] ओतवे,[2] ओतै,[1] ओतना
	जितना जित्ता	जतेक, जतहत् जतना, जेतना	जेत्तेक, जेतना	जेतवाय,[1] जेतवे,[2] जेतै,[1] जेतना
	तितना तित्ता	ततेक, ततहत् ततना, तेतना	तेत्तेक, केतना	तेतवाय,[1] तेतवे,[2] तेतै,[1] तेतना
	कितना कित्ता	कतेक कतहत्, कतना, केतना	केत्तेक, तेतना	केतवाय,[1] केतवे,[2] केतै,[1] केतना
प्रकार वाचकविशेषण	ऐसा	अइसन्	अइसन्	ऐसन, एहिन्,[1] एहनु,[2] एहन्,[3] ऐन्ह्,[1] एन्ह्,[1] एना, इना,[3] अहिन्[2] ईरंग
	वैसा	वइसन्, ओइसन्	ओइसन्	वैसन्, ओहिन्,[1] ओहनु,[2] ओहिन्,[2] औसन्, औन्ह्,[1] ओहन,[3] ओना[3]
	जैसा	जइसन्	जइसन्	जैसन्, जैहिन,[1] जेहन्,[2] जहिन्[2] जेहन्,[3] जैन्ह्,[1] जिना,[3] जेना, जेरंग
	तैसा	तइसन्	तइसन्	तैसन्, तैहिन्,[1] तेहनु,[2] तहिन्,[2] तेहन्,[3] तैन्ह्,[1] तिना,[3] तेना, सेरंग
	कैसा	कइसन्	कइसन्	कैसन, केहिन,[1] केहनु,[2] कहिन्,[2] केहन्,[3] केन्ह्,[1] किना,[3] केना, कीरंग

१. दक्षिणी-पूर्वी मैथिली
२. पूर्वी मैथिली
३. गंगा के दक्षिण की मैथिली

वर्तमान काल—मैं हूँ आदि

हिन्दी	भोजपुरी	मगही	मैथिली
मै हूँ	(१) बाटी, बाड़ी, बानी, (२) हईं, हवीं	(१) ही, हीं (२) हकी, हिकूं, हिए	(१) छी, छिऐ छिऐन्हि, छिअहु (स्त्री० लिं०) छहि (२) थिकहु, थिकिए, थिकिऐन्हि, थिकिअहु
तू है	(१) बाट, बाड़, बाटे, बाड़े, (२) हव, हवे	(१) हें, हहिन ह, हहुन् (२) हँ, हे है हहो, हको हकिन्, हहू, हहो, हहूँ हखुन्	(१) छह, छहुन्हि, छी छिए, छिऐन्हि, छे, छैं, छहक्, छहिक् (२) थिकह, थिकहुन्हि थिकहू, थिकिए, थिकिएन्हि, थिकें, थिकैं, थिकहक्, थिकहोक, (स्त्री०लिं०) थिकीह, थिकीहि
वह है	(१) बाड़े, बाड़ें, बाटे, बा, बाय बाटै, बटुए (२) हवे, ह	(१) है, हा हन् हैं, हइन् (२) ह, हे, हों, हस्, हकै, हहीं, हखिन्, हथ् हथी, हथिन् (स्त्री० लिं०) हखिन् हखिनी, हथिन् हथिनी	१) अछि, छै, छैन्ह, छथि छथीन्हि, छिक्, छहु, छथून्हि (२) थिक्, थिकै थिकैन्हि, थिकह थिकथीन्हि, थीक्, थिकहु, (स्त्री० लिं०) थीकि, थिकीह, थिकीहि

अतीत – मैं था आदि

मैं था	रहलों	हलूं, हलीं, हली .हलिए	१) छलहु, छलिए छलिऐन्हि (२) रही, रहिए; रहिऐन्हि
तू था	रहल (अ) रहले	हले, हलहिन् हल् हलहुन्, हलँ हले, हला, हलहीं, हला, हलह, हलहू, हलहो हलहूँ	(१) छलह, छलहून्हि, छलहु, छलिए, छलिऐन्हि (२) रहह, रहहून्हि, रही, रहिऐ, रहिऐन्हि
वह था	रहले, रहल्	हल्, हलहिन्, हलन् हलथिन्, हलै, हलहीं, हलखिन्, हलथी	(१) छल्, छलै, छलैन्हि, छलह छलथीन्हि (२) रहै, रहैन्हि, रहथि, रहथीन्ह रहथून्हि

भविष्यत् काल—मैं हूँगा आदि

हिन्दी	भोजपुरी	मगही	मैथिली
मैं हूँगा	होइथि	होव्, होवइ, होवउ	होएब्, होव्
तू होगा	होइबे, (अनादर-सूचक होइब (साधारण आदर-सूचक होइबि (अति आदर-सूचक) होई (स्त्री लिं०)	होवँ, होवे, होवा, होवे होवहीं (स्त्री लि०) होवीं, होबी	होएबह (अनादर-सूचक) होएब (आदर-सूचक)
वह होगा	होई (अनादर सूचक) होइहें (साधारण आदर-सूचक) होइथि (अति आदर-सूचक)	होई होत, होतइ, होतउ (स्त्री लि०) होती	होएत (अनादर-सूचक) होएताह (आदर-सूचक)

मैथिली

मैथिली मिथिलाप्रदेश अथवा प्रान्त की भाषा है। मिथिला बिहार प्रान्त का वह भाग है जो गंगा के उत्तर तथा भोजपुरी क्षेत्र के पूरब है। प्राचीनकाल में यह एक स्वतंत्र प्रान्त था। इसका एक नाम विदेह भी था; क्योंकि यहाँ के प्राचीन राजवंश का यही नाम था। इस नाम का उल्लेख वेदों मे भी मिलता है। विदेह वंश के ही एक राजा का नाम मिथि था। उसने इस भूमि के प्रत्येक भाग में अश्वमेध यज्ञ किया था, अतएव प्राचीनकाल से ही यह भूमि पवित्र मानी गई है। लोगों का विश्वास है कि जिस क्षेत्र में ये यज्ञ सम्पन्न हुए थे, उसकी, सीमा उत्तर में हिमालय, दक्षिण में गंगा, पूरब में कोसी तथा पश्चिम में गंडक थी। इसी क्षेत्र का नाम मिथिला पड़ा था।* याज्ञवल्क्यस्मृति तथा रामायण में भी इस नाम का उल्लेख मिलता है।

उणादि सूत्र [मिथिलादयश्च] के अनुसार मिथिला शब्द की उत्पत्ति 'मन्थ्' धातु से हुई है। मत्स्यपुराण के अनुसार मिथिल एक महातेजस्वी ऋषि थे। सम्भवतः इन्हीं के नाम पर इस प्रान्त का नाम मिथिला पड़ा। शाकटायन ने इस शब्द की व्युत्पत्ति देते हुए लिखा है—"यह वह देश है जहाँ शत्रुओं का दमन हो अथवा जहाँ शत्रु पराजित हो जायँ"। वास्तव में यह व्युत्पत्ति काल्पनिक है।

डा० सुभद्र झा के अनुसार मिथिला शब्द का सम्बन्ध मिथ (युग्म) से है। आधुनिक मिथिला में प्राचीनयुग के वैशाली, विदेह तथा अङ्ग, ये तीन प्रान्त अन्तर्भुक्त हैं। जिसप्रकार आगरा तथा अवध, इन दो प्रान्तों को मिलाकर संयुक्तप्रान्त अथवा प्रदेश बना था, उसीप्रकार प्राचीनयुग में भी कदाचित् मिथिला प्रान्त का निर्माण हुआ होगा।

ऊपर मिथिला की सीमा का उल्लेख करते हुए गंगा, गंडक तथा कोसी, इन तीन नदियों के नाम आए हैं। किन्तु इन नदियों के प्रवाह के मार्ग, विशेषतया कोसी में इतने अधिक परिवर्तन हुए हैं कि वास्तव में आज इस सीमा को निश्चित करना अत्यन्त कठिन है। डा० जयकान्त मिश्र के अनुसार मिथिला की प्राचीन सीमा के अन्तर्गत आधुनिक मुजफ्फरपुर, दरभंगा, चम्पारन, उत्तरी मुंगेर, उत्तरी भागलपुर, पूर्निया के कुछ भाग तथा नेपालराज्य के रौतहट, सरलाही, सप्तरी, मोहतरी तथा मोरंग ज़िले आ जायेंगे।[1] प्राचीन तथा मध्ययुग में नेपाल तथा मिथिला का घनिष्ट सम्बन्ध था। शिरध्वज जनक की राजधानी जनकपुर की स्थिति भी इस बात को स्पष्टतया प्रकट करती है कि अतीतकाल में भी नेपाल की तराई का कुछ भाग मिथिलाप्रान्त के अन्तर्गत अवश्य रहा होगा।

---

* चन्दा झा ने ऊपर की सीमा का उल्लेख निम्नलिखित पद में किया है :—

गंगा बहथि जनिक दक्षिण दिशि पूर्व कौशिकी धारा।
पश्चिम बहथि गंडकी उत्तर हिमवत बल विस्तारा।
कमला त्रियुगा अमृता धेमुडा बागमती कृत सारा।
मध्य बहथि लक्ष्मणा प्रभृति से मिथिला विद्यागारा।

[1] डा० जयकान्त मिश्र—'ए हिस्ट्री ऑव मैथिली लिटरेचर पृ० १-२।

मिथिला का एक नाम तिरहुत भी है जो संस्कृत 'तीरभुक्ति'[1] शब्द से बना है। पुराणों तथा तांत्रिक ग्रन्थों में इस नाम का उल्लेख मिलता है। आजकल लोग प्रायः दरभंगा तथा मुजफ्फरपुर को तिरहुत नाम से पुकारते हैं, यद्यपि तिरहुत डिवीजन के अन्तर्गत इनके अतिरिक्त चम्पारन तथा सारन की भी गणना है। वर्णरत्नाकर में भी तिरहुत नाम मिलता है।[2]

मैथिली के अन्य नाम तथा इसका उल्लेख

मैथिली, जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, मिथिला निवासियों की भाषा तथा बोली है। इसका उल्लेख कोलब्रुक के १८०१ ई० के एशियाटिक रिसर्चेज, भाग ७, पृ० १९९ में उनके संस्कृत तथा प्राकृत भाषा सम्बन्धी निबन्धों के अन्तर्गत मिलता है। डा० ग्रियर्सन ने कोलब्रुक के इन निबन्धों का उल्लेख अपने ग्रन्थ "एन इण्ट्रोडक्शन टु द मैथिली डायलेक्ट ऑव बिहारी लैंग्वेज एज़ स्पोकेन इन् नार्थ बिहार" के पृष्ठ १५ (भूमिका) में किया है। अपने निबन्ध में कोलब्रुक ने मैथिली का सम्बन्ध बँगला से बतलाया है। उन्होंने यह भी लिखा है कि इस भाषा का साहित्य में प्रयोग नहीं होता, अतएव इसके सम्बन्ध मेंविशेषरूप से लिखना अनावश्यक है।

इसके पश्चात् सिरामपुर के मिशनरी लोगों ने अपनी सोसाइटी के १८१६ ई० के छठे मेम्वायर मे अन्य आर्यभाषाओं से तुलना करते हुए मैथिली का उल्लेख किया है। [देखो, अर्ली पब्लिकेशन ऑव सिरामपुर मिशनरीज़, इंडियन एंटिक्वेरी, १९०३, पृष्ठ २४९...] इसका दूसरा नाम तिरहुतिया भी मिलता है। इसका उल्लेख सन् १७७१ की बेलिगत्ती कृत 'अल्फाबेटुम ब्राह्मनिकुम' की अम्बुज की भूमिका में मिलता है। इसमें कई भाषाओं के साथ 'तुरुतिअन' [Tourutians] अथवा 'तिरहुती' का भी उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त फैलन, हार्नले, केलॉग तथा ग्रियर्सन जैसे भाषाशास्त्र के पण्डितों ने भी स्वरचित ग्रंथों में समय-समय पर इन नामों का उल्लेख किया है; किन्तु इसका प्राचीनतम उल्लेख 'आईने अकबरी' में मिलता है, जहाँ इसके लेखक ने इसे एक पृथक् भाषा के रूप में स्वीकार किया है [देखो, जारेटकृत, आईनेअकबरी का अनुवाद भाग ३, पृ० ११३]।

ऊपर मैथिली अथवा तिरहुतिया के सम्बन्ध में यूरोपीय विद्वानों के उल्लेखों पर विचार किया गया है। अब मिथिला में इस सम्बन्ध में जो सामग्री उपलब्ध है, उस पर भी विचार करना परमावश्यक है। कीर्त्तिलता के प्रारम्भिक पद में विद्यापति ने इसका नाम 'देसिल बअना" अथवा "अवहट्ट' दिया है। [देखो—डा० बाबूराम सक्सेना—'लैंग्वेज आव द कीर्त्तिलता,' ग्रियर्सन कॉमेमोरेशन वॉल्युम पृ० ३२३] इसकी भाषा चौदहवीं-शताब्दी का मैथिली अपभ्रंश है। डा० सुभद्र झा के अनुसार 'देसिल बअना' से उस समय के भद्रलोगों की भाषा से तात्पर्य है। अवहट्ट से विद्यापति की पदावली

१ जाता यत्र सीता सरिदमलजला बाग्मती यत्र पुण्या
यत्रास्ते सन्निधाने सुरनगरनदी भैरवो यत्र लिङ्गम्।
मीमांसा-न्याय-वेदाध्ययन-पटुतरैः पण्डितैर्मण्डिता या
भूदेवो यत्र भूपो यजनवसुमती सास्ति मे तीरभुक्तिः॥
(मिथिला में प्रचलित श्लोक)

२ वर्णरत्नाकर पृ० १३।

अथवा विद्यापति से एक शताब्दी पूर्व ज्योतिरीश्वर की भाषा से तुलना करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उसमें कवि ने उन शब्दों का प्रयोग किया है जो बोलचाल की मैथिली से लुप्त हो चुके थे। अवहट्ट (सं० अपभ्रष्ट) से वस्तुतः अपभ्रंशप्राकृत से तात्पर्य नहीं है, अपितु यह प्रारम्भिक नव्यभारतीयआर्य-भाषा का एक दूसरा नाम है। उदाहरण स्वरूप द्वित्व व्यञ्जनवर्णों का प्रयोग अपभ्रंश का एक प्रधान लक्षण है, किन्तु अवहट्ट में कभी-कभी इसका अभाव मिलता है, यथा सहस (पृ० २६), सात (पृ० ४२), माथे (पृ० ६८) आदि। इसीप्रकार इसके कर्त्ता कारक के रूप में—'उ' नहीं लगता। सर्वनाम एवं क्रिया के रूप तथा परसर्ग भी प्रायः नव्य-भारतीयआर्य-भाषा के ही हैं। यहाँ यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि 'अवहट्ट' के इस नामकरण का कारण क्या है? बात यह है कि संस्कृत के पुराने पण्डित संस्कृतेतर नव्य-आर्य-भाषाओं को प्रायः अपभ्रंश अथवा अपभ्रष्ट कहते हैं। इस बात के उदाहरण प्रायः सर्वत्र मिलते हैं। इन्हीं पण्डितों ने कदाचित् 'देसिल बअना' को 'अवहट्ट' नाम दिया होगा। [देखो—डा० सुभद्र झा—फार्मेशन ऑव मैथिली पृ० ४—५]

मिथिला में शिक्षा का माध्यम हिन्दी है, अतएव प्रत्येक मैथिल सरलता से हिन्दी में अपना विचार प्रकट कर लेता है। कई मैथिली भाषा-भाषी तो आज हिन्दी के उत्कृष्ट कवि और लेखक हैं।

मैथिली का क्षेत्र

मैथिली, दरभंगा, मुजफ्फरपुर, पूर्निया, मुंगेर तथा भागलपुर के जिलों में बोली जाती है। चम्पारन के पूर्वीभाग की भी यह बोली है; किन्तु पटना के पूरब तथा संथाल परगना के उत्तरीभाग में इसमें मगही का सम्मिश्रण होने लगता है। भागलपुर तथा तिरहुत सब-डिवीजन की सीमा पर नेपाल की तराई की बोली भी मैथिली ही है। बंगाल के मालदह तथा दिनाजपुर की बंगला-भाषा-भाषी जनता को छोड़कर अन्य लोग मैथिली का ही व्यवहार करते हैं। मध्यप्रदेश में बसे हुए मैथिलब्राह्मण भी मैथिली बोलते हैं किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से उन्होंने अब हिन्दी को ही अपना लिया है।

मैथिली की भाषासम्बन्धी सीमाएँ

मैथिली की पश्चिमी, पूर्वी, उत्तरी तथा दक्षिणी सीमाओं पर क्रमशः भोजपुरी, बँगला, नेपाली अथवा कुरा एवं मगही भाषा और बोलियाँ स्थित हैं। अपने ही क्षेत्र में मैथिली मुंडा तथा संथाली, इन दो अनार्य बोलियों से मिलती है। सीमा की भाषाओं का निर्णय करना सरल कार्य नहीं है और कभी-कभी निश्चित रूप से यह कहना भी कठिन हो जाता है कि इन भाषाओं अथवा बोलियों पर मैथिली का अधिक प्रभाव है अथवा मैथिली पर इनका प्रभाव है।

मैथिली की विभाषाएँ अथवा बोलियाँ

मैथिली की निम्नलिखित सात विभाषाएँ अथवा बोलियाँ हैं :—(१) आदर्श (स्टैण्डर्ड), (२) दक्षिणी, (३) पूर्वी, (४) छिका-छिकी, (५) पश्चिमी, (६) जोलही, और (७) केन्द्रीय जन-साधारण की मैथिली।

भौगोलिक दृष्टि से इन विभाषाओं के निम्नलिखित क्षेत्र हैं :—

१. आदर्श मैथिली— उत्तरी दरभंगा

२. दक्षिणी मैथिली— (क) दक्षिणी दरभंगा।
(ख) पूर्वी मुजफ्फरपुर।
(ग) उत्तरी मुंगेर।
(घ) उत्तरी भागलपुर।
(ङ) पश्चिमी पूर्निया।

३. पूर्वी मैथिली— (क) पूर्वी पूर्निया।
(ख) माल्दा तथा दिनाजपुर।
[इसे खोट्टा बोली भी कहते हैं]

४. छिका-छिकी— (क) दक्षिणी भागलपुर।
(ख) उत्तरी संथाल परगना।
(ग) दक्षिणी मुंगेर।

५. पश्चिमी मैथिली— (क) पश्चिमी मुजफ्फरपुर।
(ख) पूर्वी चम्पारन।

६. जोलहा या जोलही मैथिली—उत्तरी दरभंगा के मुसलमानों की बोली।

७. केन्द्रीय जन साधारण की मैथिली— (क) पूर्वी सोतीपुरा की बोली।
(ख) मधुबनी सबडिवीजन की निम्न श्रेणी की जातियों की बोली।

मैथिली अपने विशुद्धरूप में उत्तरी दरभंगा के ब्राह्मणों की बोली है। परम्परा से साहित्य में इसी का प्रयोग होता आया है और यही कारण है कि यह आज भी बहुत कुछ अपने मूलरूप में सुरक्षित है। डा० ग्रियर्सन ने इसे आदर्श (स्टैण्डर्ड) मैथिली के नाम से अभिहित किया है। मैथिली दरभंगा के दक्षिण, मुजफ्फरपुर के पूरब, पूर्निया के पश्चिम तथा मुंगेर एवं भागलपुर के उस भाग में भी बोली जाती है जो गंगा के उत्तरी किनारे पर है; किन्तु उत्तरीदरभंगा की मैथिली से इधर कुछ अन्तर पड़ जाता है। ग्रियर्सन ने इसे दक्षिणीआदर्श मैथिली का नाम दिया है। पूरब में, पूर्निया जिले में, यह बंगाली से प्रभावित हो जाती है और अन्त में इस जिले के पूर्वी भाग में यह सिरिपुरिया बोली में परिणत हो जाती है। सिरिपुरिया बोली वस्तुतः बंगला और मैथिली की सीमा की बोली है। इसका मुख्य स्रोत बँगला है। इसमें मैथिली वाक्यों का भी संमिश्रण हो गया है। यह बिहार की कैथी लिपि में लिखी जाती है, बँगला में नहीं। पूर्निया की मैथिली का डा० ग्रियर्सन ने पूर्वी मैथिली नामकरण किया है।

गंगा के दक्षिण में मैथिली, उसके पश्चिम में बोली जानेवाली मगही एवं बँगला से प्रभावित होने लगती है। इसके फलस्वरूप यह एक पृथक् बोली में परिणत हो जाती है जिसे छिका-छिकी नाम से पुकारते हैं। आदर्श मैथिली तथा छिका-छिकी में बहुत अंतर है। ध्वनि-तत्व की दृष्टि से मैथिली की सभी बोलियों में 'अ', 'इ', तथा 'उ' का अतिलघु उच्चारण होता है; किन्तु छिका-छिकी में इनके अतिरिक्त 'ए' तथा 'ओ' का भी अति लघु उच्चारण होता है। क्रियापदों की दृष्टि से जहाँ आदर्श मैथिली में -थीक् का प्रयोग होता

है, वहाँ छिका-छिकी में -छीक् अथवा -छीका का प्रयोग होता है। इसके छिका-छिकी नामकरण का भी वस्तुतः यही रहस्य है।

दरभंगा के पूर्वी अंचल तथा मुजफ्फरपुर की मैथिली पर सारन तथा चम्पारन जिलों में प्रचलित भोजपुरी का अत्यधिक प्रभाव है। कहीं-कहीं तो भाषा का ऐसा रूप मिलता है कि यह निश्चय करना भी कठिन हो जाता है कि वास्तव में वह मैथिली है अथवा भोजपुरी। इधर की मैथिली में 'अ' का उच्चारण प्रायः भोजपुरी की भाँति ही होता है। इसीप्रकार वर्तमानकालिकसहायक क्रिया के रूप में -अछ् की अपेक्षा यहाँ की मैथिली में -हो वाले रूपों का ही प्रयोग होता है।

मिथिला के सभी मुसलमान मैथिली नहीं बोलते। मुजफ्फरपुर तथा चम्पारन में वे एक पृथक् भाषा का व्यवहार करते हैं जिसका सम्बन्ध अवधी से है। यह यहाँ शेखाई, मुसलमानी या जोलहा बोली के नाम से पुकारी जाती है। चूँकि इस ओर अंसार जुलाहों की जनसंख्या अधिक है, इसीकारण इसका यह नामकरण किया गया है, किन्तु वास्तव में जोलहा या जोलही बोली उत्तरी दरभंगा के मुसलमान बोलते हैं। इसे अरबी-फारसी शब्दों से विकृत मैथिली भी कह सकते हैं।

मधुबनी सबडिवीजन की निम्नश्रेणी की जातियाँ जो मैथिली बोलती हैं, वह उच्च जातियों की मैथिली से भिन्न है।

मैथिली का संक्षिप्तव्याकरण

१. मैथिली में संज्ञा के तीन रूप मिलते हैं—(१) ह्रस्व, (२) दीर्घ, (३) अनावश्यक अथवा अतिरिक्त। कतिपय शब्दों के रूप नीचे दिए जाते हैं—

	हिन्दी	ह्रस्व	दीर्घ	अतिरिक्त
संज्ञा	घोड़ा	घोरा	घो॑रवा	घो॑रउआ
	घर	घर्	घरवा	घरउआ
	माली	माली	मॅलिया	मॅलीवा
	नाई	नाऊ	नउआ	नउअवा
विशेषण	मीठा	मीठा	मिठका / मिठका	मिठकवा
	मीठी	मीठी (स्त्री० लिं०)	मिठकी / मिठकी	मिठकिया

ह्रस्व का एक लघु (निर्बल) रूप भी होता है यथा—घोर।

वचन—संज्ञापदों के साथ सभ्, सबहि, लोकनि को संयुक्त करके मैथिली बहुवचन के रूप सम्पन्न होते हैं। यथा—नेना, एक लड़का; नेना सभ्, नेना सबहि, नेना लोकनि, लड़के।

कारक—इसमें केवल एक ही कारक—करण—मिलता है जो -एँ संयुक्त करके सम्पन्न होता है। आकारान्त संज्ञापदों में जब -एँ लगता है तब आ का लोप हो जाता है; किन्तु जब वह इ, ई तथा ऊ से अंत होनेवाले पदों में संयुक्त होता है तो ये ह्रस्व हो जाते हैं। यथा—नेनें (लड़के से या द्वारा), नेना सबहिएँ (लड़कों से या द्वारा); फल, फलें; पानी, पॅनिएँ; नेनी, लड़की, नेनिएँ, रघू (नाम), रघुएँ। इसके अतिरेक्त कभी-कभी अधिकरण के रूप भी मिलते हैं जो ए, हि अथवा -ही संयुक्त करके सम्पन्न होते है। यथा—घरे, घरहि, अथवा घरही (घर में)। इसीप्रकार -अक् तथा क् की सहायता से सम्बन्ध के रूप भी बनते हैं। यथा—नेनाक, लड़के का; नेना सभक्, अथवा सबहिक्, लड़कों का; फलक्, फलका; पानिक, पानी का; नेनीक, लड़की का, रघूक, रघूका। अन्य कारकों के रूप, कर्त्ता अथवा तिर्यक् के रूपों में अनुसर्ग संयुक्त करके सम्पन्न होते है। यथा—सम्प्रदान कें; करण-अपादान—सॅं, सौं, सम्बन्ध—केर्, कर्; अधिकरण—में, मँ। यथः —नेना के, लड़के के लिए।

लिङ्ग—आकारान्त संज्ञा तथा विशेषण पदों के स्त्रीलिङ्ग रूप -ई प्रत्यय की सहायता से बनते हैं। यथा—नेना (पु० लिं०) नेनी (स्त्री० लिं०)। -वा प्रत्ययान्त पदों के स्त्रीलिंग रूप -इया से बनते है। यथा—नेनवा, (पु० लिं०), नेनिया (स्त्री० लिं०) -अउआ से अंत होनेवाले अतिरिक्त पदों के स्त्रीलिंग रूप -ईवा संयुक्त करके बनते हैं। यथा—नेनउआ, (पु० लिं०) नेनीवा (स्त्री० लिं०)। व्यञ्जनान्त तद्भव विशेषण पदों के स्त्रीलिंग रूप एक अति ह्रस्व 'इ' के संयुक्त करने से सम्पन्न होते हैं। यथा—वड़् (बड़ा), वड़ि (स्त्री० लिं०); अधलाह् बुरा, अधलाहि (स्त्री० लिं०)। इसीप्रकार सुन्दर् का स्त्रीलिङ्ग रूप सुन्दरि होता है।

तिर्यक् रूप—ब्, र् तथा ल् से अन्त होने वाले शब्दों के तिर्यक् रूप आ से सम्पन्न होते हैं। इसके बाद विभिन्न अनुसर्गों का प्रयोग होता है। यथा-पहर्, पहरुआ, पहरा सौं, पहरुआ से। मैथिली में क्रियावाचक विशेष्य पद (Verbal Noun) -ब, तथा- ल में अन्त होते हैं। यथा—देखब, देखना, देखबासौं, देखने से; देखबाक, देखने के लिए; पछताओल, पछताना, पछतओला या पछतउला-सौं, पछताने से। इसी- इ (अतिलघु) से अन्त होनेवाले क्रियावाचक विशेष्यपदों के तिर्यक् रूप अ अथवा एँ संयुक्त करने से बनते हैं। यथा—देखि, देखना, देखकें अथवा देखैंके, देखने के लिए, आदि। इसीप्रकार देब् का तिर्यक् रूप देमैं तथा लेब का रूप लेमैं होता है।

२, सर्वनाम

	मैं		तू		स्वयं (अपने)	यह	
	प्राचीन	आधुनिक	प्राचीन	आधुनिक		आदररहित	आदरसहित
एकवचन कर्त्ता	मेँ	हम्	तोँ	तोँ‌ह् , तो	अपनही	इ, ई	इ, ई
तिर्यक्	मो‌हि	..	तो‌हि	...	अपना, अपनही	एँहि	...
सम्बन्ध	मोर्	हमर् , हमार्	तुअ, तोर्	तोहर् , तोँहार्	अप्पन् , अपन्	ए - कर्	हिनक्
बहुवचन कर्त्ता	...	हम् सभ	...	तोँह् - सभ्	अपनह - सभ्	इ या ई सभ्	इ या ई सभ्

	वह		जो		सो		कौन (संज्ञा)	
आदररहित	आदरसहित		आदररहित		आदरसहित		आदररहित	
एक वचन कर्त्ता	ओ	ओ	जे	जे	से	से	के	के
तिर्यक्	ओ‌हि	..	जाहि	...	ताहि	...	काहि	..
सम्बन्ध	ओकर्	हुनक्	ज - कर्	जनिक्	त - कर्	तनिक्	क - कर्	कनिक्
बहुवचन कर्त्ता	ओ सभ्	ओ सभ्	जे - सभ्	जे - सभ्	से-सभ्	से - सभ्	के - सभ्	के - सभ्

की, क्या ? (संज्ञा) ; तिर्यक्—कथी, सम्बंध—कथीक ।

कोन्, कौन ? या क्या ? (विशेषण), इसमें परिवर्तन नहीं होता ।

केँओ, कोई (संज्ञा) ; तिर्यक्—ककरहु ; सम्बंध—ककरो । इसके अतिरिक्त तिर्यक्—काहु ; सम्बंध—काहुक ।

कोनो- कोई ; (विशेषण), इसमें परिवर्तन नहीं होता ।

किछु, कुछ ; तिर्यक्—कथु, सम्बंध—कथूक ।

किछु, का अर्थ जब कोई वस्तु होता है तो यह अपरिवर्तित रहता है । यथा—कथूकें से 'कुछ से' तात्पर्य है, किंतु 'किछुकें' से किसी वस्तु से तात्पर्य है ।

आदरप्रदर्शक सर्वनाम—अहाँ, अहैं अपनही or अपने (आप)
तिर्यक्—अहाँ, अहैं, अपने ।
सम्बंध—अहाँक्, अहैंक्, अपने-क ।

ऊपर के सम्बन्ध के रूप से आ संयुक्त करके तिर्यक् रूप सिद्ध होते हैं : यथा—

कर्त्ता	तिर्यक्
मोर्	मोरा
हमर्	हमरा
तोर्	तोरा
तोहर्	तोहरा
अपन्	अपना
एकर्	एकरा
हिनक्	हिनका
ओकर्	ओकरा
हुनक्	हुनका
जकर्	जकरा
जनिक्	जनिका
तकर्	तकरा
तनिक्	तनिका
ककर्	ककरा
कनिक्	कनिका

वैकल्पिकरूप में सम्बन्ध के इन तिर्यक्रूपों के साथ अनुसर्गों का भी प्रयोग होता है । उदाहरणस्वरूप जाहिकें के अतिरिक्त इसी अर्थ में जकरा (जिसको) भी प्रयुक्त होता है । इसीप्रकार अन्य तिर्यक् रूप भी व्यवहृत होते हैं । उत्तम तथा मध्यमपुरुष के आधुनिक रूपों तथा अन्य सर्वनामों के आदरप्रदर्शक रूपों के लिए केवल यही रूप व्यवहृत होते हैं । इसप्रकार कर्मकारक में हमरा ; सम्प्रदान हमराकें ; तोहराके, हिनका के आदि रूप होते हैं । कर्त्ता कारक, बहुवचन के रूप भी हमरा सभ्, तोहरा सभ् आदि होते हैं । आदररहित तिर्यक् रूप विशेषण की भाँति भी व्यवहृत होते है तथा एहू और ओह् विशेषण अथवा अप्राणिवाचक सर्वनामरूप में प्रयुक्त होते हैं । तिर्यक् के ये रूप विशेषण रूप में, कभी भी, नहीं प्रयुक्त होते । की भी विशेषण रूप में नहीं प्रयुक्त होता । तिर्यक् के इन रूपों का अन्वय संज्ञा के साथ होता है । यथा—हमर् घर मेरा घर, किन्तु हमरा घर सँ, मेरे घर से ।

३. क्रिया—

(क) सहायक क्रिया—कृदन्तीय रूप—अछैत (रहतेहुए) वर्तमान—मैं हूँ।

	प्रथमरूप	द्वितीयरूप	तृतीयरूप	चतुर्थरूप
१	छी, छिऐ [1]	छिऐन्हि	छी, छिऐ [1]	छिऐन्हि
२	छह् [2]	छहुन्हि्	छी, छिऐ [1]	छिऐन्हि्
३	अछि, छै [3]	छैन्ह् [2]	छथि्	छथीन्हि् [4]

वैकल्पिक रूप (१) छिअहु (२) छें, छैं, छहक्, छहिक्; स्त्रीलिंग छहि; (३) छिक्, छहु, अहि, है (४) छथून्हि।

अन्यरूप, मैं हूँ—

	प्रथमरूप	द्वितीयरूप	तृतीयरूप	चतुर्थरूप
१	थिकहू, थिकिये [1]	थिकिऐन्हि	थिकहू, थिकिऐ [1]	थिकिऐन्हि
२	थिकह् [2]	थिकहुन्हि	थिकहू, थिकिऐ [1]	थिकिऐन्हि
३	थिक्, थिकै [3]	थिकैन्हि	थिकह् [4]	थिकथीन्हि [5]

वैकल्पिकरूप (१) थिकिअहु (२) थिकें, थिकैं, थिकहक्, थिकहीक; स्त्रीलिंग थिकीह या थिकीहि; (३) थीक् थिकहु; स्त्री० लि० थीकि; (४) स्त्री० लिं० थिकीह या थिकीहि; (५) थिकथून्हि।

अतीत—मैं था

	प्रथमरूप	द्वितीयरूप	तृतीयरूप	चतुर्थरूप
१	छलहु, छलिऐ १	छलिऐन्हि	छलहु, छलिऐ	छलिऐन्हि
२	छलह २	छलहुन्हि	,, ,,	,,
३	छल, छलै ३	छलैन्हि	छलह् ४	छलथीन्हि [5]

वैकल्पिकरूप (१), (२), (४) (५) थिकहु की भांति होते हैं। (३) छलहि, स्त्री० लिं० छलि।

अन्यरूप—मैं था।

	प्रथमरूप	द्वितीयरूप	तृतीयरूप	चतुर्थरूप
१	रही रहिऐ १	रहिऐन्हि	रही, रहिए १	रहिऐन्हि १
२	रहह् २	रहहून्हि	,, ,,	,,
३	रहै ३	रहैन्हि	रहथि ३	रहथीन्हि ४

वैकल्पिक रूप—(१) रहिअहु; (२) रह्, रहहक् रहहिक्; स्त्री० लि० रहही, (३) रहै का प्रयोग बहुत कम होता है, इसके स्थान पर प्रायः रहौ व्यवहृत होता है। (४) रहथून्हि।

(ख) सकर्मकक्रिया—देखब, देखना, धातु - देख्।

क्रियावाचकविशेष्यपद (Verbal Nouns) (१) देखब्, तिर्यक्—देंखबा (२) देखल्, तिर्यक् - देंखला (३) देखि, तिर्यक् - देख् या देखै।

क्रियासूचकविशेषण या कृदन्तीयरूप, वर्तमान—देंखैत्, स्त्री० लिं० देंखैति; अतीत—देखल्, स्त्री० लिं० देखल्।

असमापिकाक्रिया—देखि कँ (या कँ या कैकँ), देखकर।

अव्ययसूचक कृदन्तीयरूप—देंखितहि, देखने पर।

साधारणवर्तमान—मैं देखता हूँ, सम्भाव्य वर्तमान—(यदि) मैं देखूं।

	प्रथमरूप	द्वितीयरूप	तृतीयरूप	चतुर्थरूप
१	देखी देंखिऐ	देंखिऐन्हि	देखी, देंखिऐ	देंखिऐन्हि
२	देखह् १	देंखहून्हि	,, ,,	,,
३	देंखै २	देखैन्हि ३	देखथि	देंखथीन्हि ४

वैकल्पिकरूप—(१) देंखहक्, देंखहीक्; स्त्री० लि० देखही (२) देंखै, केवल साधारणवर्तमान में प्रयुक्त होता है; इसके स्थान पर सम्भाव्यवर्तमान का रूप देंखौ व्यवहृत होता है; (३) सम्भाव्य में प्रायः देंखौन्हि प्रयुक्त होता है; (४) देंखथीन्हि के बदले देखथून्हि का अधिक प्रयोग होता है।

भविष्यत्—मैं देखूंगा—इसके तीन प्रकार हैं—

इसका प्रथम प्रकार वही है जो साधारण वर्तमान का, किन्तु इसमें प्रायः ग जोड़ दिया जाता है। यथा—देखौं-ग, मैं देखूँगा।

दूसरा प्रकार—

	प्रथमरूप	द्वितीयरूप	तृतीयरूप	चतुर्थरूप
१	देखब्, देँखवैं	देँखबैन्हि	देखब, देँखबै	देँखबैन्हि
२	देँखबह १	देँखबहून्हि	,, ,,	,,
३	×	×	×	×

वैकल्पिकरूप—(१) देँखवैं, देँखबहक्, देँखबहीक्; स्त्री० लिं० देँखबही। —ग को किसी रूप के साथ संयुक्त किया जा सकता है। देखब-ग।

तीसरा प्रकार—

	प्रथमरूप	द्वितीयरूप	तृतीयरूप	चतुर्थरूप
१	देँखतिऐ[१]	देँखतिऐन्हि	देँखतिऐ,	देँखतिऐन्हि
२	× ×	× ×	,,	,,
३	देखत्[२] देँखतै	देखतैन्हि	देँखतह्, देखथु[३]	देखथून्हि[४]

वैकल्पिकरूप—(१) देँखितहु; (२) स्त्री० लिं० देखति; (३) स्त्री० लिं० देँखतीह्, देँखतीहि; (४) देँखथीन्हि। किसी रूप के साथ 'ग' को संयुक्त किया जा सकता है। यथा—देँखतिएग।

आज्ञा अथवा विधिक्रिया—मुझे देखने दो—

	प्रथमरूप	द्वितीयरूप	तृतीयरूप	चतुर्थरूप
१	देखू, देखिऐ	देखिऐन्हि	देखू, देखिऐ	देखिऐन्हि
२	देख्, देखह्[1]	देखहुन्हि	,, ,,	,,
३	देखौ	देखौन्हि	देखथु	देखथून्हि

वैकल्पिकरूप—(१) देखें, देखहोक्, देखहीक्; स्त्री० लिं० देखही; विनय सूचक रूप—देखिह', (कृपया देखें); देखलजाइ आदि।

सम्भाव्यअतीत—(यदि) मैं देखे होता।

	प्रथमरूप	द्वितीयरूप	तृतीयरूप	चतुर्थरूप
१	देखितहु, देखितिऐ[1]	देखितिऐन्हि	देखितहु, देखितिऐ[1]	देखितिऐन्हि
२	देखितह्[2]	देखितहुन्हि	,,	,,
३	देखैत्, देखितै	देखितैन्हि	देखितथि	देखितथीन्हि[3]

वैकल्पिकरूप—(१) देखिती; (२) देखितें, देखितहक्, देखितहोक; स्त्री० लिं० देखितहीं; (३) देखितथून्हि। कभी-कभी देखितहू के बदले देखैतहुँ भी प्रयुक्त होता है।

निश्चितवर्तमान—मैं देख रहा हूँ—

पुल्लिङ्ग—देखैत-छी या देखै-छी और इसीप्रकार अन्यरूप भी सम्पन्न होते हैं। अन्यपुरुष एकवचन का रूप प्रायः देखइ-छि होता है।

स्त्रीलिंगरूप—देखैति-छी या देखै-छी तथा इसीप्रकार अन्यरूप भी होते हैं। छी के स्थान पर सर्वत्र थिकहु का व्यवहार भी हो सकता है।

अतीत (घटमान), मैं देख रहा था—

पुंल्लिङ्ग—देखैत-छलहु या देखैछलहु, इसीप्रकार अन्यरूप भी चलते हैं।

स्त्रीलिङ्ग—दे॑खैति-छलहु या दे॑खैछलहु. इसीप्रकार अन्यरूप भी सम्पन्न होते हैं।

छलहु के स्थान पर सर्वत्र रही क्रिया का व्यवहार होता है।

अतीत, मैंने देखा—

	प्रथमरूप	द्वितीयरूप	तृतीयरूप	चतुर्थरूप
१	दे्खल्, दे॑खलै[1]	दे॑खलैन्ह्[3]	दे॑खल्, दे॑खलै[1]	दे॑खलैन्हि[3]
२	दे॑खलह्[2]	दे॑खलहुन्हि्	,, ,,	,,
३	दे॑खलक्, दे॑खलकै	दे॑खलकैन्हि,	दे॑खलन्हि, दे॑खलथि	दे॑खलथीन्हि[4]

वैकल्पिकरूप (१ दे॑खलहु, दे॑खली दे॑खलिऐ; दे्खल का स्त्री॰लिं॰रूप देखलि
(२) दे॑खलें, दे॑खलैं, दे॑खलहक्, दे॑खलहीक्, स्त्री॰ लिं॰ दे॑खलीहि या दे॑खलिहि;

(३) दे॑खलिएन्हि; (४) दे॑खलहुन्हि।

पुराघटित—मैंने देखा है। इसके दो प्रकार मिलते हैं:—

(१) अछि आदि संयुक्त करके सम्पन्न होता है। यथा— दे्खल् अछि, दे॑खलै अछि, आदि मैंने देखा है।

(२) दे॑खलें में सहायकक्रिया के वर्तमानकाल का रूप संयुक्त करके, यथा— देखलें-छी, मैंने देखा है, आदि।

पुराघटित अतीत—मैंने देखा था—दे॑खलें छलहु (या रही), आदि।

(ग) अकर्मकक्रिया—सूतब, सोना।

अकर्मक क्रियाओं में द्वितीय तथा चतुर्थरूप प्रायः नहीं प्रयुक्त होते हैं।

साधारणवर्तमान तथा सम्भाव्यवर्तमान—मैं सोता हूँ, (यदि) मैं सोऊँ;

सूती (यह रूप सकर्मक क्रिया की भाँति ही चलता है।)

भविष्यत्—मैं सोऊँगा—सूतब्, आदि (यह रूप भी सकर्मक की भाँति ही चलता है)

आज्ञा अथवा विधिक्रिया—मुझे सोने दो—सूतू (सकर्मक क्रिया की भाँति ही)

सम्भाव्यअतीत—(यदि) मैं सोता होता—सुतितहु (सकर्मक क्रिया की भाँति)

निश्चितवर्तमान—मैं सो रहा हूँ—सुतैत-छी, आदि (सकर्मकक्रिया की भाँति)
घटमानअतीत—मैं सो रहा था—सुतैत छलहू, आदि (सकर्मकक्रिया की भाँति)

अतीत—मैं सोया

	प्रथम रूप	द्वितीय रूप
१	सुतली, सुतलिऐ[1]	सुतली, सुतलिऐ[4]
२	सुतलह्[2]	,, ,,
३	सूतल[3]	सुतलाह[4]

वैकल्पिकरूप—(१) सुतलहू (२) सुतलें, सुतलें, सुतलहक्, सुतलहीक्; स्त्री० लिं० सुतलीह् या सुतलीहि; (३) सुतलै; स्त्री० लिं० सूतलि; (४) सुतलन्हि; स्त्री० लिं० सुतलीह् सुतलीहिं।

पुराघटितअतीत—मैं सोया था के भी दो प्रकार के रूप होते हैं।

प्रथम प्रकार के रूप—अछि संयुक्त करके सम्पन्न होते हैं; यथा—सुतली अछि आदि। ये रूप सकर्मकक्रिया के रूपों की भाँति ही चलते हैं। दूसरे प्रकार के रूप भी नीचे दिए जाते हैं :—

	प्रथमरूप	द्वितीयरूप
१	सूतल् छी	सूतल छी
२	सूतल छह्	,, ,,
३	सूतल अछि	सूतल छथ्

कोशिकरूप—सूतलि छी, आदि। इसके लिए सहायकक्रिया के कोई रूप व्यवहृत होते हैं।

(घ) आव् से अन्त होनेवाली धातुएँ; पाएब, पाना; इसके केवल प्रथम एवं द्वितीय रूप दिए जाते हैं। वर्तमानकालिककृदन्तीय रूप—पवैत् या पाइत्, भूतकालिक कृदन्तीयरूप—पाओल; धातु—पाव्।

	साधारण वर्तमान	भविष्यत्	आज्ञा या विधि	सम्भाव्य अतीत	अतीत	घटमान	अतीत घटमान
१	पावी या पाइ	पाएब्, पाओब	पाऊ	पैतहु	पाओल्, पौले	पाओल अछि या पौलें छी	पौलें छलहु
२	पावह्	पैबह्, पौबह्	पावह्	पैतह्	पौलह्	...	...
३	पतौ, पवौ, पावथि	पाएत्, पाओत्, पैतह्, पौतह्	पतौ, पबौ, पावथु	पवैत् पैतथि	पौलक् पौलन्हि	...	...

णिजन्त अथवा प्रेरणार्थक क्रियाओं, यथा, गायब्, गाना, तथा आएब्, आना एवं-आएब् से अन्त होनेवाले धातुओं के रूप ऊपर के समान ही चलते हैं। केवल खाएब्, खाना, इसका अपवाद है। खाएब् तथा—आएब् से अन्त होनेवाले अन्य अकर्मक क्रियाओं के रूप निम्नलिखित भाँति से चलते हैं—

	साधारणवर्तमान	भविष्यत	सम्भाव्यअतीत	अतीत
१	खाईं	खाएब्	खैतहु	खाएल्
२	खाह्	खैबह्	खैतह्	खैलह्
३	खाउ, खाथि	खायत्, खैतह्	खाएत्, खैतथि	खैलक्, खैलन्ह्

(ङ) अनियमित क्रियापद

जाएब्, जाना; अतीत कृदन्तीय—गेल्; करब्, करना; अतीतकृदन्तीय, कैल्; धरब्; पकड़ना या रखना; अतीतकृदन्तीय—धइल्; देब, देना, अतीतकृदन्तीय, देल्; लेब्, लेना; अतीतकृदन्तीय-लेल्; होएब् या हैब्, होना; अतीतकृदन्तीय, भेल; मरब्, मरना; अतीतकृदन्तीय-मुइल् या मरल्।

मगही या मागधी

मगही अथवा मागधी से वास्तव में मगध की भाषा से तात्पर्य है। शिक्षित लोग प्रायः संस्कृत नाम मागधी का ही प्रयोग करते हैं; किन्तु जनसाधारण में मगही नाम ही प्रचलित है।

प्राचीन मगध के अन्तर्गत साधारणरीति से आजकल का पटना ज़िला तथा गया के उत्तरीभाग का केवल आधा भाग ही सम्मिलित था। मगध की पुरानी राजधानी राजगृह [पालि, राजगह] थी। परम्परानुसार जरासन्ध यहीं का राजा था जिसके राज्य का विस्तार मध्यदेश तक था। ईसा की छठी शताब्दी पूर्व यहाँ का राजा बिम्बसार था जो भगवान् बुद्ध का समकालीन तथा दायक था। भगवान् बुद्ध के जीवन के अनेक वर्ष यहाँ व्यतीत हुए थे और यहाँ के भग्नावशेष आज भी उनकी स्मृति दिला रहे हैं। आगे चलकर बिम्बसार के उत्तराधिकारियों ने पाटलिपुत्र को अपनी राजधानी बनाया। पुरातत्ववेत्ताओं के अनुसार आधुनिक पटना के समीप स्थित 'कुम्हरार' ही पाटलिपुत्र था। चन्द्रगुप्तमौर्य तथा सम्राट् अशोक के समय में भी राजधानी यहीं थी। यहीं मेगास्थनीज़ राजदूत बनकर आया था और यहीं से बौद्धधर्म के प्रचार के लिए देश-विदेशों में प्रचारक भेजे गए थे। सम्राट् अशोक के राज्य का विस्तार उत्तर-पश्चिम में अफ़गानिस्तान से लेकर दक्षिण में उड़ीसा तथा कृष्णा नदी तक था।

मुसलमानी राजत्वकाल में पटना जिले के दक्षिण, बिहार का कस्बा राजधानी बना। बौद्ध विहार के नाम पर ही इस कस्बे का नाम बिहार पड़ा था और आगे चलकर यही समस्त सूबे का नाम हो गया।

अंग्रेजों के राजत्वकाल में, सन् १८६५ तक, आधुनिक पटना ज़िले का अधिकांश भाग तथा गया का उत्तरी भाग 'बिहार ज़िले' के नाम से प्रख्यात था और गया के दक्षिण तथा हज़ारीबाग के कुछ भाग का नाम 'रामगढ ज़िला' था। इसके बाद पटना तथा गया के ज़िले अस्तित्व में आये।

मगही का क्षेत्र—आधुनिक मगही का क्षेत्र वही नहीं है जो प्राचीन मगध का था। यह गया के शेष भाग तथा हज़ारीबाग ज़िले की बोली है। इसके अतिरिक्त यह पालामऊ के पश्चिमी भाग तथा पूरब में मुंगेर और भागलपुर ज़िलों के कुछ भाग में बोली जाती है। इस समस्त क्षेत्र में मगही का रूप एक ही है और इसमें कहीं भी अन्तर नहीं पड़ता। केवल पटना के आस-पास उर्दू-भाषी मुसलमानों के प्रभाव के कारण इसके मुहावरों में अवश्य कुछ अन्तर आ गया है।

मगही की भाषासम्बन्धी सीमा—मगही की उत्तरी सीमा पर, गंगा पार, तिरहुत की मैथिलीभाषा अपने भिन्न-भिन्न रूपों में बोली जाती है। पश्चिम में शाहाबाद तथा पालामऊ की भोजपुरी का क्षेत्र है। उत्तर-पूरब में मुँगेर, भागलपुर तथा संथाल परगने की छिकाछिकी एवं दक्षिण-पूर्व में मानभूम एवं सिंहभूम की बंगला भाषा बोली जाती है। आदर्श (स्टैंडर्ड) मगही के दक्षिण में राँची की सदानी भोजपुरी बोली जाती है। इसके बाद पूर्वी मगही के रूप में यह राँची पठार के पूर्वी किनारे पर मानभूम तक यह बोली जाती है और अन्त में घूमकर यह राँची पठार के दक्षिणी किनारे से होकर उड़िया भाषी सिंहभूम

तक पहुँचकर पुनः आदर्श मगही में परिणत हो जाती है। इसप्रकार मगही भाषा-भाषी, राँची के पठार के तीन ओर, उत्तर, पूरब तथा दक्षिण, पाये जाते हैं।

पूर्वी मगही

अपनी पूर्वी-सीमा पर मगही बँगला से मिलती है। इन दोनों का संमिश्रण नहीं हो पाया है; किन्तु इस क्षेत्र के लोग एक दूसरे की भाषा को सरलतापूर्वक समझ लेते हैं। इसका एक परिणाम यह हुआ है कि बँगला तथा मगही दोनों पर एक दूसरे का प्रभाव पड़ा है और इसप्रकार की मगही को ग्रियर्सन ने पूर्वी मगही के नाम से अभिहित किया है।

गंगा के उत्तर में बँगला तथा मगही एक दूसरे में विलीन हो जाती हैं। पूर्वी पुर्णिया की 'सिरपुरिया' बोली दोनों के बीच में पड़ती है और इसपर दोनों भाषाओं का इतना अधिक प्रभाव है कि निश्चितरूप से इसे बँगला अथवा मगही कहना कठिन है। मालदह ज़िले की बात दूसरी है। यहाँ विभिन्न जातियाँ अपनी-अपनी ही बोली बोलती हैं। इस प्रकार यहाँ, एक ही गाँव में मगही, सन्थाली तथा बँगला बोलनेवाले लोग निवास करते हैं।

गंगा के दक्षिण में भाषा-सम्बन्धी ठीक वही दशा है जो मालदह की। उदाहरण स्वरूप सन्थाल परगना के देवघर सब-डिवीजन में एक ऐसा क्षेत्र है जहाँ मैथिलि, बँगला तथा मुण्डा भाषाएँ पास ही पास बोली जाती हैं और दक्षिण, मानभूमि की ओर बढ़ने पर, हम देखते हैं कि पश्चिम में बंगला का राँची तथा हजारीबाग के प्रान्तों तक प्रसार है; किन्तु यकायक वहीं इसका अन्त भी हो जाता है और छोटानागपुर के पहाड़ों की विभिन्न बिहारी बोलियाँ आ जाती हैं।

इन पहाड़ों के कुछ बिहारी लोग बँगला भाषा-भाषी-क्षेत्र में भी जा बसे हैं। ये लोग अपनी ही बोली बोलते हैं; किन्तु वातावरण के कारण इसमें बँगला के शब्द तथा व्याकरण-सम्बन्धी कुछ विशेषताएँ भी आ गई हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि इनकी भाषा मिश्रित हो गई है। स्वभावतः यह है तो बिहारी ही बोली, किन्तु इसपर थोड़ा बहुत बँगला का भी विचित्र रंग चढ़ गया है। इन मिश्रित बोलियों के बोलनेवालों के चारों ओर शुद्ध बँगला भाषा-भाषी निवास करते हैं।

मानभूम, मयूरभंज तथा बामरा में पूर्वी मगही, 'कुड़माली' तथा पश्चिमी मालदह में यह 'खोण्टाली' कहलाती है। मयूरभंज तथा बामरा में तो यह चारों ओर उड़िया तथा मालदह में चारों ओर बँगला भाषा से घिरी है। 'कुड़मी' जाति की भाषा होने के कारण ही इसका नाम 'कुड़माली' पड़ा है। इधर इनकी जनसंख्या अधिक है। यहाँ कुर्मी [भो० पु० कुरमी] तथा "कुड़मी" में भी अन्तर समझ लेना चाहिए। 'कुड़मी' लोग वस्तुतः अनार्य जाति के द्रविड़ों के वंशज हैं। बिहार की कुर्मी जाति इनसे सर्वथा भिन्न है।

कुड़मी लोगों में से सभी बिहारी भाषा-भाषी नहीं हैं। इनमें से कुछ तो बँगला तथा उड़िया भाषा-भाषी हैं; किन्तु मानभूम तथा खरसवान के लोग—विशेषतः कुड़मी लोग पूर्वी मगही के ही बोलनेवाले हैं। यहाँ यह बोली 'कुड़मालीठार' कहलाती है। 'ठार' शब्द का अर्थ है 'ढंग' या 'रूप', अतएव 'कुड़मालीठार' का अर्थ हुआ, 'आर्यभाषा

का कुड़माली रूप'। इसका दूसरा नाम 'कोरठा' भी है। मानभूम के उत्तरी-पश्चिमी भाग में इसे 'खट्टा' तथा उसीके पश्चिमी भाग में इसे 'खट्टाही' कहते हैं।

कुड़माली की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं:—

उच्चारण—कुड़माली में 'ओ' का उच्चारण 'अ' हो जाता है।

उदाहरणस्वरूप—'लोकेर' 'मनुष्य का' 'लकेर' हो जाता है। इसीप्रकार ओकर्, 'उसका' का रूप कुड़माली में अकर् हो जाता है। 'मोर्' 'मेरा' तथा तोर् 'तेरा' सर्वनाम का रूप कुड़माली में 'मर्' 'तर्' एवं 'भोज' 'निमंत्रण' का रूप इसमें 'भज्' हो जाता है।

'इ' तथा 'ए' के पूर्व का 'अ' कुड़माली में 'ए' में परिवर्तित हो जाता है:— 'कहिलेक्' 'उसने कहा' >केह्लाक्; कहि के, 'कहकर' >केहि के, बसि के (भो० पु० बइसि के) 'बैठकर' >बेसि के करि के (भो० पु० कइ के) 'कर के' >केरि के

इच्छा का कुड़माली में हिछा हो जाता है। भोजपुरी में यह 'हींछल' में वर्तमान है। उदाहरणस्वरूप; भो० पु० का हींछ (अ) तार (अ)?

संज्ञा—स्वार्थे प्रत्यय के रूप में—टा,-टाइ, तथा टाय का अत्यधिक प्रयोग होता है। जैसे—छावांटा, लड़का, बेटा-टाय, पुत्र। इसमें सम्बन्ध कारक का चिह्न—टेक है जैसे—घड़ी-टेकवादे, प्रायः एक घड़ी के बाद।

मगही का संक्षिप्त व्याकरण

१. संज्ञा

मैथिली की भाँति ही मगही में भी संज्ञा के तीन रूप मिलते हैं—(१) ह्रस्व (२) दीर्घ (३) अनावश्यक अथवा अतिरिक्त। यथा—ह्रस्व, घोरा, दीर्घ, घोरवा, अनावश्यक अथवा अतिरिक्त—घोरौवा, घोड़ा। ह्रस्व के भी निर्बल तथा सबल, दो रूप होते हैं। यथा—निर्बल, घोर्, सबल, घोरा।

वचन—अन्त के दीर्घस्वर को ह्रस्व करके तथा-न संयुक्त करके, बहुवचन के रूप सम्पन्न होते हैं। यथा—घोरा, घोड़ा, ब० व०, घोरन्, घोड़े; घर्, ब० व०, घरन्। इसके अतिरिक्त सब् तथा लोग् संयुक्त करके भी बहुवचन के रूप सिद्ध होते हैं। यथा—घोरा सब्, घोड़े; राजा लोग्।

कारक—मैथिली की भाँति ही मगही में भी करण तथा अधिकरण कारक एँ तथा ए संयुक्त करके सम्पन्न होते हैं। इन कारकों के रूप में आकारान्त के 'आ' का लोप हो जाता है तथा 'ई' और 'ऊ' ह्रस्व हो जाते हैं। यथा—घोरें (घोड़े के द्वारा); घोरे (घोड़े में); फल, फलें, फले, माली, मलिए, मालिए। इनके बहुवचन के रूप नहीं होते।

अन्य कारकों के रूप कर्ता तथा तिर्यक् के रूपों में अनुसर्ग संयुक्त करके सम्पन्न होते हैं। यथा—कर्म तथा सम्प्रदान-के, करण तथा अपादान—से, सें, सतीं; सम्प्रदान—ला, लेल्, खातिर, लागी; अधिकरण—मे, में, मों: सम्बन्ध-क्, के, केर्। 'क्' के पूर्व

का स्वर ह्रस्व हो जाता है। यथा—घोड़क्, घोड़े का; व्यञ्जनान्त संज्ञापदों के सम्बन्ध के रूपों में एक 'अ' भी संयुक्त हो जाता है। यथा—फलक (फल का)।

लिंग—विशेषण में लिंगानुसार परिवर्तन नहीं होता।

तिर्यक्‌रूप—स्वरान्त संज्ञापदों के तिर्यक् तथा कर्त्ता के रूप एक ही होते हैं, किन्तु व्यञ्जनान्त संज्ञापदों के कर्त्ता तथा तिर्यक् के रूप भी कभी-कभी एक ही होते हैं और कभी कभी तिर्यक् के रूप 'ए' लगाकर सिद्ध होते हैं। यथा—घर् के, अथवा घरे के (घर का)।

लकारान्त क्रियाविशेष्यपद (Verbal Nouns) के तिर्यक् रूप 'ला' करके बनते हैं। यथा—देखल्, देखते हुए; तिर्यक्, देखला। अन्य क्रियाविशेष्यपदों के रूप, व्यञ्जनान्त संज्ञापदों की भाँति ही चलते हैं।

२. सर्वनाम

	मैं		तू		स्वयं	यह	वह
	आदररहित	आदरसहित	आदररहित	आदरसहित			
एकवचन कर्त्ता	...	हम	तू, तों	...	अपने	ई	ऊ
तिर्यक्	मोरा	हमरा	तोरा	तोहरा	अपने	एँह्	ओँह्
सम्बन्ध	मोर्, मोरा (स्त्री० लिं०) मोरी	हम्मर्, हमार् हमरे	तोर्, तोरा (स्त्री० लिं०)तोरी	तोहार, तोँहार तोँहरे	अपने-के अपन्	ए-कर्, एँह-केर् आदि	ओव र्, ओँहके आदि
बहुवचन कर्त्ता	हमनी	हमरनी	तोँहनी	तोँहरनी	अपने सब्	ई	ऊ
तिर्यक्	हमनी	हमरनी	तोँहनी	तोँहरनी	अपने सब्	इन्ह्	उन्ह्

	जो	सो	कौन	क्या	कोई
एकवचन कर्त्ता	जे, जौन्	से, तौन्	के, को, कौन्	का, की, कौंछी	केउ, कोई, काहू
तिर्यक्	जेह्	तेह्	केह्	काहे	केँकरो, कौनों
सम्बन्ध	जे-कर्, जेँह् के,	ते-कर्, तेँह्-के	के-कर्, केह्-के	का का प्रयोग पटना के दक्षिणपूरब में होता है; किन्तु गया ज़िले में कौंछी व्यवहृत होता है।	हिन्दी 'कुछ' के लिए मगही में कुछु, 'कुच्छो अथवा कुच-छओ का प्रयोग होता है। इसके तिर्यक् रूप नहीं होते।
बहुवचन कर्त्ता	जे, जिन्ह्कनी	से, तिन्ह्कनी	के, किन्ह्कनी		
तिर्यक	जिन्ह्	तिन्ह्	किन्ह्		

ऊपर के तिर्यक्, बहुवचन के रूप, कर्त्ता में भी व्यवहृत होते हैं। तिर्यक् बहुवचन के अनेक रूप होते हैं। आगे उत्तमपुरुषसर्वनाम के रूप दिए जाते हैं; यथा—हमनिन्ह्, हमरन्हि, हमरन्ह् । इसकी वर्तनी (spelling) में अन्तर भी मिलता है। यथा—हमनिन् आदि। ई से इन्हन्ह्, इन्हनी, इखनिन्, अखनी, एँखनी, इन्ह्कन्ही, इन्ह्का आदि रूप बनते हैं। इसी प्रकार ऊ, जे, से, तथा के से भी रूप बनते हैं। इनकी वर्तनी में भी अन्तर मिलता है।

तिर्यक् सम्बन्ध—सम्बन्ध कर् के तिर्यक्रूप करा हो जाते हैं। इसप्रकार ए-कर्, ऐकरा; ओ-कर्, ओँकरा; जे-कर्, जेकरा आदि रूप होते हैं। अनुसर्ग लगाकर इनके भी तिर्यक् के रूप सिद्ध होते हैं।

३—(क) सहायक क्रियाएँ

वर्तमान—मैं हूँ आदि | अतीत—मैं था आदि

	प्रथम	द्वितीय	तृतीय	चतुर्थ	प्रथम	द्वितीय	तृतीय	चतुर्थ
१	ही[१]	—	ही[२]	—	हलूँ[१]	—	हली[२]	—
२	हैं[३]	हहिन्[४]	ह[५]	हहुन्[६]	हलें[३]	हलहिन्	हल[४]	हलहुन्
३	है[७]	हह्रिन्[८]	हैं[९]	हइन्[१०]	हल्[५]	हलहिन्[६]	हलन्[७]	हलथिन्[८]

वैकल्पिकरूप—
१ हकी, हिकूँ; २ हिऐ; ३ हँ, हे, है, हहीं, हकीं, स्त्री० लि० ही, ही; ४ हकिन्; ५ हहू, हहो, हहूँ ६ हखुन् ७ ह, हे, हो, हैं, हस्, हकै,हहीं, ८ हखिन्, स्त्री० लिं० हखिन्, हखिनी ६, हथ, हथी १० हथिन्, स्त्री० लिं० हथिन्, हथिनी।

वैकल्पिकरूप—
१ हली; २ हलिऐ; ३ हलॅ, हले, हलहीं, हला; स्त्री० लि० हली, हलीं; ४ हलह्, हलहू, हलहों, हलहूँ; ५ हलै, हलहीं; स्त्री० लिं० हलीं; ६ हलखिन्; स्त्री० लिं०, हलखिन्; हलखिनी; ७ हलथी; स्त्री० लिं०, हलिन्; ८ स्त्री०लिं हलथिन्, हलथिनी।

ख सकर्मकक्रिया—देखब्, देखना, धातु; देख्।

क्रिया विशेष्यपद—(१) देखब्, तिर्यक्, नहीं होता।

(२) देखल्, तिर्यक् देखला।

(३) देख्, तिर्यक्, देखे।

कृदन्तीय रूप, वर्तमान—देखित्, देखत्, देखैत; स्त्री० लि० ती तिर्यक्—ते; अतीत- देखल्; स्त्री० लि०—ली, तिर्यक्—ले।

असमापिका—देख - के या देख-कर्।

	भविष्यत् मैं देखूँगा [प्रथम प्रकार]				द्वितीय प्रकार			
	प्रथम	द्वितीय	तृतीय	चतुर्थ	प्रथम	द्वितीय	तृतीय	चतुर्थ
१	देखब[1]	—	देँखबै	—	—	—	—	—
२	देँखबे[2]	देँखबहिन्	देँखब[3]	देँखबहुन्	—	—	देँखिह[1]	—
३	—	—	—	—	देखी· देखत्[2]	देँखतहिन्[3]	देँखिहे देखतन्[4]	देखतथिन्[5]

वैकल्पिकरूप—	वैकल्पिकरूप—
१ देँखवों, देँखवौं, स्त्री० लिं० देँखवी; २ देँखबँ, देँखबे, देँखवा, देँखबहीं; स्त्री० लि० देँखबी, देँखबीं, देँखबू ; ३ देँखवह, देँखवहु, —हो,—हूँ।	१ देँखिहह्, २ देखते, ३ देँखहिन्, देँखखिन्, स्त्री० लिं० देँखखिन्, देँखखनी ४ देँखत-थी, स्त्री० लिं० देँखतिन्, ५ देँखतथीन्, देँखतथिनी।

आज्ञा अथवा विधिक्रिया एवं साधारण वर्तमान के रूप एक ही होते हैं। निश्चयार्थक के रूप दे॑खबहू, दे॑खिहू तथा दे॑खी।

सम्भाव्यअतीत, (यदि) मैं देखे होता आदि।

	पथम	द्वितीय	तृतीय	चतुर्थ
१	दे॑खैतूँ[1]	—	दे॑खैतीं	—
२	दे॑खैतें	दे॑खैतहिन्	दे॑खैत्	दे॑खैतहुन्
३	दे॑खैत्	दे॑खैतहिन्	दे॑खैतन्	दे॑खैतथिन्

१ अथवा दे॑खतूँ या दे॑खितूँ और इसीप्रकार अन्य रूप भी। इन सभी रूपों के साथ—हल् प्रत्यय भी संयुक्त किया जा सकता है। यथा दे॑खैतूँहल्। सहायकक्रिया के अतीतकाल के रूपों की भाँति ही इसके भी वैकल्पिक रूप होते हैं।

घटमान, "मैंने देखा है" के रूप, अतीत में, है, हे ह अथवा हा संयुक्त करके सम्पन्न होते है। यथा—दे॑खतूँ है, मैंने देखा है; घटमान अतीत—मैंने देखा था; घटमान अतीत—मैंने देखा था, आदि रूप, हल् अथवा हलै संयुक्त करके सम्पन्न होते हैं।

अनिश्चितवर्तमान—मैं देखता हूँ—दे॑खही या दे॑खेही इसीप्रकार सहायक के रूप की सहायता से अन्य रूप भी बनते है। निश्चित अतीत—मैंने देखा—दे॑खहलूँ या दे॑खेहलूँ, और इसीप्रकार अन्य रूप भी सम्पन्न होते हैं।

निश्चितवर्तमान—मैं देख रहा हूँ—दे॑खैत्, (दे॑खित् या दे॑खत) ही। इसीप्रकार अन्य रूप भी चलते हैं।

मैं देख रहा था—दे॑खैत् (आदि) हलूँ; इसीप्रकार अन्य रूप भी चलते हैं।

ग अकर्मकक्रिया—इनके केवल अतीत के रूप भिन्न होते हैं तथा ये हलूँ की भाँति चलते है, दे॑खलूँ की भाँति नहीं। यथा—वह गिरा-गिरल्। इसीप्रकार "मैं गिरा" गिरलूँ है।

घ—आकारान्तधातुएँ—पाएँब, पाना ; वर्तमानकृदन्तीय रूप पावत्, पाइत्

	साधारणवर्तमान	भविष्यत्	अतीत	सम्भाव्यअतीत
१	पाईं या पावीं	पाएँब	पौलूँ या पैलूँ	पौतूँ या पैतूँ
२	पाव्	पैब् या पाब्	पौल् या पैल्	पौत् या पैत्
३	पावथ्	पाई पाइत्	पौलक् या पैलक्	पावत् या पाइत्

औ वाले रूप, यथा, पौलूँ, पौतूँ आदि केवल सकर्मकक्रियाओं में प्रयुक्त होते हैं। खाएब्, खाना इसका अपवाद है ; क्योंकि इसमें ये रूप नहीं आते। मगहीक्षेत्र के पूरब में ये रूप नहीं व्यवहृत होते।

ङ अनियमितक्रियापद—

जाएब्,	जाना ;	अतीत कृदन्तीय	गेल्।
करब्,	करना ;	,, ,,	कैल्।
मरब्,	मरना ;	,, ,,	मुइल् या मूल्।
देब्,	देना ;	,, ,,	देल् या दिहल्।
लेब्,	लेना ;	,, ,,	लेल् या लिहल्।
होएँब्,	होना ;	,, ,,	होल्, होइल् या भेल्।

[प्रथम खंड]

पहला अध्याय

प्रवेशक

*भोजपुरी पूर्वी अथवा मागधी परिवार की सबसे पश्चिमी बोली है। ग्रियर्सन ने पश्चिमी मागधी को बिहारी के नाम से अभिहित किया है। बिहारी से ग्रियर्सन का उस एक भाषा से तात्पर्य है जिसकी मगही, मैथिली तथा भोजपुरी तीन बोलियाँ हैं। भाषा-विज्ञान की दृष्टि से ग्रियर्सन का कथन सत्य है; किन्तु इन तीनों बोलियों में पारस्परिक अन्तर भी है। मैथिली 'अछ' या 'छ' धातु का प्रयोग भोजपुरी तथा मगही में नहीं है। इसी प्रकार भोजपुरी क्रियाओं के रूप में मैथिली तथा मगही क्रियाओं के रूप की जटिलता का सापेक्षिक दृष्टि से अभाव है। उधर मैथिली में प्राचीन काल से ही साहित्य-रचना होती आ रही है और भोजपुरी तथा मगही में भी लोकगीतों तथा लोककथाओं का बाहुल्य है। इन अन्तरों के साथ-साथ इन तीनों बोलियों के बोलनेवालों को इस बात की प्रतीति भी नहीं होती कि उनकी बोलियाँ बिहारी भाषा की उपभाषाएँ हैं। इस सम्बन्ध में यह भी कठिनाई है कि बिहारी भाषा का कोई साहित्यिक रूप भी उपलब्ध नहीं है। ऐसी दशा में इन बोलियों के बोलनेवाले यदि अपनी-अपनी बोली को एक दूसरे से पृथक् मानें तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? यह सब होते हुए भी मैथिली, मगही तथा भोजपुरी के बोलनेवाले अत्यन्त सरलतापूर्वक एक दूसरे की बोली समझ लेते हैं।

भोजपुरी का नामकरण

बिहार की तीनों बोलियों में विस्तार-क्षेत्र की दृष्टि से भोजपुरी का स्थान सर्वोच्च है। उत्तर में हिमालय की तराई से लेकर दक्षिण में मध्यप्रान्त की सरगुजा रियासत तक इस बोली का विस्तार है। बिहार प्रान्त के शाहाबाद, सारन, चम्पारन, राँची, जशपुर स्टेट, पालामऊ के कुछ भाग तथा मुजफ्फरपुर के उत्तरी-पश्चिमी कोने में इस बोली के बोलनेवाले निवास करते हैं। इसी प्रकार उत्तर प्रदेश के बनारस [जिसमें बनारस स्टेट भी सम्मिलित है], गाजीपुर, बलिया, जौनपुर के अधिकांश भाग, मिर्जापुर, गोरखपुर, आजमगढ़ तथा बस्ती जिले की हरैया तहसील में स्थित कुआनो नदी तक भोजपुरी बोलनेवालों का आधिपत्य है।

---

* कतिपय विद्वानों ने 'भोजपुरी' के स्थान पर 'भोजपुरिया' शब्द का प्रयोग किया है। विशेषण के लिए 'ई' की भाँति ही भोजपुरी में 'इया' प्रत्यय भी प्रचलित है; किन्तु इस 'इया' प्रत्यय में किंचित अप्रतिष्ठा अथवा घनिष्ठता का भाव आ जाता है जिसका 'ई' प्रत्यय में वस्तुतः अभाव है। 'ई' प्रत्यय वाला रूप छोटा है तथा जिस प्रकार 'बंगाल' से 'बंगाली', 'नेपाल' से 'नेपाली' शब्द बन जाते हैं उसी प्रकार यह भी बन जाता है। यही कारण है कि मैंने 'भोजपुरिया' की अपेक्षा 'भोजपुरी' के प्रयोग को ही उपयुक्त समझा है। इसके अतिरिक्त बीम्स, हार्नले तथा ग्रियर्सन आदि विद्वानों ने भी अपने लेखों तथा पुस्तकों में 'भोजपुरी' शब्द का ही प्रयोग किया है, जिसके कारण यह बहुत प्रचलित हो गया है।

डाक्टर सुनीतिकुमार चटर्जी ने मागधी बोलियों तथा भाषाओं को तीन वर्गों में विभाजित किया है। आपके अनुसार भोजपुरी पश्चिमी मागधी वर्ग, मैथिली तथा मगही मध्य मागधी वर्ग तथा बँगला, असमिया और उड़िया पूर्वी मागधी वर्ग के अंतर्गत आती हैं। इस प्रकार बँगला, असमिया तथा उड़िया, यदि भोजपुरी की चचेरी बहनें हैं तो मैथिली और मगही इसकी सगी बहनें।

भोजपुरी बोली का नामकरण शाहाबाद जिले के भोजपुर परगना के नाम पर हुआ है। शाहाबाद जिले में भ्रमण करते हुए डा० बुकनन सन् १८१२ ईस्वी में भोजपुर आये थे। उन्होंने मालवा के भोजवंशी 'उज्जैन' राजपूतों के 'चेरों' जाति को पराजित करने के संबंध में उल्लेख किया है।

बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी के १८७१ के जर्नल में छोटानागपुर, पचेत तथा पालामऊ के सम्बन्ध में मुसलमान इतिहास-लेखकों के विवरणों की चर्चा करते हुए ब्लाचमैन ने भोजपुर का भी उल्लेख किया है। वे लिखते हैं—बंगाल के पश्चिमी प्रांत तथा दक्षिणी बिहार के राजा, दिल्ली के सम्राट् के लिए अत्यंत दुखदायी थे। अकबर के राजत्वकाल में बक्सर के समीप भोजपुर के राजा दलपत, सम्राट् से पराजित होकर बंदी किये गये और अंत में, जब बहुत आर्थिक दंड के पश्चात् वे बंधन-मुक्त हुए तो, उन्होंने पुनः सम्राट् के विरुद्ध सशस्त्र क्रांति की। जहाँगीर के राजत्वकाल में भी उनकी क्रांति चलती रही जिसके परिणाम-स्वरूप भोजपुर लूटा गया तथा उनके उत्तराधिकारी प्रताप को शाहजहाँ ने फाँसी का दंड दिया।

ब्लाचमैन ने ही अपने आईने-अकबरी के अनुवाद भाग १ में अकबर के दरबारी नं० ३२६ के सम्बन्ध में चर्चा करते हुए निम्नलिखित तथ्यों का उल्लेख किया है। इस दरबारी का नाम बरखुर्दार मिर्जा खानआलम था। इस तथ्य की पुष्टि अन्य स्रोतों से भी हो जाती है। बात इस प्रकार है—बरखुर्दार का पिता युद्ध में दलपत-द्वारा मारा गया था। बिहार का यह जमींदार बाद में पकड़ा गया तथा ४४ वें वर्ष तक जेल में रखा गया; किंतु इसके पश्चात् बहुत अधिक आर्थिक दंड लेकर उसे छोड़ दिया गया। बरखुर्दार अपने पिता के वध का बदला लेने तथा दलपत के वध की टोह में छिपा था; किंतु वह उसके हाथ न आया। जब अकबर को इस बात की सूचना मिली तब वह बरखुर्दार के इस कार्य से इतना रुष्ट हुआ कि उसने उसे दलपत को सौंप देने की आज्ञा दी; किंतु कई दरबारियों के हस्तक्षेप करने पर सम्राट् ने उसे कैद कर लिया।

पुनः उसी पृष्ठ की पादटिप्पणी १ में दलपत के सम्बन्ध में यह विद्वान् लेखक लिखता है—दलपत को अकबरनामा में उज्जनिह [اجینیه] लिखा है। हस्तलिखित प्रतियों में इसके उज्जैनिह [اجینیه] या ओजैनिह [اوجینیه] आदि रूप मिलते हैं। शाहजहाँ के राजत्व-काल में दलपत का उत्तराधिकारी राजा प्रताव (प्रताप ?) हुआ जिसे प्रथम वर्ष १५०० तथा १००० घोड़ों का मनसब मिला [पादशाहनामा १, २२१]।

इसी पुस्तक में इस बात का भी उल्लेख है कि रोहतास सरकार के अंतर्गत 'सहसराम' (ससराम) परगने के उत्तर तथा 'आरा' के पश्चिम, भोजपुर में, इन उज्जैनी राजाओं का निवास-स्थान था। शाहजहाँ के राजत्वकाल के दसवें वर्ष में प्रताव ने सम्राट के विरुद्ध क्रांति की। इसी समय अब्दुल्लाखाँ फिरोज जंग ने भोजपुर पर घेरा डाला तथा उसे विजय किया (जिलहज्ज ८, १०४६)। इसके पश्चात् प्रताव (प्रताप ?) ने अपने को सम्राट् के हाथ में सौंप दिया और

शाहजहाँ की आज्ञा से उसे फाँसी दी गई।.........इस सम्बन्ध में पादशाहनामा [१ भी पृ०, २७१-२७४] में प्रचुर सामग्री उपलब्ध है।

ऊपर के विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि किसी समय भोजपुर-राज्य अत्यंत प्रसिद्ध था। इसके शासक उज्जैन राजपूत प्राचीन काल में अपने मूल स्थान मालवा से बिहार चले आये थे। मध्ययुग के भारतीय इतिहास—विशेषतः पश्चिमी बिहार के इतिहास—में इन राजपूतों का स्थान बहुत-ही महत्त्वपूर्ण है। सन् १८५७ ई० की क्रांति तक इनका प्रभुत्व अक्षुण्ण रहा। इसी समय महाराजकुमार बाबू कुँवरसिंह ने अंग्रेजों के विरुद्ध विप्लव किया जिसके परिणाम स्वरूप भोजपुर ध्वस्त कर दिया गया। इस प्रकार भोजपुर-राज्य का अंत हुआ। इस समय केवल 'डुमरॉव राज्य' एक उज्जैनवंशी क्षत्रिय के अधिकार में है।

अब यह बात स्पष्ट है कि उज्जैन के भोजों[1] के नाम पर ही भोजपुर नाम पड़ा; क्योंकि प्राचीन काल में इन्हीं लोगों ने इस क्षेत्र पर अधिकार करके यहाँ शासन करना आरंभ किया था। डुमरॉव के निकट भोजपुर नगर ही इनकी राजधानी थी। यद्यपि इस प्राचीन नगर का वैभव विनष्ट हो चुका है तथापि अब भी डुमरॉव के निकट 'छोटका' तथा 'बड़का' 'भोजपुर' नाम के दो गाँव वर्तमान हैं। 'नवरत्न दुर्ग' का ध्वंसावशेष अब भी यहाँ वर्तमान है। इसके स्थापत्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह मध्ययुग की कृति है।

भोजपुर के प्राचीन नगर के नाम पर ही इस क्षेत्र का नाम भी भोजपुर पड़ गया जो आगे चलकर इस नाम के परगने तथा जिले के नाम का कारण हुआ। प्राचीन काल में भोजपुर नगर के दक्षिण तथा वर्तमान आरा जिले के उत्तर का अर्धभाग ही इस प्रांत की सीमा थी। सन् १७८१ के जेम्स रेनेल[2] के ऐटलस में आरा के उत्तरी भाग का नाम रोतास [रोहतास] प्रांत मिलता है। इस प्रकार १८ वीं शताब्दी में भोजपुर एक प्रांत था। धीरे-धीरे, इसका विशेषण भोजपुरी, इस प्रांत के निवासियों तथा उसकी बोली के लिए भी प्रयुक्त होने लगा। चूँकि इस प्रांत की बोली ही इसके उत्तर, दक्षिण तथा पश्चिम में भी बोली जाती थी, इसलिए भौगोलिक दृष्टि से भोजपुर प्रांत से बाहर होने पर भी इधर की जनता तथा उसकी भाषा के लिए भी भोजपुरी शब्द ही प्रचलित हो चला।

यह एक विशेष बात है कि भोजपुर के चारों ओर की ढाई करोड़ से अधिक जनता की बोली का नाम भोजपुरी हो गया। प्राचीन काल में भोजपुरी का यह क्षेत्र, 'काशी', 'मल्ल' तथा 'पश्चिमी मगध' एवं 'झारखंड' (वर्तमान छोटानागपुर) के अंतर्गत था। मुगलों के राजत्वकाल में जब भोजपुर के राजपूतों ने अपनी वीरता तथा सामरिक शक्ति का विशेष परिचय दिया तब एक ओर जहाँ भोजपुरी शब्द जनता तथा भाषा दोनों का वाचक बनकर गौरव का द्योतन करने लगा, वहाँ दूसरी ओर वह एक भाषा के नाम पर प्रचीन काल के तीन प्रांतों को एक प्रांत में गूँथने में भी समर्थ हुआ।

१—धार के प्रसिद्ध राजा भोज का नाम किसी व्यक्ति-विशेष का नाम न होकर उस क्षेत्र के राजाओं की उपाधि प्रतीत होता है। [ऐतरेय ब्राह्मण, ८-१४]

२—जेम्स रेनेल ने सर्वप्रथम बंगाल तथा बिहार का प्रामाणिक मानचित्र तैयार किया था।

इस प्रकार सत्रहवीं-अठारहवीं शताब्दी में मागधी भाषा के इस रूप के बोलनेवाले भोजपुरी कहलाये। भोजपुरी स्वभावतः युद्धप्रिय होते हैं; अतएव मुगलसेना तथा उसके बाद १८५७ के भारतीय विद्रोह तक ब्रिटिश सेना में उनका बड़ा सम्मान रहा। बिहार में प्रचलित निम्नलिखित पद में भोजपुरियों के युद्धप्रिय स्वभाव की चर्चा है। इस पद में 'भोजपुरिया' शब्द से भोजपुरी लोगों से तात्पर्य है। पद इस प्रकार है—

भागलपुर[1] के भगोलिया,
कहलगाँव[2] के ठग;
पटना[3] के देवालिया,
तीनू नामजद;
सुनि पावे भोजपुरिया,
त तीनू के तुरे रग[4]।

ग्रियर्सनकृत बिहारी भाषाओं तथा उपभाषाओं के सप्तव्याकरण भाग १ (ग्रियर्सन—'सेवेन ग्रामर्स ऑव द डाइलेक्ट्स् एंड सबडाइलेक्ट्स् ऑव बिहारी लैंग्वेज, पार्ट वन') के मुखपृष्ठ पर एक पद उद्धृत है जिसमें 'भोजपुरिया' शब्द का प्रयोग भाषा के अर्थ में हुआ है। पद इस प्रकार है—

कस कस कसमर किना मगहिया,
का भोजपुरिया की तिरहुतिया।

'क्या' सर्वनाम के लिए 'कसमर' [सारन जिले के एक स्थान] में 'कस', 'मगही' में 'किन', 'भोजपुरी' में 'का', तथा 'तिरहुतिया' [मैथिली] में 'की' होता है।

ऊपर के विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि मुगल शासन के अंतिम काल से 'भोजपुरी' अथवा 'भोजपुरिया' शब्द जनता तथा भाषावाची बन चुका था। भाषा के अर्थ में लिखित रूप में इसका सर्व-प्रथम उल्लेख सन् १७८९ में मिलता है। सर जार्ज ग्रियर्सन ने अपने लिंग्विस्टिक सर्वे के प्रथम भाग के पूरक अंश पृ० २२ में एक उद्धरण दिया है। यह इस प्रकार है—१७८९—"दो दिन बाद, सिपाहियों का एक रेजिमेंट जब दिन निकलने पर शहर से होता हुआ चुनारगढ़ की ओर जा रहा था, तो मैं गया और उसे जाते हुए देखने के लिए खड़ा हो गया। इतने में रेजिमेंट के सिपाही रुके और उनके बीच के कुछ लोग अँधेरी गली की ओर दौड़ पड़े। उन्होंने एक मुर्गी पकड़ ली और कुछ मूली-गाजर भी उठा लाये। लोग चीख उठे। तब एक सिपाही ने अपनी भोजपुरिया बोली में कहा—इतना अधिक शोर मत करो। आज हम लोग फिरंगियों के साथ जा रहे हैं; किंतु हम सभी चेतसिंह की प्रजा हैं और कल उनके साथ भी आ सकते हैं। तब मूली-गाजर का ही प्रश्न न होगा; बल्कि तुम्हारी बहू-बेटियों का होगा"।[5]

१, २, ३—बिहार के नगर। ४—तीनों की नसें तोड़ दे।

5—1789. "Two days after, as a regiment of sepoys on its way to Chunar-Garh, was marching through the city at day break, I went out, and was standing to see it pass by, the regiment halted; and a few men from the centre ran into a dark lane, and laid hold of a hen and some roots; the people screamed 'Do not make so much noise,' said one of the men in his Bodjpooria idiom. 'We go today with the Frenghees, but we are all servants (tenants) to Cheyt Singh, and

इसके पश्चात् निश्चित रूप से भाषा के अर्थ में भोजपुरी शब्द का प्रयोग, सन् १८६८ में जान बीम्स ने रायल एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल, भाग ३, पृष्ठ ४८५-५०८ में अपने 'भोजपुरी बोली पर संक्षिप्त टिप्पणी' शीर्षक लेख में किया। वस्तुतः बीम्स ने प्रचलित अर्थ में ही इस शब्द का प्रयोग किया है। यह लेख प्रकाशित होने से एक वर्ष पूर्व [१७ फरवरी, सन् १८६७] एशियाटिक सोसाइटी में पढ़ा गया था।

भोजपुरी जनता तथा उनकी भाषा के अन्य नाम भी मिलते हैं। मुगलों के राजत्वकाल में दिल्ली तथा पश्चिम में, भोजपुरियों—विशेषतः भोजपुरी क्षेत्र के तिलंगों—को बक्सरिया कहा जाता था। १७वीं तथा १८वीं शताब्दी में भोजपुर तथा उसके पास में ही स्थित बक्सर, फौजी सिपाहियों की भर्ती के दो मुख्य केंद्र थे। १८वीं शती में जब अंग्रेजों के हाथ में देश का शासन-सूत्र आया तब उन्होंने भी मुगलों की परंपरा जारी रखी और वे भी भोजपुर तथा बक्सर से तिलंगों की भर्ती करते रहे।[1]

सबसे अधिक भोजपुरी बंगाल में जाते हैं। वहाँ इन्हें बंगाली लोग 'हिंदुस्थानी' अथवा 'पश्चिमा' तथा कभी-कभी 'देशवाली' अथवा 'खोट्टा' भी कहते हैं। 'खोट्टा' शब्द में तो स्पष्ट रूप से घृणा का भाव भी आ जाता है। अधिकांश भोजपुरी बंगाल तथा उसके मुख्य नगर कलकत्ते में दरबानी अथवा छोटा-मोटा काम करके ही जीविकोपार्जन करते हैं। इसी कारण इनके लिए 'खोट्टा' शब्द का प्रयोग किया होगा। वस्तुतः बंगाली तथा भोजपुरी, दोनों इससे अनभिज्ञ हैं कि उनकी भाषाएँ एक ही मागधी भाषा से प्रसूत हुई हैं। शिक्षित बंगाली भी इस तथ्य से अपरिचित ही हैं और वे भोजपुरी को हिंदी अथवा हिन्दुस्थानी के अंतर्गत ही मानते हैं।

'देशवाली' के संबंध में यह उल्लेखनीय बात है कि जब कलकत्ता अथवा बंगाल में एक भोजपुरी दूसरे भोजपुरी से मिलता है तब उसे देशवाली अथवा मुल्की भाई कहकर संबोधित करता है तथा अपनी बोली को भी देशवाली कहता है किंतु देशवाली तथा मुल्की शब्दों की व्याप्ति के विषय में भी यह स्मरण रखना चाहिए कि ये सापेक्षिक शब्द हैं और कभी-कभी एक पश्चिमी हिंदी भाषा-भाषी भी एक दूसरे पश्चिमी हिंदी भाषा-भाषी को देशवाली अथवा मुल्की और उसकी भाषा को देशवाली कहता है।

उत्तरी भारत में भोजपुरियों को 'पुर्बिया' और उनकी बोली को 'पूर्वी बोली' कहते हैं। 'पूरब' और पुर्बिया' के संबंध में हाब्सन-जाब्सन[2] पृ० ७२४ में निम्नलिखित विवरण उपलब्ध है—

"उत्तरी भारत में 'पूरब' से 'अवध' बनारस तथा बिहार प्रांत से तात्पर्य है; अतएव 'पूर्बिय' इन्हीं प्रांतों के निवासियों को कहते हैं। बंगाल की पुरानी फौज के सिपाहियों के लिए भी इस शब्द का प्रयोग होता था; क्योंकि उनमें से अधिकांश इन्हीं प्रांतों के निवासी थे"।

---

may come back tomorrow with him; and then the question will be not about your roots but about your wives and daughters."

—रेमंडकृत 'शेर मुताखरीन का अनुवाद, द्वितीय संस्करण, अनुवादक की भूमिका पृ० ८

१—विलियम इरविंग कृत दि आर्मी आव दि इंडियन मुगल्स, लंदन, १९०३, पृ० १६८-१६९।

२—हेनरी यूल तथा ए० सी० बर्नेल कृत कोष जिसमें एंग्लो-इंडियन लोगों में प्रचलित शब्दों तथा वाक्यों आदि की तालिका है।

ऊपर के उद्धरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि 'पुर्बिया तथा 'पूर्बो' के अंतर्गत कोसली (अवधी) भी आ जाती है। वस्तुतः 'पुर्बिया' शब्द की व्याप्ति भी अनिश्चित तथा सापेक्षिक है। यह ब्राह्मण-ग्रंथों में प्रयुक्त 'प्राच्य' अथवा ग्रीक "प्रसिओई" का आधुनिक रूप है जिससे 'मध्यदेश' के पूरब के निवासियों से तात्पर्य है। आज भी कोसल (अवध) के लोग बिहार के निवासियों को 'पुर्बिया' कहते हैं, यद्यपि नागरी हिंदी (खड़ी बोली) तथा ब्रजभाषा-भाषी उन्हें ही 'पुर्बिया' कहते हैं।

भोजपुरी के अंतर्गत स्थान-भेद से बोलियों का नाम भी पड़ गया है, जैसे छपरे जिले की भोजपुरी को 'छपरहिया' तथा बनारस की भोजपुरी को 'बनारसी' बोली कहते हैं। इसी प्रकार बलिया के पश्चिमी तथा आजमगढ़ के पूर्वी क्षेत्र की बोली 'बंगरही' कहलाती है। इधर बाँगर से उस क्षेत्र से तात्पर्य है जहाँ गंगा की बाढ़ नहीं जाती।

श्री राहुल सांकृत्यायन ने बलिया जिले के तेरहवें वार्षिकोत्सव के अपने अभिभाषण में भोजपुरी भाषा के स्थान पर 'मल्ली' नाम का प्रयोग किया है। 'मल्ल जनपद' बुद्ध के समय के सोलह महाजनपदों में से एक था। इसकी ठीक सीमा क्या थी, यह आज निश्चित रूप से नहीं बतलाया जा सकता। जैन कल्पसूत्रों में नव मल्लों की चर्चा है; किंतु बौद्ध-ग्रंथों में केवल तीन स्थानों—'कुशिनारा', 'पावा' तथा 'अनूपिया'—के मल्लों का उल्लेख है। इनके कई प्रसिद्ध नगरों के भी नाम मिलते हैं, जैसे 'भोजनगर', 'अनूपिया' तथा 'उरुवेलकप्प'। 'कुशिनारा' तथा 'पावा' विद्वानों के अनुसार उत्तरप्रदेश के गोरखपुर जिले में स्थित वर्तमान 'कसया' तथा 'पडरौना' ही हैं। इस संबंध में एक और बात भी विचारणीय है। 'मल्ल' की ही भाँति 'काशी' का उल्लेख भी प्राचीन ग्रंथों में मिलता है। काशी में भी भोजपुरी ही बोली जाती है। अतएव मल्ल के साथ-साथ काशी का होना भी आवश्यक है। राहुल जी ने इस क्षेत्र की भोजपुरी का 'काशिका' नाम दिया है; किंतु भोजपुरी को ऐसे छोटे-छोटे टुकड़ों में विभक्त करना अनावश्यक तथा अनुपयुक्त है। आज भोजपुरी एक विस्तृत क्षेत्र की भाषा है, यही कारण है कि प्राचीन जनपदीय नामों को पुनः प्रचलित करने की अपेक्षा इसी का प्रयोग वाछनीय है। इस नाम के साथ-साथ भी कम-से-कम तीन सौ वर्षों की परंपरा है।

भोजपुरी की सजीवता

भोजपुरी एक सजीव भाषा है। यद्यपि भोजपुरी क्षेत्र में प्रारम्भिक तथा माध्यमिक शिक्षा का माध्यम हिन्दी है, तथापि अपनी मातृभाषा के लिए भोजपुरियों के हृदय में अगाध प्रेम है। जहाँ अध्यापक तथा छात्र दोनों भोजपुरी हैं, वहाँ कठिन शब्दों की व्याख्या तथा अर्थ आदि समझाने के लिए अध्यापक प्रायः भोजपुरी का ही प्रयोग करते हैं। इसी प्रकार गणित के प्रश्नों तथा ज्यामिति के अभ्यासों को आपस में समझाते हुए छात्रगण प्रायः अपनी मातृभाषा ही बोलते हैं। प्रारम्भिक कक्षाओं के छात्र तो अपने अध्यापकों को भोजपुरी में ही सम्बोधित करते हैं। कक्षाओं के भीतर तथा बाहर भी विद्यार्थी आपस में वार्तालाप करते हुए भोजपुरी का ही व्यवहार करते हैं। संस्कृत के प्राचीन पण्डित तो पाठशालाओं में व्याकरण पढ़ाते समय अपने छात्रों को संस्कृत अथवा भोजपुरी में ही समझाते हैं। गाँवों में यदि कोई व्यक्ति अपने लोगों से भोजपुरी के अतिरिक्त हिन्दी-उर्दू में बातचीत करता है तो वह उपहास का पात्र बन जाता है। ग्रामीण पंचायतों में राजनीतिक आर्थिक तथा धार्मिक समस्याओं पर विचार करते समय लोग भोजपुरी का ही व्यवहार करते हैं और हाथ के लिखे हुए विवाहादि के निमंत्रण-पत्र भी प्रायः भोजपुरी में ही होते हैं।

बनारस तथा मिर्जापुर में एक विशेष प्रकार के गीत, जिसे कजली कहते हैं, अत्यधिक प्रचलित हैं। इसकी भाषा प्रायः भोजपुरी होती है। इसे यहाँ के लोग वर्षाऋतु—विशेष रूप से सावन—में गाते हैं।

भोजपुरी क्षेत्र के बाहर भोजपुरियों का सबसे बड़ा अड्डा कलकत्ता है। कलकत्ता को हम वास्तव में भोजपुरी जीवन तथा संस्कृति का केन्द्र कह सकते हैं। हजारों भोजपुरी कलकत्ता तथा भागीरथी के किनारे स्थित जूट के कारखानों में काम करते हैं। कलकत्ते के 'ऑक्टर लोनी मानुमेण्ट' के पास का किले का मैदान [जिसे भोजपुरी मौनीमठ (मौन रहने वाले साधु का मठ) कहते हैं] वास्तव में भोजपुरियों का हाइडपार्क है। प्रत्येक रविवार को हजारों भोजपुरी इस मैदान में एकत्र होते हैं तथा भोजपुरी गीतों, लोक-कथाओं तथा लोक-गाथाओं (आल्हा, विजमल आदि) से अपना मनोरंजन करते हैं।

भोजपुरी में साहित्य का अभाव

भोजपुरी के प्रति उसके बोलनेवालों का इतना अधिक अनुराग होते भी हुए भी इसमें लिखित साहित्य का क्यों अभाव है, यह प्रश्न विचारणीय है। इसका एक कारण यह है कि प्राचीन काल में जहाँ मिथिला तथा बंगाल के ब्राह्मणों ने संस्कृत के साथ-साथ अपनी मातृभाषाओं को भी साहित्यिक रचना के लिए अपनाया वहाँ भोजपुरी ब्राह्मणों ने केवल संस्कृत के अध्ययन-अध्यापन पर ही विशेष बल दिया। उधर संस्कृत का केन्द्र काशी भी भोजपुरी क्षेत्र में ही है। इस कारण भी संस्कृत अध्ययन के लिए ही भोजपुरियों को विशेष प्रोत्साहन मिला। हाँ, यह अवश्य सत्य है कि कबीर तथा भोजपुरी क्षेत्र के अन्य सन्त कवि अपनी मातृभाषा को न भूल सके। भोजपुरी साहित्य के अन्तर्गत इन सन्त कवियों तथा अन्य साहित्यिकों की रचना पर विचार किया जायेगा।

भोजपुरी का विस्तार

भोजपुरी ४३००० वर्गमील में बोली जाती है। इसकी सीमा प्रान्तों की राजनैतिक सीमा से भिन्न है। भोजपुरी के पूरब में इसकी दो बहनों, मैथिली तथा मगही, का क्षेत्र है। इसकी सीमा गंगा नदी के साथ-साथ, पटना के पश्चिम, कुछ मील दूरी तक पहुँच जाती है जहाँ से सोन नदी के मार्ग का अनुसरण करती हुई वह रोहतास तक पहुँच जाती है। यहाँ से वह दक्षिण-पूरब का मार्ग ग्रहण करती है तथा आगे चलकर राँची के प्लेटो के रूप में एक प्रायद्वीप का निर्माण करती है। इसकी दक्षिणी पूर्वी सीमा राँची के बीस मील पूरब तक जाती है तथा बोंडू के चारों ओर घूमकर वह खरसवान तक पहुँच जाती है। यहाँ से यह उड़िया को अपने बायें छोड़ती हुई, पश्चिम ओर मुड़ जाती है तथा पुनः दक्षिण और फिर उत्तर की ओर मुड़कर जशपुर राज्य को अपने अन्तर्गत कर लेती है। यहाँ छत्तीस गढ़ी तथा बघेली को वह अपने बायें ओर छोड़ देती है। यहाँ से भंडरिया तक पहुँचकर वह पहले उत्तर-पश्चिम और पुनः उत्तर-पूरब मुड़कर सोन नदी का स्पर्श करती हुई यह 'नगपुरिया' भोजपुरी की सीमा पूर्ण करती है।

सोन नदी को पारकर भोजपुरी अवधी की सीमा का स्पर्श करती है तथा सोन नदी के साथ वह ८२° देशान्तर रेखा तक चली जाती है। इसके बाद उत्तर ओर मुड़कर वह मिर्जापुर के १५ मील पश्चिम की ओर गंगा नदी के मार्ग से मिल जाती है। यहाँ से यह पुन. पूरब की ओर मुड़ती है, गंगा को मिर्जापुर के पास पार करती है तथा अवधी को अपने बायें छोड़ती हुई एवं सीधे उत्तर की ओर 'ग्राण्ड ट्रंक रोड' पर स्थित 'तमंचाबाद' का स्पर्श करती हुई जौनपुर शहर

के कुछ मील पूरब तक पहुँच जाती है। इसके पश्चात् घाघरा नदी के मार्ग का अनुसरण करती हुई वह 'अकबरपुर' तथा 'टांडा' तक चली जाती है। घाघरा नदी के उत्तरी बहाव मार्ग के साथ-साथ पुनः यह पश्चिम में ८२° देशान्तर तक पहुँच जाती है। यहाँ से टेढ़े-मेढ़े मार्ग से होते हुए बस्ती जिले के उत्तर-पश्चिम, नेपाल की तराई में स्थित, यह सीमा 'जरवा' तक चली जाती है। यहाँ पर भोजपुरी की सीमा एक ऐसी पट्टी बनाती है जिसका कुछ भाग नेपाल सीमा के अन्तर्गत तथा कुछ भारतीय सीमा के अन्तर्गत आता है। यह पट्टी पन्द्रह मील से अधिक चौड़ी नहीं है तथा बहराइच तक चली गई है। इसमें थारु बोली बोली जाती है जिसमें भोजपुरी के ही रूप मिलते हैं।

भोजपुरी की उत्तरी सीमा, अवधी की उस पट्टी को जो भोजपुरी तथा नेपाली के बीच है, बायें ओर छोड़ती हुई, दक्षिण की ओर ८३° देशान्तर रेखा तक चली गई है। यह पूरब में रुम्मन देई [बुद्ध के जन्म-स्थान, प्राचीन लुम्बिनी] तक पहुँच जाती है। यहाँ से यह पुन., उत्तर-पूरब ओर, नेपाल राज्य में स्थित बुटवल तक चली जाती है तथा वहाँ से पूरब से होती हुई नेपाल राज्य के अमेलखगंज के १५ मील पूरब तक पहुँच जाती है। वहाँ से यह फिर दक्षिण ओर मुड़ती है। इसके पूरब में मैथिली का क्षेत्र आ जाता है। मुजफ्फरपुर के १० मील इधर तक पहुँच कर यह सीमा पश्चिम ओर मुड़ जाती है तथा गंडक नदी के साथ-साथ वह पटना के पास तक जाकर गंगा नदी से मिल जाती है।

ऊपर भोजपुरी की जो सीमा निर्धारित की गई है, उसमे तथा डा० ग्रियर्सन द्वारा लिंग्विस्टिक सर्वे में दी हुई सीमा में—विशेषतः भोजपुरी की उत्तरी सीमा में—थोड़ा अन्तर है। वस्तुत भाषा की विशेषता की दृष्टि से भारत तथा नेपाल की सीमा बहुत कुछ अस्पष्ट है। इधर डा० ग्रियर्सन ने केवल राजनैतिक सीमा देकर ही सन्तोष कर लिया है, यद्यपि उन्होंने यह स्पष्ट रुप से इंगित किया है कि हिमालय की तराई में भी भोजपुरी बोली जाती है। वर्तमान लेखक ने स्वयं जाँच करके इस सीमा को डा० ग्रियर्सन द्वारा दी हुई सीमा से और उत्तर निर्धारित की है। इसके लिए लेखक को नेपाल की तराई में भ्रमण करके अनेक स्थानों में भाषा की जाँच करनी पड़ी और तब यह सीमा निश्चित हो सकी। तराई में जो पट्टी अवधी की सीमा में प्रविष्ट कर गई है तथा जिसकी चर्चा पहले की जा चुकी है, वहाँ थारु लोग निवास करते हैं। ये भोजपुरी भाषा-भाषी हैं। हाँ, अवधी बोलनेवाले भी व्यापार के लिए कभी-कभी वहाँ आ जाते हैं।

भोजपुरी के विस्तार को मानचित्र में देखने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इस समय यह दो राज्यों—उत्तरप्रदेश तथा बिहार—में फैली हुई है। वस्तुत यह उत्तरप्रदेश के पूरब के जिलों तथा पश्चिमी बिहार की भाषा है। इसके बोलने वालों की संख्या भी, अन्य दो बिहारी बोलियों, मैथिली तथा मगही की संयुक्त संख्या से लगभग दुगुनी है। दो राज्यों में विभक्त होने पर भी भोजपुरियों की संस्कृति एवं रीति-नीति में कोई अन्तर नहीं आ पाया है। पारस्परिक विवाह सम्बन्ध, भोजपुरी भाषा सम्मेलन, परदेश में भी एक दूसरे से मिलने पर मातृभाषा में ही सम्भाषण की प्रथा ने वस्तुतः दो राज्यों में विभक्त भोजपुरियों को एकता के सूत्र में आबद्ध कर रखा है। यह होते हुए भी, यदि समस्त भोजपुरी भाषा-भाषी एक ही राज्य में आ जाते तो इनमें एकता की भावना और भी दृढ़ हो जाती और तब सामूहिक रुप से ये भारतीय राष्ट्र के अभ्युत्थान में और भी अधिक सहायक होते।

डा० ग्रियर्सन ने भोजपुरी को चार भागों में विभक्त किया है। ये विभाग हैं, उत्तरी, दक्षिणी, पश्चिमी तथा नगपुरिया। उत्तरी भोजपुरी घाघरा नदी के उत्तर में बोली जाती है। इसकी भी दो विभाषाएँ हैं—(१) सरवरिया तथा (२) गोरखपुरी। यदि गंडक नदी के साथ एक रेखा नेपाल की सीमा तक और वहाँ से गोरखपुर शहर के कुछ मील पूरब से होते हुए बरहज तक खींची जाय तो इसके पश्चिम 'सरवरिया' तथा पूरब 'गोरखपुरी भोजपुरी' का क्षेत्र होगा।

भोजपुरी की बोलियाँ या विभाषाएँ

सोन नदी के दक्षिण नगपुरिया भोजपुरी बोली जाती है। उत्तरी तथा नगपुरिया भोजपुरी के बीच में ही दक्षिणी तथा पश्चिमी भोजपुरी का क्षेत्र है। यदि बरहज से गाजीपुर शहर तक और वहाँ से सोन नदी तक रेखा खींची जाय तो इसके पूरब दक्षिणी भोजपुरी तथा पश्चिम पश्चिमी भोजपुरी का क्षेत्र होगा।

यह दक्षिणी भोजपुरी ही वास्तव में आदर्श भोजपुरी है। इसका क्षेत्र शाहाबाद, सारन, बलिया, पूर्वी देवरिया तथा पूर्वी गाजीपुर है। पश्चिमी गाजीपुर, आजमगढ़, बनारस, मिर्जापुर तथा जौनपुर के कुछ भागों में पश्चिमी भोजपुरी बोली जाती है।

आदर्श भोजपुरी अपनी अन्य बोलियों की अपेक्षा अधिक श्रुति-मधुर है। जिस प्रकार ईरानी लोगों की बोलचाल की फारसी तथा फ्रेंच बोलनेवालों के लहजे में एक विशेष प्रकार का संगीतात्मक माधुर्य तथा लोच—'इंटोनेशन'—होता है, उसी प्रकार का माधुर्य तथा लोच आदर्श भोजपुरी में भी होता है। वाक्य के अन्तिम स्वर को देर तक उच्चारण करने से ही यह माधुर्य उत्पन्न होता है। उदाहरणार्थ यदि किसी को कहना है कि "बच्चे, कहाँ जा रहे हो?" तो इसे आदर्श भोजपुरी में इस प्रकार कहेंगे—बबुआ हो ··ओ···ओ, कहाँ जातर···अ ·अ। भोजपुरी का अन्य बोलियों में इस माधुर्य तथा लोच का सर्वथा अभाव है।

आदर्श भोजपुरी को इसकी अन्य बोलियों से पृथक् करनेवाला सर्वनाम 'रउआं' है। इस सर्वनाम का भोजपुरी की अन्य बोलियों में अभाव है। आदर्श भोजपुरी में इस शब्द के कई रूप उपलब्ध हैं यथा 'रउरां' 'राउर' आदि। आदर प्रदर्शन के लिए ही आपके अर्थ में 'रउरां' तथा 'राउर' सर्वनाम का प्रयोग किया जाता है। प्राकृत में इस शब्द का रूप 'लाउल' मिलता है, जिसका संस्कृत रूप 'राजकुल' अथवा 'राजकुल्ये' होगा। मैथिली में इस सर्वनाम के लिए 'आइस' तथा 'अहां' शब्दों का प्रयोग होता है। जिनकी उत्पत्ति संस्कृत के 'अतिश' तथा 'आयुष्मान' शब्दों से हुई है।

आदर्श भोजपुरी का 'राउर' शब्द इतना प्रसिद्ध तथा महत्त्वपूर्ण है कि अवधी के कवि गोस्वामी तुलसीदास जी तथा व्रज-भाषा के कवि सूरदास जी से लेकर श्री जगन्नाथदास रत्नाकर तक ने इसका प्रयोग किया है। सच बात तो यह है कि अवधी, व्रजभाषा, तथा अन्य पछांही बोलियों में इस सर्वनाम का समानार्थक कोई शब्द है ही नहीं। गोस्वामी तुलसीदास जी अपने 'रामचरित मानस' में लिखते हैं—

जो राउर अनुशासन पाऊँ।
कंदुक इव ब्रह्मांड उठाऊँ॥

सूरदास के एक पद की टेक है—

'मधुप रावरी पहिचान'

श्री जगन्नाथदास रत्नाकर 'उद्धव-शतक' के एक पद में कहते हैं—

'फैले बरसाने में न रावरी कहानी यह'

नीचे आदर्श (शाहाबाद, सारन तथा बलिया) भोजपुरी की उत्तरी पश्चिमी, आदि बोलियों से तुलना की जाती है—

भोजपुरी बोलियों की तुलना

(१) संज्ञा—आदर्श भोजपुरी के स्त्रीलिंग शब्दों के अन्त में प्रायः ह्रस्व इ आती है, किन्तु भोजपुरी की अन्य बोलियों मे इसका अभाव है, जैसे—आँखि, पाँखि, (आदर्श भोजपुरी) आँख, पाँख, (अन्य भोजपुरी)। गोरखपुर की उत्तरी भोजपुरी के संज्ञा पदों में कहीं-कहीं अनुनासिक का प्रयोग होता है। यथा—भाँट, नाँद। किन्तु आदर्श भोजपुरी में इसके रूप होंगे—भाट, नाद्। मैथिली के प्रभाव से कभी-कभी सारन तथा मुजफ्फरपुर की सीमा की भोजपुरी में 'ड़' का 'र' होता है—यथा घोड़ा>घोरा, सड़क>सरक।

गोरखपुर की उत्तरी भोजपुरी में प्राचीन भोजपुरी के कतिपय रूप आज भी वर्त्तमान हैं, जैसे, हिन्दी 'मैं' सर्वनाम का 'मयँ' तथा 'मैं' रूप। भोजपुरी की अन्य बोलियों में यह रूप केवल कहावतों तथा मुहावरों आदि में ही मिलते हैं। उत्तरी भोजपुरी के अन्य कारकों में व्यवहृत 'मो' सर्वनाम भी आदर्श भोजपुरी में नहीं मिलता। इसी प्रकार मध्यम पुरुष के सर्वनाम 'तू' के अतिरिक्त, गोरखपुर में 'तैं भी बोला जाता है। तथा

अप्राणि बोधक, प्रश्नवाचक सर्वनाम 'केथी' (हिन्दी-'क्या') गोरखपुर में 'केथुआ' बोला जाता है।

विशेषण—संख्यावाचक विशेषण में ११ से १८ तक को उत्तरी भोजपुरी में 'एगारे', 'बारे', 'तेरे' इत्यादि बोला जाता है। और आदर्श भोजपुरी का इन शब्दों में व्यवहृत अन्तिम 'ह' का गोरखपुर की उत्तरी भोजपुरी में लोप हो जाता है। इसी प्रकार आदर्श भोजपुरी के 'अर्तिस', 'अर्तालिस', 'सरसठ', 'असंठ' गोरखपुरी में 'अँड़तिस', 'अँड़तालिस', 'सँड़सठ' और 'अँड़सठ' बोले जाते हैं।

क्रियापद—(क) सहायक क्रियाएँ–आदर्श भोजपुरी का 'बाड़े' गंगा के उत्तर 'बाटे' हो जाता है। यद्यपि कहीं-कहीं 'बाड़े' का भी प्रयोग होता है, इसी प्रकार उत्तम पुरुष पुल्लिंग में 'बार्टी', मध्य-पुरुष में 'बाट', 'बाटे', 'आटे' तथा अन्य-पुरुष पुल्लिंग में 'बाटैं', 'आटैं', 'बाय', 'आय' रूप मिलते हैं। आदर्श भोजपुरी के 'बा' रूप का उत्तरी भोजपुरी में सर्वथा अभाव है।

(ख) क्रियापद वर्त्तमानकाल—सारन की भोजपुरी में मध्यम पुरुष एक वचन में 'देखुए', 'देखुएस', अन्य पुरुष एक वचन में 'देखुए', 'देखै' तथा अन्य पुरुष बहुवचन में 'देखेन' रूप वैकल्पिक रूप में मिलते हैं।

भूतकाल—भोजपुरी की समस्तबोलियों में, भूतकाल में 'ल' वाला रूप मिलता है; किन्तु पालामऊ की भोजपुरी में उसमें 'उ' भी जोड़ दिया जाता है। गंडक के पूरब की भोजपुरी पर मैथिली का भी प्रभाव पड़ने लगता है, यथा—

उत्तम पुरुष—हम देखलियैन (जब कर्म अन्य पुरुष में रहता है तथा जब उसके प्रति विशेष आदर प्रदर्शन करना होता है, उदाहरण स्वरूप—'मैंने श्रीमान् राजा को देखा', इसको 'हम राजा के देखलियैन' कहा जायगा। इसी प्रकार जब कर्म 'मध्यम पुरुष' में रहता है तब

'हम देखलियव' बोला जाता है, यथा—'हम रउरा के देखलियव' अर्थात् मैंने आप श्रीमान् को देखा)।

मध्यमपुरुष—जब कर्म अन्य पुरुष का होता है तथा जब वह किसी निम्न श्रेणी के व्यक्ति का बोधक होता है तब 'तू 'देखलहुस' का प्रयोग किया जाता है यथा—'तू भलिया के देखलहुस'। किन्तु जब अन्यपुरुष के कर्म के प्रति आदर प्रदर्शन करना होता है तब 'तू देखलहुन' का प्रयोग किया जाता है, जैसे 'तू राजा के देखलहुन' अर्थात् 'तुमने श्रीमान राजा को देखा'।

भूतकाल [सम्भाव्य]—

म० पु० ए० व०	अ० पु० ब० व
देखतेन	देखतेस

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, उत्तरी भोजपुरी की दो विभाषाएँ हैं—(१) गोरखपुरी, (२) सरवरिया। गोरखपुरी की कतिपय विशेषताओं का उल्लेख ग्रियर्सन ने अपने लिंग्विस्टिक सर्वे के भाग ५ पृ० २२६ में किया है। इनमें से सबसे अधिक जो विशेषता हमारा ध्यान आकर्षित करती है, वह है विवृत 'अ' को लिखने की प्रणाली। इसे दो बार लिखा जाता है—यथा, दुअअ लअअ। उच्चारण सम्बन्धी विशेषता गोरखपुरी भोजपुरी में यह है कि 'ड़' के स्थान पर इसमें 'र' का प्रयोग होता है। यथा पड़ल>परल। बलिया की आदर्श भोजपुरी में परल तथा पड़ल, दोनों का प्रयोग होता है।

इसी प्रकार आदर्श भोजपुरी की सहायक क्रिया बाड़े के लिए गोरखपुरी भोजपुरी में बाटे का ही प्रयोग प्रचलित है।

सरवरिया भोजपुरी का क्षेत्र बस्ती तथा पश्चिमी गोरखपुर है। इसकी निम्नलिखित विशेषताओं का उल्लेख ग्रियर्सन ने लिंग्विस्टिक सर्वे के भाग ५ पृ० २३६ में किया है। इन पंक्तियों के लेखक ने स्वयं भी जाँच करके इन्हें इसी रूप में पाया है। गोरखपुर की भाँति बस्ती में भी 'ड़' के स्थान पर 'र' का ही प्रयोग होता है। इस प्रकार यहाँ भी लोग 'पड़ल' के बजाय 'परल' ही बोलते हैं। यहाँ सम्बन्ध कारक में परसर्ग के रूप में 'कई' तथा अन्य कारकों में 'के' का प्रयोग होता है। यह पश्चिमी भोजपुरी के प्रभाव का परिणाम है।

सरवरिया भोजपुरी के सर्वनाम के रूपों में भी कई विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। यथा—सम्बन्ध कारक के रूपों के अन्त में 'ए' आता है—यथा—तुहरे, ओकरे, इन्-के अपने आदि।

क्रियापदों के रूपों में इस बोली में एक विशेषता यह है कि इसके अन्यपुरुष, एकवचन, भूतकाल के रूप में—अस या असि के स्थान पर—इस का उपयोग होता है। इस प्रकार आदर्श भोजपुरी के दिहलस या दिहलसि, लिहलस या लिहलसि, कइलस या कइलसि रूप सरवरिया भोजपुरी में दिहलिस, लिहलिस एवं कइलिस हो जाते हैं।

सहायक क्रिया के रूप में 'ड़' से अन्त होने वाले रूप के बजाय यहाँ भी 'ट' से अन्त होनेवाले रूपों का ही प्रयोग होता है। इस प्रकार यहाँ 'बाटे' आदि रूप ही प्रयोग में आते हैं।

फैजाबाद, जौनपुर, आजमगढ़, बनारस, मिर्जापुर तथा गाजीपुर के पश्चिमी भाग में जो भोजपुरी बोली जाती है वह आदर्श भोजपुरी की अपेक्षा कई बातों में भिन्न है। उदाहरण स्वरूप बिहारी भाषाओं की एक सबसे बड़ी विशेषता यह है कि—'आकारान्त' संज्ञापदों के रूप अन्य कारकों में भी वैसे ही रहते हैं; किन्तु इस पश्चिमी भोजपुरी में ये—'ए' में परिणत हो जाते

हैं। वस्तुतः यह पश्चिमी भोजपुरी प्राच्य समूह की आर्य भाषाओं में से सब से पश्चिम की है, अतएव इस पर इसकी पश्चिम की बोलियों का प्रभाव पड़ना सर्वथा स्वाभाविक है।

निम्नलिखित बातों में पश्चिमी भोजपुरी आदर्श भोजपुरी से भिन्न है—

(क) संज्ञा—

संज्ञा-पदों के रूप में, 'आदर्श भोजपुरी' तथा 'पश्चिमी भोजपुरी' में निम्नलिखित अन्तर है—

आदर्श भोजपुरी (बलिया, शाहाबाद)	पश्चिमी भोजपुरी (आजमगढ)
लकठो	लकठा
खोंच	खोंचा
भाट	भेंट
सोंढ़	सोंढ़
जाम	जामा
गाइ	गाय
आँखि	आँख
पाँखि	पाँख

आजमगढ़, बनारस तथा मिर्जापुर की पश्चिमी भोजपुरी में सम्बन्ध कारक के परसर्ग के रूप में 'क' तथा 'कै' का प्रयोग होता है। यहाँ इस बात को भी सदैव स्मरण रखना चाहिए कि आदर्श भोजपुरी के अन्यकारकों के संज्ञापदों के अन्त में 'आ' आता है, किन्तु पश्चिमी भोजपुरी में यह 'ए' हो जाता है।

बनारस तथा आजमगढ़ की पश्चिमी भोजपुरी में अधिकरण कारक का चिह्न 'से' है, आदर्श भोजपुरी में यह 'से' अथवा 'सें' है, किन्तु शाहाबाद की भोजपुरी में यह 'ले' है। यथा—

पेड़ से पतई गिरत बाय—पेड़ से पत्ते गिर रहे हैं (बनारस)

फेड़ सें पतई गिरतिया— (बलिया)

फेड़ ले पतई गिरतिया— (शाहाबाद)

'लिए' के अर्थ में परसर्ग के रूप में बनारस तथा मिर्जापुर की पश्चिमी भोजपुरी में खातिन, बदे तथा कभी-कभी खातिर का प्रयोग होता है; किन्तु बलिया की आदर्श भोजपुरी में केवल खातिर ही आता है। यथा—

तोरा बदे, तोरा खातिन (बनारस-मिर्जापुरी)।

तोहरा खातिर या खातिन (बलिया)।

इसी प्रकार 'बदले में के अर्थ में' पश्चिमी भोजपुरी में 'सन्ती' तथा 'सन्तिन' शब्दों का प्रयोग होता है, किन्तु आदर्श भोजपुरी में यह संती हो जाता है।

(ख) विशेषण—

भोजपुरी की भिन्न भिन्न उपभाषाओं के संख्या वाचक विशेषण का तुलनात्मक अध्ययन आगे किया जायेगा। यहाँ पश्चिमी तथा आदर्श भोजपुरी में पहाड़ा पढ़ते समय जो अन्तर आता है, उसे स्पष्ट किया जाता है। आदर्श भोजपुरी में दु पाँचे; दु साते; दु आठे आदि कहते हैं, किन्तु आजमगढ तथा बनारस में दु पचे; दु सते; दु अठे आदि कहते हैं।

(ग) आदर्श तथा पश्चिमी भोजपुरी के सर्वनामों का तुलनात्मक अध्ययन भी आगे किया गया है।

पालामऊ की उत्तरी सीमा पर आदर्श भोजपुरी बोली जाती है; किन्तु उसी जिले के उत्तरी पूर्वी कोने में, जहाँ गया की सीमा आती है, मगही का आरम्भ हो जाता है। पालामऊ जिले के शेष भाग में तथा समस्त राँची जिले में भोजपुरी का एक विकृतरूप बोला जाता है। इस विकृति का एक कारण तो मगही है जो इसके पूरब, उत्तर और दक्षिण बोली जाती है। इसके अतिरिक्त पश्चिम में छत्तीसगढ़ी का प्रभाव पड़ने लगता है। इन दोनों के अतिरिक्त इस विकृति का एक तीसरा कारण यह भी है कि यहाँ के अनार्यभाषा-भाषी आदिवासियों की बोली के भी अनेक शब्द यहाँ की भोजपुरी में आ मिले हैं। सच बात तो यह है कि इधर के मूल निवासी 'आस्ट्रिक' (आग्नेय) तथा द्रविड़ भाषा-भाषी थे और बाद में आर्यभाषा के रूप में इधर भोजपुरी का प्रसार हुआ। यही विकृत भोजपुरी जशपुर राज्य में भी बोली जाती है। (जशपुर राज्य के पश्चिम और छत्तीसगढ़ी की एक उपभाषा सरगुजिया बोली जाती है और दक्षिण में उड़िया)।

इस विकृत भोजपुरी का नाम 'नगपुरिया' अथवा 'छोटा भोजपुरी' की बोली है। इसको 'सदान' या 'सदरी' कहते हैं। अनार्य मुंडा लोग इसे 'डिकूकाजी' अथवा ' डिकू' (आर्य भाषा-भाषियों की) बोली कहते हैं। 'सदरी' से तात्पर्य यह है कि उन लोगों की बोली है जो इधर बस गये हैं। उत्तरी भारत में प्रयुक्त फारसी-अरबी के 'सदरमुकाम' शब्द से यह शब्द ग्रहण किया गया है। इसी प्रकार छत्तीसगढ़ी का विकृतरूप 'सदरीकोरवा' कहलाता है। विशुद्ध 'कोरवा' बोली तो मुंडा लोगों की है।

छोटानागपुर डिविजन के पठार के भी वस्तुतः दो भाग हैं। इसके उत्तरी भाग में हजारीबाग और दक्षिण में रांची है। इन दोनों भागों को विभक्त करने वाली 'दामोदा' या दामोदर नदी है। राची के पठार के अन्तर्गत वस्तुतः रांची का समस्त जिला आ जाता है। इस पठार के पूरब ओर 'मानभूम' और 'सिंहभूम' के जिले आते हैं। इस पठार के पूरब का कुछ भाग राजनीतिक दृष्टि से 'रांची' जिले में पड़ता है। ग्रियर्सन के अनुसार यहाँ की भाषा नगपुरिया नहीं, अपितु 'पंच परगनिया' बोली है, जो वस्तुतः मगही का एक रूप है। कई अन्य विद्वान् इस 'पँच-परगनियाँ बोली' को भोजपुरी का ही एक रूप मानते हैं। वस्तुतः इस सम्बन्ध में पूर्ण रूप से अनुसन्धान की आवश्यकता है।

'नगपुरिया' और 'सदानी' की निम्नलिखित विशेषताएँ है—(१) उच्चारण—इसमें एक विशेषता यह है कि यहाँ अन्तिम अक्षर के पूर्व वाले अक्षर में 'इ' का आगम होता है और इस प्रकार 'अपिनिहिति' (Epenthesis) का रूप आ जाता है जैसे 'सुअइर'। पड़ोस की बंगाली भाषा के कारण 'अ' का उच्चारण 'ओ' में परिवर्तित हो जाता है, उदाहरण स्वरूप 'सब' का उच्चारण 'सोब' हो जाता है। (२) संज्ञा—एकवचन से बहुवचन बनाते समय संज्ञापदों में—मन प्रत्यय जोड़ दिया जाता है। इस प्रत्यय का छत्तीसगढ़ी में प्रयोग होता है और वहीं से यहाँ आया है। बहुवचन में प्राणिवाचक शब्दों के लिए ही इसका प्रयोग होता है।

इसमे निम्नलिखित 'परसर्गों' (Post position) का प्रयोग होता है। कर्मकारक-के; संबंधकारक—के, क, केर तथा कर; संप्रदान—ले, लैं, लगिन और लगे; अधिकरण—में; आपादान—से।

कभी-कभी छत्तीसगढ़ी का प्रत्यय—हर भी प्रयोग में आता है, जैसे 'बेटाहर'।

(३) सर्वनाम—आदर्श भोजपुरी तथा नगपुरिया अथवा 'सदानी' के सर्वनाम का तुलनात्मक अध्ययन अन्यत्र किया गया है।

(४) क्रिया—सहायक क्रिया

वर्त्तमान—मैं हूँ		भूत—मैं था	
एक वचन	बहु वचन	एक वचन	बहु वचन
१. अहों, हो अथवा हौ	अही या हई	रहो	रही या रहली
२. अहइस, हइस, हिस	अहा या हा	रहिस	रहा या रहला
३. अहे या है	अहें या हैं	रहे या रहलक	रहैं या रहलैं

टिप्पणी—'अहों' आदि को कभी-कभी आहों आदि के रूप में भी लिखते हैं।

वर्त्तमान काल के निम्न लिखित रूप, इस में, मगही से लिये गये हैं।

	एक वचन	बहु वचन
१.	हेकों	हेकी
२.	हेकिस	हेका
३.	हेके	हेकै

टिप्पणी—अहो या हो का प्रयोग सहायक किया के रूप में उस अवस्था मे होता है जब विधेय में विशेषण पद होता है; यथा—पानी गर्म है, किन्तु हेको प्रयोग वहाँ होता है जहाँ विधेय में संज्ञापद होते हैं। यथा—यह पानी है।

देख के रूप—

धातु—देखेक्, देखना, इसका प्रयोग सम्प्रदान कारक में "देखने के लिए" के अर्थ में भी होता है।

क्रिया मूलक विशेष्य—देइख्

विकारी रूप :—देखे, देखल्

इसमें 'देखल्' का अर्थ "देखने की क्रिया" भी होता है।

वर्तमान कालिक कृदन्तीय रूप—देखत्, देखते हुए।

भूत कालिक कृदन्तीय रूप—देखल्, देखा हुआ।

सम्भाव्य वर्तमान के रूप वही होते हैं जो भविष्यत के; किन्तु इसमें अपवाद स्वरूप अ० पु० ए० व० में देखोक् तथा ब० व०में देखों रूप मिलते हैं। अन्य बोलियों में जहाँ सम्भाव्य

वर्तमान के रूप प्रयुक्त होते हैं, वहाँ नगपुरिया में वैकल्पिक रूप से पुराघटित वर्तमान (Present perfect) के रूपों का प्रयोग होता है।

वर्तमान मैं देखता हूँ		भूतकाल मैंने देखा		भविष्यत्काल मैं देखूँगा	
ए० व०	ब० व०	ए० व०	ब० व०	ए० व०	ब० व०
१. देखो-ना	देखि-ला	दे॑खलों	दे॑खली	×	×
२. देखिसि-ला देखिस्-ला	देख-ला	दे॑खलिस	दे॑खला	देख, दे॑खबे	देखा, दे॑खबा
३. देखे॑-ला	देखै॑-ना	दे॑खलक	दे॑खलइ॑	देखोक्	देखों

भविष्यत् मैं देखूँगा आदि		भूतकाल (सम्भाव्य) (यदि) मैं देखे होता	
ए० व०	ब० व०	ए० व०	ब० व०
१. दे॑खबों	देखब, दे॑खबै॑	दे॑खतों	दे॑खती
२. दे॑खबे	दे॑खबा	दे॑खतिस्	दे॑खता
३. देखी, दे॑खतै॑	देखबैं॑	दे॑खतक्	दे॑खतैं॑

टि०—ऊपर की तालिका में दे॑खतै॑ तथा देखबै॑ रूप, मगही से उधार लिये गये हैं।

वर्तमानकाल का रूप देखत्-हों, 'मैं देखता हूँ', होता है। इसके संक्षिप्त रूप दे॑खथों तथा दे॑खत्थों भी वैकल्पिक रूप से प्रयुक्त होते हैं। इसी प्रकार घटमान अतीत का रूप देखत-रहों, 'मैं देखता था', होगा।

पुराघटित वर्तमान 'मैंने देखा है' के निम्नलिखित दो रूप होते हैं—

ए० व०	ब० व०	ए० व०	ब० व०
१. दे॑खलों-हो	दे॑खली-हइ	देखों॑	देखी
२. दे॑खले-हइस	दे॑खला-हा	देखिस	देखा
३. दे॑खलक-है	दे॑खलैं॑-है॑	देखे	देखैं॑

पुराघटित अतीत 'मैंने देखा था' के रूप नीचे दिये जाते हैं—

ए० व०	ब० व०
१. देख्-रहीं	देख् रही
२. देख्-रहिस	देख् रहा
३. देख्-रहे	देख् रहै

भोजपुरी की अन्य बोलियों की भाँति ही यहाँ भी प्रेरणार्थक एवं कर्मवाच्य की क्रियाएँ बनती हैं। यथा—देखाए_क्, दिखाना (प्रे०), देखवाए_क्, दिखलवाना (द्वि० प्रे०), देखल् जाए_क्, देखा जाना (क० वा०)। इसमें अनियमित क्रिया-पद होए_क्, 'होना', मिलता है। इसके वर्तमानकालिक कृदन्तीय रूप होअत् या भेअत्, भूतकालिक कृदन्तीय रूप होअल् या भेल् होते हैं। इसी प्रकार जाएक्, 'जाना' तथा देए_क् के भूतकालिक कृदन्तीय रूप गेल्; देवेक्, गया, दिया; वर्तमानकालिक कृदन्तीय रूप देत् या देवत् एवं भूतकालिक कृदन्तीय रूप देल् या देवल् होंगे।

असमापिका के कृदन्तीय रूप (Conjunctive Participle) देइख् या देइख्-के होते हैं। अन्य भोजपुरी बोलियों से तुलना करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इसका मूल रूप देखि था; किन्तु अपिनिहिति (Epenthesis) के कारण उच्चारण में यह देइख् में परिणत हो गया। इस 'इ' के कारण ही इसके पहले आनेवाले 'आ' का उच्चारण भी 'ओ' में परिणत हो जाता है। इस प्रकार माइर, 'मारकर' का उच्चारण कभी-कभी मोइर हो जाता है।

मधेसी (भोजपुरी)

गोरखपुर से पूरब, गंडक नदी के उस पार, बिहार का चम्पारन जिला है। यह सारन जिले के उत्तर है। चम्पारन तथा सारन जिलों को गंडक नदी ही पृथक् करती है। इन दोनों जिलों में ऐतिहासिक तथा राजनीतिक सम्बन्ध है; किन्तु वास्तव में चम्पारन प्राचीन मिथिला प्रदेश का ही एक भाग है। इसकी भाषा से भी इस बात की पुष्टि होती है। यद्यपि यहाँ की भाषा (मुख्य रूप में) वही भोजपुरी है जो सारन तथा पूर्वी गोरखपुर में बोली जाती है; तथापि इस पर पड़ोस में बोली जाने वाली मुजफ्फरपुर की मैथिली का भी यत्किंचित प्रभाव है। चम्पारन के पूरब, मुजफ्फरपुर की सीमा की बोली पर, मैथिली का सबसे अधिक प्रभाव है। यहाँ के ढाका थाने में १८ मील लम्बे तथा दो मील चौड़े क्षेत्रफल में मैथिली बोली जाती है। चम्पारन में पश्चिम की ओर जाने से मैथिली का प्रभाव क्रमशः क्षीण होता जाता है, यहाँ तक कि गंडक के किनारे की बोली वही भोजपुरी हो जाती है जो उत्तरी पूर्वी सारन तथा पूर्वी गोरखपुर में बोली जाती है। चम्पारन की बोली को यहाँ वाले 'मधेसी' नाम से अभिहित करते हैं। 'मधेसी' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत 'मध्यदेश' से हुई है।

तिरहुत की मैथिली तथा गोरखपुर की भोजपुरी के मध्य की बोली होने के कारण ही इसका मधेसी नाम पड़ा है। इसका एक उदाहरण परिशिष्ट में दिया गया है।

मधेसी भोजपुरी में भी मैथिली की भाँति ही मूर्धन्य 'ड' का उच्चारण 'र' में परिणत हो जाता है। यथा—पड़ल>परल; कोढ़ी>कोर्‌ही तथा बड़का>बरका [बलिया की आदर्श भो० पु० में पड़ल तथा परल दोनों का प्रयोग होता है। कोढ़ी के लिए आदर्श भो० पु० में भी कोर्‌हि व्यवहृत होता है; किन्तु बड़का के लिए बरका का प्रयोग नहीं होता।] इस विशेषता का उल्लेख गोरखपुर तथा बस्ती की भोजपुरी के सम्बन्ध में भी किया जा चुका है।

मुजफ्फरपुर की मैथिली में 'उन लोगों' के लिए ओँकनी सर्वनाम का प्रयोग होता है। मधेसी भो० पु० में भी यह 'ओँकनी' वर्तमान है।

इसी प्रकार सहायक क्रिया के रूप में मधेसी भो० पु० में बार' (तुम हो) तथा बाटे (वह है), दोनों का प्रयोग होता है तथा सकर्मक क्रिया, ए० व०, अतीत काल का रूप मैथिली की भाँति—अक प्रत्ययान्त होता है। यथा—कहलक्, उसने कहा, देलक् उसने दिया, आदि। यहाँ 'वह आया' के भो० पु० आइल् के स्थान पर मैथिली आएल का एवं 'उसने कहा' के लिए मैथिली कहल-कै का प्रयोग होता है।

थारू भोजपुरी

अपने लिं० सर्वे भाग ५, अङ्क २ के पृ० ३११ से ३१४ पर डा० ग्रियर्सन ने थारू भोजपुरी का विवरण दिया है। थारू वस्तुतः भारत के आदिवासी हैं। ये हिमालय की तराई में, पूरब में जलपाईगुड़ी से लेकर पश्चिम में कुमायूँ भावर तक पाये जाते हैं। इनका उल्लेख अलबेरुनी ने भी किया है। इनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक विद्वानों ने गम्भीरतापूर्वक विचार किया है। श्री क्रुक ने तो इस सम्बन्ध में विशेष खोज की है। आपके अनुसार थारू मूलतः द्रविड़ हैं; किन्तु नेपाली तथा अन्य पहाड़ी जातियों के सम्पर्क तथा संमिश्रण से उनमें मंगोल रक्त आ गया है। उनके शारीरिक गठन से यह बात स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है।

थारू लोगों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में भले ही विवाद हो, किन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि ये आर्य भाषा-भाषी हैं और थारू नाम की इनकी कोई पृथक् भाषा नहीं है। सर्वत्र ये लोग अपने आसपास की आर्य भाषा ही बोलते हैं। उदाहरण स्वरूप पूर्णिया के उत्तर में बसनेवाले थारू, पूर्वी मैथिली के विकृत रूप का (जो वहाँ प्रचलित है) व्यवहार करते हैं। इसी प्रकार चम्पारन तथा गोरखपुर के थारू विकृत भोजपुरी एवं नैनीताल की तराई के थारू उस क्षेत्र में बोली जानेवाली पश्चिमी हिन्दी का प्रयोग करते हैं।

थारू लोगों की बोली की यह विशेषता उल्लेखनीय है कि उसमें पड़ोस में बोली जानेवाली बोली का विशेष पुट रहता है। उदाहरण के लिए उत्तर प्रदेश का खीरी जिला कोसली (अवधी) भाषा-भाषी है; किन्तु यहाँ के थारू अवधी नहीं बोलते अपितु उनकी बोली में पीलीभीत तथा नैनीताल की तराई में बोली जानेवाली पश्चिमी हिन्दी का पुट है। इसी प्रकार बहराइच तथा गोंडा के थारू इन जिलों की कोसली (अवधी) नहीं बोलते; किन्तु वे बस्ती में प्रचलित विकृत भोजपुरी का व्यवहार करते हैं। डा० ग्रियर्सन के अनुसार सीमा स्थित थारू, पूर्वी हिन्दी बिल्कुल नहीं बोलते। वे या तो नैनीताल की तराई की पश्चिमी हिन्दी बोलते हैं या वे भोजपुरी अथवा मैथिली का व्यवहार करते हैं।

परिशिष्ट में थारू भोजपुरी के दो उदाहरण दिये गये हैं। इनमें से प्रथम डा० ग्रियर्सन के लिंग्विस्टिक सर्वे से लिया गया है। इसे सन् १८६८ में चम्पारन के असिस्टैंट सेटिलमेण्ट अफसर पं० रामवल्लभ मिश्र ने ग्रियर्सन के पास भेजा था। यह उदाहरण चम्पारन की थारू भोजपुरी का है। दूसरा उदाहरण 'नोन बोए के कहनी' को इन पंक्तियों के लेखक ने स्वयं, नेपाल की तराई में, बुटवल, के पास लिया था।

भोजपुरी का शब्द-कोष

जैसा कि टर्नर ने नेपाली डिक्शनरी की भूमिका में लिखा है, आधुनिक भारतीय-आर्य-भाषाओं के शब्द प्राय. छै स्रोतों से आये हैं। उनमें थोड़ा बहुत परिवर्तन करके प्राय सभी भारतीय आर्य भाषाओं के शब्द-भाण्डार का अध्ययन किया जा सकता है। जहाँ तक भोजपुरी का सम्बन्ध है, निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत उसके शब्द-भाण्डार का अध्ययन करना उपयुक्त होगा। ये शीर्षक निम्नलिखित हैं—

(१) वे तद्भव शब्द जो संस्कृत से प्राकृतों के द्वारा आधुनिक भोजपुरी में आये हैं।

(२) वे शब्द जो कई आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओं में तो मिलते हैं; किन्तु उनका मूल संस्कृत में नहीं मिलता।

(३) वे शब्द जो किसी समय अन्य आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओं से उधार लिये गये हैं।

(४) संस्कृत के तत्सम शब्द या उनके यत्किंचित परिवर्तित रूप।

(५) अनार्य भाषाओं के शब्द।

(६) विदेशी शब्द—फारसी-अरबी, तुर्की, अंग्रेजी तथा अन्य यूरोपीय भाषाओं के शब्द।

ऊपर के विभागों में से (१), (२) तथा (४) भारतीय वैयाकरणों के वर्गीकरण, 'तद्भव', 'देशी' तथा 'तत्सम' के अन्तर्गत आयेंगे तथा संस्कृत के वे शब्द जिनमें किंचित ध्वनि-परिवर्तन हुआ है, भाषा-विज्ञानियों के अनुसार अर्द्धतत्सम कहलायेंगे।

इन सभी वर्गों के अन्तर्गत, शब्दों का अध्ययन करने से, यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भोजपुरी में तद्भव शब्दों का ही बाहुल्य है। इसका प्रधान कारण यह है कि भोजपुरी वस्तुतः दैनिक जीवन की भाषा है और इसमें मैथिली, बंगला अथवा उड़िया की भाँति साहित्य-सर्जन नहीं हो रहा है।

भारतीय आर्य-भाषाओं के शब्द-भाण्डार में देशी शब्दों का अभी तक भलीभाँति अध्ययन नहीं हुआ है। इनमें से अनेक शब्दों का आरम्भ मूर्धन्य तथा तालव्य वर्णों से होता है। ऐसे अनेक शब्द भोजपुरी में भी वर्तमान हैं। इनके अतिरिक्त अनेक अनुकार ध्वनि-युक्त शब्द भी भोजपुरी में हैं। यह वस्तुत द्रविड़ तथा कोल भाषाओं की एक विशेषता है और सम्भवतः अनुकार ध्वनि-युक्त कई शब्दों की उत्पत्ति अनार्य भाषाओं से सिद्ध की जा सकती है।

इनके साथ-ही-साथ अनेक अर्द्धतत्सम शब्द भी भोजपुरी में विद्यमान हैं। ये किंचित ध्वनि-परिवर्तन करके संस्कृत से उधार लिये हुये शब्द हैं। यह ध्वनि-परिवर्तन भी या तो

भोजपुरी की ध्वनि के अनुसार हुआ है अथवा अन्य भाषाओं एवं बोलियों के संमिश्रण के कारण हुआ है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, भोजपुरी में तत्सम शब्दों की संख्या बहुत कम है। इसका एक कारण यह है कि भोजपुरी में उच्च साहित्य की रचना नहीं हो रही है। फिर भी, हिन्दी अथवा बंगला के सम्पर्क से भोजपुरी में कई तत्सम शब्द आ गये हैं, यथा—स्वागत, राजनीति, न्याय, बुद्धि, विद्यार्थी आदि। ये दैनिक जीवन के शब्द हैं; किन्तु इन शब्दों का प्रयोग भी प्रायः उच्च जाति के लोग ही करते हैं। साधारण जनता तो तद्भव शब्दों का ही प्रयोग करती है।

भोजपुरी में व्यवहृत फारसी-अरबी शब्द

फारसी-अरबी शब्द प्रायः भोजपुरी में हिन्दी तथा उर्दू से आये हैं। कतिपय ऐसे शब्द गोस्वामी तुलसीदास के रामचरितमानस से भी आये होंगे; किन्तु सम्भवतः कुछ शब्द सीधे फारसी से भी आये होंगे। डा० चटर्जी का अनुसरण करके इन शब्दों को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

[क] राज्य, युद्ध तथा शिकार सम्बन्धी शब्द ; यथा—

अमीर,	ओजीर,	खन्दानि,	खास, ताज,	दरबार,
दउलति,	नवाब,	बदसाह	मिरिजा,	मालिक,
हजूर,	काबू,	जखम्,	जमादार,	तम्मू,
तोब्,	दुसमन्,	फन्दा,	बहादुर,	रयति,
रिसाला,	सिकार,	सर्दार,	हिम्मति;	इत्यादि।

[ख] शासन, कानून तथा कर सम्बन्धी शब्द; यथा —

आबाद,	इस्तमरारी,	अख्तियार,	कस्बा,
खजाना,	खारिज,	गुमास्ता,	जमा,
जैदादि,	दरोगा,	दफ्तर,	नाजिर्,
पियादा,	माफ,	मोहर,	सबख्,
सान,	सर्कार,	सूबा,	हद्,
हिसाब,	अदालति,	अकिलि,	इजहार्
इलाका,	हजुर,	कसूर,	कनूनि
खिलाफ,	जब्ति,	जारी,	दरखास्
नकल,	नबालिक,	नालिस,	फिरिआदि,
मोंकदिमा,	मोंनसफी,	सफाई,	सालिस,
हक,	हाकिम,	हाजति,	हुलिया,
हिफाजति ;	इत्यादि।		

[ग] इस्लाम-धर्म-सम्बन्धी शब्द ; यथा—

अजू,	अवलिया,	अल्लाह,	इमान,
इस्लाम,	ईदि,	कबुरि,	कफन्
काफिर्,	काबा,	कुर्बानी,	खतना,

गाजी, जुमा, तोबा, दरिगाह,
दीन दुआ, नबी, नमाज्,
निकाह, नूर, फिरिश्ता, बिसमिल्ला,
मसजिद, मोहर्रम, मोमिन, रसूल,
मुल्ला, सरियत, हदीस, हलाल,
खोदाह, रसूल, पयगम्मर; इत्यादि।

[घ] संस्कृति, शिक्षा, संगीत, साहित्य-सम्बन्धी शब्द; यथा—

अदब्, आलिम्, इज्जति इम्तिहान,
इलिम, खत्, गजल्, कसीदा,
मजलिसि, मुंसी, सागिर्द, ओस्ताद,
सितार, हरूफ; आदि।

[ङ] भौतिक संस्कृति—निवास, व्यापार तथा कला-संबंधी शब्द; यथा—

अहतर् (अस्तर), ऐना, अङ्गूर, अचकन्,
अतर, अतसबाजी, इमर्ती, कागज,
कलप्, किन्खाब, किस्मिस्, बर्फी,
कसाई, खन्सामा, खस्ता, गज,
गुलाब गोस्त, चर्खा, चस्मा,
चप्कन्, चाबुकि, जरी, जर्दा जमा,
जिन्, जुलाब्, तगमा, तशुई, तस्वीर
तकिआ, दलानि, पर्दा, पैजामा, पोलाव्,
फरास्, फानूस्, फवारा, बरफ, बगइचा,
बदाम, बुल्बुल्, मखमल्, मैदा, मलहम्,
मसाला, मलाई, मेज, रफू, रुमाल,
रिकाब्, रेसम्, लगाम्, सनाइ, साल,
सीसी, सन्दूखि, सुर्खी, सोराही, हंडा,
हलुआ, हूँका; इत्यादि।

टि०—यह उल्लेखनीय बात है कि संस्कृत—ति के प्रभाव से—अत से अन्त होनेवाले फारसी-अरबी-शब्द—अति में परिणत हो जाते हैं।

बँगला से भी कई शब्द भोजपुरी में आये हैं। इसका कारण स्पष्ट है। बात यह है कि सुदीर्घ काल से बँगाल भोजपुरी-भाषियों का एक प्रधान केन्द्र है। इसके अतिरिक्त, अशिक्षित भोजपुरी भी बोलचाल की बँगला बहुत जल्द सीख लेते हैं; क्योंकि भोजपुरी तथा बँगला में भाषागत साम्य है। निम्नलिखित शब्द भोजपुरी में बँगला से आये हैं; यथा—

मूरही, पन्तावा, रसगुल्ला, सन्देस, चम्चम्,
वासा, वाड़ी, टाना-टानी, वाड़ातड़ी, फाली,
भाजा, झोल्, जोगाड़्, चूना, नापित,
सिद्ध चावर, बस्टम, मागी; आदि।

भोजपुरी कैथी लिपि में लिखी जाती है। बिहार के भोजपुरी जिलों में तो इसी लिपि का अत्यधिक प्रचार है और कचहरियों तक में इसका प्रयोग होता है। कायस्थ जाति के सम्पर्क से ही इसका नाम कैथी पड़ा है। (भो० पु० में कायस्थ>कायथ)। पहले छापे में भी इसका प्रयोग होता था; किन्तु इधर नागरी लिपि के प्रसार तथा प्रचार के कारण अब छापे में केवल नागरी लिपि का ही व्यवहार भोजपुरी क्षेत्र में होने लगा है।

भोजपुरी संस्कृति तथा भाषा-भाषी

भोजपुरी प्रदेश में मुसलमानों की संख्या अत्यल्प है। इसका एक परिणाम यह हुआ है कि मुसलमानी सभ्यता तथा संस्कृति का भोजपुरी-भाषियों पर नहीं के बराबर प्रभाव है। यहाँ के हिन्दुओं में धर्म के प्रति अत्यधिक आस्था है। समस्त भोजपुरी प्रदेश में प्रधान रूप से शिव, शक्ति (काली तथा दुर्गा) तथा हनूमान की उपासना होती है। मिथिला तथा बँगाल की भाँति वस्तुतः भोजपुरी प्रदेश भी मुख्यतः शाक्त है ; किन्तु गोस्वामी तुलसीदास के रामचरित मानस के प्रचार तथा वीरता के प्रतीक के कारण हनूमान के प्रति भी भोजपुरियों का आकर्षण स्वाभाविक है।

जार्ज ग्रियर्सन ने अपने लिंग्विस्टिक सर्वे [1] में भोजपुरी को एक बलाढ्य जाति की व्यावहारिक भाषा कहा है। व्यावहारिक भाषा-भाषियों में स्पष्टवादिता की प्रचुरता रहती है। भोजपुरी लोकोक्तियों[2] के अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जाती है। उदाहरणार्थ युद्ध अथवा लड़ाई-झगड़े में भोजपुरी लोग किसी दैवी शक्ति की अपेक्षा अपनी लाठी का ही अधिक भरोसा करते हैं। इस पर भोजपुरी में एक लोकोक्ति है 'सइ पुराचरन नों एक हुरा चरन'। 'हूरा' लाठी के नीचेवाले मोटे भाग को कहते हैं। 'हूरे' से मारने से बहुत अधिक चोट लगती है। लोकोक्ति का अर्थ है—'सौ पुरश्चरण (एक प्रकार का मंत्रपाठ जो शत्रु की मृत्यु के लिए किया अथवा कराया जाता है) बराबर होता है, लाठी के 'हूरे' की एक चोट के।'

भोजपुरी लोकोक्तियों में कहीं-कहीं गहरा व्यंग्य भी है। यज्ञ के हवन में, खाद्य-सामग्री, विशेषतया घी का जलाना, भोजपुरियों को कदाचित् अप्रिय है। इसके लिए एक लोकोक्ति है—'करवा कोंहार के, घीव जजमान के, स्वाहा स्वाहा'। अर्थात् 'करवा' (मिट्टी का पात्र जिसके द्वारा घी यज्ञकुण्ड में डाला जाता है) कुम्भकार का तथा घी यजमान का है। (पुरोहित जी) खूब स्वाहा-स्वाहा कीजिए। (आप का इसमें क्या नुकसान हो रहा है ?)।

जो बात भोजपुरी लोकोक्तियों के सम्बन्ध में है, वही भोजपुरी मुहावरों के सम्बन्ध में भी है। युद्ध प्रिय होने के कारण भोजपुरियों को वाह्याडम्बर से स्वाभाविक घृणा है। इसी कारण इस विषय में अनेक मुहावरे भी भोजपुरी में उपलब्ध हैं। उदाहरण के लिए कतिपय मुहावरे नीचे दिये जाते हैं। यथा—

(१) ताथा चोंड़ावल।

(२) पोंभि चोंड़ावल।

---

१ भाग ५, पार्ट २ पृ० ४

२ दे० लेखक के 'भोजपुरी लोकोक्तियाँ', हिन्दुस्तानी, अप्रैल १९३९, पृ० १९६-२११ तथा वही जुलाई १९३९, पृ० २४५-२६० एवं 'भोजपुरी मुहावरे' अप्रैल १९४०, पृ० १९७-१२०, वही अक्टूबर १९४०, पृ० ३६७-४४७ तथा वही जनवरी १९४१, पृ० ४९-१२०, शीर्षक लेख।

(३) छटराग बोँढ़ावल ।

(४) टिमाक बोँढ़ावल ।

भोजपुरी मुहावरों में भी व्यंग्य की मात्रा पर्याप्त रूप से मिलती है। विवाह के समय वर तथा कन्या पक्ष के पुरोहित अपने-अपने पक्ष के पिता-पितामह आदि के नाम तथा गोत्र का उच्चारण करते हैं। इसे भोजपुरी में 'गोतरुचार' कहते हैं; किन्तु व्यंग्य में 'गोतरुचार कइल' का अर्थ होता है 'गाली-गलौज करना'। इसी प्रकार 'देवता भइल' तथा 'महापुरुष भइल' का अर्थ होता है 'दुष्ट प्रकृति का होना' और 'कचर कूट कइल' का व्यंग्यार्थ है, 'खूब छक कर खाना।'

भोजपुरी भाषा तथा उसके बोलनेवालों के सम्बन्ध में इस संक्षिप्त विचार के बाद आगे भोजपुरी-साहित्य के विषय में थोड़ा निवेदन किया जायेगा।

दूसरा अध्याय

भोजपुरी साहित्य

भोजपुरी-साहित्य का क्रमबद्ध इतिहास प्रस्तुत करना सरल कार्य नहीं है। इस सम्बन्ध में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि इसका लिखित रूप बहुत कम उपलब्ध है। भोजपुरी-साहित्य की मौखिक परम्परा लोकगीतों, लोककथाओं तथा लोकगाथाओं के रूप में आज भी प्रचुर परिमाण में उपलब्ध है और इनका संकलन करके इसके साहित्य के विशाल-भवन का निर्माण किया जा सकता है; किन्तु यह तो भविष्य का कार्य है। इधर भोजपुरी भाषा के क्षेत्र में शोध-कार्य करनेवाले प्रायः सभी विद्वानों—बीम्स, ग्रियर्सन, हर्नले, सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या—ने यह स्वीकार किया है कि भोजपुरी में साहित्य का अभाव है। यह सत्य होते हुए भी भोजपुरी-क्षेत्र में कार्य करनेवाले विद्वानों ने परिश्रमपूर्वक इस सम्बन्ध में कुछ सामग्री उपस्थित की है। इसी सामग्री के आधार पर भोजपुरी-साहित्य की संक्षिप्त रूप-रेखा यहाँ प्रस्तुत की जाती है।

चौरासी सिद्धो ने अपनी कविता में जिस भाषा का प्रयोग किया है, उसे निश्चित रूप से भोजपुरी कहना उचित न होगा; क्योंकि उस पर मागधी अपभ्रंश से प्रसूत सभी भाषाओं एवं बोलियों का समानाधिकार है; किन्तु इन सिद्धों के बाद संतकवियों एवं तुलसी, जायसी आदि अवधी के कवियों ने भी भोजपुरी संज्ञा-शब्दों एवं कहीं-कहीं क्रिया-पदों तक का भी प्रयोग किया है। ये प्रयोग इस बात को स्पष्ट रूप से प्रकट करते हैं कि उस प्राचीन युग में भी भोजपुरी पूर्णरूप से सजीव भाषा थी। इन कवियों में कबीर का स्थान सर्वश्रेष्ठ है। सच बात तो यह है कि कबीर की भाषा के सम्बन्ध में हिन्दी के लेखकों तथा विद्वानों ने गम्भीरता से विचार नहीं किया है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल अपने 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में इस सम्बन्ध में विचार करते हुए लिखते हैं—"इनकी भाषा सधुक्कड़ी अर्थात् राजस्थानी-पंजाबी मिली खड़ीबोली है, पर 'रमैनी' और 'सबद' में गाने के पद हैं, जिनमें काव्य की ब्रजभाषा और कहीं-कहीं पूर्वी बोली का भी व्यवहार है।"[1]

नागरी-प्रचारिणी-सभा से कबीर ग्रन्थावली का जो संस्करण प्रकाशित हुआ है, उसका आधार दो हस्तलिखित प्रतियाँ हैं, जिनमें से एक सं० १५६१ तथा दूसरी सं० १८८१ की है। सं० १७६१ के लगभग गुरुग्रंथ साहब का संकलन किया, गया जिसमें कबीर की वाणी भी संकलित हुई। नागरी-प्रचारिणी-सभा द्वारा प्रकाशित कबीर की भाषा पर पंजाबी का सर्वाधिक प्रभाव है। इसकी भाषा पर विचार करते हुए कबीर-ग्रन्थावली के सम्पादक लिखते हैं—"यद्यपि उन्होंने (कबीर ने) स्वयं कहा है "मेरी बोली 'पूर्बी' है", तथापि खड़ी, ब्रज, पंजाबी, राजस्थानी, अरबी आदि अनेक भाषाओं का पुट भी उनकी उक्तियों पर चढ़ा हुआ है। पूर्बी से उनका क्या तात्पर्य है, यह नहीं कह सकते। उनका बनारस-निवास पूर्बी से अवधी का अर्थ लेने के पक्ष में

---

१ दे०, पं० रामचन्द्र शुक्ल—'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' संशोधित और प्रवर्द्धित संस्करण पृ० ८८

है; परन्तु उनकी रचना में बिहारी का भी पर्याप्त मेल है, यहाँ तक कि मृत्यु के समय मगहर में उन्होंने जो पद कहा है उसमें मैथिली का भी खूब संसर्ग दिखाई देता है।......इस पंचमेल खिचड़ी का कारण यह है कि उन्होंने दूर-दूर के सन्तों का सत्संग किया था जिससे स्वाभाविक ही उनपर भिन्न-भिन्न प्रान्तों की बोलियों का भी प्रभाव पड़ा।" (कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ ६७) पूर्वी शब्द से कबीरग्रन्थावली के सम्पादकों ने तो स्पष्टतः से अवधी का अर्थ लिया है; क्योंकि उनके अनुसार कबीर का बनारस-निवास इसी ओर इंगित कर रहा है। यद्यपि 'पूर्वी' शब्द से कबीर का क्या तात्पर्य था यह कहना कठिन है; किन्तु मध्ययुग में इसका अर्थ अवध, बनारस तथा बिहार था।

यद्यपि अत्यन्त प्राचीनकाल से बनारस का सांस्कृतिक सम्बन्ध मध्यदेश से ही रहा है तथापि उसकी भाषा तो स्पष्ट रूप से मागधी की पुत्री है। यह बोली बनारस के पश्चिम मिर्जापुर थाने से दो-तीन मील और आगे तमंचाबाद तक बोली जाती है। वस्तुतः यही बोली कबीर की मातृ-भाषा थी। यह प्रसिद्ध है कि कबीर पढ़े-लिखे न थे। अतएव अपनी मातृ-भाषा में रचना करना उनके लिए सर्वथा स्वाभाविक था। कबीर के अनेक पद आज भी बनारसी बोली अथवा भोजपुरी में उपलब्ध हैं। नीचे उदाहरण-स्वरूप इनके पद उद्धृत किये जाते हैं—

कबीर साहेब की शब्दावली (भाग पहिला), पृ० २३, शब्द ५

कौन ठगवा नगरिया लूटल हो ॥टेक॥
चंदन काठ कै बनल खटोलना। तापर दुलहिन सूतल हो ।१।
उठो री सखी मोरी माँग सँवारो। दूलहा मो से रूसल हो ।२।
आये जमराज पलँग चढ़ि बैठे। नैनन आँसू टूटल हो ।३।
चारि जने मिलि खाट उठाइन। चहुँ दिस धू धू उठल हो ।४।
कहत कबीर सुनो भाइ साधो। जग से नाता छूटल हो ।५।

कबीर साहब की शब्दावली (दूसरा भाग), पृ० ४०, शब्द २८

तोर हीरा हिराइल बा किचड़े में। टेक।
कोई ढूँढ़ै पूरब कोई ढूँढ़ै पच्छिम, कोई ढूँढ़ै पानी पथरे में। १।
सुर नर मुनि अरु पीर औलिया, सब भूलल बाड़ै नखरे में। २।
दास कबीर ये हीरा को परखैं, बाँधि लिहलैं जतन से अचरे में। ३।

कबीर साहेब की शब्दावली (भाग दूसरा), पृ० ६६

सूतल रहलूँ मैं नींद भरि हो, गुरु दिहलैं जगाइ ॥ टेक ॥
चरन कँवल के अंजन हो, नैना लेलूँ लगाइ।
जा से निंदिया न आवै हो, नहि तन अलसाइ ॥१॥
गुरु के बचन निज सागर हो, चलु चली हो नहाइ।
जनम-जनम के पपवा हो, छिन में डारब धुवाइ ॥२॥
वहि तन कै जग दीप कियो, सुत बतिया लगाइ।
पाँच तत्त कै तेल चुआये, ब्रह्म अगिन जगाइ ॥३॥
सुमति गहनवाँ पहिरलौं हो, कुमति दिहलौं उतार।
निर्गुन सँगिया सँवरलौं हो, निर्भय सेंदुर लाइ ॥४॥

प्रेम पियाला पियाइ के हो, गुरु दियौ बौराइ।
बिरह अगिन तन तलफै हो, जिय कछु न सुहाइ ॥२॥
ऊँच अटरिया चढ़ि बैठलुँ हो, जहँ काल न खाइ।
कहै कबीर विचारि के हो, जम देखि डेराय ॥३॥

कबीर साहेब की शब्दावली, चौथा भाग, पृ० १६।

अपने पिया की मैं होइबौं सोहागिनि—अहे सजनी।
भइया तजि सइयाँ सँग लागब रे की ॥१॥
सइयाँ के दुअरिया अनहद बाजा बाजै—अहे सजनी।
नाचहिं सुरति सोहागिनि रे की ॥२॥
गंग जमुन के औघट घटिया हो—अहे सजनी।
तेहि पर जोगिया मठ छावल रे की ॥३॥
वे हीं सतगुरु सुर्ती के बिरवा हो—अहे सजनी।
जोगिया दरस देखे आइब रे की ॥४॥
दास कबीर यह गवलें लगनियाँ हो—अहे सजनी।
सतगुर अलख लखावल रे की ॥५॥

ऊपर के पद वेलवेडियर प्रेस से प्रकाशित 'कबीर साहब की शब्दावली' से लिये गये हैं। इन पदों की भाषा भोजपुरी है, यद्यपि इनमें कहीं-कहीं अवधी का भी पुट है; किन्तु जैसा कि ऊपर कहा गया है—'कबीर-ग्रंथावली' की भाषा पर पंजाबी तथा राजस्थानी का प्रभाव है। अब प्रश्न यह उठता है कि ऐसा क्यों हुआ? इस सम्बन्ध में 'ग्रंथावली' के विद्वान सम्पादक-द्वय का अनुमान है कि चूँकि कबीर पर्यटन-शील व्यक्ति थे, अतएव जिस प्रान्त में वे जाते थे वहाँ की भाषा अपनाकर उसमें पद रचना करने लगते थे।

वस्तुतः यह कोरी कल्पना ही प्रतीत होती है। सच बात तो यह है कि कबीर की भाषा की भी ठीक वही दशा हुई है जो आज से दो सहस्र वर्ष पूर्व बुद्ध की भाषा की हुई थी। बुद्ध-वचन की भाषा अर्थात् पाली को हीनयान-सम्प्रदाय के दक्षिणी बौद्ध मागधी मानते हैं। कतिपय विद्वानों के अनुसार बुद्ध की भाषा अर्द्ध मागधी थी; किन्तु पाली के सम्बन्ध में जो नवीनतम खोजें में हुई हैं उनसे यह स्पष्ट हो गया है कि संस्कृत की भाँति पाली भी मध्यदेश की ही भाषा थी। प्रसिद्ध फ्रेंच विद्वान् सिल्वाँ लेवी तथा जर्मन विद्वान् हेनरिख लुडर्स ने अपने लेखों में यह स्पष्ट रूप से दिखलाया है कि आधुनिक पाली में मागधी के अनेक शब्द मिलते हैं। इससे यह सहज ही सिद्ध हो जाता है कि मूल बुद्ध-वचन की भाषा पहले मागधी ही थी। किन्तु बाद में वह पाली के साँचे ढाली गई। एक बात और है। मागधी से पाली में यह अनुवाद-कार्य केवल किंचित् परिवर्तन से ही सम्भव था। उदाहरण स्वरूप 'सुत्त-निपात' के 'धनिय सुत्र' की निम्नलिखित दो पंक्तियाँ लें। ये इस प्रकार हैं —

पक्कोदनो दुद्ध खीरो हमस्मि,
अनुतीरे महिया समान- वासो।
छन्ना कुटि आहितो गिनि,
अथ चे पत्थ यसी पवस्स देव।

इसका मागधी रूप इस प्रकार होगा--

पक्कोदने दुद्ध खीलेहमस्मि,
अनुतीरे महिया समानवाशे। इत्यादि

ऊपर के उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि किस प्रकार मागधी को पाली में सहज ही में परिवर्तित किया जा सकता है। कबीर की भाषा की भी यही दशा हुई है। वास्तव में कबीर की मातृभाषा बनारसी बोली थी, जो भोजपुरी का ही एक रूप है। प्राचीन काल में, आज ही की भाँति, इस बोली का कोई साहित्यिक महत्त्व न था; अतएव जब कबीर की प्रसिद्धि हुई तो उनके पदों का पछाँह की साहित्यिक भाषाओं में रूपान्तर आवश्यक था। बहुत सम्भव है कि अवधी में यह कार्य कबीर ने स्वयं किया हो, क्योंकि अवधी भोजपुरी की सीमा की भाषा है; किन्तु व्रजभाषा, राजस्थानी तथा पंजाबी आदि में तो कबीर की मूलवाणी को उन प्रान्तों के उनके अन्य शिष्यों ने ही बदला होगा। नीचे के प्रमाणों से मेरे इस कथन की पुष्टि हो जाती है। यहाँ जो उदाहरण दिये जा रहे हैं वे सभी नागरी-प्रचारिणी द्वारा सम्पादित 'कबीर ग्रंथावली' से ही लिये गये हैं। यद्यपि इस संस्करण पर पछाँही बोलियों तथा पंजाबी का अत्यधिक प्रभाव है, फिर भी छंद के कारण भोजपुरी के संज्ञा-शब्द ही नहीं, अपितु कई क्रिया-पद भी अपने मूल रूप में ही बने रह गये हैं। ये शब्द पुकार-पुकारकर कह रहे हैं कि कबीर की मूल वाणी का क्या रूप था।

[क] अवधी में संज्ञापदों के तीन रूप मिलते हैं—(१) लघु (२) गुरु तथा (३) अनावश्यक। जैसे--घोड़ा, घोड़वा, घोड़ौना। भोजपुरी में तीसरा रूप नहीं मिलता, आरम्भ के दो ही रूप मिलते हैं। बोलचाल की भोजपुरी में प्राय गुरु रूप ही प्रयुक्त होता है। ये रूप इस संस्करण के पदों में भी मिलते हैं। जैसे—

खंभवा, पृ० ६४; पसुआ, पृ० ६५; पहरवा, पृ० ६६; मनवा, पृ० १०८; खटोलवा, पृ० ११२; रहरवा, पृ० १६५ आदि।

[ख] भोजपुरी क्रियाओं के भूतकाल में—अल,—अले आदि प्रत्यय लगते हैं। इस संस्करण के अनेक पदों में भी ये रूप मिलते हैं। जैसे—

(१) जुलहै तनि बुनि पार न पावल। (पृ० १०४)
(२) त्रिगुण रहित फल रमि हम राखल। (पृ० १०४)
(३) जौं हम जीवत न मूँवाले (मुँवले ?) माहीं। (पृ० १०८)
(४) पापी परलै जाँहि अभागे (पृ० १०८)

(५) अकास गगन पताल गगन है,
चहुँ दिसि गगन रहाइले।
आनन्द मूल सदा पुरुषोत्तम,
घट बिनसै गगन न जाइले॥ (पृ० २६८)

[ग] भोजपुरी क्रियाओं के भविष्यत् काल के अन्य पुरुष एक वचन में—इहें प्रत्यय लगता है जो वस्तुत. संस्कृत—ष्यति, पालि—स्सइ का परिवर्तित रूप है। जैसे—करिष्यति>

करिस्सइ>करिहइ>करिहे>करिहैं। यह रूप इस ग्रंथावली के भी कई पदों में मिलता है। जैसे—

(१) हरि मरिहैं तो हमहूँ मरिहैं (मरिहैं ?) (पृ० १०२)

(२) इँन्द्री स्वादि विषै रस बरिहैं,

नरक पड़े पुनि राम न कहिहैं। (पृ० ११४)

ऊपर के क्रियापद के 'पायल', 'राखल', 'मूलल', 'परलै' 'रहाइल', 'जाइल' एवं 'मरिहैं', 'बहिहैं', आदि रूप इस बात को स्पष्ट रूप से घोषित करते हैं कि कबीर की मूलवाणी का बहुत कुछ अंश उनकी मातृ-भाषा बनारसी बोली में ही लिखा गया था। नीचे इसी संस्करण से एक पद उद्धृत किया जाता है। इस पद का कितनी सरलता से भोजपुरी में रूपान्तर हो सकता है, यह उसके परिवर्तित रूप से स्पष्ट हो जायेगा। कबीर-ग्रंथावली में यह पद इस प्रकार है—

मैं बुनि करि सिरांनां हो राम,

नालि करम नहीं ऊबरे।

दखिन कूँट जब सुनहाँ भूँका,

तब हम सगुण बिचारा।

लरके परके सब जागत हैं,

हम घरि चोर पसारा हो राम।

ताँनाँ लीन्हाँ बाँनाँ लीन्हाँ,

लीन्हें गोड के पऊवा।

इत उत चितवत कठवन लीन्हा,

मांड चलवानां डऊआ हो राम।

इसका भोजपुरी रूप इस प्रकार होगा—

(मैं) बुनि करि (सिरइलों) हो राम,

नालि करम नाहीं ऊबरे।

दखिन कूंट जब सुनहाँ (भूँकल),

तब हम सगुन (बिचरलों)।

लरिके परिके सब (जागतारे),

हम घरि चोर (पसरलों) हो राम।

ताना (लिहलों) बाना (लिहलों),

(लिहलों) गोड के पउआ।

इत उत चितवत कठवन (लिहलों),

मांड चलवनां डऊआ हो राम।

धरमदास

कबीर की ही भाँति धरमदास भी एक संत कवि थे, जो उन्हीं की परम्परा में उत्पन्न हुए थे। आपके भी कतिपय पद भोजपुरी में उपलब्ध हुए हैं। आपके जीवन के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ भी ज्ञात नहीं है। किन्तु कहा जाता है कि आप कबीर के शिष्य थे और उनकी मृत्यु

के पन्द्रह वर्ष बाद तक जीवित रहे। कबीर ने कई पद धरमदास को सम्बोधित करते हुए लिखा है। इससे भी इन दोनों सन्तों का सम्बन्ध प्रमाणित होता है। कबीरदास के ग्रंथों के साथ-साथ धरमदास जी की शब्दावली भी वेलवेडियर प्रिंटिंग प्रेस, प्रयाग से प्रकाशित हुई है। नीचे आपकी कविता का उदाहरण दिया जाता है—

धनी धरमदास जी की शब्दावली—पृ० ४५, शब्द १२।

सूतल रहलौं मैं सखियाँ, तो विष कर आगर हो।
सतगुरु दिहलैं जगाइ; पावौं सुख सागर हो ॥१॥
जब रहली जननी के ओदर, परन सम्हारल हो।
जब लौं तन में प्रान, न तोहि बिसराइब हो ॥२॥
एक बुंद से साहेब, मंदिल बनावल हो।
बिना नेंव के मंदिल, बहु कल लागल हो ॥३॥
इहवाँ गाँव न ठाँव, नहीं पुर पाटन हो।
नाहिन बाट बटोही, नहीं हित आपन हो ॥४॥
सेमर है संसार, सुवा उधराइल हो।
सुन्दर भक्ति अनूप, चले पछिताइले हो ॥५॥
नदी बहै अगास अपार, पार कस पाइब हो।
सतगुरु बैठे मुख मोरि, काहि गोहराइब हो ॥६॥
सत्तनाम गुण गाइब, सत ना डोलाइब हो।
कहैं कबीर धर्मदास, अमर घर पाइब हो ॥७॥

धनी धरमदास जी की शब्दावली—पृ० ६३, शब्द ३।

कहँवा से जिव आइल, कहँवाँ समाइल हो।
कहँवा कइल मुकाम, कहाँ लपटाइल हो ॥१॥
निरगुन से जिव आइल, सगुन समाइल हो।
कायागढ़ कइल मुकाम, माया लपटाइल हो ॥२॥
एक बुंद से काया, महल उठावल हो।
बुंद परे गलि जाय, पाछे पछितावल हो ॥३॥
हंस कहै भाइ सरवर, हम उड़ि जाइब हो।
मोर-तोर पतन दिदार, बहुरि नहि पाइब हो ॥४॥
इहवाँ कोइ नहिं आपन, केहि सँग बोलै हो।
बिच तरवर मैदान, अकेला (हंसा) डोलै हो ॥५॥
लख चौरासी भरमि, मनुख तन पाइल हो।
मानुख जनम अमोल, अपन सौं खोइल हो ॥६॥
साहेब कबीर सोहर गावल, गाइ सुनावल हो।
सुनहु हो धर्मदास, एहो चित चेतहु हो ॥७॥

शिवनारायण

आप सन्त-परम्परा के कवि थे। आपका जन्म उत्तरप्रदेश के गाजीपुर जिले के चन्द्रवार नामक गाँव में हुआ था। आपने अनेक ग्रन्थों की रचना की थी, जो आज भी हस्त-लिखित रूप में उपलब्ध हैं। आपने अपने ग्रंथों में प्रायः दोहा और चौपाई छन्दों का प्रयोग किया है। ये वही सुप्रसिद्ध छन्द हैं, जिनका मलिक मुहम्मद जायसी ने 'पद्मावत' में तथा गोस्वामी तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' में प्रयोग किया है। आपने प्रधान रूप से पूर्वी अवधी का ही अपने ग्रन्थों में प्रयोग किया है। किन्तु जहाँ आपने 'जतसार' (जाँत के गीत) और 'घाँटो' (चैत्र में गाने के गीत) लिखे हैं वहाँ भोजपुरी भाषा स्वाभाविक रीति से आ गई है। आपकी कविता का एक उदाहरण नीचे दिया जाता है। सन्त कवियों ने परमात्मा को प्रीतम के रूप में देखा है और अत्यन्त रहस्यपूर्ण ढंग से उसके विरह का चित्रण भी किया है। शिवनारायण का पद भी इसी प्रकार का है—

चलहु सखी खोजि लाउ निज सँइयाँ।
पिया रहले अभी साथ में, हे, छोड़ि गइले कवन ठँइयाँ।
बेला सें पूछों चमेली से पूछों पूछों मैं बन भटकोइयाँ।
ताल से पूछों तलैया से पूछों पूछों मैं पोखरा कुँइयाँ।
'शिवनारायण' सखि पिआ नहिं भेटे, हरि जे जे मन अकुरइयाँ।

धरनीदास

सन्त कवियों में धरनीदास का नाम प्रसिद्ध है। आप बिहार प्रान्त के सारन जिले के माँझी नामक गाँव के निवासी थे। आप स्वभाव से ही साधु थे और भगवद्भजन में ही अपना अधिकांश समय व्यतीत करते थे। आप अपने गाँव के पास के जमीन्दार के यहाँ मुन्शी का काम करते थे। विरक्ति होने पर आपने नौकरी छोड़ दी। आपने अपने 'प्रेम-प्रगास' नामक ग्रन्थ में संन्यास लेने की तिथि सन् १६५६ ई० (सं० १७१३) दी है—

सम्वत् सत्रह सो चलि गयऊ।
तेरह अधिक ताहि पर भयऊ॥
साहजहाँ छोड़ी दुनियाई।
पसरी औरङ्गजेब दुहाई॥
सोच विचारि आतमा जागी।
धरती धरेउ भेस बैरागी॥

आप के दो ग्रन्थ हस्तलिखित रूप में उपलब्ध हैं—(१) शब्द-प्रगास (२) प्रेम-प्रगाश। ये दोनों माझी के पुस्तकालय में सुरक्षित हैं। प्रेम-प्रगाश का प्रकाशन छपरा से हुआ था।

माँझीवाली हस्तलिखित प्रति की पुष्पिका के देखने से विदित होता है कि यह २१ भादों सन् १२८१ फसली (सन् १८७३ ई०) में लिखी गई थी। इसे माँझी के महन्त रामदास ने वहीं की निवासिनी जानकीदासी उर्फ बर्त्ताकुँअरि के लिए लिखा था। इसकी भाषा अवधी मिश्रित भोजपुरी है। इसमें कहीं-कहीं बँगला के 'पेयार' छंद का भी प्रयोग हुआ है। नीचे

एक पद उद्धृत किया जाता है—

सुमिरु सुमिरु मन सिरजनहार,
जिन्ह कैला सुर, नर, सरग, पताल।
रवि ससि अगिनि पवन कैला पानी,
जिया जन्तु धनि धनि धानि धानि बानी।
धरती समुद्र बन परवत सुमेरु,
कमठ फनिन्द्र इन्द्र वैकुंठ कुबेरु,
गुर के चरन रज सिरवा चढ़ाइ,
जिन्ह लेला भवजल बुड़त बचाइ।
देवता पितर विनवलो कर जोरी,
सेवा लेष मानि अलप बुधिमोरी।
जहाँ लगि जगत भगत अवतार,
मोरे तो जिवनधन प्रानअधार।
तिरथ, बरत, चारो धाम शालिग्राम,
माथे हाथे परसी करैलो प्रनाम।
छोट मोट जिया जन्तु जहाँ लगि भारी,
बकसि बकसि लेहु अवगुन हमारी।

धरनीदास का एक दूसरा पद 'प्रेम-प्रगास' से नीचे उद्धृत किया जाता है—

कि सुभ दिना आजु, सखी सुभ दीना,
बहुत दिहन्न पिया बसल बिदेस,
आजु सुनल निज आवन संदेस।
चित्र चित्र सरिया में लिहल लिखाई,
हिरदय कवल धइलो दियरा लेसाई।
प्रेम पलँग तहाँ धइलो बिछाई,
नख सिख सहज सिंगार बनाई।
मन सेवकहि दिहु आगु चलाई,
नैन धइल दुई दुआरा बइठाई,
धरनी सो धनी पलु पलु अकुलाई,
बिनु पिया जीवन अकारथ जाई।

धरणी दास कृत 'प्रेम-प्रगास' से—

कि मोरे देसवा सखी मोरे देसवा,
एक अचर्ज बात मोरे देश ॥१॥
तर के उपर भैला, उपर के हेठ;
जेठ लहुर होला, लहुरा से जेठ ॥२॥
आगु के पाछु होला, पाछु होला आगु;
जागल सुतैला, सुतल उठि जागु ॥३॥

नारि पुरुष होखा, पुरुष से नारी ;
भाई मानहु नहिं सवति पिआरी ॥४॥
आइल से गइल, गइल चलि आउ ;
धरनी के देसवा के, ऐसन सुभाउ ॥५॥

लक्ष्मी सखी

आपका पूरा नाम बाबा लक्ष्मीदास था ; किन्तु 'लक्ष्मी सखी' के नाम से आप बिहार में अधिक प्रसिद्ध हैं। आप भोजपुरी के प्रतिभासम्पन्न कवि थे। आपका जन्म बिहार-प्रान्त के सारन जिले के अमनौर नामक गाँव में हुआ था। आपका जन्मकाल उन्नीसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। आप सखी-सम्प्रदाय के अनुयायी थे तथा आपके पिता का नाम मुंशी जगमोहन दास था। आपका जीवन-वृत्त बहुत कुछ अज्ञात है। निम्नलिखित पद में आपने अपना परिचय दिया है—

सुनु सखी सुनहु कहब कछु अऊर,
सारन जिला लखत गाँव अमनऊर।
कायथ बनस में जनमेऊ बऊर,
राम, लखन फल फरिगइले दोऊर।
जन्म भूमि कबो पुजलीं धाऊर,
सीखि गईले सतगुरु माथे चलल मऊर।
जीयते मरिगइलीं लडकल ठऊर,
सन्त समाज में चलि गइलीं दूऊर।
सतगुरु दिहले ग्यान के लऊर,
झटपट सरली मैं माछुर सऊर।
पाकल ब्रह्म अगिनि कर भऊर,
खइलों मैं साधु सन्त मिलि अऊर।
मौजे 'टेरुआ' मैं अइलों दऊर,
सीखि जुक्ति भगत बनावल ठऊर।
लछुमि सखि के सुन्दर पियवा,
आरे तुम लगि मेरी दऊर।

ऊपर के विवरण से ज्ञात होता है कि आप कायस्थ-कुल में उत्पन्न हुए थे। आप ने जीवन के प्रारम्भ में ही संसार से नाता तोड़कर भगवान से सम्बन्ध जोड़ लिया था। आपने अपने गाँव अमनौर से थोड़ी दूर हटकर 'टेरुआ' नामक गाँव में एक आश्रम बनाया था। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में आप भजन गाकर अपना समय बिताया करते थे। आपके निम्नलिखित चार ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं—(१) अमर-सीढ़ी (२) अमर-कहानी (३) अमर-बिलास (४) अमर-फराश।

आपका प्रधान ग्रन्थ 'अमर सीढ़ी' है। इसमें भगवद्भक्ति-विषयक पद हैं। कबीर की भाँति ही आपके पदों एवं भजनों में कहीं तो योगसाधना का उल्लेख मिलता है और कहीं रहस्यवाद की

बाँकी झाँकी मिलती है। 'अमर-सीढ़ी' से इनका एक पद नीचे उद्धृत किया जाता है—

सखी तोरे पियवा देइ लेइ एगो पतिया,
बारहु दियवा जुड़ाइ लेहु हियवा,
समुझि समुझि के चतिया ।१।
इहावां न केहू साथी ना संघतिया,
कामिनी कंत तोरे जोहत बटिया ।२।
सोने के खाटी रूपे के पटिया,
करु मंजन चढ़ु त्रिकुटी के घटिया ।३।
ओहि रे घाट पर सुन्दर पियवा,
निरखत रहु दिन रतिया ।४।
'लछुमी सखी' के सुन्दर पियवा,
सूत रहू लगाई के छतिया ।५।

सखी सम्प्रदाय में माधुर्य भाव की उपासना प्रचलित है। इसमें परमात्मा को पति और अपने को पत्नी मानकर भक्ति की जाती है। ऊपर के पद में इसी प्रेम पद्धति का संकेत है।

लक्ष्मी सखी का दूसरा ग्रन्थ 'अमर-कहानी' है। इसमें भी भक्ति-विषयक पद हैं। झूमर, विवाह, गारी और कजली इनके अन्य छोटे ग्रन्थ हैं। इनके शिष्य कामता सखी ने 'छुट्टा दोहा' नामक ग्रन्थ लिखा है। इन सभी ग्रन्थों का प्रकाशन इनके शिष्य श्री महेश प्रसाद वर्मा ने छपरा से किया है। इनकी दूसरी कविता नीचे उद्धृत की जाती है—

सनै सनै करीले गुनावनि हो पिया परम कठोर,
पाहनो पसीजि पसीजि के हो बहि चलत हिलोर ।१।
जे उठत विषय लहरिया हो छनै छनै मे बंघोर,
तनिको ना कनखि नजरिया हो, चितवत मोरे ओर ।२।
भावे घरे आंगन न सेजरिया हो, नाहिं जहर पटोर,
बेंजन कवनो तरकरिया हो, जइसे माहुर घोर ।३।
सलफीले आठों पहरिया हो, गति मति भइली मोर,
केहुना चीन्हेला अरजिया हो बिनु अवध किसोर ।४।
कइसें सहीं बारी रे उमिरिया हो, दु:ख सहस कठोर,
'लछुमी सखी' मोरा नाहि भावेला हो, पथ भात परोर ।५।

आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का अध्ययन आज से ७० वर्ष पूर्व बीम्स और भंडारकर के अनुसंधानों के परिणाम स्वरूप प्रारम्भ हुआ था। इस अध्ययन का सूत्रपात संस्कृत तथा प्राकृत के अध्ययन से हुआ था। भोजपुरी का वैज्ञानिक अध्ययन तो सर्वप्रथम श्री बीम्स ने ही प्रारम्भ किया था। इस सम्बन्ध में आप का 'नोट्स ऑन द भोजपुरी डायलेक्टस ऑव हिन्दी स्पोकेन इन वेस्टर्न विहार' (पश्चिमी बिहार में बोली जाने वाली हिन्दी की बोली भोजपुरी पर टिप्पणी) शीर्षक निबन्ध 'रॉयल एशियाटिक सोसाइटी' की पत्रिका, भाग ३, पृष्ठ ४८३ से ५०८ में सन् १८६८ ई० में प्रकाशित हुआ था। यह निबन्ध 'रॉयल एशियाटिक सोसाइटी' के समक्ष १७ फरवरी सन् १८६७ में पढ़ा गया था।

भोजपुरी लोक-गीतों के संग्रह तथा प्रकाशन में सब से अधिक परिश्रम डा० जार्ज ए० ग्रियर्सन ने किया। आपने इस सम्बन्ध में अनेक लेख शोध-पत्रिकाओं में प्रकाशित कराया था। भोजपुरी के अतिरिक्त आपने मगही और मैथिली के सम्बन्ध में भी अनेक लेख तथा पुस्तकें प्रकाशित कराई थीं। ग्रियर्सन के अतिरिक्त विलियम क्रुक, ग्राउस, इरविन आदि यूरोपीय विद्वानों ने भी भोजपुरी लोक-गीतों का, समय-समय पर, अंग्रेजी पत्रिकाओं में प्रकाशन कराया था।

इन विद्वानों द्वारा प्रस्तुत सामग्री पर नीचे विचार किया जायगा।

(१) डा० जार्ज ए० ग्रियर्सन—डा० ग्रियर्सन ने 'रॉयल एशियाटिक सोसाइटी' की पत्रिका में 'कतिपय बिहारी लोक-गीत'[१] शीर्षक लेख प्रकाशित किया था। इन गीतों का संकलन बिहार प्रान्त के आरा, पटना आदि जिलों से किया गया है। इसमें प्रधानतया भोजपुरी लोकगीतें ही आई हैं। इस लेख के प्रारम्भ में विद्वान लेखक ने बिहार की तीन प्रधान बोलियों—मगही, मैथिली एवं भोजपुरी—का परिचय दिया है। तत्पश्चात् सोहर, जतसार, झूमर आदि गीत लिये गये हैं। इन गीतों का अंग्रेजी अनुवाद भी दिया गया है।

ग्रियर्सन का दूसरा लेख इसी पत्रिका में 'कतिपय भोजपुरी लोकगीत'[२] शीर्षक के अन्तर्गत प्रकाशित हुआ है। इस लेख के प्रारम्भिक आठ पृष्ठों में भोजपुरी भाषा की विशेषता तथा उसके साहित्य एवं इस लेख में संकलित गीतों के छन्द आदि के सम्बन्ध में सुन्दर प्रकाश डाला गया है। इसमें संग्रहीत गीतों की संख्या ४६ है, जिनमें ४२ विरहे हैं। इसके पश्चात् घाँटों या चैता और जतसार गीत हैं। इन गीतों का अँग्रेजी अनुवाद भी दिया गया है; किन्तु इसकी प्रधान विशेषता है इसके शब्दों की टिप्पणियाँ। विद्वान् लेखक ने प्रायः प्रत्येक शब्द की व्युत्पत्ति तथा उसका अर्थ आदि देकर इस लेख का महत्त्व बहुत बढ़ा दिया है।

डा० ग्रियर्सन ने 'बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी' की पत्रिका में भोजपुरी प्रान्त में सर्वाधिक प्रचलित 'विजयमल' शीर्षक गीत[३] प्रकाशित किया है। इस लेख के प्रारम्भ में विजयमल की संक्षिप्त कथा और इसके संग्रह क्षेत्र का उल्लेख किया गया है। 'विजयमल' भोजपुरी भाषा का महाकाव्य है। इसे ग्रियर्सन ने शाहाबाद जिले में संग्रह किया था। विद्वान् लेखक ने इस गीत का अंग्रेजी अनुवाद भी किया है और स्थान-स्थान पर पाद-टिप्पणियाँ भी दी हैं जो अति महत्त्वपूर्ण हैं। 'विजयमल' का यह सब से अधिक प्रामाणिक संस्करण है। हाल ही में कलकत्ते के 'दूधनाथ' प्रेस से 'कुँअर विजयी' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई है; किन्तु ग्रियर्सन द्वारा प्रकाशित विजयमल के समक्ष इसका विशेष महत्त्व नहीं है।

इसी पत्रिका के एक दूसरे अंक में ग्रियर्सन ने 'राजा गोपीचन्द के गीत के दो विभिन्न

---

१. जे० आर० ए० एस० खं० १६ (नूतन संस्करण) भा० २, पृ० १६६ सन् १८८४।

२. जे० आर० ए० एस० खं० १८ (नूतन संस्करण) पृ० २०७-२६५ सन् १८८६ 'सम् भोजपुरी फोक साँग्स विद् टेक्स्ट एण्ड ट्रांस्लेशन'।

३. जे० ए० एस० बी० खं० ५३, भाग १ विशेषाङ्क पृ० ९४—१५०, सन् १८८४ 'द गीत बिजैमल, ए साँग इन् ओल्ड भोजपुरी'।

पाठों'[1] को संग्रहीत किया है। लेखक ने भोजपुरी तथा मगह प्रदेश में प्रचलित राजा गोपीचन्द के गीत के विभिन्न पाठों को एक ही पृष्ठ पर आमने-सामने दिया है। राजा गोपीचन्द के गीत के तुलनात्मक अध्ययन करने वाले विद्वानों के लिए यह लेख अत्यधिक उपयोगी है। गीत के अन्त में उसका अंग्रेजी अनुवाद एवं पाद-टिप्पणियाँ भी दी गई हैं।

इसी पत्रिका के एक अन्य अंक में डा० ग्रियर्सन ने 'मानिकचन्द का गीत'[2] शीर्षक एक लेख प्रकाशित किया है। यह लेख काफी बड़ा है। मानिकचन्द राजा गोपीचन्द के पिता थे। अतएव इस लेख में गोपीचन्द के जीवन आदि के सम्बन्ध में प्रचुर सामग्री उपलब्ध है। लेखक ने आरम्भ के चौदह पृष्ठों में राजा मानिकचन्द की जन्मभूमि, आविर्भाव काल की कथा तथा गुरुपरम्परा आदि के सम्बन्ध में तथा इनकी स्त्री मयनावती और पुत्र गोपीचन्द के सम्बन्ध में अनेक ज्ञातव्य बातें लिखी हैं। मानिकचन्द की कथा बँगला भाषा में भी मिलती है। इस गीत का अँग्रेजी अनुवाद और पाद-टिप्पणियाँ भी दी गई हैं।

डा० ग्रियर्सन ने 'इण्डियन एण्टीक्वेरी' नामक बम्बई से प्रकाशित होनेवाली शोध-पत्रिका में 'आल्हा के विवाह-गीत'[3] को प्रकाशित किया है। भोजपुरी प्रदेश में आल्हा के गीत अत्यधिक प्रचलित हैं। विद्वान् लेखक ने इस गीत के संग्रह को प्रकाशित करके प्रशंसनीय कार्य किया है। इसमें केवल आल्हा के विवाह का वर्णन है। लेखक ने लेख के आरम्भ में आल्हा के गीत के विभिन्न पाठों का भी उल्लेख किया है तथा इसके नायक की ऐतिहासिकता के सम्बन्ध में भी संक्षेप में प्रकाश डाला है। इसी पत्रिका में अन्य स्थान पर लेखक ने 'आल्ह-खण्ड' का पूर्ण कथानक संक्षेप में उपस्थित किया है। इससे आल्हा के जीवन-चरित के जानने में बड़ी सहायता मिलती है। यह कथानक केवल अँग्रेजी में है। मूल गीत नहीं दिया गया है।

लन्दन की 'प्राच्य-विद्या परिषद्' की पत्रिका में डा० ग्रियर्सन ने 'उत्तरी भारत का लोक-साहित्य'[4] शीर्षक लेख प्रकाशित किया है जिसमें भोजपुरी भाषा के भी अनेक गीत सम्मिलित हैं। इस लेख में विद्वान् लेखक ने उत्तरी भारत में प्रचलित तुलसीदास जी का 'रामचरितमानस', बिहारी की 'सतसई', सूर के पद और विद्यापति की पदावली से उदाहरण देते हुए आल्हा के सुप्रसिद्ध गीत का कुछ अंश उद्धृत किया है। ग्रियर्सन ने जर्मन भाषा की एक सुप्रसिद्ध पत्रिका में 'नायका बनजरवा'[5] शीर्षक एक लेख लिखा है जिसमें आपने नायका नामक किसी बनजारा या सौदागर के गीत का संग्रह किया है। यह गीत बहुत बड़ा है तथा भोजपुरी महाकाव्य है। यह शाहाबाद जिले में संग्रह किया गया है। लेखक ने प्रारम्भ के सोलह पृष्ठों में इसी गीत के

---

१. जे० ए० एस० बी० खं० ५४ भा० १ सं० १ पृ० ३५— सन् १८८५ 'द वर्शन्स् आव द सॉंग आव गोपीचन्द विद् ट्रांस्लेशन'।

२. जे० ए० एस० बी० खं० ४२ भा० १ सं० ३ सन् १८७८ 'द सॉंग आव मानिकचन्द'।

३. इ० ए० खं० १४ पृ० २०० सन् १८८५ 'द सॉंग आव आल्हाज मैरेज'।

४. जु० आ० द ओ० स्ट० लं० इं० खं० १ भा० ३ पृ० ८७ सन् १९२० 'द पापुलर लिट्रेचर आव नार्दन इण्डिया'।

५. जेड्० डी० एम० जी० खं० ४३ पृ० ४६८-५०१ सन् १८८९ 'द सेलेक्टेड स्पेसिमेन्स आव द बिहारी लैंग्वेज—द गीत नायका बनजरवा'।

आधार पर भोजपुरी का संक्षिप्त व्याकरण भी उपस्थित किया है। गीत में आये हुए कठिन शब्दों का अर्थ भी अंग्रेजी में दिया गया है तथा भोजपुरी शब्दों पर टिप्पणियाँ भी दी गई हैं।

(२) ह्यू ग फ्रेजर—आप एक अंग्रेज सिविलियन थे तथा गोरखपुर जिले में मजिस्ट्रेट के पद पर नियुक्त थे। आपने 'बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी' की पत्रिका में गोरखपुर जिले में प्राप्त भोजपुरी गीतों का संग्रह प्रकाशित किया है।[1] इन गीतों की संख्या १३ है जिनमें ६ गीत कजली के, एक जतसार के तथा शेष विभिन्न विषयों के हैं। इन गीतों को लेखक ने जिले के 'गजेटियर' में उपयोग के लिए संकलित किया था; किन्तु किसी कारणवश उसमें इनका उपयोग न हो सका। इन गीतों का अंग्रेजी अनुवाद फ्रेजर ने स्वयं प्रस्तुत किया है। परन्तु इनका सम्पादन ग्रियर्सन ने किया है। ग्रियर्सन ने अपनी टिप्पणियों में भोजपुरी की विशेषताओं पर प्रचुर प्रकाश डाला है। साथ ही इन गीतों के छन्द पर भी विचार किया है।

(३) जे० बीम्स—आप भी एक सिविलियन थे तथा आरम्भ में सारन जिला के डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट थे। आपने भोजपुरी के सम्बन्ध में सर्वप्रथम एक लेख लिखा था जिसका उल्लेख अन्यत्र हो चुका है।

(४) ए० जी० शिरेफ—आप भी अंग्रेज सिविलियन थे तथा कुछ काल तक जौनपुर जिले के डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट भी थे। वहीं आपका परिचय पण्डित रामनरेश त्रिपाठी से हुआ और सम्भवतः उन्हीं के सम्पर्क से आपका ध्यान भोजपुरी लोक-गीतों की ओर आकृष्ट हुआ। आपने 'हिन्दी-लोक-गीत' नामक पुस्तक सम्पादित की है जिसमें भोजपुरी के १६ गीतों का संग्रह है। ये गीत विभिन्न प्रकार के हैं। इनमें सोहर और जतसार गीतों की अधिकता है। इन गीतों का अंग्रेजी में पद्यात्मक अनुवाद भी उपस्थित किया गया है। इस पुस्तक में जो गीत संग्रहीत हैं वे प्राय. सभी पण्डित रामनरेश त्रिपाठी की 'कविता कौमुदी' भाग ५ से लिये गये हैं।

यूरोपीय विद्वानों के अतिरिक्त इधर कई विद्वानों ने भोजपुरी लोक-गीतों का अत्यन्त परिश्रम पूर्वक संकलन एव प्रकाशन किया है जिससे भोजपुरी भाषा एवं ग्राम्य साहित्य के अध्ययन सम्बन्धी प्रचुर सामग्री उपलब्ध हो गई है। इन संकलन-कर्त्ताओं में पं० रामनरेश त्रिपाठी का स्थान सर्व प्रथम है। (१) 'कविता कौमुदी'[2] के भाग ५ में आपने 'ग्राम गीतों' का संकलन किया है। इस पुस्तक में सोहर, जनेऊ, विवाह, जाँत, सावन, निरवाही, हिंडोला, कोल्हू, मेला और बारहमासा इन दस प्रकार के गीतों का संग्रह किया गया है। पुस्तक के प्रारम्भ में त्रिपाठीजी ने एक सौ अड़तीस पृष्ठों की 'ग्राम-गीतों का परिचय' शीर्षक के अन्तर्गत महत्वपूर्ण भूमिका भी लिखी है जिसमें लोक-गीत सम्बन्धी अनेक आवश्यक बातों का विस्तृत विवेचन किया है।

त्रिपाठी जी से अपने इस संग्रह में उत्तरप्रदेश तथा बिहार प्रान्त की विभिन्न बोलियाँ—खड़ी, ब्रज, अवधी, बैसवाड़ी, भोजपुरी—के गीतों का संकलन किया है। इस संग्रह में भोजपुरी लोकगीतों की संख्या बहुत अधिक है। यद्यपि इन गीतों का संकलन वैज्ञानिक ढंग से नहीं हुआ है तथापि इस संग्रह ने, अन्य विद्वानों को वैज्ञानिक ढंग से लोक-गीतों के संकलन-कार्य में प्रवृत्त किया है।

---

१. जे० ए० एस० बी० खं. ४२ सं. १ पृ० १-१२ सन् १८८३ 'फोकलोर फ्राम ईस्टर्न गोरखपुर।'

२. हिन्दी मन्दिर, प्रयाग (१९२९ ई०)

(२) सोहर—यह पुस्तक पं० रामनरेश त्रिपाठी द्वारा संकलित और प्रकाशित की गई है[१]। यह पुत्र-जन्म के अवसर पर गाये जाने वाले गीतों—सोहर—का सुन्दर संग्रह है। इस पुस्तक के कुछ गीत तो 'कविता कौमुदी' भाग ५ से लिये गये हैं किन्तु कुछ नूतन भी हैं।

(३) हमारा ग्राम-साहित्य—इस पुस्तक के भी संग्रहकर्त्ता और सम्पादक पं० रामनरेश त्रिपाठी ही हैं।[२] इस पुस्तक की रचना का कारण और उद्देश्य बतलाते हुए विद्वान् लेखक ने अपनी भूमिका में लिखा है[३]—'यह पुस्तक युक्तप्रान्त के शिक्षा-विभाग के सेक्रेटरी श्रीयुत एन० सी० मेहता, आई० सी० एस० की प्रेरणा और एज्यूकेशन एक्सपैंशन आफिसर श्रीयुत श्री नारायण चतुर्वेदी के पत्र नं० ४५ ता० २२ जून, १६३६ के अनुसार प्रस्तुत की जा रही है। इसमें इस सूबे के ग्राम-साहित्य की एक रूपरेखा तैयार कर दी गई है जिससे उसके स्वरूप और उसकी उपयोगिता की साधारण जानकारी पाठकों को हो जायगी।'

ऊपर के उद्धरण से पुस्तक लिखने का उद्देश्य स्पष्ट हो जाता है। त्रिपाठी जी ने प्रारम्भ के ५६ पृष्ठों में जो ग्राम-साहित्य का संक्षिप्त परिचय दिया है, वह बड़ा उपयोगी है। इस परिचय में उन्होंने ग्राम-साहित्य की महत्ता का बड़ी सुन्दर रीति से प्रतिपादन किया है। देहाती कहावतों, मुहावरों, कहानियों तथा जातीय गीत एवं नृत्य पर इस पुस्तक में प्रकाश डाला गया है। इस संग्रह में विविध संस्कारों के साथ-ही-साथ विभिन्न जातियों द्वारा गाये जानेवाले गीतों का भी संकलन है।

(४) भोजपुरी ग्राम गीत (प्रथम भाग)—प्रस्तुत ग्रन्थ का संग्रह और सम्पादन पं० कृष्णदेव उपाध्याय, एम० ए०, डी० फिल० ने किया है।[४] वस्तुत. भोजपुरी ग्राम-गीतों का यह सर्व-प्रथम संग्रह है जो वैज्ञानिक ढंग से किया गया है। इन गीतों का संग्रह विद्वान् सम्पादक ने भोजपुर-प्रदेश के गाँवों में स्वयं घूमकर किया है। इसमें बलिया जिले के गीतों का ही संग्रह किया गया है किन्तु ये गीत भोजपुर-प्रदेश के अन्य जिलों में भी थोड़े-बहुत परिवर्तन से प्रचलित हैं।

इस संग्रह में कुल २७१ गीत हैं। ये गीत संस्कार और ऋतु-क्रम से निम्नलिखित १५ भागों में विभक्त हैं—सोहर, खेलवना, जनेऊ, विवाह, वैवाहिक परिहास, गवना, जाँत, छठी माता, शीतला माता, झूमर, बारहमासा, कजली, चैता, बिरहा और भजन। प्रारम्भ में प्रत्येक गीत का सन्दर्भ भी दिया गया है जिससे पाठकों को गीत समझने में सरलता हो। कठिन शब्दों का अर्थ भी पाद-टिप्पणी में दिया गया है और पुस्तक के अन्त के २४ पृष्ठों में भोजपुरी शब्दकोष भी है।

(५) भोजपुरी ग्राम-गीत (द्वितीय भाग)—इस पुस्तक के भी सम्रहकर्त्ता और सम्पादक पं० कृष्णदेव उपाध्याय, एम० ए०, पी० एच डी० ही हैं।[५] इसमें २५ प्रकार के भोजपुरी गीतों का संग्रह किया गया है। इनकी कुल संख्या ४३० है। संकलित गीतों का विभाजन प्रधानतया तीन भागों में किया गया है—(१) संस्कार-सम्बन्धी (२) ऋतु-सम्बन्धी (३)

---

१. हिन्दी मंदिर प्रेस, प्रयाग द्वारा प्रकाशित।

२ प्रकाशक, हिन्दी मन्दिर, प्रयाग (१६४० ई०)।

३ हमारा ग्राम साहित्य, भूमिका पृ० ३।

४. हि० सा० स० प्रयाग, (२००५) द्वारा प्रकाशित।

५. हि० सा० स० प्रयाग, (२००५) द्वारा प्रकाशित।

पर्व-सम्बन्धी। इसमें निम्नलिखित प्रकार के गीतों का संग्रह हुआ है—सोहर, जोग, सेहला, विवाह, बहुरा, पिंडिया, गोधन, नागपञ्चमी, जतसार, झूमर, कजली, बारहमासा, होली, डफ, चैता, सोहनी, रोपनी, बिरहा, कंहार, गोंड, पचरा, निरगुन, देशभक्ति, पुरबी, पराती और भजन। प्रत्येक गीत के सम्पादन का क्रम भी वही है जो प्रथम भाग का है। पुस्तक के अन्त में लगभग सौ पृष्ठों की टिप्पणियाँ दी गई हैं जिनमें गीतों में आये हुए विषयों तथा शब्दों को लेकर भौगोलिक, ऐतिहासिक एवं भाषा-शास्त्र सम्बन्धी विवेचन किया गया है।

(६) **भोजपुरी लोक-गीत में करुण-रस**—इस पुस्तक के संग्रहकर्त्ता और सम्पादक कुमार दुर्गाशंकर प्रसाद सिंह हैं। विद्वान् संग्रहकर्त्ता ने बड़े परिश्रम से इन गीतों का संग्रह किया है। पुस्तक में लगभग ६०० पृष्ठ हैं। इस संग्रह में करुण रस के अतिरिक्त अन्य रसों के गीत भी आ गये हैं। इसमें निम्नलिखित १५ प्रकार के गीतों का संग्रह है—सोहर, जतसार, झूमर, कहँरुआ, भजन, बारहमासा, ब्रजचारी, खेलवना, विवाह, पूरबी, कजरी, रोपनी और निरारई, हिंडोले, देवीजी तथा मार्ग चलते समय के गीत।

(७) **भोजपुरी-ग्राम्य-गीत**—इस पुस्तक के संग्रहकर्त्ता और सम्पादक श्री डब्लू० जी० आर्चर, आई० सी० एस० तथा श्री संकठाप्रसाद हैं। श्री आर्चर का नाम लोक-गीतों के क्षेत्र में बहुत प्रसिद्ध है। आप सुयोग्य तथा अनुभवी शासक ही न थे बल्कि लोक-गीतों के मर्मज्ञ भी थे। आपने छोटानागपुर की विभिन्न जातियों के लोक-गीतों का संग्रह और सम्पादन किया है।

भोजपुरी ग्राम्य गीतों का प्रकाशन आर्चर ने 'बिहार-उड़ीसा-रिसर्च-सोसाइटी', पटना की पत्रिका के विभिन्न अंकों में किया था। प्रस्तुत पुस्तक उन्हीं गीतों का संग्रह है। इसमें गीतों की कुल संख्या ३७७ है। ये गीत बिहार-प्रान्त के शाहाबाद जिले के कायस्थ परिवार से संग्रह किये गये हैं। इनका संग्रह काल १६३६-४१ ई० है। इस पुस्तक में २५ प्रकार के गीतों का संग्रह किया गया है जिनके नाम ये हैं—सगुन, तिलक, शिव-विवाह, प्रातकाली, हलदी, सेहला, जोग, टोना, विवाह-मंगल, सोहाग, परीछन, कोहबर, जेवनार, अवठौनी, झूमर, टापा, सोहर, मुंडन, चैता, माता के गीत, कजली, बरसाती, जतसार, रोपनी और सोहनी के गीत।

इस संग्रह की सबसे बड़ी त्रुटि यह है कि न तो इसमें शब्दों का अर्थ दिया गया है और न कठिन शब्दों की व्याख्या ही की गई है।

(८) **धरती गाती है**—इस पुस्तक के लेखक श्री देवेन्द्र सत्यार्थी हैं। लोक गीतों के क्षेत्र में सत्यार्थी जी ने बहुत सुन्दर कार्य किया है। आपने भारत के विभिन्न प्रान्तों में घूम-घूमकर आर्य परिवार की अनेक भाषाओं के गीतों का संग्रह किया है। आपकी ग्राम्य-गीत सम्बन्धी पुस्तकों में 'धरती गाती है' और 'गाये जा हिन्दुस्तान' मुख्य हैं।

'धरती गाती है' नामक पुस्तक में सत्यार्थी जी ने विभिन्न भाषाओं के सुन्दर गीतों का संकलन किया है। इनमें से कतिपय गीत भोजपुरी के भी हैं।

(९) **बेला फूले आधीरात**—इस पुस्तक के लेखक भी श्री देवेन्द्र सत्यार्थी ही हैं। इसमें भी विभिन्न भाषाओं के गीतों का संग्रह है। 'बेला फूले आधीरात' वाले अध्याय में अनेक भोजपुरी गीतों का संग्रह किया गया है।

(१०) **धरती के गीत**—इस संग्रह में खड़ी बोली, अवधी, ब्रजभाषा तथा भोजपुरी के गीतों का संग्रह किया गया है। ये गीत किसानों की समस्या से सम्बन्ध रखते हैं। पुस्तक का प्रकाशन 'बम्बई कम्युनिस्ट पार्टी' द्वारा हुआ है।

भोजपुरी के आधुनिक कवि

यह अन्यत्र कहा जा चुका है कि भोजपुरी जीवित भाषा है और आज भी अनेक कवि अपने हृद्गत भावों का प्रकाशन भोजपुरी के ही माध्यम से करते हैं। इन कवियों की पूरी सूची उपस्थित करना अत्यन्त कठिन कार्य है। नीचे भोजपुरी के कतिपय कवियों का परिचय और उनकी कविता का उदाहरण दिया जाता है —

(१) बिसराम—भोजपुरी के वर्तमान कवियों में बिसराम का स्थान ऊँचा है। अनपढ़ होने पर भी इस जन-कवि ने ऐसे सरस तथा भावपूर्ण बिरहों की रचना की है कि उन्हें पढ़कर हृदय सहज भाव से रसप्लावित हो जाता है।

बिसराम का जन्म आजमगढ़ शहर से कुछ दूर हटकर सिरामपुर नामक गाँव में एक क्षत्रिय परिवार में हुआ था। यह गाँव टौंस (प्राचीन तमसा) नदी के किनारे स्थित है। बिसराम के माता-पिता ने उसे स्कूल में पढ़ाने का प्रयत्न किया, किन्तु उसका मन पाठशाला में न लगा। वह प्रकृति की विशाल पाठशाला का छात्र बन गया। युवा होने पर कवि का विवाह हुआ; किन्तु वह पारिवारिक सुख अधिक दिनों तक न भोग सका। कुछ दिनों के पश्चात् ही उसकी प्रियतमा का देहावसान हो गया। इस घटना से उसके भाव-प्रवण हृदय पर अत्यधिक आघात पहुँचा। बिसराम ने अपनी विरह-वेदना की अभिव्यक्ति भोजपुरी बिरहों में की है। पत्नी-वियोग के पश्चात् वह बहुत दिनों तक न जी सका। अतएव उसके कुछ ही बिरहों का संकलन हो सका है। यहाँ बिसराम का एक बिरहा उद्धृत किया जाता है। पत्नी का शव श्मशान जाते देखकर कवि की जो मनोदशा हुई थी उसका ही वर्णन उसने इस बिरहा में किया है। बिरहा इस प्रकार है —

> आजु मोरी घरनी निकरली मोरे घर से,
> मोरा फाटि गइले आल्हर करेज।
> 'राम नाम सत' ही सुनि मैं गइलों थडराई,
> कवन रछसवा गइलें रानी के हो खाई,
> सुखि गइलें आँसू नाहीं खुलेले जबनियाँ,
> कहस के निकारों मैं त दुःखिया बचनियाँ।

अर्थात् आज मेरी पत्नी मेरे घर से निकल गई, (दूसरे लोक में चली गई) उसकी मृत्यु से मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है। कौन-सा राक्षस उसे उठा ले गया। उसके वियोग में मेरे मुँह से शब्द नहीं निकलते हैं। मेरे आँसू सूख गये हैं और वाक्शक्ति अवरुद्ध हो गई है। अतः हृदय के भाव को किस प्रकार व्यक्त करूँ?

कवि रातदिन अपनी प्रियतमा के विरह में घुलता रहता है। उसे प्रकृति में भी सर्वत्र उदासीनता ही दीख पड़ती है। एक दिन रात में एक कौए को अकेला बैठा देखकर वह कह उठता है—

> तोरे जोड़वा के कॅवनो मरले चिबिल्ला कउवा,
> मोरे जोड़वा के मरले राम।
> उनके मनवा छन भरवा बहलवे कउवा,
> हमनी के तड़पे नित प्रान।

अर्थात् हे कौआ! तुम्हारे जोड़े को तो किसी चिबिल्ले ने मार डाला और मेरे जोड़े को

राम ने उठा लिया। उनका मन तो केवल क्षण भर के लिए बहला, किन्तु हमलोगों के प्राण तो नित्य ही तड़प रहे हैं।

बिसराम के ये बिरहे किसी भी साहित्य के लिए गौरव की वस्तु हैं। इनमें कातरता और दुःखपूर्ण हृदय की वेदना की अभिव्यक्ति ही नहीं है, अपितु उनके ये गीत रसात्मक भी हैं।

२ तेग अली—आप बनारस के रहनेवाले मुसलमान थे। आपकी एकमात्र रचना 'बदमाश-दर्पण' है जो बनारसी बोली में लिखा गया है। आप बड़े ही मस्त जीव थे। काशी के गवैयों के अखाड़े के आप सर्दार थे। होली के दिनों में आप अपना दल लेकर घूमते थे और आशु कविता करते हुए लोगों का मनोरंजन करते थे। तेग अली की कविता में मुहावरों की सफाई है। नीचे एक उदाहरण दिया जाता है—

> भौं चूमि लेहला, केहु सुअर जे पाइला,
> हम त उ हईं जे ओठ पर तरुआरि उठाइला।
> हम उनसे पूछली जे आँखि में सुरमा काहे बदे लगाइला।
> त ऊ हँस के कहलन, छुरि पत्थर से चढाइला।

पुस्तक के परिशिष्ट में भी 'बदमाश-दर्पण' के कतिपय पद दिये गये हैं।

३ बाबू रामकृष्ण वर्मा—आप काशी के ही निवासी थे। सरसता तथा मधुरता आपके जीवन में कूट-कूटकर भरी थी। यही कारण है कि आपकी कविता में भी ये गुण विशेष रूप से पाये जाते हैं। आपने 'बिरहा नायिकाभेद' नामक पुस्तक लिखी है जो अल्पकाय होने पर भी साहित्यिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इस पुस्तक में संकलित बिरहों की संख्या ५६ है। इसका वर्ण्य-विषय नायिका-भेद है। नायिकाओं के लक्षण तो खड़ी बोली में हैं; किन्तु बिरहों की भाषा भोजपुरी है। वर्माजी का कविता में उपनाम 'बलबीर' था। यह उनके अनेक बिरहों में मिलता है। जैसे—

> भरली गगरिया उठौली जैसे गोइयाँ,
> तैसे बिछलल गोडवा हमार।
> जो पै बलबिरवा न बहियाँ धरत,
> तो पै बहिती जमुनवाँ के धार।

४ पं० दूधनाथ उपाध्याय—आपका जन्म बलिया जिले के दयाछपरा नामक गाँव में हुआ था। आप बलिया डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड के अन्तर्गत मिडिल स्कूल के हेडमास्टर थे। आप भोजपुरी के प्रतिभाशाली कवि थे। आपकी वाणी में ओज था और आपकी कविता का भोजपुरी पाठकों पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता था। पिछली शताब्दी के अन्तिम चरण में उत्तरप्रदेश के भोजपुरी भाषा-भाषी पूर्वी जिलों में गोरक्षा को लेकर एक प्रबल आन्दोलन का सूत्रपात हुआ था। उस समय विशेषतः बलिया तथा आजमगढ़ इन दो जिलों में अनेक गोरक्षणी सभाओं की स्थापना हुई थी। उपाध्यायजी भी इस आन्दोलन के प्रवर्त्तकों में से थे। आपने गो-विलाप-सम्बन्धी अनेक पदों की रचना भोजपुरी में की थी। उस समय की सरकार ने इन पदों को जब्त कर लिया था और आन्दोलन करनेवालों को कड़ी सजा भी दी थी। पंडितजी के ये छन्द आज अनुपलब्ध हैं। कहा जाता है कि पंडितजी द्वारा रचित पद इतने उत्तेजनापूर्ण थे कि वे कायरों के हृदय में भी वीररस का सञ्चार कर देते थे।

आपने प्रथम महायुद्ध के अवसर पर सन् १९१४ ई० में 'भारती का गीत' नामक एक छोटी-सी पुस्तिका लिखी थी जो आज भी उपलब्ध है। इस पुस्तिका के पदों की भाषा अत्यन्त प्राणवान् है। नीचे एक पद उद्धृत किया जाता है—

हमनी का सब केहू बाम्हन छतिरि होके,
रन में चलबि नाहीं तनिको डेराइबि।
अब लें चूकलीं बड़ बाउर कइलिहीं जा,
अब पुरुखनि के ना नइयाँ हँसाइबि।
जरमन छुहुट के नहट कइला बिना,
अबना मानबि बलु मरि मिटि जाइबि।
सगरे मुलुक ललकारि के पछीब अब,
दूधनाथ रन से ना पयर हटाइबि।

उपाध्यायजी की दूसरी रचना 'भूकंप पचीसी' है जिसमें १५ जनवरी, सन् १९३४ के बिहार के प्रलयंकारी भूकम्प का बड़ा ही सजीव चित्रण किया गया है। भूकम्प का यह रोमांचकारी वर्णन सुनिए—

केहू के त सब परिवार दबि मरत बा, केहू के त बेटा नाती देखिना परत बा।
केहू मेहरारू बिना, पूत परिवार बिना, छाती पीटि-पीटि धाई-धाई के गिरत बा।
केहू धन बिना, अन बिना, पानी बिना हाई, तड़पि तड़पि छपिटाइ के मरत बा।
केहू होई पागल बेहाल होइ घूमताटे, दूधनाथ हाइ बिना आगिये जरत बा।

भूकंप का यह दृश्य कितना भयानक है। भूकंप-पीड़ितों की सहायता के लिए जनता से अपील करता हुआ कवि कहता है—

अन, धन, कपड़ा, ओढ़ना, लोटा-थारी सब किछु,
जेकरा से जतना सँपरे सेकरा के जुटाईं जी।
बिना परिवार, बिना घर जे मरत बाड़े,
ओकरा के देइ देइ धरम बढ़ाईं जी।
गइला से बने त जलदी वहाँ चलि जाईं,
नाहीं त त पारसल कइके पठाईं जी।
जेकरा से जवने सँपरे ओकरा के देइ दीहीं,
दूधनाथ एमें अब देर ना लगाईं जी।

उपाध्यायजी की भोजपुरी ठेठ और मुहावरेदार है। इसकी सहज मिठास का जन-साधारण पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है।

५ बाबू अम्बिका प्रसाद—आप बिहारप्रान्त के निवासी थे और आरा में बहुत दिनों तक मुख्तारी करते थे। आपकी कविताओं का अभी तक संग्रह तथा प्रकाशन नहीं हुआ है। नीचे आपके दो पद उद्धृत किये जाते हैं—

[1] कवना गुनहि ए झुकलों ए बालम,
तोर नयना रतनार।

१—सेवेन ग्रामर आव द डायलेक्टस् एण्ड सबडायलेक्टस् आव द बिहारी लैंग्वेज, पार्ट २ भोजपुरी डायलेक्ट, पृ० १३८।

सौति के बतिया करेजवा में साले,
कॉंपत जियरा हमार।
अपना पिया लागि पेन्हलों चुँदरिया,
ताकत देवरा हमार।
अंबिका प्रसाद पिया हँसि हँसि बोलिहैं,
करबों में सोरहो सिंगार।

आपकी कई कविताओं में रहस्यवाद की भी झलक मिलती है। नीचे इस प्रकार का एक पद दिया जाता है—

[1] देखलीं में सखिया एक कल के खेलवना रे,
पाँच पचीस कलवा लागल रे की।
तीन सौ साठि तामें लागली लकड़िया रामा,
नव सइ जोड़वा बाँधल रे की।
दुइ रे सहेलिया मिलि खेलेली खेलवना रामा,
तीनो रे खेलकवा तेही सँगवा धावेला रे की।
नव रे महिनवा में बनेला खेलवना रामा,
खेलवा मेटत देर ना लागेला रे की।
अंबिका कहत बाड़े समुझि खेल गोरिया रामा,
खेलवा के भेदवा गुरु से पावल रे की।

६ रघुवीरनारायण—[2]आपका जन्म एक सम्भ्रान्त कायस्थ-परिवार में बिहार के अन्तर्गत छपरा शहर में ३० अक्टूबर सन् १८८४ ई० में बृहस्पतिवार को हुआ था। आप के पिता बाबू जयदेवनारायण छपरा में ही वकील थे। श्रीरघुवीरनारायणजी की शिक्षा-दीक्षा छपरे में ही हुई थी। आपकी 'बटोहिया' शीर्षक कविता भोजपुरी भाषा-भाषी प्रान्तों में अत्यधिक प्रसिद्ध है। इसे यदि भोजपुरी प्रदेश का राष्ट्रगीत कहा जाय तो इसमें अत्युक्ति न होगी। इस गीत में अखण्ड भारत का मनोरम चित्र खींचा गया है। इसमें एक ओर भारतीय एकता को अक्षुण्ण रखनेवाले पर्वतराज हिमालय, गङ्गा, यमुना तथा शोणभद्र इत्यादि के प्राकृतिक दृश्यों का चित्रण है तो दूसरी ओर नानक, कबीर, शङ्कराचार्य तथा परमहंस रामकृष्ण की अमर वाणी की चर्चा है। कालिदास, जयदेव, विद्यापति तथा सूर एवं तुलसी की अमर कृतियों ने भी भारतीय संस्कृति एवं जीवन को समुन्नत बनाया है। श्रीरघुवीरनारायणजी ने बटोहिया में इन अमर आत्माओं की ओर, इसी कारण इङ्गित किया है। बटोहिया की कतिपय पंक्तियाँ नीचे दी जाती हैं—

सुन्दर सुभूमि भैया भारत के देशवा से,
मोरे प्रान बसे हिम खोह रे बटोहिया।
एक द्वार घेरे रामा हिम कोतवलवा से,
तीन द्वार सिन्धु घहरावे रे बटोहिया।

१—दुर्गाशंकरप्रसाद सिंह—भोजपुरी लोकगीत में करुणरस, पृ० ४६ भूमिका
२—भोजपुरी पत्रिका, वर्ष १, अंक १, पृ० ५१-५३।

गंगा रे जमुनवा के झगमग पनियाँ से,
सरजू झमकि लहरावे रे बटोहिया।
ब्रह्मपुत्र, पञ्चनद घहरत निसिदिन,
सोनभद्र मीठे स्वर गावे रे बटोहिया।
नानक, कबीरदास, शंकर, श्रीरामकृष्ण,
अलख के गतिया बतावे रे बटोहिया।
विद्यापति, कालिदास, सूर, जयदेव कवि,
तुलसी के सरल कहानी रे बटोहिया।

७. **भिखारी ठाकुर**—भोजपुरी के कवियों में भिखारी ठाकुर का नाम उत्तरप्रदेश के पूर्वी जिलों और बिहार के पश्चिमी जिलों में प्रसिद्ध है। वहाँ बच्चे से बूढ़े तक इनके 'बिदेसिया' नाटक से पूर्णतया परिचित हैं। भिखारी ने नाटकमण्डली स्थापित कर, 'बिदेसिया' नाटक का अद्वितीय सफलता के साथ अभिनय कर, इस नाटक का एक सम्प्रदाय स्थापित कर दिया है। इनके नाटक के अनुकरण पर अन्य बिदेसिया नाटक भी तैयार हो गये हैं। इनकी जन-प्रियता का इसी से अनुमान किया जा सकता है। आत्म-परिचय देते हुए इन्होंने एक स्थान पर लिखा है—

जाति के हजाम मोर कुतुबपुर मोकाम,
छपरा से तीन मील दियरा में बाबूजी।
पुरुब के कोना पर गंगा के किनारे पर,
जाति पेशा बाटे विद्या नाहीं बाटे बाबूजी।

यद्यपि भिखारी ठाकुर शिक्षित नहीं हैं; किन्तु ये प्रतिभावान् व्यक्ति अवश्य हैं। ग्रामीण विषयों को लेकर ठेठ तथा टकसाली भोजपुरी में कविता करने में आप सिद्धहस्त हैं। यही कारण है कि इनके 'बिदेसिया' नाटक को देखने लिए कई सहस्र व्यक्ति एकत्र हो जाते हैं और जहाँ इस नाटक का अभिनय होता है वहाँ विशेष प्रबन्ध करने की आवश्यकता होती है। बिदेसिया नाटक में विप्रलम्भ-शृंगार का ही चित्रण हुआ है। भोजपुरी प्रान्त के लोग प्रायः अकेले कलकत्ते तथा बंगाल में नौकरी के सिलसिले में चले जाते हैं। ये अपने परिवार को प्रायः घर पर ही छोड़ देते हैं। 'बिदेसिया' नाटक में परदेशी पति के वियोग में उसकी पत्नी की विरह-वेदना की तीव्र अभिव्यञ्जना मिलती है। इस नाटक से एक गीत नीचे उद्धृत किया जाता है—

दिनवाँ न बीते रामा तोरी इन्तजरिया में,
रतिया नयनवा ना नींद रे बिदेसिया।
घरी राति गइली रामा पिछली पहरवा से,
लहरे करेजवा हमार रे बिदेसिया।
अमवा मोजरि गइले लगले टिकोरवा से,
दिन पर दिन पियराला रे बिदेसिया।
एक दिन अइहैं रामा जुलुमी बयरिया से,
डार पात जइहैं नसाई रे बिदेसिया।

भिखारी ठाकुर वास्तव में भोजपुरी के जनकवि हैं। इनकी कविता में भोजपुरी जनता अपने सुख-दुख एवं भलाई-बुराई को प्रत्यक्ष रूप में देखती है।

८. मनोरञ्जनप्रसाद सिनहा—आप प्रिंसिपल मनोरञ्जन के नाम से विख्यात हैं और इस समय राजेन्द्र कालेज, छपरा में प्रिंसिपल हैं। आपका जन्म बिहारप्रान्त के शाहाबाद जिले के डुमराँव नामक स्थान में एक सम्भ्रान्त कायस्थ-परिवार में हुआ है। मनोरञ्जन बाबू प्रयाग के कायस्थ पाठशाला-कालेज, तथा हिन्दू-विश्वविद्यालय, काशी में अनेक वर्षों तक अंग्रेजी के प्रोफेसर-पद पर काम कर चुके हैं। सरल होने के साथ-साथ आप एक मान्य विद्वान् भी हैं। खड़ीबोली तथा भोजपुरी दोनों पर आपका समान अधिकार है। यों तो आपने भोजपुरी में अनेक सुन्दर पदों की रचना की है; किन्तु आपकी सर्वाधिक प्रसिद्ध रचना 'फिरँगिया' है। इसकी रचना आपने सन् १९२१ ई० के 'असहयोग-आन्दोलन' के तूफानी दिनों में बाबू रघुवीरनारायणजी के 'बटोहिया' के वजन पर की थी। फिरँगिया से यहाँ ब्रिटिश सरकार से तात्पर्य है। नीचे इसकी कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं—

सुन्दर सुघर भूमि भारत के रहे रामा,
आज उहै भइल मसान रे फिरँगिया।
अन्न, धन, जन, बल, बुद्धि सब नाश भइल,
कौनो के ना रहल निशान रे फिरँगिया।
जहवाँ थोड़ ही दिन पहिले ही होत रहे,
लाखों मन गल्ला और धान रे फिरँगिया।
उहवें पर आज रामा मथवा पर हाथ धरके,
बिलखी के रोवेला, किसान रे फिरँगिया।

अंग्रेजी राज्य के कारण भारतीयों का जो नैतिक पतन हुआ है उसकी ओर सङ्केत करते हुए कवि कहता है—

मरदानापन अब तनिको रहल नाहीं,
ठकुरसोहाती बोले बात रे फिरँगिया।
रात दिन करेले खुशामद सहेबवा के,
सहेले विदेसिया के लात रे फिरँगिया।

पञ्जाब के जलियानवाला बाग के निर्मम हत्याकाण्ड का भी कवि के हृदय पर गहरा आघात है। इसी हत्याकाण्ड में मदन-जैसे अबोध बालक की भी हत्या हुई थी। उसी ओर सङ्केत करके कवि कहता है—

आजु पंजबवा के करि के सुरतिया से,
फाटेला करेजवा हमार रे फिरँगिया।
भारत के छाती पर भारत के बच्चन के,
बहल रकतवा के धार रे फिरँगिया।
दुधमुँहा लाल सब बालक मदन सम,
तड़पि तड़पि देले जान रे फिरँगिया।

६. रामविचार पाण्डेय—आप उत्तरप्रदेश के बलिया जिले के निवासी हैं। आप नागपुर-विश्वविद्यालय से एम० ए० हैं। आजकल बलिया में आप वैद्यक करते हैं तथा डाक्टर पाण्डेय के नाम से प्रख्यात हैं। आप आयुर्वेद के अतिरिक्त होमियोपैथी-प्रणाली से भी चिकित्सा करने में दक्ष हैं। यद्यपि आपका व्यवसाय वैद्यक है तथापि आपमें सरसता एवं भावुकता पर्याप्त मात्रा में है। भोजपुरी कविता-पाठ का ढंग भी आपका इतना सरस है कि वह सहज ही श्रोताओं को अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है।

पाण्डेयजी की काव्य-भाषा बड़ी प्रांजल है। यद्यपि आपने ठेठ शब्दों के माध्यम से ही अपने विचारों की अभिव्यक्ति की है तथापि उसमें काव्य के उपकरणस्वरूप विविध अलङ्कार नितान्त स्वाभाविक ढंग से आ गये हैं। आपकी भोजपुरी कविताओं का प्रकाशन अभी हाल ही में 'बिनिया-बिछिया' नाम से हुआ। इसमें कुल १२ कविताओं का संग्रह है। पाण्डेयजी कुशल नाटककार तथा अभिनेता भी हैं। आपने 'कुँवरसिंह' नामक एक नाटक भी लिखा है। नीचे आपकी 'अँजोरिया' शीर्षक कविता उद्धृत की जाती है—

> टिसुना जागलि सिरीकिसुना के देखे के त,
> आधी रतिये रवाँ उठि चलली गुजरिया।
> चान का नियर मुँह चमकेला रधिका के,
> चमचम चमकेले जरी के चुनरिया।
> चकमक चकमक लहरि उठेले ओमे,
> मधुरे मधुरे डोले कान के मुनरिया।
> गोकुला के लोग ई त देखि चिहइले कि,
> राति में अमावसा का ऊगली अँजोरिया।

इस पद्य में श्रीकृष्ण से मिलने के लिए जानेवाली राधिका के अभिसार का वर्णन है। राधिका सुन्दर जरीदार साड़ी पहनकर अमावस्या की अँधेरी रात में कृष्ण से मिलने चली जा रही हैं। परन्तु उनके शरीर की कान्ति इतनी अधिक है कि ऐसा प्रतीत होता है कि अमावास्या की रात्रि में चन्द्रोदय हो गया है। अब इस पद के आगे का अंश देखें—

> फूल का सेजरिया पर सूतल कन्हइयाजी,
> सँपना देखेले कि जरत दुपहरिया।
> ओकरे में हमरा के रधिका खोजत बाड़ी,
> फेड़ नइखे, रुख नाहीं, जल बा कगरिया।
> कह ताड़ी 'आव कृष्ण' 'आव कृष्ण' आव तनी,
> हमके देखा द तनी गोकुला नगरिया।
> अइली राधे, अइली राधे, कहि के जे उठले त,
> पूने फूलले कमल ओने चढ़ली अँजोरिया।

सूर्य को देखकर कमल विकसित होता है और चन्द्रमा को देखकर कुमुदिनी। यह एक प्राचीन कवि-परम्परा है। परन्तु उपर्युक्त पद्य में पाण्डेयजी ने चन्द्रमा को देखकर कमल का खिलना लिखा है। राधिका चन्द्रिका के समान रूपवती हैं और कृष्ण का मुख कमल के समान है। जब वे राधिका को स्वप्न में देखते हैं तब वे प्रसन्न हो जाते हैं। इसको ही कवि

ने 'अंजोरिया' को देखकर कमल का खिलना लिखा है। इन कविता में इन दो विरोधी वस्तुओं का निर्वाह कवि ने बड़ी चातुरी से किया है। इस कविता का तीसरा अंश देखें—

हमके बोला वीतू तूं रअइलू हा कइसे हो,
बड़ी भौंकसावनि भइलि बा अन्हरिया।
कसवा के राकस घूमत बटवार बाड़े,
गोकुला में कबें कबें होति बटे चोरिया।
सभ के ओल कृष्ण हमके भोराव जनि,
हाथ हम जोरि लें करीलें गोड़धरिया।
हदया में जेकरा त तूँही बइसल बाड़,
ओकारा खातिर हैं, अन्हरियो अँजोरिया।

कृष्ण कहते हैं—हे राधिका! मुझे बुलाने के लिए इस भयानक अँधेरी रात में आप कैसे आईं? कंस के राक्षस गोकुल में चारों ओर घूम रहे हैं और कभी-कभी यहाँ चोरी भी हो जाती है। यह सुनकर राधिका उत्तर देती हैं—हे कृष्ण! मैं हाथ जोड़कर तथा पैर पकड़कर आपसे प्रार्थना करती हूँ कि आप मुझे भुलाने की चेष्टा न करें; क्योंकि यद्यपि आप सबको ठग लेते हैं, फिर भी मुझे ठगने में आप कृतकार्य न हो सकेंगे। बात यह है कि जिसके हृदय में आप स्वयं विराजमान हैं, उसके लिए यह अन्धकार-पूर्ण रात्रि भी उजेली रात्रि के समान है।

पाण्डेयजी की 'बसन्त-वर्णन' तथा 'उलउनि' आदि कविताएँ भी इसी प्रकार अत्यन्त सरस हैं। इनमें भी ठेठ भोजपुरी का सरस रूप श्रोताओं तथा पाठकों को अपनी ओर खींच लेता है।

१०. **प्रसिद्धनारायण सिंह**—आप बलिया जिले के चीट बड़ागाँव के निवासी हैं। आरंभ से ही आपकी प्रवृत्ति साहित्यिक रही है। आपकी प्रथम कृति 'बलिया जिले के कवि और लेखक' नामक पुस्तक है, जिसमें आपने अपने जिले के कवियों और लेखकों की कृतियों का बड़ा सुन्दर परिचय दिया है। आप बलिया कचहरी में मुख्तारी कर रहे थे कि गाँधीजी का सत्याग्रह-आन्दोलन छिड़ा। सन् १९३० तथा १९४२ के आन्दोलनों में बाबू प्रसिद्धनारायणजी ने विशेष भाग लिया। इसके परिणामस्वरूप आपको कठिन कारावास का दण्ड भी भुगतना पड़ा। इस समय आप मुख्तारी के साथ-साथ बलिया में सार्वजनिक कार्य भी कर रहे हैं। सन् १९४२ के भयानक विद्रोह के पश्चात् निरंकुश ब्रिटिश-शासन की ओर से बलिया की जनता पर जो अत्याचार हुआ वह भारतीय इतिहास में एक असाधारण घटना है। इस सम्बन्ध में अनेक लेख तथा पुस्तकें लिखी गईं। बाबू प्रसिद्धनारायणजी ने इसी विषय को अपने काव्य का आधार बनाया। भारतीय जनता के हृदय-सम्राट् पं० जवाहरलाल नेहरू जब आन्दोलन के पश्चात् सन् १९४५ में बलिया पहुँचे तो उनके स्वागत में आपने निम्नलिखित कविता पढ़ी—

दुखिया बलिया के वीर भूमि,
सोहरा के चूमि-चूमि,
मानति बा आपन बड़ो भागि,
गावत नरनारी झूमि-झूमि,
हमके दुरलभ दरसन तोहार।

निरबल, निरधन, निरगुन, गँवार,
अलगा आपन बोली विचार,
कन-कन में जेकरा क्रान्ति बीज,
अइसन भोजपुर तप्पा हमार,
इतिहास कहत पथा पसार।

राष्ट्रीय आन्दोलनों में बलिया सदा अग्रणी रहा है। इस बात की ओर संकेत करते हुए कवि लिखता है कि—

जब जब बापू कइलन पुकार
रन में बाजल बिगुल तोहार,
सिर बाँधि-बाँधि कफनी आपन,
हम छोड़ि दउड़ली घर दुआर,
हरदम हमार अगिला कतार।'

सन् १९४२ में बलिया के विद्रोहियों द्वारा किये गये वीरतापूर्ण कार्यों का वर्णन करते हुए आप लिखते हैं—

आइल अगस्त के आन्दोलन,
फरके लागल सबके तन, मन,
बिजुली दौड़ल जागल बलिया,
चलले मुसलिम, हिन्दू, हरिजन,
मचि गइल लड़ाई बस सुमार।
थाना, डकखाना, रेल, तार,
सब पुलिस, अदालत, अहलकार,
हाकिम, हुकाम,, गोली,, गोला,
बजि गइल विजय डंका हमार।
सड़कन डालिन से पाटि पाटि,
पूलन के दिहली काटि काटि,
तहसिलि खजाना लूटि फूँकि,
अगवढ़ि दिहली तनखाह बाँटि,
पर उठल कहाँ थप्प हमार।

निरंकुश ब्रिटिश शासन के अधिकारियों ने सन् १९४२ के आन्दोलन के बाद बलिया पर जो अत्याचार किया था, उसका रोमाञ्चकारी वर्णन करते हुए आप लिखते हैं—

बेपीर पुलिस, बेरहम फौज,
डाका डललनि बेखौफ रोज,
गुंडाशाही के रहल राज,
रिसवत पर कइले सभे मौज,
उफ! जुलुम बढ़ल जइसे पहार।

गाँवन पर दगलनि गनमशीन,
बैंतन सन मरलन बीन-बीन,
बैठाई डाल पर नीचे से
जालिम भोंकलन खच-खच संगीन,
बहि चलल खून के तेज धार।

घर घर से निकलल त्राहि त्राहि,
कोना कोना से आहि आहि,
गाँवन गाँवन में लूट फूँक,
मारल, काटल, भागल, पराहि,
फिर कवन सुने केकर गुहार।

११ पं० महेन्द्र शास्त्री—भोजपुरी के उन्नायकों और प्रचारकों में पं०महेन्द्र शास्त्री का स्थान बहुत ऊँचा है। विहार तथा उत्तरप्रदेश के पूर्वी जिलों में जो समय-समय पर भोजपुरी सम्मेलन होते हैं उनमें प्रायः शास्त्रीजी की प्रेरणा रहती है। 'भोजपुरी' नामक पटने से प्रकाशित होनेवाली पत्रिका के आप ही सम्पादक थे। आप भोजपुरी गद्य तथा पद्य के सफल लेखक हैं। आपकी 'आज की आवाज' नामक भोजपुरी कविताओं की एक छोटी-सी पुस्तक प्रकाशित हुई है; जिसमें सामयिक विषयों पर सुन्दर तथा सरस कविताएँ हैं।

१२ श्यामबिहारी तिवारी—आप विहारप्रान्त के बेतिया जिले के निवासी हैं। आप भोजपुरी में सुन्दर तथा सरस कविताएँ लिखते हैं। आपकी 'देहाती-दुलकी' नामक पुस्तक तीन भागों में प्रकाशित हुई है। आपका उपनाम 'देहाती' है और आप इसी नाम से प्रसिद्ध हैं। 'देहाती-दुलकी' भाग एक में आपकी चौदह चुनी हुई कविताओं का संग्रह है, जिनमें देहाती विषयों को लेकर कविता की गई है। नीचे वसन्त ऋतु के वर्णन में 'उठल मास मधु आइल' शीर्षक कविता उद्धृत की जाती है—

देखि इ हो परास के फूलल,
फूँठहु मे भँवरा के भूलल,
जाम त देबे पर बा सूलल,
भनभनात लरि आइल,
उठल मास मधु आइल।

पति का भँवरा से रूपक बाँधकर उसका कितना सुन्दर उपालम्भ नीचे के पद में किया गया है—

कइसे मानी उनकर बतिया,
सुखले सूखल बीतल रतिया,
कहाँ जुड़ाइब आपन छतिया,
छतवर तुरले जाय,
भँवरा रसवा चूसले जाय।

अब विरह का दूसरा वर्णन देखिए—

अबहीं ले हम कोंप तानी,
पलकन पानी ढोंप तानी,
आग लगा के ताप तानी,
तेलवा ढलेले जाय
भँवरा रसवा चुसले जाय।

'देहाती जी' ने हास्यरस की कविताएँ भी लिखी हैं। एक बार बनैली-राज्य के अधिकारियों ने आपको चाय-पार्टी दी थी। उस पार्टी में आपने क्या-क्या देखा उसका वर्णन आपने अपनी 'का-का देखनी' शीर्षक कविता में बड़ी सुन्दर रीति से किया है। इसका कुछ अंश नीचे उद्धृत किया जाता है—

का कहीं, केतना देखनी, का का देखनी,
भीतरी ना देखनी, बाहर के लिफाफा देखनी।
अरे भाई, अइसन सत्कार कतहूँ न मिलल,
देहातियो के साथे खाये के तकाजा देखनी।
आगे टेबुल आइल, बूझनी, यही पर सूप के पड़वि,
आहि थाल,ईका,सामने छुरी अडरी कांटा देखनी।
जे जे आइल, धइले गइलीं गोलक में,
पानी मिलबे ना कइल, इहे एगो घाटा देखनी।
मन में आइल के खाउ, कांटा से देरी होई,
एक संसिये मारि दिहनी, ना आगा देखनी ना पाछा देखनी।

१३ **कविवर चञ्चरीक**—कविवर चञ्चरीकजी भोजपुरी के लब्धप्रतिष्ठ कवियों में से हैं। आप गोरखपुर जिले के निवासी हैं। आपकी सर्वश्रेष्ठ रचना 'ग्राम-गीताञ्जलि' है। यह गोरखपुर से ही प्रकाशित हुई है। यह पुस्तक इतनी जन-प्रिय है कि इसका पता केवल इसी बात से लगता है कि कुछ ही वर्षों के भीतर इसके चार संस्करण हो गये हैं।

ग्राम-गीताञ्जलि में कुल २४० पृष्ठ हैं जिनमें चंचरीकजी ने राष्ट्रीय तथा सामाजिक विषयों को लेकर काव्य-रचना की है। यह पुस्तक दो भागों में विभक्त है—१. राष्ट्रीय सोपान, २. सामाजिक सोपान।

राष्ट्रीय सोपान में आपने राष्ट्रीय तथा देशभक्ति के विषयों को लेकर सोहर, विवाह के गीत, मेला, निरौनी, हिंडोला, जनेऊ, कहरवा आदि के गीत लिखे हैं। 'सामाजिक सोपान' में आदर्श गारी, शिक्षाप्रद गीत, बेटी की विदाई के समय के गीत आदि लिखे गये हैं। देहातों में जो कहीं-कहीं अशिष्ट गीतों का प्रचार है उन्हें दूर कर जनता के सामने नवीन देश-भक्तिपूर्ण गीतों को रखना ही चञ्चरीकजी का प्रधान उद्देश्य है और वे इसमें सफल भी हुए हैं।

'ग्राम-गीताञ्जलि' की भाषा सरस, सरल और मधुर है। राष्ट्र के कर्णधार, स्वर्गीय मोतीलालजी की मृत्यु पर आप लिखते हैं—

भारत के नैया के डारि मँझधरवा में,
असमय चलि गइले मोतीलाल नेहरू।

कइसे के पार होइहें देसवा के नइया रे,
पतवार रहले रे मोतीलाल नेहरू।'

चञ्चरीक ने ग्राम-गीतों में देश की भावनाओं को भरकर हमारी राष्ट्रीय चेतना को जागृत किया है। गाँधीजी के राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने के लिए कोई स्त्री अपने पति को निम्नलिखित उत्साह-वर्द्धक उपदेश दे रही है[1] —

जाहु जाहु जाहु पिया देस के लड़इया हो,
छोड़ि देहु अब कदरइया,
हाँ, सियाराम से बनी! टेक
होके मरद मरदुमी अब देखलाऊ,
देसवा में होइहें लड़इया, सियाराम। टेक
लागे सरम लाजि घर मे बइठि जाहु,
मरद से बनि के लुगइया, सियाराम। टेक
पहिरि केसरिया सारी हम चलि जइबे हो,
राखि लेबे तुम्हरी पगड़िया, सियाराम से बनी।

१४ बाबू रणधीरलाल श्रीवास्तव—आप भोजपुरी के उदीयमान कवियों में से हैं। आप बलिया जिले के सोनवरसा नामक गाँव के निवासी हैं। आज-कल आप बलिया के एल० डी० मेस्टन हाईस्कूल मे अध्यापन-कार्य करते है। आप भोजपुरी में सुन्दर कविता करते हैं। इधर आप भोजपुरी मे बरवै छन्द में काव्य-रचना करने में संलग्न हैं तथा बरवै-शतक नामक काव्य की रचना की है। यह ग्रंथ अभी तक अप्रकाशित है। आपकी भाषा सरल और सुबोध होती है और इसमें भोजपुरी मुहावरों का सुन्दर प्रयोग होता है। उदाहरणस्वरूप नीचे आपके कतिपय पद उद्धृत किये जाते हैं—

टहटहि उगलि अँजोरिया,ठहरे ना आँखि,
पहिरि चलेली लुगवा, बकुला पाँखि,
बीतलि रात चुचुहिया, बोलन लागि,
पहवो फाटल पियवा, अब त जागि।

पति के वियोग में विरहिणी के नेत्रों से आँसू गिर रहे हैं। इसका सुन्दर चित्रण कवि ने इस रूप में किया है —

विरह अगिनिया छतिया धधके मोर,
गलि गलि बहेला करेजवा, अँखियन कोर।

आगे के पद में कवि कहता है कि यह कितने आश्चर्य की बात है कि पानी के पड़ने से आग तो बुझ जाती है; परन्तु आँसुओं के जल से विरहाग्नि और भी धधक उठती है।

इ कतहू ना देखनी सुनली भाइ,
विरह अगिनिया धधकेला पनिया पाइ।

[1] ग्राम-गीताञ्जलि, पृष्ठ २३।

गोपियों के साथ कृष्ण की क्रीडा का भी सुन्दर वर्णन कवि ने निम्नलिखित पंक्तियों में किया है —

होत पराते गइली जमुना तीर,
जानि अकेले रोकेले बावन बीर,
माँगेला गोरस, आइल कमरी ओढ़,
तापर रार बेसाहेला गगरी फोड़,
काहे छीन झपट्टा करेल, दहिया चोर,
गोड़वा के धोवनवों, पहुँच न मोर।

१५ स्वामी जगन्नाथदासजी—स्वामीजी का जन्मस्थान, ग्राम रामपुर, पो० भगवानपुर, थाना बसन्तपुर, जिला छपरा है। आपका जन्म एक सम्भ्रान्त वैश्य-परिवार में संवत् १६५६ की चैत्र-कृष्ण-अमावस्या को हुआ था और गोलोकवास संवत् २००२ भाद्र-कृष्ण ११ को। आपके शिष्य परमहंस श्रीशुकदेवजी ने आपके दो ग्रंथ—श्रीसतगुरुसागर, प्रथम भाग तथा द्वितीय भाग—प्रकाशित किये हैं। कबीर, दादू, नानक आदि महात्माओं की भाँति आपने भी बड़े सरल शब्दों में जनता को उपदेश दिया है। अधिकांश पदों की भाषा सुबोध भोजपुरी है। ये पद आध्यात्मिक भावना से ओत-प्रोत हैं। नीचे आपके पद उद्धृत किये जाते हैं[1] —

भला रे समइया राम लागल बाटे ददरी,
माघ महीना सुदी तिथि हउए पंचमी।
हमहूँ पहुँच अइली सतगुरुजी का नगरी,
भरम के भटका छोड़ मन मूरख,
नाहीं तो जम्हु धके तोहरा के रगरी।
हित कुटुम कोई काम ना अइहें,
धन दौलत तोर छूटी जाई सगरी।
दीन दयाल सतगुरुजी हमारो,
अधम जगनाथ के लखा देलीं डगरी।

अब स्वामीजी का एक दूसरा पद लें। इसमें आप ने संसार के मायाजाल को छोड़ने का उपदेश दिया है[1] —

सतगुरु कहीलें जतन करु पनीयाँ,
नात देहु हारेला जीआन।
कतहीं ढरकी जाइ सुनी लेहु धनीयाँ,
जम्हुआ उखारे लागी कान।
छन सुख लागी अतना सहेल हरनीयाँ,
अबहीं से छोड़ी देहु यान।
चारू ओर बिछल बाटे माया कर जलीया,
भागी के बचा लेहु जान।

---

1 श्रीसतगुरुसागर, प्रथम भाग, पृष्ठ १०७

जगन्नाथ धरी लेहु सतगुरु सरनियाँ
छूटी जाई माया कर फान।

१६. अशान्त—भोजपुरी के उदीयमान कवियों में अशान्त भी एक है। आपकी भाषा प्राञ्जल और भाव उच्चकोटि के होते हैं। भोजपुरी में लिखित अपने गीतों को आप इतने सुन्दर ढंग से गाते हैं कि स्वाभाविक भाव से उसे सुनकर लोग आकर्षित हो जाते हैं। इधर आपके चार गीत 'नई धारा' में प्रकाशित हुए हैं। नीचे आप का 'ऋतु-गीत' उद्धृत किया जाता है[1]—

कुहुकि कुहुकि कुहुकावे कोइलिया,
कुहुकि कुहुकि कुहुकावे।
पतझर आइल उजड़ल बगिया,
मधु ऋतु में हुलियाइल फुलुगिया,
इन हरियर हरियर पलइन मे,
सूतल सनेहिया जगावे कोइलिया,—कुहुकि०
खिसिकल मधु ऋतु उठल बजरिया,
चुवल कोंच झर गइल मोंजरिया,
पछिया झरक चले तलफे भुँभुरिया,
देहिया में अगिया लगावे कोइलिया,—कुहुकि०
झुलसि गयल दिन अँउसी के रतिया,
बरसे फुहार रिमझिम बरसतिया,
करिया बदरवा के सजल करेजवा में,
चमकि बिजुरिया डेरावे कोइलिया,—कुहुकि०
उपटि गइल भरि छिछली पोखरिया,
बिछली भइल किच-किचिर डगरिया,
सूनि बँसवरिया से धोविन चिरइया,
घुघुआ पहरुआ जगावे कोइलिया,—कुहुकि०
आइल शरद-ऋतु उगल अँजोरिया,
दुधवा मे लडके नहाइल नगरिया,
सिहरी गइल सखिछतिया निरखि चाँद,
पुरवा झटकि सिहरावे कोइलिया,—कुहुकि०
ठिठुरी शरद ऋतु ओढले दोलइया,
कँकुँरी कुहरिया में कटेला समइया,
भींगल उसरिया जडइया के अगरम,
अइसन सरदिया सुआवे कोइलिया,—कुहुकि०
सरसो केरइया सनइया फुलाइल,
फिर-फिर फिहिर शिशिर ऋतु आइल,
सखिया गुजरि गइल तबहू ना हलिया,
पुरुब मुलुकुवा से आवे कोइलिया,—कुहुकि०"

[1] नई धारा, वर्ष १, अधिक आषाढ़, २००७, जुलाई १९५०, पृ० ४७-४८

ऊपर के पद में प्रशान्तजी ने विभिन्न ऋतुओं का सुन्दर चित्रण किया है। अब आप-का दूसरा गीत 'बदरिया घिरि आइल' नीचे दिया जाता है—[1]

'बिजुरिया चमके रे आँगन में चितवन मारके,
बदरिया घिरि आइल सजनी।
सावन के सुधि रिमझिम बरसे,
धरती के तरसल मन हरसे,
कोइलिया कुहुके रे बगिया में मँगिया जारके,
बदरिया घिरि आइल सजनी।
साँझ पहर पनघट के बेला,
बिछुलहरी में चलल झमेला,
चेगुँर पर बल खाके डोले,
रस के भरल गगरिया—
सँभल सँभल के बिछुलहरी में,
छलकत चलल उमरिया,
सँवरिया कलपे रे गगरिया भर सँभारके,
बदरिया घिरि आइल सजनी।
टूटल खटिया चुवत पलानी,
आसमान में चढ़ल जवानी,
उमरिया ललचे रे जिया से जिया हारके,
अन्हरिया घिरि आइल सजनी।'

फुटकर पुस्तकें

यह अन्यत्र कहा जा चुका है कि भोजपुरी एक जीवित भाषा है। अतएव भोजपुरी प्रदेश से बहुत छोटी-छोटी पुस्तकें प्रकाशित होती रहती हैं। इनमें से कुछ तो दो-तीन पृष्ठ से अधिक की नहीं हैं। इन पुस्तकों की रचना सामाजिक तथा सामयिक विषयों को लेकर हुई है। भोजपुरी प्रदेश में सोनपुर में हरिहरक्षेत्र के तथा बलिया में ददरी के मेले उत्तरीभारत में प्रसिद्ध हैं। इन मेलों में अनेक स्त्री-पुरुष जाते हैं। अतएव मेले में जानेवाली स्त्रियों को लक्ष्य करके 'मेला घुमनी' 'गंगा नहवनी' आदि पुस्तकें लिखी गई हैं। इसी प्रकार भूकम्प, कंट्रोल, मँहगी, बापू की हत्या, फैशन, बूढ़े का ब्याह आदि विषयों पर भी अनेक छोटी पुस्तकें लिखी गई हैं। इन पुस्तकों के रचयिता प्रायः अज्ञात हैं। इनके प्रकाशन का एक केन्द्र काशी तथा दूसरा छपरा है। काशी की भोजपुरी पुस्तकों के प्रकाशक गुलतूप्रसाद केदारनाथ, बुकसेलर, कचौड़ी गली, बनारस सिटी हैं।

भोजपुरी क्षेत्र के बाहर भोजपुरियों का सबसे अधिक केन्द्रीकरण कलकत्ते में हुआ है। कलकत्ते में प्रति रविवार को सहस्रों भोजपुरी धरमतल्ला के मैदान में 'ऑक्टरलोनी मॉनुमेण्ट' के पास एकत्र होते हैं। इस स्थान को वे 'मौनी मठ' कहते हैं। यहाँ वे कबड्डी,

---

1 नई धारा, वर्ष १, अधिक आषाढ़, २००७, जुलाई १९५०, पृ० ५०,

कुश्ती आदि खेलो से तो मनोरञ्जन करते ही है; किन्तु कुछ लोग भोजपुरी बिरहे, कजली, फाग और चैता आदि भी ऋतु के अनुसार गाते हैं। भोजपुरी क्षेत्रों में प्रचलित 'लोरिकी' 'सोभनयका' और 'सोरठी' आदि लोक-कथाओं को भी यहां लोग गाते हैं। यही कारण है कि अनेक भोजपुरी पुस्तको का प्रकाशन दूधनाथ प्रेस, सलकिया, हवड़ा से हुआ है।

ऊपर के दोनों प्रकाशकों में एक अन्तर यह है कि बनारस से प्रायः छोटी-छोटी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं; किन्तु हवड़ा से बड़ी-बड़ी पुस्तकों का प्रकाशन भी हुआ है। बनारस मे निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं—

१. झरेलवा झोलिया बहार
२. मैना की जतसार
३. पूरबी परी
४. चम्पा चमेली की बातचीत
५. गारी-मनोरञ्जन
६. बारहमासा
७. प्यारी सुन्दरी वियोग
८. सोरह सिंगार
९. सीताहरण
१०. नन्दी-भौजइया
११. बड़ी गोपाल-गारी
१२. भिखारी नाटक
१३. बापू का हत्याकाण्ड
१४. सोरठी का गीत
१५. सोरठी ब्रज-भार
१६. बिहुला-गीत
१७. सोभनयका बंजारा
१८. बनवारी गीत
१९. सास-पतोह का झगड़ा, आदि

इनमें से कुछ पुस्तकें बड़ी भी है। इनके अतिरिक्त बनारस से कजली की अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। जिनके प्रकाशक गुल्जूप्रसाद केदारनाथ, भार्गव पुस्तकालय, गायघाट तथा ठाकुरप्रसाद गुप्त बुक्सेलर, कचौड़ी गली आदि हैं। इनमें से अधिकांश १२ से १६ पृष्ठ तक की हैं। इनके नाम इस प्रकार हैं—

कजली की कटार, सावन का सिक्का, सावन का शौकीन, सावन का सोहर, पूरबी सवतिया झार, बनारसी बहार, पपिहरा बहार, कजली का नमस्ते, सावन का सुगना, सावन का साँप, सावन का लकड़ी सुँघना, सावन का सितारा, कजली का ककरेजा, कजली का दंगल, सावन के सुभाष आदि।

इस प्रकार की पुस्तकें बनारस से अत्यधिक संख्या में प्रकाशित होती रहती हैं। इन पुस्तकों के लेखक प्रायः हारमोनियम पर गाकर मेलों में इन्हें बेचते हैं और ग्रामीण लोग

उन्हें मनोरञ्जनार्थ खरीदते हैं। गाँवों में अन्य मनोरञ्जन के साधनों के अभाव में लोग इन्हीं गीतों को गाकर मनोरञ्जन करते हैं।

दूधनाथ प्रेस, हवड़ा से जो पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं वे जैसा कि पहले कहा जा चुका है, बड़ी हैं। इनमें से अधिकांश के लेखक बिहारप्रान्त के आरा जिले के निवासी बाबू महादेव-प्रसाद सिंह हैं। इनमें से कतिपय प्रसिद्ध पुस्तकों के नाम इस प्रकार हैं—

१. लोरिकायन
२. बिहुला-बिषहरी
३. बाला-लखन्दर
४. नयका-बंजारा
५. कुँवर विजयी
६. राजा ढोलन का गीत

ऊपर की अधिकांश वीरगाथाएँ गाँवों में गाई जाती हैं। इन गाथाओं के कथानक भी लम्बे हैं। इन्हें एकत्र करने की अपेक्षा बाबू महादेवप्रसाद सिंह ने इनके कथानक तथा छन्द को लेकर स्वयं रचना कर डाली है। आज आवश्यकता इस बात की है कि इन भोजपुरी गीतों को गवाकर डिक्टोफोन की सहायता से एकत्र करके इनका सम्पादन किया जाय। इस प्रकार के प्रामाणिक संस्करण से भारत के लोक-साहित्य की अभिवृद्धि होगी।

भोजपुरी गद्य

भोजपुरी पद्य की अपेक्षा उसका गद्य बहुत-कुछ अविकसित अवस्था में है। इसका एक कारण यह है कि आधुनिक युग में भोजपुरी क्षेत्र में शिक्षा का माध्यम हिन्दी भाषा है। अतएव इस क्षेत्र के साहित्यिक लोग ग्रन्थों के प्रणयन में हिन्दी-भाषा का ही प्रयोग करते हैं। किन्तु अभी भी पत्रादि लिखने में भोजपुरी का ही प्रयोग होता है। इधर स्वराज्य-प्राप्ति के पश्चात् विविध राजनीतिक दल अपनी विचार-धारा का प्रचार करने के लिए भी भोजपुरी को ही माध्यम बनाने लगे हैं और इस समय भोजपुरी क्षेत्र में कतिपय ऐसे समाचारपत्र प्रकाशित होने लगे हैं जिनमें हिन्दी के साथ-साथ दो-तीन पृष्ठ भोजपुरी के भी रहते हैं। इसके अतिरिक्त भोजपुरी क्षेत्र में दो-एक ऐसे पत्र भी प्रकाशित होने लगे हैं जो भोजपुरी में ही हैं। ऐसे पत्र बलिया, देवरिया तथा बक्सर से विशेष रूप से प्रकाशित होते हैं। यह तो हुई आधुनिक युग की बात। प्राचीन कागज-पत्रों में भी भोजपुरी गद्य के नमूने मिलते हैं। ये कागज-पत्र दानपत्र, एकरार-पत्र, बही खाता एवं पंचनामों तथा फैसलों के रूप में मिलते हैं। अपने निबन्ध 'भोजपुरी भाषा की उत्पत्ति और उसके विकास' के अध्ययन करते समय मुझे ऐसी विपुल सामग्री मिली है। संक्षेप में भोजपुरी गद्य का अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है—

१. प्राचीन कागज-पत्रों में सुरक्षित गद्य
२. आधुनिक पुस्तकों में प्रयुक्त गद्य
३. भोजपुरी लोककथाओं में गद्य

आधुनिक युग में भोजपुरी का प्रवर्त्तक महापंडित राहुल सांकृत्यायन को ही माना जा सकता है। यद्यपि राहुलजी के विराट् व्यक्तित्व की छाप हिन्दी-साहित्य पर है और उनकी

रचनाओं से प्रायः सभी शिक्षित लोग परिचित हैं तथापि अतिसंक्षेप में उनका परिचय दिया जाता है—

राहुलजी आजमगढ़ जिले के कनैला गाँव के निवासी हैं। यह गाँव आजमगढ़ जिले में स्थित चिरैया कोट थाने के दो-तीन मील दक्षिण की ओर है। यहाँ के बोल-चाल की भाषा पश्चिमी भोजपुरी है। बाल्यावस्था में ही अपने गाँव को छोड़कर राहुलजी संस्कृत पढ़ने के लिए काशी चले आये और वहाँ से वे सारन जिला के एकमा मठ के महन्थ के शिष्य होकर चले गये। सारन जिले की भोजपुरी आदर्श भोजपुरी है। वस्तुतः इसी भोजपुरी को, मातृभाषा न होते हुए भी, राहुलजी ने ग्रहण किया। तदनन्तर उनके जीवन में महान् परिवर्तन हुआ। उन्होंने बौद्ध-धर्म को अपनाया और सिंहल जाकर पालि भाषा का गम्भीर अध्ययन किया। इसके बाद उन्होंने तिब्बत की कई बार यात्राएँ कीं और वहाँ से तिब्बती भाषा के ज्ञान के अतिरिक्त भारत से गई हुई अनेक संस्कृत-पुस्तकें भी अपने साथ लाये। उन्होंने जापान, चीन, रूस तथा यूरोप की भी यात्राएँ कीं और लेनिनग्राड के विश्वविद्यालय में उन्होंने संस्कृत-अध्यापन का कार्य भी किया। हिन्दी में उन्होंने विज्ञान, पुरातत्त्व, धर्म, दर्शन, इतिहास, यात्रा, उपन्यास, कहानी आदि सम्बन्धी अनेक ग्रंथों की रचना की। अब भी उनकी लेखनी अबाध गति से विभिन्न विषयों पर चल रही है।

राहुलजी अनेक भाषाओं के ज्ञाता हैं तथापि वे ठेठ भोजपुरी के भी उसी प्रकार के सफल लेखक हैं। वे भोजपुरी में धारावाहिक रूप से भाषण देते हैं और उसी रूप से वे भोजपुरी गद्य भी लिखते हैं।

सन् १९४७ ई० में गोपालगंज, जिला सारन, में भोजपुरी-साहित्य-सम्मेलन का जो अधिवेशन हुआ था उसके वे सभापति थे। भोजपुरी की गतिविधि पर विचार करते हुए उन्होंने अपने भाषण में जो-कुछ कहा था उसका एक अंश नीचे उद्धृत किया जाता है। इससे स्पष्ट हो जायगा कि राहुलजी का जीवन जितना सरल और अकृत्रिम है वैसी ही उनकी भोजपुरी भी ठेठ और अलंकार-हीन है। इसमें ग्रामीण मुहावरों के प्रयोग के कारण जो सरसता आ गई है उसका आनन्द भोजपुरी-भाषा-भाषी ही ले सकते हैं। आपके भाषण का अवतरण इस प्रकार है—

"हम ई नइखी कहत कि हिन्दुई ना पढ़ावल जाइ। जे बेसी पढ़े चाहता, जे महटर, ओकील, डाकदर, इ जियर चाहे बड़का अमला फइला बने के होखे ओकरा हिन्दुई पढ़े के चाहीं। बड़का विद्या खातिर हिन्दुई पढ़ल जरूरी बा। बाकी सब लोग त ई कुलि दरजा खातिर तइयार नाहु कइल जाला·········जेकरा ओतना समरथा होई से ओतना पढ़ी, लेकिन देसवा के समूचा लोग घर अउर गाँव के एक-एक बेकत ओतना ना पढ़ सकेला।"

ऊपर के अवतरण में हिन्दी को 'हिन्दुई', मास्टर को 'महटर', डॉक्टर को 'डाकदर' लिखा गया है। ग्रामीण जनता इन शब्दों को इसी रूप में प्रयोग करती है। राहुलजी ने अपने भाषण को इस रूप में लिखा है कि उसे अपढ़ भोजपुरी जनता भी समझ ले।

इसी भाषण से एक दूसरा उदाहरण लें—

"कतना लोग इ कहला से बिदकत बा। होने पछिमहा लोग कहता, कि दिली से देवरिया ले हमनी के हेतना बड़ी चुके राज छोट हो जाई। ऊहे बात एने बिहारों में कहल जात बा। लोग

समझत बा कि ईहो एगो जिमीदारी हवे। जो इ छोट भईल त नेतागिरियो छोट हो जाई, बाकी इ मन के भरमना ह।"

श्रीअवधविहारी 'सुमन'

आप शाहाबाद जिले के अन्तर्गत बक्सर के पास के निवासी हैं। आप हिन्दी के अच्छे कवि और लेखक हैं; किन्तु आप भोजपुरी के भी सफल कहानी लेखक हैं। श्रीसुमनजी का सम्बन्ध विहार की 'किसान-पार्टी' से है। इधर हाल में ही भोजपुरी में 'जेहल क सनदि' नामक आपकी कहानियों का एक संग्रह प्रकाशित हुआ है। इस संग्रह में निम्नलिखित दस कहानियाँ हैं— (१) मलिकार, (२) आतमघात, (३) मौनीबाबा, (४) कतवारू दादा, (५) किसान भगवान, (६) चउर क पूजा, (७) सनकी, (८) दफा ३०२, (९) जेहल क सनदि और, (१०) कवि कयलास।

इन कहानियों की भाषा प्राञ्जल तथा सरल भोजपुरी है। इनके द्वारा भोजपुरी जनता की ठसक, रोवदाब तथा राग-द्वेष आदि को यह पहली बार अपनी वाणी का उचित परिधान मिला है। आपकी प्रथम कहानी 'मलिकार' का कुछ अंश नीचे उद्धृत किया जाता है—

"सेवक दादा तोहरा नियर धीर पुरुष का घवड़ाए के ना चाही। दुख में घवड़इला से कवनो फायदा न होखे। दुख का समय के हँसी-खुशी से कटले के मोल ह। विपति का आगि में झाकि के जे अकुताइल ऊ अउरी बोमते जाई। फिकिरि का साँपिनि से सजग होइके ना रहला पर जिनिगी से हाथ धोवे के परेला। दुनियाँ में सभ रोग क दवाई बा, बाकी एकर कवनो दवाई नइखे।

अपना लँगोटिया इयार धरमदेव का मुँह से धीरज देवेवाली आइसन बाति सुनलो पर दादा का दुख क लहरि कम न भइल। विपति क वरसाति उनकरा जिनिगी के नरको से बेहज बनाइ देले रहे। बुढ़ौती का भादों में दुख क करिया बदरिन से आँखि का आगा अन्हार छवले रहे, कुछ न लौके। दादा फिकिरि से धाही होई के खटिया पर गीरल भगवान से मउवति माँगत रहस।

दादा का जिनिगी क नाइ चकोह में परल देखि के गाँव भा जवार क जानपहचानी साथी, हीत आ मयवर, सभ उनकरा से भेंट करे खातिर कले-कले पहुँचत रहे। फरका ले त सभ आपन करेज पोढ़ कइके इहे सोचत दादा किहें पहुँचे कि उनकरा के धीरज आ सबुर देईं, बाँकी फूस का पलानी में पहुँचि के छुटहा बँसहट पर दादा का सूखल ठटरी आ सेवा-सुस्रा देखते इस-पातो क बनल करेजा मोमि होइ के पघिलि जाय आ आँखि-पवे बहि के बहरा चलि आवे।"

सुमन की भाषा सरल तथा टकसाली भोजपुरी है। इसमें मुहावरों के उचित प्रयोग के अतिरिक्त पर्याप्त गति एवं शक्ति है। इधर अपने मित्र श्री फा.राय विशारद के साथ सुमनजी बक्सर से 'कृषक' नामक एक साप्ताहिक पत्र भी निकालते हैं। यह पत्र विहार के प्रसिद्ध किसान नेता स्वर्गीय स्वामी सहजानन्द की यादगारी में प्रकाशित होता है। इसके सम्पादकीय लेख श्री 'सुमन' जी ही लिखते हैं। इसके वर्ष १, अंक १, ता० १३ जनवरी, सन् १९५१ के सम्पादकीय का एक अंश नीचे उद्धृत किया जाता है। इससे भोजपुरी गद्य की शक्ति का सहज ही में अनुमान किया जा सकता है—

सरकारी दिमाग के देवाला

आज से करीब दूइ-अढ़ाई महीना पहिले शाहाबाद जिला संयुक्त किसान सभा का ओर से चेतावनी के ऐगो लमहर अपीलि निकालि के शाहाबाद का कलकटर का २५ अकटूबर का बयान के परदा फास कइल गइल रहे कि 'आरा में अकाल के हालति नइखे।' एकरा उलटा किसान-सभा के कहनाम रहे कि जिला का नहरि-इलाका के सत्तरि फी सदी खेत मोवार हो गइलनि स। आरा जिला अकाल का मुँह में जा रहल बा। पहिले त केहू कानि ना कइल लेकिन पाछे सभ लोग दबी जबान से एह किसिम के गोल मटोल बात कहे शुरू कइल। असल कारन रहे कि साँच बाति कबले तोपाइति। अकाल डंकि-डोंक गोहरावे लागल। भूखमरी के राछिनि सभ का लीले खातिर मुँह बवले दउरि पइलि। किसान सभा एकरा खातिर जगहि-जगहि सभा कइ के जनता के भूखमरी से बचावे के कोसिस कइल चाहति बा, त सरकार के इनरासन डोले लागत बा। सभा-जलूस के हुकुम नइखे। कहे खातिर त नयका विधान में जेकरा के रामराज के विधान कहल जात बा, १६ वीं धारा का मोताबिक सभा-जलूस करे आ यूनियन सभा संगठन बनावे के जायज हक बा; लेकिन ई बाति सोरहो आना बनावटी बाटे। हाथी का दूइगो दाँत होखेला, एगो खायेवाला आ दूसर देखावेवाला।

भोजपुरी लोक-कथाओं में गद्य

भोजपुरी लोक-कथाओं में भी गद्य का सुन्दर नमूना मिलता है। दुख की बात यह है कि अभी इन कथाओं का पूर्णरूप से संग्रह ही नहीं हो पाया। ये कथाएँ बालकों के मनोरञ्जनार्थ घर के बूढ़े पुरुष अथवा बूढ़ी स्त्रियाँ कहती हैं। उसका प्रधान लक्ष्य उपदेश देने का होता है; किन्तु कभी-कभी विनोदार्थ भी ये कथाएँ कही जाती हैं। भोजपुरी में इन्हें 'कहनी' भी कहते हैं। नीचे एक कथा 'भोजपुरी पत्रिका' वर्ष १, अंक १, संवत् २००५, पृष्ठ ३६ से उद्धृत की जाती है —

"भरल नाव समुद्र में डूब गइल! कवनो आदमी के दोस त रहे ना। तूफान में नाव भराइल। बैपारी हाय-हाय करे लागल। फेर सोचलस कि एह जनकजी का राज में समुन्दरो दोसरा के माल कैसे पचावे पाई। आज तक ना अन्याय भइल रहे, ना बैपारी जनकजी का दुआरे गइल रहे। जब पूछत-पूछत झोंपड़ी के पता लागल त पहिले विश्वास ना भइल कि एतना बड़ा ज्ञानी राजा के घर ऐसन हो सकेला। दुआरी पर रानी के गुदड़ी सीअत देखके त अचरज का समुन्दर में नावे खानी खुदो बैपारी डूब गइल। पूछला पर पता लागल कि राजा जनक जी हर चलावे खेत गइल बाड़े। बेचारे जब उहाँ पहुँचल त हुकुम मिलल कि मन्त्री से मिल। खोजत-खोजत मन्त्री मिललन त सब दुखड़ा रोके बैपारी पूछलन कि दुनियाँ के मालिक रौरा लोगन तेकरं घर पूछे के पड़ता? मन्त्रीजी कहले कि जब कहीं चोरीचमारी भा कवनो जुलुम हो ते नइखे त हमनीं के के पूछो। फेर बैपारी पूछलस कि राजा हर चलावतारे, रौरा घास गढ़तानी। बैठल माल नु चाभेला? मन्त्री ठठा के हँसले कि सवुर कर, ऐसनो जवाना आई कि राजा-मन्त्री त राजा-मन्त्री, मामुली दारोगा आ कन्ट्रोल अफिसर भी राजकरी आ कमाए वाला किसान-मजूर भूखे मरी, नीच गिनाई। खैर, सभा में एक राय से समुंन्दर से पूछे के तय भइल त समुन्दरो का नाव लौटा के आपन कान पकड़े के पड़ल।"

नाटक

१ रविदत्त शुक्ल—आपने 'देवाक्षरचरित' नामक नाटक की रचना की है। आप उत्तरप्रदेश के बलिया जिले के निवासी थे जहाँ की भाषा भोजपुरी है। रविदत्त की यह कृति सम्भवतः भोजपुरी नाटकों में सर्वप्रथम रचना है। इस नाटक की रचना सन् १८८४ ई० में हुई थी। यह हास्यरस-प्रधान नाटक है। इसकी चर्चा ग्रियर्सन ने अपने 'लिंग्विस्टिक सर्वे ऑव इण्डिया', भाग ५, पार्ट २, पृ० ४८ पर भी किया है। इसकी एक प्रति नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी के 'आर्य-भाषा पुस्तकालय' में सुरक्षित है।

यह नाटक बलिया के जन-प्रिय कलक्टर डी० टी० रॉबर्ट्स की उपस्थिति में रामलीला के अवसर पर खेला गया था। सन् १८८४ में बलिया के डिप्टी कलक्टर चतुर्भुजलाल की प्रेरणा से यह नाटक लिखा गया था। इसके पूर्व बलिया गाजीपुर की एक तहसील था, किन्तु इसी वर्ष एक स्वतंत्र जिला बना था। यही कारण है कि लोगों में बड़ा उत्साह था और इस नाटक को खेलने के लिए तथा रंगमंच का प्रबन्ध करने के लिए दूर-दूर से लोग बुलाये गये थे।

इस नाटक का नाम 'देवाक्षर-चरित' है। जिसका अर्थ है 'देवताओं के अक्षर' अर्थात् देवनागरी लिपि का चरित। किस प्रकार देवनागरी लिपि संस्कृत लिपि से उत्पन्न हुई है, इसका महत्त्व क्या है, इसकी उपेक्षा किस प्रकार हो रही है। इन्हीं विषयों का प्रतिपादन अत्यन्त सुन्दर ढंग से इसमें किया गया है।

नागरीलिपि के महत्त्व का प्रतिपादन तथा उसका प्रचार ही वस्तुतः इस नाटक की रचना का मुख्य उद्देश्य है। उन दिनों कचहरियों में फारसी लिपि का इतना अधिक महत्त्व था कि नागरी लिपि घृणा की दृष्टि से देखी जाती थी। फारसी लिपि से क्या हानि है, इसकी ओर संकेत करता हुआ नाटककार अपने एक पात्र से कहलवाता है[1] —

"दोहाई साहब के, सरकार हमनी के हाकिम और माँ-बाप का बराबर हईं; जो सरकार किहों से निआव ना होई तो उजड़ि जाब। देखीं, जवन ई फारसी के खानापुरी होत बाय, एसे बड़ा उपद्रव मची। हमरा सीर के सरहसब्यन लिखल गइल बा।"

इस नाटक में कुल छः अङ्क हैं और पृष्ठों की संख्या ४७ है। इसके तीसरे और चौथे अङ्क ही भोजपुरी में हैं, शेष नाटक खड़ी बोली में लिखा गया है। जिस समय इस नाटक की रचना हुई थी, उस समय बलिया में सर्वे का काम चल रहा था। सर्वे के काम करनेवाले हाकिम मनमाना रिश्वत लेते थे। इस सम्बन्ध में इस प्रहसन में स्थान-स्थान पर उल्लेख है। एक स्थान पर एक पात्र कहता है[2] —

"कह बुद्धन सिंह, हमरा के ना चीन्हत बाड़। हम उहे हईं जौन तोहरा के बीमार के दिन कोठिया पर एक रुपया इनाम देले रहलीं। भाई, बिरादर होय के रउआँ के ऐसन बेमुरौअती ना चाहीं। खातिर जमा रखीं, हमार काम सिद्ध होय जाय तो फिर रौआँ के खुश कर देब।"

नाटककार ने कहीं-कहीं ठेठ किन्तु मुहावरेदार भोजपुरी लिखने का प्रयोग किया है। एक ग्रामीण कहता है[3] —

---

१ देवाक्षरचरित अंक, ४, पृ० २१-२२

२ वही, पृ० २१

३ पृ० वही, १६

"रउवा रुपयावाला बाटीं, अदालत लड़ब, पै हमन पाँच के तो एक जून पेटभर खहुके ठिकाना नाहीं बाय, अदालत कहाँ से लड़ब। पहिले एक कवर भीतर, तब देवता और पितर। एक ओर भगवानों के कोप हमरन पर बा कि कई साल से सूखे पड़ल जात बाय। उ कहावत ठीक जान पड़ेला कि निबलन के दैबो सतावेले।"

अब एक दूसरा उदाहरण लें। यह रावर्ट साहब, जिलाधीश, को लक्ष्य करके कहा गया है [1]—

"घबड़ो मत, सुनली हों कि आजकल एक जिला के हाकिम बड़ा दयावान और इन्साफवर आइल बाटें। रइयत के गोहार सुनले निआव कै के दूध के दूध औ पानी के पानी कय देलें। से हमनी हुजूई के सपर के चलल बाटीं।"

"देवाक्षर-चरित' का इस दृष्टि से और भी महत्त्व है कि आज से ७० वर्ष पूर्व इसके लेखक ने नागरी अक्षरों को उचित स्थान दिलाने के लिए उद्योग किया। भाषा की दृष्टि से भी इसके तीसरे या चौथे अंक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं; क्योंकि इनमें बोल-चाल की भोजपुरी का नमूना दिया गया है।

२ भिखारी ठाकुर—आपका परिचय अन्यत्र दिया जा चुका है। भोजपुरी नाटककारों में आपका एक विशेष स्थान है। आपका 'विदेसिया नाटक' भोजपुरी समाज में अत्यन्त लोकप्रिय एवं प्रसिद्ध है। इसकी लोकप्रियता का इसीसे अनुमान किया जा सकता है कि इसके अनुकरण पर अनेक विदेसिया नाटकों की रचना हो गई है और गाँव-गाँव में इस नाटक को खेलने-वाली मण्डलियाँ हैं। हाँ, यह बात दूसरी है कि शिष्ट-समाज इन नाटकों के ग्राम्य-दोष का अनुभव करके इससे नाक-भौं सिकोड़ता है। 'विदेसिया नाटक' में विरह एवं सामाजिक बुराइयों, जैसे बूढ़े का ब्याह, दहेज की कुप्रथा आदि का ही विशेषरूप से चित्रण हुआ है। इसमें हास्यरस की मात्रा भी अधिक रहती है। इसकी भाषा ठेठ भोजपुरी है और इस नाटक के अभिनय के समय जनता की भीड़ को सँभालने के लिए विशेष प्रबन्ध की आवश्यकता पड़ती है। भिखारी ठाकुर केवल नाटककार ही नहीं हैं, अपितु आप एक सफल अभिनेता भी हैं।

३ राहुल बाबा—बौद्ध होने के पूर्व श्रीराहुल सांकृत्यायन भोजपुरी क्षेत्र में, विशेषतः सारन जिले में, वैष्णव साधु के रूप में राहुल बाबा के नाम से प्रसिद्ध थे। इन्होंने भोजपुरी में निम्नलिखित आठ नाटकों की रचना की है—

१ नइकी दुनिया, २ ढुनमुन नेता, ३ मेहरारुन के दुरदसा, ४ जोंक, ५ ई हमार लड़ाई, ६ देसरच्छक, ६ जपनिया राछ्छ, ८ जरमनवा के हार निहचय। राहुलजी साम्यवादी हैं; अतः इन नाटकों की रचना का मुख्य उद्देश्य जनता में साम्यवाद का प्रचार है। ये सभी नाटक सन् १९४२ में भारत के स्वतंत्र होने से पूर्व लिखे गये थे।

१ नईकी दुनिया[2] —इस नाटक में चार अंक तथा ४० पृष्ठ हैं। आद्यन्त यह नाटक भोजपुरी में लिखा गया है। इसकी भाषा ठेठ भोजपुरी है। राहुलजी मुहावरेदार भोजपुरी लिखने में अत्यधिक प्रसिद्ध हैं। 'नइकी दुनिया' में साम्यवाद का पूर्णरूप से प्रचार हो जाता है। न तो जात-पाँत का कुछ विचार रह जाता है और न ऊँच-नीच का खयाल ही। सब लोग सहभोजी हो जाते हैं और सभी जातियों में पारस्परिक शादी-ब्याह होने लगता है। रूस की तरह

---

१ देवाक्षर चरित पृ० २०

२ प्रकाशक, किताब-महल, इलाहाबाद

सम्मिलित खेती होती है और सब लोग सुख-समृद्धि से रहने लगते हैं। पुराने गाँव का नाम बदलकर लेनिनपुर रख दिया जाता है। सब लोग एक दूसरे को साथी कहकर पुकारते हैं। प्रत्येक गाँव में बिजली का प्रकाश हो जाता है और सभी लोग आनन्द-पूर्वक जीवन व्यतीत करने लगते हैं। लेखक ने कई स्थानों पर गाँधीवाद की निस्सारता सिद्ध करके साम्यवाद की स्थापना के लिए जनता को प्रेरित किया है। उसका विश्वास है कि साम्यवाद की स्थापना से ही संसार का कष्ट दूर होगा। 'गुड मॉरनिंग', 'गुड ऑफ्टर-नून', 'गुड ईवनिंग', और 'गुड नाइट' को नाटक-कार ने भोजपुरी में 'सुन्नर-सवेर', सुन्नर-दुपहर' 'सुन्नर-साँझ' और 'सुन्नर-राति' के रूप में अनूदित किया है।

'नइकी दुनिया' के कार्य-कलाप से पुरानी विचारधारा के लोग कितने अप्रसन्न हैं। इसका सुन्दर चित्र नाटककार ने चौथे अंक में खींचा है। यहाँ से कुछ अंश उद्धृत किया जाता है—

['जगरानी, रामदेव सिंह, बिसुनदेव प्रसाद और रमेसर तिवारी चारों बूढ़ एगो गाछ के छाँह में कुरसी पर मेच के सामने बइठि के चाय पी रहल बाड़न][1]

जगरानी—हमनी के पुरनकी दुनिया से लड़कन के ई नइकी दुनिया कइसन निम्मन बा रामदेव बाबू!

रामदेव—का निम्मम बा? एकनी के बोलहू के लूर नइखे। छोट-बड़ किछुओ न जाने, सबके 'साथी' 'साथी' कहैलें। एनकरा खातिर सने धान बाईस पसेरी। होऊ न देख सुखरिया चमरा के, ऊ लेनिनपुर के मालिक बनल बा!

जगरानी—मालिक नइखे रामदेव बाबू। सरपंच हवे।

रामदेव—उहे एकूके बाति हा। पचास पुहुति से हमार खनदान परसा में राज करत चलि आइल। हमरा के लोग कहत रहे, बाबू रामदेव परसाद नरायन सिंह। जब गढ़ से निकलत रहनीं, त बीस गो मोसाहिब, आ पट्ठा जवान पाछे-पाछे चलें। परस के ऊ बाजार कहाँवा, अब त कुलि पंचइतिया अपना हाथ में ले लेहलस।

जगरानी—मुदा पहले परसा में रोजिना पँच-पँच से रुपया के सेव-अँगूर ना नु बिकत रहे। आज देखी नु पँचमहला मकान में कैसे तरह के चीज सजाय के राखल बा। मोलो-भाव करैके काम नइखे, दाम लिखि के कागज साटल बा।

रामदेव—ई सेव-अंगूर चमार-सियार के मुँह में जाये लायक हल? हमनी के राज में साँवा-मुँड़ुवा आध पेट मिलत रहल, आ, अब देखा उहे सुखरिया चमार लेनिनपुर के—नाहीं हमनी पुरन के नाँव राखल जाई एकमा-मुइली के मालिक भइल बा!"

नाटक के अन्त में रूस के 'कम्युनिस्ट-इण्टर-नेशनल गीत' का निम्नलिखित अनुवाद दिया गया है—

'उठु-उठु रे तैं सुखबन्हुआ, उठु रे धरती के अभगवा।
बा न्याव बजर घहरावल, अनमन बढ़िया संसरवा।
पुरबिल मेंसु नहीं बान्हो, उठु रे अब-नाहिं तैं बन्हुआ।
नइ नेंव उठत बा जागवा, ना रहलँ अब सब छोड़वे।
आ जुटहु संघतिया समुहे, ई आखिरि बेर लड़इया।"

[1] 'नइकी दुनिया', पृ० ३४

२ डुनमुन नेता—यह नाटक पाँच अंकों तथा ४४ पृष्ठों में समाप्त हुआ है। नाटक के नायक डुनमुन सिंह कॉंग्रेसी नेता हैं; किन्तु उनका कोई सिद्धान्त नहीं है। वे स्वयं एक छोटे-मोटे जमींदारों में से हैं। वोट (मत) लेते समय तो वे किसानों और मजदूरों की दोहाई देते हैं; किन्तु कॉंग्रेस-मंत्रिमण्डल की स्थापना हो जाने पर वे जमींदारों का पक्ष लेने लगते हैं। नाटक का सम्बन्ध बिहार से ही है जहाँ पर बकाश्त जमीन को लेकर बड़े उग्र रूप में स्व० स्वामी सहजानन्द के नेतृत्व में जमींदारों के विरुद्ध लड़ाई हुई थी। राहुलजी ने स्वयं इस लड़ाई में भाग लिया था। अतएव प्रकारान्तर से उन्होंने तत्कालीन बिहार की दशा का सुन्दर चित्रण इस नाटक में किया है।

इस नाटक में हरपाल महतो डुनमुन सिंह के प्रतिद्वन्द्वी हैं, वे कम्युनिस्ट हैं और बार-बार गाँधीवाद तथा गाँधीजी के सिद्धान्तों का विरोध करते हैं। किसान-मजदूर-राज्य एवं कम्युनिस्ट पार्टी का पूर्णरूप से समर्थन किया गया है। हरपाल महतो इस सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुए कहते हैं—

"आज रूस के जीति, लाल पलटन के जीति के मतलब हवे, समुच्चा दुनिया में मजूर-किसान के बल बढ़ुन। रूस में मजूर-किसान के राज हुनिये के न हमनी के 'किसान-मजूर-राज कायम हो' चिल्लाये लगलीं। जौना दिन दुनिया के ६ हिस्सा में से एक हिस्सा रूस से किसान-मजूर-राज उठि गइल, आ जरमन जपान रजुअवन के झंडा गड़ल, ओही दिन 'किसान-मजूर-राज कायम हो' कहला के सजाय हो जाई गोली।"

३ मेहरारुन के दुरदशा—यह नाटक भी चार अंकों एवं ४० पृष्ठों में समाप्त हुआ है। जैसा कि पुस्तक के नाम से प्रकट है कि इसमें स्त्रियों की दुर्दशा का वर्णन है। लेखक ने इसमें साम्यवादी दृष्टिकोण से स्त्री-पुरुष के समान अधिकार पर विचार किया है। युग-युग से पुरुषजाति ने स्त्रियों पर जो अत्याचार किया है उसका सुन्दर चित्रण इस नाटक में नाटककार ने किया है। इस नाटक में स्त्री-स्वातंत्र्य के लिए उन्हें पिता की जायदाद में भी भाग मिलने के लिए वकालत की गई है। इस विषय में रूस का उदाहरण भी दिया गया है। इस नाटक में आद्यन्त स्त्रियों की आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक दुर्दशा का सुन्दर चित्रण किया गया है। स्त्री और पुरुष के भेदभाव की ओर ध्यान आकृष्ट करती हुई सीता कहती है—

"देखा तु हमार माई बाबूजी से कम नाहु खटेले। बाबूजी दस बजे से चारि बजे लें छ घंटा इसकूल में पढ़ावे जालें, आ माई तु घरी रात रहते तवे से उठि के आधी रात ले रसोई, चौका-बासन, कूटल-पीसल केतना काम करत रहेले, बाकी बाबूजी के छ घंटा पढ़ावल काम समुझल जाला, माई के अठारह घंटा खटल, कौनो गिनती में ना हवे।"

४ जोंक—इस नाटक को राहुलजी ने ११, १२, जुलाई, सन् १९४२ में हजारीबाग (बिहार) जेल में लिखा था। इसमें भी आपने साम्यवादी सिद्धान्तों का ही प्रतिपादन किया है। इस नाटक में समाज के जितने शोषण करनेवाले लोग हैं, जैसे जमींदार, साहुकार, राजा, महराजा, उन सबकी पोल खोली गई है और गरीब किसानों की वास्तविक दशा का चित्रण किया गया है। पटवारी जमींदार के लिए किसानों का किस प्रकार शोषण करता है, इसका एक उदाहरण इस नाटक से नीचे दिया जाता है। यह चार अंकों तथा ४२ पृष्ठों में समाप्त हुआ है।

[गाँव के पटवारी सिरतन लाल टोपी, मिरजई पहिरले, कान में कलम खोंसले अइले।] [1]

---

[1] जोंक पृ० ६, किताब-महल, इलाहाबाद

राहुलजी ने स्त्रियों को सर्वतंत्र - स्वतंत्र कर देने की सिफारिश की है तो अपने 'उल्टा जमाना' में चौबेजी ने स्त्रियों को उच्चशिक्षा देने का विरोध किया है। आपके अनुसार स्त्रियों की शिक्षा रामायण के पठन-पाठन तक सीमित रहनी चाहिए। इस नाटक से कुछ अंश नीचे उद्धृत किया जाता है—

"बुधिया—देखs रउरों, जबलेक सउजी अदिमी मनमारि के अपनी कान में नाईं लगिहें तबलेक ईहे दसा रही। आजु-काल्हि चतिये ढेरि होतिआ। पढ़इओ में खइले - पहिरला क बाति बा। बुधिगियान खातिर केहू नइखे पढ़त। तब्बे दुनियाँ में ओइसन अठल बा। ए से त नीक ईहे बा जे अपनी-अपनी घरें बेटी-पतोहि थोरे-थोरे पढ़ि के धरम-विचार से आपन कल्-याम करें।

बड़का—त लइकओ बलुक घर ही पर तनी-मनी पढ़ि के काम-काज करतें। ई काहे के सब पइसा फूँकता।

समरजिया—लइकवन क बाति दूसरि बा ए बड़का। कहो गियान खातिर नइखें पढ़त। चारि अच्छरि अँगरेजिया पढ़ि लिहला पर नगद नोकरी मीलि जाति बा। एही से त सब अपनी लइकन के अँगरेजिये पढ़ावे चाहता।

बुधिया—बाई न बिसुनाथ बाबू क लइका माञ्झी नारत। इलाहाबाद से पढ़तें हैं आ घरहीं आके ठेकान लागल ह। नोकरियो कवनो हँसी-खेलि नइखे। अब ऊ जमाना गइल।

समरजिया—ई काहें नाहीं सब दुसरे पढ़इआ पढ़ता। पुरनकी पढ़इया बलुक नीकि रहे।"

पुस्तक में लेखक ने मुहावरों एवं कहावतों का प्रयोग किया है। यथा—

'एकर भतीजा ईहे मीलना कि धोबी क कुक्कुर न घर क न घाट क' [1] 'मारत-मारत अदिमी उनक हलुआ निकारि घलतें'; [2] 'उर्दों क भाव पूछे बनरर ह पसेरी'; [3] 'सउजी कुक्कुर गंगें नहइहें त हाँड़ी के ढूँढ़ी'; [4] 'काल्हि क बाति सूनि के भाई त ज्ञान-पगहा तुरावति आ'; [5] 'काम करत क नानी मरी, बाकी खाये के सबेराहे चाही'। [6]

भोजपुरी-साहित्य के इस संक्षिप्त परिचय के बाद आगे भोजपुरी का व्याकरण दिया जायगा तथा इस खण्ड के अन्त में परिशिष्ट के रूप में पुराने कागजपत्रों में सुरक्षित एवं इसकी विभिन्न बोलियों में उपलब्ध भोजपुरी गद्य के नमूने दिये जायेंगे।

---

१. उल्टा जमाना पृ० ४
२, ३. वही, पृ० ५
४, वही, पृ० ६
५, ६. वही, पृ० ७

द्वितीय खंड

व्याकरण

ध्वनि-तत्त्व

पहला अध्याय

ध्वनि

१ आगे आदर्श भोजपुरी के स्वरों तथा व्यञ्जनों के उच्चारणस्थानादि का पूर्ण विवरण दिया जाता है। वस्तुतः यह बलिया की आदर्श भोजपुरी का ही विवरण है; क्योंकि यही लेखक की मातृभाषा है।

२ भोजपुरी की मुख्य ध्वनियाँ, तालिका १ (क) तथा (ख) में दी गई हैं।

भोजपुरी ध्वनियाँ

तालिका १

(क) व्यञ्जन

	द्वयोष्ठ्य	दन्त्य	वर्त्स्य	मूर्द्धन्य	तालव्य	कंठ्य	स्वरयन्त्र-मुखी
स्पर्श अल्पप्राण	प् ब्	त् द्		ट् ड्		क् ग्	
,, महाप्राण	फ् भ्	थ् ध्		ठ् ढ्		ख् घ्	
घृष्ट्य अल्पप्राण					च् ज्		
,, महाप्राण					छ् झ्		
अनुनासिक अल्पप्राण	म्		न्		ञ्	ङ्	
,, महाप्राण	म्ह्		न्ह्			ङ् ह्	
पार्श्विक अल्पप्राण			ल्				
,, महाप्राण			ल्ह्				
लुंठित या कंपनजात अल्पप्राण				र्			
,, महाप्राण				र् ह्			
ताड़नजात या उत्क्षिप्त अल्पप्राण				ड़			
,, महाप्राण				ड़् ह् (ढ़)			
संघर्षी			स्				ह्
अर्द्धस्वर	व				य		

(ख) स्वर

	अग्र	मध्य	पश्च
संवृत	इ, ई		उ, ऊ
अर्द्ध संवृत	ए, ए		ओ, ओ
अर्द्ध विवृत	ऍ	ऑ	अ अ
विवृत	आ	अ	

तालिका २

भोजपुरी स्वर
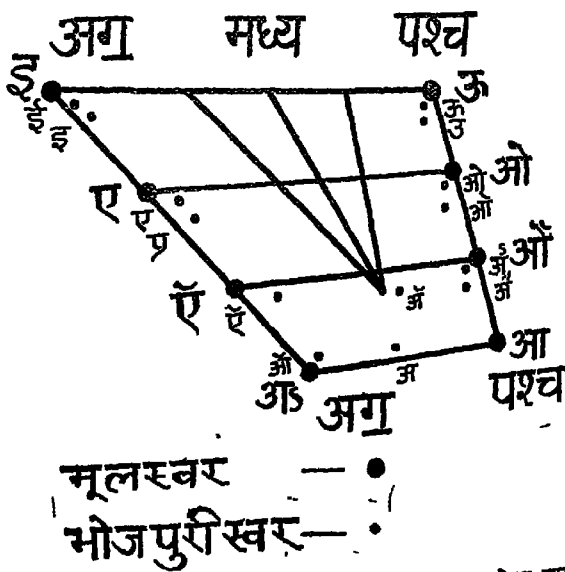
२ ऊपर की तालिका में भोजपुरी स्वरों का निश्चित स्थान दिखलाने का प्रयत्न किया गया है। यहाँ भोजपुरी स्वरों के उच्चारण में जिह्वा के स्थान की तुलना मूल स्वरों

(cardinal vowels) के उच्चारणस्थान से की गई है। इस तुलना से उनका स्थान बहुत-कुछ स्पष्ट हो जाता है।

ध्वनियों का विशेष विवरण

[क] स्वर

§४ संस्कृत-उच्चारण में 'अ' तथा 'आ', इन दो ध्वनियों का व्यवहार होता है; किन्तु भोजपुरी में इनके पाँच उच्चारण वर्तमान हैं। इन्हें स्पष्ट करने के लिए क्रमशः ह्रस्व [अ], ह्रस्व [ऑ], दीर्घ [आ], ह्रस्व विलम्बित [।अ] तथा दीर्घ विलम्बित [ऽअ] कहा जा सकता है।

भोजपुरी ह्रस्व [अ] पश्चिमी हिन्दी के 'अ' के समान विवृत नहीं है। इसका झुकाव बँगला [অ] की ओर है। बंगला [অ] का उच्चारण वर्तुल होता है, भोजपुरी [अ] उतना वर्तुल नहीं होता; किन्तु जब दीर्घ रूप में इसका उच्चारण होता है तब यह विलम्बित हो जाता है। यथा —

                                   ।   ।   ।
अचार; अकिलि, अक्ल; दस या दस, दश; बस या बस, पूर्ण, घर या घर आदि।

भोजपुरी दीर्घ [आ] के उच्चारण में जीभ का मध्य भाग बहुत थोड़ा ऊपर उठना है। यह वास्तव में केन्द्रीय स्वर है; किन्तु अंग्रेजी [a] के इतना यह विवृत नहीं है। इसके उच्चारण में होंठ वर्तुलाकार नहीं होते।

ह्रस्व [ऑ] का उच्चारणस्थान दीर्घ [आ] की अपेक्षा किंचित् ऊपर है। इसके उच्चारण में जीभ का ठीक मध्य भाग ऊपर नहीं उठता, किन्तु मध्य तथा पश्च भाग का बिचला हिस्सा ही ऊपर उठता है।

दीर्घ [आ] के उदाहरण निम्नलिखित हैं—

आजु, आज ; आम्; ; आन्हर , अंधा ; आगाँ, आगे ; आरा, लकड़ी चीरने का एक औजार ; लोटा , जलपात्र , आदि।

ह्रस्व (ऑ) मॉरलै 'मारा', पॉरलै आदि में मिलता है।

विलम्बित दीर्घ [ऽअ] के उच्चरण में जीभ का पिछला भाग तालु के मध्य भाग की ओर उठता है। उसका स्थान मूल स्वर, संख्या ६, से तनिक नीचे है। इसके उच्चारण में होंठ किंचित् गोलाकार रूप धारण कर लेते हैं।

विलम्बित ह्रस्व [।अ] का उच्चारणस्थान भी प्रायः वही है जो दीर्घ [ऽअ] का; किन्तु इसके उच्चारण में यह अन्तर अवश्य आ जाता है कि इसमें जीभ का पिछला भाग नहीं, अपितु बीच का भाग ऊपर की ओर उठता है।

विलम्बित दीर्घ [ऽअ] का उच्चारण एकाक्षर अथवा एकाक्षर के बाद ह्रस्व इ् तथा ह्रस्व उ् से अनुगामी शब्दों में होता है। यथा—

ऽ   ऽ   ऽ
क, ख, ग, (भोजपुरी बालकों को अक्षर पढ़ाते समय क, ख, आदि का उच्चारण

§७ ए, ए़, ए़

ए : यह अर्द्ध-विवृत दीर्घ अग्रस्वर है। इसका उच्चारणस्थान मूल या प्रधान [ए] स्वर से कुछ नीचा है। इसके उच्चारण में जीभ का उठा हुआ भाग मूल स्वर [ए] की अपेक्षा थोड़ा पीछे रहता है।

भोजपुरी ह्रस्व ए का उच्चारणस्थान मूल स्वर [ए] तथा [ऍ] के लगभग मध्य में पड़ता है। इसके उच्चारण में जीभ केन्द्रीय स्थान की ओर अधिक अग्रसर होती है। इन स्वरों का उच्चारण कुछ ढीला होता है और इनमें सन्ध्यक्षरों के उच्चारण की प्रवृत्ति पाई जाती है। शब्दान्त, विशेषतः प्रत्यय रूप में आनेवाला ए अत्यधिक विवृत स्वर है।

अति ह्रस्व ए़ वस्तुतः सहायक ध्वनि है। इसके उच्चारण में जीभ की नोक निचले मसूड़ों को स्पर्श करती हुई प्रतीत होती है।

ए तथा ए़ शब्दान्त में नहीं आते। यथा—

एड़ी; एक; खेमा, खेमा; खेलि खेल; चेला, चेला; एकेहन्, पूरा; एकपट्टा, पगड़ी विशेष; एकेरार, इकरार; देकुआरि, (सं० घृतकुमारिका) ; ढेबुआ, एक पैसा ; हँसेले वह हँसता है।

§८ ऍ

यह अत्यधिक विवृत स्वर है तथा इसका उच्चारण-स्थान प्रायः वही है जो मूल स्वर ऍ का है। वस्तुतः प्रत्यय के रूप में ही इसका व्यवहार होता है। प्राचीन भोजपुरी में, जोर देने के लिए, इसके साथ 'हि' अव्यय का व्यवहार होता था, किन्तु आधुनिक भोजपुरी में इसका लोप हो गया है। प्रत्यय रूप में शब्दान्त में व्यवहृत होने पर यह ए़ तथा ए का रूप धारण कर लेता है।

§९ अ ऍ

ऍ. यह सन्ध्यक्षर के दूसरे भाग के रूप में आता है। तत्सम या अर्द्धतत्सम [ऐ] जो पश्चिमी हिन्दी में [ऐ] अथवा ऐ रूप धारण कर लेता है, भोजपुरी में अऍ हो जाता है। भोजपुरी में अग्र [अ] तथा विवृत ऍ संयुक्त होकर सन्ध्यक्षर हो जाता है। दक्षिणी अँग्रेजी (सदर्न इंगलिश) का man (maen), पश्चिमी हिन्दी मे मैन या मैन हो जाता है किन्तु भोजपुरी में यह मऍन हो जाता है। इसी प्रकार पश्चिमी हिन्दी का जै या जै भोजपुरी जऍ; प० हि० कैलास या कैलास, भोजपुरी कऍलास; प० हि० ऐब या ऐब, भोजपुरी अऍब हो जाता है।

§१० ओ, ओ

ओ तथा ओ का उच्चारण-स्थान मूल स्वर [ओ] से थोड़ा नीचे है। ह्रस्व 'ओ' का स्थान पश्च तथा केन्द्र के मध्य में है। इसके उच्चारण में होंठ 'ओ' की अपेक्षा अधिक वर्तुल तथा मूल स्वर [ओ] अथवा बँगला 'ओ' से कम गोलाकार धारण करते हैं।

ये दोनों स्वर आदि, मध्य तथा अन्त में आते हैं। यथा —

ओछ, छोटा; ओड़ा, टोकरा ; ओठ, होंठ; गोड़, पैर; गोजर, एक प्रकार का कीड़ा ; वहो, वह भी; ओसरा; ओसारा; ओझइत्, ओझा; ओहटा, दूर; मोहरमाला, मुहरों की माला ; बोरो, एक प्रकार की तरकारी; कोरो, बाँस के टुकड़े आदि।

अनुनासिक स्वर

§११ अएँ को छोड़कर भोजपुरी में प्रत्येक स्वर का अनुनासिक रूप पाया जाता है। वास्तव में अनुनासिक स्वर को निरनुनासिक से सर्वथा भिन्न मानना चाहिए; क्योंकि इसके कारण शब्दभेद, अर्थभेद अथवा दोनों ही हो सकते हैं। अनुनासिक स्वरों के उच्चारण में स्थान वही रहता है; किन्तु साथ ही कोमल तालु और कौवा कुछ नीचे झुक जाता है और बहिर्गत वायु का कुछ भाग मुख द्वारा निकलने के अतिरिक्त नासिका-विवर से भी निकलने लगता है। इसी कारण स्वर में अनुनासिकता आ जाती है। यथा—

अँ : हँस, हँसो, फँस, फँसो आदि।
अँ : डँस
अँ : घसु, घिसो; हसु, हँस।
अं : घंटी; चंडी, झगड़ालू स्त्री।
आँ : गाँती, सिर तथा शरीर ढकने के लिए कपड़े को विशेष ढंग से बाँधना।
आं : आंच, आग की लपट; खांच, टोकरा।
[: बाहिँ, बाँह।
इं : इंकड़ी, छोटा कंकड़; सिंकरी, साँकल।
ईं : ईंटि, ईंट; सींघि, सींग; सींकि, सींक; मेहीं, पतला।
उँ : खुँखुड़ी, नेपाली दाव; घुँघची, घुंघची।
ऊँ : ऊँट; खूँटी; बूँट चना।
एं : घरें, घर में, वनें, वन में।
एं : गेंड़ुरि, वृत्ताकार; जेंवरि, रस्सी।
एं : गेंड़, ईख का अगला भाग जो पशुओं को खिलाया जाता है; घेंचू, गर्दन।
ओं : खोंपड़ी, खोपड़ी; खोंढ़ला, दाँत का गड्ढा।
ओं : डोंड़, पानी का साँप; गोंड़, जातिविशेष।

लिखने के समय कभी-कभी भोजपुरी में अनुनासिक छोड़ दिया जाता है। इसका एक कारण नागरी (खड़ी बोली) हिन्दी का प्रचार एवं प्रसार है। बात यह है कि भोजपुरी में कई शब्दों में जहाँ अनुनासिक होता है वहाँ नागरी हिन्दी में नहीं होता। उदाहरणस्वरूप भोजपुरी का हिंसाब तथा इतिहांस हिन्दी में 'हिसाब' तथा 'इतिहास' हो जाता है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, अनुनासिक के कारण अर्थ में अन्तर आ जाता है। इसके उदाहरण नीचे दिया जाते हैं—

गोड़, पैर; गोंड़, जातिविशेष; बाध, रस्सी, बाँध, नदी का बाँध, खाटी, चारपाई; खाँटी, विशुद्ध; गाज, पानी का गाज; गाँज, ढेर आदि।

संयुक्त स्वर

संस्कृत मे ए, ऐ, ओ, औ सन्ध्यक्षर (Diphthong) हैं। वस्तुतः दो स्वरों के संयोग से ही इनकी उत्पत्ति हुई है। आधुनिक बोलियों में भी दो स्वरों का संयोग होता है; किन्तु

इस संयोग तथा सन्ध्यक्षरों में किंचित् अन्तर है। वास्तव में संध्यक्षरों में दो स्वर-ध्वनियाँ मिलकर एक अक्षर (Syllable) में परिणत हो जाती हैं; किन्तु इस दूसरे प्रकार के संयोग में कभी-कभी विभिन्न [दो या तीन] स्वरों की सत्ता स्पष्ट रूप से दिखलाई देती है। भोजपुरी में दो स्वरों के संयोग के अनेक उदाहरण उपलब्ध हैं। इनमें कुछ तो सन्ध्यक्षर हैं; किन्तु अन्य उदाहरणों में दो स्वरों के पृथक् अस्तित्व सुरक्षित हैं।

भोजपुरी सन्ध्यक्षर या संयुक्त स्वर

उच्च या आरोही (Rising), निम्न (Falling) तथा अवरोही (Level) रूप में मिलते हैं। वाक्य के प्रवाह अथवा स्वराघात के कारण ही कण्ठस्वर को उन्नयन अथवा अवनमन करके इन्हें उच्चरित करना पड़ता है। नीचे भोजपुरी दो संयुक्त स्वरों की सूची दी जाती है—

अइ :	मइल,	मैला।
अई :	चिरई,	चिड़िया।
अउ :	हउरा,	शोर।
अए़ :	बए़ल,	बैल।
आई :	ओ॑काई,	वमन।
आउ :	चाउर,	चावल।
आऊ :	नाऊ।	
आएँ :	खाएँ,	खाने के लिए।
इअ :	पिअल,	पीना।
इआ :	करिआ,	काला।
इउ :	जिउतिआ,	स्त्रियों का व्रत विशेष।
इए़ :	जिए,	जीने के लिए।
ईए :	जीए,	जीने के लिए।
इओ॑ :	दहिओ,	दही भी।
ईओं :	दीओं,	दीपक।
उ़आ :	रु़आ,	रुई।
उआ :	महुआ।	
उइ :	दुइ,	दो।
उई :	सुई,	सुई।
उए़ :	बबुए़,	बच्चा ही।
ए़आ :	दे॑आद,	दायाद।
ए़इ :	ले॑इ,	लेकर।
ए़उ :	दे॑उकुरि,	देवस्थान।
ए़ओ :	दे॑ओता,	देवता।
एउ :	नेउर,	नेवला।
ओ॑अ :	घो॑अन।	

ओँ इ :	पोँ इ	
ओँ ए :	धोँ ए	धोने के लिए।
ओय :	धोअ,	धो।
ओया :	धोआ,	धोया हुआ।
ओई :	धोई,	उर्द की बिना छिलके की दाल।
ओउ :	धोउ,	धोओ।
ओँ ओ :	धोओँ,	धोने दो।

इन संयुक्त स्वरों के अनुनासिक रूप भी होते हैं। इनके अतिरिक्त तीन स्वरों के संयुक्त रूप भी भोजपुरी में मिलते हैं और उनके भी अनुनासिक रूप होते हैं। नीचे तीन स्वरों के संयुक्त रूप दिए जाते हैं—

अ उ अ	...	मउअति,	मौत।
अ उ आ	...	कउआ,	कौआ।
इ आ उ	...	ननिआउर,	ननिहाल।
उ आ ई	...	अगुआई,	ब्याह में बिचवई का कार्य।

ओ इ आ: खोँइआ, रस निकाल लेने पर गन्ने का अवशिष्ट। दो तथा तीन संयुक्त स्वरों के अनुनासिक रूप नीचे दिए जाते हैं—

भुँइँ, भूमि ; चेँउँओँ, बच्चों की एक प्रकार की रोटी ; जेँउँओँ, जुड़वाँ।

[ख] व्यञ्जन

§१३ [क्, ख्, ग्, घ्] कंठ्य वर्ण हैं। इन व्यंजन वर्णों के उच्चारण में जिह्वा का पिछला भाग कोमल तालु का स्पर्श करता है; किन्तु जब इनके बाद इ, ई तथा ए, एँ स्वर आते हैं तब यह स्पर्श थोड़ा आगे होता है। इन दोनों अवस्थाओं में ये व्यंजन 'अग्र कंठ्य' (Forward velar) तथा 'कोमल तालु जात स्पर्श' (Soft palatal plosives) वर्ण हैं, अर्थात् ए, एँ के पूर्व अग्रकंठ्य एवं इ, ई के पूर्व ये कोमलतालुजात स्पर्श वर्ण हैं।

चूँकि प्राण तथा नाद के कारण इन ध्वनियों से निर्मित शब्दों के अर्थ में परिवर्तन हो जाता है, अतएव इन्हें पृथक् ध्वनियाँ समझना चाहिए। यथा—

कानि, कानी स्त्री; खानि; काली, कालिका देवी; खाली; गिन—गिनना; घिन, घृणा; गिर, गिरना; घिर, घिरना।

ये सभी ध्वनियाँ आदि, मध्य तथा अन्त में आती हैं। यथा—

काम, कार्य, खेत; गोहूँ, गेहूँ, घोड़ा; ओँकला, छिलका; आँखि, बगइचा, घाग; घाघी, एक प्रकार का फोड़ा; नाक; राख; नाग, सर्पविशेष; बाघ; व्याघ्र।

§१४ संघर्षी [च्, छ्, ज्, झ्] इन संघर्षी ध्वनियों के उच्चारण में जिह्वा का अग्रभाग दन्त-पंक्ति के पीछे के खुरखुरे भाग को देर तक स्पर्श करता है। इनमें च्, छ् अघोष तथा ज्, झ् घोष एवं च्, ज् अल्पप्राण तथा छ्, झ् महाप्राण ध्वनियाँ हैं।

चूँकि प्राण तथा नाद के कारण इन ध्वनियों से निर्मित शब्दों के अर्थ में परिवर्तन हो जाता है, अतएव इन्हें पृथक् ध्वनियाँ समझना चाहिए। यथा—

घोर, चोर; छोर, सिरा; जोक, जोंक; झोंक, हवा का झोंका।

ये सभी ध्वनियाँ आदि, मध्य तथा अन्त में आती हैं। यथा—

चानी, चाँदी; छूरा, छूरा; जोर, शक्ति; झूचा, झूला; खोंची, टोकरी, बाछी, बछिया; राजा, राजा; बोझा, बोझ; नाच, नाच; छूँछ, खाली; गाज, गाज; साझ, साझा आदि।

§१५ मूर्धन्य [ट्, ठ्, ड्, ढ्] इनके उच्चारण में जिह्वा का अग्रभाग किञ्चित् उलटकर कठोर तालु को स्पर्श करता है। बँगला में ये पूर्व मूर्धन्य या प्रतिवेष्टित (pre-retroflex) ध्वनियाँ हैं, किन्तु भोजपुरी में ये वास्तव में मूर्धन्य ध्वनियाँ हैं। इनमें ट्, ठ् अघोष, ड्, ढ् घोष एवं ट्, ड् अल्पप्राण तथा ठ्, ढ् महाप्राण ध्वनियाँ हैं।

चूँकि प्राण तथा नाद के कारण इन ध्वनियों से निर्मित शब्दों के अर्थ में परिवर्तन हो जाता है, अतएव इन चारों को पृथक् ध्वनियाँ समझना चाहिए।

इनमें से ट्, ठ् आदि, मध्य तथा अन्त में आते हैं; किन्तु ड, ढ उस अवस्था में इन्हीं स्थानों में आते हैं जब वे किसी अनुनासिक ध्वनि के पूर्व रहते हैं। यथा—

टाप, मछली फँसाने का एक विशेष प्रकार का जाल (देखो, जाल-टाप), ठाट, कमरे की छाजन; डोरा, धागा; ढोलक, बाजा विशेष; खटिया या खटिआ, चारपाई; पाठी, बकरी की बच्ची; कंडा, सरकंडा ; ठंढा, शीतल; बेंट, काठ; लंड आदि।

मूर्धन्य ध्वनियों के अन्य उदाहरण निम्नलिखित हैं—

टट्टू, छोटा घोड़ा; लट्टू; ठठेरा; लाठी; डाढ़ि; डाल, डमरू, ढोंढ़ी, नाभि, ढेंकी, धान कूटने की देशी मशीन; आदि।

§१६ दन्त्य [त्, थ्, द्, ध्]

इन ध्वनियों के उच्चारण में जीभ की नोक ऊपरी मसूड़ों का स्पर्श करती है, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है मानों वह बहुत धीरे से दाँतों को स्पर्श कर रही है। जब ये ध्वनियाँ दीर्घ रूप में अथवा अन्य व्यञ्जनों के साथ आती हैं तब ये ऊपर के दाँतों को स्पर्श करती हैं। इनमें त्, थ् अघोष, द्, ध् घोष एवं त्, द् अल्पप्राण तथा थ्, ध् महाप्राण हैं।

चूँकि प्राण तथा नाद के कारण इन ध्वनियों से निर्मित शब्दों के अर्थ में परिवर्तन हो जाता है, अतएव इन्हें पृथक् ध्वनियाँ समझना चाहिए। यथा—

तार; थार, थाल; दान; धान; तुर, तोड़ना; दुर, दूरी ; आदि।

ये सभी ध्वनियाँ आदि, मध्य तथा अन्त में आती हैं। यथा—

ताल, झील; थोर, थोड़ा; दालि, दाल; धान; खतम, समाप्त; पोथी, पुस्तक; वादी, शत्रु; बध, मारना; बात; हाथ; खाद; बाध, मूँज की रस्सी।

भोजपुरी ध् पूर्णरूप से घोष ध्वनि नहीं है। निम्नलिखित शब्दों में ये ध्वनियाँ ऊपर के दाँतों का स्पर्श करती हैं। यथा—

कत्ता, छोटी तलवार; खन्ता, जमीन खोदने का औजार; कंथा; गद्दी; गन्दा; धन्धा, काम।

§१७ ओष्ठ्य [प्, फ्, ब्, भ्]

इन व्यञ्जन ध्वनियों के उच्चारण में दोनों होंठ मिल जाते हैं तथा किंचित् गोलाकार भी हो जाते हैं; किन्तु भोजपुरी में यह गोलाकार बँगला की अपेक्षा बहुत कम होता है।

इन ध्वनियों के उच्चारण में निर्गत श्वास का पूर्णरूप से अवरोध हो जाता है और तत्पश्चात् उसका यकायक स्फोट होता है। इनमें प्, फ् अघोष तथा ब्, भ् घोष एवं प्, ब् अल्पप्राण तथा फ्, भ् महाप्राण ध्वनियाँ हैं।

चूँकि प्राण तथा नाद के कारण इन ध्वनियों से निर्मित शब्दों के अर्थ में परिवर्त्तन हो जाता है अतएव इन चारों को पृथक् ध्वनियाँ समझना चाहिए। यथा—

पात, पत्ता; फाट, हिस्सा; बात, बात-चीत, भात, पका चावल; पुल, पुल; फूल; बुन, बुनना; भुन, भुनना।

प् तथा ब्, शब्द के आदि, मध्य तथा अन्त में आते हैं। यथा—

पानी; बार, बाल; आपन, अपना; अबीर, बुक्का; नाप, नापतौल; राब, एक प्रकार की शक्कर।

[फ्], [भ्]

फ् तथा भ् दोनों प् तथा ब् की महाप्राण ध्वनियाँ हैं। मैथिली में इनका संघर्षी उच्चारण भी होता है। भोजपुरी फ् का उच्चारण दक्षिणी अँगरेजी [Southern English] के बलात्मक स्वराघात वाले प् (P) के समान होता है। अन्तर केवल इतना ही है कि भोजपुरी के उच्चारण अँगरेजी की अपेक्षा प्राण [Aspiration] स्पष्टरूप से सुनाई पड़ता है।

फ् तथा भ् शब्द के आदि, मध्य तथा अन्त में आते हैं। यथा—

फर, फल; भात, सफर; यात्रा; खंभा; बाफ, बाष्प; नाभ, बर्बर (यथा, नाभ खेत)।

§१८ ओष्ठ्य व्यञ्जनों को छोड़कर अन्य महाप्राण तथा संघर्षी व्यञ्जन जब प्रथमाक्षर [Non-initial syllable] के बाद आते हैं तथा जब अघोष महाप्राण व्यंजन उनके अनुगामी होते हैं तब उनके प्राण (Aspiration) का लोप हो जाता है। यथा—

हाथ् खाली था, हाथ खाली है, उच्चारण के समय हात् खाली बा हो जायगा। इसी प्रकार आध् सेर > आद् सेर, आधा सेर; सुख् से > सुक् से, आनन्द से; घुघ् हटाउ > घुग् हटाव, घूँघट हटाओ; छुँछ् थारी > छुँच् थारी, छूँछी या खाली थाली; बोझ् थाम्हु > बोज् थाम्हु, बोझे को पकड़ो, आदि होंगे।

अनुनासिक व्यञ्जन

§१९ अनुनासिक व्यञ्जनों के उच्चारण में कोमल तालु के ऊपर उठने से नासिका-विवर के द्वार का अवरोध नहीं होता जैसा कि निरनुनासिक व्यञ्जनों के उच्चारण में होता है।

§२० [ङ्, ङ् ह्]—ये घोष कण्ठ्य अनुनासिक ध्वनि हैं। इनमें ङ् ह् महाप्राण वर्ण है। चूँकि प्राण के कारण इन ध्वनियों से निर्मित शब्दों के अर्थ में परिवर्तन हो जाता है, अतएव उन्हें पृथक् ध्वनियाँ समझना चाहिए। यथा—

सङ्, साथ; सङ्ह्, संघ। ये दोनों व्यञ्जन शब्द के आदि में नहीं आते। यथा—
सङ्, साथ; सङ्ह्, संघ; बेङ्, मेढक; माङ्, माँग; कङ्ना, कंगन; टाङ्ह्न, पेङ्हा, पक्षी विशेष; बेङ्, मेढ़क; माङ्, माँग; कङ्ना, कंगन; टाङ्हन, बड़े पैर वाला घोड़ा; लाङ्ह्नि, (कभी-कभी लाङ्नि भी), एक प्रकार का रोग।

§२१ तालव्य [ञ्]

यह घोष अनुनासिक तालव्य व्यञ्जन है और आदि में यह नहीं आता। यथा—

[निं] नञा, निद्रा ; भुइञा , भूमि ; बढ़िञा, सुन्दर , आदि।

उच्चारण में यह [यँ] अर्थात् अनुनासिक [य्] की भाँति होता है। यह बात उल्लेखनीय है कि जब [न्] का संयोग तालव्य संघर्षी व्यञ्जन के साथ होता है तब इसका उच्चारण [ञ्] की भाँति होता है। इस दशा में अकेले [ञ्] के उच्चारण-स्थान की अपेक्षा इसका उच्चारण और आगे से होता है।

§२२ वर्त्स्य [न्, न्ह्]

इनके उच्चारण में जीभ की नोक दंत्य स्पर्शव्यञ्जनों के समान दाँतों की पंक्ति को न छूकर ऊपर के मसूढ़ों को छूती है। अत. ये वर्त्स्य अनुनासिक ध्वनि हैं। ये दोनों घोष व्यञ्जन हैं। इनमें न्ह् महाप्राण है। न्ह् का ह् पूर्ण स्वर के पूर्व पूर्णरूप से उच्चरित होता है ; किन्तु जब इसके बाद कोई अपूर्ण अथवा अति ह्रस्व स्वर आता है तब यह अघोष न में परिणत हो जाता है।

चूँकि प्राण के कारण इन ध्वनियों से निर्मित शब्दों के अर्थ में परिवर्तन हो जाता है अतएव इन्हें पृथक् ध्वनियाँ समझना चाहिए। यथा—

कान ; कान्ह, कन्धा ; चीन, एक प्रकार का अनाज ; चीन्ह, चिह्न ; सोना ; सोन्हा, सौंधा ; आदि।

न् शब्द के आदि, मध्य तथा अन्त में आता है; किन्तु न्ह् आदि में नहीं आता। यथा—

नाप ; नाक ; पानी ; चानी, चाँदी ; पान ; जान ; प्राण ; चोन्हा, झूठा क्रोध ; गान्ही, दुखदाई ; सेन्हि>सेनि-सेंध ; आदि।

जब न् किसी अन्य व्यञ्जन वर्ण से संयुक्त होता है तब इस संयुक्त होनेवाले वर्ण के अनुसार इसके उच्चारणस्थान में भी परिवर्तन हो जाता है, अर्थात् उस वर्ण के अनुसार इसका भी उच्चारण मूर्धन्य, तालव्य अथवा दन्त्य हो जाता है। यथा—

डण्ड (सं॰, दण्ड)>डन्ड, जुर्माना ; कुञ्ज>कुन्ज ; कण्ठ > कन्ठ ; आदि।

§२३ द्वयोष्ठ्य [म्, म्ह्]

ये द्वयोष्ठ्य घोष अनुनासिक व्यञ्जनवर्ण हैं ; इनमें म्ह महाप्राण व्यञ्जन है।

चूँकि प्राण तथा नाद के कारण इन ध्वनियों से निर्मित शब्दों के अर्थ में परिवर्तन हो जाता है, अतएव इन्हे पृथक् ध्वनियाँ समझना चाहिए। यथा—

बरमा, एक प्रकार का औजार ; बरम्हा, ब्रह्मा ; बामन, ईश्वर का वामन अवतार ; बाम्हन, ब्राह्मण; आदि। म शब्द के आदि, मध्य तथा अन्त में आता है; किन्तु म्ह् आदि में नहीं आता। यथा—

मोर ; महुआ ; जामुनि, जामन ; कमरी, छोटा कम्बल, चाम, चमड़ा ; काम ; गम्हा[रि], वृक्षविशेष ; खम्हा, खंभा।

म्ह् का ह् पूर्ण स्वर के पूर्व पूर्णरूप से उच्चरित होता है; किन्तु जब इसके बाद कोई अपूर्ण अथवा अतिह्रस्व स्वर आता है तब यह अघोष म में परिणत हो जाता है। यथा—

पोमि, शोर ; पाम्ही, मसि भींजना ; भोमड़ किन्तु भोम्हाड़, बड़ा छिद्र।

§२४ पार्श्विक व्यञ्जन [ल्, ल्ह्]

इन ध्वनियों के उच्चारण में जीभ की नोक ऊपर के मसूड़ों को अच्छी तरह छूती है। [न्] के उच्चारणस्थान से इनका स्थान किंचित् पीछे तथा [च्] से किंचित् आगे है। मोटे तौर पर इनका उच्चारणस्थान [न्] तथा [च्] के बीच में है। इनके उच्चारण के समय जीभ के दाहिने-बायें जगह छूट जाती है जिसके कारण वायु पार्श्व से बहिर्गत होती है और कण्ठपिटक में भी प्रकम्पन होता है। [ल्] पार्श्विक, अल्पप्राण, घोष, वर्त्स्यध्वनि है तथा [ल्ह्] महाप्राण ध्वनि।

जब [इ] तथा [ए] ध्वनियाँ इन व्यञ्जनों का अनुगमन करती हैं तब इनके उच्चारणस्थान में भी यत्किंचित् परिवर्तन हो जाता है। अन्य स्वरों की अपेक्षा इस अवस्था में जीभ अधिक प्रसृत हो जाती है।

चूँकि प्राण के कारण इन ध्वनियों से निर्मित शब्दों के अर्थ में परिवर्तन हो जाता है, अतएव इन्हें पृथक् ध्वनियाँ समझना चाहिए। यथा—

ओला, पाला; ओल्हा, खेल विशेष; कोला, छोटा खेत; कोल्हा, कोना; माल, इत्यादि; माल्ह, तकुए की रस्सी।

[ल्ह्] शब्द के आदि में नहीं आता। यथा—

लाठी; लरिका, लड़का; मालिक; बालू; ताल; जा़ल, जाल; टेल्हा, लड़का; कोल्हू, कोल्हू; कालिह; कल; आदि।

§२५ लुंठित व्यञ्जन [र्, र्ह्]

र् के उच्चारण में जीभ की नोक वर्त्स या ऊपर के मसूड़े को शीघ्रता से कई बार स्पर्श करती है। र् लुंठित, अल्पप्राण, वर्त्स्य, घोष ध्वनि है तथा र्ह् महाप्राण ध्वनि।

जब [इ] तथा [ए] ध्वनियाँ इन व्यञ्जनों का अनुगमन करती हैं तब इनका उच्चारण-स्थान कुछ आगे बढ़ जाता है। इन ध्वनियों में भी ए की अपेक्षा इ के अनुगमन से जीभ अधिक प्रसृत हो जाती है।

चूँकि प्राण के कारण इन ध्वनियों से निर्मित शब्दों के अर्थ में परिवर्तन हो जाता है, अतएव इन्हें पृथक् ध्वनियाँ समझना चाहिए। यथा—

मा्रि, मार-पीट; मार्ह, अन्नविशेष। [र्ह्] शब्द के आदि में नहीं आता। यथा—

रानी; रोक, रोक-थाम; अरुआ, बेंडा; खरुआ, वस्त्रविशेष; बार, बाल; छार, राख, कोर्ह्, कोढ़ी; मूर्ही, भुना हुआ चावल।

§२६ उत्क्षिप्त या ताडन-जात व्यञ्जन [ड़्, ड़्ह्, या ढ़]

ड़्, ड़्ह् या ढ़ का उच्चारण जीभ की नोक को उलटकर नीचे के भाग से कठोर तालु को झटके के साथ कुछ दूर तक छूकर किया जाता है। ड़् अल्पप्राण, घोष, मूर्धन्य उत्क्षिप्त ध्वनि है और ड़्ह् या ढ़ महाप्राण ध्वनि।

चूँकि प्राण के कारण इन ध्वनियों से निर्मित शब्दों के अर्थ में अन्तर आ जाता है अतएव इन्हें पृथक् ध्वनियाँ समझना चाहिए। यथा—

बुड़, डूबना; बुढ़ या बूढ़, बूढ़ा। ड़ तथा ढ़ शब्द के मध्य तथा अन्त में ही आते हैं।

यथा—

घोड़ाँ ; जोड़ा, जोड़ा ; कोड़ा ; मोढ़ा ; बाढ़ि, बाढ़; आदि ।

भोजपुरी में अनेक ऐसे तत्सम तथा तद्भव शब्द हैं जहाँ 'ड़' के पूर्व कोई अनुनासिक स्वर आता है । यथा—बाँड़ (सं० बाण), मोँड़ आदि । ऐसे स्थानों में 'ड़' का उच्चारण भी अनुनासिक होता है और वह मूर्धन्य 'ण' की भाँति होता है । बोलचाल की भोजपुरी में वस्तुत. मूर्धन्य 'ण' का अभाव है ।

§२७ संघर्षी [स्]

'स्' के उच्चारण में जिह्वा के अग्रभाग के दोनों पार्श्व ऊपर की दन्तपंक्ति का स्पर्श करते हैं ; किन्तु निर्गत वायु का पूर्णरूप से अवरोध न होने तथा जीभ के ऊपर उठने के कारण वायु संघर्ष ध्वनि करती हुई निकल जाती है । यह ध्वनि इच्छानुसार देर तक की जा सकती है । यह वास्तव में वर्त्स्य, अघोष, ऊष्म संघर्षीय ध्वनि है । यह ध्वनि शब्द के आदि, अन्त तथा मध्य में आती है । यथा—

साग, शाक ; सारी, साड़ी ; घासि, घास ; पासी, जातिविशेष ; खास, आत्मीय ; बाँस ।

§२८ कण्ठ्य-संघर्षी (ह्)

'ह्' के उच्चारण में जीभ, तालु अथवा होठों की सहायता बिल्कुल नहीं ली जाती । निर्गत वायु को भीतर से फेंककर मुखद्वार के खुले रहते हुए स्वरयंत्र के मुख पर संघर्ष उत्पन्न करके इस ध्वनि का उच्चारण किया जाता है । जब 'ह्' शब्द के मध्य या अन्त में आता है तथा जब कोई ह्रस्व स्वर इसका अनुगामी होता है तो धीरे-धीरे इसके घोषत्व का लोप होने लगता है और वह अघोष ध्वनि में परिणत हो जाता है । अन्तिम अवस्था में यह 'ह्' का रूप धारण कर लेता है । यथा—

हमार, मेरा ; हाथ ; जेहल, जेल ; कहल, कहना ; आदि ।

भोजपुरी में एकाँदसाः, दुआदसाः, मृत्यु के पश्चात ग्यारहवें तथा बारहवें दिन में, [ह] का उच्चारण विसर्गवत् हो जाता है और सुनाई नहीं देता ।

§२६ संघर्षी 'ह्' अथवा विसर्ग

यह अघोष संघर्षी ध्वनि है और अघोष स्पर्श तथा संघर्षी व्यञ्जनों में प्राणत्व उत्पन्न करती है । विस्मयादिबोधक अव्ययों में भी यह ध्वनि सुन पड़ती है । पूर्ण स्वर के अनुगामी होने पर यह ध्वनि पूर्णरूप में तथा अपूर्ण स्वर के अनुगामी होने पर यह आंशिक रूप में सुन पड़ती है । यथा—

आः, ओः आदि ।

§३० अर्द्धस्वर या अन्तःस्थ (य्)

इसका उच्चारण जीभ के अगले भाग को कठोर तालु की ओर ले जाकर किया जाता है; किन्तु जीभ न चवर्गीय ध्वनियों के समान तालु को अच्छी तरह छूती है और न 'इ' आदि तालव्य स्वरों के समान दूर ही रहती है । यही कारण है कि 'य्' को अन्तःस्थ या अर्द्धस्वर

अर्थात् व्यञ्जन और स्वर के बीच की ध्वनि माना जाता है। भोजपुरी में 'य्' के स्थान पर विकल्प से लिखते समय 'अ' का प्रयोग किया जाता है। हिन्दी की बोलियों में 'य्' के स्थान पर शब्द के आरम्भ में 'ज्' हो जाता है। इसका कारण यह है कि 'य्' के उच्चारण में तालु के निकट जीभ को जिस स्थान में रखना पड़ता है वहाँ उसे देर तक नहीं रखा जा सकता। मागधी अपभ्रंश से प्रसूत बोलियों में तो शब्द के आदि में इसका 'ज्' उच्चारण प्रसिद्ध है। यथा—

पिआस् या पियास्, हिअटि या हियटि, घिआ या घिया, इआर या इयार आदि।

§ ३१ अर्द्धस्वर [व्]

इसके उच्चारण में दोनों होंठ एक दूसरे को दोनों छोरों पर स्पर्श करते हैं तथा बहिर्गत वायु के लिए मध्य में मार्ग छोड़ देते हैं। इसके उच्चारण में जीभ का पिछला भाग कोमल तालु की ओर [उ] के उच्चारणस्थान की अपेक्षा और अधिक ऊपर चढ़ता है; किन्तु वह कोमल तालु का स्पर्श नहीं कर पाता। इस प्रकार यह द्व्योष्ठ्य अर्द्धस्वर है।

यह शब्द के मध्य में आता है तथा व-श्रुति का कार्य करता है। यथा—

पावल, पाना; सव्नि, सोत, गँवार; पुवा या पुआ, पूप; दुवार या दुआर, द्वार; आदि।

§ ३२ संयुक्त व्यञ्जन

संयुक्त व्यञ्जन कभी-कभी अकेले अथवा अन्य व्यंजनों के संयोग में आते हैं। कभी विकल्प से इनके असंयुक्त रूप भी मिलते हैं। ऐसी अवस्था मे प्रथम अक्षर अथवा दीर्घ स्वर पर स्वराघात रहता है।

भोजपुरी में संयुक्त व्यञ्जन निम्नलिखित रूप में मिलते हैं—

(१) अल्पप्राण तथा संघर्षी घोष एवं अघोष वर्ण अपने वर्ग के महाप्राण वर्ण अथवा अपने ही वर्ण से संयुक्त होते हैं। ध्वन्यात्मकरीति से उन्हें दीर्घ व्यञ्जन (द्वित्व) (Long-Consonant) कहा जा सकता है। यथा—

चक्कू, या चाकू; पक्की; कच्ची; बच्चा या बाचा; बिच्छी या बीछी; गट्टा या
ऽ
गाटा, कलाई; नट्टी या नटी, गर्दन; पट्ठा, या पाठा, जवान बकरा; ढड्ढा या ढाढ़ा, लम्बा पत्र; जगत्तर, दुष्ट मनुष्य; सत्त्रि, सत्तर; जिद्दी, हठी; चुप्पी, शान्त; आदि।

(२) न्, म् तथा ङ् के भी दीर्घ [द्वित्व] रूप होते हैं। ये अपने वर्ग के वर्णों से संयुक्त हो सकते हैं। यथा—

सुन्ना, शून्य; कुन्ती, नाम; महन्थ, महन्त; गन्दा; लम्मरदार या लमरदार, मुखिया; कम्पा, लम्बा पतला बाँस जिसके द्वारा चिड़ियों को फँसाया जाता है; चम्पा, एक फूल; लम्पट; लम्फ, लैंप; लम्भा या लामा; दङ्गा, दंगी-फसाद; लुङ्गी; कङ्क, निर्धन; सङ्ख, शंख; पङ्खा; जंगल।

(३) स् को उसके पहले के अघोष, अल्पप्राण, कण्ठ्य अथवा दन्त्य व्यंजन वर्णों से संयुक्त किया जा सकता है। यथा—

खुस्की, खुस्की; कुस्ती, दंगल; गस्ती, गश्ती; पेस्वर, पेश्तर।

स् को उसके पहले के अघोष, अल्पप्राण, मूर्धन्य व्यंजन वर्णों से भी संयुक्त किया जा सकता है। यथा—

माSस्टर या माहटर ; अSस्पस्ट, असपहट, अस्पष्ट ; आदि।

स् का दीर्घ (द्वित्व) रूप भी हो जाता है। यथा—

हिस्सा या हींसा ; खिस्सा या खींसा, किस्सा।

(४) अर्द्धस्वर अपने पहले के कंठ्य, दन्त्य, तथा ओष्ठ्य व्यञ्जनों से संयुक्त किया जा सकता है। यथा—

ख्याल या खियाल, याद, तमाशा ; प्यार या पियार ; ग्वाल या गुआल, ग्वाला ; द्वार या दुआर ; ग्यान या गिआन, ज्ञान।

य् को आगे आनेवाले न् या म् से संयुक्त किया जा सकता है। यथा—

न्याव या नियाव, न्याय ; म्यान, मियान ; आदि।

ऊपर के संयुक्त व्यञ्जनों को छोड़कर, शब्द के आदि में, भोजपुरी में, संयुक्त व्यञ्जनों का प्रयोग नहीं होता।

व्यञ्जनवर्णों का द्वित्वभाव या दीर्घीकरण

§ २३ भोजपुरी तथा अन्य सभी आधुनिक भाषाओं एवं बोलियों में व्यञ्जन-ध्वनियों का दीर्घरूप में उच्चारण किया जाता है। इस दीर्घ उच्चारणको साधारणतः द्वित्व उच्चारण की संज्ञा दी जाती है; क्योंकि ध्वनि-द्योतक वर्णों को दो बार लिखकर इस दीर्घ उच्चारण को प्रदर्शित किया जाता है। वस्तुतः किसी ध्वनि का दो बार उच्चारण नहीं होता। 'भत्त' शब्द के उच्चारण में भत्।त अथवा भत्—त रूप में 'त' का उच्चारण दो बार नहीं होता। जिह्वा के अग्रभाग का, देर तक, दाँतों के स्पर्श करने के कारण 'त' का उच्चारण होता है। इस प्रकार इसे द्वित्व वर्णों की अपेक्षा दीर्घ व्यंजन कहना अधिक वैज्ञानिक है। व्यञ्जनों के दीर्घीकरण से उनके अर्थ में भी अन्तर आ जाता है। यथा—

पता, पत्र या चिट्ठी का पता ; पत्ता ; गला, गर्दन ; गल्ला, ढेर ; बीली, पान का बीड़ा ; खिल्ली, मजाक ; पीला, रंग-विशेष ; पिल्ला, कुत्ते का बच्चा।

स्वर

§ २४ अनेक भाषाओं में स्वर वर्णों के ह्रस्व तथा दीर्घ रूप के ऊपर अर्थ निर्भर करता है। उदाहरणस्वरूप अंग्रेजी [Kin] 'सम्पर्क' तथा [Keen] 'तीक्ष्ण' के अर्थ में पार्थक्य है। इसी प्रकार संस्कृत शब्द दिन 'दिवस' तथा दीन, 'निर्धन' में भी बहुत अन्तर है। भोजपुरी तथा बँगला आदि भाषाओं में स्वरवर्णों के ह्रस्व तथा दीर्घ उच्चारण पर अर्थ प्रायः निर्भर नहीं करता। भोजपुरी स्वरों के चार प्रकार के उच्चारण मिलते हैं। ये हैं—दीर्घ, अर्द्धदीर्घ, ह्रस्व तथा अतिह्रस्व। भोजपुरी में कभी-कभी स्वरों का विलम्बित [दीर्घ से भी अधिक समय लगाकर] उच्चारण किया जाता है। उस अवस्था में साधारण उच्चारण की अपेक्षा अर्थ में अन्तर आ जाता है। यथा—

चल्‌बि, (मैं) चलूँगा, किन्तु चलSबि, क्या चलूँगा ? ; हम कहलीं, 'मैंने कहा', किन्तु हSम कहलीं ? क्या मैंने कहा ? ; घर में, घर के भीतर, किन्तु घSर में, (आश्चर्य से) क्या घर में

भी। इस प्रकार ये विलम्बित उच्चारण अनेक प्रकार के सूक्ष्म भावों एवं अर्थों का प्रकाशन करते हैं।

§ ३५ भोजपुरी एकाक्षर पद (Mono-syllabic) बँगला की भाँति ही दीर्घ होते हैं। उदाहरणस्वरूप दिन (दिवस , दीन (दरिद्र), दीन (मुसलमान-धर्म), इन तीनों का उच्चारण भोजपुरी में दीर्घरूप में 'दीन' होगा, किन्तु एकाधिक शब्द तथा वाक्य में इसके ह्रस्व तथा दीर्घ, दोनों रूप प्रयुक्त होंगे। यथा—दिनमान, दीन-दुखी, आदि।

§ ३६ स्वराघात के पूर्व के स्वर भोजपुरी में ह्रस्व होते हैं और पूर्व दीर्घ स्वर अन्त के तीसरे अक्षर [Syllable] के पूर्व नहीं आता। इसी प्रकार दीर्घ अथवा संयुक्त स्वर के पूर्व कोई दीर्घ अथवा अतिह्रस्व स्वर नहीं आता।

स्वराघात

§ ३७ किसी भाषा के वाक्यों का उच्चारण करते समय उसके अन्तर्गत पद-समूहों में से किसी-पद विशेष पर विशेष बल या जोर दिया जाता है। यह बल, पद के किसी अक्षर [Syllable]-विशेष पर पड़ता है। इसे 'स्वराघात' 'झोंक' अथवा 'बल' कहते हैं। भोजपुरी में स्वराघात का विशेष महत्त्व नहीं है; क्योंकि इसके कारण अर्थ में कोई अन्तर नहीं पड़ता। इसके अतिरिक्त यह अत्यन्त निर्बल होता है तथा एक अक्षर से दूसरे पर बदलता रहता है। भोजपुरी एकाक्षर पदों में स्वरों पर स्वराघात होता है। इसी प्रकार अन्त के तीन स्वरों में से केवल दीर्घ स्वर पर भोजपुरी में स्वराघात पड़ता है। जहाँ सभी स्वर दीर्घ अथवा ह्रस्व होते हैं, वहाँ अन्तिम अक्षर के पहलेवाले स्वर पर स्वराघात पड़ता है। किसी भी दशा में, अन्त से तीसरे अक्षर के बाद, भोजपुरी में स्वराघात नहीं आता।

यह मुख्य स्वराघात [Primary stress] की बात है। जब शब्द के आदि अक्षर पर मुख्य स्वराघात (') नहीं पड़ता तब वहाँ साधारण स्वराघात (।) होता है। यथा—

'ऊ बह ; रा'जा' ; बा'जा' ; स'जाइ, सजा ; खों'सल, खोंसना ; कटा'वल, कटाना ; सरि'हारल, सजाना ; अह'ड़ी, चरही ; आदि।

वाक्य-स्वराघात

§ ३८ भोजपुरी में शब्दों पर स्वराघात की अपेक्षा, मुख्यरूप से, वाक्यों पर स्वराघात होता है। इसके लिए बँगला वाक्य की भाँति भोजपुरी वाक्य को भी छोटे-छोटे खण्डों या अंशों में विभक्त किया जाता है। साधारणतः प्रत्येक खण्ड या अंश का एक एक निश्वास में उच्चारण और है और इस प्रकार प्रत्येक खण्ड या अंश पर इकट्ठे स्वराघात होता है। यह स्वराघात वाक्य खण्ड के प्रथम विशिष्टार्थक शब्द के आरम्भ के अक्षर पर होता है और उस वाक्यखण्ड के अन्तर्गत के अन्य शब्दों के पृथक्-पृथक् स्वराघात का लोप हो जाता है। नीचे एक भोजपुरी कहानी का थोड़ा अंश उद्धृत किया जाता है। इसमें वाक्यों को स्वाभाविक खण्डों या अंशों में विभक्त किया गया है। प्रथम खण्ड के बाद अर्द्ध विराम (;) तथा द्वितीय के बाद पूर्ण विराम (।) का प्रयोग किया गया है। अर्द्धविराम पर भी वैकल्पिक रूप में देर तक ठहरा जा सकता है। उस अवस्था में उसके बाद के शब्द पर स्वराघात होगा। कहानी का अंश इस प्रकार है—

एगो रा'जा ; रहले। आ ; तिनिगो उन्हुकर रानी रहल लोग। बाकी ; रा'जा का

लरिका; एकहू ना रहें । त ऊ'; एगो अउरी; बिआह कइले । च'उथी रानी का; ग'रभ रहल। जब लरिका; हो खे के समे; आ'इल। त; रा'जा रहले; सि'कार पर। रा'नी का; एगो बे'टा; आ ; एगो बे'टी भइल। उन्हुकर स'व्ति रानी लोग ; ओ बे'टा बेटी के ; ले' जाके ; कों 'हारे का; आवां पर; फें'कि दीहल लोग। अ; ओ करा जगह पर; एगो ईं'टि पथल; राखि दीहल लोग। जब रा'जा; ल'वटि के अइले; त; पु'छले ; जे रा'नी का; का' भइल हा। त; उ ति'नू ; रानी लोग ; क'हल ; जे एगो ईं'टि; एगो प'थल; भ इल हा। रा'जा; ई' बात ; मा'नि लिहले। अ ; ओ रा'नी के ; कुल'छनी समुझि के ; एगो अ'लगा ; घ'र में ; र'खले। अ; उन्हु'का के ; क'उआ हां'के के काम ; दि'हले । अ ; उन्हुकर ना'म ; क'उआ हँकनी ; रा'खि ; दिहले ।

जब कभी किसी शब्द-विशेष पर बल देना होता है तब उसपर मुख्य स्वराघात पड़ता है। इसके कारण अर्थ में भी अन्तर आ जाता है। यथा—

ह'म घरें गइलीं ; क्या मैं घर गया ?

हम घरें गइली , क्या मै घर गया ?

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, भोजपुरी में वाक्यगत स्वराघात ही मुख्य है और उसके अन्तर्गत के शब्दों पर उनके स्थानानुसार स्वराघात परिवर्तित होता रहता है। इस परिवर्तन के कारण अर्थ में कोई परिवर्तन नहीं होता। उदाहरणस्वरूप कु'दार, 'कुदाल ;' तथा क'हवाँ, 'कहाँ', इन शब्दों को पृथक् रूप में लेने पर क्रमशः 'कु' तथा 'क' पर स्वराघात होगा ; किन्तु भोजपुरी के 'कुदाल कहाँ ले जा रहे हो ?', इस वाक्य में जहाँ 'कुदार' एवं 'कहवाँ' दोनों शब्द प्रयुक्त हैं, वस्तुत. उनका स्थान ही स्वराघात को निश्चित करेगा। यथा—

कु'दार ले ले कहवाँ ; जातार ?

क'हवाँ कुदार ले ले ; जातार ?

ऊपर के प्रथम वाक्य में अपनी विशिष्टता के कारण कु'दार पर स्वराघात होगा, कहवाँ पर नहीं तो दूसरे वाक्य में इसके विपरीत क'हवाँ पर स्वराघात होगा। इस सम्बन्ध में यह भी स्मरण रखना चाहिए कि जिस शब्द पर अधिक बल देना होगा उसके उच्चारण में भी अधिक शक्ति लगानी होगी ; किन्तु वस्तुस्थिति तो यह है कि बीच के शब्दों पर से स्वराघात का सर्वथा लोप हो जायगा। उदाहरणार्थ नीचे कतिपय भोजपुरी वाक्य और उद्धृत किये जाते हैं—

उ तो'हरा के का ; क'हले ? उसने तुमसे क्या कहा ? का' कहले उ ; तो'हरा के ; उसने तुमसे क्या कहा ? तब एगो ; भू'त आइल ; तब एक भूत आया। आ'इल ; तब एगो भू'त , तब एक भू'त आया।

सुर या उदात्तादि स्वर

§३९ कण्ठस्वर को ऊँचा-नीचा करके वाक्यों मे शब्दों का उच्चारण करना वस्तुतः भोजपुरी की विशिष्टता नहीं है। कुछ-कुछ पंजाबी में तथा विशेषरूप से बर्मी, तिब्बती एवं चीनी भाषाओं के उच्चारण मे यह विशिष्टता उल्लेखनीय है। हाँ, दो-एक विस्मयादिबोधक अव्ययों,

जैसे, [हँ], [अँ] आदि के उच्चारण में, भोजपुरी में, सुर के कारण विशेषता अवश्य आ जाती है। ऊँचे-नीचे सुर के कारण इनके अर्थ में भी अन्तर आ जाता है। नीचे [हँ] का उच्चारण प्रदर्शित किया गया है—

१. [ह-अँ] सम अथवा अवरोही सुर = हाँ।

२. [ह'-अँ], उदात्त या उच्च या आरोही सुर = क्या ऐसा है?

३ [ह-अँ], अनुदात्त या निम्न सुर = ऐसा ही है।

४ [हँ-अँ], मध्यम आरोही निम्न सुर = हाँ, ऐसा हो सकता है किन्तु—'।

§४० दो समानान्तररेखाओं के बीच विन्दुओं तथा रेखाओं के द्वारा सुर को प्रदर्शित किया जाता है। ऊपर तथा नीचे की रेखाएँ वस्तुत साधारण सुर की सीमाएँ प्रकट करती हैं। बिन्दु सुर के धरातल को तथा रेखाएँ उसके उन्नयन एवं अवनमन को प्रदर्शित करती हैं। प्रत्येक बिन्दु अथवा रेखा एक-एक अक्षर का प्रतिनिधित्व करती है और बड़ा शून्य स्वराघातवाले अक्षर का द्योतक होता है।

§४१ भोजपुरी सुर (Intonation) के सम्बन्ध में निम्नलिखित विचार प्रकट किये जा सकते हैं—

निम्न सुर में, भोजपुरी में, साधारण वक्तव्य। यथा—

(४)

हम ब'नारस में इ कपड़ा किनलीं
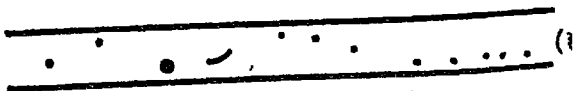
(मैंने बनारस में यह कपड़ा खरीदा)

तुलनात्मक अध्ययन के लिए ऊपर के भोजपुरी वाक्यों के रूप नीचे पश्चिमी हिन्दी में दिये जाते हैं। इनसे भोजपुरी तथा पश्चिमी हिन्दी का अन्तर स्पष्ट हो जायगा।

(५)

वह चा'वल ला'ने ग'या

(६)

मैं कल'कत्ता ग'या

(७)

उसके भा'ई ने मुझसे यह क'हा।

(८)

मैंने ब'नारस में यह कपड़ा ख'रीदा

जहाँ तक वाक्य-स्वराघात का प्रश्न है, पश्चिमी हिन्दी की अपेक्षा भोजपुरी का बँगला से अधिक साम्य है। यह बात डा० चटर्जी कृत 'ए बँगाली फोनेटिक रीडर' के ६१ तथा उसके बाद के अनुच्छेदों के देखने से स्पष्ट हो जाती है। बँगला से साम्य प्रदर्शित करने के लिए नीचे भोजपुरी के कतिपय वाक्य दिये जाते हैं—

नीचे का वाक्य साधारण प्रश्न-वाचक है। इसमें निम्न आरोही सुर [Falling rising tone] का प्रयोग हुआ है।

(९)

तूँ का जइ'ब
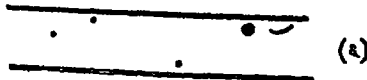
तुम क्या जाओगे ?

किन्तु सन्देह प्रकट करने में निम्न सुर होगा।

(१०)

तूँ का जइब ?
तुम क्या जाओगे ?

(११)

तो हार माई का दि'ही ?
तुम्हारी माँ क्या देगी ?

जब प्रश्न करते समय किसी विशेष बात पर बल देना होता है तब निम्न सुर अथवा अन्त में आरोही निम्न सुर (High falling pitch) का प्रयोग किया जाता है तथा स्वराघात वाला शब्द भी निम्न सुर (Low pitch) पर होता है। इसके उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

(१२)

तो हार माई का' दिही ?
तुम्हारी माँ क्या देगी ?

(१३)

तो हार मा'ई का' दिही ?
तुम्हारी माँ क्या देगी ?

(१४)

तो हार म'ाई काँ दिही
क्या तुम्हारी माँ देगी ?

[साधारण प्रश्न]

(१५)

राम के भाई क'तहत बड़ ?
राम का भाई कितना बड़ा (है ?)

(१६)

राम के भा'ई कतहत बड़
राम का भाई कितना बड़ा (है ?)

(१७)

रा'म के भाई केतहत बड़
राम का भाई कितना बड़ा (है ?)

भावात्मक वाक्य का निम्न सुर में अन्त होता है। यथा—

(१८)

आः कइ'सन सुन्नर
अहा, कितना सुन्दर !

§ ४२ साधारण भोजपुरी वाक्य, जिनमें एक से अधिक खण्ड होते हैं, निम्नलिखित रूप में चलते हैं—

(१९)

शीघ्रता से वार्तालाप करते समय, प्रायः सुर निम्न हो जाता है और एक प्रकार की थकान का अनुभव होने लगता है ; किन्तु भावावेश में विभिन्न प्रकार के सुर उत्पन्न हो जाते हैं। नीचे एक उदाहरण दिया जाता है—

(२०)

बाँकि स'ब दुख के एगो अन्त बा
किन्तु सभी दुख का अन्त होता है।

(२१)

सब कॉ नी'क नइखे लॉ'गत
सबको अच्छा नहीं लगता।

(२२)

हमनी के एगो पं'डित रहले
हमलोगों के एक पण्डित थे।

प्रा० भा० आ० भा० का आ

§ ४८ प्रा० भा० आ० भा० के आ का निम्नलिखित रूप में परिवर्तन हुआ है—

प्रा० भा० आ० भा० आ > म० भा० आ० भा० आ > अ० अँ अँ > भो० पु० अ/।
अर्थात् प्राचीन भारतीय आर्य भाषा का आ मध्यकालीन युग की प्राकृत में आ ही रहा; किन्तु अपभ्रंश काल में वह अँ हो गया और भोजपुरी में यह लुप्त हो गया। यथा—

आस् (आशा); ओस् (अवश्याय); कल् (कला), मशीन; नींन् (निद्रा), नींद; बात् (वार्ता); घोड़सार् (घोट + शाला), घुड़साल; हथिसार् (हस्ति + शाला); घिन् (घृणा); साँझ् (सन्ध्या); धार् (धारा); लाज् (लज्जा); परख् (परीक्षा) (यहाँ लख्, अलख् आदि शब्दों के प्रभाव से 'इ', 'अ' में परिणत हो गया है।)

प्रा० भा० आ० भा० के इ, ई

§ ४९ अन्त्य स्वर के रूप में इ तथा ई का उच्चारण बलिया की भोजपुरी में अतिलघु में होता है। इससे यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि इनका उच्चारण ही नहीं होता; किन्तु वस्तुस्थिति यह है कि ये कठिनाई से सुने जाते हैं। बनारस की भोजपुरी में इनका लोप हो गया है। यथा—

बलिया	गाँठि	∠	ग्रंथि
बनारस	गाँठ्	∠	"
बलिया	बहिनि	∠	भगिनिका
बनारस	बहिन्	∠	"
बलिया	सत्तरि	∠	सप्तति
बनारस	सत्तर्	∠	"
बलिया	पाँति	∠	पंक्ति
बनारस	पाँत्	∠	"
बलिया	गाभिनि	∠	गर्भिणी
बनारस	गाभिन्	∠	"
बलिया	भभूति	∠	विभूति
बनारस	भभूत्	∠	"
बलिया	जाति (अ० त०)	∠	जाति
बनारस	जात्	∠	जाति
बलिया	रीति	∠	रीति
बनारस	रीत्	∠	"
बलिया	मुरति	∠	मूर्ति
बनारस	मुरत्	∠	"

प्रा० भा० आ० तथा म० भा० आ० भा० का ए

§ ५० मागधी से प्रसूत होने के कारण कर्ता का 'ए' भोजपुरी में 'इ' में आया किन्तु कालान्तर में यह भी लुप्त हो गया। इसी प्रकार अधिकरण का 'ए' भी अपभ्रंश में इ में परिवर्तित हो गया और आगे चलकर यह क्रिया-विशेषण के रूप में प्रयुक्त होने लगा। यह भी अवशिष्ट रूप में प्रयुक्त होने लगा। यह भी अवशिष्ट रूप में ही भोजपुरी में मिलता है। यथा—

आस, पास् ∠ आश्रे पार्श्वे, चारों ओर; घर्, घर् ∠ गृहे गृहे, प्रत्येक घर में।

तीसरा अध्याय

आदिस्वर

§ ५१ आदि अच् (Syllable) के स्वर प्राय. सुरक्षित रहते हैं; किन्तु अमुख्य अचों पर स्वराघात होने के कारण, मूल आदि दीर्घस्वर ह्रस्व में परिणत हो जाते हैं तथा ह्रस्व स्वरों का लोप हो जाता है । भोजपुरी में इसके निम्नलिखित उदाहरण उपलब्ध हैं। यथा—

भीतर् (अभ्यन्तर); √भींज् (अभ्यञ्ज); √बइठ् (उपविष्ट) बैठना; लाची (एला—) मि०, हिं० इलायची; रीठा (अरिष्ट); पनही (उपानह), तीसी ∠ *अतिसी ∠ अतसी ; सवार् (पुरानी फा० के असवार ∠ सं० अश्ववार से यह शब्द प्राकृत में आया और तत्पश्चात् सवार रूप में आधुनिक भाषाओं में प्रविष्ट हुआ।)

डूमरि (उदुम्बर), गूलर ; रेंड़ी (एरण्डिका); लउकी (अलाबु—), लौकी।

आदि स्वर परिवर्तन

(i) अॅ के साथ आदि व्यंजन + एक व्यंजन

§ ५२ प्रारम्भिक अच् में, एक व्यंजन के पूर्व आनेवाला अॅ भोजपुरी में अॅ ही रहता है। यथा—

कॅंवल (कमल); जॅल् (जल-); कॅड़ुआ (कटुक-); फॅर् (फल); चाल् (चला,) चालाकी ; हॅर् (हल); कहे (कथयति); खॅन्ता (खनित्र-) गॅड़ूर् (गरुड) जॅन् (जन) भॅर् (भट, भृत, मि० बंगला, भड़्, जाति विशेष); अ० त० दॅही (दधी); कॅलस् (कलश); धॅनुख (धनुष)।

फारसी-अरबी शब्दों में भी यह अॅ सुरक्षित रहता है। यथा—मॅहल् ; गॅजल् ; फॅसल्, जॅवान् ; नॅमाज् खॅबर् आदि।

§ ५३ प्रा० भा० आ० तथा म० भा० आ० भा० में, प्रारम्भिक अचों में दो अथवा अधिक व्यञ्जनों के पूर्व आनेवाला अॅ।

बाद की म० भा० आ० भा० अर्थात् अपभ्रंश तक यह अॅ इसी रूप में रहा; किन्तु आ० भा० आ० भाषाओं में व्यञ्जनों की सरलता के साथ-साथ यह 'आ' हो गया ; पर कहीं-कहीं स्वराघात के अभाव ने इस 'आ' को निर्बल करके 'अॅ' बना दिया। जब संयुक्त व्यञ्जन में एक अनुनासिक व्यंजन भी रहता है तब इसका लोप हो जाता है और आ में अनुनासिक लग जाता है। यथा—

चाम् (चर्म); छाता (छत्र); भात् (भक्त); भाट् (भट्ट); साच् (सत्य), काम् (कर्म); घाम् (घर्म); आज् (अद्य); कान् (कर्ण); पाच

(पर्ण) ; गाल् (प्रा० गल्ल) ; आँत् (अन्त्र) ; जाँत् (यन्त्र) ; दाँत् (दन्त) ; आँकुस् (अङ्कुश) ; आँक् (अङ्क), संख्या।

§ ५४ एक या संयुक्त व्यञ्जन के पूर्व आनेवाला प्रा० भा० आ० भा० का 'अ' जब म० भा० आ० भा० में अॅ बन गया तब उसका स्वरूप मूल अॅ की भाँति ही हो गया। यथा—

गृह>*गर्ह>घर् ; कृत्य>कच्च>काज (जैसा कि 'काचारल, में; यथा—कपड़ा काचारल्) किन्तु कचहरी<कृत्य-गृह ; नृत्य>नच्च>नाच; किन्तु नच'वनी ; कर्म>कम्म>काम् किन्तु कमचोर् ; भक्त>भत्त>भात्; किन्तु भत'-खोर् ; आदि।

आदि 'आ' तथा आदि अच् में 'आ'

§ ५५ प्रा० भा० आ० भा० का एक व्यंजन के पूर्व आनेवाला 'आ' म० भा० आ० भा० तथा आ० भा० भा० में 'आ' ही रहा, जब तक कि वह इन दोनों में स्वराघात के अभाव में निर्बल होकर 'अॅ' में परिणत न हो गया। यथा—

खाई (खाति-) ; घाव् (घात) जख्म ; घानी (घ्रानिका) ; पानी (पानीय) ; भाड़् (देशी) (भ्राट) ; भाई (भ्रातृ) ; माई (मातृ), माँ ; सावन् (श्रावण) ; साँवर् (श्यामल) ; नाऊ (*नावुअ* नाविअ, नापित।) ।

§ ५६ स्वराघात के कारण 'आ' निर्बल होकर 'अॅ' में परिणत हो जाता है। यथा—

नॅरिअर (नारिकेल) ; अॅहेरी (आखेटिक) ; अॅसाढ़ (आसाढ़) ; अॅकस् (आक्रोश), शत्रुता ; अॅचवन् (आचमन) ; बॅनारसी (वाराणसीय-) ; अॅनन्न् (आनन्द) ; अॅवँरा (आमलक) ; थॅइली (स्थालिका), थैली ; अकसदीआ (आकाशदीप—) ।

इसी प्रकार अ० त० नरायन् (नारायण) ; अ० त० रजपूत् (राजपुत्र) ; अ० त० अचरज् (आश्चर्य) ; अ० त० अइगा (आज्ञा), भोजन का निमंत्रण।

प्रा० भा० आ० भा० के दो व्यञ्जन के पूर्व का 'आ'

§ ५७ प्रा० भा० आ० भा० में संयुक्त व्यञ्जनों के पूर्व आनेवाला 'आ' म० भा० आ० भाषा (प्राकृत) में अॅ हो गया; किन्तु भोजपुरी में वह पुनः 'आ' में परिणत हो गया। यथा—

आम् (अॅम्ब, आम्र) ; बाघ् (वॅग्घ, व्याघ्र) ; बात् (वॅत्त्, वार्ता); जाड़् (जॅड्ड, जाड्य) ; काज् (कॅज्ज, कार्य) ; तामा (तॅम्ब-ताम्र) ; काठ् (कट्ठ, काष्ठ) भाँड़् भाँड़ा (भण्ड, भाण्ड) ।

§५८ प्रा० भा० आ० भा० से आया हुआ भो० बु० 'आ', चाहे वह एक व्यञ्जन के पूर्व हो अथवा इससे अधिक के, स्वराघात के कारण निर्बल होकर 'अॅ' में परिणत हो जाता है। यथा—

काठ् किन्तु कठ'वति ; बात किन्तु वति आ'इवि (वार्तोपयितव्य) ; बाघ् किन्तु बघॅछा'ल् ; आम् किन्तु अमा'वट्।

§ ५६ प्रा० भा० आ० भा० के आरम्भिक अच् का 'आ' म० भा० आ० भा० में अॅ हो जाता है। भोजपुरी में भी जब इसके बाद स्वराघात-युक्त दीर्घ 'आ' आता है तब यह अॅ, अॅ ही रहता है। यथा—

बखान् (प्रा० वक्खाण, सं० व्याख्यान), प्रशंसा ; भँड़ार, (प्रा० * भण्डार, सं० भाण्डार) ।

आदि इॅ, ई तथा आरम्भिक अचों में इॅ ई।

§ ६० प्रा० भा० आ० भा० तथा म० भा० आ० भा० के आरम्भिक अचों के इँ, ई के बाद जब एक व्यञ्जन आता है तब भोजपुरी में भी इँ, ई की मात्रा में कोई परिवर्तन नहीं होता। इन दोनों ध्वनियों (इँ, ई) के उच्चारण में भोजपुरी की बँगला से पूरी समता है। बँगला में एकाचों में दीर्घ तथा बहुचों में ह्रस्व स्वर रहता है। लिखने में मात्रा का ध्यान बिल्कुल नहीं रहता। समस्त शब्द अथवा वाक्य की लय के सम्मुख मात्रा का इस प्रकार का संयोजन खड़ी बोली (हिन्दी) तथा अन्य भाषाओं में भी पाया जाता है। भोजपुरी भी इस नियम का अनुसरण करती है। यथा—

मूल रूप	उच्चरित रूप
दीन दुखिआ	दिन दुखिआ
चीना बदाम	चिना बदाम
राम सीता	राम सिता

§ ६१ प्रा०भा०आ०भा० तथा म० भा० आ० भा० के आरम्भिक अचों में एक व्यञ्जन के पूर्व आनेवाले इँ, ई वर्ण का मात्रा-काल भोजपुरी में भी उतना ही रह जाता है। यथा—

पियास् (पिपासा), प्यास; खीर् (क्षीर); घिन् (प्रा० घिणा, सं० घृणा) खीला (कीलक), खूँटी; बिहान् (विमान) सबेरा; सियार या सिआर (प्रा० सिआल, सं० शृगाल); खीन् (क्षीण); कीरा (कीट), कीड़ा; नियर्, निअर् (निकट), पास; √ पिए (पिब-) पीना; इत्यादि।

§ ६२ प्रा० भा० आ० प्रा० के इ, ई तथा ऋ से प्रसूत म० भा० आ० भा० के इ, ई के बाद जब दो व्यञ्जन आते हैं तब वे म० भा० आ० भा० में ह्रस्व 'इ' में परिणत हो जाते हैं। भोजपुरी में एक व्यञ्जन के पूर्व ये प्रायः दीर्घ 'ई' हो जाते हैं किन्तु व्यञ्जन+ह के पूर्व ये ह्रस्व 'इ' ही रहते हैं। भोजपुरी में स्वराघात के कारण दीर्घ ई, ह्रस्व 'इ' भी हो जाता है। यथा—

इनार् (इन्द्रागार), चीन्ह् (चिह्न); जीभि (जिह्वा); डीठि (दृष्टि); दीठ; पीठि (*पृष्ठि-) पीठ; पीतर (प्रा० पित्तल), पीतल; बिछी (वृश्च+वृश्चिका); भीखि (भिक्षा-), भीख; ईंटि (इष्ट), ईंट; बिन्ती (विज्ञप्तिका), प्रार्थना, निठुर (निष्ठुर); निकास् (निष्कास), रास्ता।

§ ६३ स्वराघात के कारण 'ई', 'इ' में परिणत हो जाता है। यथा—जीभि किन्तु, जिभि आवल्; पीतर किन्तु पितराइल्; चीन्ह किन्तु चिन्हारू।

आदि स्वर रूप में उ, ऊ तथा प्रारम्भिक अच् में उ, ऊ

§ ६४ आदि स्वर रूप में उ, ऊ, तथा प्रारम्भिक अच् में एक व्यंजन के पूर्व के उ, ऊ भोजपुरी में अवशिष्ट रहते हैं। यथा—

खुर् (क्षुर); पुरान् (पुराण), पुराना; गुआ (गुवाक), कच्ची सुपारी; भुइँ (भूमि); छूरी (क्षुरिका); कुँवार (कुमार); गूह् (गूथ), गुह; धूहा (ध्रुव-); जुआ (द्यूत-); पुत्ती (प्रा० पुत्ति- सं०, पुत्तिका); सुगा (शुक-), तोता; अ० तं० उपास् (उपवास); आदि।

§ ६५ प्रा० भा० आ० एवं म० भा० आ० भाषाओं में दो या अधिक व्यञ्जनों के पूर्व आनेवाले उ, ऊ वैसे ही रहते हैं। यथा—

खूद् (क्षुद्र); दूबर् ; (दुर्बल); सूत् (सूत्र); √ उखर् (प्रा० उक्खड़), उखड़ना; ऊँच् (उच्च), ऊँचा; उजर (उज्ज्वल); √ उड़् (प्रा० √ उड्ड ,) उड़ना; ऊद् (उद्र), उद्‌बिलाव; पुछ् (प्रा० √ पुच्छ्) पूँछना; चूल्हि (चुल्ली), चूल्हा; बूझ् (बुध्य-) समझना; चून् (चूर्ण); टूट् (त्रुट्य); टूटना; बूढ़् (प्रा० बुड्ढ); ऊट (उष्ट्र); जूझ् (युध्य-), जूझना, लड़ना; सून् (शून्य); पून् (पुण्य); दूध् (दुग्ध), आदि।

§ ६६ स्वराघात के अभाव में दीर्घ 'ऊ' भो० पु० में ह्रस्व 'उ' में परिणत हो जाता है, यथा—दूध किन्तु दुधमुँहाँ; चून् किन्तु चुनवटी; ऊद् किन्तु उदुबिलारि, आदि।

आदि 'ए', ए तथा आरम्भिक अच् में ए, ए।

§६७ म० भा० आ० भा० के 'ए' तथा प्रा० भा० आ० भा० के 'ए', 'ऐ' एवँ 'अय्' से प्रसूत भो० पु० 'ए', 'ए', एक व्यञ्जन के पूर्व आने से उसी रूप में रह जाते हैं। यथा—

खेप् (क्षेप); खेल् (प्रा० खेला); देवर् (देवर); चेला (चेलक); चे॑रि (चेटी); बेर् (बेला), समय; एगारह्, (* एआरह सं० एकादश); अ० त० तेज् (तेज.); अ० त० भेस् (वेश); त० फेन् (फेन), आदि।

§६८ म० भा० आ० भा० 'ए' तथा प्रा० भा० आ० भा० के 'ए', 'ऐ' एवँ अय् जब दो व्यञ्जनों के पूर्व आते हैं तब वे भो० पु० में 'ए', 'ए' में परिणत हो जाते हैं। यथा—

खेत् (क्षेत्र); बेंत् (वेत्र); सेठि (प्रा० सेट्ठी—, सं० श्रेष्ठिन्-), सेठ; जेठ् (ज्येष्ठ); देख् (प्रा० देक्ख), देखना; भेड़ा (मेड्ड-); गेना (प्रा० गेण्डु); देशी, पेट् (प्रा० पेट्ट); एत्ता (प्रा० एत्तिअ), इतना; हेठाँ (प्रा० हेट्ठ-), नीचे; सेज् (प्रा० सेज्ज)।

§६९ एक अच्‌वाले शब्दों में 'ए' स्वभावतः दीर्घ होता है; किन्तु अधिक अच्‌वाले शब्दों में स्वराघात के कारण यह ह्रस्व मात्रिक हो जाता है। यथा—

जेठ् किन्तु जे॑ठव॑त्; देख् किन्तु दे॑खब॑खी; खेत् किन्तु खे॑तुवा॑री; देस् किन्तु दे॑सा॑न्तर। खड़ी बोली हिन्दी में लघु 'ए' का अभाव है, अतएव वहाँ ए>इ। यथा—

बेटी किन्तु बिटिया; देखना किन्तु दिखा॑ना, आदि।

§७० प्रा० भा० आ० एवँ म० भा० आ० भा० के ओ॑, ओ भो० पु० में एक व्यञ्जन के पूर्व आने से इसी रूप में रहते हैं, किन्तु स्वराघात के कारण इनका प्रायः ह्रस्वीकरण भी हो जाता है। यथा—

कोसा (कोश); गोरू (गोरूप); घोड़ा (घोट-); कोड़ा (क्रोड); गो॑साईं (गोस्वामिन्); गोहूँ (गोधूम) गेहूँ; कोन् (कोण); पोस् (√पोष्य-), पोसना, पालन करना; थोर् (स्तोक+ड), थोड़ा; कोइलि (कोकिल) कोयल; जोइ (योजिता)।

§७१ स्वराघात के कारण भो० पु० में ओ, ओ॑ में परिणत हो जाता है। यथा— घोड़ा किन्तु घो॑ड़मुहाँ, गोहू किन्तु गो॑हुओं।

§७२ प्रा० भा० आ० एवं म० भा० आ० भा० के दो या अधिक व्यञ्जनों के पूर्व आनेवाले ओ॑, ओ, भो० पु० में उसी रूप में रहते हैं। यथा—

गोड़् (प्रा० गोड्ड), पैर; ओठ् (ओष्ठ), होंठ; गोठ् (गोष्ठ); डोम् (डोम्ब); घोल् (प्रा० घोल्ल); गोत् (गोत्र); देशी गोंड़् (प्रा० गोण्ड), अनार्य जाति विशेष, जोता (योक्त्र); ढोल् (प्रा० ढोल्ल); पोथा (प्रा० पोत्थअ), पुस्तक।

§७३ स्वराघात के कारण ओ, ओ॑ में परिणत हो जाता है। यथा—

गोंड़ किन्तु गों॑ड़इन्; डोम किन्तु डो॑महाउजि; आदि।

§७४ म० भा० आ० भाषा में इ तथा ए और उ तथा ओ आपस में स्थान बदलते रहे हैं। इनमें प्राय. निम्न ध्वनि ही अधिक प्रचलित हुई है, अर्थात् 'इ' तथा 'उ' की अपेक्षा 'ए' और 'ओ' ध्वनियों का ही अधिक प्रयोग हुआ है। म० भा० आ० भा० का यह प्रभाव भो० पु० में भी दिखाई देता है। यथा—

सं० छिद्र = प्रा० छिद्द > छेद्द > भो० पु० छेद्; देशी से प्रसूत सं० तिन्त > प्रा० *तेन्त > प्रा० सं० तेन्तली (तिन्तिडी) > म० सं० तेंतुल्, भो० पु० तेंतुल्; पुष्कर > पोक्खर भो० पु० पो॑खरा, पो॑खरी आदि, मुण्ड > *मोड > मोण्ड; सम्भवतः इसका सम्बन्ध देशी 'मुड' से भी है, *गृह्य > गो॑च्छ, गोंछ; *पुस्त > पो॑त्थ, भो० पु० पोथी।

चौथा अध्याय

शब्द के अभ्यन्तर के स्वर

(१) म० भा० आ० भा० के असम्पर्क स्वर

§७५ आघात के अभाव में, शब्द के मध्य के स्वरों के लोप के उदाहरण प्राचीन भारतीय आर्य भाषा के प्रारम्भिक रूपों में उपलब्ध होते हैं। यथा—सुवर्ण>स्वर्ण (वै० लैं० § १६७)।

यह सहज ही में अनुमान किया जा सकता है कि अन्य आधुनिक आर्य भाषाओं की भाँति जब भो० पु० का आरम्भ हुआ तब शब्द के भीतर के स्वर पूर्णरूप से उच्चरित होते थे। किन्तु कई आधुनिक आर्य भाषाओं में, स्वराघात के अभाव में, आघात सहित स्वरों के आस-पास के आघात रहित स्वर जो वस्तुतः असम्पर्क स्वर थे, लुप्त होने की ओर अग्रसर होने लगे। भो० पु० में, भीतरी अच् का, बंगला की भाँति, पूर्णरूप से लोप नहीं हुआ। वास्तव में भोजपुरी उच्चारण में बंगला की भाँति द्विमात्रिकता नहीं है। [वै० लैं० § १६७] उदाहरण स्वरूप बंगला में पागल् शब्द में दो अच् हैं, किन्तु पागल्+स्त्री० प्र०—ई = पागली में भी दो ही अच् हैं; परन्तु भो० पु० में इनके रूप पागल् तथा पागलि हैं। खड़ी बोली में, ऐसी अवस्था में, आन्तरिक व्यञ्जन पूर्णतः लुप्त हो जाते हैं और भोजपुरी के बहुत से शब्दों और रूपों में, जहाँ आन्तरिक स्वर अनुपस्थित हैं, हमें हिन्दी का ही प्रभाव मानना पड़ता है।

अन्त्य स्वर के लोप के उपरान्त तीन अच् वाले शब्दों के आन्तरिक स्वरों में कुछ परिवर्तन नहीं हुआ; यथा कलम् बरछ् इत्यादि। किन्तु जब प्रत्यय के जुड़ जाने से शब्द का विस्तार हुआ तब आन्तरिक स्वर निर्बल पड़ गया और बहुत से स्थानों में लुप्त हो गया। चार या इससे अधिक अच् वाले सामासिक शब्दों में, आघात रहित आन्तरिक स्वर, जो प्रायः अन्तिम अच् में रहते हैं, यदि दीर्घ नहीं हुए, तो लुप्त हो जाते हैं। यथा—

धर्ना <धरण-; कल्मी <कलम्बिक; टक्सार् <टङ्क-शाला, टकसाल; बध्ना <वर्धन-; पसारी <*पन्सारी <पण्यशालिक; नहर्नी <*नहहरणि अं < नख-हरणिका; मय्ना <मदन-; छक्ड़ा <*छक्कड़, शकट; अट्तिस < अष्ट-त्रिंशत्, अड़तिस; सर्सठि <सप्त-षष्टि, सड़सठ, इत्यादि।

§७६ प्रा० भा० आ० भा० तथा म० भा० आ० भा० का 'आ' भो० पु० में निर्बल होकर लुप्त हो जाता है। यथा—

आख्ड़ा <अक्ष-वाट, अखाड़ा; ताम्ड़ा <ताम्र+पट्ट, ताँबे का बर्तन; रख्वार् <रक्षापाल; गोप्ला <गोपाल, व्यक्तिवाचक संज्ञा शब्द।

§७७ प्रा० भा० आ० भा० तथा म० भा० आ० भा० के -इ-, -ई- का लोप।

बंगला की भाँति ही शब्द के भीतर का इ, अ रह जाता है, जैसा कि भो० पु० के प्राचीन लेखों एवं कविताओं में पाया जाता है। बलिया की भोजपुरी में इ अभी तक चल रहा है, किन्तु बनारस तथा आजमगढ़ की बोलियों में यह लुप्त होने के क्रम में है। यथा—

घर्नी < गृहिणी ; हर्ना < हरिण ; कुटनी < कुट्टिनी ; सर्सो < सरिसव, सरसों ; खन्ता < खनित्र ; पन्ता < पानी + इत-, पानी डुबोकर रखा हुआ बासी भात।

§७८ भो० पु० में उ का लोप अधिक प्रचलित नहीं है। यथा—कुर्मी < कुटुम्बिन, जाति विशेष।

टिप्पणी—'ए' तथा 'ओ' का लोप भोजपुरी में नहीं होता।

पाँचवाँ अध्याय

भो० पु० में भीतरी स्वरों का अक्षुण्ण रहना

§ ७६ भो० पु० में शब्दों के भीतर के स्वर, जब वे [मूल म० भा० आ० भा० अथवा पुरानी भो० पु० के अन्त्य स्वर लोप के कारण] शब्द के अन्तिम अक्षर में आते हैं तथा व्यञ्जनान्त होते हैं तब वे अक्षुण्ण रहते हैं। यथा—

आँचर् (अञ्चल) ; उजर् (उज्ज्वल); उतर् (उत्तर); कँवल् (कमल); कुसल् (कुशल) ; केँवट् (केवट्ट<कैवर्त्त) ; चँवर् (चमार) ; चरन् (चरण); चन्नन् (चन्दन) ; जिअन् (जीवन) ; तातल (तप्त-ल) ; देवर (देवर); पाँजर् (पञ्जर) ; पितर्, पितल् (पित्तल<पीत-ल॰) ; फोरन् (स्फोटन); सावन् (श्रावण) ।

§ ८० आ = म० भा० आ० भा० -आ-, -अँ- ।

अनाज (अन्तज्ज, अन्नज्ज), नाज ; एगारह (एकादश), ग्यारह ; कराह (कटाह) कड़ाहा ; कपा्स (कर्पास), कपास; कियारी (मि० बं० केयारी<केदारिका), क्यारी , गुआल् (गोपाल) ; कोँहार (कुम्भकार), कुँभार ; चमार (चर्मकार) ; छिनार् (छिन्न-नाल), छिनाल ; निहाइ (निधापिका), निहाई; निहार् (मि०, मध्य बं० निहाले<निभालय-), देखना ; बङ्गा (बंगा) ली<वङ्गालिक, दखान (व्याख्यान) ; बिहान् (विभान), प्रात.काल; मसान (श्मशान); सियार (शृगाल) स्यार ; सोहाग् (सौभाग्य), आदि ।

§ ८१ इ, ई

अहिथिर् (अस्थिर) ; अहिर् (आभीर) ; कहनी (कथनिका), कहानी ; गहिर (गभीर), गहरा ; गाभि्नि (गर्भिणी) ; चालिस् (चत्वारिंशत्) ; तीस् (त्रिंशत्) नातिनि (नप्त्रि्नि), नातिन ; बहिर् (बधिर), बहरा ; बनिया (वणिक) ; मंदिल् (मन्दिर), आदि ।

§ ८२ उ, ऊ

अँकुसी (अङ्कुश—) ; कपूर (कर्पूर) ; कुकुर् (कुक्कुर) ; खजूर (प्रा० खज्जूर ∠ सं० खर्जूर) ; गरुड़् (गरुड) , पक्षीविशेष ; चउकू (चतुष्क) ; अ० त० निठुर (निष्ठुर) ; पाहुन (प्राहुण) ; फागुन (फाल्गुण) ; भसुर् (भ्रातृ + श्वशुर);

मउर (मुकुट) ; मानुस् (मनुष्य) ; राउत् (राज-पुत्र) ; राउर् (राज-कुल) ; सेनुर् (सिन्दूर) ; ससुर् (श्वशुर), आदि।

§ ८३ 'ए', प्रा० भा० आ० भा० के 'ए' आदि विभिन्न रूपों से आगत। यथा—

अहेरी (अ खेटिक), शिकारी ; उपदेस् (उपदेश) ; गनेस् (गणेश) ; त० महादेव ; अ० त० परेत (प्रेत), आदि।

§ ८४ ओ

त० अघोरी (अघोर-) ; त्रिछोह (विक्षोभ) ; आदि।

छठा अध्याय

संपर्क स्वर (Vowels in Contact)

§८५ प्रा०- भा० आ० भा० के आभ्यन्तरिक स्पर्श व्यञ्जनों के लोप हो जाने के कारण म० भा० आ० भा० में अनेक सम्पर्क स्वर आ गये। अपभ्रंशकाल तक इन स्वरों का पृथक् रूप में अस्तित्व मिलता है।

सिद्धान्ततः संस्कृत में दो स्वर साथ-साथ नहीं आते, ऐसे स्थलों पर सन्धि हो जाती है। इसे वैयाकरणों का सिद्धान्तमात्र माना जा सकता है और इसका पालन भी कड़ाई के साथ लिखित (साहित्यिक) भाषा में हुआ है। हमें यह निश्चित रूप से समझना चाहिए कि अन्य भाषाओं की भाँति ही प्राचीन भारतीय आर्य भाषा (वैदिक) में भी दो स्वरों का प्रयोग साथ-साथ होता था और हमारे ऋषिगण 'तुभ्यं ह्यग्ने' के स्थान पर 'तुभ्य'म् हि अग्नै' कहा करते थे। द्वितीय प्राकृत युग में जब आन्तरिक स्पर्श व्यञ्जनों का लोप हो गया, तब स्वाभाविक रूप से दो स्वरों का साथ-साथ प्रयोग होने लगा और इस प्रकार **हृदय, रसिक** तथा **चकित** के स्थान पर **हिअअ, रसिअ** तथा **चइअ** शब्द अस्तित्व में आये। कुछ समय तक इन स्वरों का पृथक् अस्तित्व रहा और समीकरण के कारण ये एक दूसरे से मिल न सके; किन्तु कुछ दशाओं में अत्यन्त प्राचीन काल में ही ये मिल भी गये थे; यथा—**मोर < मयूर**।

§८६ अन्तिम प्राकृत (अपभ्रंश) तथा आधुनिक आर्य भाषाओं के प्रारम्भिक युग में प्राचीन भारतीय आर्य भाषा के स्वरों की निम्नलिखित तीन प्रक्रियाएँ मिलती हैं—

[क] ये सन्ध्यक्षर बन गये।

[ख] दो स्वर एक स्वर में परिणत हो गये।

[ग] 'य' तथा 'व' श्रुतियों के प्रयोग से इन स्वरों का पृथक् अस्तित्व बना रहा।

§८७ जब व्यञ्जन का लोप हो गया तब उसका स्थान 'अ', '-य' अथवा 'व' श्रुतिध्वनि ने ग्रहण किया। यह ध्वनि वस्तुतः मूल व्यञ्जन की उष्मध्वनि का स्थानापन्न होकर आई। आधुनिक आर्य भाषा के प्रारम्भिक युग तक के अनेक शब्दों में यह ध्वनि वर्तमान है किन्तु अन्य दूसरे शब्दों में इसका पूर्णरूप से लोप हो गया है और इसके परिणाम स्वरूप दो उद्वृत्त स्वरों का एक स्वर में परिवर्तन हो गया है।

§८८ यह बहुत सम्भव है कि सम्पर्क स्वर का सन्ध्यक्षर में परिवर्तित हो जाना, संयोगी स्वर परिवर्तन की पूर्वावस्था हो। ईसवीपूर्व, तीसरी शताब्दी के अशोक के शिला में 'ऐ', सन्ध्यक्षर, **थैर < स्थविर, त्रैदस < त्रयोदश** आदि में वर्तमान है किन्तु 'य' 'व' श्रुति का पता नहीं है; पर खारवेल के शिलालेख में **चवुथ < चतुर्थ** तथा भारहुत के **अवयेसि <** अवादेषि = अवादयत् में ये श्रुतियाँ वर्तमान हैं।

§८६ जैन प्राकृत में य-श्रुति का उल्लेख तो मिलता है; किन्तु व-श्रुति का नहीं। य-श्रुति की यह जैन परम्परा ईसा के पूर्व की शताब्दी से ही प्रारम्भ होती है जहाँ यह कदल, बदल, आदि शब्दों में मिलती है। सर्वप्रथम इनका उष्म उच्चारण हो जाता है, जब ये *कहल, *बहल में परिणत हो जाते हैं। तत्पश्चात् ये * कयल, * कवल तथा . वयर, *ववर तथा पुनः कइल, बइर हो जाते हैं। ये अन्तिम रूप ही भो० पु० तथा हिन्दी में केला, बंगला में कला, भो० पु० में बइर्, हिन्दी में बेर् तथा बोलचाल की बंगला में बोर् हो जाता है।

§९० यह सहज जी में अनुमान किया जा सकता है कि बँगला तथा असमिया की भाँति ही प्राचीन भो० पु० में भी सन्धि के द्वारा सम्पर्क स्वरों का संयोग हुआ होगा; किन्तु बँगला तथा असमिया की अपेक्षा भो० पु० मे स्वर संयोग कम हुआ है। भो० पु० में स्वरों की निम्नलिखित दो क्रियाएँ मिलती हैं—

[क] कहीं-कहीं 'य' तथा 'व' श्रुतियों की सहायता से स्वरों को पृथक् रखा गया है।

[ख] जहाँ ये श्रुतियाँ स्पष्ट रूप से नहीं सुन पड़ती हैं, वहाँ सन्धि के कारण स्वर मिल गये हैं।

उद्वृत्त स्वर, 'इ', 'उ', जब दूसरे अच् में आते हैं तथा जब पहले अच् पर स्वराघात होता है तब बनारस की भो० पु० में 'इ', 'उ', निर्बल होकर 'अय्', 'अव्' में परिणत हो जाते हैं; किन्तु बलिया की भो० पु० में प्राचीन भो० पु० की भाँति 'इ', 'उ' वैसे ही रहते हैं। यथा—प्रा० भो० पु० गइल, आ० भो० पु० (बलिया) गइल्, बनारसी भो० पु० गयल्, इसी प्रकार प्रा० भो० पु० बइठल, आ० भो० पु० (बलिया) बइठल्, भो० प्र० बयठल, इसी प्रकार चाउर्, चाउर, चावर या चावल, आदि।

§९१ संस्कृत के सन्ध्यक्षर ऐ' 'औ' का उच्चारण आदर्श भो० पु० अ-इ, अ-उ रूप में होता है। पश्चिमी हिन्दी में, ये एक ध्वनि (Monothong) बन गये हैं और इनका उच्चारण भी क्रमशः अंग्रेजी के Hat तथा Law के 'अ' की भाँति होता है। हिन्दी के इस उच्चारण का प्रभाव भो० पु० पर भी पड़ा है। इस प्रकार संस्कृत 'ऐ' 'औ' भो० पु० में या तो अ-इ, अ-उ की भाँति उच्चरित होते हैं अथवा हिन्दी उच्चारण के प्रभाव के कारण कभी-कभी उनका उच्चारण ऊपर की भाँति होता है।

§९२ जब 'अ इ', 'अ उ' वाले तत्सम तथा अर्द्धतत्सम भो० पु० शब्दों के अन्त में स्वर प्रत्यय लगते हैं और वे व्यञ्जनान्त नहीं होते तब उनके अ इ, अ उ क्रमशः ऐ॑, औ॑ मे परिणत हो जाते हैं। यथा—उ बदमास् मउन् होके मौ॑नी बाब बनल् बा, वह बदमाश मौन होकर मौनी बाबा बना है; चइत मे लोग चै॑ता गावेला, चैत्र में लोग चैता गाते हैं।

§९३ य-श्रुति तथा व-श्रुति के अनेक उदाहरण भो० पु० में उपलब्ध हैं। नीचे य-श्रुति के उदाहरण दिये जाते हैं। यथा—नरियर् (नारिकेल), नारियल; सियार् (शृगाल), स्यार; कियारी (केदारिका), क्यारी; दिया (दीव < दीप), दीया; कायर् (कातर), राय (राज); जीये (जीवति), जीता है; बाथी (वात—), वायु

रोग; मायी (माता), माँ; पियारी (प्रिय-कारिका), प्यारी; हिया (हृदय); खयर् (खदिर), खैर; बीया (बीज)।

§ ६४ व-श्रुति के निम्नलिखित उदाहरण भोजपुरी में मिलते हैं—

सुवर् (शूकर); केवड़ा (केत—+ड), केवड़ा; छावनी (छादनिका); धूवाँ (धूम); कुवाँ (कूप), कुआँ; धोवा (धोआ < धौत), धोया हुआ; सूवा (सूचक), सूजा; जूवा (द्यूत); रोवाँ (लोमक,—रोमक); गुवा (गुवाक), कच्ची सुपाड़ी; पूवा (पूप-), पक्वान।

§ ६५ भो० पु० के कतिपय शब्दों में ह-श्रुति भी मिलती है। यथा—

बेहुला = सं० विपुला, मनसा की कहानी की नायिका; धूहा < ध्रुव।

सम्पर्क स्वर का संयोग

(Contraction of Vowels in Contact)

§ ६६ द्वितीय प्राकृत तथा अपभ्रंश युग में उद्वृत्त स्वरों का संयोग साधारण बात थी (वै० लैं० १७२)। भोजपुरी में इसके कई उदाहरण मिलते हैं। यथा—

खाइ (खा अ इ, खादति, मि०, प्रा० बं० खाइ); पाइक् (पाआइक्क), अन्हार् (अन्ध-आर, अन्धकार, मि०, बं० आँधार्)।

(i) आरम्भिक अच् के—अ अ—,अव—, तथा—अवँ भोजपुरी में ओ में परिणत हो गये हैं। यथा—

भादो (भद्दवअ, भाद्रपद-); कानो (* कन्दवॅ, कद्दम, कर्दम), कीचड़; दानो (* दाणव, दानव), राक्षस।

(ii) आभ्यन्तरिक य-श्रुति तथा व-श्रुति के अआ, आअ तथा आआ वाले अपभ्रंश के शब्द भोजपुरी में आ में परिणत हो गये हैं। यथा—

इनार् (इन्द्रागार), अ० त० उपास् (उपवास), अन्हार् (अन्धकार), अँधेरा; भुजाली (भुज-पालिक-) कटार; गँड़ास् (गरुड-पाश) गँडासा, कोठारी (कोष्ठागारिक), भंडारी; जुआड़ी, जुआरी (द्यूत-कारिक); बरात् (वर-यात्रा)।

—आर-युक्त अनेक सामासिक शब्द इसी के अन्तर्गत आते हैं। यथा—

भँड़ार् (भाण्डागार), कोंहार् (कुम्भ-कार), चमार् (चर्म-कार); लोहार् (लौहकार); सोनार् (स्वर्ण-कार), आदि।

(iii) प्रा० अइ, सं० अति, अन्य पुरुष (सम्भाव्य) के प्रत्यय के रूप में 'ए' में परिणत हो जाता है। यथा—

देखे (*देखइ), (यदि वह) देखता है, चले (चलइ), (यदि वह) चलता है; पढे (पढ़इ), (यदि वह) पढ़ता है।

(IV) अन्य पुरुष आज्ञार्थक भोजपुरी 'उ' प्रत्यय की उत्पत्ति 'अ उ' से हुई है; अर्थात् अउ>उ। यथा—

चलु (चलउ), चलो; दे`खु (दे`खउ), देखो; करु (करउ), करो; छाड़ु (छड्डइ), मि०, चर्य्यापद पू०, छाड़ु, छोड़ो।

(V) अपभ्रंश के 'अए' का निम्नलिखित रूप में परिवर्तन हुआ—

अए ७ अइ ७ ए। यथा—

तें (< तैं ∠ त्वया + -एन), तुम; में (< मैं ∠ मया + —एन), मैं। अन्यपुरुष भविष्यत् काल के प्रत्यय में भी यह परिवर्तन द्रष्टव्य है—करिहें (करिहइ ∠ करिष्यति), करेगा।

(VI) प्राकृत के इ इ, इ ई, ई इ तथा ई ई भोजपुरी में ई में परिणत हो गये। यथा-

असी (*असी-इ, अशीति), अस्सी; खाइल् (* खाइ + इल्ल-, *-खाइ अ + इल्ल-, ∠ खादित + इल-), खाना।

अन्य पुरुष भविष्यत् काल के रूप, यथा—

करी (*करि-इ ∠ *करिहि ∠ करिष्यति) करेगा; चली (*चलि-इ ∠ * चलिहि ∠ चलिष्यति), चलेगा।

(VII) अपभ्रंश 'इ अ', 'ई अ' का निम्नलिखित दो रूपों में भोजपुरी में परिवर्तन हुआ—

[क] आरम्भिक अच् में ये 'ए', 'ए' अथवा 'आ' में परिणत हो गये। यथा—

एतना (एत्तिअ-< * इअत्त- ∠ इयत), इतना; छेमा (छिमा ∠ * दयमा = क्षमा); डेढ़ (दिअड्ढ ∠ द्वयर्द्ध), डेढ़; वे`था (*विअथा, व्यथा)। आधुनिक भोजपुरी के वाथा शब्द पर बँगला के 'व्यथा' के उच्चारण का प्रभाव प्रतीत होता है, मि० बंगला का उच्चारण व्याथा।

[ख] प्रा० का अन्त्य इअ भोजपुरी में ई में परिणत हो गया। यथा—

लाठी (*लट्ठिअ-, लट्ठिका); मामी (*मामिका); रँड़ी (*परेंडिआ) ∠ परण्डिका); अहेरी (आखेटिक)।

(viii) 'उ उ', 'उ ऊ', 'ऊ उ', 'ऊ ऊ' भोजपुरी में 'ऊ' में परिणत हो गये। यथा—

दूना (*दुउण- ∠ द्विगुण-); भुखि (*भुउखि ∠ *बुहुक्ख + इका ∠ बुभुक्षा), भूक।

(ix) प्रा० का 'उअ' तथा 'ऊअ' भोजपुरी ऊ में परिणत हो गया—

गोरू (*गोरुअ- ∠ गोरूप); बछरू (*वच्छरुअ- ∠ वत्सरूप), बछवा; गभरू (गर्भ - रूप), जवान; मेहरारू (महिलारूप), पत्नी; पठरू (*पट्ठ-रुअ), भैंस का बच्चा।

(x) प्रा० ए, अ ७ ए, यथा—

छेनी (छेणिअ ∠ छेदनिका)।

(xi) ओ अ ७ ओ, यथा—

ओखा (अोक + अ)।

प्रा० भा० आ० भा० के 'ऋ' का भोजपुरी में परिवर्त्तन

§ ६७ संस्कृत व्याकरण में 'ऋ' की गणना स्वरों में होती है; किन्तु पालि तथा प्राकृत में इसका लोप हो गया है। नागरी तथा बँगलाक्षरों में 'ऋ' अक्षर तो है; किन्तु इसका उच्चारण 'रि' हो गया है। भोजपुरी के पुराने कागद-पत्रों में यह 'ऋ', 'रि' रूप में लिखा मिलता है; क्योंकि ये कागद प्रायः कैथी लिपि में लिखे गये हैं जहाँ 'ऋ' का अभाव है। उत्तरी भारत की सभी भाषाओं एवं बोलियों, में 'ऋ' का 'रि' ही उच्चारण होता है; किन्तु दक्षिण की भाषाओं में जिनमें उड़िया तथा मराठी भी सम्मिलित हैं, 'ऋ' का उच्चारण 'रु' हो गया है।

प्राचीन भारतीय आर्यभाषा में 'ऋ' का उच्चारण किस रूप में होता था—यह कहना कठिन है; किन्तु इतना तो निश्चित है कि इसका उच्चारण आधुनिक 'रि' की भाँति नहीं होता था। अनुमानत. प्राचीन आर्यभाषा में यह संघर्षी स्वर था तथा इसका उच्चारण स्लॉव भाषा के 'र' की भाँति (यथा—ह्र्व्) होता था।

ईरानी तथा पुरानी फारसी में स्वर-रहित 'र' सुरक्षित है; किन्तु अवेस्ता में [कम-से-कम लिखावट में] ॲ र ॲ मिलता है। कदाचित् भारत आर्यभाषा का यह बोल-चाल का रूप था। प्रातिशाख्य में 'ऋ'—ध्वनि का विश्लेषण इस प्रकार किया गया है—¼ मात्रा 'ॲ' + ½ मात्रा 'र्' + ¼ मात्रा 'ॲ', अर्थात् 'अर'। प्राकृत के प्रचलन के ठीक पूर्व 'ऋ' स्वर ने 'अ' 'ए', 'इ', 'उ' अथवा 'ओ' का सहारा लेना प्रारम्भ किया और 'र्' का समीकरण होने लगा। (किन्तु कुछ शब्दों में 'र्' सुरक्षित रहा, यथा—(पालि), इरुब्बेद = ऋग्वेद; इसी प्रकार पालि में 'उसभ' के अतिरिक्त रिसभ शब्द भी प्रचलित था)।

अशोक के शिलालेखों की भाषा के अध्ययन के पश्चात् ब्लाश का मत है कि दक्षिणी-पश्चिमी भारत में 'ऋ' ने 'अ' तथा उत्तर-पूरब में उसने 'इ' तथा 'उ' का रूप धारण किया। (ब्लाश §-३०, टर्नर : गुजराती फोनोलोजी § १२)।

किन्तु भाषाओं तथा बोलियों के अत्यधिक संमिश्रण के कारण, आज यह कहना कठिन है कि किसी क्षेत्रविशेष में 'ऋ' का परिवर्त्तन किस रूप में हुआ है। आधुनिक भोजपुरी में ऊपर के तीनों परिवर्त्तनों के उदाहरण मिलते हैं यथा—

(i) प्रा० भा० आ० भा० का 'ऋ' प्राकृत में 'अ' में [ऋ > अ] परिवर्तित हो गया। कहीं-कहीं पूरक-दीर्घ रूप (Compensatory Lengthening) में 'अ', 'आ' में परिणत हो गया। यथा—

कचहरी (कृत्य-गृह); कान्हा (कृष्ण-); नाच् (नृत्य); माँटी (मृत्तिका); बर या बड़ (वृत्त-), बरगद; बसहा (वृषभ, वसह-), इत्यादि।

(ii) ऋ > प्रा०-इ- > आ० भा० -इ- किन्तु कभी-कभी स्वराघात अथवा पूरक दीर्घ रूप में इ, ई में परिणत हो जाता है। यथा—

घीव् (घृत), घी; घिन् (घृणा); पीठि (पृष्ठ), पीठ; बीछी (वृश्चिक-); नाती (नप्तृक); सींगि (शृङ्ग), सींग; सियार् (शृगाल), स्यार; गीध् (गृद्ध) गीध; सींकर (शृङ्खल, शृङ्का-)।

(iii) ऋ 7 प्रा० -'उ' 7 आ० भा० -उ-, किन्तु कभी-कभी स्वराघात अथवा पूरक दीर्घ रूप में इ 7 ई ; यथा—

बूढ़ (वृद्ध), बूढ़ा ; रूख् (* म् रुक्ख ∠ वृक्ष), पेड़ ; सुने (श्रृणोति), सुनता है ; मुअल् (मृत-अल्ल), मरना।

मध्यकालीन तथा आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के अनुनासिक

(१) अन्त्य अनुस्वार

§ ९८ प्रा० भा० आ० भा० के अनुस्वार तथा अन्त्य म्, दोनों, प्राकृत में अनुस्वार बन गये। अपभ्रंश में म् पूर्व स्वर के अनुस्वार के रूप में परिणत हो गया। यह अन्त्य अनुनासिक के रूप में गुजराती, मराठी आदि आधुनिक भाषाओं में आज भी प्रचलित है ; किन्तु भोजपुरी में इसका अभाव है तथा बँगला से भी इसका लोप हो चुका है।

प्रा० भा० आ० भा० का अनुस्वार वस्तुतः पूर्व अनुस्वार का ही सिलसिला था। इस प्रकार 'अं' वस्तुतः 'अ अं' था और 'इं' 'इ इं' था। प्राकृत में अनुस्वार का यह सिलसिला पूर्ण अनुनासिक ध्वनि 'ङ्', 'म्', 'न्' आदि में परिणत हो गया।

प्रा० भा० आ० भा० (संस्कृत) में स्पर्श वर्णों के पूर्व का अनुस्वार पंचम वर्ण में परिवर्तित हो जाता है। वेद में केवल य्, र्, ल्, व्, श्, ष् तथा स् के पूर्व अनुस्वार आता है। इसे वेद में विशेष अक्षर [ँ अथवा ँ] द्वारा प्रदर्शित करते हैं। अनुस्वार का प्राकृत उच्चारण प्रा० भा० आ० भाषा के युग में ही प्रारम्भ हो गया था। आधुनिक आर्यभाषाओं में, बंगाल में, अनुस्वार का उच्चारण 'ङ्', उत्तरी भारत में न् तथा दक्षिणी भारत में 'म्' के रूप में होता है। 'ह्' तथा 'व्' (जो भोजपुरी में 'ब' हो जाता है) के पूर्व अनुस्वार आने से यह भोजपुरी में 'ङ्' तथा 'म्' में परिणत हो जाता है। यथा—सिङ्ह (सिंह) तथा समाद (सम्वाद के के लिए) = सम्बाद् = सम्वाद्। संस्कृत वंश के अर्द्धतत्सम उड़िया रूप बॉ ङ श की भाँति भोजपुरी में अनुस्वार के उच्चारण के प्राचीन उदाहरण का अभाव है। (देखिए वैं० लैं० § १७५)।

(२) म० भा० आ० भा० के वर्गीय तथा आभ्यन्तरिक अनुस्वार

प्रा० भा० आ० भा० से म० भा० आ० भा० में आये हुए अनुस्वार।

§ ९९ स्पर्श वर्णों के पूर्व के वर्गीय अनुस्वार आधुनिक बँगला तथा हिन्दी में अपने पूर्व के स्वर में लग जाते हैं। यथा—पङ्क>पाँक, दन्त>दाँत। इसी प्रकार कलकत्ता की बँगला में आँब = अम्ब = आम्र तथा हि० आँबा में भी अनुस्वार पूर्ववर्ती स्वर में ही लगता है। किन्तु भोजपुरी में जब स्पर्श वर्ण घोष होता है तब अनुस्वार के साथ उसका समीकरण हो जाता है। पंजाबी में भी ऐसा ही होता है तथा बँगला में भी आंशिक रूप में इसके उदाहरण उपलब्ध हैं। डा० चटर्जी ने अपने निबन्ध 'वैं० लैं०' में यह स्पष्ट रूप से प्रदर्शित किया है कि वर्गीय अनुस्वार से केवल अनुस्वार में परिवर्तित होने के बीच की भी एक अवस्था थी जब अनुस्वार का संक्षिप्त रूप हुआ था। यथा—

दन्त>दान्त>दाँत>दाँत्। इसी प्रकार चन्द्र> चान्द> चाँद्>चाँद।

भोजपुरी में घोष वर्णों के पूर्व के संक्षिप्त अनुस्वार का अनुवर्ती व्यञ्जन से समीकरण हो गया। यथा—

चान्द्>चान्त>चान्; किन्तु दन्त = दाँत् में, 'त्' का समीकरण नहीं होता।

बँगला की भाँति ही भोजपुरी स्वरों के पूर्व या बाद में जब अनुस्वार आता है तब उसका अनुनासिक उच्चारण होता है और अनुस्वार के लिखने की भी आवश्यकता नहीं होती।

§ १०० प्रा० भा० आ० भा० के वर्गीय अनुस्वार तथा अनुस्वार भो० पु० में जिस रूप में आये हैं, उनके उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

(१) वर्गीय अनुनासिक के पूर्व के अघोष स्पर्श तथा महाप्राण वर्ण—दीर्घ होकर स्वर में अनुनासिक लग जाता है तथा स्पर्श एवं महाप्राण वर्ण उसी रूप में रह जाते हैं। बँगला तथा उड़िया के विपरीत भोजपुरी में उस अवस्था के उदाहरण नहीं मिलते, जब पूर्ण अनुनासिक संक्षिप्त अनुनासिक में परिणत हुआ था। यथा—

पाँक (पङ्क), कीचड़; दाँत् (दन्त); गाँठ् (ग्रन्थ-), आँक् (अङ्क); पाँच् (पञ्च); मोंच (मञ्च); पाँति (पङ्क्ति), काँप् (√कम्प्-), काँपना; आँकुस् (अङ्कुश); ताँति (तन्तु + तन्त्रि), तांत; खाँड़ा (खण्ड), आदि।

(२) तालव्य तथा मूर्धन्य वर्णों को छोड़कर वर्गीय अनुस्वार का अन्य घोष तथा महाप्राण वर्णों से समीकरण हो गया। जबतक द्वित्व व्यञ्जन सुनाई पड़ता था तबतक व्युत्पत्ति की दृष्टि से दीर्घ होते हुए भी पूर्व स्वर ह्रस्व था। यथा—

[क] कण्ठ्य, घोष, स्पर्श तथा महाप्राण वर्णों के साथ—

अङ्गन>*आङ्गन>*आङ्ङन>आङन्, आगन; जङ्घा>*जाङ्घ>*जाङ्ङ्ह्>जाङ्ह्, जंघा।

[ख] दन्त्य घोष स्पर्श तथा महाप्राण वर्णों के साथ—

चान् (चन्द, चन्द्र); इनार् (इन्द्रागार); बूनी (बिन्दु), बूँद; सेनुर् (सिन्दुर); सुनर् (* सुन्नर, सुन्दर); आन्ही (अम्बिका), आँधी, कान्ह (स्कन्ध), कंधा; आन्हर् (अन्ध—), अंधा; बान्ह (बन्ध), बाँध; सोन्ह् (सुगन्ध), सौंधा।

[ग] ओष्ठ्य स्पर्श तथा महाप्राण वर्णों के साथ—

लाम् (लम्ब), लम्बा; कदम् (कदम्ब); चूम (चुम्ब); कमरा (कम्बल—); सेमि (शिम्ब), सेम; कुम्हार् कोंहार् (कुम्भकार;); सम्हार् (सम्भार), सँभाल; ब्राह्मण>* बाम्मण> बाम्हन् तथा बब्मण जिससे बाभन् शब्द सिद्ध हुआ; आम (आम्र); तामा (ताम्र), आदि।

§ १०१ वे उदाहरण जहाँ तालव्य घोष तथा मूर्धन्य स्पर्श एवं महाप्राण वर्ण हैं—

अँजुरी (अञ्जली); गाँजा (गञ्जा); पिंजरा (पिञ्जर—); पाँजर् (पञ्जर); साँझ् (प्रा० सञ्झा); बाँझ् (प्रा० वञ्झा); पाँड़े (पाण्डेय); साँढ़ (सण्ड), साँढ; माँड़् (मण्ड); राँड़् (रण्ड); खँड़हर् (खण्ड-गृह), खँडहर; भँड़ार् (भाण्डागार), भंडार।

§ १०२ जब प्राकृत के दो अनुस्वार वर्ण एक में परिणत हो जाते हैं तब उसके पूर्व का स्वर भी अनुस्वार-युक्त हो जाता है; किन्तु जब एक अनुस्वार तथा 'अँ' अनुगामी होते हैं तब अँ, आ में परिवर्तित हो जाता है। यथा—

आन् (अण्णं, अन्य), दूसरा ; कान् (कण्णं, कर्ण), कान ; चाम् (चम्म, चर्म), चमड़ा।

§ १०३ पूर्व अनुस्वार-युक्त ऊष्म वर्ण उसी प्रकार रह जाता है; किन्तु उसके पूर्व का स्वर भी अनुस्वार-युक्त हो जाता है। यथा—

काँसा (कांस्य—) ; बाँस् (वंश), बाँस ; माँस् (मांस); डाँस् (दंश) आदि।

§ १०४ जब प्रा० भा० आ० भा० के अनुस्वार के बाद, उच्चस्वर, 'इ' आता है, तब अनुस्वार का लोप हो जाता है। यथा—

बीस् (विंशति), मि०, हिं० तथा बं० बीस; बाइस् (द्वाविंशति); तीस् (त्रिंशत)।

स्वत: अनुनासिकता

§ १०५ आधुनिक भा० आ० भा० के ऐसे अनेक शब्दों में अनुनासिकता मिलती है जिनके मूल प्रा० भा० आ० भा० के रूप पर अनुनासिकता नहीं रहती। यथा—साँप् (सर्प); ऊँट् (उष्ट्र) आदि। इसी क्रिया को स्वत: अनुनासिकता (Spontaneous Nasalisation) की संज्ञा दी गई है। प्राकृत में इसके उदाहरण वहाँ मिलते हैं जहाँ विकल्प से संयुक्त व्यञ्जन, अनुनासिक-व्यञ्जन में परिणत हो जाते हैं। यथा—उत्पत्ति से : उप्पइ के स्थान पर उम्पइ; इसी प्रकार दृस्सन, दूँसण आदि।

इसमें सन्देह नहीं कि आधुनिक आर्यभाषाओं में प्राकृत से ही ये रूप आये हैं।

इस क्रिया के अनेक कारण बतलाये गये हैं। डा० ब्लाश तथा टर्नर के अनुसार स्वर की मात्रा के कारण ही इस स्वत: अनुनासिकता का विकास हुआ है। डा० ग्रियर्सन ने इससे मतभेद प्रकट करते हुए यह विचार प्रकट किया है कि इस प्रकार की स्वत: अनुनासिकता प्राकृत के विकास की उस बाद की अवस्था से आई है जहाँ स्वर दीर्घ हो जाते हैं। किन्तु इस सम्बन्ध में गम्भीरता से विचार करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इस प्रकार की अनुनासिकता का न तो स्वर की मात्रा से ही सम्बन्ध है और न यह प्राकृत के बाद की अवस्था से ही विकसित होकर आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं में आई है।

डा० चटर्जी के अनुसार इस प्रकार की अनुनासिकता का कारण भाषा-सम्बन्धी विभिन्नता है। जिस प्रकार आज की भाषाओं एवं बोलियों में अलिजिह्व को नीचे झुकाकर कुछ लोगों के बोलने का स्वभाव है जिससे अनुनासिकता उत्पन्न हो जाती है, उसी प्रकार मध्ययुग में भी इस प्रकार की प्रक्रिया से अनुनासिकता उत्पन्न हुई होगी। समय की प्रगति से विभिन्न बोलियों के ये शब्द साहित्यिक भाषा में भी प्रविष्ट हो गये हैं और वस्तुत: यही अनुनासिकता का कारण है। कुछ भाषाओं और बोलियों में इसके विपरीत भी हुआ जिसके परिणामस्वरूप प्राचीन भारतीय आर्य-भाषा में जहाँ अनुनासिकता थी उसका आधुनिक भाषाओं में लोप हो गया। यथा—सं० महिष = महिंस = * म्हंहिंस > भैंस; किन्तु * विंश = बीस (हिन्दी)।

जहाँ तक आधुनिक आर्यभाषाओं का सम्बन्ध है, इनमें स्वत: अनुनासिकता-सम्बन्धी शब्दरूप प्राय: प्रा० भा० आ० भा० तथा म० भा० आ० भा० से विकासक्रम से आये हैं। यद्यपि सिद्धान्त रूप में सभी आ० भा० आ० भाषाओं में स्वत: अनुनासिकता-सम्बन्धी शब्द मिलते हैं; किन्तु इस विषय में सभी भाषाओं में पूर्ण समानता

नहीं है। उदाहरणस्वरूप कतिपय स्वतः अनुनासिकतावाले शब्द पश्चिमी हिन्दी तथा भोजपुरी में तो मिलते हैं; किन्तु अन्य आधुनिक भाषाओं, जैसे बंगला, गुजराती आदि, में ये नहीं मिलते। इसका सुन्दर उदाहरण 'सर्प' शब्द का आधुनिक भाषाओं का रूप है। बँगला तथा गुजराती में तो यह 'साप' है किन्तु हिन्दी तथा भोजपुरी में यह 'साँप' हो गया है। भोजपुरी के स्वत. अनुनासिकता के उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

(१) एक व्यञ्जन की अनुगामी अनुनासिकता—

साँस् (श्वास); बाँहि (बाहु), बाँह; पाँव् (पाद); √हँस (√हस्), हँसना; फाँस् (*फंस ∠ पाश)।

(२) दो अनुगामी व्यञ्जनवाली अनुनासिकता—

आँखि (*अङ्खि, अक्खि = अक्षि), आँख;
आँच् (*अञ्चि, अच्चि = अर्चिष्), आँच;
आँठि (*अण्ठि, अट्ठि = अस्थि), फल की गुठली;
ईंट् (*इण्ट, इट्ट = इष्ट); ईंटे;
ऊँच् (*उञ्च, उच्च,), ऊँचा;
ऊँट् (*उण्ट, उट्ट, ∠ *उण्ठ = उष्ट्र), ऊँट;
कँकड़ि (*कङ्कोडिअ, कक्कोडिआ = कर्कोटिका), कँकड़ी;
काँ (*कङ्ख, कक्ख = कक्ष), काँख;
घँस्- (√घृष्- घृष्ट), घिसना;
काँच् (*कञ्च, कच्च, काच), काँच;
√चाँछ्, फावड़े अथवा कुदाल से जमीन को बराबर करना (*√चञ्छ-, √त्वक्ष); छाँह्, परछाईं, (*छाँया, छाया);
पाँखि (पक्ष-), पाँख; फाँक् (*फङ्किअ, मि०, फक्किका), टुकड़ा;
बाँक् (बङ्क, बक्क-, वक्र), बाँका, टेढ़ा;
बेंत् (*बेन्त, वेत्त, वेत्र), बेंत; ढीठ् (धृष्ट), ढीठ;
साँप; (सर्प), साँप; √माँग्-, (मार्गति ∠ मृग्, ढूँढना); माँगना, याचना करना;
√माँज- (मार्जयति ∠ मृज्), माँजना।

§ १०६ ऊपर यह कहा जा चुका है कि प्रा० भा० आ० भा० के मूल शब्दों में जहाँ अनुनासिकता नहीं थी, म० भा० आ० भा० में वहाँ भी अनुनासिकता आ गई और आ० भा० आ० भा० में वह आज भी उसी रूप में चल रही है। किन्तु इसकी विपरीत दशा के भी उदाहरण मिलते हैं, अर्थात् म० भा० आ० भा० के अनेक स्थलों में प्रा० भा० आ० भा० की अनुनासिकता का लोप भी हो गया है और आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं में यह परम्परा अक्षुण्ण है। यथा—

प्रा० बीस् (सं० विंशति); तीस् (त्रिंशति), आदि।

भोजपुरी में इसके निम्नलिखित उदाहरण हैं—

छिछु (सि०, किञ्चिद्) कुछ; छुटाक्, सि०, बं० छुटाक्, हिं० छटाँक (*षट्-टङ्क-); पाल्की (*पल्लङ्क्किअ, पर्यङ्किका); भीतर (अभ्यन्तर), भीतर; √भिज् (अभ्यञ्ज-), भींगना; दाऱ्ही (दंष्ट्रिका), दाढ़ी, आदि।

आभ्यन्तरिक -म्- तथा -न्- द्वारा अनुनासिकता

§ १०७ म० भा० आ० भा० के अकेले आभ्यन्तरिक व्यञ्जन के लोप की प्रक्रिया अपभ्रंशकाल तक चलती रही और अकेला आभ्यन्तरिक -म-, -वँ- में परिणत हो गया। भोजपुरी में इसके निम्नलिखित उदाहरण मिलते हैं—

कँवँल् (कमल); कुँवँर् (कुमार); साँवँर् (श्यामल); भँवँरा (भ्रमर); अँवँरा (आमलक), आँवला; चवँर् (चामर); भुइँहार् (भूमिहार), जातिविशेष।

सातवाँ अध्याय

स्वरागम (Intrusive Vowels)

स्वरभक्ति तथा विप्रकर्ष

§ १०८ जब किसी ध्वनिसमूह के उच्चारण में कठिनाई होती है तब उच्चारण-सौकर्य के लिए स्वरागम होता है। भारतीय आर्य-भाषा के प्राचीनतम रूपों में भी इसके उदाहरण मिलते हैं। वैदिक व्याकरण में इसे स्वरभक्ति तथा प्राकृत में इसे विप्रकर्ष संज्ञा से संबोधित किया गया है। भोजपुरी में भी इसके उदाहरण मिलते हैं। यथा—
पवॅनार् (* पदम-नाल, पदुम-नाल, पद्मनाल); सरिसो (* सरिसव, सर्षप) सरसो; आरसी (* आअरसिया, < आदर्शिका)।

बँगला की अपेक्षा भोजपुरी में स्वरभक्ति अथवा विप्रकर्ष के अनेक उदाहरण मिलते हैं। नीचे ये दिये जाते हैं—

(१) —अ—; अ० त० धरम् (धर्म); जतन् (यत्न); करम् (कर्म); गरभ् (गर्भ); जनम् (जन्म); जन्तर (यन्त्र); तकर् (तक्र); नछत्तर् (नक्षत्र); परब् (पर्व); बरत् (व्रत); बजर् (वज्र); बजरंग (वज्राङ्ग); भरम् (भ्रम); मन्तर् (मंत्र); रतन् (रत्न); सराध् (श्राद्ध); सपन् (स्वप्न);

विदेशी शब्दों में स्वरभक्ति मिलती है। यथा—कुदरति (कुद्रत), कुदरत; एकरार् (इक़्रार); गरम् (गर्म); चरबी (चर्बी); नगद् (नक्द); तकथ (तख़्त); तकरार् (तक़्रार); बखत् (वक़्त); बकस् (बक्स); टराम् (ट्राम)

(२)—इ—; यथा—

बरिस (वर्ष); सिरिमान (श्रीमान्); किरिया (क्रिया); तिरिया (स्त्री); सरिसो (सर्षप); सिरिनामा (श्रीनाम), लिफाफे के ऊपर का पता

निम्नलिखित विदेशी शब्दों में भी 'इ' का आगम हुआ है—

अकिलि (अक़्ल, عقل); जिकिरि (जिक्र ذکر); फिकिरि (फ़िक्र, فکر); जन्नत (जन्त; جنت)।

(३)—उ—; दुआर् (द्वार); पदुम् (पद्म); मुकुति (मुक्ति); मुरुख (मूर्ख); सुकुल् (शुक्ल); सुमिरन् (स्मरण); लुबुध् (लुब्ध); मि०, मध्यकालीन बँगला, लुबुध।

आदि स्वरागम

§ १०९ प्राकृत में आदि स्वरागम के बहुत कम उदाहरण मिलते हैं। [पालि में अपवादस्वरूप इत्थी < * इस्त्री < स्त्री (पिशल §१४१) तथा उम्हयति < * उस्मयते *

स्मयते (वै० लैं० §१८३) शब्द मिलते हैं।] आधुनिक भोजपुरी में आदि स्वरागम के उदाहरण शिन्ध्वनि (Sibilant) + क्, त, न, ल् वाले शब्दों में मिलते हैं। यथा—

अस्तुति (स्तुति); अस्थान् (स्थान); अस्नान् (स्नान); इस्तिरी (इस्त्री, स्त्री); इस्लोक (श्लोक) आदि।

अकेले व्यञ्जन के पूर्व, स्वरागम के उदाहरण भोजपुरी में नहीं के बराबर हैं। केवल एक उदाहरण उपरोहित < पुरोहित, मिलता है। यह अवधी में भी वर्तमान है।

विदेशी शब्दों में भी आदि स्वरागम के उदाहरण मिलते हैं। यथा—

इस्टेसन (स्टेशन्); इस्कूल (स्कूल); इस्टाम (स्टाम्प) आदि।

अपिनिहिति (Epenthesis)

§ ११० शब्द के मध्य में 'इ' अथवा 'उ' होने से, इस 'इ, उ' के पूर्व उच्चारण की रीति को बँगला में अपिनिहिति कहते हैं। इसके उदाहरण ऋग्वेद तथा प्राकृतों में मिलते हैं। आदर्श गुजराती में इसके उदाहरण 'व्य' ध्वनिवाले शब्दों में मिलते हैं। यथा—

आव्यो > आइव्यो (गु० फो० §३१)

मागधी अपभ्रंश में अपिनिहिति का अभाव प्रतीत होता है। बिहारी भाषाओं में इसके कुछ ही उदाहरण उपलब्ध हैं। डा० चटर्जी के अनुसार मध्ययुग की बँगला (विशेषतः १४ वीं शताब्दी की बँगला भाषा) से ही इसका प्राबल्य मिलता है। आपके अनुसार, किसी समय, अपिनिहिति उच्चारण समस्त बंगाल में विद्यमान था; किन्तु आधुनिक काल में पश्चिमी (आदर्श) बँगला से इसका लोप हो गया है और यह केवल पूर्वी बँगला में ही सुरक्षित है।

भोजपुरी में अपिनिहिति के निम्नलिखित उदाहरण उपलब्ध हैं। यथा—

हइता (*हइतिया, हत्या); रइछा (*रइछिआ, रक्षा); अइगा (*अगिआ, अग्या, आज्ञा); जोइनि (*जोइनि, योनि); कइलान् (कलिआन, कल्याण)।

भोजपुरी की नगपुरिया अथवा सदानी बोली में इसके उदाहरण मिलते हैं। यथा—

सुवइर < * सुअइरि < सूअइरि < शूकरी।

आदर्श भोजपुरी की असमापिका क्रिया देखि, करि (हिं०, देख्, कर्) के सदानी रूपों देइख्, कइर् आदि में भी अपिनिहिति विद्यमान है।

आठवाँ अध्याय

भोजपुरी स्वरों की उत्पत्ति

§१११ आधुनिक भोजपुरी के 'अ' की उत्पत्ति प्रा० भा० आ० भा० (संस्कृत) के 'अ' से हुई है, यथा—

(१) गहिर् (गभीर), गहरा; अ० त० पहर (प्रहर); नछत्तर् (नक्षत्र); बहिनि (भगिनी) , बहन ।

(२) स्वराघात के अभाव में संस्कृत के 'आ' से हुई है । यथा—

बनारसी (वाराणसीय); अवँरा (आमलक); आँवला; अ० त० अचरज् (आश्चर्य); रजूपुत् (राजपुत्र), अहिर् (आभीर), जातिविशेष ।

(३) संस्कृत, 'उ' से हुई है यथा—

मउर् (मुकुट) ।

(४) सं० 'ऋ' से हुई है । यथा —

पितर् (पितृ—); घर् (गृह), बड़् (वट, वृत), बरगद ।

(५) सं० 'ए' से हुई है । यथा—

नरिअर् (नारिकेल), नारियल ।

(६) सं० 'ओ' से हुई है । यथा—

सहिजन् (शोभाञ्जन—) ।

(७) स्वरभक्ति से; यथा—

जतन् (यत्न); रतन् (रत्न); जन्तर् (यन्त्र), मन्तर् (मन्त्र) आदि ।

§११२ 'आ' की उत्पत्ति ।

(१) सं० 'आ' से; यथा—

लिलार् (ललाट); फागुन् (फाल्गुन) ।

(२) आदि में स्वराघात द्वारा सं० 'अ' से; यथा—

आवरू (अपर), और ।

(३) संयुक्त व्यञ्जनों के पूर्ववाले 'अ' से; यथा—

आधा (अर्ध); काम् (कर्म); चाम् (चर्म); घाम् (घर्म); आँक् (अङ्क०); भात् (भक्त); आन् (अन्य) ।

(४) दो व्यञ्जनों के पूर्व के ऋ से; यथा—

माटी (मृत्तिका) ।

(५) प्राकृत के 'अ + आ' से; यथा—

अन्हार् (सं० अन्धकार > प्रा० अन्ह आर), अँधेरा, बरात् (सं० वरयात्रा > प्रा० वर आत्त), बारात।

(६) प्रा० के 'आ + अ'; आ + आ से;

दिआरी (सं० दीपावली); दीवाली; कोठारी ; (सं० कोष्ठागारिक); भँडार (सं० भाण्डागार), भंडार।

§११३ 'इ' की उत्पत्ति

(१) सं० 'इ' से; यथा—

मानिक् (माणिक्य); गार्भिनि (गर्भिणि); बुधि (बुद्धि)।

(२) सं०, 'ई' से; यथा—

बिआ (बीज); दिआ (दीप)।

(३) सं० 'अ' से; यथा—

पिजरा (पंजर); गिन्ती (√गण), गिनना; इम्ली (अम्लिका); इमिर्ती (अमृतिका); छिआसी (षट् + अशीति)।

(४) सं० 'ऋ' से; यथा—

सियार् (शृगाल), स्यार ; हिआ (हृदय); अ० त० तिरिखा (तृषा); किरिपा (कृपा); पिर्थी (पृथ्वी), आदि।

§११४ ई की उत्पत्ति

(१) प्रा० इ, ई + अ, आ से; यथा—

आजी (प्रा० अज्जिआ, सं० आर्यिका), दादी ; कियारी या किआरी (केआरिया, सं० केदारिका), क्यारी; बोली (प्रा० बोल्लिअ)।

(२) सं० के संयुक्त व्यंजन वर्णों के पूर्व के 'इ' से; यथा—

चीता (चित्रक); जीभि (जिह्वा) जीभ ; पीठा (पिष्टक) आदि।

(३) सं०, 'ऋ' से ; यथा—

भतीजा (भ्रातृजा) ; तीजि (तृतीया), तीज ; सींघि (शृङ्ग), सींग।

§११५ 'उ' की उत्पत्ति

(१) सं० के 'उ' से; यथा—

खुर् (क्षुर); छूरी (क्षुरिका)।

(२) सं० 'ऊ' से; यथा—

भुइँ (भूमि); पाहुन् (प्राघूर्ण); महुआ (मधुक)।

(३) सं० 'इ' से ; यथा—

बुनी (*बुन्दिका, सं० बिन्दु), बूँद ; गेरुआ (*गैरुक, गैरिक)।

(४) प्रा० के 'अव', 'अम', 'व' से ; यथा—

कछुआ (प्रा० कच्छव < कच्छप), कछुवा ; अउरी (प्रा० अवर < सं० अपर),

और ; सउँपल् (प्रा० समप्प, सं० समर्प), सौपना ; देउकुरि (देवकुल) ; दुआरि (द्वार); तुरन्त (त्वर + अन्त), शीघ्र ।

§ ११६ 'ऊ' की उत्पति

(१) सं० 'ऊ' से ; यथा—

कपूर् (कर्पूर); दूर् (दूर); ऊन (ऊर्णा), ऊन ; चूना (चुण्ण ∠ चूर्ण); गोहूँ (गोधूम), गेहूँ ।

(२) संयुक्त व्यञ्जनों के पूर्व के सं० के 'उ' से; यथा—

ऊँच (उच्च); सूत् (सूत्र) ।

(३) दो व्यञ्जनों के पूर्व के सं० के 'ऋ' से ; यथा—

बूढ़ (वृद्ध); रूख् (वृक्ष); पूछ् (पृच्छ-), पूँछना ।

(४) सं० 'औ' से; यथा—

पूस् (पौष), एक महीने का नाम ।

§ ११७ 'ए' की उत्पत्ति

(१) सं० के 'ए' से ; यथा—

खेत् (क्षेत्र); एक् (एक्क ∠ एक); जेठ् (ज्येष्ठ); बेंत [वेत्र, (वेत्त, *वेन्त)] ; सेठि (श्रेष्ठिन्), सेठ ।

(२) सं० 'ऐ' से ; यथा—

गेरुआ (गैरिक); तेल् (तैल); सेवार् (शैवाल) ।

(३) सं० 'अ' से ; यथा—

सेन्हि (सन्धि), सेंध ।

(४) सं० 'इ' से ; यथा—

अ० त० नेम् (नियम); बेल् (विल्व); छेद् (छिद्र) ।

(५) सं० के 'अय', 'अयो' से ; यथा—

तेइस् (त्रयविंशत) ; तेरह (त्रयोदश) । (ऊपर के शब्दों में सं० अय>प्रा० अइअ 7 भा० आ० भा० 'ए̱', 'ए') ।

§ ११८ 'ओ' 'ओ̄' की उत्पत्ति ।

(१) सं० के 'ओ' से ; यथा—

ओठ् (ओष्ठ); कोठारी (कोष्ठागारिक); घोड़ा (घोटक); कोइलि (कोकिल) ।

(२) सं० 'औ से ; यथा—

गोर् (गौर); मोली (मौलिक); मोटी (मौटिक); ओढ़िआ (औढ्रिक), उड़िया ।

(३) सं० के 'अ' से ; यथा—

चोंच् (चञ्चु); नोंह् (नख) आदि

(४) संस्कृत तथा प्राकृत 'अव' से ; यथा—

ओसर्_िर (अवसर), ओहार् (अवघार); √ओदारल (अवदार), खोलना; लँगोट् (प्रा० लङ्गवट्ट), ओ॑सरा (प्रा० अवसार, सं० अपसार), बरंडा; ओ॑ढ़ना (अववेष्टन) ।

(५) प्रा० उअ से ; यथा—

सोन्ह (प्रा० सुअंध < सं० सुगन्ध); ओ॑झा (प्रा० उअज्झाअ), जातिविशेष ।

(६) सं० 'उ' से ; यथा —

ओखरि (उदूखल) ; मोल् (मूल्य) ; पोथा (पुस्तक) ; कोख् (कुक्षि); ओ॑दरि (उदर) ।

नवाँ अध्याय

[य] प्रा० भा० आ० भा० के व्यञ्जन

परिवर्तन के सामान्य रूप

§११९ प्रा० भा० आ० भा० [संस्कृत] के व्यञ्जनों के परिवर्तन के इतिहास पर बीम्स से लेकर भण्डार तक ने पूर्णरूप से विचार किया है। आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के ध्वनितत्त्व (Phonology) का प्राकृत [पालि, प्राकृत, अपभ्रंश] से घनिष्ट सम्बन्ध है और इस विषय में विभिन्न विद्वानों के अनुसन्धानों पर ध्यान देना आवश्यक है।

§१२० व्यञ्जनों के परिवर्तन के इतिहास में मुख्य बात यह हुई है कि क्रमशः स्पर्श व्यञ्जनों का उच्चारण निर्बल होता गया। संस्कृत से प्राकृत तक के परिवर्तन पर ध्यान देने से इस सम्बन्ध में निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं—

(१) पदान्त के व्यञ्जन का लोप हो गया।

(२) स्पर्श व्यञ्जनों के समूह में प्रथम का दूसरे के साथ समीकरण हो गया। इसका मुख्य कारण उस युग का (Implosive) उच्चारण था।

(३) केवल दो मूर्द्धन्य वर्णों को छोड़कर आभ्यन्तरिक (Intervocalic) स्पर्श व्यञ्जनों का लोप हो गया। प्राणवाले वर्णों में केवल ह्-ध्वनि ही सुरक्षित रही।

§१२१ परिवर्तन तथा विकास का यह क्रम निरन्तर चलता रहा। प्रारम्भिक प्राकृत-युग में, जिसमें अशोक के शिलालेखों की भाषा भी सम्मिलित है, पदान्त के व्यञ्जनों के लोप तथा व्यञ्जन-समूहों के समीकरण की प्रक्रिया कतिपय अपवादों के साथ चलती रही। प्रा० भा० आ० भा० (संस्कृत) में मूर्द्धन्यवर्णों का उपयोग वहीं होता था जहाँ 'ष्', 'न्' तथा 'र्' के संयोग से दन्त्यवर्ण मूर्द्धन्य में परिणत हो जाते थे, किन्तु समय की प्रगति के साथ-साथ इनके संयोग से निर्मित संयुक्तवर्णवाले शब्दों की संख्या में अभिवृद्धि हुई। इसका कारण कदाचित् आर्यभाषा पर द्रविड़-भाषा का प्रभाव था। यह प्रभाव निम्नलिखित रूपों में परिलक्षित होता है—

(१) समीकरण-युक्त शब्दों की संख्या में अभिवृद्धि ; यथा—

त्रुट्यति > टुट्टइ > टुट्—, टूटना।

(२) दन्त्य वर्ण का मूर्द्धन्य में परिवर्तित हो जाना ; यथा—

पतति > पडइ > पड़े (भोजपुरी में यह 'ड़' इधर बँगला अथवा साहित्यिक हिन्दी के प्रभाव से आया है। इन दोनों भाषाओं में 'ड़' वर्तमान है।)

§१२२ विभिन्न भाषाओं तथा बोलियों में सबसे अधिक उल्लेखनीय अन्तर [च्] तथा [ऋ एवं र् + दन्त्य] के परिवर्तन में मिलता है। (१) उत्तर-पश्चिम तथा दक्षिण-पश्चिम में यह [च्], [च्छ्] का तथा मध्यदेश एवं पूरब में यह [क्ख्] का रूप धारण कर लेता है। भोजपुरी में यह परिवर्तन [छ्] रूप में ही उपलब्ध है। (२) जहाँ तक [ऋ एवं र् +

दन्त्य] का सम्बन्ध है, पूरब में दन्त्य, मुद्धन्य में परिणत हो गया है, परन्तु पश्चिम में यह दन्त्य रूप में ही सुरक्षित है। किन्तु इस सम्बन्ध में यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि आरम्भिक युग से ही पूरब तथा पश्चिम की भाषाओं एवं बोलियों में संमिश्रण हो गया है और एक क्षेत्र के शब्दरूप, दूसरे में प्रचलित हो गये हैं।

§१२३ प्राकृत के द्वितीय युग से, हेमचन्द्र के कुछ समय पूर्व तक आभ्यन्तरिक स्पर्श व्यञ्जन-वर्णों के लोप की प्रक्रिया चलती रही। इसका एक परिणाम यह हुआ कि दो स्वर साथ-साथ आने लगे और उच्चारण में असुविधा होने लगी। इसे दूर करने के लिए ही 'य' तथा व-श्रुति का प्रयोग प्रारम्भ हुआ। इसी समय आभ्यन्तरिक ['म्',], [वँ] में परिवर्तित होकर पूर्व स्वर की अनुनासिकता तथा [ण्], दन्त्य अथवा वर्त्स्य [न्] में परिणत हो गया।

§१२४ प्राकृत के तृतीय युग (अपभ्रंश) अथवा आधुनिक आर्यभाषाओं के आरम्भिक युग में, पूर्व प्राकृत-युग से समीकरण रूप में आये हुए द्वित्व व्यञ्जनवर्णों का लघ्वीकरण आरम्भ हुआ [द्वित्व व्यञ्जन, एक व्यञ्जन में परिणत होने लगा] और इसके पूर्ति रूप में पूर्व के ह्रस्व स्वर का दीर्घ रूप हो चला। यही दशा अनुनासिक + व्यञ्जन-समूहवाले शब्दों की भी हुई। वहाँ भी पूर्ववाले दीर्घ स्वर के साथ-ही-साथ अनुनासिक का भी उच्चारण होने लगा। इस प्रकार प्राचीन भारतीय आर्यभाषा के आभ्यन्तरिक व्यञ्जन-प्रणाली की एक प्रकार से पुनः स्थापना हुई।

§१२५ इस युग की भाषाओं एवं बोलियों की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि-व्<-व्व्<-व्य्-, पश्चिम में 'व्' रूप में ही सुरक्षित रहा, किन्तु मध्यदेश तथा पूरब में यह 'ब' हो गया। भोजपुरी में यह ब-ध्वनि ही उपलब्ध है।

§१२६ चतुर्थ अथवा आधुनिक भोजपुरी युग में, मा० भा० आ० भा० (प्राकृत) के पदान्त स्थित स्वरों तथा व्यञ्जनों के बीच के कतिपय ह्रस्व स्वरों के लोप हो जाने के कारण, प्रा० भा० आ० भा० (संस्कृत) के पदान्त के स्पर्श व्यञ्जनों एवं समीकरण-रहित व्यञ्जन-वाले शब्दों के प्रयोग की प्रणाली की पुनः स्थापना हुई।

भोजपुरी व्यञ्जन-ध्वनियों के सम्बन्ध में पहले ही लिखा जा चुका है। [दे० §१३ से ३३ तक]

भोजपुरी युग तक के परिवर्तन के सम्बन्ध में सामान्य विचारधारा

§१२७ नीचे के परिवर्तन की रूपरेखा, डा० चटर्जी के बैं० लैं० §२३५ से ली गई है; किन्तु भोजपुरी के विशेष रूपों की व्याख्या करने के लिए इसमें यत्र-तत्र परिवर्तन कर दिया गया है।

(i) एक व्यञ्जन

(१) आदि में आनेवाला अकेला व्यञ्जन प्रायः अपरिवर्तित रूप में ही रह गया है। कहीं-कहीं स्पर्श व्यञ्जनों में ह-कार ध्वनि का लोप अथवा आगम एवं शिन्-ध्वनि (Seblilant) का तालव्य च् छ्, तथा भ् का ह् में परिवर्तन हुआ है, इसी प्रकार प्रा० भा०आ०भा० (संस्कृत) के 'य्' और 'व्' क्रमशः 'ज्' एवं 'ब्' तथा 'ष्' एवं 'स्' क्रमश. 'ल्' और 'र्' में परिवर्तित हो गये है। कहीं-कहीं ल्, 'न्' में भी परिवर्तित हो गया है।

(२) अकेला आभ्यन्तरिक व्यञ्जन [Single Intervocal consonants]

(क) स्पर्श व्यञ्जन—क्,—ग्,—त्,—द्,—प्,—व् तथा अर्द्धस्वर—य्,—व्, लुप्त हो गये हैं ;—ट्—,—ड्—का ड़ में परिवर्तन हो गया है तथा परम्परा से आये हुए

मागधी शब्दों में—ऋत्—(—त्—) वस्तुतः—ड्—(या—र—) अथवा—ट्—में परिवर्तित हो गया है; आभ्यन्तरिक—च्,—ज्—मागधी शब्दों में—च्,—ज्—रूप में ही सुरक्षित हैं, किन्तु अन्य भाषाओं एवं बोलियों में ये लुप्त हो गये हैं।

(ख) महाप्राण वर्ण, —ख्—,—घ्—,—थ्—,—ध्—,—फ्—,—भ्—, वस्तुतः —ह्—में परिवर्तित हो गये हैं; इसी प्रकार—ठ्—तथा—ढ्—, ढ या ड़्ह् हो गये हैं।

(ग) —म—, —वँ—में परिवर्तित होते हुए, पूर्ववर्ती स्वर में केवल अनुनासिक रूप में रह गया है; 'ण्' तथा 'न्' दोनों, कदाचित् मूर्द्धन्य रूप में उच्चारित होते हुए, आधुनिक भोजपुरी में वर्त्स्य—न्—में परिवर्तित हो गये हैं।

(घ) अकेली, आदि अथवा आभ्यन्तरिक शिन्-ध्वनि (Sebilant) प्रायः शिन्-ध्वनि रूप में ही रह गई है। यथा—

बीस्, बिस्; विष, भइँसि; भैंस; सोरह, सोलह; साठ् आदि।

(ङ) प्रा० भा० आ० भा० (संस्कृत) का 'र्', मागधी में 'ल्' हो गया है, किन्तु यह 'ल्' पुनः भोजपुरी में 'र्' में परिवर्तित हो गया है, (ग्रियर्सन के अनुसार मागधी-ल का उच्चारण दन्त्य था); यथा—फर्, हर्, राउर् आदि। हिन्दी, बँगला अथवा संस्कृत के प्रभाव से भोजपुरी में भी कभी—ल—उच्चरित होता है।

(ii) व्यञ्जनीय समूह

प्रारम्भिक प्राकृत युग में समीकरण रूप में परिवर्तित होकर आदि तथा मध्य में स्थित व्यञ्जन-समूह, आधुनिक भोजपुरी में एक व्यञ्जन में परिवर्तित हो गये हैं। यह परिवर्तन निम्नलिखित रूप में हुआ है— -

(१) (क) स्पर्शव्यञ्जन + स्पर्शव्यञ्जन केवल एक स्पर्शव्यञ्जन में परिणत हुए; इसी प्रकार स्पर्शव्यञ्जन + हकार (aspirate) के परिवर्त्तन के फलस्वरूप, केवल हकार ही रह गया। इन दोनों में जहाँ द्वितीय एवं प्रथम ध्वनि के उच्चारणस्थान में अन्तर था, वहाँ प्राकृत-युग में, प्रथम का द्वितीय के साथ समीकरण हो गया; (यथा—क्त > त्त्; ग्ध > द्ध; त्क् > क्क)। इस प्रकार के व्यञ्जन समूह भी केवल मध्य में ही आते थे।

(ख) स्पर्शव्यञ्जन + अनुनासिक . 'क्न्', 'त्न्' > -क्-, -त्-, -ग्न्- > -ग्, न्; द्र्, प्रा० भा० आ० भा० (संस्कृत) में ही 'न्न्' में परिणत हो चुका था और भोजपुरी में यह 'न्' हो गया। इसी प्रकार आत्मन् का -त्म्-, 'प्' (आपन) में परिवर्तित हो गया। (आत्मन् > अप्त (पूरब में) तथा अप्प (दक्षिण-पश्चिम में)।

(ग) स्पर्शव्यञ्जन या हकार-युक्त वर्ण + य्।

(i) कंठ्य, तालव्य, मूर्द्धन्य तथा ओष्ठ्य + य्: इनमें 'य्' का अपने पूर्व व्यञ्जन के साथ समीकरण हो गया तथा प्राकृत में इस व्यञ्जन का द्वित्व हो गया (वास्तव में, मागधी मे परिवर्तित रूप किय्-, दिय आदि था)। भोजपुरी में केवल एक व्यञ्जन अथवा हकार सुरक्षित है।

(ii) दन्त्य + य् · ये शब्द के मध्य में च्च्, च्छ्, ज्ज्, ज्झ तथा आदि मे च्, छ्, ज्, झ् में परिणत हो गये। भोजपुरी में केवल-च्-, -ज्- सुरक्षित हैं। [दन्त्य + य् का यह तालव्यीकरण (palatalisation) वस्तुतः मागधी की विशेषता नहीं है; क्योंकि प्राचीन

मागधी में -स्थ-, -द्य- आदि -तिय्-, -य्य- में परिवर्तित होते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि प्राकृत-युग में ही, ये तालव्यवाले रूप, मागधी में अन्य भाषाओं तथा बोलियों से अधिक संख्या में आ गये।]

(घ) स्पर्श व्यञ्जन या हकार-युक्त वर्ण + र् : इस 'र्' का पूर्व ध्वनि के साथ समीकरण हो गया तथा प्राकृत में, शब्द के मध्य में, यह द्वित्व में परिणत हो गया। भोजपुरी में केवल एक स्पर्श व्यञ्जन अथवा हकार वर्ण मिलता है। 'द्र्' वस्तुतः मागधी की मूल प्रा॰ भा॰ आ॰ भाषा में—'ड-ल्-' हो गया था। यह -ल्ल- में परिणत हो गया और आ॰ भा॰ आ॰ भाषा के कई शब्दों में यह 'ल्' हो गया।

(ङ) स्पर्श व्यञ्जन या हकार वर्ण + ल् : 'ल्' का समीकरण हो गया।

(च) स्पर्श व्यञ्जन या हकार-युक्त वर्ण + व : यहाँ 'व' का समीकरण हो गया है। [अन्य आधुनिक आर्यभाषाओं की भाँति आधुनिक भोजपुरी में भी -'त्व-', — 'द्व'-, -'ध्व्'- वस्तुतः -प्-, -ब्- तथा -भ्- में परिणत हो गये हैं। यह ओष्ठीकरण (sabialisation) मागधी की विशेषता नहीं है।]

(छ) स्पर्श व्यञ्जन + शिन्-ध्वनि (sibilant)—

(i) मागधीवाले रूपों में 'क्ष्' का 'ख' में तथा अन्य प्राकृत में सम्भूत रूपों से -छ्- में परिवर्तन हो गया है।

(ii) 'त्स्', 'प्स्' प्राकृत मे 'च्छ्' में परिवर्तित हो गये हैं और यह 'च्छ्' भोजपुरी में 'छ्' में परिणत हो गया है।

(२) (क) अनुनासिक + स्पर्श व्यञ्जन अथवा हकार-युक्त वर्ण—भोजपुरी में इनके परिवर्त्तन के लिए § ९८···देखिए।

(ख) अनुनासिक + अनुनासिक : प्रा॰ भा॰ आ॰ भा॰ में ये -'ण्ण्- -'न्न्-' तथा -'म्म'- ध्वनिसमूहवाले शब्द थे। भोजपुरी में ये -न्- तथा—म्— में परिणत हो गये हैं।

(ग) अनुनासिक + य्, र्, ल्, व्, श्, ष्, स्, ह्, (देखिए, § ९८···)

(३) -ग्य्- का भोजपुरी में -ज्- हो गया।

(४) (क) र् + स्पर्श व्यञ्जन या हकार-युक्त वर्ण—

(i) कण्ठ्य, तालव्य तथा ओष्ठ्य के पूर्व का 'र्'—'र्' का समीकरण तथा उसके बाद के वर्णों का द्वित्व हो गया। भोजपुरी में ये द्वित्व वर्ण, एक कण्ठ्य, तालव्य, ओष्ठ्य स्पर्श अथवा हकार-युक्त व्यञ्जनों में परिणत हो गये।

(ii) प्रा॰ भा॰ आ॰ भा॰ (संस्कृत) के र् + दन्त्य स्पर्श वर्ण या हकार-युक्त वर्ण, निम्नलिखित दो रूपों में परिवर्तित हुए हैं—'र्' का मूर्द्धन्य उच्चारण हो जाता है तथा दन्त्य व्यञ्जन द्वित्व होकर 'र्' के साथ उसका समीकरण हो जाता है अथवा 'र्' का मूर्द्धन्य उच्चारण तो नहीं होता, किन्तु दन्त्य व्यञ्जन को द्वित्व हो जाता है। इनमें से पहली प्रक्रिया तो मागधी की है, किन्तु दूसरी अमागधीय है। भोजपुरी के 'ट्, ठ्' 'ड्', 'ड्ह्' वाले रूप तो मागधी के हैं, किन्तु त्, थ्, द्, ध् वाले मूलतः अमागधीय हैं।

(ख) र् + अनुनासिक—र्ण्—, र्न् का प्राकृत युग मे ही 'ण्ण्' रूप में समीकरण हो गया तथा भोजपुरी में यह ण्ण्, 'न्' में परिणत हो गया। इसी प्रकार र्म् > म्म् > म्।

(ग) र्य् · प्राचीन प्राकृत के अमागधीय रूपों में यह 'य्य्' में परिणत हो गया। द्वितीय प्राकृत-युग में यह -ज्ज्- में परिवर्तित हो गया और भोजपुरी में यह 'ज्' में परिवर्तित हो गया। मागधी अपभ्रंश के दो-एक उदाहरणों में र्य्>य्य् रूप में भी मिलता है। यथा—अइया = अय्यिआ = आर्यिका (मि० आचाय, बै० लैं० पृ० १२१-१२२, पृ० १०६२)।

(घ)—र्ल्—> प्रा० —ल्ल्> भोजपुरी—ल्—।

(ङ)—र्व्—>—व्व्—>—व—।

(च) र् + शिन्-ध्वनि . र् का शिन्-ध्वनि के साथ समीकरण हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप शिन्-ध्वनि का द्वित्व हो जाता है [—श्श्—,—स्स्— = श्श् (मागधी)] भोजपुरी में यह 'स्' रूप में मिलता है।

(छ)—र्ह्—>ल्ह् (मागधी में), यह ल्ह् भोजपुरी में —ल्—में परिणत हो गया है।

(५) (क)—ल + स्पर्शव्यजन : 'ल्' का स्पर्शव्यञ्जन के साथ समीकरण हो गया तथा भोजपुरी में अकेला (एक) स्पर्शव्यञ्जन हो गया।

(ख)—ल्म्—> प्रा०—म्म्—>—म (भो० पु०)।

(ग)—ल्य्—>—ल्ल्—> ल् (भो० पु०)। भोजपुरी में ऐसा उदाहरण नहीं मिलता जहाँ—ल्य—>—य्य>—ज—।

(घ)—ल्ल्—> प्रा० ल्ल्—> भो० पु०—ल्—।

(ङ)—ल्व्—> प्रा०—ल्ल्> भो० पु०—ल्—।

(६)—व्य्—> प्रा०—व्व—>—व्व—> भो० पु०—व—। यह अमागधीय परिवर्तन है। मागधी की प्रकृति के अनुसार—व्य—का—विय—में परिवर्तन हुआ होगा; किन्तु इसका लोप हो गया है और—व्य्—>—व्व् > व्व—वाले रूप ही प्रचलित हो गये हैं।

(७) (क) शिन् (sibilant) + स्पर्शव्यञ्जन या हकार-युक्त व्यञ्जन : 'श्च्', 'ष्क्', 'ष्ट्', 'ष्ठ्', 'ष्प्', 'स्क', 'स्ख', 'स्त', 'स्थ्' वाले शब्दसमूह, प्राकृत-काल में, आदि में, हकार-ध्वनि तथा मध्य में स्पर्शव्यञ्जन + उनके महाप्राण व्यञ्जन में परिवर्तित हो गये। भोजपुरी में केवल एक हकार-ध्वनि (aspirate) मिलती है।

(ख) शिन्-ध्वनि + अनुनासिक —

(i) ष्ण्> प्रा० ण्ह्> भो० पु० न्ह्।

(ii) स्न्> प्रा० ण्ह्> भो० पु० न्।

(iii) श्म् , ष्म् , स्म्> प्रा० स्स् (मागधी श्श्) तथा म्ह्> भो० पु० ह् , मँ।

(ग) शिन् + य् : प्राकृत में ये प्रायः द्वित्व शिन्-ध्वनि में परिवर्तित हो गये और भोजपुरी में एक शिन् हो गया। समीकरणवाले इन द्वित्व शिन् के —ह— में परिवर्तित होने के उदाहरण भी भोजपुरी में मिलते हैं। इन ह-रूपवाले शब्दों की उत्पत्ति कैसे हुई है तथा भोजपुरी में ये कहाँ से आये हैं, यह स्पष्ट नहीं है—

करिष्यति> करिस्सइ > करिहइ > करिहे, *करिहि > करि (भो० पु०)। किन्तु गुजराती, मारवाड़ी तथा पश्चिमी पंजाबी में ये रूप नहीं मिलते। बँगला में भी करिष्यथ > *करिहह> करिह> करिअ, करियो> कोरो = तुम करोगे (भविष्यत् अनुज्ञा)।

मि०, पालि—करिष्यामि 7 *कर्षामि 7 कस्सामि = काहामि, प्रा० काहं, दाहं = करिष्यामि, दास्यामि जहाँ—स्य—, —स्य > ह।

(घ) शिन् + र्, ल्, व् र्, ल् तथा व् के समीकरण के परिणामस्वरूप ये द्वित्व-शिन् में परिणत हो गये। भोजपुरी में केवल एक शिन्-ध्वनि सुरक्षित है और इसका उच्चारण 'स्' होता है।

(ङ) ह् + अनुनासिक (ह्ण, ह्, ह्म्,) : इस प्रकार के शब्द-समूहों में वर्ण-विपर्यय हुआ जिसके परिणाम स्वरूप प्राकृतिक मे ये 'ण्ह्', न्ह् तथा म्ह् में परिवर्तित हो गये। भोजपुरी में केवल अनुनासिक मिलता है। प्राचीन मागधी में -ह्य- कदाचित् -ह्यि- में परिणत हो गया था।

(ढ) विसर्ग + व्यञ्जन : इनमें व्यञ्जन का द्वित्व हो गया। भोजपुरी में प्रा० भा० आ० भा० का प्रतिनिधिस्वरूप केवल एक व्यञ्जन मिलता है।

दो से अधिक व्यञ्जनवाले शब्द-समूहों में, अर्द्धस्वर, र्, ल् या शिन्-ध्वनि का समीकरण हो गया और तब ये प्राकृति में संस्कृत के दो व्यञ्जनों की भाँति व्यवहृत होने लगे।

[२] हकार का आगम तथा लोप

(Aspiration and De-aspiration)

§१२८ आदि के अघोष स्पर्श व्यञ्जन का महाप्राण मे परिवर्तित होना, प्राकृत के ध्वनितत्त्व की एक विशेषता है। यथा—प्रा० खप्पर (सं० कर्पर), प्रा० फणस (सं० पनस); प्रा० खुज्ज (सं० कुब्ज); प्रा० खसिय ∠ सं० कसित (हे० चं० १, १८१); प्रा० खिखिणि ∠ सं० किङ्किणि, आदि। आधुनिक आर्यभाषाओं में महाप्राणत्व की यह प्रवृत्ति और अधिक बढ़ती गई।

§१२९ महाप्राणत्व की सभी अवस्थाओं का सन्तोषजनक कारण देना कठिन कार्य है। डा० रामगोपाल भण्डारकर के अनुसार एक स्वर या व्यञ्जन अपने पड़ोस या पास की महाप्राण-ध्वनि के कारण महाप्राण में परिणत हो जाता है। (देखिए, वि० फि० ले०, पृ० १८९) किन्तु खुज्ज ∠ कुब्ज इसका अपवाद है; क्योंकि इसके आस-पास कोई महाप्राण ध्वनि नहीं है। जैकोबी का अनुसरण करते हुए डा० ब्लाश का मत है कि व्यञ्जन में महाप्राणत्व आने का सम्बन्ध स् एवं र् के संयोग से है, किन्तु डा० ब्लाश को अपनी इस व्याख्या से पूर्णतया सन्तोष नहीं है। डा० चटर्जी के अनुसार महाप्राणत्व का कारण आस-पास की महाप्राण-ध्वनियों की अपेक्षा अन्य बोलियों के शब्दरूपों का सम्मिश्रण एवं अनुकरणमूलक ध्वनियों की, मस्तिष्क में, संदिग्ध रूप में उपस्थिति है (वै० लैं० § २३६)।

§१३० गुजराती की भाँति ही भोजपुरी के इस प्रकार के महाप्राण भी, मुख्यरूप से, संस्कृत से मिलते हैं। जैसा कि डा० टर्नर का कथन है, ये महाप्राणत्ववाले शब्द, एक ही रूप में सभी आधुनिक आर्यभाषाओं मे मिलते है; (गु० फो० § ४०)। भोजपुरी में इनके निम्नलिखित उदाहरण उपलब्ध हैं—

खीला (कील, खील-); फाँस् (पाश); भूखा (बुभ-); खेल् (क्रीड्); फतिङ्गा (पतङ्ग) मि०, बँ०, फड़िङ्; वाफ् (वाष्प) आदि।

§१३१ भोजपुरी के अन्त्य तथा मध्य के 'त्' में प्राय. प्राण (aspiration) आ जाता है । यथा —

भरथ् (भरत), राम के भाई का नाम , भारथ् (भारत), प्रा० में भारह-वस्स रूप मिलता है जो = * भारथ-वर्ष के । खारवेल के शिलालेख में भारध रूप मिलता है ; भरथरि (भर्तृ-हरि) ; महाभारथ् (महाभारत), आदि ।

§१३२ विदेशी शब्दों में भी प्राणत्व के उदाहरण मिलते हैं । यथा—

खोम् (कौम, قوم) , चोभ् (चोब, چوب) ; बनूखि (बन्दूक بندوق) आदि ।

हकार अथवा प्राण का लोप

(De aspiration)

§१३३ प्राकृत-युग में ही कुछ शब्दों से प्राण का लोप हो गया । प्राकृत से ही कतिपय आधुनिक आर्यभाषाओं में इस प्रकार के रूप आये । भोजपुरी में इसके निम्नलिखित उदाहरण उपलब्ध हैं —

उँट् (उट्ट, उष्ट् < ✻उट्ठ = उष्ट्र) ; इँट् (इट्ट-, इष्ट = इष्ट)

नेपाली, गुजराती, मराठी तथा अधिकांश रूप में बंगला से अन्तिम व्यञ्जन के प्राण का लोप हो चुका है, किन्तु हिन्दी में इसके उदाहरण सुरक्षित हैं ; (गु० फो० § ४०) । इस दृष्टि से भोजपुरी ऊपर की अन्य भाषाओं की अपेक्षा हिन्दी से समता रखती है ।

[ख] घोषत्व तथा अघोषत्व

§ १३४ हकार-ध्वनि अथवा प्राण के लोप की भाँति ही भो० पु० में अघोष के घोष तथा घोष के अघोष में परिवर्तित होने की प्रक्रिया भी मिलती है । प्रा० भा० आ० भा० (संस्कृत) के आभ्यन्तरिक व्यञ्जनों के पूर्ण लोप के पूर्व की अवस्था में अघोष व्यञ्जन, घोष में परिवर्तित हो जाते है । यथा—चलति>चलदि>चलहि—>चलइ>चले । प्राकृतों में शौरसेनी तथा मागधी में तो आभ्यन्तरिक व्यजनों का उष्म उच्चारण होता है, किन्तु महाराष्ट्री में उनका लोप हो जाता है । इस प्रकार शौरसेनी तथा मागधी प्राकृतें जहाँ उष्म व्यञ्जनावस्था को द्योतित करती हैं वहाँ महाराष्ट्री उनके लोपावस्था को प्रकट करती है । अघोष के घोष में परिणत होने की प्रक्रिया, प्राकृत के सन्धियुग मे आरम्भ हुई और आगे भी चलती रही । अन्तर स्पष्ट करने के लिए उस समय लिखने में व्यञ्जन का द्वित्व कर दिया जाता था ।

भो० पु० में घोष हो जाने के निम्नलिखित उदाहरण उपलब्ध हैं—

(i) —क्— > —ग्—:

अ० त० परगट् (प्रकट); सगुन् (शकुन); साग् (शाक); कांग् (काक); भगत (भक्त)

अघोष

(ii) व् < भ् तथा ट् < ड

बहिनि (भगिनी), डंटा (गुलि-डंटा में) < डण्ड < दण्ड ।

[व] वर्ण-विपर्यय

§ १२५ प्रा० भा० आ० भा० (संस्कृत) तथा प्राकृत में भी वर्णविपर्यय के उदाहरण मिलते हैं। इस प्राचीन वर्णविपर्यय के परिणामस्वरूप कतिपय शब्द भोजपुरी में भी आ गये हैं।

यथा :—घर् (* गर्‌ह्, ग्रह); बहि्‌नि (भगिनि); दह (हद्<ह्रद), हलुक् , (मि०, हि० हलका), मि० प्रा० हलुक्क = लघुक।

भोजपुरी में इसके निम्नलिखित उदाहरण उपलब्ध हैं—लूका (उल्का); √थाप्— (√स्थाप्), रखना; सुकठी , मि०, बं०, सुँट्‌की, सूखी मछली (* सुकटी<शुष्क); √पहिर् (परि + धा) , पहनना ; √पहुँप् = (√पहुँच्) , पहुँचना ; मॉड़ारी (मारवाड़ी) , मारवाड़ का निवासी ; पिचास् (पिशाच), भूत ; मटुक (मुकुट); गड़ुर (गरुड)।

विदेशी शब्दों में भी इसके उदाहरण उपलब्ध हैं। यथा—तमगा<तगमा ; डेक्स् (डेस्क्) आदि।

[श] ध्वनि-लोप (Haplology)

§ १२६ एक ही प्रकार की दो ध्वनियों अथवा दो अक्षरों (Syllables) में से जब एक का लोप हो जाता है तब ध्वनि-लोप की प्रक्रिया उपस्थित होती है। भोजपुरी में इसके कतिपय उदाहरण उपलब्ध हैं—

नहर्नी (नख + हरनिका); नकटा (* नाक् + कटा<नखिका—), जिसकी नाक कट गई हो।

[ष] प्रतिध्वनित शब्द (Echo-Words)

§ १२७ प्राय सभी आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं में प्रतिध्वनित तथा अनुकरण-मूलक शब्दों का व्यवहार अत्यधिक मात्रा में होता है। भो० पु० भी इस सम्बन्ध में अन्य आधुनिक आर्यभाषाओं का अनुसरण करती है। प्रतिध्वनित रूप में किसी मुख्य शब्द के किंचित् अंश को ही दुहराया जाता है। इस अंश का स्वत कुछ अर्थ नहीं होता, किन्तु मूल शब्द के साथ मिलाकर उच्चारण करने से इसका अर्थ 'इत्यादि' हो जाता है (बै० लैं० पृ० १७६)। यह कोल-द्रविड़ तथा आधुनिक आर्यभाषाओं की यह एक विशेषता है। प्रतिध्वनित शब्दों के निर्माण में भोजपुरी हिन्दी की भाँति ही, 'ओ-' का व्यवहार किया जाता है। यथा—घोड़ा-ओड़ा; भात्-ओत्; किताब-ओताब आदि।

[स] सामासिक शब्द

§ आधुनिक आर्यभाषा के विभिन्न प्रकार के समासों पर डा० चटर्जी ने पूर्णरूप से विचार किया है (देखिए,७वीं, ऑल इण्डिया ओरियण्टल कान्फ्रेन्स, बड़ौदा, १६३५ के लेखों की सूची में डा० चटर्जी का 'भारतीय आर्यभाषा में बहुभाषिता' ; 'Polyglottism in Indo Aryan' लेख)। सामासिक शब्दों के अन्तर्गत ही अनूदित समास (Translation Compound) भी आते हैं। इनमें एक शब्द तो देशी तथा दूसरा विदेशी होता है तथा सामासिक रूप में दोनों शब्द मिलकर किसी स्थानविशेष की दो प्रकार की भाषाओं को

बोलनेवाली जनता के विचारों का स्पष्टीकरण करते हैं। यथा—कागज्-पत्तर्; हाट्-बजार्; इनमें 'कागज' तथा 'बाजार' शब्द तो फारसी के हैं किन्तु पत्तर् (पत्र) तथा हाट् (हट्ट) शब्द संस्कृत के हैं।

§ १३६ ऊपर के अनूदित समास (Translation Compound) के अतिरिक्त एक दूसरे प्रकार के समास का भी आधुनिक आर्यभाषाओं में प्रयोग होता है। इस प्रकार के समास में दोनों शब्द देशी होते हैं। इस समास की उत्पत्ति दो पर्यायवाची अथवा निकट अर्थवाले शब्दों के संयोग से होता है और ये दोनों मिलकर एक अर्थ को द्योतित करते हैं; यथा—हाट-बाट, घर-दुआर, घर-द्वार आदि। (समास के सम्बन्ध में आगे देखें)

[ह] संयुक्त समास (Blending)

§ १४० कभी-कभी दो शब्दों को इस रूप में संयोजित किया जाता है कि प्रथम शब्द के अन्तिम अच् का लोप हो जाता है और दोनों शब्द मिलकर एक हो जाते हैं। इस प्रकार के संयुक्त समास के निम्नलिखित उदाहरण भोजपुरी में मिलते हैं; यथा—

गोचना (∠ गोहूँ + चना, गोधूम + चणक); गोजई (∠ गोहूँ + जई, गोधूम + यव); तियासि (∠ तृषा + पिपासा) प्यास, मि०, पूर्वी बँगला का शब्द 'तियास'।

[क्ष] सम्पर्की व्यञ्जन

§ १४१ कभी-कभी दो शब्दों का इस प्रकार संयोग होता है कि पूर्व के शब्द का व्यञ्जन, दूसरे शब्द के व्यञ्जन के सम्पर्क मे आ जाता है तथा पूर्व के शब्द के अन्तिम व्यञ्जन का लोप भी हो जाता है। इस प्रकार के सम्पर्की व्यञ्जन के परिवर्त्तन के उदाहरण भोजपुरी में नहीं के बराबर है। असमिया की भाँति ही भोजपुरी में भी 'एक' शब्द में परिवर्त्तन होता है; यथा—ए-बार, एक बार। यहाँ 'एक' का 'ए' में परिवर्त्तन हो गया है। किन्तु अन्य स्थानों में 'एक' में कोई परिवर्त्तन नहीं होता; यथा—एक्-आँजुरि; आदि।

[त्र] समीकरण

§ १४२ समीकरण के कारण भोजपुरी व्यञ्जनों में भी बँगला की भाँति ही परिवर्त्तन होता है। यहाँ भी अघोष तथा घोष, महाप्राण + वाले शब्दसमूहों में प्रथम शब्द के अन्तिम वर्ण के प्राण का लोप हो जाता है। कभी-कभी जान-बूझकर सावधानी से उच्चारण करने पर प्राण (हकार-ध्वनि) सुनाई भी देता है। (बैं० लैं० २४७); यथा—

दुध्-दही 7 दुद्-दही; आध्-थान् 7 आद्-थान्; बघ्-छाल् 7 बग्-छाल्; कठ्-फोड़वा 7 कट्-फोड़वा आदि।

जब एक ही वर्ग के स्पर्श तथा महाप्राण वर्ण साथ-ही-साथ आते हैं तब प्रथम शब्द का अन्तिम वर्ण, द्वितीय शब्द के आदि वर्ण के अनुसार घोष अथवा अघोष में परिणत हो जाता है; यथा—

एक-गाड़ी 7 एग्गाड़ी; डाक्-घर् 7 डाग्घर; आदि।

[ज्ञ] विषमीकरण

इसके उदाहरण यहाँ मिलते हैं जहाँ दो महाप्राण वर्णों में से एक अल्पप्राण हो जाता है अथवा जहाँ इस प्रकार के शब्द संस्कृत तथा प्राकृत से ही परिवर्तित होकर आधुनिक आर्य-भाषाओं में आये हैं।

दसवाँ अध्याय

भोजपुरी व्यञ्जनों की व्युत्पत्ति

'क्' की उत्पत्ति

§१४३ भोजपुरी के आदि 'क्' की उत्पत्ति, प्रा० भा० आ० भा० (संस्कृत) के आदि 'क्' से हुई है।

(१) क्- से; यथा—

काम् (कर्म); कउआ (काक), कौआ; कोइलि (कोकिल), कोयल; केवट् (कैवर्त); काल् (काल); कातिक् (कार्तिक); आदि।

(२) 'क्' तथा 'कृ' से; यथा—

कोस् (क्रोश); किनल (√क्री), खरीदना; काइल् (कृत+इल्ल), किया हुआ, कोरों (क्रोड-), गोद; आदि।

(३) 'क्' से; यथा—

काढ़ा (क्वाथ-), औषधि विशेष।

(४) स्क- से; यथा—

कान्ह् (स्कन्ध), कंधा।

§१४४ आभ्यन्तरिक तथा अन्त्य -क-।

प्रा० भा० आ० भा० (संस्कृत) क् = प्रा० -क्-।

(१) एक् (*एक्क ∠ एक); एकइस् (एक- ∠ एकविंशति), इक्कीस।

(२) प्रा० क् ∠ सं० क्; यथा—

चिक्कन् (चिक्कण ∠ चिकण); हाँक् (प्रा० हक्क), पुकारना।

(३) 'ट-क्' तथा -त्क्- से; यथा—

छक्का (षट-क-), छठों; चूक् (प्रा० चुक्क, प्रा० च्युत्+क), चूक; मकुना (प्रा० मक्कुण, सं० मत्कुण), बिना दाँतवाला हाथी।

(४) र्क- से; यथा—

पाकड़ि (पर्कटी), वृक्षविशेष; मकड़ी (मर्कटक-); सक्कर् (शर्करा), शक्कर; एकवन् (अर्कपर्ण), पौधा-विशेष।

(५) -ल्क- से; यथा—

बोकला (वल्कल), वृक्ष की छाल।

(६) -ष्क- से; यथा—

चउका (चतुष्क), चौका; निकालल (√निष्+क-), निकालना।

अनेक संज्ञापदों में प्रत्ययरूप में भी 'क्' प्रयुक्त होता है।

'ख्' की व्युत्पत्ति

§१४५ (१) आदि 'ख्' की उत्पत्ति प्रा० भा० आ० भा० (संस्कृत) के 'ख' से हुई है ; यथा—

खजूर् (खर्जूर); खाभा (खाद्य), खाजा; खपड़ा (खर्पर), खपरैल ; खटिआ (खट्वा-), खाट ; खल् (खल), दुष्ट ; खट्मल् (खट्वामल) ; खन्ता (खनित्र) ; एक प्रकार का जमीन खोदने का औजार; खयर् (खदिर), खैर या कत्था ।

(२) 'क्ष' से ; यथा—

खेत् (क्षेत्र) ; खीर् (क्षीर) ; खुद् (क्षुद्र), छोटा तिनका ; खन् (क्षण) ; खार् (क्षार) ।

(३) 'स्क' से ; यथा—

खम्भा (स्कम्भ), खंभा ।

(४) 'क' से ; यथा—

खीला [कीलक, मि०, बँ, खिल तथा अस० खीला]; कील ; खिचड़ी (*कृषरिका < कृषर-), मि०, बँ० खिचुड़ी तथा हिं० खिचड़ी ।

§१४६ (१) आभ्यान्तरिक तथा अन्त्य 'ख्' की उत्पत्ति 'क्ष' से हुई है ; यथा—

पख् (पक्ष); माखन् (म्रक्षण); तीख् (तीक्ष्ण), तीखा ।

(२) 'ष' से; यथा—

बर्खा (वर्षा) ; बिखे (विषय) ; दोख् (दोष) ; भाखा (भाषा) ; रोख (रोष) ; आदि ।

(३)—ष्क—से; यथा—

पोखरा (पुष्कर), तालाब; सूखा (शुष्क) ।

ग् की व्युत्पत्ति

§१४७ (१) भोजपुरी आदि 'ग्' की उत्पत्ति प्रा० भा० आ० भा० (संस्कृत) के 'ग' से हुई है ; यथा—

गोरू (गोरूप); गोर् (गौर) ; गर् (गल), गला; गीति (गीत) ; गुन् (गुण) ; गदहा (गर्दभ) ।

(२) 'ग्र' से; यथा—

गाँव् (ग्राम); गाँहक् (ग्राहक) ; गाँठि (ग्रन्थि), गाँठ ; अ० त० गर्हन् (ग्रहण) ; गरह् (ग्रह) ;

§१४८ आभ्यन्तरिक तथा अन्त्य 'ग्' की उत्पत्ति

(१) ग्र से हुई है, यथा—

पगहा (प्रग्रह) ; अगुआ (अग्र—) 'नेता' ; अगहन् (अग्रहायण), एक महीने का नाम ।

(२) सं० ग्न>प्रा० ग्ग से ; यथा—

आगी (अग्निका), आग ; नागा (नग्न), नंगा ।

(३) सं० ग्य>प्रा० ग्ग, से ; यथा—

सोहाग् (सौभाग्य्) ; जोग् (योग्य)।

(४) सं० द्ग>प्रा० ग्ग से ; यथा—

मुँगरा (मुद्गर) ; मोँगुर् (मद्गुर), एक प्रकार की मछली; मुँग् (मुद्ग), मूँग।

(५) र्ग >प्रा० ग्ग से ; यथा—

गगरी (गर्गर—) ; अ० त० गरग् (गर्ग), गोत्रविशेष।

(६) सं० ल्ग>प्रा० ग्ग से ; यथा—

फागुन् (फाल्गुण) ; वाग् (वल्गा), रस्सी।

अघोष 'क्' को घोष 'ग' मे परिणत करने से ; यथा—

सगुन् (शकुन) ; सुग्गा (शुक—) ; लोग् (लोक) ; भगत् (भक्त) आदि।

तत्सम 'ज्ञ' आदि तथा मध्य में ग्य—, गिअ तथा अन्त में गि रूप में उच्चरित होता है। यथा—

ज्ञान 7 ग्यान् ; यही जनसाधारण द्वारा गिआन् या गियान् रूप मे उच्चरित होता है। इसी प्रकार सज्ञान>सग्यान्>सगिआन् या सगियान् तथा यज्ञ>जग्य 7 जगि।

घ् की व्युत्पत्ति

§१४६ आदि 'घ्' की उत्पत्ति सं० 'घ्' से हुई है ; यथा—

घाम् (घर्म) ; घास् (घास) ; घाट् (घट्ट) ; घोड़ा (घोटक) ; घिव् (घृत); घिन् (घृणा)।

§१५० मध्य तथा अन्त्य 'घ' की उत्पत्ति

(१) सं० 'घ्र' से हुई है ; यथा—

बाघ् (व्याघ्र)।

(२) प्रा० ग्घ 7 सं० द्घ से ; यथा :—

√उघटल् (उद्घट—), प्रकाशित करना, उघटना।

(३) ग के बाद आनेवाली हकार-ध्वनि के समीकरण से ; यथा—

घर् (गृह * गर्ह)।

(४) सं० 'ग' से ; यथा—

सींघ् (शृंग), सींग (इस पर कदाचित् सिङ्घ, सिङ्घ्, सिघ का प्रभाव पड़ा है)।

निम्नलिखित शब्दों की व्युत्पत्ति का पता नहीं—

घेर्, घेरा; घेंचु, घेंटु, गर्दन; घुघुनी, बँ० घुघुनी, घूर्, घूरा ; घुसल्, घुसना ; घूस्, घूँस; उङ्घी, नींद; घूँचा, आदि।

च् की व्युत्पत्ति

§१५१ (१) आदि च की उत्पत्ति सं० च— से हुई है ; यथा—

चान् (चन्द्र), चाँद; चाक (चक्र); चेरि (चेटी), चीकन् (चिक्कण), चिकना; चोर् (चौर); चोंच् (चञ्चु); चीता (चित्रक), आदि।

(२) च्य से; यथा—

चुअल् (√च्यव-), चूना।

§१५२ मध्य तथा अन्त्य 'च' की उत्पत्ति

(१) सं० च्च से हुई है; यथा —

काँच् (काच); ऊँच् (उच्च), ऊँचा।

(२) सं०—ञ्च से; यथा—

पाँच् (पञ्च); मचिया (मञ्च); आँचर् (अञ्चल)।

(३) सं० त्य>प्रा० च्च।

नाच् (नृत्य); साच् (सत्य); कचहरी (कृत्य-गृह)।

(४) सं० 'स' से यथा—

लालच् (लालसा)।

'छ्' की व्युत्पत्ति

§१५३ आदि 'छ' की उत्पत्ति

(१) सं० छ- से हुई है; यथा—

छाता (छत्र); छाज् , छाव् (√छाद्-); छेरि (छागलिका) बकरी; छाँह् (छाया); छिनारि (छिन्न-) छिनाल ; छेनी (छेदनिका)।

(२) सं० 'ष' से ; यथा—

छव् (षट्-), छै।

(३) सं० 'क्ष' से ; यथा—

छोह् (क्षोम); छुरी (क्षुरिका); छेव् (क्षेप), काटना।

§१५४ मध्य तथा अन्त्य -छ- की उत्पत्ति

(१) सं० -च्छ- से हुई है , यथा—

कछुआ (कच्छप); गाँछ (गच्छ); पूछल (पृच्छ -)- पूँछना।

(२) सं० 'क्ष' से ; यथा—

माछी (मक्षिका)।

(३) सं० श्च से ; यथा—

बीछी (वृश्चिक-); पछिम् (पश्चिम), पच्छिम।

(४) सं० 'श्र' से ; यथा—

मोंछि (श्मश्रु), मोंछ।

'ज्' की-व्युत्पत्ति

§१५५ आदि ज् की उत्पत्ति

(१) सं० 'ज' से हुई है ; यथा—

जीव् (जीव); जनम् (जन्म), जन् (जन) ; जाड् (जाड्य); जाल् (जाल); जीभि (जिह्वा), जीभ।

(२) सं० 'ज्य, से ; यथा—

जेठ् (ज्येष्ठ) महीना का नाम ; (ज्येष्ठ) , बड़ा।

(३) सं० ज्व- से ; यथा—

जर् (ज्वर); जलावल (√ज्वाल-), जलाना।

(४) 'द्य' से ; यथा—
जुआ (द्यूत)।
(५) सं० य- से ; यथा—
जन्तर् (यन्त्र) ; जगि (यज्ञ) ; जम् (यम) ; जोगी (योगी) ; जतन् (यत्न) ; जोबन(यौवन) ।

§१५६ मध्य तथा अन्त्य 'ज' की व्युत्पत्ति
(१) सं० -ज- से हुई है ; यथा—
भउजाई (भ्रातृ-जाया) ; सरहजि (श्याल-जाया) ।
(२) सं० ज्ज से ; यथा—
काजर (कज्जल), काजल ; लाज् (लज्जा) ; साज् (सज्ज) ।
(३) सं० 'ज्ज्व' से ; यथा—
उजर् (उज्ज्वल), उजला ।
(४) सं० 'ज्य' से ; यथा—
राज (राज्य) ; बनिजि (वाणिज्य), बनिज ।
(५) सं० 'द्य' से ; यथा—
आज् (अद्य) ; बाजा (वाद्य) ; अनाज (अन्नाद्य) ।
(६) सं० 'ञ्ज' से ; यथा—
गाँज (गञ्ज), ढेर ; पिंजड़ा (पञ्जर) ।
(७) सं० -य्य- से ; यथा—
सेज् (शय्या) ।
(८) सं० 'र्ज' से ; यथा—
खजूर (खर्जूर) ।
(९) सं० 'र्य' से ; यथा—
काज (कार्य) ; आजा (आर्य-), बाबा या दादा ।
(१०) सं० -य- से ; यथा—
संजोग् (संयोग) ; संजम् (संयम) ।

'झ' की व्युत्पत्ति

§१५७ प्रा० भा० आ० भा० (संस्कृत) में 'झ' अत्यन्त अप्रधान ध्वनि है; किन्तु म० भा० आ० भा० (प्राकृत) में यह प्रधानता प्राप्त कर लेती है। अनार्य तथा अनुकरण-मूलक अनेक शब्दों में यह ध्वनि वर्तमान है। झ-ध्वनि के अनेक शब्दों की ठीक-ठीक व्युत्पत्ति देना कठिन है।

आदि भोजपुरी 'झ' की उत्पत्ति 'ध्य' से हुई है यथा—झावाँ (झामक <सं ध्याम-)। नीचे आदि 'झ' वाले भोजपुरी शब्द दिये जाते हैं—

झक्, झक्-झक्, झक्-मक् (प्रा० *झक (व) क), चमक, वै० लै० § २६४ ; झगड़ा ; झटका ; झट्, जल्द ; (मि० सं० झटिति) ; झट्-पट्, जल्द ; झप्, जल्द ; झपास्, धूर्त ; (झन्-झन्) ; (झम्-झम्), अनुकरणमूलक शब्द ; झर्ना, झरना;

झरल् (क्षर- ?), गिरना, झड़ना ; झरोखा ; झलमल्, चमक ; झलक्, चमक ; झाँझर, खोखला ; झर्-झर्, धीरे-धीरे हवा का बहना ; झाल्; मजीरा ; झाड़ा, पाखाना ; झोंटा, शिर के बालों का समूह ; झोरा, झोला ; झूला, एक प्रकार ब्लाउज ; झलरी, झालर ; झंडा ; झुनझुना झुनझुना, मि० बं० झुमझुमि ; झमेला ; झाँखा, झिकड़ी, पत्थर के टुकड़े ; झिझिनी, अंगविशेष का थोड़ी देर के लिए शून्य हो जाना ; झिझिरी, नौकाविहार ; झोल्, कालिख ; झिंगुर, झींगुर ; झीली (झिल्ली) ; झूठ् (जुष्ट, देशी झुट्ठ), झूठा ; झूमरि, गीतविशेष ; झूमक, कान का गहना ; झूर, मूँज घास जिसे खेतों की सीमा निर्धारित करने के लिए लगाया जाता है ; झड़ी (फुलझड़ी में) ; झोंक् ; हवा का झोंका; झोंक (भटा का झोंक) ; झिंगला (जीर्ण + अङ्ग) चिथड़ा ; झाला ।

§ १५८ भोजपुरी मध्य तथा अन्त्य 'झ' की उत्पत्ति सं० 'ध्य' से हुई है ; यथा— माझिल (मध्य + इल्ल),मझला; संझा (संध्या); बाँझ (वन्ध्या); सोझ (शुद्ध ?); समुझल (सम्बुध्य-); समझना, बुझाल (बुध्य), समझना ; जुझल (युध्य), जूझना ; सीझल् (सिध्य-), पकना ; ओझा (उपाध्याय); गोझा; अरुझल् (आरुध्य-), उलझना; माँझ (मध्य), बीच ।

'ट्' की व्युत्पत्ति

§ १५६ (१) भो० पु० में आदि 'ट' देशी शब्दों में मिलता है ; यथा— टलल्, टलना, हट जाना (∠√टल्); टाका (टङ्का), रुपया, धन; टाङ्, पैर ; टँगरी, पैर ; टाङी, कुल्हाड़ी ; टेंङ्रा, मछली-विशेष ; टूक, कपड़े का टुकड़ा ; टुँइआँ, एक मिट्टी का पात्र ; (∠तुण्डिक ?); टट्का, ताजा ; टकसार, टकसाल ; (∠टङ्कशाला); टहल्, कार्य ; टोंटी; टोपी; टाटी, टाट् ; टोंटका, टोटका ; टाँकल्, सीना अथवा लिख लेना; टूसा, कोमल पत्तियाँ।

(२) प्रा० ट्-∠सं० त- (मूर्धन्य उच्चारण के कारण) ; यथा— टेंकुआ (तर्कु), तकुआ ; टेढ़् (तिर्यक् + अङ्क), टेढ़ा ।

(३) सं० 'त्र' से ; यथा— टिकठी (त्रिकाष्ठ-) मुर्दे की तिकठी ; टुटल् (त्रुट-) टूटना ।

§ १६० मध्य तथा अन्त्य 'ट्' की व्युत्पत्ति

(१) प्रा० 'ट्ट', सं० 'ट्ट' तथा देशी 'ट्ट' से हुई है ; यथा— आटा (प्रा० अट्ट ∠सं० अर्त-) ; अटारी (सं० अट्टालिका), कुटल् (प्रा०√कुट्ट) कूटना; पटुआ (प्रा० पट्ट), पाट; घाट (घट्ट); हाट (हट्ट) ; पेट् (* पेट्ट∠देशी : पोट्ट); कुटनी (कुट्टनी), मोटा (देशी-मोट्ट) ।

(२) सं० त्र से; यथा— ठाट् (? अथा + त्र), ढंग, शैली ।

(३) सं० 'ट्व' से ; यथा— खटिया (खट्वा-), चारपाई ।

(४) सं० र्त से; यथा— कटारी (कर्तरिका); केवट (कैवर्त) ।

(५) सं० 'ऋत्त' से; यथा—

मोटी (मृत्तिका), मिट्टी।

(६) सं० र्त्म से; यथा—

बाट् (वर्त्म-), रास्ता।

(७) सं ष्ट' से; यथा—

ईंट् (इष्ट)।

(८) सं० 'ण्ट' से, यथा—

कॉट (कण्टक), कॉटा, कँट्हर् (* कण्ट-फल या * कष्ट-घर), कटहल; बाँट् (√वण्ट-), बाँटना।

(९) सं० 'न्त' से; यथा—

भेंटी (वृन्त)।

(१०) सं० ट्य से; यथा—

टुटल (त्रुट्य), टूटना।

(११) सं० ष्ट्र से, यथा :—

ऊँट (उष्ट्र), ऊँट।

'ठ्' की व्युत्पत्ति

§ १६१ भोजपुरी आदि 'ठ' की उत्पत्ति प्रा० 'ठ'<सं० स्त-, स्थ-से हुई है; यथा—

ठीक (स्था ?); ठॉव् या ठॉईं (स्थामन्), स्थान; ठाट् (स्थात्र ?); ठग् (प्रा० ठग्∠स्थग); ठठेरा (प्रा० ठट्ठकार); ठाकुर (प्रा० ठक्कुर); ठंढा (ॐ ठस्ढ-, सं० स्तब्ध ?); ठाढ़ (√स्था-), खड़ा।

अनेक देशी शब्दों में 'ठ' की उत्पत्ति बतलाना अत्यन्त कठिन है—

ठेला; ठोकर्; ठोपारी, चीनी का सत्त; ठूँठ, ठोकारी, जीभ को तालु में सटाकर ध्वनि करना।

§ १६२ मध्य तथा अन्त्य—'ठ्'—की उत्पत्ति

(१) सं० 'ण्ठ' से हुई है; यथा—

कंठी (कण्ठिका); सोंठि (शुण्ठिक∠शुष्टिक-∠√शुष्, सुखा)।

(२) सं०—न्थ—से (र् के सहयोग से); यथा—

गोंठि (ग्रन्थि); मट्ठर (मन्थर)।

(३) सं० 'ष्ट', ष्ठ' से; यथा—

अँगुठा (अङ्गुष्ठ), अँगुठी (अङ्गुष्ठिका); कोठारी (कोष्ठागारिक); काठ् (काष्ठ); जेठ् (ज्येष्ठ); मीठ (मिष्ट-); गोइँठा (गो-विष्ठा), निठुर् (निष्ठुर), मुठि (मुष्टि); ढीठ (धृष्ट); पीठि (पृष्ठ); डीठि (दृष्टि); माठा (मृष्ट ?), मट्ठा; रीठा (अरिष्ट); सेठि (श्रेष्ठिन्); लाठी प्रा० लट्ठि)।

(४) सं०- स्थ—से; यथा—

ओंठी (अस्थि); पठावल (प्रस्थाप), भेजना।

'ड्' की व्युत्पत्ति

§१६३ आदि भोजपुरी 'ड' की उत्पत्ति प्राकृत (विशेषरूप से देशी शब्दों में) 'ड' से किन्तु कतिपय शब्दों में सं० 'द' से हुई है ; यथा—

डाढ़ि (मि० दृढ-) वृक्ष की शाखा (देशी नाममाला : डाली साहाये) ; डर् (प्रा० डर ∠ सं० दर) ; डोकी, लकड़ी की प्लेट ; डोली (डोलिका) ; डेंगी, डोंगी, छोटी नाव; डेढ़ (द्वि-अर्द्ध); डहर्, रास्ता; डंटा (दण्ड); डढ़ुआ (दग्ध-), जला हुआ, (डढ़ुआ तेल में) ; डोरि, रस्सी ; डुग्गी, छोटी ढोलकी ; (मि०, बँ०, डुगडुगी) ; डब्बू, डब्बा; पीतल का चौड़ा बर्तन, (मि,० हिन्दी : डिब्बा), (मि०, बँ, डाबर) ; डम्फ, एक प्रकार का ढोल ; डॉड़ (डण्ड ∠ दण्ड), डासन्, बिछौना ; डॉगर्, पशु ; डोम् (डोम्ब) ; डाइनि (डाकिनी), डायन ; डँस् (दंश—), डॉस ; डेरा ; डोंड़ ∠ डुण्—डुह < *डुण्डुभ, पानी का साँप ; डीभी , अनाज का तीन-चार दिन का कोमल पौधा ।

§१६४ मध्य तथा अन्त्य (ड > ड़) की उत्पत्ति

(१) सं 'ट्' से हुई है ; यथा—

अखड़ा (अक्ष-वाट) अखाड़ा ; घोड़ा (घोटक) ; पुड़िया (पुटिका) ; साड़ी (शाटिका) ।

(२) सं० 'ड्य' से ; यथा—

जाड़ (जाड्य) ।

(३) प्रा०—ड, 'ड्ड' से ; यथा—

हाड़ (प्रा० हड्ड); गोड़ (गोड्ड), पैर; पड़ल् (√पड़) जैसा कि 'पडइ', पड़ना, में मिलता है ।

(४) सं० ड्र से; यथा—

बड़, बड़ि, हि० बड़ा (बाद की सं० बड्र ? से; किन्तु कदाचित् ∠ वट— < वृत्त), बँ० लैं०§१७१ ; ओड़िया, उड़िया (औड्रिक) , उड़ीसा का निवासी ।

सं० 'ण्ड' से ; यथा—

कुँड़ि (कुण्ड), कुएँ से पानी निकालने का बर्तन; ऑड् (अण्ड); हाँड़ी (हण्डि-), मिट्टी का बर्तन ; लॉड़् (लण्ड); पॉड़े (पाण्डेय) ; भड़ार् (भण्डागार); भॉड़् (भण्ड) ; मॉड़ (मण्ड) ; गँड़ेरी (प्रा० देशी : गण्डीरी), गन्ने के छोटे-छोटे टुकड़े ।

(६) सं० 'न्द्—' से; यथा—

सॅड़सी (सन्दंशिका) ।

(७) सं० 'ल' से; यथा—

ताड़ी (* तालिका) ।

(८) अन्त्य 'ड्' अनेक शब्दों में प्रयुक्त होता है । यथा—गण्डा; पण्डा; हण्डा; अड्डा आदि ।

(९) सं० 'ट' से; यथा—

कड़ाह (कटाह) ।

'ढ' की व्युत्पत्ति

§ १६५ आदि भोजपुरी 'ढ' की उत्पत्ति

(१) प्रा॰ 'ढ' से हुई है; यथा—

ढकनी (ढक्कणी); ढुकल् (√ढुक् > प्रा॰ ढुक्कइ); ढुसना, ढील (प्रा॰ ढिल्ल), ढुँआ।

(२) सं॰ धृ से; यथा—

ढीठ् (धृष्ट); अनेक देशी शब्दों के आदि में भी 'ढ' मिलता है; यथा—

ढाठा, मक्का, बजड़ी तथा ज्वार की सूखी डंठल; ढंङ्, ढंग; ढाँचा; ढिबरी, छोटा चिराग; ढींढ़, गर्भ, ढेंकुलि, ढेंकली; ढेंसराइल्, सुस्ती का अनुभव करना, ढब्, ढंग; ढर्का, ढर्की; ढेलवाँस्, ढेला फेंकने के लिए रस्सी से बनाया जाता है; ढाठी, एक लाठी गर्दन के नीचे तथा दूसरी ऊपर रखकर हत्या करने की प्रक्रिया; ढेला; ढेमनी, रखेलिन (स्त्री), ढेंकी, धान कूटने की मशीन; ढेंढ़ी; ढेबुआ, पैसा; देशी ढोलक्; ढोली, दो सौ पान का पैकेट; ढिमिलाइल, गिरना; ढारल् (देशी : ढालए) ढालना।

§ १६६ मध्य तथा अन्त्य (ढ = ढ़) की उत्पत्ति

(१) सं॰ 'ग्ध्' से हुई है; यथा—

डाढ़ा (दग्ध), जला हुआ।

(२) प्रा॰ - ड्ढ - से; यथा—

चढ़री (चड्ढ—), भगाई हुई स्त्री।

(३) सं॰ 'र्ध' से; यथा—

अगवढ़ि (अग्र—वर्धे); अढ़इया (अर्द्ध-तृतीय), ढाई; डेढ़ (द्वि-अर्द्ध); बढ़नी (वर्धनिका); बढ़ई (वर्धकिन्)।

(४) प्रा॰ 'ढ' से; यथा—

गढ़ (गढ); काढ़ा (प्रा॰ कढ), औषधि; पढ़ल (√पढ < सं॰ पठ्) पढ़ना।

(५) सं॰ 'ण्ड' से; यथा—

सुँढ़ (शुण्ड)।

(६) प्रा॰ 'वुढ्' से, यथा—

बूढ़ (प्रा॰ वुड्ढ < सं॰ वृद्ध), काढ़ल (√कढ्ढ—), निकालना, काढ़ना, काढ़ना, (जैसा कि डोल्—कढ़ई, अर्थात् वह लड़की जो विवाह के लिए वर के घर ले जाई जाती है।

नीचे के शब्दों की व्युत्पत्ति देना कठिन है; यथा—कोढ़ी, मि॰, बं॰ कुँड़ि, फूल की कली; खोंढ़िला, मि॰ (सं॰ कोटर); ठढ़िया, पशुओं के जीभ का रोग; ड्योढ़ी, दरवाजा, मि॰, बं॰ 'ड्यु ड़ि'; ढोंढ़ी, नाभी, खाने का कसार या लड्डू; पीढ़ा, पाटा, मि॰ बं॰ 'पिड़ि'।

(७) सं 'ण्ड' से; यथा—सोंढ़ (सण्ड)।

'त' की व्युत्पत्ति

§ १६७ (१) भो० पु० आदि त- की उत्पत्ति प्रा० 'त', सं० त से हुई है ; यथा—

तेल (प्रा० तेल्ल < सं० तैल); ताँत (तन्तु) ; तामूड़ा (ताम्र), ताँबे का पात्र; ताड़ी, (ताडी ताली), तीत् (तिक्त) ; तान् (तान) ; तामा (ताम्र), ताँबा; तर् (तल), नीचे; तीलि (तिल) ; तत्सम : तिलक (तिलक) ; तूमा (तुम्ब) ; तेंतुलि (तिन्तिडि) ; तमोली (ताम्बूलिक) ।

(२) सं त्र से ; यथा—

तेरह (त्रयोदश) ; तीन् (त्रीणि) ; तोड़् (त्रोट < त्रुट्), टूटना ।

(३) सं० 'त्व' से ; यथा —

तुरन्त (त्वरन्त) ; तु (त्वम्), तू ।

§ १६८ मध्य तथा अन्त्य 'त' की उत्पत्ति

(१) सं० त्र—से ; यथा—

खेत् (क्षेत्र) ; छाता (छत्र) ; चीता (चित्रक) ; बेंत (वेत्र) ; दो-सूती (द्वि सूत्रिक) ; ममिआउत (मामिका-पुत्र) ; मउसिआउत (मातृ-स्वसृका पुत्र); राउत (राजपुत्र) ।

(२) सं० र्त—से ; यथा—

बाती (वर्तिका) ; बात् (वार्ता) ; कातिक (कार्तिक) ।

(३) सं० 'क्ति' से ; यथा—

पाँति (पंक्ति), पाँत ।

(४) सं० 'त्त' से यथा—

बिपति (विपत्ति) ; मत्वाला (मत्त-पाल) ; भीति (भित्ति), भीत; पीतर (पित्तल), पीतल ।

(५) सं० 'त' से; यथा—

सोता (श्रोत) ; पुती (प्रोत) ।

(६) सं० —क्त— से ; यथा—

तींत (तिक्त) ; मोती (मौक्तिक) ; भात (भक्त) ; भगत (भक्त) ।

(७) कइँति (कपित्थ), कैथा ।

(८) सं० 'न्त', 'न्त्र' से; यथा—

दाँत् (दन्त) ; आँत (अन्त्र) ; जाँत (यन्त्र) ; नेवता (निमन्त्रण) ; अघैंता (अम + अन्त-) ।

(९) सं० 'प्त' से; यथा—

सात (सप्त) ; नाती (नप्तृक) ।

(१०) सं० क्त्र से; यथा—

जोता (योक्त्र) ।

विदेशी शब्दों में भी यह 'त' वर्तमान है । यथा—

फउती, (फौत) ; मउअति (मौत); तोता ।

'थ' की उत्पत्ति

§ १६९ भोजपुरी आदि 'थ' की उत्पत्ति

(१) सं० स्त-, स्थ- से हुई है ; यथा—

थान् (स्तन), थरिया (स्थाली-), थाली ; थोड़ा (स्तोक-) ; थाकल् (प्रा० थक्क + अल्ल ∠ सं०√स्था ?), थकना ; थाह् (स्था-), गहराई, मध्य बँगला- थाह् ; थनइली (स्तन-), स्त्रियों के कुच का रोग, थान् (स्थान); जैसा कि कालीथान में; थिर् (स्थिर), शान्त।

(२) निम्नलिखित शब्दों में 'थ' की उत्पत्ति स्पष्ट नहीं है। कदाचित् ये देशी हैं—

थउसना, (जैसा कि थउसना बैल अथवा भैंसा में) मट्ठर ; थापी ; छत या गच थपथपाने की लकड़ी ; थपरा, थप्पड़ (मि०, बं० थापँड़) ; थून्ही, थूनी ; थपुआ, खपरैल ; थुथुन्, थूथन ; थुथुरि, एकप्रकार का सर्प ; थेथर्, निर्लज्ज; थूक।

§ १७० मध्य तथा अन्त्य 'थ' की उत्पत्ति

(१) सं० -स्त-, -स्थ- से हुई है; यथा—

नथुनी (नस्तनिका) ; पोथी (पुस्तिका) ; पथार (प्रस्तार), गेहूँ, जौ आदि को पानी में भिगोकर सूखने के लिए उसे फैलाना; पथल (प्रस्तर) ; हाथ (हस्त) ; माथ (मस्तक) ; मोथा (मुस्त-), एक प्रकार की घास।

(२) सं० -र्थ- से; यथा—

साथ (सार्थ) ; चउथ (चतुर्थ)

(३) सं० -न्थ- से ; यथा—

मथनी (मन्थनी), मथानी।

(४) सं० का -थ- कतिपय अर्द्धतत्सम शब्दों में भी मिलता है; यथा—

काथा (कथा) ; पिथिमी (पृथ्वी)।

द् की व्युत्पत्ति

§ १७१ भो० पु० आदि 'द्' की उत्पत्ति

(१) सं० 'द्' से हुई है; यथा—

दाँत (दन्त) ; दही (दधि) ; दूध (दुग्ध) ; दखिन् (दक्षिण)।

(२) सं० 'द्र' से; यथा—

दरब (द्रव्य) ; दाम् (द्रम्य) ; दोना (द्रोण), पत्ते का दोना।

(३) सं० द्वि- से ; यथा—

दुइ (द्वि); दोसर (द्वि-सर); दूना (द्विगुण)।

(४) सं० 'घ' से ; यथा—

दाई (घात), घाव।

§ १७२ मध्य तथा अन्त 'द्' की उत्पत्ति

(१) सं० -द्र'-, 'द्र से हुई है; यथा—

कुदारी (कुद्दाल), कुदाल ; भादो (भाद्र-) ; हर्दी (हरिद्रा) ; खुद्द (क्षुद्र), छोटा तिनका; दादु (दद्रु)।

(२) सं०- र्द- से, यथा—
गदहा (गर्दभ); चउद्ह (चतुर्दश), चौदह; अदवरी (आर्द्र-वटिका), बड़ी;
(३) सं०- न्द्- से; यथा—
मँदार् (मन्दार), वृक्ष विशेष।
अर्द्ध-तत्सम तथा तत्सम शब्दों में 'द्' सुरक्षित रहता है; यथा—
कदम (कदम्ब), वृक्ष विशेष; दान् (दान); दाता (दाता), देनेवाला।
विदेशी शब्दों में द् वस्तुतः [ð] का प्रतिनिधित्व करता है—
दावत्; दावा, औषधि; दर्खास; (दरख्वास्त)।

ध की उत्पत्ति

§ १७३ आदि भो० पु० 'ध्' की उत्पति
(१) सं० 'ध' से हुई है; यथा—
धान (धान्य); धुआँ (धूम); धरती (धरित्री); धनुही (धनुष-); धवर् (धवल);
धूरि (धूलि)।
'ध' तत्सम तथा अर्द्धतत्सम शब्दों में भी सुरक्षित है—
धन (धन); धरम (धर्म); धेनु (धेनु), गाय; यह अनूदित समास 'धेनु-गाइ' में मिलता है।
(२) सं० ध्रु से; यथा—
धुहा (ध्रुव), टेक; धुर्पद (ध्रुव-पद्)।
(३) सं०- ध्व- से; यथा—
धुनि (ध्वनि)।
(४) संस्कृत के 'ह' अनुगामी 'दु' से, यथा—
धिआ (दुहिता), कन्या।
§ १७४ मध्य तथा अन्त्य 'ध' की उत्पत्ति
(१) सं० 'ग्ध्' से हुई है; यथा—
दूध् (दुग्ध)।
(२) सं०-द्ध- से; यथा—
बुधि (बुद्धि); सुध् (शुद्ध); साध् (श्रद्धा)।
(३) सं०-ध्र- से; यथा—
गीध (गृध्र)।
(४) सं० -र्द्ध- से; यथा—
आधा (अर्द्ध)।
(५) सं० -र्द- से; यथा—
बरध् (बलिबर्द)।

'प्' की व्युत्पत्ति

§ १७५ (१) भो० पु० आदि 'प-' की उत्पत्ति सं० 'प' से हुई है; यथा—
पाँड़े (पाण्डेय); पान (पर्ण); पाँच (पञ्च); पढ़ल (√पठ), पढ़ना; पोखरा

(पुष्कर-); पुआ (पूप); पियास् (पिपासा); पूत (पुत्र); पोथी (पुस्तिका); पाँव (पाद); पाँख् (पक्ष); पूस (पौष); पानी (पानीय); पतई (पत्र), पत्ता।

(२) सं० 'प्र' से; यथा—

पगहा (प्रग्रह-); पसरल् (प्रसर-); पहर (प्रहर); पत्थल (प्रस्तर), पत्थर; पाहुन (प्राघुण), मेहमान; पइठल् (प्रविष्ट-), पैठना; पिया (प्रिय-), शौहर।

(३) स्वरभक्ति द्वारा सं० 'प' से; यथा—

पिलही (प्लीहा)।

§ १७६ मध्य तथा अन्त्य 'प' की उत्पत्ति

(१) सं० 'त्प' से हुई है; यथा—

उपजल (उत्पद्य-), उपजना।

(२) सं० 'प्प' से; यथा—

पीपर (पिप्पल), पीपल।

(३) सं० 'म्प' से; यथा—

लिपल् (√लिम्प-), लीपना; काँपल् (√कम्प-), काँपना।

(४) सं०—त्म से; यथा—

आपन् (आत्मन्), अपना।

(५) सं०—'प्य' से; यथा—

रूपा (रौप्य)।

(६) सं० 'र्प' से, यथा—

साँप (सर्प); कपूर (कर्पूर); कपास (कर्पास); सूप (शूर्प); खपड़ा (खर्पर); पाँपर् (पर्पट)।

अर्द्ध तत्सम शब्दों में 'प' सुरक्षित रहता है; यथा—

पाप ; धूप आदि।

'फ' की व्युत्पत्ति

§ १७७ आदि भो० पु० 'फ' की उत्पत्ति

(१) सं० 'फ' से हुई है ; यथा—

फर् (फल) ; फागुन् (फाल्गुण); फेन् (फेन) ; फार् (फाल), हल का फार् ; फूल् (फुल्ल); फाँड़् (फाण्ड), स्त्री का अञ्चल।

(२) सं० 'स्फ' से; यथा—

फुर्ती (स्फूर्ति) ; फिटिकिरी (स्फटिकारि); फूट- (स्फुट), फूटना; फोड़्— (√स्फोट-), फोड़ना; फोरन (स्फोटन्), फोड़न देना, छौंक लगाना।

(३) सं० 'प' के महाप्राणत्व से; यथा—

फतिंगा या फतिङ्गा (पतङ्ग), पतिंगा; फाँस् (पाश); फरुआ (परशु), फरसा।

§ १७८ मध्य तथा अन्त्य 'फ' की उत्पत्ति सं० 'ष्प' से हुई है; यथा—

बाफ् (बाष्प)।

संस्कृत 'ब' की व्युत्पत्ति

§ १७६ आदि भो० पु० 'ब' की उत्पत्ति

(१) सं० 'ब' से हुई है ; यथा—

बुधि (बुद्धि) ; बहिर् (बधिर) , बहरा; बकुला (बक-), बगला ; बुनी (बिन्दु * बुन्द <बिन्दु), बुँद ; बान् (बाण) ।

(२) सं 'ब्र' से; यथा —

बाम्हन्, बाभन (ब्राह्मण) ।

(३) सं० 'द्व' से; यथा—

बारह् (द्वादश) ; बाइस् (द्वाविंशति) ।

(४) सं० -व- से ; यथा—

बहू (वधू) ; बीस (विंश) ; बनार्सी (वाराणसीय) ।

(५) सं० 'व्य'- से ; यथा—

बाघ् (व्याघ्र) ; बखान् (व्याख्यान)

§ १८० आभ्यन्तरिक- ब- सं० 'ड्व' का प्रतिनिधित्व करता है यथा—

(१) छबिस् (षड्विंशति)

(२) प्राणत्वहीन सं०- भ- से ; यथा—

बहिनि (भगिनी), बहन ।

(सं०- म्ब- से; यथा—

नीबू (निम्बुक) ।

(४) सं०- र्ब-तथा- र्व- से; यथा—

दूबर (दुर्बल) ; दूबि (दूर्वा), दूब ।

(५) सं० -व- से ; यथा—

नब्बे (नवति) ।

'भ्' की व्युत्पत्ति

§ १८१ आदि भो० पु० 'भ' की उत्पत्ति

(१) सं० भ् से हुई है; यथा—

भीख् (भिक्षा), भीख; भात् (भक्त), भात; भुइँ (भूमि); भाट् (भट्ट), भाट; भादो (भाद्र-); भोंड् (भण्ड); भगत (भक्त) ।

(२) सं० -भ्य- से, यथा—

भीतर् (अभ्यन्तर); भीजल् (अभ्यञ्ज्), भीगना ।

(३) सं० 'भ्र' से; यथा—

भाई (भ्राता); भावज् (भ्रातृ-जाया); भवँरा (भ्रमर), भौंरा ।

(४) अनुगामी 'ह' के स्थानान्तर से 'म-' से; यथा—

भइँसि (महिष), भैंस; भेड़ा (मेष, मेह्-ड,*म्हेड के द्वारा); (बँ० लैं० §२८१) ।

§ १८२ मध्य तथा अन्त्य 'भ्' की उत्पत्ति

(१) सं० 'भ्' से हुई है; यथा—

सुभ् (शुभ); महाभारथ (महाभारत) ।

(२) सं० 'र्भ्' से ; यथा—

गाभिनि (गर्भिणी), केवल पशुओं के गर्भिणी होने के लिए इस शब्द का प्रयोग किया जाता है।

(३) सं० -ह्व- से ; यथा—

जीभि (जिह्वा), जीभ।

(४) सं० 'म्भ' से ; यथा—

खँभिया (स्कम्भ-)।

(५) सं० -ह्म- से ; यथा—

महाबाभन् (महा ब्राह्मण)

(६) सं० -र्व- से ; यथा—

सभ् (सर्व), सभी।

आधुनिक भो० पु० के अनुनासिक

[ङ्, न्, ण्, म्,]

§ १८३ भो० पु० लिखावट में पाँचों वर्गों के अनुनासिक प्रयुक्त होते हैं और केवल 'ण्' को छोड़कर शेष चार का उच्चारण भी होता है। [गंगा के काँठे की सभी भाषाओं तथा बोलियों से 'ण्' का लोप हो गया है।] भोजपुरी तथा मैथिल पण्डित [ण्] का उच्चारण [ड़ँ] की भाँति करते हैं। इस प्रकार आधुनिक भो० पु० में बाण का उच्चारण बाँड़ँ की भाँति होता है। भो० पु० तद्भव शब्दों में यह ण, न् में परिवर्तित हो गया है। यहाँ पानी = प्रा० पाणीय तथा नरायन = नारायण।

मागधी अपभ्रंश में ['ङ्'] का उच्चारण कदाचित् [वूँ] था। 'ङ्' का यह 'वँ' उच्चारण बँगला में सातवीं शताब्दी तक वर्तमान था। उदाहरण-स्वरूप, टिपरा (लोकनाथ) के शिलालेख में संश्चाल शब्द सङ्श्चाल रूप में लिखा हुआ मिलता है। (बँ० लैं० § २८३) मध्ययुग की बँगला में जब [ङ्] शब्द के मध्य में आता था तो उसका उच्चारण [वँ] होता था। भो० पु० के पुराने पण्डित आज भी बच्चों को अक्षर ज्ञान कराते समय [ङ्] को [वँ] अथवा [उओं] उच्चरित करते हैं, किन्तु आधुनिक शिक्षित लोगों में [ङ्] का प्राचीन उच्चारण पुनः प्रचलित हो गया है।

§ १८४ ङ्, न्, प्रा० भा० आ० भा० (संस्कृत) में ये दोनों अनुनासिक अपने वर्ग के व्यञ्जनवर्णों के पूर्व प्रयुक्त होते थे, किन्तु सन्धि में ङ् या ङ्ङ् का, संस्कृत में, शब्द के मध्य में भी प्रयोग होता था।

समिद्धो अग्निर्दिवि शोचिरश्रेत्प्रत्यङ्ङुष समुर्विया विभाति

ऋ० वे० सं० ५—२८-१

म० भा० आ० भा० (प्राकृत) में अनुनासिक के साथ वाले जब व्यंजनवर्णों का सरलीकरण हुआ तो शब्द के आदि में न् तथा मध्य में न्न् ण्ण् का प्रयोग होने लगा। यथा—पालि : ञान <ज्ञान; अञ्ञ <अन्य; किन्तु प्राकृत में भी न तो ['ङ्'] का प्रयोग शब्द के आदि में और न 'न्' 'ङ्' तथा 'ङ्ङ्' का प्रयोग शब्द के मध्य में होता था।

§ १८५ बँगला तथा असमिया की भाँति ही, आधुनिक भो० पु० में भी 'ङ्' शब्द के मध्य तथा अन्त में प्रयुक्त होता है; इसकी उत्पत्ति प्रा०-'ङ्ग' से हुई है तथा यह [ँ ग् अथवा 'ङ्'] रूप में लिखा जाता है।

§ १८६ प्रा० भा० आ० भा० (संस्कृत) के शब्द के मध्य का -म्-प्राकृत में [ँ व-] में परिणत हो गया है और आधुनिक भो० पु० में श्रुति के साथ अथवा बिना यह केवल अनुनासिक में परिवर्तित हो गया ; यथा—

अँवॅरा (आमलक-), आँवला; चँवँर् (चामर); चलीं (*चल मी); कुँवॅर (कुमार); ठाँईं (स्थामन्-), स्थान (पश्चिमी भो० पु० में); गाँव (ग्राम); नाँव (नाम-); धुँआँ (धूम-); भुँइँ (भूमि); साँवर् (श्यामल-)।

'म्' की अनुनासिकता का कहीं-कहीं लोप भी हो गया है; यथा—

कानो (* कन्नवँ <*क्रद्म < (कर्दम); गवना (गमन-) गौना; बनवारी (वन-माली)।

§ १८७ ऊपर की अवस्था के प्रतिकूल संस्कृत -व्- तथा -प्- से उत्पन्न तद्भव शब्दों में स्वतः अनुनासिकता की प्रवृत्ति भी मिलती है; यथा—छाँह् (छाया); कुँवाँ (कूप-) साँवन् (श्रावण) सावन; आदि।

भो० पु० में 'ञ्'-ध्वनि

§ १८८ अनुनासिक तालव्य ँ य् के स्थान पर भो० पु० में ञ् का प्रयोग होता है। वास्तव में उच्चारण की दृष्टि से, इन दोनों में बहुत कम अन्तर है। आधुनिक भो० पु० में 'ञि' के स्थान पर 'इँ' का प्रयोग होता है। इस प्रकार भुञि, 'भूमि' तथा 'साञी' स्वामी, 'ईश्वर' भो० पु० में भुईं तथा साईं रूप में लिखा जाता है।

भोजपुरी में ण्-ध्वनि

§ १८९ जैसा कि पहले कहा जा चुका है, आधुनिक भो० पु० में मूर्द्धन्य 'ण्' के उच्चारण का लोप हो गया है। बँगला लिखावट में तत्सम, तद्भव तथा विदेशी शब्दों भी 'ण्' का प्रयोग होता है ; किन्तु इस सम्बन्ध में वस्तुस्थिति यह है कि स्वाभाविक रीति से कोई भी बंगाली 'ण' का ठीक उच्चारण नहीं कर सकता। नागरीप्रचारिणी सभा से डा० श्यामसुन्दरदास द्वारा सम्पादित 'कबीर ग्रंथावली' में त्रिवेणी, ब्राह्मण आदि शब्दों में 'ण्' मिलता है; किन्तु आधुनिक भो० पु० में ये शब्द त्रिवेनी 'बाह्मन्' आदि रूपों में लिखे जाते हैं। आज यह निश्चित रूप से कहना कठिन है कि इस 'ण' के ठीक उच्चारण का भो० पु० से कब लोप हो गया। डा० चटर्जी के अनुसार प्राचीन तथा मध्य बँगला में, १४ वीं शताब्दी तक इस 'ण' का उच्चारण प्रचलित था; किन्तु इसके लोप के पूर्व लिखावट में काफी अव्यवस्था उत्पन्न हो गई थी। (बैं० लैं० §२८६)।

न की व्युत्पत्ति

§ १९० आदि न- की उत्पत्ति

(१) सं० 'न-' से हुई है ; यथा—

नाँदी (नन्द); नाच् (नृत्य) ; नेइँ (नेमि), नेंव।

(२) सं० ज्ञ से; यथा—

नइहर् (मि० बँगला बोलचाल का शब्द नाइहर्, नाइ(य्) अर्, नायेर्) <ज्ञाति-गृह; नैहर।

(३) सं० स्न- तथा प्रा० ण्ह्-, स्ह् से; यथा—

नह < ण्हा <स्ना, मि०, बं० नापित <पालि : नहापित <स्नापित, नाई; नेह् <प्रा० णेह <स्नेह, प्रेम।

§ १६१ शब्द के मध्य में 'न्' की उत्पत्ति

सं० ज्ञ > प्रा०- ण्ण्- से हुई है; यथा—

मिनती या बिनती <विण्णत्तिय <विज्ञप्तिका, प्रार्थना।

(२) सं०- ण्- से ; यथा —

कान् <काण, काना; खन् (क्षण); √गन् <√गण्-, गिनना ; फन् (फण), साँप का फन।

(३) सं० ण्य्- से; यथा—

पुनि (पुण्य)।

(४) सं०—न् से; यथा—

आङ्न (लिखा आँगन जाता है) < अङ्गन ; √आन्- (आनयति), ले आना है ; पानी (पानीय)।

(५) सं०- न्न- से ; यथा—

अनाज् (अन्नाद्य); छिनारि <प्रा० छिन्नालिअ <छिन्न-, चरित्रहीन स्त्री।

(६) सं०—न्य्—से; यथा—

आन् (अन्य), दूसरा ; धान् (धान्य), धान।

(७) सं०- र्ण- प्रा०- ण्ण- से; यथा—

पान (पर्ण) ; चूना (चूर्ण) ; कान (कर्ण)।

भो० पु० 'न्ह' की उत्पत्ति सं०- ष्ण-, प्रा०- ण्ह- से हुई है ; यथा—

कान्हा या कन्हइआ (कृष्ण)।

सं- ह्न- से, यथा—चिन्ह (चिह्न)।

सं०- न्ध- से; यथा—कान्ह (स्कन्ध), कंधा; √बन्ह—(√बान्ध), बाँधना।

कतिपय शब्दों में -न्-, -ल्- का प्रतिनिधित्व करता है; यथा—नून् (लवण)।

निम्नलिखित शब्दों में -न- का लोप उल्लेखनीय है; यथा—पसेरी <* पन्सेरी ; पसारी, मि०, हिन्दी : पन्सारी <* पण्य-शालिक। यहाँ कदाचित् प्रसार के प्रभाव से 'न्' का लोप हो गया है।

भो० पु० म्

§ १६२ आदि भो० पु० 'म्' की उत्पत्ति

(१) सं० म्- से हुई है; यथा —

मछिया (मक्षिका-); मुँह (मुख) ; मीत (मित्र); मुँग (मुद्ग), मूँग; माइ (मदृ)।

(२) सं० 'म्र-' से ; यथा—

√माख्<सं० म्रक्ष—, माखना, मलना (वेद म्राखल्) ; माखन (म्रक्षण) ।

(३) सं० 'श्म-' से; यथा—

मसान् (श्मशान) ; मोँछ् (श्मश्रु) ।

§ १६३ मध्य तथा अन्त्य -म- की उत्पत्ति

(१) सं० 'म्ब' से हुई है ; यथा—

नीम् (निम्ब); कमरा (कम्बल-); अलम् (आलम्ब); जामुनि (जम्बु-), जामन; कदम् (कदम्ब)

(२) सं० 'म्भ' से ; यथा—

कुसुम (कुसुम्भ), एक प्रकार का रंग (कुसुमी सारी)

(३) सं० 'म्र', प्रा० 'म्ब' से , यथा—

आम् (अम्ब, आम्र),तामा (ताम्र), ताँबा ।

(४) सं० -र्म->प्रा० -म्म- से ; यथा—

काम् (कम्म, कर्म); घाम् (घर्म) ।

(५) सं० 'ह्म' से ; यथा—बाम्हन् (ब्राह्मण) ।

अर्द्धस्वर य् , व्

§ १६४ बँगला की भाँति ही आदि 'य्' तथा 'व्', 'ज्' और 'ब' मे परिणत हो जाते हैं ।

शब्द के मध्य तथा अन्त में 'य्' भो० पु० 'ए' में परिवर्तित हो जाता है, यद्यपि लिखावट में 'य्' ही रहता है । इस प्रकार वयस् , पायस् , वायस् , समय, सहाय आदि शब्द भो० पु० में वएस् , पाएस् , वाएस् , समे उच्चरित होते हैं तथा कभी-कभी इसी रूप म लिखे भी जाते हैं ।

साहित्यिक हिन्दी के प्रभाव से भोजपुरी क्षेत्र में भी कभ-कभी 'य' का उच्चारण, वर्तनी के अनुसार 'य' ही होता है । इस प्रकार यमुना, सरयू आदि भोजपुरी क्षेत्र में यद्यपि जमुना, सरजू रूप मे ही उच्चरित होते है, तथापि कभी-कभी शिक्षित भोजपुरी के मुख से ये यमुना तथा सरयू रूप मे भी सुन पड़ते हैं ।

§ १६५ आज से पचास-साठ वर्ष पूर्व के भोजपुरी हस्तलिखित पत्रों मे संस्कृत स्वस्ति शब्द स्वशित, स्वाशित तथा सोस्ति रूप में लिखित मिलता है । इससे यह प्रतीत होता है कि बंगला के मध्य युग के संस्कृत उच्चारण की भाँति ही भो० पु० में भी 'व' का उच्चारण 'ओ' होता है ।

'व' अक्षर कैथी में 'ब' की भाँति लिखा जाता है, यथा—कवर, धंवर आदि ।

§ १६६ म० भा० आ० भा० (प्राकृत)—व्व—(<सं० -र्व-; -व्य-) के दो परिवर्तित रूप भो० पु० में मिलते हैं । वस्तुतः सं० -र्व-> प्रा० -व्व-> भो० पु० -ब-; यथा—दूबि (दूर्वा-), दूब; चबा- (चर्व-), चबाना; सब (सर्व) ।

किन्तु सं० -व्य- का प्राकृत प्रतिनिधि -व्व-, -व- में परिणत हो गया । भो० पु० में में यह व-श्रुति के रूप में लिखा जाता तथा उच्चरित होता है; यथा—सोव्-, सोना (सुव्व-) ; धोव्-, धोना (धुव्व-) ।

संस्कृत के -र्व- तथा -व्य- का -व्व- एवं -व्- में परिवर्तन प्राचीन तथा बाद के प्राकृत युग में दृष्टिगोचर होता है; यथा—पालि—सब्ब (सर्व); निब्बान (निर्वाण)। संस्कृत -र्व- के अपभ्रंश में -व्व्- तथा -ब्ब-, दोनों रूप मिलते हैं; यथा—सव्व तथा सब्ब (<सर्व)। इसके विपरीत डा० ब्लाख ने सं० -र्व- का मराठी -व- में परिवर्तित होने का उल्लेख किया है। लाँ० म० § १५५। इस अन्तर का मुख्य कारण प्राकृत युग में ही बोलियों की विभिन्नता प्रतीत होती है।

§ १६७ ऊपर के विपरीत एक प्राचीन -व्य- के कारण सं० -व्य- (-तव्य- में) >प्रा० -व्व> भो० पु०, बं० तथा अस० का -ब-; किन्तु पश्चिम की भाषाओं एवं बोलियों में यह -व- में परिणत हो गया है।। -तव्य- के -व्व- का पूरब की भाषाओं एवं बोलियों में -ब- में परिवर्तित हो जाने का कारण नहीं बतलाया जा सकता।

अ० त० शब्दों में व में अपिनिहिति सम्बन्धी परिवर्तन होता है और तब व>ब; यथा—स्याद्>*स्वाद्> अ० त० सबाद्। ष का ख उच्चारण वस्तुतः विश्वास (बृश्वास) जैसे शब्दों में सुनाई पड़ता है।

[र्, ल्]

§ १६८ भाषाशास्त्रियों के मतानुसार ऋग्वेद में ही कम से कम तीन ऐसी विभाषाएँ (Dialects) हैं जिनमें भारोपीय [र्, ल्] का परिवर्तन तीन प्रकार से हुआ है—एक में र्, ल् का अन्तर स्पष्ट है, दूसरे में 'ल्' भी 'र्' में परिवर्तित हो जाता है और इस प्रकार इसमें 'र्' की ही प्रधानता है और तीसरे में 'ल्' ही मुख्य है। (वॉकारनागल § १२६ : टर्नर: गुजराती फोनोलोजी ज० रा० ए० सो०, १६२१, पृ० ५१७)। मागधी तथा आधुनिक मागधी भाषाओं एवं बोलियों की मातृ-स्थानीया प्राच्य वस्तुतः ल्- भाषा था। समन्वयात्मक भाषा होने के कारण संस्कृत में 'र्' तथा 'ल्', दोनों का प्रयोग प्रचलित था। (बे० लैं० § १६१)।

नियमानुसार मागधी प्रसूत सभी भाषाओं एवं बोलियों में केवल 'ल्' ही होना चाहिए था; किन्तु अन्य भाषाओं के संमिश्रण के कारण मागधी भाषाओं एवं बोलियों में 'र्' तथा 'ल्', दोनों का प्रयोग होता है। बँगला तथा असमिया तद्भव शब्दों में 'र्' तथा 'ल्' दोनों मिलते हैं, यद्यपि असमिया में 'ल्' से 'र्' में परिवर्तन की अपेक्षा 'र्' से 'ल्' में परिवर्तन का बाहुल्य है। (दे०, बैं० लैं० § २६१; असमिया, का० एण्ड डे० § ४८३)।

भो० पु० तद्भव शब्दों में 'र्' तथा 'ल्' दोनों के प्रयोग मिलते हैं। यथा—फर् (फल); हर् (हल); केरा (कदल-); राउर (राज-कुल); इसी प्रकार √धर्, √कर्, √मर्, आदि। भो० पु० का व्यक्तिवाचक सालिक्=बं० शालिक=सारिका, मा० प्रा० शालिकऊ।

§ १६६ उत्तरी भारत की भाषाओं एवं बोलियों में 'ळ' का प्रायः लोप हो गया है। द्वितीय उड़िया को छोड़कर अन्य मागधी भाषाओं एवं बोलियों में भी इसका अभाव है। द्वितीय प्राकृत युग में अकेला आभ्यन्तरिक 'ल्', चाहे वह प्रथम प्राकृत से मूल रूप में आया था अथवा मागधी में 'र्' से 'ल्' में परिवर्तित हुआ था, मूर्द्धन्य 'ळ' में परिणत हो गया। मागधी में, द्वितीय तथा तृतीय प्राकृत युग में, यह 'ळ' कदाचित् मौजूद था। किन्तु उड़िया को छोड़कर अन्य आधुनिक मागधी भाषाओं तथा बोलियों में इस 'ळ' का उच्चारण पुनः दन्त्य

अथवा वर्त्स्य हो गया। भो॰ पु॰, बंगला तथा अन्य आधुनिक भाषाओं एवं बोलियों के कतिपय शब्दों में ल के स्थान पर 'ड़्' मिलता है; यथा—ताड़ी (= ताल-,ताल-। अन्य आधुनिक आर्य भाषाओं—पंजाबी,राजस्थानी, गुजराती, मराठी तथा उड़िया—में उपलब्ध-सामग्री के आधार पर यह सहज ही में अनुमान किया जा सकता है कि मागधी अपभ्रंश में भी यह मूर्द्धन्य 'ळ' मौजूद थे।

§ २०० भो० पु० 'र' की व्युत्पत्ति

आदि भो॰ पु॰ 'र्' वस्तुतः सं॰ र्- का प्रतिनिधि है जिसने मागधी ल्- को निष्कासित कर दिया है; यथा —

राति (रात्रि), रात; राँड़् (रण्डा); रानी (राज्ञी); रीठा (अरिष्ट-); रूपा (रौप्य); चाँदी; रोहू (रोहित); एक प्रकार की मछली; रेंड़ी (एरण्ड॰), आदि

§ २०१ आभ्यन्तरिक भो॰ पु॰ —र्— की उत्पत्ति

(१) सं॰—र्—से हुई हैं; यथा—

कियारी या किआरी (केदारिका); डूमरि (उदुम्बर); कुकुर् (कुक्कुर); पर् (ऊपर); गहिर् (गभीर); गोर् (गौर) आदि।

(२) सं॰ 'ऋ' से; यथा—

√करल्, करना, (<√कृ); मरल्, मरना; (√मृ); पिर्थीपति (पृथ्वीपति); घर् (गृह)।

(३) रेफ सहित संयुक्त व्यञ्जनों से, जब अर्द्धतत्सम शब्दों में स्वरभक्ति के कारण रेफ 'र' में परिणत हो जाता है; यथा—

करम् (कर्म); जन्तर् (यन्त्र); मन्तर (मन्त्र); धरम् (धर्म); दरसन् (दर्शन); तद्भव शब्दों में भी; यथा—भिखारि (भिक्षा-कारि-); ससुर (श्वशुर)।

(४) सं-त-,-द्>द्वितीय प्रा॰ युग में 'ड'—यह विशेषरूप से अङ्कों में हुआ; यथा—

बारह् (द्वादश); सतरह् (सप्त-दश); सत्तरि (सप्तति), सत्तर; परोसी (मि॰ हिं॰ पड़ोसी, पड़ोसी)<प्रतिवेशी, आदि।

ल्-की व्युत्पत्ति

§ २०२ भो॰ प्र॰ आदि ल्-की उत्पत्ति सं॰ ल्-से हुई है;

यथा—लोहा (लौह); लाज् (लज्जा); लाड़् (लड्डू); लाख् (लक्ष), आदि।

§ २०३ शब्द के मध्य में ल्<मागधी-ल्-(या ल) तथा-ल्ल्-=

(१) सं॰-ड-यथा-खेल (*स्क्रीड, क्रीड); सोलह (षोडश)।

(२) सं॰-द्र->प्रा॰-ल्ल->-ल्ल्-यथा—भला (भद्रक); माल (*मल्ल, मद्र)।

(३) सं॰-र्-; यथा—चालिस (चत्वारिंशत्), तथा चालीस के समूहवाले एकतालिस, बेयालिस आदि अन्य शब्दों में; √पेल—(पेल्लइ, प्रेरयति); सालिक (सारिका)।

(४) सं०-र्ण->प्रा०-ल्ल- ; यथा— √घोल् (√घुर्ण-), घोलना।

(५) सं०-र्य->प्रा० ल्ल-से यथा—पलङ् (पर्यङ्क)।

(६) सं०-र्द-से ; यथा—छाल् (छल्लि—<छर्दिस)।

(७) सं०-ल्य-से ; यथा—तेल् (* तैल्य, तैल), तीलि (-तिल)।

(८) सं० ल्य- ; यथा—पोल् (मौल्ल, मूल्य)।

(९) सं०-ल्ल-से ; यथा—अ० त० भालु (* भल्लुक्क, मि०, सं० भल्लुक) माल (मल्ल < मद्र)।

§ २०४ आदि 'न्' तथा 'ल्' के स्थान-परिवर्तन के भी उदाहरण भो० पु० में मिलते हैं। यह प्रक्रिया प्राय समस्त मागधी भाषाओं एवं बोलियों में मिलती है और कदाचित् यह मागधी अपभ्रंश की विशेषताओं में से है। उदाहरण—

ल् > न् ; यथा— नून् (लवण) ; न् > लं ; यथा—

लङा या लंगा (नङग—, नग्ग—नग्न)।

कतिपय विदेशी शब्दों में भी यह प्रक्रिया मिलती है। यथा :—

लोट्=अं० नोट् ; लोटिस्=अं० नोटिस् ; लम्बर=अं० नम्बर ; किन्तु 'न्' का 'ल्' में यह परिवर्तन ग्राम्य समझा जाता है।

शिन्-ध्वनि : तालव्य [श] तथा दन्त्य [स] ·

§ २०५ मागधी की एक मुख्य विशेषता है तालव्य [श], किन्तु भो० पु० में इसका अभाव है और बिहार की अन्य दो भाषाओं—मैथिली तथा मगही—में इसके स्थान पर दन्त्य अथवा वर्त्स्य [स्] का प्रयोग होता है। कैथी लिखावट में केवल तालव्य [श] का ही व्यवहार, इस बात को प्रमाणित करता है कि प्राचीन भो० पु० में भी यह वर्तमान था। भो० पु० में संस्कृत के तत्सम शब्दों का [श्] भी दन्त्य [स्] की भाँति ही उच्चरित होता है। इस प्रकार संस्कृत शिव=भो० पु० सिव के।

मागधी से प्रसूत अन्य भाषाओं एवं बोलियों में केवल पश्चिमी बँगला ही ऐसी भाषा है जिसमें मागधी [श्] अपने पूर्ण रूप में वर्तमान है। उड़िया में तालव्य [श्] का किंचित दन्त्य उच्चारण होता है ; (यहाँ 'श' का उच्चारण 'सि' की भाँति होता है)। प्राचीन असमिया में आभ्यन्तरिक [श्], [ह्] में परिणत हो गया है और आधुनिक असमिया में आदि तथा आभ्यन्तरिक [श्] का उच्चारण कंठ्य उष्मध्वनि [ख्] की भाँति होता है, यद्यपि लिखावट में 'श्', 'ष्' तथा 'स्' तीनों अक्षर वर्तमान हैं। पूर्वी बँगला में भी असमिया की भाँति ही कभी-कभी 'श्', 'ह्' में परिवर्तित हो जाता है। डा० चटर्जी के अनुसार शिन्-ध्वनि [Selulant] का पश्चिमी तथा केन्द्रीय बोलियों में दन्त्य में परिणत हो जाने का मुख्य कारण, उत्तरी भारत की बोलियों का प्रभाव है; क्योंकि सहस्रों वर्ष तक ये क्षेत्र उत्तर के अधीन थे। (बे०लैं०§२६७)।

§ २०६ आज से कतिपय वर्ष पूर्व, भो० पु० में मूर्द्धन्य [ष्] का उच्चारण कंठ्य [ख्] की भाँति होता था और आज भी रिखी=ऋषि ; दोख्=दोष् ; तथा रोख्=रोष आदि में यह उच्चारण वर्तमान है। पाणिनि के सूत्र 'ज ब ग ड द श' को पढ़ाते समय पुराने पंडित 'ष' को आज भी 'ख्' की भाँति ही उच्चरित करते हैं। देवनागरी अक्षरों के प्रचार तथा संस्कृत के प्रभाव से आधुनिक भो० पु० में श्, ष् तथा स् अक्षर प्रचलित हो गये हैं। उच्चारण में

भी अब उल्लेखनीय परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है तथा तत्सम शब्दों में अब 'श्' तथा 'स्' का ठीक उच्चारण होने लगा है। जहाँ तक 'ष्' का सम्बन्ध है, तत्सम शब्दों में यह लिखा अवश्य जाता है; किन्तु इसका तालव्य उच्चारण होता है, मूर्द्धन्य नहीं।

§२०७ भो० पु० 'स्' की उत्पत्ति

सं० 'श्', 'ष्' तथा 'स्' भो० पु० में 'स्' में परिवर्तित हो जाता है; यथा—

कुशल् (कुसल); आस् (आशा) आदि; इसी प्रकार पूस् (पौष); आसाढ़् (आषाढ़); सात् (सप्त), आदि, आदि। श्, ष्, स् + अर्द्धस्वर अथवा -र्श-, -र्ष- आदि समूह, भो० पु० में -स- में परिणत हो गये हैं। यथा—

-र्श- : पास् (पार्श्व), समीप।

-र्ष- : चास्, जुताई (? चर्ष = √कृष्); √घस्, घिसना (√घृष्), आदि।

-श्म- : रासि (रश्मि)।

-श्य- : सार (श्याल-), साला; सोँवर (श्यामल), सोँवला; बिसाती (वैश्य-)।

-श्र : सावन् (श्रावण); सेठ् (श्रेष्ठिन्); मिसल् (मिश्र-); सासु (श्वश्रु), श्वाव।

-श्व- : ससुर् (श्वशुर); सॉस् (श्वास)

-ष्य- : मानुस् (मनुष्य), मानुष

-स्म- : √बिसर- भूलना (√विस्मर-)।

-स्य- : आलस् (आलस्य); कँसा (कांस्य)।

-स्त-, -स्र- : सोत् (स्रोतस्); मँउसी (मातृ-ष्वसृ) मौसी।

-स्व- : साइँ (स्वामी-); गोसाइँ (गोस्वामी-); सुर् (स्वर)।

-:स्थ- निसान् (निःस्थान), ध्वनि; यह केवल भो० पु० गीतों में मिलता है।

§ २०८ बंगला तथा अन्य आधुनिक आर्य भाषाओं की भाँति ही भो० पु० में भी आभ्यन्तरिक अकेली शिन्-ध्वनि, 'ह्' में परिवर्तित हो जाती है। यह परिवर्तन प्रथम प्राकृत युग में ही प्रारम्भ हो गया था; किन्तु द्वितीय प्राकृत युग में यह प्रचलित हो गया और तृतीय प्राकृत युग अथवा अपभ्रंश काल में तो यह विशेष रूप से प्रसिद्ध हो गया। अपभ्रंश से ही यह आधुनिक आर्य भाषाओं में आया। भोजपुरी, अन्य पुरुष, एकवचन, क्रियापद का—'इहें' प्रत्यय का 'ह' वस्तुतः इष्यति > इहाइ से आया है। पंजाबी में इस परिवर्तन से सम्बन्ध रखने वाले हाड़् = असाढ़; पोह् = पौष; दह् = दश, आदि शब्द मिलते हैं। यद्यपि चर्यापदों में 'दश्' के लिए 'दह्'-शब्द मिलता है; किन्तु भो० पु०, बंगला तथा हिन्दी का 'दहला' शब्द, पंजाबी से ही आया है।

असमिया के आदि के अच् के बाद वाले अचों में -ह्- की उपस्थिति—यथा—हाँहि, हँसी (√हस्); हाँही, (वंशी), मानुह (मनुष्य)—वस्तुतः स्थानीय परिवर्तनों के

कारण से है तथा संस्कृत शिन् के प्राकृत 'ह्' में परिवर्तित होने से इसका सम्बन्ध नहीं है। [दे० श्र० : फा० एण्ड डे० § ४६५]।

कंठ्य संघर्षी : घोष तथा अघोष ह्

§ २०६ संस्कृत 'ह्' की भाँति ही भो० पु० ह् भी घोष-ध्वनि है। पूर्वी तथा उत्तरी बंगला एवं कहीं-कहीं असमिया को छोड़कर संस्कृत शब्दों के आदि में आनेवाला 'ह्' अन्य आधुनिक आर्य भाषाओं की भाँति भो० पु० में भी सुरक्षित है। प्राचीन भारतीय आर्यभाषा (संस्कृत) के 'ह्' की उत्पत्ति वास्तव में भारत-इरानी *'ध्', 'झ' [zh] एवं आंशिक रूप से *'घ्' तथा *भ् से हुई है। द्वितीय प्राकृत युग में, 'ध्' को छोड़कर, प्रा० भा० आ० भा० (संस्कृत) के सभी अकेले आभ्यन्तरिक घोष महाप्राण वर्ण 'ह्' में परिणत हो गये और इस 'ह्' का प्रा० भा० आ० भा० (संस्कृत) के 'ह्' से एकाकार हो गया। शब्द के मध्य में प्रयुक्त 'ह्' बिना किसी परिवर्तन के आधुनिक भो० पु० तक उसी रूप में आया। यह प्राचीन तथा मध्य बँगला एवं प्राचीन असमिया में भी वर्तमान था; किन्तु इसके बाद धीरे-धीरे इसका लोप होने लगा।

§२१० आदि भो० पु० 'ह्-' की उत्पत्ति

सं० ह्-से हुई है ; यथा—हर् (हल); हर्नो (हरिण), हिरन; हाथ् (हस्त); हाथी (हस्तिन् ; हर्दी (हरिद्रा), हल्दी; हाट् (हट्ट), बाजार; हीरा (हीरक-) ; आदि।

§ २११ मध्य तथा अन्त्य-ह्-की उत्पत्ति—

(१) सं० 'क्ष' से हुई है; यथा—

लाह् (लाक्षा)

(२) सं० 'ख्' से ; यथा—

अहेरी (आखेटिक), शिकारी।

(३) सं० 'घ्' से; यथा—

हलुक् (लघुक से वर्ण विपर्यय से); नइहर् (ज्ञाति-घर् < ज्ञाति गृह)।

(४) प्रा०–'ध्'–से; यथा—

अहुँठ (अद्धुट्ठ < अर्द्ध-चतुर्थ)

(५) सं०–थ्–से; यथा—

कहनी (कथनिका), कहानी; गुह (गूह < गूथ), पाखाना।

(६) सं०–ध्–से; यथा—

सोहनी (शोधन-), निरानी; बहिर (बधिर), बहरा; पतोहु या पतोह (पुत्र-वधू); साहु (साधु)।

(७) सं०-भ- से ; यथा—

सोहाग् (सौभाग्य) ; गदहा (गर्दभ), गहिर् (गभीर) ; बिहान् (बिभान), प्रातःकाल।

(८) सं०-ह- से ; यथा—

बाँहि (बाहु-), बाँह ; लोहा (लौह) ; पनही (उपानह) ; फर् हार् (फला-हार) ; रोहू (*रोहुत, रोहित), एक प्रकार की मछली ; पगहा (प्रग्रह)।

(६) सं० 'ष्' के 'ह्' में परिवर्तित होने का उल्लेख हो चुका है। इसी प्रकार संख्या-वाचक शब्दों में श् > ह्; यथा—चउदह् (चतुर्दश), आदि। दन्त्य स् के भी 'ह्' में परिणत होने के उदाहरण मिलते हैं; यथा—एक-हत्तरि (एक-सप्तति), इसी प्रकार बहत्तरि तिहत्तरि आदि में भी।

§ २१२ आधुनिक भो० पु० में-स्त्-,-ष्ट्—,-ह्त्-तथा—ह्ट्-में परिवर्तित हो जाते हैं; यथा—

आह्ते = आस्ते, धीरे (फा० आहिस्तः); सह्ता = सस्ता (फा० सस्तः); दह्तुरी = फा० दस्तूरी; मिहिचिरी = मिस्त्री; अह्टमी = अस्टमी = सं० अष्टमी।

§ २१३ भो० पु० शब्दों के आदि में कभी-कभी 'ह्' का आगम होता है। बँगला में भी यह वर्त्तमान है; यथा—हाकुलि (आकुल-); हरिठ (अरिष्ट), रीठा आदि। अशोक के पूर्वी शिला लेख की भाषा मे भी यह 'ह्' मिलता है; यथा—हेवं, हिद् (एवं, इध-, इहश; दूसरा वर्ण विपर्यय से सिद्ध होता है।) भो० पु० में इसके निम्नलिखित उदाहरण मिलते हैं—

हुलास् (उल्लास), मि० मध्ययुग की बं० का हुल्लास; हेठें (प० भो० पु०; मि० एत्थ, अत्र); हचका, हि० एँचना (= आकृष्, दे० हार्नले)।

§ २१४ कतिपय भो० प्र० शब्दों में ह्-शब्द के मध्य में भी आ जाता है, यथा—सह्दूल (शार्दूल); सर्हज् (स्याल-जाया)।

कई ऐसे भो० पु० शब्दों के आदि में 'ह-' आता है जिनकी व्युत्पत्ति देना कठिन है; यथा—हर्का, मामूली चोट; हुरुका, एक प्रकार का छोटा ढोल जिसे 'गोंड' बजाते हैं; हाँफि, जोर से श्वास चलने की क्रिया; √हग्, हगना, शौच जाना।

अघोष [ह्]

§ २१५ अघोष 'ह्' का उच्चारण अँग्रेजी के हैट् (Hat), हैपी (Happy) आदि में उच्चरित 'ह' की भाँति होता है। यह कतिपय विस्मयादि बोधक शब्दों में भी मिलता है तथा अपने पूर्व स्थित स्वर के अनुसार अघोष कंठ्य, तालव्य, अथवा ओष्ठ्य ऊष्म ध्वनियों में परिवर्तित हो जाता है यथा—

(अः = अख़:), (इः = इस्:), (एः = एसः), (उः = उफ़्:)

बँगला में संस्कृत शब्दों के अन्त के विहर्ग का उच्चारण अघोष होता है। इस प्रकार रामः, मुनिः, कवेः, गौः आदि में बंगाल के पण्डित विसर्ग का उच्चारण अघोष रूप में कहते हैं। काशी के भो० पु० भाषा-भाषी पण्डित विसर्ग का घोष उच्चारण करते हैं और वस्तुतः यही उच्चारण उत्तरी भारत में प्रचलित है।

रूप-तत्त्व

पहला अध्याय

प्रत्यय

§२१६ आधुनिक आर्यभाषाओं के प्रत्ययों पर हार्नले ने अपने 'गौडियन ग्रामर' तथा डा० चटर्जी ने अपनी थीसिस 'ओरिजिन ऐण्ड डेवलेपमेण्ट ऑव बंगाली लैंग्वेज' में पूर्णतया विचार किया है। इन्हीं विद्वानों का अनुसरण करके भोजपुरी कृत् तथा तद्धित प्रत्ययों की सूची अक्षर-क्रम से नीचे दी जाती है।

[क] प्रत्यय

(१)

§२१७ भोजपुरी में यह संस्कृत पु० अ लि० -सु (:), स्त्री० लि० -आ, तथा न० लि० -अम् का प्रतिनिधि है। यथा—

बात्, (वार्त्ता); बोल् (प्रा० बोल्ल-); चाल् (चालः); ढंग, शैली; घन् (घनम्); मन् (मनः), समुझ् (सम्बुध्य-), समझ; जाँच् (याच्-), याचना; मेल् (मेल-), मेलजोल; झोंक् (प्रा० झुक्क-), हवा का झोंका; आड़् (अद्ड), ओट; पहुँप्, (प्रा० पहुँच्च<सं० प्रभुच्च<भा० Pro-bheuske (दे० वै० लैं० १७१), पहुँचना से वर्ण-विपर्यय के फलस्वरूप बना है।

(२)

[अ] इल्

§२१८ यह प्रत्यय संज्ञा से सम्बन्ध-वाचक विशेषण बनाने के लिए प्रयुक्त होता है। यथा— तोनइल् (तुन्द + इल्ल), तोंदवाला; धोंधइल्, मोटा मनुष्य।

गुरुरूप (Lengthened Form) बनाने के लिए -अइला प्रत्यय लगता है। यथा— बनइला, जंगली; घरइला, घर का या घरवाला।

यह प्रत्यय मैथिली तथा मगही में भी वर्तमान है।

उत्पत्ति

प्राकृत (विशेषण) -इल्ल, -इल। गुरुरूप इसमें -आक लगाने से बनता है।

(३)

-अक्कड़्

§२१९ इस प्रत्यय से निम्नलिखित संज्ञापद बनते हैं। यथा—

बुझक्कड़् (√बुझ्-, समझना), समझनेवाला;

पिअक्कड़् (√पि-, पीना), पीनेवाला या शराबी;

घुमक्कड़् (√घुम्-, घूमना), घूमनेवाला ;
भुलक्कड़् (√भुल्-, भूलना), भूलनेवाला ;
उत्पत्ति
प्रा०• -अक्क + ट > अक्कड > अक्कड़्

(४)

-अत्

§२२० यह प्रत्यय-आत, स्त्री० लि० -अती के रूप में मिलता है। बँगला में स्त्री० लि० प्रत्यय का लोप हो गया। यथा—

उड़त उड़त चिरई, उड़ती हुई चिड़िया (√उड़्, उड़ना); गिरत् परत् (√गिर, गिरना तथा √पर, पड़ना , गिरते-पड़ते ; बहता (बहता पानी में), (√बह, बहना), बहता हुआ ; चलता (चलता आदमी में), (√चल, चलना), चलता पुर्जा (आदमी); फिरतो (फिरती डाक में), (√फिर, लौटना), लौटती (डाक); लवटती (लवटती डाक में), (√लवट-, लौटना या फिरना), लौटती ;
उत्पत्ति
सं० शतृ अन्त > अत्

(५)

-अती

§२२१ इस प्रत्यय से भाववाचक संज्ञा बनती है। यह उत्तरी भारत की सभी भाषाओं एवं बोलियों में वर्तमान है। यथा—

चलती (√चल, चलना), प्रसिद्धि ; उठती, (√उठ, उठना); उन्नति ; चुकती, (√चुक, हिसाब] चुकाना), चुकती ; घटती (√घट, घटाना); कमी ; बढ़ती, (√बढ़, बढ़ना); गिनती (√गिन, गिनना), भरती (√भर, भरना, लेना)।
उत्पत्ति
-अती < अन्त + ई

(६)

[i]—अन्

§२२२ इस प्रत्यय से भाववाचक क्रियामूलक विशेष्य पद (Abstract Verbal Noun) बनते हैं जो साकार रूप (Concrete form) धारण कर लेते हैं। यथा—

चलन् , रिवाज ; छाड़न् (√छाड़्, छोड़ना), अवशिष्ट, या छोड़ा हुआ (गंगाजी के छाड़न, गंगा नदी के द्वारा छोड़ी हुई भूमि); जारन् (ज्वलन), मसाले का जारन (जलन); झाड़न् (√झाड़्, झाड़ना), बोर्ड साफ करने का कपड़ा या डस्टर; फोरन् (स्फुटन), मसाले या मेथी का फोरन ; बेठन् (वेष्टन), पुस्तक बाँधने का कपड़ा ; बिछावन् (√बिछ, बिछौना), बिछौना, बाजन् (बाज् < वाद्य), बाजा।

उत्पत्ति
सं०—अन

(ii)—अना तथा—ना

उत्पत्ति की दृष्टि से यह—अन प्रत्यय का ही विस्तार है तथा इसमें—आ जोड़ दिया गया है। यथा—

खेलवना, खिलौना; ढकना, ढकन; छनना; पानी या अन्य द्रव वस्तुओं के छानने का कपड़ा; देना (<दयन—); लेना (<लयन—); बे॑लना, बेलना; ओ॑ढ़ना (अववेष्टन—), ओढ़ना; बिछवना (* विच्छादन), बिछौना।

(iii)—अनी,—नी

यह भी—अन प्रत्यय का विस्तार है। मूल रूप में यह स्त्रीलिङ्ग था (—अन+ई) किन्तु अब इसका स्त्रीलिङ्ग से कोई सम्बन्ध नहीं है। छावनी (छादनिका), कैम्प. करनी (कर्णिका), मकान बनाते समय गारा-चूना लगाने का औजार; बो॑अनी (वपनिका), बोआई; सोहनी (शोधनिका), निराई; चटनी (चाट—), चटनी; ओ॑ढ़नी (अववेष्टनिका), छेनी (छेदनिका); हँकनी, (कउआ हँकनी में), हँकानेवाली (हक्कण [प्रा०] + इका); ढकनी (प्रा० ढक्कण+इका); बढ़नी (वर्धनिका), बढ़नी या झाड़ू; मथनी (मन्थनिका), मथानी; कहनी (कथनिका), कहानी; झुलनी (* झुल्लणिका)।

(७)

—अन्त् (अर्द्धतत्सम)

§२२३ इस प्रत्यय का स्त्री० लिं० रूप—अन्ती है। भोजपुरी में इसके बहुत कम उदाहरण उपलब्ध हैं। यथा—चलन्त, (उ चलन्त हो गइले), वह भाग गया या वह मर गया; बढ़न्ती (वर्द्धन्ती). तो॑हार बढ़न्ती हो खो, तुम्हारी उन्नति हो।

उत्पत्ति

शतृ—अन्त, संस्कृत के प्रभाव से भोजपुरी में आया है।

(८)

—आ

§२२४ यह प्रत्यय निश्चयार्थक, गुरुत्व एवं लघुत्व-प्रदर्शक होता है। यह सम्बन्ध तथा स्वार्थे रूप में भी आता है तथा घृणा प्रदर्शन में भी इसका उपयोग होता है।

यह प्रत्यय बंगला तथा असमिया में भी अत्यधिक प्रसिद्ध है।

(i) निश्चयार्थक

बकरा (वर्कर—); भेड़ा (भेड—); फगुआ, (फाल्गुन—); लोटा।

(ii) गुरुत्व

हंडा. पानी का बड़ा बर्तन; ऊँचा, उच्च।

(iii) लघुत्व

नीचा; बबुआ, बच्चा।

(iv) सम्बन्ध

झूला, एक प्रकार का व्लाउज ; ठेला, ठेला गाड़ी ; मेला ; खेला, तमाशा ; धुँआ, (धूम-) ; नोना या लोना (लवण-), नमकीन।

(v) स्वार्थे

कुआँ, (कूप) ; हाथा (हस्त-), सिंचाई के लिए पानी उलीचने का औजार ; तावा, तवा ; हर्ना, (हरिण-), हिरन।

घृणार्थक

चो॑रवा (चौर-), चोर ; चमरा (चर्मकार—) चमार ; कनवा, एकाच।

घृणा प्रकट करने के लिए व्यक्तिवाचक संज्ञा के साथ भी इस प्रत्यय का प्रयोग होता है। यथा—बुधवा, फतिंगना, आदि।

उत्पत्ति

सं०—आक

(९)

-आई

§२२५ इस प्रत्यय से, प्रेरणार्थक क्रिया से, स्त्रीलिंग संज्ञापद बनते हैं। यथा—

जँचाई (√याच्,* याचापिका) ; जाँच ; चराई (√चर्, चरना) ; लड़ाई, (√लड़, लड़ना) ; पढ़ाई (√पढ़ सं० √पठ्) ; अगो॑राई (√अगोर, अगोरना या देखना) ; जो॑ताई (√योक्त्र—* योक्त्रापिका) ; कमाई (√कमा, कमाना) ; धुनाई (√ध्वन्), रुई धुनना ; सिआई (√सि—, सीना) ; पे॑राई, (सं० √पेल) ; हँकाई (प्रा० √हक्क) ; पिटाई (प्रा०√पिट्ट) ; चढ़ाई, पहाड़ की चढ़ाई ; उतराई, नाव की उतराई अथवा पहाड़ की उतराई ; खवाई, भली भाँति भोजन करने की क्रिया ; गढ़ाई, गहना गढ़ाने का पारिश्रमिक ; जड़ाई, सोना आदि में बहुमूल्य प्रस्तर जड़ने का कार्य ; धो॑आई, कपड़े धोने का पारिश्रमिक ; को॑ड़ाई, खेत की कोड़ाई ; दे॑खाई, देखने की क्रिया ; पिलाई (√पि, पीना) पीने की क्रिया अथवा शराब पीने का दाम ; ढोआई ; लिखाई, (सं०√लिख) ; मुँह या मुँदे॑खाई, दुलहिन के मुख देखने की क्रिया।

इस प्रत्यय की सहायता से भाववाचक संज्ञापद तथा विशेषण भी बनते हैं। यथा—

रजाई, राजत्व (राजा), मध्य बंगला राजाई, ; मिठाई, (√मिठा<मिष्ट—) ; भलाई, (<भल्=भद्र—) ; सचाई (साच्=सत्य) बड़ाई, (बड़=बड़ा) ; सफाई (फा० साफ)।

उत्पत्ति

सं०-आपिका।

(१०)

-आहट्

§ २२६ इस प्रत्यय से भोजपुरी में बहुत कम शब्द बनते हैं। यथा —

इकइत् या इकाइत्, डाकू ; नतइत् या नताइत्, सम्बन्धी ; से"वइत् या से"वाइत्, मन्दिर का पुजारी (सेवा)।

उत्पत्ति

इस प्रत्यय की उत्पत्ति प्रेरणार्थक तथा शतृ—आपन्त से निम्नलिखित रूप में हुई है —

सं०—आपन्त > — आयन्त > प्रा० आवन्त, आअन्त, प्रा० भो० आय व न्त > आइत किन्तु पे"त स्वराघात के कारण हो गया है।

(११)

—आऊ

§ २२७ इस प्रत्यय की सहायता से धातु से संज्ञापद बनते हैं। यथा—

बिकाऊ (सं० √ विकी—) बिक्री योग्य ; चलाऊ (सं० √ चल्) चलने योग्य, जैसे काम चलाऊ में ; टिकाऊ (√ टिक), जो बहुत दिनों तक चले; दिखाऊ या दे"खाऊ (प्रा० √ दिक्ख-या √ देक्ख); उड़ाऊ (प्रा० √ उड्डयन), रुपया-पैसा उड़ाने या नष्ट करनेवाला।

उत्पत्ति

इस प्रत्यय का सम्बन्ध भी - आई से है तथा - आप + उक से बने हुए क्रियामूलक विशेष्य से इसकी उत्पत्ति हुई है।

(१२)

—आक्, —आँक

§ २२८ इस प्रत्यय से निम्नलिखित संज्ञापद सिद्ध होते हैं। यथा—

कहाक् (सं० √ कथ्); उड़ाक् या उड़ाँक् (प्रा० √ उड्ड-)

लड़ाक् वा लड़ाँक् (सं० √ लड्), लड़ाई करनेवाला। फारसी का चालाक शब्द भी इसी समूह के अन्तर्गत आता है, किन्तु भोजपुरी में इसका रूप चल्हाक् हो जाता है।

उत्पत्ति

हार्नले ने इस प्रत्यय की व्युत्पत्ति—आपक (§ ३३८, दे० गौडियन ग्रामर) से बतलाई है—सं० उड्डापक > प्रा० उड्डावके > उड्डाअके > उड़ाक ; किन्तु डा० चटर्जी इसकी उत्पत्ति प्रा० अक्क या आक्क से मानते हैं।

(१३)

—आन्

§ २२९ इस प्रत्यय की सहायता से प्रेरणार्थक क्रियाओं से क्रिया मूलक विशेष (Verbal Nouns) बनते हैं। यथा —चलान् (चलापन) ; रिवाज, फैशन ; उठान् (उत्थापन) अभिवृद्धि ; मिलान् (सं० √ मिल) तुलना ; उड़ान्, उड़ाना > उड़ना (* उड्डापन—)।

उत्पत्ति

इस प्रत्यय की उत्पत्ति णिच् (प्रेरणार्थक) - आपन, - आपन-क > आवणअ > आवण > - आणअ > आण > आन्।

(१४)

—आप्, —प्

§ २३० यह प्रत्यय भोजपुरी में हिन्दी से आया है और यह मिलाप (दे० हिन्दी मेल-मिलाप) में वर्तमान है।

इसकी उत्पत्ति सं०—त्य >—प्य से प्रतीत होती है (चुनार के शिलालेख में —प्प > —प्)। इसकी व्युत्पत्ति सं० आत्मन् शब्द से भी निम्नलिखित रूप में हो सकती है। यथा—आत्मन् > अप्प या आप्प > आप > आप्।

(१५)

—आर्

§ २३१ इस प्रत्यय से कर्तृवाचक संज्ञाएँ बनती हैं। यथा — चमार् (चर्मकार); कोंहॉर् (कुम्भकार); गँवार् (ग्रामकार); कहॉर्, (स्कन्धकार); पालकी ढोने-वाला; लोहार् (लौहकार), सोनार, (स्वर्णकार); पियार (प्रियकार); छठिआर (* षष्टिकार), बालक के पैदा होने के छठवें दिन का संस्कार।

उत्पत्ति

सं०—कार।

(१६)

—आरि या आरी

§ २३२ इस प्रत्यय से भी कर्तृवाचक संज्ञाएँ बनती हैं। यथा —

भिखारि (भिक्षाकारिक); पुजारी (पूजा-कारिक);

उत्पत्ति

सं० कारिक

(१७)

—आव्

§ २३३ इसका शुद्ध रूप आवा है। इससे निम्नलिखित संज्ञाएँ सिद्ध होती हैं—

चढ़ाव (√चढ्, चढ़ना); बचाव (√बच्, बचना); लगाव (√लग, लगना, सम्बन्ध स्थापित करना); जमाव (√जम्, जमना, इकट्ठा होना; घुमाव (√घुम, घूमना), टेढ़ा-मेढ़ा दूर का रास्ता।

इसके शुद्ध रूप नीचे दिये जाते हैं। यथा—

चलावा (√चल, चलना), निमंत्रण; भुलावा (√भुल, भूल), धोखा।

उत्पत्ति—

इस प्रत्यय की उत्पत्ति णिच् (प्रेरणार्थक)—आप्+व+क से हुई है।

(१८)

—आवट्

§ २३४ यह प्रत्यय भोजपुरी में हिन्दी से आया है। यथा—

सजावट्, लिखावट्, तरावट्।

उत्पत्ति

सं० आप+वृत्त

(१९)

—आवन्

§ २३५ इस प्रत्यय की सहायता से प्रेरणार्थक क्रियाओं से क्रिया मूलक विशेष्य बनते हैं। यथा—

डेरावन्, डर; चुमावन् (√चुम्ब) विवाह के समय का चुम्बन संस्कार।

उत्पत्ति

सं०—आपन

(२०)

—आस

§ २३६ इस प्रत्यय से निम्नलिखित शब्द सिद्ध होते हैं। यथा—

पियास, प्यास; मुतवास (*मुत ∠ मूत्र + आप + वश); हगवास (*हग + आप + वश); झपास, धूर्त।

उत्पत्ति

सं० प्रेरणार्थक आप + वश

(२१)

—आह

§ २३७ इस प्रत्यय का गुरु रूप—आह् है। यथा—

बउराह् (वातुल-), पागल; भदूराह, (भाद्र-), वह दूल्हा जिसके विवाह के समय वृष्टि हो; घुर्चिआह, धूर्त; गुर्हिआह, धूर्त; भुताह, भयानक मनुष्य; पछिमहा पश्चिम का मनुष्य; दखिनहा, दक्खिन का मनुष्य; उतरहा, उत्तर का मनुष्य।

उत्पत्ति

इस प्रत्यय की व्युत्पत्ति अस्पष्ट है। डा० सुकुमार सेन के अनुसार यह षष्ठी विभक्ति है [भोजपुरी सोने के थारी, सोने की थाली; माटी के घोड़ा, मिट्टी के घोड़ा] = बंगला, सोनार थाल, माटिर घोड़ा। मागधी प्राकृत में—आह षष्ठी का प्रत्यय है। यथा—

ताह पुलिशाह। डा० चटर्जी के अनुसार इसकी उत्पत्ति—घ (अव्यय रूप) से हुई है। यथा—

पा० इध = सं० इह, किन्तु डा० चटर्जी षष्ठी प्रत्यय से भी इसकी उत्पत्ति असम्भव नहीं मानते।

(२२)

—आहटि

§ २३८ इस प्रत्यय से निम्नलिखित शब्द सिद्ध होते हैं। यह प्रत्यय भोजपुरी में हिन्दी से आया है। यथा—

चिलाहटि (√चिल्, दे०, देशी, चिल्ला), शोर; घबराहटि, घबराहट; झनझनाहटि, (पा० झणझण), खनखनाहटि, खन्‌खन्— ध्वनि।

(२३) [क]

—इया

§ २३६ यह प्रत्यय देशवाची तथा निजवाची अर्थ में प्रयुक्त होता है। इसकी सहायता से विशेषण तथा लघुरूप भी बनते हैं।

(i)

बनिया (वणिक+आ); जलिया (जालिक+आ) जालिया, धूर्त; नगपुरिया, (नागपुरिक+आ), छोटानागपुर का निवासी; भोजपुरिया (भोजपुरिक+आ), भोजपुर का निवासी; ओड़िया (औड्रिक+आ), उड़ीसा का निवासी, उड़िया।

(ii) विशेषण

बढ़िया, अच्छा; घटिया, बुरा।

(iii) लघुता

पुड़िया, फोड़िया, डिबिया।

उत्पत्ति

सं० -इक > प्रा० - इअ + आ।

[ख]

—इया

यह प्रत्यय ऊपर के प्रत्यय का विस्तार है। इससे भोजपुरी के निम्नलिखित शब्द सिद्ध होते हैं। यथा—

जड़िया, नगीना जड़ने का काम करनेवाला; धुनिया, धूना; नियरिया, सोनार की अंगीठी की राख धोकर सोना निकालनेवाला; लोहिया, लोहे का काम करनेवाला, किन्तु विशेषण रूप में लोहे का, यथा, लोहिया पैसा, लोहे का पैसा।

(२४)

(i)—ई

§ २४० इस प्रत्यय का सम्बन्ध सं० -इक, -इका से है, किन्तु बाद में फारसी के विशेषणीय तथा सम्बन्धवाची -ई प्रत्यय ने भी इसे संपुष्ट किया है। यह स्त्री तथा लघुतावाची प्रत्यय के रूप में भी प्रयुक्त होता है। यथा—

दागी, खर्चीला; भारी; संघाती, साथी; दागी (फा० दाग़ داغ+ई); हिसाबी (अ० हिसाब+ई); अङ्ठी (अङ्गुष्ठिका), अँगूठी; कंठी (कंठिका); तेली (*तैलिक); तमोली (ताम्बूलिक)।

(ii)—ई

यह आधुनिक आर्यभाषा का सर्वाधिक प्रसिद्ध प्रत्यय है। यथा—

घोड़ी ∠ *घोडिआ ∠ घोटिका; बारी ∠ वाटिका, बाग।

(iii)—ई (लघुतावाची)

कटारी (देशी : कट्टारी— <कट्टारिया; ढोलकी (* ढोल्ल— <देशी : ढोल्ल-); पोखरी <प्रा० पोक्खरिया <सं० पुष्करिणी-); छूरी (सं० छुरिका); जाँती (यन्त्रिका) चूहा मारने की मशीन; कियारी (सं० केदारिका), क्यारी; चिमटी (*चिम्म-वट्टिका)।

(२५)

—इयार्

§ २४१ इस प्रत्यय के बहुत थोड़े शब्द भोजपुरी में मिलते हैं। असमिया में इस प्रत्यय से अनेक शब्द सिद्ध होते हैं। यथा—

अधियार् (अर्ध + इक + कार); आधे का हिस्सेदार;

हतियार् (हत्या + इक + कार); हत्यारा।

उत्पत्ति

सं०—इक + कार

(२६)

—इला

§ २४२ इस प्रत्यय से स्थान तथा काल वाचक विशेषण सिद्ध होते हैं। यथा—

अगिला (* अग्रिलाक, अग्गिल्ल + आक), अगला;

पछिला (* पश्चिलाक, पच्छिल्ल-), पिछला;

मझिला (* मध्य इलाक, मज्झिल्ल—), मझला;

पहिला (* प्रथिलाक, पहिल्ल), पहला;

बिचिला (अप० बिच्चिल्ल <वृत्य> विच्च + इल्ल = विच्चिल्ल), बिचला।

उत्पत्ति

यह प्रत्यय सभी आ० आ० भा० में मिलता है। इसकी उत्पत्ति सं०—इलाक प्रा० इल्लअ से हुई है।

(२७)

—ईं

§ २४३ यह प्रत्यय क्रमवाची संख्याओं के साथ प्रयुक्त होता है। यथा—

पचईं, पाँचवीं; छठईं, छठी; सतईं, सातवीं; अठईं, आठवीं; दसईं, दसवीं।

उत्पत्ति

स्त्री० लि० क्रमवाची प्रत्यय—मिक।

(२८)

—उ

§ २४४ इस प्रत्यय से भोजपुरी कतिपय शब्द ही बनते हैं। यथा—

लाड़ु (लड्डु—), एक प्रकार की मिठाई, भालु (भल्लु-)

उत्पत्ति

सं०—उक

(२९)

—उआ

§ २४५ इस प्रत्यय से अनेक शब्द बनते हैं। यथा—

खरुआ (खारुक-); भूरे रंग का कपड़ा; ठलुआ, बैठा-ठाला व्यक्ति; बन्धुआ, कैदी; सतुआ (सक्तु-), भतुआ, एक प्रकार का कुम्हड़ा; मँड़ुआ (मण्डुक) एक प्रकार का अनाज।

उत्पत्ति

०—इका + आक

(३०)

—उत्

§ २४६ यह पुत्रवाची प्रत्यय है। यथा—

राउत् (राज-पुत्र), अहीरों की उपाधि; ममिआउत् (मामिकापुत्र), मामी का पुत्र; फुफुआउत् , बुआ का पुत्र; पितिआउत् (पितृव्य + पुत्र),ताऊ का पुत्र; मउँसिआउत (मातृष्वसा-पुत्र), मौसी का पुत्र।

उत्पत्ति

सं० पुत्र> पुत्त> उत्त>उत्

(३१)

—ऊ

§ २४७ इस प्रत्यय की उत्पत्ति सं०—उक से हुई है। यथा—

खाऊ (√खाद् + उक); खूब खानेवाला, रिश्वती; उताऊ (* उत्तारुक), क्रोधी; विरोधी; बिगाड़ू, बिगाड़नेवाला। इसी प्रकार डॉकू; पहरू, तथा झाड़ू भी।

(३२)

—एरा <-यर <-अर <-कर + आ

§ २४८ इसके निम्नलिखित उदाहरण हैं—

लुटेरा, चोर-डाकू; छमेरा, बिना जोते-बोए अपने-आप उगनेवाली फसल; ठठेरा।

(३३)

§ २४९—एल,—एला <प्रा० -इल्ल <सं० स्वार्थे तथा विशेषणीय प्रत्यय—इल। इस प्रत्यय से संज्ञा एवं विशेषण पद सिद्ध होते हैं। यथा—

अधेला, एक पैसा का आधा; अकेल् , अकेला; बघेल् , बघेला (बग्घ-<व्याघ्र-), व्याघ्र के समान; मथेल् , मथेला, (मत्थ-<मस्त-), दरवाजे के ऊपर की लकड़ी।

(३४)

§ २५० ओला<प्रा० -उल्ल। यह प्रत्यय लघुतावाची है।

खटोला, छोटी चारपाई; अमोला, आम का छोटा कोमल पौधा।

(३५)—(i)

—क् ,—अक् , इक् ,—उक्

§ २५१ इस प्रत्यय से धातु से संज्ञापद बनते हैं। यथा—

टनक, टन् टन् आवाज (मि०, बं टनक् , टन, √ टन, खींचना); झलक (झलक्क), प्रकाश; सड़क् ; फाटक , दरवाज (√ फाट् , फटना); अटक् , रुकावट (मि० बं० आटक् , आड़ , रुकावट ; बैठक् (बइट्ठ < उपविष्ट); फुँक (मि० सं० फूत्कार); चिलिहक्, दर्द ; चुक , चूक ; सुरुक (मि० बं० सुड़ुक) , जल्दी पी अथवा खा जाना।

म० आ० भा० में इस प्रत्यय का रूप—अक्क होगा। यथा—टणक्क; फलक्क; खवइट्ठक। शौ० अप० में खुडुक्कै (=शल्यायते); वुडुक्कै (=गर्जति) आदि रूप मिलते हैं। प्राकृत वैयाकरणों के निर्देश का अनुगमन करने से यह बात प्रतीत होती है कि प्रा० भा० आ० के—अक तथा म० भा० आ० के—अक्क का सम्बन्ध क्रियामूलक विशेषण (Participle)—अ (न्) त—+कृत<√कृ से है; यथा—चमक<प्रा० चमक्क, चमक्कअ, चमक्किअ<सं० चमत्-कृत; इसी प्रकार चुक (च्युत-कृत)। संस्कृत का —अक, प्राकृत तथा अपभ्रंश —अक्क का सम्बन्ध मागधी हडक्क=हद्+अ+क, हगे=अहक्के=अहकं<अहम् से स्पष्टतया प्रतीत होता है। (मि० लेड्डु (ड्डु) क्क= लेष्टुक; णाअक्क=नायक आदि।

ब्लाख (Bloch) के अनुसार इसका कुछ सम्बन्ध संस्कृत विशेषण तथा स्वार्थे—क्य से है। यथा—पारक्य<पर—(मि०, माणिक्य<मणि)। पुनः ब्लाख ने द्रविड़ भाषाओं में अतिप्रचलित—क्क्,—क्— तथा —ग—प्रत्ययों की ओर भी हमारा ध्यान आकर्षित किया है। वहाँ धातु से क्रियामूलक विशेष्य (Verbal Noun) बनाने में भी वे प्रत्यय सहायक होते हैं। यथा—नड्, चलना>नडक्कै, नडक्कुद्दल, चलना; √ इरु, होना, इरुक्कै, होकर।

ऐसा प्रतीत होता है कि इसकी उत्पत्ति कृत तथा √कृ के अन्य रूपों से हुई है। इसपर संस्कृत के—अक प्रत्यय का भी प्रभाव प्रतीत होता है। यही अक, प्राकृत अक्क में परिणत हो गया है। यह सम्भव है कि म० भा० आ० काल में द्रविड़ भाषाओं के—क्क, —ग,—क, प्रत्यय उत्तरी भारत में प्रचलित हों और इसका प्रभावप्राकृत के अक्क प्रत्यय पर पड़ा हो।

—अक् का —इक्,—उक्, में परिवर्तन स्वरसंगति (Vowel Harmony) के कारण हुआ है। (यह अ> इ तथा उ)।

भोजपुरी का—अका(—अक्+—आ) वस्तुतः—क् तथा —अक् का विस्तार है। यह विशेषणीय तथा स्वार्थे प्रत्यय है। इससे भोजपुरी के निम्नलिखित शब्द सिद्ध होते हैं—

फटका, रुई धुनने का औजार; हचका, दचका, गाड़ी के चलने से धक्का; कतका, छड़ी; ढर्का, मामूली चोट; ढुर्का, गोंड़ों का बाजा; घुघुका, बाजा विशेष।

—अकि, — अकी+ई (विशेषण) यथा—बैठकी। -की, -कि <-अकी: स्त्री० लिं०, लघुतावाची स्वार्थे; यथा—खिर्की, छोटा दरवाजा; टिमुकी,- छोटा ढोल।

—आक् प्रत्यय तड़ाक्, यकायक; पड़ाक्, शीघ कड़ाक्, तथा सड़ाक् शब्दों में वर्तमान है। यह गति तथा शीघ्रता के लिए प्रयुक्त होता है। —आक् वस्तुतः —अक् का दीर्घ रूप है।

(३६)

—अक अ ;—अका,—अकी (ii)

§ २५२ यह विशेषीय प्रत्यय है तथा स्वार्थे रूप में भी इसका प्रयोग होता है। गुरु रूप में-का तथा स्त्री० लिं०-की रूप में यह प्रयुक्त होता है।

उदाहरण— धे`नुक, धनुष (धणुक्क, धनुक्क), मि०, बं० धनुक ; भोजपुरी में अ का ए, धेनु शब्द के कारण हो गया है। गद्का (सं० गदा); बड़्की, बड़ी लड़की या पुत्रवधू ; मझिल्का, मझला; छोट्की, छोटी।

यह प्रत्यय संस्कृत का स्वार्थे तथा विशेषणीय —क प्रतीत होता है। इसका रूप प्राकृत में क्क हो गया है। मागधी में षष्ठी के रूप में यह प्रयुक्त होता है। यथा—उड़िया में पुरुषङ्क, पुरुष का। प्राचीन तथा बोलचाल की बंगला में भी यह प्रत्यय वर्तमान है। आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं, विशेषतः पश्चिमी हिन्दी का 'का' परसर्ग कअ <कृत से आया हुआ प्रतीत होता है, किन्तु बहुत सम्भव है कि संस्कृत —क का भी इसपर प्रभाव पड़ा हो। शौरसेनी अपभ्रंश, हेमचन्द्र, में बप्पी -की भूम्हडी (= पैत्रिकी भूमिः) में भी यह प्रत्यय वर्तमान है। प्राकृत पैङ्गल के अवहट्ठ में भी —क षष्ठी विभक्ति के रूप में मिलता है।

(३७)

§ २५३ अवटी <सं० पट्टिका, से निम्नलिखित संज्ञापद भोजपुरी में बनते हैं। यथा—

कसवटी (कष-पट्टिका), चुनवटी, (चूर्ण-पट्टिका), चुनौटी।

(३८)

-अवर्

§२५४ इस प्रत्यय से कतिपय शब्द ही भोजपुरी में सिद्ध होते हैं। यथा—

हथवर् (मि०, बं० हातुड़ी), हथौड़ी ; लठवर् नटों की एक जाति।

(३९)

-ठ,—ठा

§२५५ इस प्रत्यय की उत्पत्ति सं० अवस्था से निम्नलिखित रूप में हुई है। यथा—अवस्था > प्रा० अवत्था, अवट्ठा (मि० प्रा० अवट्ठाण)> आ० भा० आ०—अठ, —ठ, —ठा। यथा—पुराठ (पुर—) पुराना; पकठा (पक्व-अवस्था), पका; सुकठा (शुष्क-अवस्था) सूखा, आदि।

(४०)

-ड़, -ड़ी

§ २५६ यह प्रत्यय स्वभाव, व्यापार तथा सम्बन्ध प्रदर्शित करता है। यथा—

खेलवाड़, खिलवाड़ ; भागड़, वह तालाब जिसमें नदी की बाढ़ का पानी रुका हो ; भँगेड़ी, प्रतिदिन भाँग पीनेवाला ; गँजेड़ी, गंजा पीनेवाला।

उत्पत्ति

-ड़ की उत्पत्ति सं० √वृत् से प्रतीत होती है। वृता शब्द ऋग्वेद में मिलता है जो कार्य, परिश्रम तथा गति का बोधक है। प्राकृत में इससे *वट > वड़ा > वड़ शब्द बनते हैं। इक > ई के विस्तार से (ड़् + ई) = -ड़ी प्रत्यय बनेगा। यथा—

अगाड़ी < अग्र- वाट, आगे की गति, घोड़े के आगे के पैरों की रस्सी ; पिछाड़ी ; इत्यादि।

(४१)

-ड़ा

§ संस्कृत तथा प्राकृत -वाट 'बाड़ा' 'घेरा', से इसकी उत्पत्ति हुई है। यह वट ∠ वृत ∠ √वृ से आया है। यथा—

अखाड़ा (अच + वाट), बाड़ा या घेरा जिसके भीतर लोग कुश्ती लड़ते हैं; तमड़ा (ताम्रवाट [क]), ताँबे का बड़ा बर्त्तन; खुवाड़ (खु + वाट), भटकते हुए पशुओं को बन्द करने का बाड़ा, मवेशीखाना में खु = फा० खुग, मि० शूकर।

(४२)

-ड़, -ड़ा, -ड़ी

§ २५८ यह स्वार्थे प्रत्यय है और इसकी उत्पत्ति -ड- से हुई है। प्राकृत (अपभ्रंश) में इसका अत्यधिक प्रयोग हुआ है। यथा—

वच्छ-ड (वत्स); दिअह -ड, (दिवस); गोर -डी (गौरी) आदि। हेमचन्द्र में भी इसका प्रयोग मिलता है। यथा—दुक्ख -डा, मि०, हि० दुखड़ा। ऐसा प्रतीत होता है कि प्राकृत काल में उत्तरी भारत की बोलियों में यह प्रत्यय अत्यधिक प्रचलित था। आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं में -ड़ ∠ ड से बने अनेक संज्ञापद उपलब्ध हैं; किन्तु राजस्थानी में यह विशेष रूप से प्रयुक्त हुआ है।

अपभ्रंश -ड- की उत्पत्ति प्राकृत तथा संस्कृत -ट (या 'र', 'ऋ' से संपृक्त या असंपृक्त -त) से हुई है। -ट प्रत्यय से निर्मित अनेक शब्द संस्कृत में मिलते हैं, किन्तु ये प्रायः बाद की संस्कृत के हैं। हाँ, मर्कट शब्द बौद्ध युग के पूर्व का अवश्य है (भाषा-विज्ञानी इनकी उत्पत्ति द्रविड़ भाषा से मानते हैं)। इसी प्रकार पर्क -टी, कुक्कुट, लकुट आदि शब्द भी संस्कृत में वर्तमान हैं। वैदिक संस्कृत में -ट प्रत्यय का अभाव है। अनार्यभाषाओं—द्रविड़, कोल आदि—का भी इसपर प्रभाव नहीं विदित होता; क्योंकि वहाँ भी यह प्रत्यय नहीं है। ऐसी अवस्था में इस अत्यधिक प्रचलित प्रत्यय की उत्पत्ति संस्कृत से ही माननी पड़ेगी। ऐसा प्रतीत होता है कि इस ड ∠ ट की उत्पत्ति—त से हुई है। यह कर्मवाच्य कृदन्तीय (Passive Participle) प्रत्यय है जो तद्धित प्रत्यय के रूप में संज्ञा तथा विशेषण पदों में लगता है। (दे० ह्विटनी : संस्कृत ग्रामर § ११७६ तथा १२४५ एवं मेकडोनेल . वैदिक ग्रामर § २०६)। यथा —एक -त', द्वि -त', त्रि -त', मुहु-र्त', रज -त', पर्व-त आदि। स्वत. मूर्धन्यी-करण (spontaneous celebralization) के वश सम्भवतः बोलचाल की संस्कृत में यह -त, -ट में परिणत हो गया होगा। इस प्रकार संस्कृत विभीतक (विभीदक भी) > * विभी-ट-क > प्रा० बहेडअ > आ० भा० आ० बहेड़ा; आम्रा-त क > प्रा० * आम्रा-ट क, > प्रा० अम्माडअ > आ० भा० भा० आमड़ा; * शृङ्गातक > सं० तथा प्रा० शृङ्गा-ट-क > सिंगाड़ा।

ऐसा प्रतीत होता है कि कथ्य आर्यभाषा के इतिहास में त > ट > ड प्रत्यय सदैव लोकप्रिय रहे और समय की प्रगति से जब संस्कृत-प्रत्ययों में ध्वन्यात्मक परिवर्त्तन होने लगा तब आगे चलकर -ड प्रत्यय बहु प्रचलित हो गया। प्राकृत तथा अपभ्रंश काल में -ड को -ट में परिणत करके संस्कृत रूप देना भी इस बात को सिद्ध करता है कि इस युग में भी यह प्रत्यय कितना जनप्रिय था।

चर्यापदों के प्राचीन बंगला में भी -ड़ प्रत्यय मिलता है। यथा—

णाव-ड़ी (नाव-), चर्या १०,२०; बापु-ड़ा कापालिक, चर्या १०। मध्ययुग की बंगला में भी दिय-ड़ी, दीपक (मि० भोजपुरी दियरी), आदि।

भोजपुरी के कतिपय शब्दों में -ड़, -ड़ी मिलता है, किन्तु अन्य शब्दों में यह -र, -री हो जाता है। यथा—

चमड़ा (चर्म-); झगड़ा, झगड़ा, ऑतूरी, ऑतड़ी; मोँहड़ा < मुहड़ा, (मुख), घर के आगे का भाग; केँवड़ा, या केँवरा, मि०, बं० केओँड़ा (केतक); चिउड़ा या चिउरा, मि०, बं० चीड़ा या चिड़ा; बगड़ा, जवान बकरा (व्याघाट + ड़ा); कठरा, कठौता (काष्ठ); गॅठरी (ग्रंथि); टुकड़ा या टुकरा, मि० हि० टुकरा चङ्के [गे] री, छोटी टोकरी; पेँटारी, पेटी; गोँयड़ा, गाँव के निकट का भाग; लुगरी, स्त्रियों के पहनने का कपड़ा।

(४३)

-ता

§२५६ इस प्रत्यय की उत्पत्ति सं० अन्तः से हुई है। इसकी सहायता से भोजपुरी के कतिपय शब्द ही सिद्ध होते हैं। यथा—

रइता (राजिक-अन्तः) रायता; भँवता (भ्रम अन्त.), धूर्तता।

(४४)

-नि, -इनि

§२६० ये स्त्रीप्रत्यय हैं तथा मागधी से प्रसूत सभी भाषाओं एवं बोलियों में वर्तमान हैं। इनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध मे वै० लैं० § ४४५ में पूर्णतया विचार किया जा चुका है; देखने में ऐसा प्रतीत होता है कि ये संस्कृत के -नी तथा -आनी प्रत्ययों के अवशिष्ट हैं, किन्तु वास्तव में बात ऐसी नहीं है। व्यावहारिक रूप में -नी तथा -आनी प्रत्ययों से बने हुए कोई भी संस्कृत शब्द आधुनिक आर्यभाषाओं में नहीं आये हैं। वस्तुतः संस्कृत का गुणवाची प्रत्यय -इन, जिसका कर्ता कारक स्त्रीलिङ्ग एकवचन का रूप इनी- हो जाता है, आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओं के अनेक स्त्रीलिङ्ग प्रत्ययों का मूल है। आगे चलकर लोग इस बात को भूल गये कि यह स्त्रीलिङ्ग प्रत्यय है, और पुंलिङ्ग संज्ञापदों के साथ भी इसका प्रयोग होने लगा। जब यह अकारान्त पुलिङ्ग संज्ञा शब्दों के साथ प्रयुक्त होने लगा तब -इ- का लोप हो गया और -अ-नी में परिवर्तित हो गया। इस प्रकार आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं में -ईनी, -अनी (-इणी, अणी) प्रत्यय अस्तित्व में आये, किन्तु -ई की अपेक्षा इनका प्रयोग कम ही हुआ।

(४५)

—रू

§२६१ यह समतावाची प्रत्यय है तथा संस्कृत -रूप से इसकी उत्पत्ति हुई है। प्राकृत में यह -रूव में परिणत हो जाता है। आधुनिक आर्यभाषाओं के कतिपय शब्दों में यह स्वार्थे प्रत्यय के रूप में मिलता है। यथा—

गोरू (गो-रूप), गाय-बैल; गभरू, (गर्भरूप), बालक-जैसा; पठरू (प्रा० पट्ठ-रूप), बकरी का बच्चा; मेहरारू (महिला-रूप) स्त्री; बछरू (वत्स-रूप), बछड़ा; पड़रू (पट्ठ-रूप), भैंस का बच्चा, मि०, गु० पाड़ो, पाड़ी तथा उ० बं० पाड़ा; कमँरू (काम-रूप), पश्चिमी आसाम।

(४६)

-ल, -ला, -ली

§२६२ -ला तथा -ली वस्तुतः -ल के ही विस्तार हैं। इसकी उत्पत्ति संस्कृत -ल (क्रिया-मूलक विशेषणीय, विशेषणीय तथा स्वार्थे) प्रत्यय से हुई है। यथा—

-ल; फाटल, फटा हुआ; खेदल, निकाला हुआ; राखल, रखा हुआ; पाकल (पक्व-) पका; नाथल, नथा हुआ या नाक में रस्सी डाला हुआ।

-ला; अधेला (अर्द्ध-), आधा पैसा; चकला (चक्र), टुकड़ा, भाग।

-ली; बिजुली (प्रा० विज्जुलिआ, सं० विद्युत + ल + इका), बिजली; खजुली, खजली;

टिकुली, टिकली (प्रा० टिक्कुलिका), यहाँ टिकुरी गु० तकली < सं० तर्कु के 'उ' के कारण 'टिकुली' के 'क' में 'उ' लगा है।

(४७)

(I)—वार

§२६३ इसका सम्बन्ध सं०—पाल से है जो—वाल तथा—वार में परिवर्तित हो गया है। यथा—

प्रयागवाल, प्रयाग का पंडा ; गयावाल, गया का पंडा ; काशीवाल, काशी का पंडा ; कोतवाल (कोट्ट-पाल) मि०, बं० कोटाल, किन्तु भोजपुरी में कोतवाल शब्द प० हि० से आया है और वहाँ यह फा० से उधार लिया गया है।

(II)—वार्

रखवार—(रक्ष-पाल), दोनवार (द्रोण-पाल), एक राजपूत जाति ; किनवार (किण-पाल), राजपूत जातिविशेष।

(४८)

—वाला

§२६४ यह प्रत्यय भोजपुरी में प० हि० से आया है। इसकी उत्पत्ति—पाल-क से हुई है और यह बहु-प्रचलित है। यथा—

टोपीवाला ; गाड़ीवाला ; हाथीवाला ; पहरावाला आदि।

(४९)

वाँ वीं, ईं

§२६५ इस प्रत्यय की उत्पत्ति—मक से हुई है। उदाहरण के लिए दे० § २७

(५०)

—स—सी,

§२६६ यह प्रत्यय 'समानता' तथा सरूपतावाची है। हार्नले ने इसकी उत्पत्ति—सदृश से बतलाई है (गौडियन ग्रामर §२६२), किन्तु चटर्जी ने इसकी व्युत्पत्ति-श से मानी है जो लोम-श कपि-श, कर्क-श, युव-श आदि शब्दों में वर्तमान है (बे० लैं० §४५०)। भोजपुरी में इसके उदाहरण निम्नलिखित हैं—

आपस (* आत्म-श), मित्र ; घामस (घर्म-श), गर्म दिन ; झापस, बूँदा-बाँदी के दिन।

यह प्रत्यय बप-सी, पिता, झप-सी आदि में भी मिलता है।

(५१)

—सर्,—सरा

§ २६७ हार्नले ने इसकी उत्पत्ति भूतकालिक कर्मवाच्य कृदन्तीय-सृतः से की है (गौडियन ग्रामर, § ३७१), किन्तु डा० चटर्जी के अनुसार इसकी उत्पत्ति सं०—सर < √सृ, रेंगना; से हुई है। यह प्रत्यय संख्यावाची शब्दों के साथ लगता है। यथा—

एकसर्, अकेला ; दोसर् दूसरा, ति-सर, तीसरा ; (दे० एक-सर चलना ;दोसर नहि साथ)—धरणी दास।

यह प्रत्यय मध्य युग के बंगला में भी वर्तमान है—एक सर, दो॑ सर, ते॑ सर, आदि। इसके स्त्री० लिं० रूप भोजपुरी में एकसरि्, दो॑ सरि् आदि हैं।

(५२)

—हन्

§२६८ विशेषणीय प्रत्यय—हन् तथा हर् की उत्पत्ति स्पष्ट नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि दो प्रत्ययों के संयोग से इनकी उत्पत्ति हुई है। इस प्रकार हन् की उत्पत्ति प्रा० —ह (<—भ √भा, दिखाई देना) + सं०—न से प्रतीत होती है। दे० प्रा०—त्तण <सं०—त्वन = त्व + न। इसके साथ ही मि० महित्वना (ऋ० वे० १—८५—७)। भोजपुरी में इसके उदाहरण निम्नलिखित हैं—

एकहन्, पूरा (एक-हन् पाजी, पूरा या बड़ा दुष्ट या बदमाश); बिअ-हन्, बीज का अन्न; बड़-हन्, बड़ा; छो॑ट-हन्, छोटा; जड़-हन्, जाड़े का धान; खन-हन्, हल्का।

(५३)

—हर्

§ २६९ इस प्रत्यय की उत्पत्ति प्रा०—ह + सं०—र (यथा—मधु-र) से हुई है। भोजपुरी में इसके उदाहरण निम्नलिखित हैं—

लम-हर्, लम्बा; फर-हर्, तेज चलनेवाला; छर-हर्, दुबला-पतला तथा तेज (यथा—फरहर, अदिमी, तेज चलनेवाला मनुष्य, छर-हर् देहि, दुबला-पतला शरीर; किन्तु फर-हर् तथा छरहर् भात, अच्छा बना हुआ भात जो गीला न हो)

(५४)

—हार्

§ २७० इस प्रत्यय की उत्पत्ति सं०—धार √धृ से हुई है और अर्थ-परिवर्तन से इसका अर्थ, धारण करना, या पास रखना हो गया है। सं०—हार <√हृ, ले जाना; मि० उद्हार्ये; माध्यंदिन संहिता १६-७। भोजपुरी में इसके उदाहरण निम्नलिखित हैं—

चुरिहार्, चूड़ी बेचनेवाला, मनिहार्, शीशे की चीजें बेचनेवाला; करनिहार् या करनीहार, करनेवाला; पढ़निहार या पढ़नीहार, पढ़नेवाला; रहनिहार या रहनीहार, रहनेवाला।

(५५)

—हारा

§ २७१ इस प्रत्यय से भोजपुरी में बहुत कम शब्द बनते हैं। यथा—

एकहारा, दो॑ हारा, ते॑ हरा, एक पर्त, दो पर्त, तीन पर्त, आदि। दो॑ हारा का अर्थ पुष्ट भी होता है। इसकी उत्पत्ति सं०—हार, विभाग, से प्रतीत होती है।

(ii) विदेशी प्रत्यय

फारसी प्रत्यय तथा कतिपय ऐसे शब्द जो भोजपुरी में भी प्रत्ययरूप में ही प्रयुक्त होते हैं, नीचे दिये जाते हैं।

(५६)

—आना

§ २७२ इस प्रत्यय की उत्पत्ति फा० आन : (انه) से हुई है। इससे निम्नलिखित शब्द बनते हैं। यथा —

बबुआना, बड़े लोगों का ढंग (भोजपुरी बाबू =भद्र पुरुष); घराना, वंश, खान्दान; जुर्माना; सुकराना, पारितोषिक; नजराना, भेंट; सलिआना, वार्षिक।

(५७)

—खाना

§ २७३ यह स्थानवाची प्रत्यय है। इसकी उत्पत्ति फारसी खान, (خانه) से हुई है।

छपखाना या छपाखाना, प्रेस; दवाखाना; डाकखाना।

(५८)

—खोर

§ २७४ इस प्रत्यय की उत्पत्ति फा० खोर (خور) से हुई है जिसका अर्थ है, खानेवाला। यथा—

घुसखोर, रिश्वत या घूस लेनेवाला; नसाखोर, नशीली चीजें खानेवाला, गमखोर, क्षमाशील; कर्जाखोर या कर्जखोर, कर्ज लेनेवाला।

(५९)

—गर

§ २७५ इस प्रत्यय की उत्पत्ति फा० गर से हुई है। यह मैथिली में भी प्रचलित है; यथा हथगर, गोँड़गर (दे० हरि पुनि हथगर गोँड़गर भेल विद्यापति)। इसके भोजपुरी में निम्नलिखित उदाहरण हैं —

आँखिगर, आँखवाला, ओझा जो भूत, प्रेतों को देख सकता है। जादूगर, कँटगर, काँटेवाला; हथगर, हाथवाला; गोड़गर, पैरवाला, विशेष रूप से बालक जब अपने पैरों के बल चलने लगता है।

(६०)

—गिरी

§ २७६ इस प्रत्यय का मूल फा०—गरी है यथा—बाबुगिरी, बाबूपन, कुलिगिरी, कुलीपन; आदि।

(६१)

-चा

§ २७७ इस प्रत्यय का मूल तुर्की -चा है और यह आ० भा० आ० भाषाओं में फारसी से होते हुए आया है। भोजपुरी में इससे निम्नलिखित शब्द सिद्ध होते हैं—

बगइचा, बाग, बकुचा, पीठ पर बँधा हुआ बंडल (तु० बुग्चा), दे०; बँ बोँ चूका।

(६२)

—ची

§ २७८ इस प्रत्यय का मूल भी तुर्की है और यह फारसी से होता हुआ आया है। यथा—फा० -ची <तु० -ची, -जी।

[ख] उपसर्ग (स्वदेशी)

(i) तद्भव तथा तत्सम

§ २८५ भोजपुरी में केवल थोड़े-से तद्भव तथा तत्सम उपसर्ग प्रयुक्त होते हैं। नीचे ये दिये जाते हैं—

(१)

अ,—ऑ—

§ २८६ सं० का आदि अ-भोजपुरी में प्रायः अ-ही रहता है, किन्तु कभी-कभी यह ऑ- में परिणत हो जाता है। यथा—

अबोध; अचेत्, अचेत; अनून्, बिना नमक का; अकाज, नुकसान; अबे ड़्र, देर; ऑ थॉ ह्ऑ, अथाह (दे० अथामन्); ऑ लॉ गॉ, (अलग्न), अलग।

(२)

अन—

§ २८७ सं० न भोजपुरी में अन्- में परिवर्तित हो गया। यथा—

अन्भल्, बुराई (अव० अनभल, यथा—अरिहुँक अनभल कीन्ह न रामा; तु० दा०; रा० मा०); अन्गिनत्, अनेक, बहुत।

(३)

अति—

§ २८८ सं० का अति— भोजपुरी में उसी रूप में वर्तमान है। यथा—

अति-अन्त,—अत्यधिक परेशान; अतिकाल देर।

(४)

§ २८९ सं० का अव- भो० पु० में अव-, अय- तथा अ- में परिणत हो जाता है। यथा—अयगुन (अवगुण); अलम (अवलम्ब)।

(५)

कु—

§ २९० सं० कु— भो० पु० में भी वर्तमान है। यथा—

कु-चाल, बुरी चाल; कु-मार्गी, बुरे मार्ग पर चलनेवाला, दुष्ट; कु-कर्मी, बुरा काम करनेवाला; कु-खेत, बुरा स्थान, कु-नजड़्र, बुरी दृष्टि।

(६)

§ २९१ सं० का दुर्- तत्सम शब्दों में इसी रूप में प्रयुक्त होता है, किन्तु तद्भव शब्दों में यह दु- या दू -में परिणत हो जाता है। इसका अर्थ है, बुरा, निर्बल। यथा—

दुराचारी; दुबुद्धी, दुर्बुद्धि; दू-बर, दुर्बल; दुलार <दु+लाड [हि० लाड़-प्यार; (सं० लाड)]।

(७)

§ २९२ सं० का निर्-उपसर्ग भोजपुरी में नि- हो जाता है। यथा—

निरोग, रोगरहित; नि-लज्ज (कभी-कभी भोजपुरी में निर्लज्ज भी प्रयुक्त होता है), नि-खरल, सूखा; नि-कम्मा; नि-धड़क; निहंग, नंगा, दुष्ट; निफल (निष्फल)।

(८)

§ २९३ सं० का सु- भोजपुरी में इसी रूप में परिवर्तित हो जाता है। यथा—

सुफल; सुमति, सपूत (सुपुत्र), यह कपूत (कुपुत्र) का प्रतिलोम है।

(११) उपसर्ग (विदेशी)

फारसी

(१)

कम्—

§ २९४ इसका मूल फा० कम-है। यथा—

कम्-असल = कमसल, जारज; कम्‌उमिरि, नाबालिग; कम्-खोट, बुरा; कम्-जोर, कमजोर।

(२)

खुस—

§ २९५ इसका मूल फा० खुश—(خوش) है। यथा—

खुस्-इ-हाली = खुसिहाली, प्रसन्नावस्था; खुसामद्, खुशामद।

(३)

गर्, गयर—

§ २९६ इसका मूल फा० आ० गैर (غير)—बिना है। यथा—

गर्-हाजिर या गयर्-हाजिर, ∠गैरहाजिर, अनुपस्थित; गयर्-जगह<गैर-जगह, अन्य स्थान; गैर्-आबाद या गयर्-आबाद ∠गैर आबाद।

(४)

दर्—

§ २९७ इसका मूल फा० दर-(भीतर) है। यथा—

दर्‌बार, दरबार; दर्‌कार, दरकार; दर्‌माहा, मासिक वेतन।

(५)

ना

§ २९८ इसका मूल फा० ना—(नहीं) है। यथा—

नापाँता, जिसका पता न हो; नाबालिक ∠नाबालिग; ना-उम्मेदी, आशाहीन; ना-पसन्न, नापसन्द; ना-लायक ∠ नालायक, अयोग्य।

(६)

फी

§ २९९ इसका मूल फा० आ० फी—(प्रत्येक) है। यथा—

फी-दुकान, प्रत्येक दूकान; फी-अदिमी, प्रत्येक मनुष्य, फी-रुपया, प्रत्येक रुपया।

(७)

बद्—

§ ३०० इसका मूल फा० बद (बुरा) है। यथा—

बद्-जाति, बदजात, दुष्ट; बद्‌नाम, बदनाम; बद्‌चलन, बदचलन; बद्‌राह, कुमार्गी।

(८)

बे—

§ ३०१ इसका मूल फा० बे—(बिना) है। यथा—

बे-चाल, बुरे चालवाला ; बे-हाथ , हाथ से निकल जाना; बे-टइन्, कुसमय, बिना टाइम ; बे-धड़क, निडर ; बे-ढब, विचित्र; बे-चैन, बेचैन ; बे-जान, कमजोर ।

यह प्रत्यय क्रिया-मूलक विशेषण (Participle) के साथ भी प्रयुक्त होता है। यथा—

बे-कुटल, बिना कुटा हुआ ; बे-पिसल, बिना पिसा हुआ ; बे-बोअल, बिना बोया हुआ ।

(९)

हर्—

§ ३०२ इस प्रत्यय का मूल फा० हर-(प्रत्येक) है। यथा—

हर् बार ; हर् जगह ; हर् घड़ी ; हर् रोज, हर्-दिन; हर-बोलिया, विदूषक ∠ हर + बोल मि०, बं० हर-बोला ।

अंग्रेजी

§ ३०३ अंग्रेजी के हेड—हाफ—, तथा सब-शब्दों के संयोग से भी कई शब्द बनते हैं। यथा—

हेड-पंडित ; हेड-मास्टर ∠ Head master ; हाफ-कमीज ; हाफ-टिकट ; सब-डिप्टी ∠ Sub deputy ; सब-रजिट्रार ∠ Sub-registrar ।

दूसरा अध्याय

समास

§ ३०४ धातु तथा प्रत्यय के योग से शब्द बनते हैं और जब एक से अधिक शब्द मिलकर वृहत् शब्द की सृष्टि करते हैं तब उसे समास कहते हैं। इस प्रकार के समासजात शब्द को समस्त पद भी कहते हैं। जब समस्त पद में सम्मिलित शब्दों का विच्छेद किया जाता है तब उसे विग्रह की संज्ञा दी जाती है। समस्त पद में विभक्तियों का लोप हो जाता है; किन्तु विग्रह में लुप्त विभक्तियों को प्रकट करना पड़ता है। कभी-कभी समासबद्ध होने पर भी विभक्ति का लोप नहीं होता। ऐसी अवस्था में 'अलुक् समास' होता है, जैसे बंगला का घोड़ार गाड़ी, घोड़ागाड़ी; मामार बाड़ी, मामा का घर, आदि।

समास, भारोपीय भाषा की एक विशेषता है और यह भोजपुरी में भी वर्तमान है। नीचे डा० चटर्जी के 'बंगला व्याकरण' के आधार पर भोजपुरी समास पर विचार किया जाता है। यहाँ पर यह जान लेना आवश्यक है कि बंगला आदि अन्य आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की भाँति भोजपुरी में भी सब प्रकार के शब्दों के संयोग से समस्त पद बनते हैं। इन शब्दों के अन्तर्गत प्राकृतज, देशी, तत्सम, अर्द्ध तत्सम, विदेशी आदि सभी शब्द आते हैं।

§ ३०५ मोटे तौर पर समास के निम्नलिखित तीन विभाग किये जा सकते हैं—

(१) संयोगमूलक या द्वन्द्व समास—इस प्रकार के समास में समस्यमान पदसमूह द्वारा दो या उससे अधिक पदार्थ (वस्तु या भाव) का संयोग प्रकाशित होता है। इसमें संयोगी पद स्वतंत्र होते हैं, कोई एक दूसरे के अधीन नहीं होता।

(२) व्याख्यान-मूलक या आश्रय-मूलक समास—इस प्रकार के समास में प्रथम शब्द द्वितीय शब्द को सीमाबद्ध कर देता है अथवा विशेषण रूप में होता है।

व्याख्यान मूलक समास के निम्नलिखित भेद हैं—

[क] तत्पुरुष—उपपद, अलुक् तत्पुरुष, नञ्तत्पुरुष, प्रादि समास, नित्य समास, अव्ययीभाव, सुप्सुपा।

[ख] कर्मधारय—रूपक, उपमित, उपमान, मध्यपद लोपी।

[ग] द्विगु।

(३) वर्णनामूलक समास—इस प्रकार के समास में समस्यमान पद मिलकर जो अर्थ प्रकाशित करते हैं, उसके द्वारा किसी अन्य पदार्थ का बोध होता है।

वर्णनामूलक समास को बहुब्रीहि नाम से अभिहित किया जाता है। इसके चार भेद हैं—व्यधिकरण बहुब्रीहि, समानाधिकरण बहुब्रीहि, व्यतिहार बहुब्रीहि तथा मध्यपदलोपी बहुब्रीहि।

§ ३०६ संयोग-मूलक अथवा द्वन्द्व समास—

[क] द्वन्द्व समास—

द्वन्द्व शब्द का अर्थ है, जोड़ा। इसमें समस्यमान पद अपने रूप में ही विद्यमान रहते हैं। 'औ', 'और', 'एवं', 'तथा' संयोजक अव्ययों के द्वारा ही उसका विग्रह सम्पन्न होता है। समस्यमान पदों में जो रूप अथवा उच्चारण में अपेक्षाकृत छोटा होता है वही प्रायः पहले आता है; किन्तु इस नियम में कभी-कभी व्यत्यय भी हो जाता है और गौरव-बोधक शब्द बड़ा होने पर भी पहले आ जाता है।

द्वन्द्व समास के उदाहरण—

(i) निम्नलिखित समस्त पदों में केवल दो पदों का समास हुआ है—

माई-बाप, माँ-बाप ; भाई-बाप, तथा बाप-माई, भाई-बहिनि; बहिन-महतारी या बहिन-मतारी या मतारी-बहिन; बहन-माँ या मा-बहन, लरिका-मेहरारू, लड़का-स्त्री; लरिका-लरिकी, लड़का-लड़की; ससुर-दमाद, श्वसुर-जामाता; सास-पतोह, सास-पुत्रवधू; बेटा-पतोह, पुत्र-पुत्रवधू; हाथ-गोड़, हाथ-पैर; दाल-भात; दही-भात; चिउरा-दही, चिवड़ा-दही; नून-तेल, नमक-तेल; आन्हर-कान, या कान-आन्हर, अंधा-काना या काना-अंधा; रात-दिन या दिन-रात; साँझ-बिहान, संध्या-सबेरे; छोंड़ी-पतुकी; लोहा लक्कड़ या लोह-लक्कड़, लोहा-लकड़ी; मस-माछी, मसा-मक्खी; खाटा-मीठा, खट्टा-मीठा; आजु-कालिह, आज-कल; दुध-दही, दूध-दही; सिंघी-बरारी, दो प्रकार की मछलियाँ; गोरू-बछरू; गाई-बयल; पाड़ा-पाड़ी; निमन-बाउर, अच्छा-बुरा; तीत-मीठ या मीठ-तीत, तीता-मीठा या मीठा-तीता; आइल-गइल, आना-जाना; बिलो-बाँट, अलग-थलग; मरद-मेहरारू, पुरुष-स्त्री, राजा-परजा, राजा-प्रजा, नाऊ-धोबी; लाभ-हानि; बाहर-भीतर; खेती-बारी; कम-बेसी, कम-बेशी; राजा-रानी; चान-सुरुज, चन्द्र-सूर्य; राजा-ओजीर, राजा-वजीर; नफा-नुकसान; ओकील-मुख्तार; थाना-पुलिस; ओकील-बलेस्टर, वकील-बैरिस्टर; हिसाब-पत्तर, हिसाब-पत्र; हिसाब-किताब; डाक्टर-बयद, डाक्टर-वैद्य; आदि।

(ii) निम्नलिखित समस्त पदों में दो से अधिक पदों का समास हुआ है—

हाथ-गोड़-नाक-कान ; नून-तेल-लकड़ी, नमक-तेल-लकड़ी; जिरा-मरिचि-धनियाँ, जीरा-मिर्च-धनिया; हाथी-घोड़ा-पालकी आदि।

(iii) कतिपय द्वन्द्व समास संस्कृत से आये हैं। ये संस्कृत व्याकरण के नियम का अनुसरण करते हैं। यथा—

* मातृ-पितृ > माता-पिता; इसी प्रकार पितृ-पुत्र > पिता-पुत्र।

[ख] अलुक् द्वन्द्व—

बँगला की भाँति ही विभक्तियुक्त द्वन्द्व के अनेक उदाहरण भोजपुरी में भी विद्यमान हैं। यथा—

आगे-पाछे या पिछे ; आगे-पीछे ; हाटे-बाटे, बाजार में-रास्ते में [यथा—जे इयारी हाटे-बाटे, से कोलुहाड़ा नाहीं, जो मैत्री बाजार-रास्ते की है, वह कोलुहाड़ (ईख पेरने तथा गुड़ बनाने के स्थान) में नहीं चल सकती] ; दुधे-भाते, दूध में-भात में ; घरे-दुआरे, घर में-द्वार में ; आदि।

[ग] 'इत्यादि' अर्थवाची द्वन्द्व समास—

सहचर शब्दों के साथ समास द्वारा अनुरूप वस्तुओं के भाव प्रकाशन के लिए एक प्रकार का द्वन्द्व समास बँगला की भाँति भोजपुरी में भी प्रचलित है। यथा—

(i) (एकार्थक) सहचर-शब्द सहित समास—काम-काज ; धर-पकड़ ; जीव-जन्तु ; भूल-चूक ; घर-बाड़ी ; माथ-मूँड़ ; लउरि-लाठी ; बस्टम-बैरागी ; इत्यादि।

(ii) अनुचर शब्द सहित समास—चोरी-चमारी, चोरी ; आस-पास, माल-मसाला, धन ; अस्त्र-सस्त्र, अस्त्र-शस्त्र ; दया-मया, कृपा ; हाँड़ी-कुँड़ी, बर्तन।

(iii) प्रतिचर शब्द-सहित समास—दिन-राति, दिन-रात ; राजा-ओ́जीर, राजा-वजीर ; हिंदु-मुसलमान, हिन्दू-मुसलमान ; राजा-परजा, राजा-प्रजा ; राजा-रानी ; जाड़ा-घाम ; पाप-पुन्नि; पाप-पुण्य ; बेचल-किनल, विक्रय-क्रय ; इसी प्रकार किनल-बेचल, भी ;

(iv) विकार शब्द-सहित समास—जारि-जूरि, जलाकर, फूँकि-फुँकि, जला-फूँककर ; ठीक-ठाक ; गोल-गाल ; घूस-घास, रिश्वत इत्यादि।

(v) अनुकार या ध्वन्यात्मक शब्द-सहित समास—

बासन-ओ́सन, बर्तन आदि ; तेल-सेल, तेल इत्यादि ; नोकर-ओ́कर, नौकर इत्यादि ; हाथी-ओ́थी, हाथी आदि ; थाली-ओ́ली, थाली आदि ; इत्यादि।

[घ] समार्थक द्वन्द्व—

कई द्वन्द्वसमास के समस्त पदों में दो विभिन्न भाषाओं के शब्दों के संयोग उपलब्ध होते हैं। ये दोनों शब्द एक ही अर्थ के द्योतक होते हैं। यथा—

कागज-पत्तर (= कागज फा० शब्द < काग़ज़ = كاغذ + पत्तर < सं० पत्र) ; राजा-बादसाह, राजा-बादशाह ; ठट्ठा-मसखरा ; इत्यादि।

(२) व्याख्यान-मूलक या आश्रय-मूलक समास—

इसके अन्तर्गत समासों को निम्नलिखित तीन वर्गों में विभक्त किया जाता है—(क) तत्पुरुष (ख) कर्मधारय (ग) द्विगु।

(क) तत्पुरुष—

तत्पुरुष में परस्पर अन्वित दो पद होते हैं। ये दोनों विशेष्य होते हैं जिनमें प्रथम द्वितीय पद के अर्थ को सीमित करता है। प्रथम पद का अन्वय द्वितीय पद के साथ कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, सम्बन्ध तथा अधिकरण रूप में होती है। इसमें द्वितीय पद का अर्थ ही प्रधान होता है।

तत्पुरुष शब्द का अर्थ है उसका सम्पर्की पुरुष। यह समस्त पद के प्रतीक अथवा नामस्वरूप व्यवहृत होता है। संस्कृत में कर्त्ता कारक को छोड़कर पाँच कारक एवं सम्बन्ध पद होते हैं। इन छः के लिए संस्कृत में द्वितीया तत्पुरुष, तृतीया तत्पुरुष, चतुर्थी तत्पुरुष, पञ्चमी तत्पुरुष तथा षष्ठी तत्पुरुष एवं सप्तमी तत्पुरुष प्रयुक्त होते हैं। बँगला तथा भोजपुरी में इनके अतिरिक्त एक प्रथमा तत्पुरुष भी होता है। इनके उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

(i) कर्तृ-वाचक—प्रथमा तत्पुरुष—दाग-लागल [(दाग फा० داغ) लागल कपड़ा]।

(ii) कर्मवाचक—द्वितीया तत्पुरुष—जल-खई, जलपान ; भत-रीन्हा, या भत-रिन्हवा, रसोइया ; दुध-दुहवा, दूध दुहनेवाला ; हँड़िफोरवा, हाँडी फोड़नेवाला ; भुँइसुँघवा, भूमि सूँघनेवाला ; लकड़सुँघवा, (अ० लकड़सुंघा), लकड़ी सुँघाकर वश में करनेवाला ; फुलचुम्भी ; चिड़िया विशेष जो फूल के रस को चूस लेती है ; आदि ।

(iii) करणवाचक—तृतीया तत्पुरुष—हर्दा-मारल, (यथा—हर्दा मारल गेहूँ), हर्दा=एक प्रकार का रोग जिसके कारण गेहूँ पीला पड़ जाता है ; बिजुली-मारल (यथा—बिजुली मारल अदिमी) ; डंडा-मारल (यथा—डंडा-मारल कुकुर) ; आदि ।

(iv) उद्देश्यवाचक—चतुर्थी तत्पुरुष—हिन्दू-इस्कूल, हिन्दू-स्कूल ; मालगोदाम ; डाक-मसूल, डाक-महसूल ; रेल-भाड़ा, रेल-मसूल, रेल-महसूल इत्यादि ।

(v) अपादानवाचक—पञ्चमी तत्पुरुष—गँव-छड़ना, (गँव = ग्राम), गाँव छोड़नेवाला; फेड़-गिरना, पेड़ से गिरनेवाला ।

(vi) सम्बन्धवाचक—षष्ठी तत्पुरुष—ठकुर-बाड़ी, (मि०, बं० ठाकुर-बाड़ी), देव-मन्दिर ; बाछी-मार, बाछी का मारनेवाला; गइमार, गाय का मारनेवाला ; हाथ-घड़ी, हाथ की घड़ी ।

मिश्रित शब्दों के उदाहरण—

जेल-दरोगा, जेल का दारोगा ; जहाज-घाट ; स्टीमर-घाट ; गोरा-लाइन ; गोरा-बाजार ; फूल-बगान ; राजा-बजार ;साहब-बगान; चाह-बगान ; रेल-कुली ; किताब-महल ; हिन्दुस्तान ; गिनी-सोना ; आदि ।

संस्कृत शब्दों के उदाहरण—

गंगा-जल ; जम-लोक , (यमलोक) ; कासी-नरेस ; इत्यादि ।

(vii) स्थान-कालवाचक—सप्तमी तत्पुरुष—छोंड़ि-भरल-धान, छोंढ़ि (एक मिट्टी के बड़े पात्र) में भरा हुआ धान ; हाँडी-भरल-सतुआ, हाँडी भर सत्तू ; पाकेट - भरल-पइसा, पाकेट में भरा हुआ पैसा ।

(viii) नञ्-तत्पुरुष—'न', नहीं, अर्थ में भो० पु० में एक प्रत्यय है जिसे नञ् कहते हैं । संस्कृत का 'न' भो० पु० में व्यंजन के पहले 'अ' तथा स्वर के पहले 'अन्' में परिवर्तित हो जाता है । भो० पु० में इसके निम्नलिखित उदाहरण हैं—

अधर्म ; असाधु ; अधीर ; अनेक ; अनादर । भो० पु० के अजान ; अकाज ; अनूल ; शब्द भी इसी के अन्तर्गत आयेंगे ।

(ix) अलुक्-तत्पुरुष के कतिपय उदाहरण भो० पु० में उपलब्ध हैं । ये नीचे दिये जाते हैं—

गोड़े-गिरल, पैर पर गिरना ; फेड़े-कटहर, पेड़ पर का कटहल ; हाथें-काटल, हाथ से कटा । इन उदाहरणों में प्रथम पद विभक्तियुक्त है । अतएव यहाँ अलुक्-तत्पुरुष समास होगा ।

(x) प्रादि समास—यह भी तत्पुरुष का ही रूपान्तर है और इसे नित्य समास के अन्तर्गत रखा जा सकता है । इसका प्रथम पद उपसर्ग होता है । यथा—प्रभाव (प्र=प्रकृष्ट भाव, भात=ज्योतिः) ; इसी प्रकार 'अनुताप', 'स्वयंसिद्ध' आदि शब्द भी हैं । भो० पु० में इसका अभाव है ।

अव्ययीभाव समास

इसका प्रथम पद साधारणतः अव्यय होता है। भो० पु० में इसके निम्नलिखित उदाहरण हैं—

हर रोज, प्रतिदिन ; दिन-भर ; घर-पीछे, प्रत्येक घर से।

अनेक स्थलों में शब्द को द्वित्व करके वीप्सा अर्थात् पौन:पुन्य का भाव भी इसके द्वारा प्रकाशित होता है। यथा—

चलत्-चलत् , चलते-चलते ; देखत्-देखत् , देखते-देखते ; घर्-घर् , प्रत्येक घर में ; राता-राती, रातों-रात ; आदि।

'नित्य समास' तथा 'सुप्सुपा' के उदाहरण भो० पु० में उपलब्ध नहीं हैं। अतएव इन पर यहाँ विचार नहीं किया जाता है।

[ख] कर्मधारय

इस समास में प्रथम पद विशेषण रूप में आता है, किन्तु द्वितीय पद का अर्थ बलवान् होता है। कर्मधारय का अर्थ है, कर्म अथवा वृत्ति धारण करनेवाला। यह विशेषण-विशेष्य, विशेष्य-विशेषण, विशेषण-विशेषण तथा विशेष्य-विशेष्य पदों द्वारा सम्पन्न होता है।

(१) साधारण कर्मधारय समास को निम्नलिखित वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—

(i) जहाँ पूर्वपद विशेषण हो। यथा—

काँच-केला, कच्चा केला ; लाल-टोपी ; खास-महल ; महा-रानी ; काली-पलटन ; हेड-मास्टर ; हरिअर-बाँस, हरा बाँस ; पिअर या पियर-धोती, पीली धोती।

भो० पु० में निम्नलिखित संस्कृत शब्द भी प्रयुक्त होते हैं—

महा-काल ; परमेश्वर ; नीलमणि ; सबगुन ; पुन्य दिन ; शुभ-दिन ; मोहन-भोग ; महाजन ; आदि।

(ii) जहाँ उत्तर पद विशेषण हो। यथा—

घनस्याम (घनश्याम) ; हर्दी-पिसल, पिसी हर्दी।

(iii) जहाँ दोनों विशेषण हों। यथा—

चतुर-चल्हाक, चतुर-चालाक ; खाँटा-मीठा, खट्टा-मीठा; लाल-काला ; फिका-लाल, फाका-लाल।

(iv) जहाँ दोनों पद विशेष्य हों। यथा—

साहेब-लोग ; खाँ-साहेब; मोलवी-साहब, मौलवी-साहब ; राजा-बहादुर, उपाधि-विशेष।

(v) अवधारणा पूर्वपद—जिस कर्मधारय समास में प्रथम पद के अर्थ के सम्बन्ध में अवधारणा हो अर्थात् जहाँ अर्थ के प्रति विशेष बल दिया जाय वहाँ अवधारणा पूर्वपद कर्मधारय समास होता है। यथा—

काल-सर्प (जो सर्प कालरूप होकर आया हो) ; कालकूट।

(vi) जहाँ प्रथमपद सर्वनाम, उपसर्ग या संख्यावाचक हो। यथा—

स्वदेस या सुदेस, सुदेसी, (स्वदेश, स्वदेशी); बिदेसी; कपूत (कुपुत्र);

गैर-हाजिर, गैरहाजिर ; बे-नाम, बिनानाम ; दु-सइ, दो सौ ; दु-ताला, दो तल्ला ; तिन-ताला, तीन तल्ला ; आदि ।

(२) मध्यपदलोपी कर्मधारय—जहाँ कर्मधारय समास के व्यास या विग्रहवाक्य के मध्यस्थित व्याख्यान-मूलक पद का लोप हो वहाँ मध्यपदलोपी कर्मधारय समास होता है। यथा —

घिव-मिसल-भात>घिव भात, घी-भात; दूध-डालल-भात>दुध-भात, दूध-भात; इसी प्रकार दल-सागा, दाल मिश्रित शाक ।

(३) उपमान कर्मधारय—जहाँ उपमान गुणवाचक शब्द हो तथा उपमेय में वही गुण वर्तमान हो, वहाँ उपमान कर्मधारय समास होता है । इसके दो-एक उदाहरण ही भो० पु० में उपलब्ध हैं । यथा —

घनस्याम (घनश्याम); सेनुर-रँगल या सेनुर-लाल, सिन्दूर रँगा हुआ या सिन्दूर-लाल ।

(४) रूपक कर्मधारय—जहाँ उपमेय तथा उपमान का अभिन्नत्व प्रदर्शित करते हुए समस्तपद सम्पन्न हो वहाँ रूपक कर्मधारय समास होता है। ठेठ भो० पु० में इसका भी अभाव है। यह केवल संस्कृत शब्दों में ही उपलब्ध है । यथा—

चन्द्रमुख ; सोक-सिन्धु (शोक-सिन्धु); कमल-मुख, आदि ।

(५) उपमित कर्मधारय—जहाँ उपमान तथा उपमेय के बीच सादृश्य स्पष्ट न हो वहाँ उपमित कर्मधारय समास होता है। यह भी संस्कृत शब्दों ही तक सीमित है तथा इसका भी ठेठ भो० पु० में अभाव है । यथा—

मुखचन्द्र ; नरसिंह ; पुरुषव्याघ्र ; राजर्षि, नरपुङ्गव, करपल्लव ; आदि ।

[ग] द्विगु—

जहाँ प्रथम पद संख्यावाचक होता है तथा समस्त पद द्वारा संयोग अथवा समष्टि का बोध होता है, वहाँ द्विगु समास होता है। संस्कृत में दो गाय अथवा गोरू के समष्टि अर्थ में द्विगु शब्द व्यवहृत होता है। इसी कारण इस प्रकार के समास का भी यह नामकरण हुआ है। यथा—

नवरतन या नवरत्न ; त्रिभुवन; चौमोहानी, वह स्थान जहाँ चारों ओर का रास्ता मिलता है ; चौमुख, चारों ओर जिसका मुख हो; चार हाथ।

§२०७ वर्णनामूलक अथवा बहुव्रीहि समास—

इस समास में कोई भी पद प्रधान नहीं होता और इसके समस्त पद द्वारा किसी अन्य पदार्थ का ही बोध होता है। इसके विग्रह में जो, जिसके, जिसका आदि का व्यवहार होता है। बहुव्रीहि (अर्थात् धान्य) जिसके पास, वह है बहुव्रीहि ।

बहुव्रीहि के निम्नलिखित भेद हैं—

(क) व्यधिकरण बहुव्रीहि—पूर्वपद के विशेषण न होने पर इसे व्यधिकरण बहुव्रीहि कहते हैं । यथा—

शूलपाणि, शिव ; वज्रदेह, हनुमान ।

(ख) समानाधिकरण बहुव्रीहि—पूर्वपद के विशेषण तथा उत्तर पद के विशेष्य होने से समानाधिकरण बहुव्रीहि समास होता है । यथा—

पीताम्बर, लम्बोदर ; आदि

(ग) व्यतिहार बहुव्रीहि—परस्पर सापेक्ष क्रिया को प्रकट करने के लिए एक ही शब्द की पुनरुक्ति द्वारा जो बहुव्रीहि सम्पन्न होता है उसे व्यतिहार बहुव्रीहि कहते हैं। यथा—

लाठा-लाठी, लड़ाई ; लाता-लुती, झगड़ा ; मुका-मुकी, लड़ाई ; काना-कानी, कानों-कान ; कोना-कोनी, तिरछा।

(घ) मध्यपदलोपी बहुव्रीहि—जहाँ विग्रह वाक्य के आगत पद का लोप हो जाता है वहाँ मध्यपदलोपी बहुव्रीहि समास होता है। यथा—

डेढ़-गजा, डेढ़गज लम्बाई हो जिसकी, ऐसा अँगौछा; इसी प्रकार पँचहत्था, अर्थात् पाँच हाथ लम्बाई हो जिसकी; आदि।

बहुव्रीहि समास के भोजपुरी के उदाहरण

लाल पगड़ी, पुलिस ; ललपढ़िया (ललपढ़िया धोती, लाल किनारेवाली धोती में); गंगाजली, एक विशेष प्रकार का धातु का लोटा; सतनलिया (-इया प्रत्यय से), एक विशेष प्रकार की बन्दूक ; रूख-चढ़वा (-अवा प्रत्यय के संयोग से), जो वृक्ष पर चढ़े, किन्तु बन्दर; सियर-मरवा, जो स्यार मारे, किन्तु एक जंगली जातिविशेष; कपर-फिरवा, जो अपना कपार (=सिर) फोड़ ले, किन्तु एक जातिविशेष ; घो_कर-कसवा, जो अपना झोला भरे, किन्तु व्यक्तिविशेष जो भयानक दिखलाई पड़े तथा जिससे लड़के भयभीत हो जायँ। घँट-फोरवा, जो घंट (=घटविशेष जो किसी व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् पीपल के पेड़ में बाँधा जाता है) फोड़ता है ; किन्तु महाब्राह्मण।

भोजपुरी में व्यतिहार बहुव्रीहि अत्यधिक प्रचलित है। इसकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है। इसके उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं—

कहा-कही, झगड़ा ; खड़ा-खड़ी, तुरन्त ; खेदा-खेदी, पीछा (करना) ; कोंचा-कोंची, लड़ाई ; गारा-गारी, झगड़ा ; गोदा-गोदी, चाका-चुकी, लड़ाई; छीना छीनी, छुआ-छुती, झोंटा-झोंटी, लड़ाई, टोका-टोकी, टोकना ; टाना-टानी; ठोका-ठोकी, लड़ाई ; ताका-तुकी, प्रेमालाप ; धाया-धुपी, शीघ्रता ; धारा-धरी, मारा-मारी, लड़ाई ; फेरा-फेरी, लौटाना ; आदि।

तीसरा अध्याय

संज्ञा के रूप

§ ३०८ प्राचीन-भारतीय-आर्य-भाषा—संस्कृत—में संज्ञापदों के विभिन्न कारकों में रूपों की जो प्रणाली थी वह समय की प्रगति के साथ-साथ परिवर्तित होती गई और आधुनिक आर्यभाषाओं में उसका बहुत कम अंश वर्तमान रहा। संस्कृत में सम्बन्ध तथा सम्बोधन को मिलाकर कुल आठ कारक थे; किन्तु आधुनिक आर्यभाषाओं में इनका लोप हो गया। प्राकृत से आधुनिक आर्यभाषाओं में दो या अधिक-से-अधिक तीन कारक—कर्ता के (साधारण अथवा अविकारी रूप) तथा अन्य कारकों के (विकारी रूप)—ही आये। इनके अतिरिक्त करण कारक भी कतिपय आधुनिक आर्यभाषाओं में आया। बँगला में अन्य कारकों के विकारी रूपों की उत्पत्ति प्राय. अपभ्रंश के अधिकरण के एकवचन तथा सम्बन्ध कारक के बहुवचन से हुई; किन्तु भोजपुरी में, जैसा कि हम आगे देखेंगे, इन विकारी रूपों का उपयोग, केवल, बहुवचन में ही सीमित हो गया।

मागधी-प्रसूत अन्य भा० आ० भा० की भाँति ही भोजपुरी में भी पुंलिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग संज्ञापदों के रूपों में कोई अन्तर नहीं है, दोनों लिङ्गों में रूप समान ही हैं।

[क] प्रातिपदिक शब्द

§ ३०९ भोजपुरी संज्ञा (प्रातिपदिक शब्द) का अंत स्वर में या व्यंजन में हो सकता है, यथा—घोरा, नोकर्। अधिकतर अंत्य स्वर हैं—-आ, -इ -ई, -उ -ऊ, जैसे—

-आ—पंखा; खटिआ।

-इ—गाइ; पीठि; आँखि; पाँखि।

-ई—घोबी; पानी; चानी, चाँदी।

-उ—साधु; लाडू, एक प्रकार की मिठाई।

-ऊ—नाऊ; बाबू; बालू।

-ए—पाँडे; चौबे।

-ओ—कोरो, बाँस के टुकड़े; बोरो, एक प्रकार का शाक।

विशेष—उ, ए तथा ओ से अन्त होनेवाले शब्द कम हैं।

(आ) अंत्य व्यंजन साधारणतः निम्नलिखित होते हैं—

-क्—नाक्; चाक्; टुक्, टुकड़ा, विशेषरूप से कपड़े का।

-ख्—धोंख्, धूर्त; काँख्; राख्।

-ग्—साग्, मूँग्।

-घ्—बाघ्, जाँघ्।

-च्—खोंच्, आँच्, माँच्, मंच।

-छ्—राछछ्, राक्स; काछ्, रोगविशेष।

-ज्—गाज्, गाज ; राज्।
-झ्—बाँझ्, वन्ध्या ; साझ्, साझा।
-ट्—घाट्, भाट्, बन्दीजन ; पेट्।
-ठ्—काठ्, काष्ठ ; ओठ्, ओष्ठ।
-ड्—डंड्, दण्ड ; बकलंड्, मूर्ख।
-ढ्—ठंढ्, ठंढा।
-ड़्—हाड़्, हड्डी ; भाँड़्, गाड़्; भण्डार, डोड़्, सर्पविशेष।
-ढ़्—साँढ़्, साँड़।
-त्—खेत्, बेंत्।
-थ्—हाथ्, माँथ्, माथा।
-द्—खाद् ; नाद्, नाँद।
-ध्—बाध् ; मूँज की रस्सी।
-न्—कान् ; तोन्, तोंद ; कोन्, कोना।
-न्ह्—सोन्ह्, सोंधा।
-प्—चाप्, लम्बाई, नाप् ; साँप्।
-फ्—बाफ, वाष्प ; डंफ्, एक प्रकार का ढोल।
-ब्—राब्, गुड़ का राब; जाब् ; जोब्, घास विशेष।
-भ्—नाभ्, उर्वरा भूमि।
-म्—काम्, कार्य, चाम्, चमड़ा।
-र्—सार्, साला ; हार्, खुर।
-र्ह्, मार्ह्, अन्नविशेष।
-ल्, मेल्, छाल्, तरकुल्, ताड़।
-ल्ह्, माल्ह्, चर्खे की रस्सी।
-व्, नाव् ; घाव्, चोट ; घीव्, घी।

S

-स्, बाँस् ; साँस् ; नस, सूँघनी।
ह्, बाँह् ; छाँह्, छाया ; राह्, रास्ता।

[क] संज्ञा के रूप

§ ३१० भोजपुरी संज्ञा तथा विशेषण के कई रूप होते हैं जिनके अर्थ में विशेष अन्तर नहीं होता। ये रूप हैं—(१) लघु (Short) (२) गुरु (Long) तथा (३) अनावश्यक (Radundant)। लघुरूप भी निर्बल (Weak) तथा सबल (Strong) हो सकता है। व्यवहार में प्रत्येक संज्ञापद के सभी रूप नहीं उपलब्ध हैं। यह तो केवल अनुभव से ही जाना जाता है कि किसी संज्ञाविशेष के किस रूप का प्रयोग किया जाया। यथा—

लघु	गुरु	अनावश्यक
चमार्	चमरा	चमरवा
माली	मलिया	मलियवा
पोथी	पोथिया	पोथियवा

कतिपय संज्ञापदों के केवल लघु तथा गुरु, दो ही रूप होते हैं, अनावश्यक रूप नहीं होते ; यथा—छोटा तथा घोड़ा ; किन्तु अन्य शब्दों के निर्बल रूप भी होते हैं। ये निर्बल रूप वस्तुतः संज्ञा के लघुतम रूप होते हैं और प्रायः ह्रस्व स्वरान्त अथवा व्यञ्जनान्त होते हैं। उदाहरणस्वरूप घोड़्, घोड़ा ; लोह्, लोहा ; मीठ्, मीठा, निर्बल रूप हैं। इस प्रकार के निर्बल रूपों का भोजपुरी में बहुत कम प्रयोग होता है। इनके सबल रूप भोजपुरी में हैं—घोड़ा, लोहा तथा मीठा और साधारण बोल-चाल में इन्हीं का अधिक प्रयोग होता है और कभी-कभी इसमें एक उपेक्षा अथवा घृणा का भाव छिपा रहता है। बड़ों के लिए यह कभी प्रयुक्त नहीं होता, इसका प्रयोग केवल अपने से छोटों के लिए किया जाता है।

तत्संबंधी दीर्घ रूप बनाने के लिए ह्रस्व पुंलिङ्ग प्रातिपदिक शब्द में -वा जोड़ दिया जाता है, यदि उसके अंत में-आ हो, जैसे-(राजा : रजवा) ; -ऊ हो, जैसे—(नाऊ : नउवा) ; इसके साथ-ही-साथ स्वर (पहले आनेवाले व्यंजन के साथ) ह्रस्व हो जाता है। और शब्द यदि 'ई' अथवा किसी व्यंजन के साथ अन्त होता तो उसमें आ जुड़ जाता है, जैसे धोबी = धोबिआ, चमार = चमरा, सोनार = सोनरा, परंतु कहीं-कहीं व्यंजनांत शब्दों में 'अवा' भी जुड़ता है, जैसे—पेट् = पेटवा, डोम् = डोमवा।

[ख] लिङ्ग

§ ३११ प्रकृति में वस्तुतः पुरुष, स्त्री तथा नपुंसक, ये तीन वर्ग मिलते हैं। अनेक भाषाओं में प्राकृतिकावस्था का ही अनुसरण करके नामवाचक शब्दों को इन्हीं तीनों वर्गों अथवा श्रेणियों में विभक्त किया जाता है तथा पुरुषजातीय वस्तु को पुंलिङ्ग, स्त्री-जातीय वस्तुओं को स्त्रीलिङ्ग, एवं नपुंसक जातीय वस्तुओं को नपुंसक लिङ्ग से अभिहित किया जाता है। अनेक भाषाओं में विशेष प्रत्ययों तथा विभक्तियों के द्वारा ही नाम-शब्दों का लिङ्ग-पार्थक्य प्रदर्शित किया जाता है।

भो॰ पु॰ में दो ही लिङ्ग—पुलिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग होते हैं ; किन्तु विशेष प्रत्ययों द्वारा यह लिङ्गभेद प्रकट नहीं होता। हाँ, कभी-कभी प्रत्ययों की सहायता से भी यह कार्य सम्पन्न होता है। आगे इस सम्बन्ध में विचार किया जायगा।

§३१२ कभी-कभी संज्ञा पदों का लिङ्गज्ञान क्रियाओं द्वारा भी निर्धारित होता है। यथा—घर जरि गइल, घर जल गया ; पोथी जरि गइलि ; यहाँ 'घर' पुंलिङ्ग तथा 'पोथी' स्त्रीलिङ्ग है, यह 'गइल' तथा 'गइलि' क्रिया के द्वारा ही प्रतीत होता है ; किन्तु यहाँ इस बात को सदैव स्मरण रखना चाहिए कि खड़ी-बोली बोलनेवालों की भाँति भो॰ पु॰ भाषा-भाषियों के मन में यह स्पष्ट धारणा नहीं होती कि 'घर' पुंलिङ्ग तथा 'पोथी' स्त्रीलिङ्ग है। इसके अतिरिक्त भो॰ पु॰ कियापदों में लिङ्ग का पार्थक्य खड़ी बोली के ही प्रभाव से आया है।

विशेषण के सम्बन्ध से भी कभी-कभी लिङ्ग निर्धारित होता है। यथा—बड़ घोड़ा, बड़ा घोड़ा ; किन्तु बड़ि घोड़ी, बड़ी घोड़ी ; परन्तु यहाँ बड़ घोड़ी भी हो सकता है।

§ ३१३ जीवित प्राणियों का लिङ्ग उनकी प्रकृति के अनुसार निर्धारित होता है। यथा—मरद,, मर्द ; भैंसा ; बरध, बैल ; मुर्गा पुलिङ्ग हैं तथा मेहरारू, स्त्री ; भैंइसि ; गाइ एवं मुर्गी स्त्रीलिङ्ग हैं

§ ३१४ कतिपय संज्ञापद भो॰ पु॰ में केवल पुंलिङ्ग अथवा केवल स्त्रीलिङ्ग में प्रयुक्त होते हैं। यथा—कउआ, कौआ ; नेउर, न्योला ; लमहा, खरगोश ; सदैव पुंलिङ्ग में प्रयुक्त

होते हैं और चिरई, चिड़िया ; चील्हि, चील ; खेखरि, लोमड़ी सदैव स्त्रीलिङ्ग में व्यवहृत होते हैं। इन शब्दों के लिङ्ग के सम्बन्ध में या तो भो० पु० भाषाभाषी चिन्ता ही नहीं करता अथवा परम्परा से ही इनके लिङ्ग निर्धारित हो चुके हैं।

§ ३१५ सजीव प्राणी के समूह को व्यक्त करनेवाले संज्ञापद या तो स्त्रीलिङ्ग होते हैं या पुंलिङ्ग। यथा—भीड़ि, मनुष्यों का समूह ; झूँड़ि, मनुष्यों अथवा पशुओं का समूह; जमाति, साधुओं का समूह ; एवं हार, 'पशुओं का समूह ; वस्तुतः स्त्रीलिङ्ग हैं तथा जमाव, एवं जखेड़ा, 'मनुष्यों का समूह', पुंलिङ्ग हैं।

सच बात तो यह है कि समूहवाची इन संज्ञापदों का लिङ्ग भो० पु० में अस्पष्ट है। हाँ, यह बात अवश्य है कि खड़ी बोली हिन्दी में शिक्षित भोजपुरी के मन में यह धारणा अवश्य रहती है कि -इ तथा—ई से अन्त होनेवाले शब्द स्त्रीलिङ्ग हैं। भोजपुरी में इन शब्दों में लिङ्ग का पार्थक्य नहीं है, यह नीचे के उदाहरणों से स्पष्ट हो जायगा। यथा—

साधुन के भीड़ि आइल बा, साधुओं की भीड़ आई है। मेंहरारुन के भीड़ि आइल बा, औरतों की भीड़ आई है।

§ ३१६ जब स्त्रीलिङ्ग तथा पुंलिङ्ग, दोनों लिङ्गों के जीवित प्राणियों का वर्णन एक साथ किया जाता है तो संज्ञापद पुंलिङ्ग में प्रयुक्त होता है। यथा—

लरिका खेलतारे सनि, लड़के [लड़के तथा लड़कियाँ, दोनों के लिए] खेल रहे हैं। हरनो भागि गइले सनि, हिरन [हिरन तथा हिरनियाँ] भाग गये ; मेला में बहुत अदिमी आइल रहले हा ; मेले में बहुत आदमी (मर्द तथा स्त्रियाँ) आये थे।

संज्ञापद के स्त्रीलिङ्ग रूप

§ ३१७ भो० पु० ने अपभ्रंश से कतिपय स्त्रीप्रत्यय ग्रहण किया था, किन्तु धीरे-धीरे इनका लोप होता गया। फिर भी प्राचीन भो० पु० में ये प्रत्यय वर्तमान थे और परम्परा का अनुसरण करते हुए विदेशी संज्ञापदों में भी स्त्री-प्रत्यय के रूप में इ, ई का व्यवहार होता था।

स्त्री-प्रत्यय

[क] उत्तराधिकार रूप में आये हुए—

(१) सं० — ई, — इ यथा—

कुंआरि, कुमारी ; नारि, स्त्री ; गँवारि, ग्रामीण मूर्ख स्त्री ; चुरइलि, भूतनी।

निम्नलिखित नपुंसक संज्ञापद, प्राचीन भो० पु० में, परम्परा का अनुसरण करते हुए स्त्रीलिङ्ग हैं ; किन्तु आधुनिक भो० पु० में इनके लिङ्ग का कोई महत्त्व नहीं है ; क्योंकि लोग यह नहीं समझते कि ये स्त्री० लिं० हैं। यथा—

भीड़ ; झूँड़ मनुष्यों का समूह ; धूरि, धूल ; आगि, आग; मारि, मार-पीट ; वाढ़िन, एक अशुभ तारा ; आवनी ; आदि।

निम्नलिखित विदेशी शब्दों की भी यही दशा है—

इज्जति, इज्जत; फजिहति, फजीहत ; आदि।

(२) सं० -नि, -इनि > -नि, -इनि। इसमें -या प्रत्यय जोड़कर विस्तृत बनाया जा सकता है। यथा—

ग्वालिनि ; सोहागिनि ; दुलहिनि ;

नागिनि ; तेलिनि ; धोबिनि ;

मलाहिन् ; त्रिरहिन् ; ओझाइन्,
ललाइन् ; मास्टराइन् ; डिप्टिआइन् ;
दुबाइन् ; बनिआइन् ; तिवराइन् ।

(३) सं०—इका>—ई यथा—

घोड़ी ; मामी ; चाची ; दीदी ; बाछी ; छूरी ; सहजादी, हरमजादी ; आदि ।

[ख] उधार-लिये हुए—

(१) आकारान्त तथा ईकारान्त तत्सम शब्द प्रायः स्त्रीलिङ्ग होते हैं । यथा—

गंगा; सीता; राधा; ललिता; जमुना; लीलावती ; कलावती ; कुमारी; किशोरी ; आदि ।

(२) -इनी से अन्त होनेवाले तत्सम शब्द भोजपुरी में अत्यल्प हैं । केवल मानिनी शब्द गीतों में मिलता है ।

[ग] वचन

§३१८ आधुनिक मागधी भाषाओं में समूहवाची संज्ञा शब्दों की सहायता से प्रायः बहुवचन बनते हैं । यह नियम मैथिली, मगही, बँगला, उड़िया एवं असमिया में लागू है । संस्कृत बहुवचन के रुप तथा बहुवचन-सम्बन्धी कतिपय सहायक शब्द प्राकृत भाषाकाल में ही आ गये थे । ये रूप तथा शब्द मागधी एवं अन्य आधुनिक आर्य-भाषाओं में आज भी मिलते हैं । इस प्रकार संस्कृत बहुवचन के कतिपय रूप भोजपुरी में भी मिलते हैं । उदाहरणस्वरूप भोजपुरी में ब० व० -अन्, -अनि, -अन्ह्, -अन्हि, -न्ह्, -न्हि, -न, -नि प्रत्ययों की सहायता से बनते हैं । ये वास्तव में सम्बन्ध के ब० व० प्रत्यय एवं सम्बंध तथा करण के ब० व० प्रत्ययों के संमिश्रण हैं और आज भोजपुरी के कर्ताकारक के ब० व० में इनका प्रयोग होता है ।

-न प्रत्यय तो ब० व० के रूप में बोलचाल की बँगला में मिलता है । (दे० बै० लैं० § ४८६); तद्धित प्रत्यय के रूप में यह समूहवाची संज्ञापदों में भी बहुवचन बनाने के लिए व्यवहृत होता है । यथा—-गुलि तथा -गुला के अतिरिक्त -गुलि-न एव गुला-न । बँगला में यह आदर-प्रदर्शक प्रत्यय के रूप में क्रिया-पदों में भी प्रयुक्त होता है । यथा—करे-न, चलु-न, आदि । इसी प्रकार हिंदी, पंजाबी तथा राजस्थानी के अन्य कारकों के विकारी ब० व० रूप वस्तुतः सम्बन्ध कारक के ब० व० के रूप के ही अवशिष्ट हैं । यथा—घोटकानाम् = हि० घोड़ों, पंजा० घोड़ां तथा रा० घोड़ां । भोजपुरी में -अन, -अनि, -अन्ह्, -अन्हि, -न्ह्, -न्हि, -न, -नि आदि बने हुए ब० व० शब्दों के अर्थ में कोई अन्तर नहीं होता ।

§३१९ भोजपुरी व्यञ्जनान्त शब्दों में [क] -अन्ह्, -अन्हि, -अन्, -अनि प्रत्यय जोड़कर ब० व० बनाया जाता है । यथा—

ए० व०	ब० व०	ब० व०
घर्	घरन्ह् घरन्हि	घरन् घरनि

चमार्	चमारन्ह् } चमारन्हि }	चमारन् } चमारनि }
गाँव्	गाँवन्ह् } गाँवन्हि }	गाँवन् } गाँवनि }

[ख] भोजपुरी स्वरान्त शब्दों में -न्ह्, -नि, -न्ह् तथा -न् प्रत्यय ब० व० में लगते हैं ; किन्तु यदि प्रत्यय के पूर्व का स्वर दीर्घ है तो वह ह्रस्व हो जाता है। यथा—

ए० व०	ब० व०	ब० व०
गाइ (गाय)	गाइन्ह् } गाइन्हि }	गाइन् } गाइनि }
दिअा (दीपक)	दिअन्ह् } दिअन्हि }	दिअन् } दिअनि }

बहुवचन-ज्ञापक शब्दावली

§३२० ऊपर के रूपों के अतिरिक्त बहुवचन-ज्ञापक शब्दावली की सहायता से भी भोजपुरी में, बँगला, मैथिली आदि मागधी भाषाओं की भाँति, बहुवचन बनते हैं।

समूह-निर्देशक 'सभ' शब्द को जोड़कर सर्वनामों के तथा 'लोग' शब्द जोड़कर संज्ञापदों के बहुवचन के रूप भोजपुरी में सिद्ध होते हैं। यथा—

रउँआं सभ [आप (आदरणीय) लोग] ; ऑमूला लोग, सरकारी कर्मचारी ; ओ॑कील लोग, वकील लोग ; आदि।

विभिन्न कारकों के प्रत्यय एवं परसर्ग, इन बहुवचन-ज्ञापक शब्दों के बाद लगते हैं, संज्ञापदों के बाद नहीं। यथा—

कमकर् लो॑गन्, लो॑गनि या लो॑गन्ह, लो॑गन्हि में, कर्मकर लोगों में; रउँआं सभन्, सभनि या सभन्ह, सभन्हि सें, आप (आदरणीय) लोगों से।

[घ] कारक रूप—प्राकृत से आये हुए एवं नवीन उत्पन्न।

§३२१ संस्कृत व्याकरण के अनुसार भोजपुरी में सात कारक होते हैं। परसर्गों की सहायता से भी, कर्त्ता को छोड़कर, भोजपुरी में अन्य कारकों के रूप सम्पन्न होते हैं। संस्कृत करण तथा अधिकरण कारकों के रूप आज भी भोजपुरी में कहीं-कहीं अवशिष्ट रूप में वर्तमान हैं। भोजपुरी के विभिन्न कारकों में निम्नलिखित परसर्गों का प्रयोग होता है। यथा—

कर्म, सम्प्रदान तथा सम्बन्ध................के।

करण तथा अपादान......................से, सें।

अधिकरण.................................में, पर।

इन परसर्गों की उत्पत्ति बहुत बाद में हुई। ये वस्तुतः अपभ्रंश से आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं में आये, संस्कृत से नहीं। अपभ्रंश-काल में ही संज्ञापदों के विभिन्न कारकों के रूप सिद्ध करने के लिए स्वतंत्र सहायक शब्दों का व्यवहार होने लगा था। आगे चलकर, आधुनिक भाषाओं में, ये ही कारक-ज्ञापक सहायक शब्द परसर्गों में परिणत हो गये।

कर्त्ता

§३२२ मागधी प्राकृत में कर्त्ता कारक का प्रत्यय -ए है। पूर्वी बोलियों के जो नमूने उपलब्ध हैं, उनमें सर्वत्र यह -ए वर्तमान है। उदाहरणस्वरूप अशोक के पूर्वी शिलालेखों, शुतनुका-शिलालेख की प्राचीन मागधी तथा अश्वघोष के संस्कृत नाटकों की मागधी एवं अर्द्ध-मागधी में यह प्रत्यय मिलता है। जैसा कि कतिपय प्राकृत वैयाकरणों के उल्लेख से विदित होता है, अपभ्रंश-काल में यह -ए, -इ में परिणत हो गया था।

नियमानुकूल सभी मागधी भाषाओं तथा बोलियों में कर्त्ता कारक के एकवचन के रूप में -ए या -इ का होना आवश्यक था; किन्तु भोजपुरी एवं पश्चिमी बँगला भाषा के अध्ययन से यह विदित होता है कि वहाँ इस प्रत्यय का लोप हो गया है। हाँ, पूर्वी बँगला, असमिया, उड़िया, चर्यापदों की प्राचीन बँगला तथा मध्ययुग की बँगला में यह प्रत्यय अवश्य उपलब्ध है। [दि० वै०, बै० लैं० §४६७; का०, आ० §६४६, ६४७] विद्यापति की मैथिली में यह -ए मिलता है। यथा—जनि मनमथे मन बेधल बाने, मानों मन्मथ ने हृदय में बाण मारा।

-इ- रूप जो वस्तुतः -ए का ही विस्तार है, भोजपुरी के कतिपय शब्दों में मिलता है। यथा—ठाईं, स्थान (प० भोजपुरी) <*ठावीं, ठामे = स्थामन्। इसी प्रकार देहि, शरीर; बाहि, बाँह; आदि में -इ वर्त्तमान है।

करण

§३२३ आधुनिक भोजपुरी में -एँ, -अन् तथा -अन्हि के संयोग से यह कारक सम्पन्न होता है। यथा—भूखें, भूखन्, भूखन्हि, भूख से; दाँतें, दाँतन्, दाँतन्हि, दाँत से। यह एँ प्रत्यय भो० पु० गीतों तथा लोक कथाओं (ballads) में भी वर्तमान है। यथा—

(१) मोरा पिछुअरवाँ बढ़इआ भइया हितवा (बेगें) चलि आवहु रे; मेरे पिछवाड़े बसनेवाले मित्र, हे बढ़ई भाई! शीघ्र चले आओ। [सोहर गीत]

(२) रामा (कथिएँ) मनावों बीर हनुमनवाँ रे ना; मैं किससे वीर हनुमान को मनाऊँ (प्रसन्न करूँ)? [बिजैमल, पंक्ति २५, ज० ए० सो० बैं०, भा० ५३, सं० १ विशेष अंक, १८८४]

करण कारक का यह -एँ प्रत्यय मैथिली में भी मिलता है। यथा—कथें कथें झगरा भेल, कथ्य (बातचीत) से ही झगड़ा हो गया। इसी प्रकार यह प्रत्यय मगही, प्राचीन बँगला, उड़िया तथा असमिया में भी वर्तमान है। असमिया में इसका निरनुनासिक रूप -ए मिलता है। यह दामोदर पण्डित के 'उक्तिव्यक्ति प्रकरणं' की प्राचीन कोसली (अवधी) है, यथा—

दुखें सवइ तज, 'दुख से सबको छोड़ दे', पृ० ४७; तथा तुलसीदास की अवधी में भी वर्तमान है। इसके चिह्न आधुनिक प० हि० में भी मिलते हैं; यथा—धीरे चलो।

भो० पु०—एँ,—अन् तथा—अन्हि की उत्पत्ति संस्कृत के करण कारक, एकवचन, सम्बन्ध कारक के बहुवचन विभक्तियों एवं इन दोनों के संमिश्रण से हुई है। भो० पु० की एँ विभक्ति वस्तुतः वही है जो म० बं० की -ए, प्रा० हि० की—एँ तथा लखीमपुरी की -एन विभक्ति है और इसका मूल सं० की -एन विभक्ति है। भो० पु० अन् का मूल आनाम् है तथा अन्हि की उत्पत्ति षष्ठी -अन्+प्रा० ही (करण तथा अधिकरण एकवचन) से हुई है। यह—हि प्राकृत के करण कारक के बहुवचन—अहि, एहि<सं० -एभि का भी प्रतिनिधि

हो सकता है। इसीसे वस्तुतः उड़िया तथा खड़ी बोली के कर्ता कारक के बहुवचन के—ए प्रत्यय की उत्पत्ति हुई है।

लखीमपुरी का -एन् प्रत्यय, पूर्वी कोसली (अवधी) के साथ-साथ इस बात को सिद्ध करता है कि भो० पु० का -अन् वस्तुतः संस्कृत के करण कारक की विभक्ति -एन का ही निर्बल रूप है।

§३२४ आधुनिक भो० पु० परसर्ग से, सें (करण तथा अपादान) का मूल सम्-एन है जो क्रमशः सएँ >*सँइ >सें>से हो गया है। ब्रजभाषा के परसर्ग सों की उत्पत्ति सम से हुई है।

शाहाबाद की भो० पु० में पञ्चमी के लिए -ले परसर्ग का प्रयोग होता है। यह परसर्ग नेपाली में भी वर्तमान है। जूल ब्लाख के साथ सहमति प्रकट करते हुए डा० टर्नर ने इसका मूल, ले, 'लेना' माना है। (दे० ने० डि० पृ० ५६०)

उदाहरण

[क] से, परसर्ग (करण)

(१) हम् लाठी से मरलीं, मैंने लाठी से मारा। (ए० व०)

(२) फूलन, या फूलनि, या फूलन्ह् या फूलन्हि से फुलवारी गमकतिआ; फूलों से फुलवारी गमक रही है। (ब० व०)

[ख] से, परसर्ग (अपादान)

(१) फेड् से पतई गिरतिआ, पेड़ से पत्ती गिर रही है। (ए० व०, बलिया की भो० पु० में);

फेड़ ले पतई गिरतिया, पेड़ से पत्ती गिर रही है। (ए० व०, शाहाबाद की भो० पु० में)।

(२) फेड़न् या फेड़नि, या फेड़न्ह् या फेड़न्हि से पतई गिरतिआ, पेड़ों से पत्तियाँ गिर रही हैं (ब० व० बलिया की भो० पु० में);

फेड़न् या फेड़नि या फेड़न्ह या फेड़न्हि ले पतई गिरतिआ, पेड़ों से पत्तियाँ गिर रही हैं (ब० व०, शाहाबाद की भो० पु० में)।

अधिकरण

§३२५ आधुनिक भो० पु० में अधिकरण का प्रत्यय -ए-एँ है। यह स्थान तथा स्थान की ओर, इन दोनों अर्थों को द्योतित करता है। यथा—उ बजारें गइले, वह बाजार में गया। इसी प्रकार घरें, घर में; 'गावें, गाँव में आदि इसके उदाहरण हैं। यह प्रत्यय प्राचीन तथा मध्ययुग की बँगला एवं असमिया में भी वर्तमान है। यह विकारी प्रत्यय [कर्म, करण, सम्प्रदान तथा अधिकरण] के रूप में पश्चिमी हिन्दी तथा उ० व्य० प्र० की प्राचीन कोसली (अवधी) एवं तुलसीदास में भी मिलता है। यथा—थाहें नाव चलल, 'थाह में नाव चलती है', (उ० व्य० प्र० पृ० ४६)।

-'एँ' की उत्पत्ति के सम्बन्ध में डा० चटर्जी ने वे० लैं §४६६ में पूर्णतया विचार किया है। यह इस प्रकार है -ए,-एँ < -अ-हि < -अ-हिं <क्ष -धि <क्ष -भि <क्ष—मि < -स्मिन्। इस प्रकार घरे, घरें = अप० घरहि, घरहि <सं० गृह -धि ( ), गृह-भि (मृ)।

ऐसा प्रतीत होता है कि प्रा० भा० आ० भा० में अधिकरण के लिए *-अधि प्रत्यय था, क्योंकि इसी अर्थ में पालि में -धि तथा ग्रीक में -थि प्रत्यय वर्तमान हैं। इसके साथ ही यह भी अनुमान किया गया है कि प्रा० भा० आ० भा० में यह प्रत्यय *-भि एवं -भिं, इन दो रूपों में वर्तमान था। होमर की ग्रीक में इसके -फि, -फिन् तथा लैटिन में इसके -ति-त्री रूप मिलते हैं। आर्मीनिया की भाषा में भी यह प्रत्यय मिलता है। ग्रीक तथा अन्य भारोपीय भाषाओं में इसका प्रयोग 'से' 'साथ' आदि अर्थों का द्योतक है और यह अधिकरण, अपादान तथा करण कारकों में व्यवहृत होता है। सम्बन्ध तथा सम्प्रदान कारकों में इसका व्यवहार बहुत कम होता है। इस प्रकार *-भि, *-भिं का म० भा० आ० भा० में -हि, -हिं, हो जायगा और ऐसा प्रतीत होता है कि म० भा० आ० भा० के अपादान एवं अधिकरण कारकों के प्रत्यय का यही आधार है, कम-से-कम अनुनासिक रूप -हिं का तो मूल -भिं अवश्य है। इस सम्बन्ध में भाषा-विज्ञानियों का यह भी अनुमान है कि अप० के -अहि, अहिं का मूल सं० का -अस्मिन् भी हो सकता है तथा इसकी उत्पत्ति निम्नलिखित रूप में हुई होगी। यथा—

-अस्मिन् > *-अस्सिं > -अम्हि, अम्मि > -अहि, -अहिं।

§३२६ आ० भोजपुरी तथा हि० में अधिकरण कारक के परसर्ग रूप में -में तथा -पर का व्यवहार होता है। -पर का मूल अप० का परि < सं-परे है। में (ने० मा, दे०, ट०, ने० डि० पृ० ४६६) की उत्पत्ति म० भा० आ० भा० मज्झे < सं० मध्य:, मध्ये से हुई है। पुरानी हिन्दी में यह मांहिं रूप में मिलता है। भोजपुरी के सौ वर्ष के पुराने कागज-पत्रों में भी यह -माँहिं वर्तमान है और कदाचित् यह प० हि० से आया है। यथा—कागद लिखाइल परान साहु का दोरोखा मांहिं, यह दस्तावेज परान साहु के ओसारे में लिखा गया [लेखक द्वारा संगृहीत भोजपुरी के पुराने कागज-पत्र से]। परसर्ग के रूप में कोसली (अवधी) का -मह, -महुँ (बाबूराम सक्सेना इ० आ० अ० § १८८) इस बात को सिद्ध करता है कि अर्द्धतत्सम प्रत्यय -मध- < *मद्ध < सं० मध्य भी प्रचलित था (इस सम्बन्ध में मि० सभ्य: सभा तथा अवेस्ता का मद् [mada].

उदाहरण—

(१) गिलास में पानी नइखे, गिलास में पानी नहीं है, (ए० व०); बानर पर गोली मति चलाव, बन्दर पर गोली मत चलाओ। (ए० व०)

(२) गिलासन्, गिलासनि, गिलासन्ह, गिलासन्हि में पानी नइखे, गिलासों में पानी नहीं है (ब० व०); बानरन्, बानरनि, बानरन्ह, बानरन्हि पर गोली मति चलाव, बन्दरों पर गोली मत चलाओ।

सम्बन्ध कारक

§३२७ संस्कृत के सम्बन्ध कारक, एकवचन की विभक्ति आ० भा० आ० भाषाओं में नहीं आई है। सम्बन्ध कारक की -र विभक्ति भोजपुरी में उपलब्ध है। यथा—मोर, हमार, तोहार (मि०, बं०, मोर, तोर, तोहार आदि)

यह -र परसर्ग अनेक आ० भा० आ० भाषाओं में मिलता है। मगही, मैथिली के अतिरिक्त, असमिया, उड़िया, उत्तरी बंगाल तथा सिलहट की बोलियों में भी यह है।

§३२८ आ० भा० आ० भाषाओं के सम्बन्ध' के परसर्ग पर अनेक विद्वानों ने पूर्णतया विचार किया है (दे०, ग्रियर्सन: हिंदुस्तानी, इ० नि० ; चैटर्जा: बँ० ला० § ५०३)। इन सभी परसर्गों का सम्बन्ध √कृ के विविध रूपों, यथा, कर, कार, कार्य, कृत्य आदि से है।

प्राकृत तथा अपभ्रंश में इन्हीं के विस्तृत रूप अम्हारा, महारा, अम्ह-केर, आदि मिलते हैं। इसी प्रकार -केर के संयोग से मम-केर, तप्प-केर आदि प्रयोग भी अपभ्रंश में उपलब्ध हैं।

आ० भा० आ० भाषाओं में से, सम्बंध कारक में, असमिया तथा बंगला में -र तथा -एर तथा मराठी में च प्रत्यय लगते हैं। सिन्ध में यह प्रत्यय -ज हो गया है और उसकी उत्पत्ति कार्य से निम्नलिखित रूप में हुई है। यथा—

कार्य > प्रा०-कज्ज > -अज्ज > -ज। मै० तथा म० में -क परसर्ग तथा भोजपुरी में के मिलता है। प० हि० में यह का तथा ने० में यह को हो गया है। भोजपुरी परसर्ग के की उत्पत्ति कृत्य से निम्नलिखित रूप में हुई है। यथा—

कृत्य > कअ, मागधी : कए > कै > के। मै० तथा म० सम्बंध कारक के परसर्ग क (प्राचीन भोजपुरी गीतों तथा लोककथाओं में भी यह इसी रूप में मिलता है) की उत्पत्ति म० भा० आ० भा० कअ < कृत्य + क्क (विशेषणीय ; किंतु सम्बंध कारकीय प्रत्यय से हुई है।)

उदाहरण—

केँ या के के साथ (सम्बंध कारक)

(१) राम केँ या के लड़की मु गइलि, राम की लड़की मर गई। (ए० व०)

(२) कुकुरन्, या कुकुरनि, या कुकुरन्ह, या कुकुरन्हि केँ या के नोंह तेज होला, कुत्तों का नाखून तेज होता है। (ब० व०)

§ ३२९ भोजपुरी के सम्बंध कारक का यह के सम्प्रदान तथा कर्म कारकों में भी परसर्ग के रूप में व्यवहृत होता है। असमिया तथा उत्तरी बंगाल की बोलियों में सम्बंध तथा सम्प्रदान कारकों में -क का व्यवहार होता है। इस सम्बंध में यह बात उल्लेखनीय है कि सम्बंध तथा सम्प्रदान कारकों के एक हो जाने से क्रिया वेदोत्तर-काल तथा सूत्रों के युग से ही आरम्भ हो गई थी। इसी प्रकार कर्म एवं सम्प्रदान कारकों का एकीकरण प्राकृत युग में सम्पन्न हुआ था और उत्तराधिकार में यह आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं को मिला। के के साथ सम्बंध कारक के उदाहरण ऊपर दिये जा चुके हैं।

§ ३३० कर्म तथा सम्प्रदान कारकों के उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

[क] के के साथ (कर्म कारक)

(१) तू अपना लइका के भेज, तुम अपने लड़के को भेजो। (ए० व०)

(२) तू अपना लइकन् या लइकनि या लइकन्ह या लइकन्हि के भेज, तुम अपने लड़कों को भेजो। (ब० व०)

के के साथ बँगला में भी कर्म कारक मिलता है। यथा—

ताके बोलबो = तं वक्ष्यामि, उसको बोलूँगा = उससे कहूँगा।

[ख] के साथ (सम्प्रदान)

(१) उ बाम्हन के दान् दिहले, उसने ब्राह्मण को दान दिया। (ए० व०)

(२) उ बम्हनन् या बम्हननि या बम्हनन्ह् या बम्हनन्हि के दान दिहले, उसने ब्राह्मणों को दान दिया। (ब० व०)

के के साथ संज्ञा में भी सम्प्रदान कारक सम्पन्न होता है। यथा—

जल् के जाबो = जलाय गमिष्यामि, (मैं) जल के लिए जाऊँगा।

§३३१ के सम्बन्ध कारक के परसर्ग की उत्पत्ति के सम्बन्ध में ऊपर विचार किया जा चुका है। के सम्प्रदान के परसर्ग के विषय में विस्तृत रूप से विचार करते हुए तथा कोसली (अवधी) के कह, कहँ, कहु, कहुँ एवं सिन्धी के खे परसर्गों की उत्पत्ति विशेषरूप से बतलाते हुए, बीम्स ने इनका मूल कक्ष माना है। आपके अनुसार आधुनिक बं० के उ० कु, म० कडँ तथा हि० को परसर्गों की उत्पत्ति इसी कक्ष से हुई है।

रा० गो० भण्डारकर को बीम्स की कक्ष वाली व्युत्पत्ति स्वीकार नहीं है। आप बं० तथा भोजपुरी के एवं हि० को की उत्पत्ति अपभ्रंश के अधिकरण के रूप केहिं, कहिं से मानते हैं। इन रूपों का मूल आधार वस्तुतः प्रश्नवाचक सर्वनाम क है। (दे०, वि० फि० ले० पृ० २४६-२४८)

डा० चटर्जी को भण्डारकर की यह व्युत्पत्ति बिल्कुल स्वीकार नहीं है। आपके अनुसार सिन्धी खे, खाँ, खों, खु परसर्ग वस्तुतः (क) क्ख के ही रूप हैं। इसके अतिरिक्त प्रा० बं० के कखु, प्रा० को० के काहु, प० हि० के कहु, कौ, को, कू तथा उड़िया के कू परसर्ग भी इस बात की ओर संकेत करते हैं कि उनका मूल स्रोत वस्तुतः कक्ष ही है। इन सभी रूपों का सम्बन्ध अपभ्रंश के अपादान कारक के * कक्खहु * कक्खहुँ या कक्खौ * कक्खौँ रूपों से है। इस प्रकार इस सम्बन्ध की सभी बातों पर विचार करने के बाद डा० चटर्जी की यह स्पष्ट धारणा है कि के परसर्ग की उत्पत्ति या तो कृत या कक्ष या दोनों के मिश्रित रूप के अधिकरण कारक से हुई है। (बैं० लैं० पृ० ७६१)।

अपादान

§३३२ भोजपुरी में बँगला तथा असमिया की भाँति तथा उड़िया के विपरीत अपादान कारक में विभक्ति का प्रयोग नहीं होता। आधुनिक भोजपुरी के अपादान कारक में -से तथा ले परसर्ग व्यवहृत होते हैं। इन प्रत्ययों की व्युत्पत्ति करण कारक के अन्तर्गत पहले ही दी जा चुकी है। (दे० § ३२४)

परसर्गीय शब्दावली

§३३३ कारक-सम्बन्ध द्योतित करने के लिए परसर्गों का प्रयोग भा० आ०, कोल तथा द्रविड़ भाषाओं में होता है। संस्कृत में आ, अधि, अनु, परि, प्र आदि अव्ययों का उपयोग उपसर्ग तथा परसर्ग दोनों रूपों में होता है। मूल भारतीय भाषा में ये तथाकथित उपसर्ग वास्तव में अव्यय ही थे किंतु आगे चलकर सभी भारोपीय कुल की भाषाओं में जिनमें भारतीय आर्यभाषा भी सम्मिलित है, ये उपसर्ग कर्म, करण, अपादान, सम्बंध एवं अधिकरण कारकों का भाव प्रकट करने लगे। संज्ञापदों के साथ इनका उपसर्ग तथा परसर्ग रूप में व्यवहार बाद की संस्कृत में

लुप्त हो गया और वाक्य में स्वतंत्र सहायक शब्द के रूप में लोग इनके अस्तित्व को भूल गये। इसका एक परिणाम यह हुआ कि धातुओं एवं क्रियापदों के पूर्व उपसर्गरूप में इनका प्रयोग होने लगा जहाँ ये अर्थ-परिवर्तन में सहायक बने। वैदिक संस्कृत की अपेक्षा पाणिनीय संस्कृत में इन अव्ययों का उपसर्ग तथा परसर्गरूप में व्यवहार बहुत कम मिलता है। प्राकृत-युग में तो परसर्ग के रूप में इनका व्यवहार और भी अधिक सीमित हो गया। उधर प्राकृत में जब कारकों की संख्या कम हो जाने के कारण भाव स्पष्ट करने में कठिनाई उपस्थित होने लगी तो वहाँ कर्म, सम्प्रदान, अपादान तथा अधिकरण कारकों का भाव स्पष्ट करने के लिए उपयुक्त संज्ञापदों का व्यवहार होने लगा। प्राकृत का अनुसरण करते हुए संस्कृत में भी भावों के स्पष्टीकरण के लिए ऐसे पदों का प्रयोग होने लगा। ये परसर्ग अथवा सहायक पद बाद में क्रियारूपों के बनाने में भी सहायक हुए। इसी के परिणाम स्वरूप अंग्रेजी में during, regarding, concerning आदि पद अस्तित्व में आये; किंतु यह प्रयोग बहुत सीमित क्षेत्र में भारत के बाहर की आर्यभाषाओं में ही हुआ। इधर भारतीय आर्यभाषा में प्राकृतयुग के बाद ये पद परसर्ग के रूप में व्यवहृत होने लगे।

जैसा कि हम पहले देख चुके हैं, ये परसर्गीय पद—संज्ञा तथा क्रियापद—ध्वनि-परिवर्तन के कारण आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं में प्रत्ययरूप में परिणत हो गये। इनमें से अनेक क्रियावाचक विशेषण पदों (Participles) ने परसर्ग रूप में अपनी स्वतंत्र सत्ता भी कायम रखी। भोजपुरी में कई ऐसे परसर्ग हैं। इनके अतिरिक्त सभी आ० भा० आ० भाषाओं में अनेक तद्भव तथा अर्द्धतत्सम संज्ञापद भी स्वतंत्र परसर्गरूप में व्यवहृत होते हैं। इनमें से अनेक परसर्ग ऐसे हैं जो आधुनिक भाषाओं के प्रतिष्ठित हो जाने के बाद व्यवहार में आये हैं। यही कारण है कि आधुनिक विभिन्न भाषाओं एवं बोलियों में इनका प्रयोग भी स्वतंत्र रीति से हुआ है।

नीचे भोजपुरी के प्रसिद्ध परसर्गों पर विचार किया जाता है—

(१) आगाँ या आगें, आग<अग्र, यह अधिकरण कारक का परसर्ग है तथा इसका अर्थ है, 'आगे' या 'सामने'। यह सम्बंध कारक के साथ-साथ व्यवहृत होता है तथा कभी-कभी संज्ञापद के भी साथ। इसके निरनुनासिक रूप आगे का हिंदी तथा नेपाली में व्यवहार होता है। यथा—(क) लाइ्नि का आगां या आगें हमार खेत बा; (रेलवे) लाइन के आगे या सामने मेरा खेत है। (ख) राजा आगें करबों गोहार (प्रा० भो० पु०) मि०, बँगला—राजा आगें करिबों गोहारि; श्री० कृ० की०, पृ० ६५, (मैं) राजा के सामने प्रार्थना करूँगा।

(२) ऊपर, पर<सं० उपरि, पा० उपरि, प्रा० उप्परी; अर्थ—पर या ऊपर। ये दोनों शब्द हिंदी में भी प्रयुक्त होते हैं। ये अधिकरण के अर्थ में षष्ठी (सम्बंध) में प्रयुक्त होते हैं। यथा—तोहँरा ऊपर या पर हम बड़ा अनराज बानी; मैं तुम्हारे ऊपर बहुत नाराज हूँ।

(३) ओर, अर्थ—दिशा में, तरफ; यह प्रायः षष्ठी (सम्बंध) के साथ अधिकरण में प्रयुक्त होता है। यथा—घर का ओर, 'घर की ओर'; एही ओर, 'इसी ओर'; इसी अर्थ में फा० अ० तरफ़ (طرف) शब्द का भी व्यवहार होता है। यथा— घर का तरफ, एही तरफ, आदि।

(४) करत्, कर्तें करते हुए; √कृ का वर्तमानकालिक कृदन्तीय रूप = √कृ, करना। कर्तें की व्युत्पत्ति इस प्रकार है—कर्तें <करन्ते<करन्तहि, करन्तहिं (करण या अधिकरण)। प्रायः षष्ठी के साथ इसका प्रयोग होता है, यथा—तो॑हरा करत् या कर्तें कुछुऊ ना भइल, तुम्हारे करते हुए कुछ भी नहीं हुआ।

(५) कारन्, कारण; यह सम्बन्ध कारक के साथ, करण, सम्प्रदान, तथा अपादान में प्रयुक्त होता है। यथा—

तो॑हरा कारन्, तुम्हारे कारण ? मैभा कारन् वैरी बाप, सौतेली माँ के कारण पिता शत्रु हो जाता है।

(६) खातिर् और वास्ते<अ॰ खातिर (خاطر) तथा वास्तह् (واسطه); अर्थ—लिए; यह सम्बन्ध कारक के साथ सम्प्रदान में प्रयुक्त होता है। यथा—

हमरा खातिर या वास्ते दुध ले आव, मेरे लिए दूध लाओ; ओ॑करा खातिर, 'उसके लिए'; राम खातिर, 'राम के लिए'।

(७) छाड़ि, यह √छाड् का कर्मवाच्य कृदन्तीय रूप है तथा इसका अर्थ है, 'छोड़ना' <सं॰ छर्दयति; पा॰ छड्डेति; प्रा॰ छड्डेइ, छड्डइ, छड्ड्इ, छंडइ (मि॰ नेक छाड्नु, ट॰ :-ने॰ डि॰ पृ॰ १६४); मि॰, ने॰ तथा बं॰√छाड्, अर्थ—विना। यथा—

राम छाड़ि इ काम् केहू ना करि सकेला, 'राम के विना यह काम कोई नहीं कर सकता'; कभी-कभी षष्ठी के साथ भी यह प्रयुक्त होता है। यथा—

हमरा छाड़ि, मेरे विना; तो॑हरा छाड़ि, तुम्हारे विना।

(८) नियर् तथा निहन्, अर्थ—'भाँति' या 'तरह'; यह संज्ञा तथा सर्वनाम के साथ सम्बन्ध कारक में आता है तथा तारतम्य प्रकट करता है। यथा—

राम् नियर् या निहन् श्याम नइखन्; 'राम श्याम की तरह नहीं हैं।' हमरा नियर, या निहन्, मेरे जैसा, तो॑हारा नियर् या निहन्, तुम्हारे जैसा; आदि।

ठीक इसी अर्थ में तरह्<अ॰ طرح का प्रयोग होता है; किंतु यह केवल सर्वनाम के साथ ही आता है। यथा—

हमरा तरह, 'मेरी तरह'; तो॑हॅरा तरह, 'तुम्हारी तरह'; आदि।

(९) नीचा या नीचे<सं॰ नीचैः, यह सम्बंध कारक में अव्यय अर्थ में प्रयुक्त होता है। यथा—

बिछौ॑ना का नीचा या नीचे; 'बिछौने के नीचे।'

(१०) पड़ें, होकर; यह करण कारक सम्पन्न करता है। सम्भवतः इसका सम्बंध, पैं॑ड़ या पयॅड़, 'मार्ग' <* पद्-ड, जो पद, पैर का विस्तार है, से है यथा—

कवना पड़ें, किधर से होकर।

(११) पाछां या पाछें, पीछे। यह सम्बंध कारक के साथ प्रयुक्त होता है तथा सम्प्रदान कारक बनाता है। यह शब्द सं॰ पृष्ठं तथा पश्चा के संयोग से सिद्ध होता है। (ट॰, ने॰ डि॰) यथा—

तोँहरा पाछां या पाछेँ एतना रुपया खरच कइलीं, तुम्हारे पीछे इतना रुपया खर्च किया; का उन्हुकरा पाछां-पाछां या पाछेँ-पाछेँ घूमताऽ, क्यों उनके पीछे-पीछे घूम रहे हो।

(१२) पासेँ, यह पास के अधिकरण कारक का रूप है और इसकी उत्पत्ति सं० पार्श्व से हुई है। यह संबंध कारक के साथ अधिकरण कारक सिद्ध करता है। यथा—

हमरा पासेँ, 'मेरे पास'; तोँहरा पासेँ, 'तुम्हारे पास।'

(१३) बदे, 'लिए'; यह सम्बंध के साथ सम्प्रदान कारक सिद्ध करता है। यह बनारस तथा आजमगढ़ की पश्चिमी भोजपुरी में प्रयुक्त होता है। यथा—

का माल असर्फी रुपैँया तोँरा बदे।

हाजिर बा जिउ समेत करेजा राजा तोरा बदे।, तुम्हारे लिए माल अशर्फी रुपया क्या है? ए राजा! तुम्हारे लिए जी के साथ कलेजा हाजिर है;—तेगअली; 'बदमाश दर्पण।'

(१४) बाहर या बहरीं, बाहर, प्रा० बाहिर<सं बहिः। यह सम्बन्ध के साथ अधिकरण कारक सम्पन्न करता है। यथा—

मन्दिल का बाहर या बहरीं; मन्दिर के बाहर;

(१५) बिना (अर्द्धतत्सम) <सं० विना। इससे कर्म कारक सम्पन्न होता है। यथा—

राम बिना दुख कवन हरी? राम के बिना कौन दुःख का हरण करेगा?। कभी-कभी सम्बंध कारक के साथ भी इसका प्रयोग होता है। यथा—

तोँहरा बिना, 'तुम्हारे बिना।' उपसर्ग रूप में यह पहले भी प्रयुक्त होता है। यथा—

बिना बोँलवलेँ, 'बिना बुलाए हुए।'

(१६) बिच् या बीच; यह अधिकरण कारक बनाता है। यथा—

नैँया बिच या बीच नदिया बहाइल जाइ, नाव के बीच नदी बही जा रही है। (कबीर) यह सम्बंध कारक के साथ भी प्रयुक्त होता है। यथा—उ लहरि का बिच पड़ि गइले, वह लहर के बीच पड़ गया।

(१७) बिहुन, बिना, अभाव में; आधुनिक भोजपुरी में इसका लोप हो गया है; किंतु प्रा० भोजपुरी में यह उपलब्ध था। आजकल की भोजपुरी में बिहुनी शब्द स्त्रियों की गाली में प्रयुक्त होता है। इसी प्रकार बिहुना या 'बिहूना' शब्द पुरुषों के लिए व्यवहृत होता है। प्रा० बं० में बिहुने तथा बिहणि शब्दों का प्रयोग होता है। इसकी उत्पत्ति सं० विहीन से हुई है तथा यह अधिकरण कारक में है। इसपर √भू>हु का प्रभाव प्रतीत होता है। यथा—चर्या, १३ में— निन्द-बिहुने सुइना जैसो, 'जैसा नींद-विहीन स्वप्न।'

(१८) भीतर या भितरीं, भितरेँ, मि०, बंगला—भितर, भितरे < *भितरि< *अभ्यन्तरे। ये अधिकरण हैं; किंतु सम्बंध के साथ व्यवहृत होते हैं। यथा—घर् का भितर्, भितरेँ, भितरीं, 'घर के भीतर।'

इसी अर्थ में अन्तर शब्द भी व्यवहृत होता है। इसकी उत्पत्ति फा० 'अन्दर' से हुई है। भोजपुरी में कदाचित् यह प० हि० से आया है। यथा—घर् का अन्तर, 'घर के भीतर।'

(१६) माझ, माझे, माह, 'बीच या मध्य में', अधिकरण <मध्य, मि० बं० 'माझे'। माझ्, तथा माह् का प्रयोग परसर्ग के रूप में प्रा० भो० में होता था ; किन्तु आधुनिक भो० पु० में इसके स्थान पर 'में' शब्द का व्यवहार होता है। प्रा० भो० में इसका निम्नलिखित उदाहरण मिलता है। यथा—कागद लिखाइल परान साहु का दोरोखा माझ् माझे, यह दस्तावेज परान साहु के बरामदे में लिखा गया। माझे का प्रयोग चर्या में भी मिलता है। यथा—

गंगा जउना माझेरे बहै नाइ, 'नाव गंगा तथा यमुना में बहती है'।

अ० त० मधे<मध्य भी भो० पु० कहावत 'धन मधे कठधति, वंस मधे फूआ', 'धन में (केवल) कठौती तथा वंश में (केवल) बुआ (हैं)' में मिलता है।

माह् का व्यवहार प्रा० भो० में मिलता है। यथा—घर, माह् बन माह, 'घर में', 'बन में'। आधुनिक भोजपुरी में 'माह' का अर्थ, 'कब्जे में' या 'अधिकार में' हो गया है। यथा—का हम केहू का माह् बानी, 'क्या मैं किसी के कब्जे या अधिकार में हूँ।'

(२०) मारे या मारें, यह मार के अधिकरण का रूप है तथा √मृ का प्रेरणार्थक है। आधुनिक भोजपुरी में यह सम्बन्ध के साथ व्यवहृत होता है और इसका अर्थ है 'कारण से' या 'मारे'। यथा—काम् का मारें, 'काम के मारे', तोहरा मारे या मारें, तुम्हारे मारे; भुखि का मारे या मारें, 'भूख के मारे'।

(२१) लगे, लगें 'पास', 'निकट'। यह सम्बन्ध के साथ अधिकरण कारक को सिद्ध करता है। इसका सम्बन्ध सम्भवतः संस्कृत 'लग्न' से है। यथा—हमरा लगे या लगें ऽ आव, मेरे पास आओ।

ठीक इसी अर्थ में नगीच, नगिचां, नगिचें < फा० नजदीक نزدیک का व्यवहार होता है। यथा—हमरा नगीच या नगिचां, या नगिचें ऽ आव; मेरे 'पास' या 'निकट' आओ।

(२२) लागि, का वास्तविक अर्थ है, 'लगकर,' मि०, ने० लागि, बं० लागिया, लेगे, लागि<सं० लग्न—,लग्नक—, पा० तथा प्रा० लग्गा—, लगा हुआ या जुड़ा हुआ। संज्ञापद अथवा सम्बन्ध कारक के साथ व्यवहृत होने पर यह सम्प्रदान कारक का भाव 'के लिए' द्योतित करता है। इस परसर्ग का व्यवहार केवल भो० पु० कविता (गीतों) में होता है। आधुनिक आदर्श बँगला (साधु भाषा) में इसका व्यवहार बहुत कम होता है, किन्तु मध्ययुग की बँगला कविता में इसका प्रयोग मिलता है। भो० पु० कविता (गीतों) में इसके अनेक उदाहरण उपलब्ध हैं। यथा—

अपना पिया लागि पेन्हलों चुँदरिया, 'अपने प्रियतम के लिए मैंने चुँदरी पहनी'।

(२३) ले, 'तक', मि०, ने० ले, हि० ले, 'साथ'। सम्भवतः इसका सम्बन्ध सं० लभते, पा० लभति, प्रा० लहइ में है [दे०, ट०; ने डि० पृ० ५६० तथा ५५६, ले तथा लिनु] भो० पु० अव्यय के साथ इसका व्यवहार होता है। यथा—कहाँ ले, 'कहाँ तक'; इहाँ ले, 'यहाँ तक।'

ठीक इसी अर्थ में भो० पु० में 'तक' का व्यवहार होता है। इसका सम्बन्ध सम्भवतः सं० तर्कयती पा० तक्केति, प्रा० तक्कइ से है। [दे०, ट०, ने०, डि० पृ० २५०] यथा— कहाँ तक; इहाँ तक 'यहाँ तक'; आदि।

(२४) सङे, यह तत्सम 'सङ्ग' के करण अथवा अधिकरण का विकारी रूप है। कभी-कभी सम्बन्ध कारक में भी यह प्रयुक्त होता है। यथा—तो हारों सङे, 'तुम्हारे साथ', राम सङे, राम के साथ। यह परसर्गीय रूप प्रा० बं० के चर्यापद ३२ में भी मिलता है। यथा— दुज्जन सङे, दुष्ट के साथ में।

(२५) सन्ती या सँती, बदले में, स्थान में; यह सम्बन्ध के साथ सम्प्रदान कारक की रचना करता है। यथा —हमार सन्ती या सँती, मेरे लिए, मेरे बदले में, मेरे स्थान में; ओकर सन्ती, उसके लिए। सम्बन्ध के परसर्ग रूप में सन्त का प्रयोग दक्षिणी-पश्चिमी प्राकृत में बहुत प्राचीन काल से प्रचलित है।

(२६) समेत्, साथ, (मि०, ने० समेत), यह सम्बन्ध कारक के साथ करण की रचना करता है। यथा—सभ्‌ का समेत् आव, 'सब के साथ आओ'।

(२७) साथ, साथें, साथ <सं० सार्थ यह सम्पर्क प्रकट करने के लिए सम्बन्ध कारक में प्रयुक्त होता है। यथा—राम के या का साथ या राम का या के साथें।

(२८) सामुने, यह वस्तुतः सम्मुख का विस्तार है। यह सम्बन्ध कारक के साथ अधिकरण की रचना करता है। यथा—राम का सामुने, राम के सामने।

(२९) सोझाँ, सामने, मि०, ने० सोजो या सोझो, सम्भवतः <सं० सोध्यः प्रा० सोज्झ—; यह सम्बन्ध के साथ अधिकरण की रचना करता है। यथा—राम का सोझाँ, राम के सामने।

(३०) होत, होते हुए, मि०, बं० हइते, मध्य युग की बँगला में इसका रूप होन्ते तथा हन्ते मिलता है। सम्बन्ध के साथ यह अपादान की रचना करता है। डा० चटर्जी के अनुसार इसका सम्बन्ध √अस्‌ से है। (दे०, बैं० लैं० पृ० ७७५) यथा—तों हारा होत, तुम्हारे होते हुए।

चौथा अध्याय

विशेषण

§३३४ भोजपुरी में, संज्ञापदों की भाँति, विशेषण के भी तीन रूप मिलते हैं। (१) लघु (२) गुरु और (३) अनावश्यक। लघुरूप ही सर्वाधिक प्रयुक्त होता है। यथा—

बड़्, बड़का, बड़कवा; छोट, छोटका, छोटकवा; सोझ्, सोझका, सोझकवा; लाल्, ललका, ललकवा।

§३३५ गुरु रूप—अका और अनावश्यक रूप—अकवा के संयोग से बनते हैं।

§३३६ कभी-कभी—हन और हर भी विशेषणों में लगाये जाते हैं। यथा—

बड़्, बड़हन्, बड़ा; छोट्, छोटहन्, छोटा; लाम्, लमहर, ऊँचा या लम्बा।

§३३७ संज्ञापदों के लिङ्ग विशेषणों में भी अनिवार्य रूप से नहीं प्रयुक्त होते। यथा—

नीमन्, लइका, अच्छा लड़का; नीमनि, लइकी, अच्छी लड़की; परन्तु नीमन् लइकी का भी प्रयोग प्रचलित तथा साधु है।

§३३८ विशेषणों के स्त्रीलिंग इस प्रकार बनते हैं—

(क) व्यञ्जनान्त पुंलिङ्ग में—इ, लगाकर, यथा—

भुताह्, भुताहि, भयानक, ऊसर, ऊसरि, उज्ज्वल, पातर, पातरि, पतला; बड़्, बड़ि, बड़ी; जबून् (उ० श०), जबूनि, बुरा; लायक् (उ० श०), लायकि, योग्य; बद्‌मास् (उ० श०), बद्‌मासि, बदमाश;

(ख) आकारान्त पुंलिंग शब्दों का—आ,—ई में परिवर्तित कर देने से स्त्री० लि० बनता है। यथा—

गोला, गोली, ईषदरुण (कुछ ललाई लिये हुए); घवरा, घवरी, ईषत्श्वेत, लँगरा, लँगरी, लँगड़ा।

टिप्पणी—भोजपुरी में स्त्रीलिंग-सम्बन्धी संज्ञा और सर्वनाम पद कभी-कभी—इ,—ई प्रत्यान्त होते हैं; किन्तु भिन्न-भिन्न कारकों के रूप में उनमें कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता।

विशेषणों के रूप

§३३९ विशेषण के रूपों में यद्यपि किसी प्रकार का परिवर्त्तन नहीं होता; किन्तु आजमगढ़ तथा बनारस की भो० पु० में कभी-कभी विभक्तियुक्त रूपों का प्रयोग होता है। यहाँ विभक्तियुक्त आकारान्त विशेषण के विकारी रूप एक वचन में प्रयुक्त होते हैं। इसके अतिरिक्त कर्त्ता कारक के बहुवचन में भी ऐसे रूप प्रयुक्त होते हैं। यथा—

बड़े बेटा के घर, 'बड़े पुत्र का घर'; पाँच अच्छे-अच्छे बरध, 'पाँच अच्छे-अच्छे बैल'; छोटका बेटा अपने बाप से कहलस, 'छोटे पुत्र ने अपने पिता से कहा'।

तुलनात्मक श्रेणियाँ

§३४० अन्य आधुनिक आर्य भाषाओं की भाँति भोजपुरी में तरबन्त (Comparative) तथा तमबन्त (Superlative) श्रेणी के विशेषण नहीं मिलते। यहाँ तुलनात्मक भाव, जिआदा, बढ़ि के, अधिक; कम; शब्दों को तुलनात्मक विशेषण के पूर्व रखकर तथा करणकारक में से परसर्ग लगाकर प्रकट करते हैं। यथा—

(१) ई लइका ओ॑करा से जियादा सुन्नर बाटे, यह लड़का उससे ज्यादा सुन्दर है। ऊ लइका एकरा से कम सुन्नर बाड़, वह लड़का इससे कम सुन्दर है।

§३४१ कभी-कभी तुलनात्मक भाव—अनइस, बीस के प्रयोग से भी प्रकट करते हैं। यथा—

ई लइका एकरा से उमिरि में तनी बीस हवे; यह लड़का इससे अवस्था में कुछ बीस है। ऊ लइका एकरा से उमिरि में तनी अनइस हवे, वह लड़का इससे अवस्था में तनिक उन्नीस है।

अथवा तुलनात्मक संज्ञा के पश्चात् 'से' परसर्ग लगाकर तुलना का भाव प्रकट किया जाता है। यथा—

ऊ लइका एकरा से गोर हवे, वह लड़का इससे गोरा है। ई लइका ओ॑करा से करिया हवे, यह लड़का उससे काला है।

§३४२ तमबन्त विशेषण (Superlative) का भाव—सभ में या सभ से या सभ में बढ़ि के या सभ से बढ़ि के आदि अधिकरणगत संज्ञापदों में लगाकर बनाते हैं। यथा—

ऊ लइका सभ में नीक हवे, वह लड़का सबमें अच्छा है।

ऊ अपना घर में सभ में या सभ से नीमन हवे, वह अपने घर में सबसे अच्छा है।

ई लाठी सभ मे या से बढ़ि के हवे, यह लाठी सबसे बढ़कर है।

§३४३ विशेषण में विशेष प्रभाव के लिए—ओ लगा देते हैं। यथा—

ई आम खटो बा मिठो बा, यह आम खट्टा भी है मीठा भी है।

प्रभावसूचक—'ओ' संस्कृत के उत से आया हुआ प्रतीत होता है। यह 'और' का अर्थ देनेवाले बँगला-संयोजक—'ओ' का समानार्थी है। (फा० के 'व' 'ब' की उत्पत्ति भी प्रा० फा० उत से हुई है।)

§३४४ सर्वनामीय विशेषणों का उल्लेख सर्वनामों के साथ किया गया है।

संख्यावाचक विशेषण

§३४५ भोजपुरी में कई प्रकार के संख्यावाचक विशेषण हैं। जैसे—

गणनात्मक संख्यावाचक, क्रमात्मक संख्यावाचक, गुणात्मक संख्यावाचक, समूहवाचक संख्यावाचक, भिन्नात्मक संख्यावाचक, समानुपातीय संख्यावाचक, ऋणात्मक संख्यावाचक, तथा—

(१) गणनात्मक संख्यावाचक विशेषण

§३४६ गणनात्मक संख्यावाचक विशेषण के भो० पु० के रूप नीचे दिये जाते हैं —

संख्याएँ	बलिया	भोजपुरी की अन्य बोलियाँ
१	एक या राम (एकः)	
२	दूइ (द्वौ)	बना०, मिर्जा०, आज० गो०, दू
३	तीनि (त्रयः)	„ „ „ „ तीन
४	चारि (चत्वारः)	„ „ „ „ चार
५	पाँच् (पञ्च)	„ „ „ „
६	छव् (षट्)	बना०, मिर्जा० आज०, छ, गो० छय्
७	सात् (सप्त)	„ „ „ „
८	आठ् (अष्ट)	„ „ „ „
९	नव् (नव)	„ „ „ „
१०	दस् (दश)	„ „ „ „
११	एगारह् (एकादश)	बना०, मिर्जा०, आज०, इगारह; गो० सा० इगारे
१२	बारह् (द्वादश)	„ „ „ गो, सा०, बारे
१३	तेरह् (त्रयोदश)	गो०, सा०, तेरे
१४	चौदह् (चतुर्दश)	गो०, सा, चौदे
१५	पनरह् (पञ्चदश)	गो०, सा०, पनरे
१६	सोरह् (षोडश)	गो०, सा०, सोरे
१७	सतरह् (सप्तदश)	गो०, सा०, सतरे
१८	अठारह् (अष्टादश)	गो०, सा०, अठारे
१९	ओनैस् या अनैस् (ऊनविंशतिः नवदश) (एकोनविंशतिः)	बना०, मिर्जा०, आज०, ओनैस, (गो०, सा०, ओन्नैस
२०	बीस् (विंशतिः)	
२१	एकैस् (एकविंशतिः)	
२२	बाइस् (द्वाविंशतिः)	
२३	तेइस् (त्रयोविंशतिः)	
२४	चौबीस् (चतुर्विंशतिः)	
२५	पचीस् (पञ्चविंशतिः)	
२६	छब्बीस् (षड्विंशतिः)	
२७	सताइस् (सप्तविंशतिः)	
१८	अठाइस् (अष्टाविंशति)	
२९	ओनतिस् (नवत्रिंशतिः, ऊनत्रिंशत्)	
३०	तीस् (त्रिंशत्)	
३१	एकतिस् (एकत्रिंशत्)	

३२	बत्तीस् (द्वात्रिंशत्)		
३३	तैंतिस् (त्रयस्त्रिंशत्)		
३४	चयॅतिस् (चतुस्त्रिंशत्)		
३५	पैंतिस् (पञ्चत्रिंशत्)		
३६	छत्तिस् (षट्त्रिंशत्)		
३७	सैंतिस् (सप्तत्रिंशत्)		
३८	अरतिस् (अष्टात्रिंशत्)	बना०, मिर्जा०, आज०, गो०	अँड़तिस्
३९	ओन्तालिस् (नवत्रिंशत्, ऊनचत्वारिंशत्)		
४०	चालिस् (चत्वारिंशत्)		
४१	एकतालिस् (एकचत्वारिंशत्)		
४२	बेआलिस् (द्विचत्वारिंशत् द्वाचत्वारिंशत्)	बना०, मिर्जा०, आज०	बयालिस्
४३	तैंतालिस् (त्रिचत्वारिंशत्, त्रयश्चत्वारिंशत्)		
४४	चौआलिस् (चतुश्चत्वारिंशत्)		
४५	पैंतालिस् (पञ्चचत्वारिंशत्)		
४६	छिआलिस् (षट्चत्वारिंशत्)		
४७	सैंतालिस् (सप्तचत्वारिंशत्)		
४८	अरतालिस् (अष्टचत्वारिंशत्, अष्टाचत्वारिंशत्)	बना०, मिर्जा० आज० गो०, शा०	अँड़तालिस्
४९	ओन्चास् (नवचत्वारिंशत्, ऊनपञ्चाशत्)		
५०	पचास् (पञ्चाशत्)		
५१	एक्कावनि (एकपञ्चाशत्)	बना०, मिर्जा०, आज०, गो०, शा०	एकावन्
५२	बावनि (द्विपञ्चाशत्, द्वापञ्चाशत्)	” ” ” ” ”	बावन्
५३	तिरपनि (त्रिपञ्चाशत्, त्रयःपञ्चाशत्)	” ” ” ” ”	तिरपन्
५४	चौआनि (चतुःपञ्चाशत्)	” ” ” ” ”	चउअन्
५५	पचपन (पञ्चपञ्चाशत्)	” ” ” ” ”	पञ्चावन्
५६	छप्पनि (षट्पञ्चाशत्)	” ” ” ” ”	छप्पन्
५७	सतावनि (सप्तपञ्चाशत्)	” ” ” ” ”	सतावन्
५८	अन्ठावनि (अष्टपञ्चाशत्, अष्टापञ्चाशत्)	” ” ” ” ”	अट्ठावन्
५९	ओनसठि (नवपञ्चाशत्, ऊनषष्टिः, एकोनषष्टिः)	” ” ” ” ”	ओन्सठ्
६०	साठि (षष्टिः)	” ” ” ” ”	साठ्

६१	एकसठि (एकषष्टिः)	बना०,	मिर्जा०	आज०,	गो०,	सा०,	एकसठ्
६२	बासठि (द्विषष्टिः, द्वाषष्टिः)	”	”	”	”	”	बासठ्
६३	तिरसठि (त्रिषष्टिः, त्रय.षष्टिः)	”	”	”	”	”	तिरसठ्
६४	चौसठि (चतुःषष्टिः)	”	”	”	”	”	चौंसठ्
६५	पैंसठि (पञ्चषष्टिः)	”	”	”	”	”	पयँसठ्
६६	छाछठि (षट्षष्टिः)	”	”	”	”	”	छाँछठ्
६७	सतसठि (सप्तषष्टिः) सरसठ्	”	”	”	”	”	सँड़सठ्
६८	अरसठि (अष्टषष्टिः, अष्टाषष्टिः) अरसठ्	”	”	”	”		अँड़सठ्
६९	ओनहत्तरि (नवषष्टि., ऊनसप्तति: एकोनसप्ततिः)	”	”	”	”	”	ओन्हत्तर्
७०	सत्तरि (सप्ततिः)	”	”	”	”	”	सत्तर्
७१	एकहत्तरि (एकसप्ततिः)	”	”	”	”	”	एकहत्तर्
७२	बहत्तरि (द्विसप्ततिः, द्वासप्ततिः)	”	”	”	”	”	बहत्तर्
७३	तिहत्तरि (त्रिसप्ततिः, त्रयःसप्तति)		”	”	”	”	तिहत्तर्
७४	चउहत्तरि (चतुःसप्ततिः)	”	”	”	”	”	चउहत्तर्
७५	पचहत्तरि (पञ्चसप्ततिः	”	”	”	”	”	पचहत्तर्
७६	छिहत्तरि या छिहन्तरि (षट्सप्तति.)	”	”	”	”	”	छिहत्तर्
७७	सतहत्तरि या सतहन्तरि (सप्तसप्ततिः)	”	”	”	”	”	सथत्तर
७८	अठहत्तरि या अठहन्तरि (अष्टसप्ततिः, अष्टासप्ततिः)	”	”	”	”	”	अठ् हत्तर्
७९	ओनासी (नवसप्ततिः, ऊनाशीतिः एकोनाशीतिः)						
८०	असी (अशीतिः)	”	”	”	”	”	अस्सी
८१	एकासी (एकाशीतिः)	बना०,	मिर्जा०	आज०,			एक्यासी
८२	बयासी (व्यशीतिः)	बना०,	मिर्जा०,	आज०,	गो०,		बयासी
८३	तिरासी (त्र्यशीतिः)						
८४	चवरासी (चतुरशीतिः)						
८५	पचासी (पञ्चाशीतिः)						
८६	छिआसी (षडशीतिः)						
८७	सत्तासी (सप्ताशीतिः)						
८८	अठासी (अष्टाशीतिः)						
८९	नवासी (नवाशीतिः, ऊननवति)						
९०	नब्बे (नवतिः)						
९१	एकान्वे (एकनवतिः)						
९२	बान्वे (द्विनवतिः, द्वानवतिः)						

९३ तिरान्बे (त्रिनवतिः, त्रयोनवतिः)
९४ चउरान्बे (चतुर्नवतिः)
९५ पञ्चान्बे (पञ्चनवतिः)
९६ छान्बे (षण्णवतिः)
९७ सन्तान्बे (सप्तनवतिः)
९८ अण्ठान्बे (अष्टनवतिः, अष्टानवतिः)
९९ निनान्बे (नवनवतिः, ऊनशतम्, एकोनशतम्)
१०० सइ (शतम्) बना०, मिर्जा०, आज० गो० सय्
१००० दस्सइ या हजार् (सहस्रम्)
१०००० दस् हजार् (अयुतम्)
१००००० लाख् (लक्षम्)
१०००००० कड़ोर् या कड़ोड़् (कोटिः)

§ ३४७ भोजपुरी के संख्यावाचक विशेषण आधुनिक आर्यभाषाओं के संख्यावाचक विशेषणों से मिलते जुलते हैं। पूर्वी मागध भाषाओं, जैसे बँगला, असमिया तथा उड़िया में 'ग्यारह', 'बारह' आदि के 'ह' का लोप हो जाता है, किन्तु भोजपुरी में इस 'ह' का पूर्ण उच्चारण होता है। मैथिली, मगही तथा हिन्दी में भी 'ह' का यह उच्चारण वर्तमान है।

जैसा कि चटर्जी तथा अन्य भाषा-वैज्ञानिकों का मत है, संख्यावाचक विशेषणों में प्राकृत युग से ही कई बोलियों का सम्मिश्रण होने लगा था। दो स्वरों के बीच के ऊष्म वर्णों का परिवर्तन द्वितीय प्राकृत युग से ही प्रारम्भ हो गया था और यह परिवर्तन अपभ्रंश या आधुनिक युग तक चलता रहा।

§ ३४८ आ० भा० आ० भा० का उन्नीस बीस आदि के—इसकी उत्पत्ति वस्तुतः प्रा० बीस<विंशत् से, त्रिंशद् तथा चत्वारिंशत् के औपम्य पर हुई है। आधुनिक भाषाओं में समास करते समय 'स' वस्तुतः 'ह' में परिवर्तित हो जाता है।

§ ३४९ 'ओन्तिस्' 'ओन्तालिस्' 'ओनासी' आदि में 'उन' वस्तुतः 'ओन्' में परिवर्तित हो जाता है। यह कदाचित् 'उन' के साथ-साथ चलनेवाले 'एओन'<'एकोन' के रूपों के कारण हुआ है। उन्नीस के लिए भोजपुरी में 'अनइस' हो जाता है। यहाँ कदाचित् अठारह के 'अ' के कारण ही 'अनइस में भी 'अ' का आगम हुआ है।

§ ३५० तिर्पन्, तिर्सठि, तिरासी, तिरान्बे आदि में 'र' का आगम उल्लेखनीय है। सम्भवतः संध्यक्षर के रूप में इसका प्रवेश किया गया है। भोजपुरी सत्तरि में 'र' का आगम विचारणीय है। वस्तुस्थिति यह है कि प्राकृत युग में ही 'सप्तति'> * 'सत्तति'>* 'सत्तटि'>* सत्तडि>* 'सत्तरि', पाली में 'सत्तति' तथा 'सत्तरि' दोनों मिलते हैं और यह 'सत्तरि' आधुनिक भाषा में भी प्रयुक्त होता है। (वै० लै० ५३८)।

§ ३५१ अ शिक्षित लोग प्रायः बीस पर्यन्त ही गिन सकते हैं। अधिक गणना के लिए २० का ही सहारा लेते हैं। जैसे ६५ के लिए 'तीनि बीसि आ पाँच', 'तीन बीस और पाँच' करके गिनते हैं। कभी-कभी २० के स्थान पर 'कोड़ी' का प्रयोग होता है। प्रजिलुस्की के मतानुसार यह 'आस्ट्रिक भाषा' का शब्द है। २० से कम किन्तु समीपवर्ती

संख्याएँ भी बीस के ही सहारे से गिनी जाती हैं। यथा १८ के लिए 'दुकम् बीस्', 'दो कम बीस', प्रयुक्त होता है।

§ ३५२ भोजपुरी में भोजपुरी संख्यावाचक विशेषणों के आगे सहायक रूप में 'गो' ठो या ठे लगाने की प्रथा है। यथा—

तीनि गो या ठो या ठे लड़का, तीन लड़के; सात् गो या ठो या ठे रुपया, सात रुपये; एगो या एकठो या एकठे-दरखास्, एक प्रार्थना-पत्र।

§३५३ भोजपुरी तथा बिहारी भाषाओं में संख्यावाचक विशेषण के साथ 'गो' लगाने की प्रथा है। गुआ के रूप में चउगाँव की बोली में भी यह वर्तमान है। इस गो की व्युत्पत्ति जटिल है। सम्भवतः इसका मूल गोटा, कुल या एक हो। इसकी व्युत्पत्ति डा० चटर्जी ने बै० लै० पृ० ७८६-८० में निम्नलिखित रूप में की है—

सं० गत, एकगत>प्रा० एक्क गअ किन्तु भोजपुरी गो की उत्पत्ति गुअ से मानने में कठिनाई उपस्थित होती है। ऐसी स्थिति में डॉ० चटर्जी ने गोटा की उत्पत्ति 'गृत' से निम्नलिखित रूप में मानी है। *एत>*गुत>* गुअ।

ठो और ठे की व्युत्पत्ति डा० चटर्जी ने √स्था से निम्नलिखित रूप में मानी है। यथा—

एकस्थक > एकट्ठए > एकठे। वस्तुतः 'ठो' के 'ओ' की व्याख्या करना कठिन है।

§ ३५४ सौ से ऊपर के संख्यावाचक शब्द वस्तुतः अन्य छोटे अंकों को बिना संयोजक की सहायता से मिलाकर बनाए जाते हैं। यथा—

१०१ एक सइ एक; १०२ एक सइ दुइ; १०३ एक सइ तीनि;
१०४ एक सइ चारि; १०५ एक सइ पाँच; ११० एक सइ दस;
११५ एक सइ पन्रह; १२० एक सइ बीस; १२५ एक सइ पचीस,
या सवा सइ; १५० एक सइ पचास् या डेढ़ सइ;
२०० दु सइ; २२५ दु सइ पचीस् या सवा दु सइ;
२५० दु सइ पचास् या अढ़ाई सइ; ३०० तीनि् सइ;
३२५ तीन् सइ पचीस् या सवा तीन् सइ; इत्यादि

१,३६५ एक् हजार् तिन् सइ पन्चान्बे; १,७५,३७८, एक् लाख् पचहत्तर् हजार् तिन् सइ अठहत्तरि; १५,६५४८५, पनरह् लाख् पन्चान्बे हजार् चार् सइ पचासी, १,३२,५८,४२६ एक् कड़ोर बत्तिस् लाख् अंठावनि् हजार् चार् सइ छब्बिस।

§ ३५५ १०१ से लेकर १६६ तक की संख्याएँ जब पहाड़े में प्रयुक्त होती हैं तो उनका दूसरा रूप हो जाता है, किन्तु दैनिक व्यवहार में इनके साधारण रूप का ही व्यवहार होता है।

§ ३५६ १०१ से ११८ तक के अङ्कों को, बड़े अङ्कों में छोटे अंकों को, उत्तर की सहायता से जोड़कर बनाया जाता है। समास करते समय 'उत्तर' का 'उ', 'ओ' में परिणत हो जाता है। यथा—१०८ को अठोत्तर्सो अर्थात् अठ्+उत्तर+सो, 'सौ से आठ उत्तर' कहते हैं।

§ ३५७ ११६ से १६८ तक के अङ्कों में 'उत्तर' संयोजक के स्थान पर 'आ' का प्रयोग होता है; किन्तु अपवादस्वरूप १४० तथा १६० को चाल् सो तथा साठ् सो कहते हैं। अन्य में, मूल अङ्कों का ही प्रयोग होता है।

§ ३५८ समासयुक्त अङ्कों में अन्तिम खण्ड के पूर्व पद पर स्वराघात होता है। यथा—१५३ तिर्पन्ना सो ; १६२ बासट्ठा सो, आदि। इस प्रकार के समासयुक्त अङ्क नीचे दिये जाते हैं।

१०१ एकोत्तर् सो,	१०२ दिलोत्तर-सो,	१०३ तिलोत्तर सो;
१०४ चलोत्तर सो,	१०५ पॅचोत्तर-सो,	१०६ छिलोत्तर सो,
१०७ सतलोत्तर सो,	१०८ अठोत्तर सो,	१०९ नरोत्तर-सो,
११० दहोत्तर् सो;	१११ एगारहोंत्तर सो,	या एग्रोत्तर सो,
११२ बरहोत्तर सो,	११३ तेरहोत्तर सो,	११४ चउदहोत्तर सो,
११५ पनरहोत्तर सो,	११६ सोरहोत्तर सो,	११७ सत्रहोत्तर सो,
११८ अठारहोत्तर सो,	११९ ओनइसा सो,	१२० बीसा सो,
१२१ एकइसा सो,	१२२ बईसा सो,	१२३ तेईसा सो,
१२४ चउबीसा सो,	१२५ पचीसा सो,	१२६ छब्बीसा सो,
१२७ सतइसा सो,	१२८ अठइसा सो,	१२९ ओन्तीसा सो,
१३० तीसा सो,	१३१ एकतीसा सो,	१३९ ओन्ताल सो,
१४० चाल् सो,	१४१ एकताल सो,	१४९ ओंचास् सो,
१५० डेढ् सो,	१५१ एकवना सो,	१५२ बयन्ना सो,
१५३ तिरपन्ना सो,	१५४ चउवन्ना सो,	१५५ पचपन्ना सो,
१५६ छपन्ना सो,	१५७ सतवन्ना सो,	१५८ अठवन्ना सो,
१५९ ओनसट्ठा सो,	१६० साठ् सो,	१६१ एकसट्ठा सो,
१६९ ओनहत्तर् सो,	१७० सत्तर् सो,	१७९ ओन्नासी सो,
१८० अस्सी सो,	१८१ एकासी सो,	१८९ नवासी सो,
१९० नब्बे सो,	१९१ एकान्बे सो,	१९२ बान्बे सो,
१९३ तिरान्बे सो,	२०० दुइ सो।	

§ ३५९ दिलोत्तर सो, तिलोत्तर सो, चलोत्तर सो आदि में -ल्- सन्धिस्वर (Enphonic insertion)—सा प्रतीत होता है (यथा—दि-ल्-ओत्तर-सो, ति-ल्-ओत्तर-सो, च-ल्-ओत्तर-सो, आदि।) बीसा सो, एकइसा सो, आदि में 'आ' या तो स्वराघात का परिणाम हो या विशेषणीय 'आ' हो।

२. क्रमवाचक संख्या

§३६० संज्ञापदों की भाँति ही क्रमवाचक संख्याविशेषण शब्दों के भी लघु, गुरु तथा अनावश्यक रूप होते हैं। इसके गुरु तथा अनावश्यक रूप वसी रूप से बनते हैं जैसे विशेषण के, किन्तु वे भी विशेषण का ही कार्य करते हैं। इनके विकारी रूप भी होते हैं।

§३६१ प्रारम्भ के चार क्रमवाचक संख्या शब्दों के रूप कुछ-कुछ अनियमित होते हैं। यथा—

पहिल् या पहिला ∠ ꙳ प्रथ-इल्ल
दूसर् या दुसरा ∠ ꙳ द्विसर—
तीसर् या तिसरा ∠ ꙳ त्रि-सर—
चउथ् या चउथा ∠ चतुर्थ—

§ ३६२ शेष क्रमवाचक संख्याविशेषण साधारण संख्याओं में—आँ,—वीं—ईं जोड़कर बनते हैं। यथा—

पँचवाँ, छठवाँ, सतवाँ, पचवीं, पचईं, छठवीं, छठईं, सतवीं, सतईं ; आदि।

§ ३६३ इनका भी विशेषण की भाँति ही लिङ्ग नियमित नहीं होता। यथा—

पहिल् या पहिला लरिका ; पहिल् या पहिला लरिकी ; पहिल् या पहिला लाठी; किन्तु पहिलि या पहिली लइकी तथा लाठी का भी प्रयोग होता है।

३. गुणात्मक संख्याएँ

§३६४ भोजपुरी में दुगुना, तिगुना आदि का भाव कभी-कभी तोर, तोरी, तोरीं; हाला, हाली, हालीं; बेर्, बेरी, बेरीं द्वारा प्रकाशित किया जाता है।

तोर की उत्पत्ति फारसी-अरबी शब्द दौर तथा हाला की उत्पत्ति फा०अ० हाल, (حال) 'दशा' 'अवसर' आदि से एवं बेर की उत्पत्ति संस्कृत वेला से हुई है। इसमें इ का उपयोग वस्तुतः स्वार्थे प्रत्यय के रूप में हुआ।

§३६५ निम्नलिखित शब्दों का पहाड़े में प्रयोग होता है —

१. एकन्ने या का, २. दुनी, ३. तीआँ, तिआँईं, तिरिका, तिरि, तिरिके, तिरिक्, तिगुना; ४. चउक्, चउके, चौगुना; ५. पाँचे, पाचे, पचे, पाँच गुन; ६. छक्, छके, छका, छक्के, छै गुना; ७. साते सते, सातगुना; ८. आठे, अठाईं आठ्, आठ गुना; ९ नवाँ, नावाँ, नौ गुना; १०. दहा, दहाँ, दहाईं, दसगुना।

§३६६ एकन्ने का प्रयोग केवल एक के पहाड़े में होता है यथा एक एकन्ने एक, किन्तु अन्य संख्याओं के पहाड़े में का व्यवहृत होता है। इसी प्रकार 'तिरिका' का व्यवहार केवल तीन के पहाड़े में किया जाता है। यथा—तिन् तिरिका नव। अन्य वैकल्पिक शब्दों के प्रयोग के सम्बन्ध में कोई निश्चित नियम बनाना कठिन कार्य है; क्योंकि वे व्यक्तियों की रुचि तथा स्थानों पर निर्भर करते हैं। साधारण रूप से 'ति', छक्, आठ् आदि संक्षिप्त रूपों का प्रयोग प्रायः वहाँ होता है जहाँ गुणनफल में कई अक्षर (Syllables) होते हैं। गुणक वस्तुतः वाक्य के मध्य में आता है। नीचे दो का पहाड़ा दिया जाता है—

२×१ आदि
दुका दुइ।
दु दुनि चारि।

दु तिओं इं छव् ।

दु चउके आठ् ।

दु पाचे या पाँचे दस् ।

दु छका बारह ।

दु साते चउदह् ।

दु आठे सोरह ।

दु नवाँ अठारह् ।

दु दहाईं बीस् ।

१३ × १ आदि

तेरह का तेरह् ।

तेरह् दुनी छब्बिस् ।

तेरह् ति ओन्तालिस् ।

तेरह् चउका बावन् ।

तेरह् पाचे या पाँचे पएँसठ् ।

तेरह् छक् अठहत्तरि ।

तेर् साते एकानबे ।

तेर्-आठ् चवतोत्तरा सो ।

तेर् नवाँ सत्रहत्तरा सो ।

तेरह् दहाई तीसा सो ।

४. समूहवाची संख्याएँ

§ २६७ निम्नलिखित शब्द समूहवाची संख्याओं को व्यक्त करने के लिए भोजपुरी में प्रयुक्त होते हैं। जोड़ा या जोड़ी < उत्तरकालीन सं० √युट्, मि० युटक, भोजपुरी √जुट्, 'जुटना'। चूँकि एकत्र करने के लिए कम-से-कम दो वस्तुओं या व्यक्तियों का होना आवश्यक है, अतएव इसका दूसरा अर्थ हुआ 'एक जोड़ा'। गंडा, का अर्थ है, 'चार वस्तुओं का समूह'। इसकी उत्पत्ति मुण्डा तथा संथाली शब्द गंडा से हुई है। (दे० प्रि-एरियन तथा प्रि-ड्रविडियन की भूमिका, पृ० १४-१९); गाही < सं० ग्रह-, पाँच। कदाचित 'चार' के बाद, जो अतिरिक्त रूप में पाँचवीं वस्तु ग्रहण की जाती हो, उसके लिए यह शब्द प्रयुक्त हुआ हो। मि० पूर्वी बँगला का हालि, प० बं० का चार तथा भोजपुरी का गाही, चार। कोड़ी, बीस; सएकड़ा या सएकरा < शतकृत-, सौ; अ० त० सहस्र < सहस्र; हजार < फा० हजार्; लाख् < लक्ष, एक लाख; करोर या करोड़ (मि०, हि० करोड़

तथा बं० करोड़)=क्रोड़। ऐसा प्रतीत होता है कि आधुनिक भाषाओं के कोड़ या कोड़ू शब्द को क्रोड़ रूप देकर संस्कृत रूप दिया गया है, मि० सं० कोटि (वै० लैं० § ५३३)।

§ ३६८ साधारण संख्यावाचक शब्दों में 'आ' जोड़कर भोजपुरी में समूहवाची शब्द बना लिया जाता है। यथा— बीसा < विंशका, बीस ; इसी प्रकार तीसा < त्रिंशका तथा चालीसा आदि। चालीसा शब्द का एक अर्थ चालीस वर्ष की अवस्था के बाद आँखों की देखने की शक्ति है। इसका दूसरा अर्थ चेहल्लुम है। पहले अर्थ में यह विशेषण है।

§ ३६९ एका, दुक्का या दुक्की, तिक्का या तिक्की, चउका, पंजा, छक्का, सत्ता, अट्ठा, नहला, दहला आदि शब्दों का ताश के खेल में प्रयोग किया जाता है। इनकी ठीक-ठीक व्युत्पत्ति ज्ञात नहीं है। एक्का, दुक्का, सत्ता आदि के द्वित्व व्यञ्जन तथा 'दश' के लिए 'दह' के प्रयोग से ऐसा प्रतीत होता है कि ये शब्द कदाचित् पंजाबी से आये हों।

संख्यावाची समास-सम्बन्धी शब्द

§ ३७० भो० पु० में हॉरा, हरा तथा हर एवं बार, बेरि, बेरी शब्दों का प्रयोग समास बनाने के लिए होता है। हॉरा, हरा तथा हर की उत्पत्ति सं० हर, विभाग से हुई है। इसी प्रकार बा_ < सं० वार तथा बेरि, बेरी की उत्पत्ति सं० वेला से है। बेरी में 'इ' अधिकरण कारक के कारण है। यथा—

एकहरा या एकॉहारा, दोहरा या दोहॉरा, तेहरा या तेहॉरा, चउहरा या चउहॉरा, आदि।

इसी प्रकार बार्, बेर् तथा बेरी की सहायता से भी भो० पु० में समास सम्पन्न होते हैं। यथा—

सात् बार, बेर या बेरी ; आदि।

५ समानुपातीय संख्याएँ

§ ३७१ साधारण संख्याओं में गुना शब्द जोड़कर समानुपातीय संख्याएँ भो० पु० में बनाई जाती हैं। यथा—

दुइ गुना, दुगुना ; तिनि गुना, तिगुना ; चारि गुना, चौगुना ; पँचगुना पाँचगुना ; आदि

§ ३७२ ऊपर के शब्दों के संक्षिप्त रूप भी भो० पु० में उपलब्ध हैं। यथा— दुगुना, तिगुना, आदि। दुगुना के साथ दूना शब्द भी भो० पु० में प्रचलित है।

६ ऋणात्मक संख्या-वाचक

§ ३७३ भो० पु० में ऋणात्मक संख्यावाचक शब्द 'कम्' के संयोग से बनते हैं। इनका प्रयोग प्रायः अशिक्षित लोग करते हैं। कम् की उत्पत्ति फा० कम से हुई है। यथा— ९९ = एक कम सइ, इसी प्रकार ४८ = दुइ कम पचास।

७ प्रत्येकवाची संख्या-विशेषण

§ ३७४ प्रत्येकवाची संख्याएँ किसी संख्या को दुहराने से बनती हैं। यथा—दुइ-दुइ, दस-दस ; आदि।

§२७५ प्रत्येकवाची संख्याओं के बाद भो० पु० में करिके (हि० करके) का प्रयोग होता है ; किन्तु कभी-कभी मुहावरेदार भो० पु० में पाछे या पीछे का भी व्यवहार किया जाता है। यथा—

दुइ दुई करिके जा लोग, दो-दो करके तुम लोग जाओ ; लइकन्हि के दुइ-दुइ या दु-दु मिठाई दिहलसि या लइकन् पाछे या पीछे दुइ-दुइ या दु-दु मिठाई दिहलसि, उसने प्रत्येक लड़के को दो-दो मिठाइयाँ दीं।

८ भिन्नात्मक संख्याएँ

§३७६ भो० पु० में निम्नलिखित भिन्नात्मक संख्याएँ मिलती हैं। वस्तुतः ये सभी आधुनिक आर्यभाषाओं में वर्तमान हैं। यथा—

$\frac{1}{4}$, पउआ या पाव < प्रा० पाव-, पाअ-, < सं० पाद।

$\frac{1}{3}$, तिहाई < सं० त्रि-भागिका।

$\frac{1}{2}$, आध् या आधा < सं० अर्द्ध।

$1\frac{1}{2}$, डेढ़ या डेढ़ा < प्रा० दिअड्ढ < सं० द्व्यर्द्ध मि०, बँ० डेड़ा, चो० चा० की बँ० में डेर, हि० डेढ़, ड्योढ़ा।

$2\frac{1}{2}$ अढ़ाई < प्रा० अड्ढतीय < सं० अर्द्ध-तृतीय, मि० हि० अढ़ाई तथा बँ० आड़ाइ।

$3\frac{1}{2}$ अँगूठा < सं० अर्द्ध चतुर्थ।

$4\frac{1}{2}$, ढँगुँचा < सं० अर्द्ध पञ्चम।

इसके बीच के रूप* अड्ढवंचं > * अड्ढौं व >, ढौंच होंगे। यहाँ 'ग' श्रुति (glide) के रूप में वर्तमान है।

$5\frac{1}{2}$, पहुँचा, यह ढँगुँचा के औपम्य पर बना है तथा आदि का 'प' 'पाँच' से आया है।

$+\frac{1}{4}$, सवा, सवाई, सवै या < प्रा० सवाअ < सं० सपाद—।

$+\frac{1}{2}$, साढ़े < सार्द्ध—।

$\frac{3}{4}$, पौन, पवना या पवआ < सं० पादोन—।

९ निश्चित संख्यावाचक विशेषण

§३७७ निश्चित भाव प्रकट करने के लिए साधारण संख्याओं में ओ अथवा ऊ जोड़ते हैं। जहाँ पर संख्याएँ व्यञ्जनान्त हैं वहाँ ओ, ऊ ; किन्तु जहाँ स्वरान्त हैं, वहा केवल ऊ जोड़ा जाता है। यथा—दुनो, दोनों, तीनू, तीनों ; चारू, चारों ; नओ, दसो आदि।

—ओ, उ तथा—हु प्रत्यय व० र० में मिलते हैं। डा० चटर्जी के अनुसार ये स्वार्थे प्रत्यय हैं तथा इनकी उत्पत्ति खलु से निम्नलिखित रूप में हुई है—

खलु > खु > हु > उ, ओ, आदि। (दे० व० र० की भू० § ५०)

१० अनिश्चित संख्यावाचक विशेषण

§३७८ अनिश्चित भाव प्रकट करने के लिए संख्याओं में अनि या अन्हि जोड़ा जाता है। यथा—

बीसनि या बिसन्हि, बीसों ; तीसनि या तिसन्हि, तीसों, सएकड़नि या सएकड़न्हि, सैकड़ों, हजारनि या हजारन्हि, हजारों।

अनि, अन्हि प्रत्यय वस्तुतः सम्बन्ध कारक के बहुवचन के प्रत्यय हैं। अतएव इनकी उत्पत्ति भी वही है।

§३७८ अनिश्चित भाव प्रकट करने के लिए संख्याओं के साथ एक लगाने की भी प्रथा है। यथा—दस् एक, लगभग दस; सइ एक, लगभग सौ ; एक के साथ कभी-कभी आध् भी जोड दिया जाता है। यथा— एकाध, कठिनाई से एक। इसी प्रकार दो संख्याओं को निम्नलिखित ढंग से मिलाने से भी इस प्रकार का भाव प्रकट किया जाता है। यथा—

[क] प्रत्येक संख्या को उसके बादवाली संख्या से मिलाया जाता है। यथा— तीनि-चारि, लगभग तीन; दस् एगारह्, लगभग दस, आदि ।

[ख] दस को पाँच, या दस को बीस, या पाँच आदि के द्वारा भी यह क्रिया सम्पन्न होती है।

यथा—दस् पनरह, दस-बीस; बीस-पचीस या बीस-तीस आदि।

[ग] अपवादरूप में दो को चार, के साथ, यथा—दुइ-चारि, लगभग दो ; पाँच को सात, के साथ, यथा—पाँच-सात्, लगभग पाँच ; आठ को दश के साथ, यथा—आठ-दस, लगभग आठ ; दश को बारह के साथ, यथा—दस्-बारह, लगभग दस ; बारह को चौदह के साथ यथा—बारह्-चउदह् तथा बीस को पचीस के साथ, यथा—बीस-पचीस, लगभग बीस को मिलाकर बोलने की प्रथा है।

पाँचवाँ अध्याय

सर्वनाम

§३८० वैदिक तथा लौकिक (पाणिनीय) संस्कृत में सर्वनाम के रूपों का बहुत-कुछ स्थिरीकरण हो चुका था। भोजपुरी सर्वनामों की उत्पत्ति भी इन्हीं से हुई; किन्तु प्राकृत, अपभ्रंश तथा आधुनिक भाषाओं तक आते-आते इनमें पर्याप्त परिवर्तन हो गया। कई सर्वनामों के भोजपुरी में विकल्प से अनेक रूप मिलते हैं; किन्तु उत्पत्ति की दृष्टि से उन सभी को कतिपय मूल रूपों के अन्तर्गत ही लाया जा सकता है।

संज्ञापदों की भाँति ही, समय की प्रगति के साथ साथ, सर्वनामों के विकारी रूपों का भी लोप होता गया तथा उनके स्थान पर सम्बन्ध और अधिकरण कारकों के (-हि) रूपों का व्यवहार होने लगा। संस्कृत में उत्तम तथा मध्यम पुरुष के सर्वनामों में वस्तुतः लिङ्गभेद न था, किन्तु अन्यपुरुष के सर्वनाम में लिङ्ग का विचार किया जाता था। अन्य आधुनिक आर्यभाषाओं की भाँति भोजपुरी से इसका भी लोप हो गया। भोजपुरी तथा अन्य आधुनिक आर्यभाषाओं के सम्बन्ध कारक के रूप वस्तुतः विशेषण हैं; क्योंकि लिङ्ग तथा वचन में ये विशेष्य के अनुसार होते हैं। प्राकृत तथा अपभ्रंश में भी ये रूप विशेषण ही थे और हिन्दी तथा अन्य पछाहीं बोलियों में इनका यह रूप आज भी अक्षुण्ण है। यथा ;—हिन्दी : 'हमारा बैल', 'हमारी गाय', किन्तु भोजपुरी में इसका रूप है—हमार बयल तथा हमार गाइ। आजकल की भोजपुरी में हिन्दी के प्रभाव से हमारि गाइ भी बोला जाता है, किंतु साधारण बोलचाल की भोजपुरी में इस सम्बन्ध में लिङ्ग का कोई विचार नहीं है।

पुरुषवाचक सर्वनाम

§३८१ इस सर्वनाम के भो० पु० के केवल उत्तम तथा मध्यम पुरुष के रूप मिलते हैं। अन्य पुरुष में परोक्ष अथवा दूरत्व-निर्णय-सूचक (Remote Demonstrative) सर्वनाम के रूप ही प्रयुक्त होते हैं। कतिपय बोलियों में इन सर्वनामों के दो-दो रूप मिलते हैं। ग्रियर्सन ने इन्हें लघु (Shorter) तथा गुरु (Longer) नाम दिया है।

[क] उत्तम पुरुष

§३८२ इस पुरुष में भोजपुरी के मूल रूप निम्नलिखित थे—

	ए० व०	ब० व०
कर्ता	मैं	हम
सम्बन्ध	मो (मो-र)	हम-न, हमार

ये रूप संस्कृत तथा प्राकृत से निम्नलिखित रूप में आये—

कर्ता—मया + एन > मैं > में ; अस्म- > अह्म > *हम्म > हम

सम्बन्ध—मम 7 मयँ 7 मो * ममकर > मोर ; अस्माकम् 7 अम्हाणं < हमन ;

* अस्म-कर 7 हमारा।

`कर्ता कारक एकवचन के अहम्, प्रा० अहकं, अप० हौं+ब० व० अस्मे (वयम् के लिए) > *हमि का रूप आधुनिक भो० पु० में नहीं मिलता। कदाचित् प्रा० भो० में यह वर्तमान हो।

आदर्श भोजपुरी के कर्ता कारक के एकवचन के रूप में (जो मूलतः संस्कृत के करण कारक का रूप है) का आधुनिक भोजपुरी में प्रायः लोप हो गया है। हाँ, कभी-कभी स्त्रियाँ इसका प्रयोग अवश्य करती हैं। यथा—में का जानों ए बाबा, मैं क्या जानती हूँ, ऐ बाबा। आधुनिक भो० पु० में "मैं" के लिए इसके बहुवचन रूप 'हम' का प्रयोग होता है।

§३८३ नीचे आदर्श भो० पु० तथा इसकी अन्य बोलियों के रूपों पर विचार किया जायगा।

आदर्श भो० पु० [बलिया]

	ए० व०	ब० व०
अविकारी	हम	हमनी, हमनी का
विकारी	हम, हमरा	हमनी

सम्बन्ध का०, विशेषण, अविकारी—हमार, 'मेरा' ; [हमार का प्रयोग पुंलिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग, दोनों में होता है; किन्तु विशेष्य स्त्री० लिं० होने पर हमारि का भी व्यवहार किया जाता है।]

सम्बन्ध, विशे०, विकारी रूप—हमरा

उदाहरण—

हम खइलीं, 'मैंने खाया' ; हमनी, हमनिका खइलीं या खइली जाँ, हमलोगों ने खाया ; हम, हमरा के था कें द, मुझे दो ; हम, हमरा से अइसन काम ना हो सके ला, मुझसे ऐसा काम नहीं हो सकता। हम, हमरा से तु एक दिन् पिटइब, एक दिन तुम मुझसे पीटे जाओगे ; हमनी से तु एक दिन् पिटइब, एक दिन तुम हमलोगों से पीटे जाओगे। हम, हमरा से रुपया मति् माङ, मुझसे रुपया मत माँगो। हमनी से रुपया मति माङ, हमलोगों से रुपया मत माँगो। हमरा में कवनो छल-कपट के बात ना पइब, मुझमें कोई छल-कपट की बात नहीं पाओगे ; हमनी में कवनो छल-कपट के बात ना पइब, हमलोगों में कोई छल-कपट की बात नहीं पाओगे।

टिप्पणी—ए०व० विकारी रूप में 'हम' का व्यवहार भो०पु० में वस्तुतः हिन्दी के प्रभाव के कारण होता है। हिन्दी में यह ब० व० रूप में ही व्यवहृत होता है। वास्तव में भो० पु० का अपना विकारी रूप हमरा है।

§३८४ भो० पु० की अन्य बोलियों के रूप नीचे दिये जाते हैं—

उत्तरी आदर्श भोजपुरी [गोरखपुर]

	ए० व०	ब० व०
अविकारी	मय्ँ, हम	हम् लोग् या सभ् हम् लोगन् या सभन्
विकारी	मो, मोरे, हम् , हमरे	हम् लोग् या सभ् , लोगन या सभन, हम्मन्

सं०, विशे०, मो र्, हमा र्

।३८५ पश्चिमी भोजपुरी

(—) [बनारस तथा मिर्जापुर]

	ए० व०	ब० व०
अवि०	हम्	हम् लोग् या लोगन् हमहन्
वि०	हम् (सम्प्र० में हम्में, अवि० में हमरे)	(ऊपर के ही रूप)

(=) [आजमगढ़]

	ए० व०	ब० व०
अवि०	मयँ, हम्	हमहन्
वि०	मों, हम्	(ऊपर ही जैसा)

हम्में का प्रयोग केवल सम्प्रदान में तथा हमरे का सम्प्रदान तथा अधिकरण दोनों में होता है।

सम्ब० विशे० पुं० लिं० मोर् , हमार ; स्त्री० लिं० मोरि, हमारि

§३८६ नगपुरिया या सदानी

	ए० व०	ब० व०
अवि०	मोएँ, हम्	हमरे, हमरे-मन, हमनी, हमनी मन, हमरिन्
वि०	मोएँ (नीच)	(ऊपर ही जैसा)
	हम (उच्च)	

सम्बन्ध० विशे०—मोर् , हमर् , हमार्

यह बात उल्लेखनीय है कि मोएँ की उत्पत्ति मइँ + में से हुई है। मध्ययुग के बँगला में भी मएँ के अतिरिक्त, इसी प्रकार से निर्मित मोँएँ एवं मोनें आदि रूप मिलते हैं।

उत्पत्ति

§३८७ ऊपर भो० पु० के कुछ मूल रूपों पर विचार किया जा चुका है। यहाँ उन्हीं के सम्बन्ध में थोड़े विस्तार के साथ विचार किया जाता है।

भो० पु० के उ० पु० ए० व० के रूप मैं की उत्पत्ति प्राकृत के करण कारक के रूप मए <सं० मया, अप० 'मैं' मइँ से हुई है। अपभ्रंश तथा भो० पु० के अनुनासिक का कारण वस्तुतः—एन है। (दे०, वै०, लैं० §५३६)। यह अनुनासिक हिन्दी तथा पंजाबी 'मैं', गुजराती तथा मैथिली में, प्रा० को० (अवधी) मैं, सिन्धी तथा उड़िया मुँ, प्राचीन मराठी म्याँ एवं आधुनिक मराठी मीं में वर्तमान है। बँगला तथा असमिया के मुइ तथा मइ रूपों में यद्यपि अनुनासिक का लिखित रूप में प्रयोग नहीं होता; किन्तु उच्चारण में वहाँ भी अनुनासिक वर्तमान है। उत्तरी आदर्श तथा पश्चिमी भो० पु० के रूप मयँ का भी मूल वस्तुतः मैं ही है।

विकारी रूप मो (गोरखपुर) की उत्पत्ति सं० मय से हुई है। (दे० वै० लैं० §५४१)। आजमगढ़ में व्यवहृत भो० पु० के विकारी रूप मों में अनुनासिक सम्भवतः स्थानीय है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, मोएँ के निर्माण में इस मो का भी हाथ है।

जैसा कि पहले देख चुके हैं, अहम् सर्वनाम का रूप भो० पु० में सुरक्षित नहीं है। वस्तुतः बिहार की सभी बोलियों में कर्ता के एकवचन के अविकारी रूप तथा अन्य कारकों के एकवचन के विकारी रूप में हम सर्वनाम का ही प्रयोग होता है। हिन्दी तथा कोसली में हम का प्रयोग केवल बहुवचन में होता है। इसकी उत्पत्ति सं० अस्म, प्रा० अम्हे (कर्ता के रूप) तथा अन्य कारकों के आधार अम्ह से हुई है। वस्तुतः अन्त में स्थित प्राण [ह्] आदि में चला गया है। यथा—हम ∠ *हम्म ∠ अम्ह।

जब सम्बन्ध कारक का प्राचीन, एकवचन का विकारी रूप मो—[यथा—मो सम कौन कुटिल खल कामी, सूरदास] अन्य कारकों के विकारी रूप का आधार बन गया, तब पूरब (मगध) की बोलियों में—क-र जोड़कर सम्बन्ध कारक का रूप सम्पन्न होने लगा, यथा—ममकर 7 *मो-अर,— मोर। नये ढंग के सम्बन्ध कारक के एकवचन के रूप का वस्तुतः यही मूल है। (यह कर्त्ता कारक, अन्य सर्वनामों एवं अधिकरण के नूतन रूप मो-हि के सम्मिश्रण से सिद्ध हुआ है)। मोह-र तथा मोहार के रूप में यह बोलियों में भी वर्तमान है। हिन्दी तथा पंजाबी मेरा (मेर्यो) की उत्पत्ति मम+केर (∠कार्य) प्रतीत होती है. दे०—ममेर, (आठवीं शताब्दि की संस्कृत-चीनी डिक्शनरी)। यहाँ ममेर = मवेंर जो वास्तव में मेर—का प्राचीन रूप है।

सम्बन्ध के हमार् की उत्पत्ति अस्म— +कर से हुई है इसके प्रतिरूप बँगला तथा असमिया में आमार्, उड़िया में आम्हार, हिन्दी में हमारा तथा गुजराती में अमारो मिलते हैं।

विकारी रूप हमरा वस्तुतः हमार का सबल रूप है। यहाँ 'आ', विशेषणीय प्रत्यय है। चूँकि अन्तिम 'आ' पर जोर का स्वराघात था, अतएव दूसरे एकाच् का 'आ' निर्बल होकर लुप्त हो गया। यथा—हमार—हमारा 7 हमरा' य हम्रा।

अविकारी तथा विकारी बहुवचन के रूपों में-अनि तथा-अन् प्रत्यय हम-नी (बलिया), हम्मन (गोरखपुर), हमहन् (बीच में ह के साथ बनारस तथा मिर्जापुर)—वास्तव में प्राकृत के सम्बन्ध कारक के बहुवचन प्रत्यय के अवशिष्ट हैं। कर्ता कारक के ब० व० के रूप हमनीका या हमन्का में यह का भो० पु० के सम्बन्ध कारक के परसर्ग के का सबल रूप है। (मगही में यह परसर्ग के तथा मैथिली में क रूप में मिलता है।) यहाँ अर्थ में भी परिवर्तन हुआ है। हमनीका का अर्थ पहले था 'हमलोगों का', किन्तु आगे चलकर यह 'हम' के अर्थ

में व्यवहृत होने लगा। सम्बन्ध कारक के कर्ता कारक के रूप में इस प्रकार के उदाहरण अन्य आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं में भी मिलते हैं। दे० मध्ययुग की बँगला का आम्हारा 7 आ० बँ० आमूरा तथा कोसली का हमन् = अम्हाणं एवं बुन्देली के हमारे, विहारे; आदि।

[ख] मध्यम पुरुष

§ ३८८ प्राचीन भो० पु० में इसके निम्नलिखित रूप थे—

	ए० व०	ब० व०
कर्ता	तु, तुँ	तुम्ह (?, तुँह
करण	तैं	....
सम्बन्ध	तो, (तो—र), तो—ह् (तोह—र)	तोहन्

कर्ता कारक ए० व० तु, तुँ की उत्पत्ति प्रा० भा० आ० भा० के तु [जैसा कि तु-अम् में मिलता है] तथा त्वम् = प्रा० तु, तुँ से हुई है। संस्कृत के युष्मे का रूप प्राकृत के कर्ता कारक में तुम्हे हो गया तथा सं० युष्म का रूप प्रा० में तुम्ह् बन गया। वस्तुतः यह तुम्ह् ही भो० पु० तुँह् का मूल है। इसके अनुनासिक का कभी-कभी लोप हो जाता है। तु, तुँ के साथ-साथ तैं का प्रयोग भी भो० पु० बोलियों में, कर्ता कारक में होने लगा। यह तैं मूलतः करण कारक का रूप था और इसकी उत्पत्ति त्वया + एन से हुई। तो का मूल वस्तुतः तव है तथा तो-र की व्युत्पत्ति तव + कर है। विस्तृत रूप तोँह, मोँह के वजन का है। इनमें 'ह' या तो बहुवचन अथवा अधिकरण की विभक्ति हि से आया है। सं० युष्माकम् प्रा० तुम्हाणं से तोंहन की उत्पत्ति हुई है। बहुत सम्भव है कि मूल भोजपुरी में * तुम्हण रूप वर्तमान हो।

§ ३८९ आदर्श भो० पु० में मध्यम पुरुष के निम्नलिखित रूप मिलते हैं—

	ए० व०	ब० व०
अवि	तु, तुँ, तू, तूँ (साधारण) तें (तें) (नीच)	तोहन्, तोँहनी तु, तुँ लोग, लोगन्नि या लोँगनी, तोँहनिका
विकारी	तो, तोरा, तोँह तोँहरा	'तोँहनिका', को छोड़कर शेष ऊपरवाले रूप।

सम्ब० विशे० अवि०—तोर तथा तोँहार।

सम्ब० विशे० वि०—तोरा तथा तोँहरा।

अवि० ए० व० का उदाहरण—तु, तुँ, तू या तूँ कहाँ गइल रहल हा, तुम कहाँ गए थे?

टि० १—तें (तें) का प्रयोग बच्चों या नौकर के लिए किया जाता है। यह प्रेम अथवा किञ्चित् घृणा का भाव प्रकट करता है। भो० पु० में अपनी माँ को सम्बोधित करके पुत्र तें या तें ही कहता है। इसी प्रकार पिता अपने बड़े पुत्र को भी तु, तुँ कहकर सम्बोधित करता है। तु, तुँ, तें तें का व्यवहार प्रायः नीच जाति के लोगों को सम्बोधित करने के लिए किया जाता है। निम्न श्रेणी के लोग तो पारस्परिक वार्तालाप में तें तें का सदैव प्रयोग करते हैं।

अवि० ब० व० का उदाहरण—तोहन्, तोहनी, तु, तुँ लोग्, लोगन्ि या लोगनी, कहाँ गइल् रहल हा, तुम लोग कहाँ गये थे? तोहनिका कहाँ गइल रहल हा स, सँ या सन्ि, तुम लोग [बच्चे या नीच जाति के लोग] कहाँ गये थे?

टि० २—जब तोँहनिका का व्यवहार अविकारी एकवचन के रूप में होता है तब इससे स्त्री (पत्नी) का बोध होता है। उदाहरणस्वरूप, पति अपनी पत्नी से पूँछते हुए कहता है—तोँहनिका कहाँ गइल रहल् हा स, सँ या सनि, तुम (पत्नी) कहाँ गई थी?

वि० ए० व० उदाहरण (१) तो, तोँह, तोँहरा सेँ कहलीं, (मैंने) तुमसे कहा। (२) तोरा से कहलीं, मैंने तुम (बच्चे या नीच जाति के व्यक्ति) से कहा।

वि० ए० व० तथा ब० व० (३) तोँहनी से कहलीं, (मैंने) तुमसे या तुम लोगों से कहा।

टि० ३—तो, तोँह तथा तोँहरा साधारणतः आदर-प्रदर्शक रूप हैं। इस प्रकार कोई व्यक्ति अपने ताऊ, पिता अथवा चाचा को सम्बोधित करते हुए इनका प्रयोग कर सकता है। किन्तु तोरा का व्यवहार बच्चों, नौकरों तथा स्त्रियों के लिए ही होता है। लोग, लोगन्ि या लोँगनी के बिना तोँहनी का व्यवहार बच्चों, नीच जाति के लोगों तथा स्त्रियों के लिए किया जाता है।

वि०, ब० व० उदाहरण—तोहन्, तोँहनी, तु, तुँ, तू, तूँ लोग, लोगन्ि या लोँगनी सेँ कहलीं, (मैंने) तुम लोगों से कहा।

सम्ब० विशे० अवि—ऐ काका! हई तोँहार क़िताब हवे, ए काका! यह तुम्हारी किताब है; अरे चमरा! तोर का नावँ हवे, ऐ चमार! तुम्हारा क्या नाम है? ए माई! तोर गहन्वाँ कहाँ वा या बाइ? ऐ माँ! तेरा गहना कहाँ है?

टि० ४—तोर का प्रयोग प्रायः बच्चों, नीच जाति के लोगों तथा स्त्रियों के लिए किया जाता है। स्त्रीलिङ्ग तथा पुंलिङ्ग, दोनों में इसका समान रूप से व्यवहार होता है। यह किञ्चित् घृणा या प्रेम का भाव प्रकट करता है।

सम्बन्ध, विशेषण, वि० रूप—तोरा या तोँहरा बेटा से, तुम्हारे लड़के से।

बहुवचन में विकारी रूपों का व्यवहार सम्बन्ध के परसर्ग 'के' के साथ होता है। यथा—हई तोँहन् या तोँहनी लोग, लोगन्ि या लोँगनी के किताब हवे, यह तुम लोगों की किताब है।

§ ३६० भो० पु० की अन्य बोलियों में व्यवहृत रूप नीचे दिये जाते हैं—

उत्तरी आदर्श भोजपुरी
(गोरखपुर)

	ए० व०	ब० व०
अवि०	तैँ, तूँ	तू लोँगन् सभन्, पचन्
वि०	तो, तोरे, तुँह	ऊपर ही जैसा।

सम्ब० विशे० अवि०—तोर्, तुहार्।

सम्ब० विशे० वि०—तोरा, तुहरा।

तैँ के प्रयोग के सम्बन्ध में इसके पहले के पृष्ठ की टिप्पणी १ देखें।

§ ३६१ पश्चिमी भोजपुरी

(क) (बनारस तथा मिर्जापुर)

	ए० व०	ब० व०
अवि०	तैं, तूँ	तूँ, तो॑हन् लोग्, लोगन्
वि०	तो, तो॑ह, तुह्	ऊपर ही जैसा।

सम्ब० विशे० अवि०—तोर्, तुहार्।

सम्ब० विशे० वि०—तोरा, तुहरा, तो॑हरे।

तैं के प्रयोग के सम्बन्ध में इसके पहलेवाले पृष्ठ में आदर्श भोजपुरी की टिप्पणी १ देखें।

(ख) (आजमगढ़)

	ए० व०	ब० व०
अवि०	तैं, तूँ	तुँ या तूँ हन या हने
वि०	तों, तुँह्	ऊपर ही जैसा।

सम्ब० विशे० अवि०—तोर्, तुहार्।

सम्ब० विशे० वि०—तोरे, तुहरे।

तैं के प्रयोग के सम्बन्ध में आदर्श भोजपुरी की टिप्पणी १ देखें।

§ ३६२ नगपुरिया या सदानी

	ए० व०	ब० व०
अवि०	तोएँ (नीच)	तो॑हरे, तो॑हरे-मन,
	तोह (उच्च)	तो॑हनी, तो॑हनी-मन
वि०	तो	ऊपर ही जैसा
सम्ब० अधि०	तोर्, तोहर्	

उत्पत्ति

§ ३६३ भो० पु० के मूल रूप आरम्भ में ही दिये जा चुके हैं। 'हमनिका' की भाँति ही मध्यम पुरुष में 'तो॑हनिका' का रूप मिलता है।

[ग] अन्य पुरुष के सर्वनाम

§ ३६४ संस्कृत का स- (ए० व० कर्ता का रूप) संगतिमूलक सर्वनाम के रूप में भो० पु० में मिलता है। यथा—

जे-जे आइल से-से गइल; या जे जइसन करी से॑ तइसन पाई। यह से॑ बंगला तथा उड़िया में भी मिलता है और इसकी उत्पत्ति निम्नलिखित रीति से हुई है—से<*सै<सए<सगे<सकः=स- या सः। विकारी में त- के रूप अधिक प्रचलित हैं। यथा—सम्बन्ध एकवचन के रूप तेकर्, ते॑करा, तकर् आदि। (त का ते में परिवर्तन वस्तुतः से के औपम्य पर हुआ है। कभी-कभी से के बदले भी ते का प्रयोग होता है। यथा—जे जइसन करी ते तइसन पाई)। स- तथा त-, (संस्कृत के) ये दोनों रूप, भो० पु० में आज भी वर्तमान हैं। मैथिली तथा मगही में भी से वर्तमान है। बिहार की तीनों बोलियों में से तथा ते के साथ लोग् तथा सभ् जोड़कर बहुवचन के रूप सम्पन्न होते हैं। यथा—से-लोग्, से-सभ्, ते लोग्, ते-सभ्; आदि।

§३६५ जैसा कि पहले कहा जा चुका है, भो० पु० में अन्य पुरुष के सर्वनाम का स्थान 'दूरवर्ती निश्चयवाचक' सर्वनाम ने ले लिया है। हिन्दी तथा कोसली (अवधी) में भी ऐसा ही हुआ है; किन्तु बँगला, उड़िया तथा असमिया में मूल अन्य पुरुष सर्वनाम के रूप सापेक्षिक दृष्टि से अधिक सुरक्षित हैं।

[घ] उल्लेख-सूचक या वाचक सर्वनाम

(I) निकटवर्ती उल्लेख-सूचक या वाचक सर्वनाम

§ ३६६ आदर्श भो० पु० में निकटवर्ती उल्लेख-सूचक या वाचक सर्वनाम के निम्नलिखित रूप उपलब्ध हैं—

	ए० व०	ब० व०
अवि०	ई, हई (आदर-रहित)	इन्हन्का, हिन्हन्का, इन्हनीका, हिन्हनीका।
	इन्हि, हिन्हि (साधारण)	ई, हई, इन्हन्, इन्हनी, हिन्हन्, हिन्हनी लोग, लोगन्हि या लोँगनी।
	इहाँका (आदर-सूचक)	इहाँ सभ्, सभन्, सभनी का।
वि०	ए, एह्, हे (आदर-रहित)	इन्हन्, इन्हनी, हिन्हन्, हिन्हनी,
	इन्हिका, हिन्हिका (साधारण)	ए, एह्, हे, इन्हन्, इन्हनी हिन्हन्, हिन्हनी लोग्, लोगन्हि या लोँगनी।
वि०	इहाँ (आदर-सूचक)	इहाँ सभ्, सभन्, सभनी।

सम्ब० विशे० अवि०—एकर्, हेँकर, इन्हिकर्, हिन्हिकर्।

सम्ब० विशे० वि०—एकरा, हेँकरा, इन्हिकरा, हिन्हिकरा।

कभी-कभी एकरि, हेकरि, इन्हिकरि तथा हिन्हिकरि का विशेषण रूप में केवल स्त्रीलिङ्ग में प्रयोग होता है।

टि०—ई, हई, इन्हि तथा हिन्हि के अविकारी रूपों का प्रयोग माँ को छोड़कर अपने से बड़ों तथा छोटों के लिए, स्त्रीलिङ्ग तथा पुल्लिङ्ग, दोनों में समान रूप से होता है; किन्तु प्रत्येक दशा में क्रिया में परिवर्तन हो जाता है।

अवि० ए० व०, उदाहरण—(१) ई हई इन्हि, हिन्हि कहाँ गइल रहले हा? वह (बड़े भाई, पिताजी तथा ताऊ या चचा जी) कहाँ गये थे?

(२) ई, हई, इन्हि, हिन्हि कहाँ गइल रहली हा? वह [दादीजी] कहाँ गई थीं?

(३) ई, हई, कहाँ गइल् रहल् हा? वह [बच्चा, छोटा लड़का या नौकर] कहाँ गया था?

(४) ई हई कहाँ गइल (या गइलि) रहलि हा ? वह [माँ, छोटी बहन, पुत्री या नौकरानी] कहाँ गई थी ?

(५) इहाँ का कहाँ गइल रहलीं हाँ, वह (आदरणीय पुरुष) कहाँ गया था ! अथवा वह (आदरणीय स्त्री) कहाँ गई थी ?

अवि०, ब० व०, उदाहरण—(१) ई हई, इन्हन्, इन्हनी, हिन्हन्, हिन्हनी लोग, लोगनि या लोगनी कहाँ गइल् रहल् हा ? ये लोग [बड़े भाई, चचा आदि] कहाँ गये थे ?

(२) ई हई, इन्हन, इन्हनि, हिन्हन्, हिन्हनी लोग, लोगनि, लोगनी कहाँ गइल् रहली हा ? ये लोग [बड़ी बूढ़ी स्त्रियाँ] कहाँ गई थीं ?

(३) इन्हन् का, इन्हनी का, हिन्हन का, हिन्हनी का, कहाँ गइल् रहले हा स, सँ सनि, ये लोग [बच्चे या नौकर आदि] कहाँ गये थे ?

(४) इन्हन् का, इन्हनी का, हिन्हन् का, हिन्हनी का कहाँ गइल रहले हा स, सँ, सनि, ये लोग [छोटी बहनें, लड़कियाँ, नौकरानी आदि] कहाँ गई थीं ?

(५) इहाँ सभ्, सभन्, सभनी का कहाँ गइल् रहली हाँ ? ये लोग [आदरणीय पुरुष] कहाँ गये थे या ये [आदरणीय स्त्रियाँ] कहाँ गई थीं ?

वि० ए० व० उदाहरण—(१) इन्हिका, हिन्हिका से काम ना चली, इससे [मित्र, भाई, चाचा, स्त्री] से काम नहीं चलेगा। (२) ए, एह, हे से काम ना चली, इससे [नौकर या नौकरानी या माँ] काम नहीं चलेगा (३) इहाँ से काम ना चली, इस [आदरणीय पुरुष या स्त्री] से काम नहीं चलेगा।

वि० ब० व० उदाहरण—(१) ए, एह, हे, इन्हन्, इन्हनी लोग, लोगनि, लोगनी से काम ना चली, इन लोगों [मित्रों, भाइयों या बड़ी बूढ़ी स्त्रियों] से काम नहीं चलेगा। (२) इन्हन्, इन्हनी, हिन्हन्, हिन्हनी से काम ना चली, इन लोगों [छोटी बहनों, लड़कियों, नौकर या नौकरानियों] से काम नहीं चलेगा। (३) इहाँ सभ्, सभन्, सभनी से काम् ना चली, इन लोगों [आदरणीय पुरुषों या स्त्रियों] से काम नहीं चलेगा।

टि० ई तथा हई का प्रयोग अविकारी तथा ए एवं एह का व्यवहार विकारी विशेषण के रूप में स्त्रीलिङ्ग तथा पुंलिङ्ग दोनों में होता है।

उदाहरण—ई, हई लइका, यह लड़का ; ई, हई लइकी, यह लड़की ; ए, एह लइका से, इस लड़के से; ए एह लइकी से, इस लड़की से।

§३६७ इस सर्वनाम के रूप भोजपुरी की अन्य बोलियों में नीचे दिये जाते हैं—

उत्तरी आदर्श भोजपुरी

[गोरखपुर]

	ए० व०		ब० व०
अवि०	ई० हई		ई, हई, एन्हन्, हेन्हन् लोग, लोगन्
वि०	ए, एह, हेह,		(ऊपर ही जैसा)
सम्ब०	विशे०	अवि०	एकर, हेकर
सम्ब०	विशे०	वि०	एकरे, हेकरे

§३६८ पश्चिमी भोजपुरी

(१) (बनारस तथा मिर्जापुर)

	ए० व०	ब० व०
अवि०	ई, हई	ई, हई सब्, लोग्, लोगन्
वि०	ए (आदर-रहित)	इन्हन्, एन्हन्, हेन्हन्
	इन्, एन् (आदर सूचक)	ई, एन्, एहि, एनहन्, एन्हन् लोग, लोगन्।
सम्ब० वि०	एकर, हेकर, एकरै	

(२) (आजमगढ़)

	ए० व०	ब० व०
अवि०	ई, हई	ई, हई सब, लोग्
वि०	ए (आदर-रहित)	इनहन्, इन्हन्, हिनहन्, हिन्हन्।
	इन् (आदर-सूचक)	एहि, इनहन् लोगन्।

सम्ब० विशे० अवि०	एकर्, हेकर्	(आदर-रहित)
सम्ब० विशे० अवि०	इनुकै हिनुकै	(आदर-सूचक)
सम्ब० विशे० वि०	एकरे, हेकरे	(आदर-रहित)

सम्ब० विशे० वि० आदर-सूचक शब्दरूप वही हैं जो सम्ब० विशे० अवि० के।

§३६६ नगपुरिया या सदानी

	ए० व०	ब० व०
अवि०	ई, ईहे	ई-मन
वि०	ई	(ऊपर जैसा)
सम्ब० विशे०	ई-कर	

उत्पत्ति

§४०० ऊपर के सर्वनाम के रूपों के प्राचीन मूल भो० पु० रूप निम्न लिखित हैं—

	ए० व०	ब० व०
कर्ता	ई, ए	......
सम्बन्ध	एह, इह (ए-कर)	इ (ह) न, ए (ह) न (+कर)

ई या ए की उत्पत्ति सं० एत से निम्नलिखित रूप में हुई है—एत>प्रा० एअ। इसपर इदम् तथा इयम् का भी प्रभाव पड़ा है। यह ए-त = ए या अय् + त जो एष: (ए + सः) में मिलता है। बाद के अपभ्रंश में इस ए के स्थान पर ई का भी व्यवहार होने लगा था। दे० विद्यापति की कीर्तिलता—

बालचन्द विज्जावइ भासा;
दुहुँ नहि लग्गइ दुज्जण-हासा।
ओ परमेसर-हर-सिर सोहइ;
ई निच्चइ नाअर-मण मोहइ।

मूल ब० व० कर्ता के रूप के लोप हो जाने के कारण, बहुवचन के स्थान पर ए० व० का प्रयोग प्रारम्भ हो गया। सम्बन्ध का एतस्य>प्रा० एअस्स>अप० एअह वस्तुतः प्राचीन भो० पु० के एह तथा इह का मूल है। इसी प्रकार एतेषाम्=प्रा० एताणं, एआणं, प्राचीन भो० पु० एअण, एहन। बाद में 'ह' के स्थान-परिवर्तन से भोजपुरी के विभिन्न रूप—इन्ह, एन्ह, इहाँ आदि ∠सम्पन्न हुए। इनमें इहाँ तो अर्थपरिवर्तन से आदरसूचक भी बन गया। जोर देने के लिए-इ>-हि के संयोग से इन्हि आदि रूप भो० पु० में सिद्ध हुए। हई=ए या इ, में मूल रूप सम्बन्ध कारक का एह है। सम्भवतः प्राण [ह] के परिवर्तन तथा-हि>-इ के बल देनेवाले [Emphatic] रूप के कारण भो० पु० का यह रूप सम्पन्न हुआ है।

हिन्ह, हिन्हनी, हिन्हिका, हुन्हुका में वास्तव में, 'आदि में', 'ह' का आगम हुआ है। इन्ह की उत्पत्ति निम्नलिखित रूप में हुई है—इन्ह<*एन्ह<*एआणं<*एतानाम् <एतेषाम्<*एताषाम्। इसका-हि वास्तव में प्राकृत के करण कारक बहुवचन की विभक्ति है। हिन्ह की उत्पत्ति ह+इन्हि से हुई है। इसी प्रकार आदरसूचक इहाँ-का=इहाँ+का। यहाँ पर इहाँ स्थानवाचक सर्वनामीय अव्यय है। [मि० अँग्रेजी (This, here) man = This man तथा संस्कृत अत्र-भवान्, तत्र-भवान् एवं अप० यत्रु म, तत्रु म< यत्र, तत्र+त्वम (क्लीबलिङ्ग)।

अवि० बहुवचन के रूप इन्हन्, इन्हनी=इन्ह+अन् तथा इन्ह+अनि के। ये वस्तुतः द्विगुण (double) सम्बन्ध के रूप हैं। इसी प्रकार इन्हन्का तथा इन्हनीका त्रिगुण सम्बन्ध के रूप हैं। हिन्हन्का तथा हिन्हनीका वास्तव में इन्हन्का तथा इन्हनीका के, आद्य 'ह' के साथ, वैकल्पिक रूप हैं।

सम्बध के रूप एकर तथा हेकर=ए+कर तथा हे+कर के। एकरा तथा हेकरा क्रमशः ऐकर् तथा हेकर् के उसी प्रकार सबल रूप हैं जिस प्रकार हमरा, हमार का। अन्तिम-आ की व्याख्या पहले की जा चुकी है।

[ii] दूरवर्ती उल्लेख या संकेतवाचक सर्वनाम

§४०१ इस सर्वनाम के आदर्श भो० पु० में निम्नलिखित रूप उपलब्ध हैं—

	ए० व०	ब० व०
अवि०	उ, हुऊ, उन्हि, हुन्ह	उ, हुऊ, उन्हन्, उन्हनी, हुन्हन्, हुन्हनी लोग, लोगनि, लोगनी, उन्हनका, उन्हनीका, हुन्हन्का, हुन्हनीका।

	उहाँ का (आदरसूचक)	उहाँ सभ्, सभन्, सभनीका।
वि०	ओ, ओ॑ह, हो, उन्हुका	ओ, ओ॑ह, हो, उन्हन्, उन्हनी, हुन्हन्, हुन्हनी लोग, लोगन्ि,लो॑गनी।
	उहाँ (आदरसूचक)	उहाँ सभ्, सभन्,सभनी।

सम्ब० विशे० अवि० ओकर्, होकर्, उन्हुकर्, हुन्हुकर्।

सम्ब० विशे० वि० ओ॑करा, हो॑करा, उन्हुकरा, हुन्हुकरा।

कभी-कभी ओकर्ि, होकर्ि, उन्हुकर्ि, हुन्हुकर्ि का प्रयोग अविकारी सम्बन्ध कारकीय स्त्रीलिंग विशेषण के रूप में होता है।

अवि० ए० व० उदाहरण—(१) उ, हऊ, उन्ि्ह, हुन्ि्ह कहाँ गइल् रहले हा, वह [बड़ा भाई, पिता, चचा आदि] कहाँ गया था ? (२) उ, हऊ, उन्ि्ह, हुन्ि्ह कहाँ गइल रहली हा, वह [दादी या बड़ी बूढ़ी स्त्री] कहाँ गई थी ? (३) उ, हऊ कहाँ गइल रहल हा, वह [बच्चा, छोटा लड़का या नौकर] कहाँ गया था ? (४) उ, हऊ कहाँ गइल रहल्ि हा, वह [माँ, छोटी बहन, पुत्री या नौकरानी] कहाँ गई थी ? (५) उहाँ का कहाँ गइल रहलीं हाँ, वह [आदरणीय पुरुष] कहाँ गया था या वह [आदरणीय स्त्री] कहाँ गई थी ?

अवि० ब० व० उदाहरण (१) उ, हऊ, उन्हन्, उन्हनी, हुन्हन्, हुन्हनी लोग, लोगन्ि, लो॑गनी कहाँ गइल रहल हा, वे लोग [बड़े भाई- चचा आदि] कहाँ गये थे ? (२) उ, हऊ, उन्हन्, उन्हनी, हुन्हन्, हुन्हनी लोग्, लोगन्ि, लो॑गनी कहाँ गइल रहली हा, ये लोग [बड़ी-बूढ़ी स्त्रियाँ] कहाँ गई थीं ? (३) उन्हन् का, उन्हनी का, हुन्हन् का, हुन्हनी का कहाँ गइल रहले हा स सँ सन्ि, ये लोग [बच्चे, नौकर आदि] कहाँ गये थे ? (४) उन्हन् का उन्हनी का, हुन्हन का, हुन्हनी का, कहाँ गइल् रहली हा स सँ सनि, ये [छोटी बहनें, लड़कियाँ, नौकरानी आदि] कहाँ गई थीं। (५) उहाँ सभ्, सभन्, सभनी का कहाँ गइल रहली हाँ, वे [आदरणीय पुरुष] कहाँ गये थे या वे [आदरणीय स्त्रियाँ] कहाँ गई थीं ?

वि० ए० व० उदाहरण—(१) उन्हुका, हुन्हुका से काम ना चली, उनसे [मित्र, भाई, चचा, स्त्री] से काम नहीं चलेगा; (२) ओ, ओ॑ह्, हो से काम ना चली, उससे [नौकर या नौकरानी, माँ] से काम नहीं चलेगा। (३) उहाँ से काम ना चली, उनसे [आदरणीय पुरुष या स्त्री से] काम नहीं चलेगा।

वि० ब० व० उदाहरण—(१) ओ, ओ॑ह्, हो, उन्हन्, उन्हनी, हुन्हन्, हुन्हनी, लोग, लोगन्ि, लो॑गनी से काम ना चली, उन लोगों [मित्रों, भाइयों, बड़ी-बूढ़ी स्त्रियों] से काम नहीं चलेगा। (२) उन्हन्, उन्हनी, हुन्हन्, हुन्हनी से काम ना चली, उन लोगों [छोटी बहनों, लड़कियों, नौकर अथवा नौकरानियों] से काम नहीं चलेगा। (३) उहाँ सभ, सभन्, सभनी से काम ना चली, उन लोगों [आदरणीय पुरुषों अथवा स्त्रियों] से काम नहीं चलेगा।

§ ४०२ भोजपुर की अन्य बोलियों के रूप नीचे दिये जाते हैं—

उत्तरी आदर्श भोजपुरी

(गोरखपुर)

	ए० व०	ब० व०
अवि०	ऊ, हऊ	ऊ, हऊ, ओ॑न्हन्, हो॑न्हन् लोग, लोगन्।
वि०	ओ, हो	ऊपर ही जैसा

सम्ब० विशे० अवि०—ओकर्, होकर्, ओ॑न्कर्, हो॑न्कर्।
सम्ब० विशे० वि०—ओ॑करे, हो॑करे।

§४०३ **पश्चिमी भोजपुरी**

(क) (बनारस तथा मिर्जापुर)

	ए० व०	ब० व०
अवि०	ऊ, हऊ	ऊ, हऊ, उ॑न्हन्, ओ॑नहन्, ओ॑न्हन्, हो॑नहन्, हो॑न्हन् सब
वि०	ओ, हो,	ऊपर ही जैसा।

सम्ब० विशे० अवि०— ओकर्, होकर्।
सम्ब० विशे० वि०—ओ॑करे, हो॑करे।

(ख) (आजमगढ़)

	ए० व०	ब० व०
अवि०	ऊ, हऊ	ऊ, हऊ, उनहन्, उन्हन् हुनहन्, हुन्हन् सब।
वि०	ओ, हो, उन्, उन्ह्	ऊपर ही जैसा।

सम्ब० विशे० अवि०—ओकर् होकर्।
सम्ब० विशे० वि०—ओ॑करे, हो॑करे।

§ ४०४ **नगपुरिया या सदानी**

	ए० व०	ब० व०
अवि०	ऊ, ऊहे	ऊ-मन्।
वि०	ऊ	ऊपर ही जैसा।

सम्ब० विशे०—उ-कर

उत्पत्ति

§४०५ निकटवर्ती अथवा दूरवर्ती उल्लेख या संकेतवाचक सर्वनाम के प्राचीन भो० पु० रूप निम्नलिखित प्रतीत होते हैं—

	ए० व०	ब० व०
कर्ता	ओ, ऊ	....
सम्ब०	ओह, उह	उन्हन, ओहन
	(+ कर)	(+ कर)

दूरवर्ती संकेतवाचक सर्वनाम के रूप निकटवर्ती संकेतवाचक सर्वनाम के रूप के समानान्तर चलते हैं। मूल आधारभूत रूप ओ (परिवर्तित रूप उ-) है। इसकी उत्पत्ति संस्कृत के संकेतवाची सर्वनाम अव- से हुई है। यह अव- वेद में केवल एक स्थान पर प्रयुक्त हुआ है। आधुनिक फारसी के ओं तथा ऊ का भी मूल वस्तुतः यह अव ही है। [वै० सैं० § ५.७२] इस ओ तथा उ के उदाहरण पश्चिमी तथा पूर्वी अपभ्रंश में भी मिलते हैं। यथा—

हेमचन्द्र (पद ४५, अप०)—जइ पुच्छहु घर वड्डुएं तो वड्डा घर ओइ, 'यदि तुम बड़े घर को पूछते हो तो बड़ा घर वह है'। पद ६७, ओ गोरी-मुह-निज्जिअउ बद्दलि लुक्कु मियंकु, 'उस गोरी के मुँह से लज्जित होकर चन्द्रमा बादल में छिप गया'; विद्यापति : कीर्तिलता—ओ परमेसर-हर-सिर सोहइ, 'वह परमेश्वर शिव के सिर में शोभा देता है'।

प्रा० भा० आ० भा० के * अवस्य (या अमुष्य) = प्राकृत * ओस्स से प्रा० भो० पु० के ओह तथा उह की उत्पत्ति हुई है। इसी प्रकार प्रा० भा० आ० भा० * अवेषाम् = प्रा० अवाणं > * ओणं > * ओन। इस ओन में ही 'ह' तथा 'इ' जोड़कर आधुनिक भो० पु० के अनेक रूप, जिसमें आदरसूचक रूप भी सम्मिलित हैं, सम्पन्न हुए हैं।

हुऊ की उत्पत्ति * उहहू < * उहहि से प्रतीत होती है। [यह उहहि, इहहि के औपम्य पर निर्मित प्रतीत होता है]। उन्हि की उत्पत्ति * अउण < * अमुणं < * अमूनाम् + हि से हुई है। यहाँ—हि प्राकृत के करण के बहुवचन की विभक्ति है। हुन्हि = ह + उन्हि, यहाँ 'ह' का आदि में आगम हुआ है। इहाँ का के इहाँ की भाँति ही 'उहाँ का' का उहाँ भी सर्वनामीय अव्यय है। जैसे इहाँ का = सं० के अत्रभवान् के, वैसे ही उहाँ का = सं० के तत्रभवान् के।

अविकारी बहुवचन उन्हन् तथा उन्हनी द्विगुण सम्बन्ध के रूप हैं और ये = उन्ह् + अन् तथा उन्ह् + अनी। इसी प्रकार उन्हन् का तथा उन्हनी का त्रिगुण सम्बन्ध के रूप हैं और ये = उन्ह् + अन् + का तथा उन्ह् + अनी + का के। हुन्हन्का तथा हुन्हनीका भी वस्तुतः त्रिगुण सम्बन्ध के रूप हैं। इनमें 'ह' का आदि में आगमन हुआ है।

हो वास्तव में ओह के वर्ण-विपर्यय से सम्पन्न हुआ है। आदरसूचक विकारी रूप उहाँ की उत्पत्ति ऊपर दी जा चुकी है। उन्हुका तथा हुन्हुका [उन्ह् + उ + का तथा ह् + उन्ह् + उ + का] द्वितीय 'उ' वास्तव में 'इ' के स्थान पर आया है। यहाँ 'इ' का 'उ' में परिवर्तन प्रथम 'उ' के कारण हुआ है। यह स्वर-संगति (Vowel harmoney) का उदाहरण है। ओ॑करा, हो॑करा, उन्हुकरा तथा हुन्हुकरा वस्तुतः ओकर्, होकर, उन्हुकर तथा हुन्हुकर के सबल रूप हैं।

[ङ०] सम्बन्ध-वाचक सर्वनाम

§ ४०६ आदर्श भो० पु० में सम्बन्ध-वाचक सर्वनाम के निम्नलिखित । उपलब्ध है —

	ए० व०	ब० व०
अवि०	जे, जवन, जौँन, जिन्हि	जे, जवन, जौँन, जिन्हि, जिन्ह जिन्हनी लोग या सभ् ।
वि०	जे, जवना, जौँना, जेहू, जिन्हि	ऊपर ही जैसा तथा जेह लोग् या स

सम्ब० विशे० अवि० —जेकर, जेहकर, जिन्हिकर् ।

सम्ब० विशे० वि० —जेँकरा, जेँहकरा, जिन्हिकरा ।

§ ४०७ भो० पु० की अन्य बोलियों के रूप नीचे दिये जाते हैं —

उत्तरी आदर्श भोजपुरी

(गोरखपुर)

	ए० व०	ब० व०
अवि०	जे, जवन्	जे, जवन् लोग ।
वि०	जे, जवने	जे, जवने लोगं ।

सम्ब० विशे० अवि०—जेकर् ।

सम्ब० विशे० वि०—जेँकरे ।

पश्चिमी भोजपुरी

(क) (बनारस तथा मिर्जापुर)

	ए० व०	ब० व०
अवि०	जे, जवन्	जे, जयन् लोग् ।
वि०	जे, जवने	ऊपर ही जैसा ।

सम्ब० विशे० अवि०—जेकर, जवनेक या कर ।

सम्ब० विशे० वि०—जेकरे ।

(ख) (आजमगढ़)

	ए० व०	ब० व०
अवि०	जे, जवन्	जे, जवन् लोग् ।
वि०	जे, जवने	ऊपर ही जैसा ।

सम्ब० विशे० अवि०—जे-कर ।

सम्ब० विशे० वि०—जेँकरे ।

§ ४०८ नगपुरिया या सदानी

	ए० व०	ब० व०
अवि०	जे	जे-मन् ।
वि०	जे	ऊपर ही जैसा ।

सम्ब० विशे०—जे-कर ।

उत्पत्ति

§ ४१० सम्बन्ध-वाचक सर्वनाम के प्रा० भो० पु० में निम्नलिखित रूप हैं —

	ए० व०	ब० व०
कर्ता—	जे<य-क:	जिन्ह, जिन्हि ।
करण—	जेह (जाह के स्थान पर)	

सम्बन्ध-वाचक सर्वनाम के जे, मैथिली, मगही, बँगला तथा उड़िया में वर्तमान है। असमिया में जि (जि) मिलता है। इस जे की उत्पत्ति सं० य-कः से निम्नलिखित रूप में हुई है —

यकः>मा० प्रा० यके>जए>जै>जे। असमिया के जि [जि] का मूल संस्कृत का यः है।

सम्बन्ध-वाचक सर्वनाम जे, प्रा० बं० (चर्या) में वर्तमानहै। यथा—जे जे आइला ते ते गेला, जो-जो आये वे-वे गये। (बै० लैं० § ५८०)

प्रा० भोजपुरी जेह (आ० भोजपुरी का वि० रूप जेह्) वस्तुतः जाह का प्रतिरूप है। इसकी उत्पत्ति सं० यस्य से हुई है। यहाँ जे के एके कारण स्वर में परिवर्तन हुआ है। प्रा० बं० के आदर-सूचक ब० व० के रूप जेहा से इसकी तुलना की जा सकती है।

जिन्ह, जिन्हि की उत्पत्ति जाणं=येषां से हुई है। इसपर करण के पुराने बहुवचन के रूप येभिः>जेहि का भी प्रभाव है।

सम्बन्ध-वाचक सर्वनाम के जौन, जवन के रूप कौन, कवन से मिलते-जुलते हैं। [कौन, कवन के लिए, आगे देखो] इनकी उत्पत्ति यः+पुनः से निम्नलिखित रूप में हुई है—

यः+पुनः>ज-पुण>जउण>जौन्>जवन्।

सम्बन्ध के अविकारी रूप जेकर्, जेह-कर् एवं जिन्हि-करं=जे+कर्, जेह+कर् तथा जिन्हि+कर के और इनके सबल रूप जेकरा, जेहकरा तथा जिन्हिकरा विकारी हैं।

[च] संगति-मूलक या वाचक सर्वनाम

§ ४११ आदर्श भोजपुरी में इस सर्वनाम के निम्नलिखित रूप उपलब्ध हैं—

	ए० व०	ब० व०
अवि०	से, ते, तवन् तौन, तिन्हि	से, सेह्, तवन, तौन तिन्हि, तिन्हन्, तिन्हनी लोग् या सभ्।
वि०	ते, तवना, तौना, तेह्, तिनि, तिन्हि	ऊपर ही जैसा।

सम्ब० विशे० अवि० तेकर्, तेहकर् तिन्हिकर, सेकर् सेहकर्।

सम्ब० विशे० वि० तेकरा, तेहकरा, तिन्हिकरा, सेकरा, सेहकरा।

§ ४१२ भोजपुरी की अन्य बोलियों में निम्नलिखित रूप मिलते हैं—

उत्तरी आदर्श भोजपुरी
(गोरखपुर)

	ए० व०	ब० व०
अवि०	ते, तवन्	ते, तवन् लोग।
वि०	ते, तवने	ते, तवना लोग।
सम्ब० विशे० अवि०-	ते-कर।	
सम्ब० विशे० वि०-	ते-करे।	

§ ४१३ पश्चिमी भोजपुरी

(१) (बनारस तथा मिर्जापुर)

	ए० व०	ब० व०
अवि०	से, ते, तवन्	से, ते, लोग।
वि०	ते तवने	ऊपर जैसा।
सम्ब० विशे० अवि०	तेकर्।	
सम्ब० विशे० वि०	ते̄करे।	

(२) (आजमगढ़)

	ए० व०	ब० व०
अवि०	से, ते,	से, ते।
	तवन्, तौ̄न	तवन्, तौ̄न लोग्।
वि०	ते, तवने	ऊपर ही जैसा।
सम्ब० विशे० अवि०	ते-कर्।	
सम्ब० विशे० वि०	ते̄करे।	

§ ४१४ नगपुरिया या सदानी

	ए० व०	ब० व०
अवि०	से	से-मन।
वि०	से	ऊपर ही जैसा।

सम्ब० विशे०—से-कर

उत्पत्ति

§ ४१५ प्राचीन भोजपुरी में इस सर्वनाम के निम्नलिखित रूप मिलते हैं—

	ए० व०	ब० व०
कर्त्ता	से, ते	तिनि, तिंह।
वि०	तेह, ते	ऊपर ही जैसा।

संगतिमूलक या वाचक सर्वनाम से मैथिली, मगही, बँगला तथा उड़िया में वर्तमान है। असमिया में यह खि, [उच्चारण खि] रूप में मिलता है। इस से की उत्पत्ति संस्कृत सकः से निम्नलिखित रूप में हुई है—

सकः > मा० प्रा० * शके > * शगे > शए > शै > शे। यह शे ही आधुनिक आर्य-भाषाओं में से में परिणत हो गया है।

आधुनिक ब्रजभाषा तथा नेपाली में यह सर्वनाम सो रूप में मिलता है। यह पुरानी कोसली में भी मिलता है। यथा—दामोदर पंडित : उक्तिव्यक्तिप्रकरणम्, पृ० ३८—

जो परकेंहं बुरुअ चिन्त, सो आपणुकेहं तैसें मा (मं) त = यः परस्य कृते विरुद्धं चिन्तयति, स आत्मनः कृते तादृशमेव मन्त्रयते।

टर्नर के अनुसार सो की उत्पत्ति सं० सो (= स उ) से हुई है। (दे० ने० डि० पृ० ६२२)। यह सो प्राचीन तथा मध्ययुग के बँगला के वैष्णव पदों में वर्तमान है। यह निश्चितरूप से शौरसेनी से उधार लिया गया रूप है। डु० दा० के रा० मा० में उपलब्ध रूप सोई गुरुतापूर्वक उच्चारण के कारण है और यह = स + एव के। कर्त्ता ए० व० के रूप तो की उत्पत्ति सकः के आदर्श पर नपुंसक रूप तत् + कः से प्रतीत होती है। आ० भोजपुरी में इसका रूप ते हो गया है। इसकी उत्पत्ति अप० * तेहं से भी सम्भव है। यथा—सं० तेषाम् > तेसं, तेस, तेहँ। प्राचीन असमिया में निरनुनासिक रूप ते हो तथा अनुनासिक रूप तें हों मिलता है जो वस्तुतः आधुनिक असमिया के तेँओं रूप का मूल है। आ० ने० में त्यो रूप वर्तमान है। कर्त्ता के बहुवचन का ते रूप प्राचीन तथा मध्ययुग की बँगला में मिलता है। यथा—

जे सचराचर तिअस भमन्ति,
ते अजरामर किम्पि न होन्ति।

डा० चटर्जी के अनुसार यह ते या तो संस्कृत रूप है या यह करण तेहि, तेही रूप से कर्त्ता बहुवचन रूप में प्रयुक्त हुआ है।

भोजपुरी के अवि० ए० व० रूप तवन् तथा तन (सम्बन्धवाचक सर्वनाम कवन् तथा कौन की भाँति) = ता = औन के। कवन् तथा कौन से इसकी तुलना की जा सकती है।

वि०, ए० व० रूप तवना, तौना वस्तुतः तवन् तथा तौन् के सबल रूप हैं। तेह (जो सम्बन्धवाचक सर्वनाम जेह का समानान्तर रूप है) = ते + ह के। तिन्नि, तिन्हि (बं० तिनि) की उत्पत्ति कर्त्ता ते + करण तेहि + सम्बन्ध तेणं (प्राकृत) से हुई है।

अवि० तथा वि०, ब० व० के रूप तिन्हन् तथा तिन्हनी = तिन्ह + सम्ब०, ब० व० प्रत्य- अन् < आनाम् के।

अवि० सम्बन्ध के रूप तेकर्, तेहँकर्, तिन्हिकर्, से-कर्, सेंह-कर् = ते + कर्, तेंह + कर्, तिन्हि + कर्, से + कर्, सेंह + कर् के; और इनके सबल रूप तें-करा, तेहँ-करा, तिन्हि-करा, सें-करा, तथा सेंहकरा हैं।

टि०—तवन् का प्रयोग विभिन्न क्रिया-पदों के साथ पुंलिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग, दोनों में होता है; किन्तु अविकारी रूप तवनि का प्रयोग केवल स्त्रीलिङ्ग में होता है। इसका विकारी स्त्री० लिं०, ए० व० रूप तवनि तथा ब० व० रूप तवनिन्नि है।

§ ४१६ सम्बन्ध तथा संगतिवाचक सर्वनाम के उदाहरण

अवि० ए० व० (१) जे, जवन्, जौन् जइसन् करो से, ते तवन्, तौन तइसन् पाई, जो (स्त्री या पुरुष) जैसा करेगा वैसा पायेगा। (२) जिन्हि जइस न करिहें तिन्हि

तइसन पइहें, जैसा जो (बड़ा-बूढ़ा पुरुष) करेगा अथवा (बड़ी-बूढ़ी स्त्री) करेगी वैसा वह पायेगा या पायेगी। (३) जवनि जइसन करी तवनि तइसन पाई, जैसी जो (स्त्री) करेगी, वैसी पायेगी।

अवि० ब० व०—(१) जे, जवन, जौन लोग् या सभ् आई, से वे तवन्, तौन लोग् या सभ् पिटाई, जो लोग आयेंगे, पीटे जायेंगे। (२) जिन्हि, जिन्हन् , जिन्हनी लोग् या सभ् अइहें तिन्हि, तिन्हन् , तिन्हनी लोग् या सभ् पिटइहें, जो लोग आयेंगे वे सभी पीटे जायेंगे। (३) जवनि अइहें स, सँ या सनि तवनि पिटइहें स सँ या सनि। जो [स्त्रियाँ] आयेंगी वे पीटी जायेंगी।

वि ए० व.—जे, जवना, जौना जेंकरा के बोलाव से, ते तवना, तौना, तेंकरा के खिआव, जिसे [बराबर के, अथवा छोटे-बड़े स्त्री-पुरुष को] बुलाओ उसे खिलाओ। (२) जेह, जिन्हि, जेंहकरा, जिन्हिकरा के बोलाव तेह, तिन्हि, तेंहकरा, तिन्हिकरा के खिआव, जिस [बड़े बूढ़े पुरुष अथवा बड़ी बूढ़ी स्त्री] को बुलाओ उसे खिलाओ। (३) जवनी के बोलाव तवनी के खिआव, जिस [स्त्री] को बुलाओ, उसे खिलाओ।

वि०, ब० व० (१) जे जवना, जौना लोग या सभ के बोलाव से, ते तवना, तौना लोग् या सभ् के खिलाव, जिन लोगों को बुलाओ उन सबको खिलाओ। (२) जेह्, जिन्हन् , जिन्हनी लोग् या सभ् के बोलाव सेह, से, ते, तिन्हन्, तिन्हनी लोग् या सभ के खिलाव, जिन लोगों को बुलाओ उन सबको खिलाओ। (३) जवनिनि के बोलाव तवनिनि के खिलाव, जिन [स्त्रियों] को बुलाओ, उन्हें खिलाओ।

[छ] प्रश्नवाचक सर्वनाम

§ ४१७ इस सर्वनाम के सजीव तथा निर्जीव दो प्रकार के रूप होते हैं। नीचे आदर्श भो० पु० के सजीव के रूप दिए जाते हैं—

	ए० व०	ब० व०
अवि०	के, केंवन्, कौन् कवन्	के, केंवन, कौन, कवन लोग्, लोगन् लोंगनी।
वि०	के केंह, किन्हि, केंवना, कौना, कवना	ऊपर ही जैसा तथा केह्, किन्हन् , किन्हनी लोग या लोंगनी।

सम्ब० विशे० अवि०—केकर्, केंहकर्, किन्हिकर।

सम्ब० विशे० वि०—केंकरा, केंहकरा, किन्हिकरा।

टि०—अविकारी ए० व० तथा ब० व० के रूप केवनि, तथा कवनि एवं सम्बन्ध के केकरि तथा किन्हिकरि रूप केवक स्त्रीलिङ्ग में व्यवहृत होते हैं।

निर्जीव

	ए० व०	ब० व०
अवि०	का	×
वि०	के के`ह्,	
	काहे केथी	×
सम्ब०	काहे के, केथी के	

टि० करण का रूप के`थिएँ केवल प्राचीन भो० पु० के लोकगीतों में मिलता है।

सजीव उदाहरण—

अवि०, ए० व० उदाहरण—(१) के केवन्, कौन्, कवन् आवता, कौन [पुरुष] आ रहा है? (२) के`वनि, कवनि आवतिआ, कौन [स्त्री] आ रही है?

अवि०, ब० व० उदाहरण—के, के`वन्, कौन, कवन् लोग्, लोगन् या लोगनी आवता, कौन [पुरुष] आ रहे हैं? (२) के`वनि या कवनि आवतारी स, सँ या सनि, कौन [स्त्रियाँ] आ रही हैं?

वि०, ए० व० उदाहरण—तुँ, के, केह, किन्हि के या कें मरल, तुमने किसे मारा?
(२) तुँ के`वना, कौना, कवना के या कें मरल, तुमने किसे [नीच जाति के व्यक्ति या नौकर आदि को] मारा?

वि०, ब०व० उदाहरण—तुँ के, के`वन्, कौन्, कवन्, केह् किन्हन्, किन्हनी लोग्, लोगन् या लो`गनी के मरल, तुमने किन लोगों को मारा। (२) तुँ किन्हन्, किन्हनी, के या कें मरल, तुमने किन [नीच जाति के व्यक्तियों या नौकरों आदि] को मारा?

टि० के के`वन्, कौन् तथा कवन् विशेषणरूप में भी व्यवहृत होते हैं। यथा—के, केवन्, कौन या कवन् अदिमी, कौन मनुष्य? के, के`वन्, कौन् या कवन् मे`हरारू, कौन स्त्री? किन्तु कभी-कभी के`वनि, कौनि, कवनि मे`हरारू भी होता है।

निर्जीव

अवि०, ए० व०, उदाहरण—ई का हवे? यह कौन (वस्तु) है?

वि०, ए० व०, उदाहरण—के, के`ह्, काहे, केथी से मरले हा, तुमने किससे (किस हथियार) से मारा?

भो० पु० की अन्य बोलियों के रूप नीचे दिये जाते हैं—

§४१८ उत्तरी आदर्श भोजपुरी

(गोरखपुर)

सजीव

	ए० व०	ब० व०
अवि०	के, कवन्, कौन्	के, कवन् लोग्, या लोगन्
वि०	के, कवने, कौन	के, कवने, कौने लोग् या लोगन्।

सम्ब०, विशे०, अवि०—केकर।
सम्ब०, विशे०, वि०—के॑करे।

निर्जीव

	ए० व०	ब० व०
अवि०	का	×
वि०	के, के॑इ, केथी, के॑थुया	×

§४१६ पश्चिमी भोजपुरी

(क) (बनारस तथा मिर्जापुर)

सजीव

	ए० व०	ब० व०
अवि०	के, कवन्	के, कवन् लोग्।
वि०	के, कवने	कवनन्, कवन् लोग्।

सम्ब०, विशे० अवि०—केकर्।
सम्ब०, विशे०, वि०—के॑करे।

निर्जीव

	ए० व०	ब० व०
अवि०	का	×
वि०	के, के॑ थुआ	×

(ख) (आजमगढ़)

सजीव

	ए० व०	ब० व०
अवि०	के, कवन्	के, कवन् लोग।
वि०	के, कवने	कवनन्, कवने लोग।

सम्ब०, विशे०, अवि—केकर।
सम्ब०, विशे०, वि०—के॑करे।

निर्जीव

	ए० व०	ब० व०
अवि०	का	×
वि०	के, के॑ थुआ, कथुआ।	×

§४२० नगपुरिया या सदानी

सजीव

	ए० व०	ब० व०
अवि०	के	के-मन।
वि०	के	ऊपर ही जैसा।

सम्ब०, विशे०—के कर

निर्जीव

	ए० व०	ब० व०
अवि०	का	का-मन् ।
वि०	का	ऊपर ही जैसा ।
सम्ब०	का-कर	

उत्पत्ति

कर्त्ता का रूप के म० तथा मै० में भी मिलता है। यह बँगला, असमिया तथा उड़िया में भी वर्तमान है। इसकी उत्पत्ति ककः से निम्नलिखित रूप में हुई है—

* ककः > कके > कगे > कए > कै > के।

भोजपुरी केवन्, कौन्, (म० कौन) तथा कवन् मूलतः अनिश्चयवाचक सर्वनाम थे और इनके जोरदार रूप केवनो, कौनो तथा कवनो में अनिश्चितता का यह भाव आज भी वर्तमान है। कौण, कोण, कौन, कोन तथा इनके समानान्तर जौन, तौन रूपों में यह सर्वनाम अन्य आ० भा० आ० भाषाओं में भी वर्तमान है। पश्चिमी अपभ्रंश में इसके कवणु तथा कवण रूप मिलते हैं। डा० चटर्जी तथा अन्य विद्वान्—वण < वुण <-उन रूपों की व्युत्पत्ति पुनः से निम्नलिखित रूप में करते हैं—

(१) कः पुनः 7 * कपुण 7 कवुण 7 कउण 7 कवण; भोजपुरी के कौन तथा कवन रूप क्रमशः कउण (कौण) तथा कवण के ही प्रतिरूप हैं। (२) कः पुनः 7 * के पुणे 7 * केपुण 7 केवुण। भोजपुरी केवन की उत्पत्ति इस केवुण से ही हुई है।

भोजपुरी के वि० रूप केवना, कौना तथा कवना = केवन + आ, कौन + आ तथा कवन + आ के। वि० रूप किन्हि की उत्पत्ति केषाम्: काणं से हुई है। यह काणं बाद में काण में परिवर्तित हो गया, किन्तु पालि किस्स ∠ कस्य तथा किण के प्रभाव से यह किण बना और समय की प्रगति से यही भोजपुरी का किन् हुआ। इस किन् में करण की विभक्ति –ह, –हि जोड़ने से किन्ह, किन्हि रूप सम्पन्न हुए। [इस सम्बन्ध में बँगला का आदरसूचक, प्रश्नवाचक सर्वनाम किनि द्रष्टव्य है]। वि०, ब० व० के रूप किन्हन् तथा किन्हनी वस्तुतः हमन् तथा हमनी के आदर्श पर बने हुए हैं। भोजपुरी केह् की उत्पत्ति सं० कस्य से निम्नलिखित रूप में हुई है—सं० कस्य ∠ कस्स 7 काह; किन्तु यह 'का' का 'आ' वास्तव में 'के' के 'ए' के कारण 'ए' में परिवर्तित हो गया तथा इस प्रकार केह् रूप सिद्ध हुआ।

भोजपुरी के निर्जीव कर्त्ता का रूप का, मूलतः काह् का संक्षिप्त रूप है और वि० रूप काहे की उत्पत्ति अधिकरण के काहहि से हुई है। विकारी रूप केथी = केथ् + ई। केथ् की उत्पत्ति प्रा० कोत्थ, कुत्थ ∠ सं० कुत्र से हुई है। कोत्थ तथा कुत्थ के 'ओ' तथा 'उ' सम्भवतः कर्त्ता के रूप 'के' के 'ए' के प्रभाव से 'ए' में परिणत हो गये हैं।

अवि०, सम्ब० के रूप के-कर, केँह् कर्, किन्हि-कर् = के + कर्, किन्हि + कर् तथा केँह् + कर्। इनके वि० रूप केँकरा, केँहकरा, किन्हिकरा, क्रमशः सबल रूप हैं।

उत्तरी तथा पश्चिमी भोजपुरी में कवना के बदले कवने विकारी रूप मिलता है। कवने का 'ए' कर्ता के अवि० तथा वि० रूप के के 'ए' से प्रभावित प्रतीत होता है। उत्तरी तथा पश्चिमी भोजपुरी के निर्जीव रूप केथुआ, कथुआ तथा किथुआ वस्तुतः स्थानीय बोलियों में उपलब्ध विभिन्न रूप हैं।

अनिश्चयवाचक सर्वनाम

§ ४२१ इस सर्वनाम के निम्नलिखित रूप आदर्श भो० पु० में मिलते हैं। ये रूप भो० पु० की अन्य बोलियों में भी वर्तमान हैं।

सजीव

	ए० व०	ब० व०
अवि०	केऊ, केँऊ, केँहु केहू, कौनो, कवनो	केहु, केहू, कौनो, कवनो लोग।
वि०	ऊपर ही जैसा।	ऊपर ही जैसा।

ऊपर के रूपों के अतिरिक्त प० भो० में केँओ तथा नगपुरिया या सदानी के कर्ता में कोँई रूप मिलते हैं। कोँई का ब० व० सदानी में कोई-मन् मिलता है।

निर्जीव

	ए० व०	ब० व०
अवि०	किछु, कुछु, किछुओ, कुछुओ	×
वि०	ऊपर ही जैसा	×

सजीव—

अवि० ए० व० उदाहरण: (१) केऊ, केँउ, केँहु, केहू, ई बात् कहल, किसी ने यह बात कही; (२) कौनो, कवनो ई बात् कहलीस, किसी [निम्नश्रेणी के व्यक्ति, यथा नौकर, स्त्री आदि] ने यह बात कही।

अ० वि०, ब० व० उदाहरण—(१) केहु, केहू, कौनो, कवनो लोग ई बात कहल्, कुछ लोगों ने यह बात कही।

(२) कौनो, कवनो ई बात कहँले स, सँ या सनि, कुछ लोगों (निम्नश्रेणी के नौकरों आदि) ने यह बात कही।

वि० ए० व० उदाहरण—केऊ, केँउ, केँहु, केहू से मति कहऽ, किसी से मत कहो। (२) कौनो, कवनो से मति कहऽ, किसी [निम्नश्रेणी के व्यक्ति या स्त्री] से मत कहो।

वि० ब०व० उदाहरण- केँहु, केहू, कौनो, कवनो लोग से मति कहऽ, किन्हीं लोगों (पुरुष, स्त्री, नौकरों आदि) से मत कहो।

निर्जीव

अवि०, ए० व० उदाहरण— किछु, कुछु, किछुओ, कुछुओ दऽ, कुछ दो।

वि०, ए० व० उदाहरण—किछु, कुछु, किछुओ, कुछुओ से काम् ना चली, कुछ से काम नहीं चलेगा।

टि०—अनिश्चयवाचक सर्वनाम, विशेषण की भाँति भी व्यवहृत होता है। यथा—एगो लेखरि कौनो या कवनो फुलवारी में गइलि, एक लोमड़ी किसी पुष्पवाटिका (बगिया) में गई।

उत्पत्ति—

अवि० तथा वि०, ए० व० (सजीव) अनिश्चयवाचक सर्वनाम के रूप भोजपुरी में केऊ, केँऊ, केँहु, केहू, कौनो तथा कवनो हैं। कौनो तथा कवनो की उत्पत्ति पहले दी जा चुकी है। अन्य रूपों की उत्पत्ति संस्कृत के कः + अपि से निम्नलिखित रूप में हुई है—

सं० कः‌अपि > म० *के' पि > *के' वि > *के' व > *केव > केओ, केँउ, केऊ, तथा केँहु, केहू। अन्तिम दो रूप वस्तुतः हु अव्यय के जोड़ने से बने हैं। मै० में केँओ, मग० में केऊ, ब० में केहो, केह, केउ, अस० में केओ, कोँओ, कोँओँ, उ० में केइ (= *केवि), अव० कोई, काहु, कोँउ, प० हि० में कोई (<को' वि, को' पि) रूप मिलते हैं।

अनिश्चयवाचक सर्वनाम [निर्जीव] किछु अन्य मागधी तथा अमागधी बोलियों में वर्तमान है। यह मै०, बं०, अस०, तथा अव० में किछु तथा उ० में किछि रूप में वर्तमान है। यह संस्कृत का कि-चिद् है तथा यह अशोक के मध्य तथा पूर्वी शिलालेखों में किछि तथा पश्चिमी शिलालेखों में किछि रूप में मिलता है। किछु में 'उ' वस्तुतः अव्यय (Particle) है। उड़िया किछि = *किछि < किंचि + हि। यहाँ 'हि' का व्यवहार वस्तुतः जोर देने के लिए हुआ है। भोजपुरी 'कुछु' के 'कु' का 'उ' कदाचित् पश्चिमी हिन्दी के कुछ् से प्रभावित है। किछुओ तथा कुछुओ में 'ओ' का व्यवहार वास्तव में जोर देने के लिए किया गया है।

[ज] अनिश्चयवाचक सर्वनाम

सब्, सभ्

§ ४२२ सब् का व्यवहार अनिश्चयवाचक सर्वनाम के रूप में बहुवचन में होता है। यह सभ् लिखा जाता है। सब् कोसली (अवधी) में भी मिलता है। इसका अर्थ है 'सभी', 'प्रत्येक' तथा यह इसी रूप में स्त्रीलिङ्ग एवं पुलिङ्ग, दोनों में व्यवहृत होता है। यथा—

सब्, सभ् आइल, सभी आये; सब् या सभ् के या केँ बोलाव, सभी को बुलाओ; सब् या सभ् मरदन् से कह, सभी पुरुषों से कहो; सब् या सभ् मेंहरारून् से कह, सभी स्त्रियों से कहो।

जोर देने के लिए विकारी बहुवचन रूप में सभे अथवा सभन् का प्रयोग होता है। यथा—सब् या सभ् के, (एक साथ) सभी लोगों को; किन्तु सभे या सभन् के (अलग-अलग) सभी लोगों को।

उत्पत्ति

सब्, सभ् सर्वनामों का सम्बन्ध संस्कृत सर्वः, प्रा० सव्वो, अ० शि० सर्व-, सव्र, सव- तथा प्रा० सव्व- से है। बं० में सब्, उ० में सबु तथा हि० में इसके सब् रूप उपलब्ध

हैं। प्राणयुक्त सभ्, सभा तथा सभु रूप क्रमशः भोजपुरी, लैं० तथा सि० में मिलते हैं। डा० चटर्जी के अनुसार प्राण का कारण 'सभा' का 'भ्' है। बात यह है कि सर्वं, सब्ब तथा सब के साथ-साथ बहुवचन वाची शब्द के रूप में सभा का भी व्यवहार प्रचलित था।

[दे० गीतगोविन्द—युवतिसभा : (वें० लैं० ४६०)।

[झ] निजवाचक अथवा आत्मवाचक सर्वनाम

§ ४२३ अपना, अपने

यह सर्वनाम जोर देने के लिए व्यवहृत होता है तथा निजत्व का भाव प्रकट करता है। बिना किसी रूप-परिवर्तन के ये सभी पुरुषवाचक सर्वनामों के साथ प्रयुक्त होता है। यथा—उ अपना के या कें बुरा भला कहले, उसने अपने को बुरा-भला कहा ; उ अपने गइले, वह अपने-आप गया ; तु अपने कहल, तूने अपने-आप कहा।

कभी-कभी अपना 'मैं तथा तुम' का संयुक्त भाव प्रकट करता है। यथा—अपना से का मतलब, अपने [मुझे तथा तुझे] से क्या मतलब ?

अपना तथा आपन् का दोनों लिङ्गों में विशेषण के रूप में प्रयोग होता है। इनमें आपन् का प्रयोग अविकारी तथा अपना का विकारी रूप में होता है। यथा—

अवि—आपन् लड़का या आपन् लड़की, किन्तु कभी-कभी आपनि लड़की का भी व्यवहार होता है।

वि०—अपना लड़का या लड़की से।

उत्पत्ति

§ ४२४ सं० आत्मन् के प्रा० में दो रूप अत्त- तथा अप्प- मिलते हैं। ये दोनों असमिया में आवा, पिता एवं आप्, पितामह रूप में वर्तमान हैं। भो० पु० में प- रूप ही मिलता है। चर्यापदों में, कर्ता में, अपा, करण में अपणे एवं कर्म तथा सम्बन्ध में अपणा रूप मिलते हैं। (वैं० लैं० ५६१)

भो० पु० का विशेषणीय रूप आपन्, अस० का आपोन् वस्तुतः प्रा० अप्पणअअ ∠ सं० आत्मानक से सम्बन्ध रखते हैं।

भो० पु० के निजवाचक सर्वनाम अपना, अपने प्रा० तथा म० बं० के आपने, आपुणि, आ० बं० आपूनि, अस० आपुनि की व्युत्पत्ति आत्मानः = अप्पण- है। डा० चटर्जी के अनुसार बँगला तथा असमिया के 'ए' के स्थान पर 'इ' का परिवर्तन तिनि एवं जिनि का औपम्य है। (वैं० लैं० ५६३)

§ ४२५ तत्सम शब्द निज, करण, निजे या निजें भी निजवाची सर्वनाम के रूप में आधुनिक भो० पु० तथा असमिया में व्यवहृत होता है। यथा—उ निजे या निजें गइले, वह स्वयं गया।

[ञ] आदरसूचक सर्वनाम

§ ४२६ आ० भो० पु० में अपना, अपने तथा आप् कभी-कभी आदरसूचक सर्वनाम के रूप में व्यवहृत होता है। यथा—हम, अपना, अपने या आप से या सें

कहलीं, मैंने आप श्रीमान् से कहा। यह 'आप' पश्चिमी हिन्दी से उधार लिया हुआ प्रतीत होता है तथा यह मध्यमपुरुष का सर्वनाम है। अन्य पुरुष, आदरसूचक सर्वनाम के रूप में 'आप' का प्रयोग धीरे-धीरे कम होता जा रहा है। यथा—[आप] को ऐसी बातें नहीं करनी चाहिए। (मध्यम पुरुष)

पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर इस देश के एक रत्न थे। [आप] का जन्म एक प्रतिष्ठित बंगाली ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। (अन्य पुरुष)

पुरानी हिन्दी तथा ब्रजभाषा में भी आप का प्रयोग मिलता है। यद्यपि ब्रजभाषा में आप के स्थान में आदर-रहित सर्वनाम तव, तोरो, तुम आदि का प्रयोग प्रायः मिलता है। यथा—तुम गोपाल मोसों ब-हुत करी [सूरपञ्चरत्न पृ० २३]

नीचे के पद में सूरदासजी ने आप (आदरसूचक) सर्वनाम का भी प्रयोग किया है। यथा—

माधवजू यह मेरी इक गाई।

अब आजु तें (आप) आगे दै लै आइये चराई। (सूरपंचरत्न, पृ० ३६)

आदरसूचक आप का प्रयोग पश्चिमी भो० पु० तथा आ० को० में मिलता है, किन्तु पंजाबी तथा मेरठ एवं बिजनौर की खड़ी बोली में इसका अभाव है।

§ ४२७ भो० पु० में आदरसूचक सर्वनाम के रूप में रउरा, रउराँ तथा रउआ का व्यवहार होता है। ये तीनों विकारी तथा अविकारी, दोनों, रूपों में प्रयुक्त होते हैं। सम्बन्ध का रूप राउर है। मैथिली में आदरसूचक सर्वनाम के रूप में औंह, अहाँ, आइस तथा अइस का प्रयोग होता है एवं राजस्थान की मेवाड़ी एवं मारवाड़ी बोलियों में रावरो का प्रयोग पति के अर्थ में होता है। वस्तुतः यह संस्कृत के आर्य अथवा आर्यपुत्र का तुल्यार्थक है।

भो० पु० का राउर सर्वनाम इतना प्रसिद्ध है कि ब्रजभाषा के कवियों—सूरदास [१४८३ से १५६३ ई०] से जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' [१८६६ से १९३२] तक—ने स्वतंत्रतापूर्वक इसका प्रयोग किया है। यथा—

मधुप [रावरी] पहिचान। (रामचन्द्रशुक्ल : भ्रमरगीतसार, द्वि० संस्क०, पृ० ५६, पद १५४) तथा—

फैले बरसाने में न [रावरी] कहानी यह।

(रत्नाकर : उद्धवशतक, पृ० ८४)।

§ ४२८ भो० पु० राउर की उत्पत्ति प्रा० लाउल से हुई है; ['लाउल' : प्रबोध-चन्द्रोदय नाटक में प्रयुक्त हुआ है]। संस्कृत में इसका रूप राजकुल या राजकुल्य होगा। (दे० हार्नले : गौ० ग्रा० §४४७)। पश्चिम में यही रावल हो गया है। रउआँ या रउवाँ वस्तुतः राउ के विस्तृत रूप हैं। मूल शब्द राज है।

मैथिली के आइस, अइस का मूल अति-श प्रतीत होता है तथा अहँ, अहाँ, अहैं आदि की उत्पत्ति सं० आयुष्मान्>प्रा० आयस्मा अप० * आअम्हह* आम्ह, से प्रतीत होती है।

भो० पु० में उदाहरण—

अवि० रउरा, रउरों, रउवों या रउओं कहाँ गइल रहलीं हाँ, आप कहाँ गये थे ?

वि० रउरा, रउरों, रउवों या रउओं से हम कहलीं, आपसे मैंने कहा।

सम्ब०—राउर लइका ई काम कइलसि, आपके लड़के ने यह काम किया।

[त] मिश्र या यौगिक सर्वनाम

§ ४२६ कभी-कभी दो सर्वनामों के संयोग से मिश्र या यौगिक सर्वनाम सम्पन्न होता है। इस प्रकार भो० पु० में सम्बन्धवाचक सर्वनाम का केहू तथा सभ् से एवं सभ् का केहू से संयोग होता है। यथा—सभ् केहू, सभी कोई; जे-केहू, जो कोई; जे सभ् आइल, जो लोग आये; सभ्-केहू के या कें बोलाव, सभी लोगों को बुलाओ। पुरुषवाचक सर्वनाम के साथ भी सभ् का संयोग होता है। यथा—हम्-सभ्, हम लोग; रउरों या रउओं सभ्, आप [आदरणीय] लोग; ऊ-सभ्, वे लोग।

[थ] सर्वनाम-जात विशेषण तथा क्रियाविशेषण

(–) सर्वनाम-जात विशेषण

§४३० उल्लेख या संकेत वाचक ई, ऊ; सम्बन्ध वाचक—जे, जौन्, जवन्; संगतिमूलक—से, ते, तौन्, तवन् तथा प्रश्नवाचक के सर्वनामों का प्रयोग भो० पु० में विशेषणरूप में होता है। इन सर्वनाम-जात विशेषणों में जोर देने के लिए—हे,—हो,—हू, —ए तथा—ओ को जोड़ दिया जाता है। यथा—ईहे, इहो; ऊहे, ऊहो; जेहे, जेहो; सेहे, सेहो; तेहे, तेहो; जौने, जवने; जौनो, जवनो; तौने, तवने; तौनो, तवनो।

(=) रीतिवाचक या गुणवाचक सर्वनाम जात विशेषण

§४३१ अइसन्, एइसन, 'इस प्रकार'; ओंइसन, 'उस प्रकार'; जइसन्, जैसा; तइसन्, तैसा; कइसन्, कैसा, आदि रीतिवाचक विशेषण भो० पु० में मिलते हैं।

उत्पत्ति

§४३२ स-रूप ('स' वाले रूप), मगही, पू० हि, प० हि० तथा अन्य आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं में मिलते हैं। प्राचीन उड़िया में जेसन तथा प्राचीन बँगला में अइसन रूप मिलते हैं। इन स-रूपों की उत्पत्ति डा० चटर्जी के अनुसार संस्कृत के सर्वनाम-जात विशेषण—दृश से हुई है। यह-दृश प्रत्यय प्राकृत में,-दिस,-दिश तथा बाद में इस,-इश- में परिवर्तित हो गया। इसमें स्वार्थे विशेषणीय -न प्रत्यय जोड़कर इसे संस्कृत या प्राकृत में और विस्तृत बनाया गया। तब ऐसण, यैसण, जैसण आदि शब्द सिद्ध हुए। (दे०, वै० लैं० ६००)

भोजपुरी के अइसन्, एइसन् आदि की उत्पत्ति निम्नलिखित रूप में हुई है—

अइसन्, एइसन् : एतादृश>*एतादृशन>*एअइसण>एइसन, अइसन;

ओंइसन् : ओतादृश>*ओतादृशन>*ओंएसण>ओंइसन्;

जइसन् : याद्दश > *याद्दशन > *यैसण (जैसण) ∠ जइसन् ;

तइसन् : ताद्दश 7 *ताद्दशन 7 *तैसण 7 तइसन् ;

कइसन् : कीद्दश 7 *कीद्दशन 7 *कैसण 7 कइसन् ।

§४३३ ऊपर के सर्वनामजात विशेषणों के सबल विकारी रूप -आ जोड़ने से सिद्ध होते हैं। यथा—

अइसना, एइसना, ओ॑इसना, जइसना, तइसना, कइसना आदि ।

अवि० उदाहरण—अइसन्, एइसन् अ॑दिमी, ऐसे आदमी ; ओ॑इसन् अ॑दिमी, वैसा आदमी ; जइसन् अ॑दिमी, जैसा आदमी ; तइसन् अ॑दिमी, तैसा आदमी ।

वि०, उदाहरण—अइसना, एइसना, दिन् मे या में, ऐसे दिन में; ओ॑इसना दिन् मे या में, वैसे दिन में ।

§४३४ ऊपर के विशेषणों में कभी-कभी लिङ्ग में भी परिवर्तन होता है—

अइसन् या एइसन् मे॑हरारू, किन्तु अइसनि या एइसनि मे॑हरारू, ऐसी स्त्री। इसी प्रकार ओ॑इसनि, जइसनि, तइसनि, कइसनि, आदि ।

(ङ) सर्वनामजात परिमाण तथा संख्यावाचक विशेषण

§४३५ इन विशेषणों को निम्नलिखित समूहों में विभक्त किया जा सकता है—

[क] अतेक, एतेक, इतेक, हे॑तेक, ओ॑तेक, हो॑तेक, जतेक, जे॑तेक, ततेक, ते॑तेक, कतेक, के॑तेक ।

[ख] अतहत्, एतहत्, इतहत्, हे॑तहत्, ओ॑तहत्, हो॑तहत्, जतहत्, जे॑तहत्, ततहत्, ते॑तहत्, कतहत्, के॑तहत् ।

[ग] अतना, एतना, इतना, हे॑तना, ओ॑तना, हो॑तना, जतना, जे॑तना, ततना, ते॑तना, कतना, के॑तना ।

§ ४३६ इसके रूप मैथिली में—अते॑क, ओ॑तेक, कते॑क्, जते॑क, तते॑क ; असमिया में एतेक्, के॑ते॑क्, जे॑ते॑क्, तथा ते॑ते॑क ; बँगला में एते, केते, जे॑ते॑, ते॑ते॑, तथा से॑ते॑ एवं उड़िया में एेते, केते, जेते, तेते तथा सेते मिलते हैं ।

उत्पत्ति

अतेक्, एते॑क्, ओ॑तेक्, जतेक्, जे॑तेक्, ततेक्, ते॑तेक, कतेक्, के॑तेक = अत्+एक्, तत्+एक्, ओ॑त्+एक्, जत्+एक्, जे॑त्+एक्, तत् +एक्, ते॑त्+एक्, कत्+एक्, के॑त्+एक् । भोजपुरी, मै० तथा अस० का- अक् प्रत्यय वस्तुतः स्वार्थे है। इतेक (इ+अत्+एक्), हे॑तेक् (ह्+एत्+एक्), तथा हो॑तेक (ह्+ओ॑त्+एक्) में वास्तव में 'ह्' का आदि में आगमन हुआ है ।

§ ४३७ अत्, एत्, तत्, ते॑त् आदि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में डा० चटर्जी ने पूर्ण रीति से विचार किया है। (दे० वैं० लैं० ६०१) इनका सम्बन्ध पालि, एत्त-क, कित्त-क, प्रा० एत्तिअ, केत्तिअ, तेत्तिअ आदि से है। पिशल [§ १५३] के अनुसार इनका सम्बन्ध वैदिक * अयत्तय, 7 * अयत्तिय, *कयत्तय 7 *कयत्तिय से है तथा इनका मूल सर्वनाम का प्रत्यय— यन्त् (—यत्) + विशे०—त्य 7 —तिय है।

इस प्रकार * अत्तक 7 * अत्त अ्अ 7 * अत्त् 7 * अत्; एत्तक 7 * एत्त अ्अ 7 * एत्त 7 एत्। इसी भाँति ओ॑तेक, जतेक्, जे॑तेक, ततेक्, ते॑तेक्, कतेक् तथा के॑तेक् की भी व्युत्पत्ति दी जा सकती है।

§ ४३८-हत्-रूप [अतहत्, एतहत्, ओ॑तहत, आदि] की उत्पत्ति सर्वनाम के आधारभूत रूप, सन्ध्यक्षर ह् तथा प्रत्यय—वन्त् (7 *—वत्त, 7 *-अत्त 7—अत) से हुई है। इस प्रकार अतहत् = अत् + (-ह्-) + वन्त 7 अत्। इसी प्रकार एतहत् = एत् + ह् + वन्त् 7 अत्, ओ॑तहत = ओत् + ह् वन्त् 7 अत्, जतहत् = जत् + ह् + वन्त् 7 अत आदि। इतहत्, हे॑तहत्, होतहत्, आदि में 'ह' का आगमन आदि में हुआ है।

§ ४३९ ना-रूप [अतना, एतना, ओ॑तना, जतना, जे॑तना] की उत्पत्ति सर्वनाम के आधारभूत रूप अत, एत, ओ॑त, जत, जे॑त + ना से हुई है।

§ ४४० ऊपर के विशेषणों के अतिरिक्त भोजपुरी में मतन, मतिन्, 'समान,' 'सदृश' का भी प्रयोग होता है। डा० चटर्जी के अनुसार इनकी उत्पत्ति-मत तथा मन के सम्मिश्रण से हुई है। (दे० बैं० लैं० § ५९९) यह प्रत्यय प्राचीन बँगला तथा असमिया में मिलता है। आधुनिक बँगला की भाँति भो० पु० में यह एक पृथक् शब्द समझा जाता है। जैसे कि बँगला में आमार मत (न्), मेरे जैसा, तोमार मत (न्), तुम्हारे जैसा, होता है, वैसे ही भो० पु० में भी हमरा मत (न), मति (न), मेरे जैसा, तोहरा मत (न), मति (न), 'तुम्हारे जैसा', होता है।

(१) सर्वनामजात रीतिवाचक क्रिया-विशेषण

§४४१ इसके निम्नलिखित रूप भो० पु० में उपलब्ध हैं—अइसें, एइसें, इस प्रकार; ओ॑इसें, उस प्रकार; जइसें, जे॑इसें, जैसे या जिस प्रकार; तइसें, ते॑इसें, तिस प्रकार, कइसें, के॑इसें, किस प्रकार।

§४४२ ऊपर के रूपों की उत्पत्ति सर्वनाम के आधारभूत रूपों अइस्, एइस, ओ॑इस् जइस्, जे॑इस् तइस्, ते॑इस्, कइस्, के॑इस् + अधिकरण के प्रत्यय हि से प्रतीत होती है।

(२) सर्वनामजात कालवाचक क्रिया विशेषण

§ ४४३ इसके निम्नलिखित रूप भो० पु० में मिलते हैं—एह्-बेरां, हे-बेरां, एह्-जुन् हे-जुन्, अभी; ओ॑ह्-बेरां, हे-बेरां, ओ॑ह्-जुन्, हो जुन्, उस समय; त्व, जे॑ह्-बेरां, जे॑ह्-जुन्, कब, ते॑ह्-बेरां, ते॑ह्-जुन् तब; के॑ह्-बेरां, के॑ह् जुन् कब।

§४४४ भो० पु० बेरां की उत्पत्ति सं० वेला से हुई है। जुन् अर्थ का भो० पु० में 'समय' या 'काल' है। इसकी तुलना नेपाली 'जुन्', चन्द्रमा < सं० ज्योत्स्ना, पा० जुण्हा, प्रा० जोण्हा से की जा सकती है।

(३) सर्वनाम जात स्थानवाचक विशेषण

§४४५ इन्हें निम्नलिखित समूहों में विभक्त किया जा सकता है—

[क] इँह्वा, हिह्वाँ, यहाँ; उँह्वाँ, हुह्वाँ, वहाँ; जँह्वाँ, जहाँ; तँह्वाँ, तहाँ; कँह्वाँ, कहाँ।

[ख] इँहाँ, हिहाँ, यहाँ; उँहाँ, हुँहाँ, वहाँ; जहाँ; तहाँ; कहाँ।

[ग] एहिजाँ, यहाँ; ओ˜हिजाँ, या जा, ओ˜इजाँ या जा, हो˜हिजाँ या जा, हो˜इजाँ या जा, वहाँ, जे˜हिजाँ या जा, जे˜इजाँ या जा, जहाँ, ते˜हिजाँ या जा, तेइजाँ या जा, वहाँ; के˜हिजाँ या जा, के˜इजाँ या जा, कहाँ?

[घ] एठन्, एठेन्, एठिन्, ठें यहाँ; ओ˜ठन्, ओ˜ठेन्, ओ˜ठिन्, ओ˜ठें˜, वहाँ; जे˜ठन्, जे˜ठेन, जे˜ठिन, जे˜ठें, जहाँ; ते˜ठन्, ते˜ठे˜न्, ते˜ठिन्, ते˜ठें˜ वहाँ; के˜ठन्, के˜ठे˜न्, के˜ठिन्, के˜ठें˜, कहाँ।

टि० अन्तिम समूह [घ] के रूप गोरखपुर की उत्तरी भोजपुरी तथा बनारस, मिर्जापुर, गाजीपुर एवं आजमगढ़ की पश्चिमी भोजपुरी में व्यवहृत होते हैं। शेष रूप आदर्श भोजपुरी के हैं।

उत्पत्ति

इँह्वाँ, हिह्वाँ, उँह्वाँ, हुँह्वाँ, जँह्वाँ, तँह्वाँ, तथा कँह्वाँ = इँह + वाँ, ह् + इँह + वाँ, उँह + वाँ, ह् + उँह + वाँ, जँह + वाँ, तँह + वाँ कँह + वाँ।

वाँ की उत्पत्ति विशेषणीय प्रत्यय—म से हुई है तथा यह सबल रूप में है। ये शब्द क्रियाविशेषणरूप में प्रयुक्त हुए हैं। यह भी विचारणीय बात है कि कहीं इनपर हिन्दी ज्यउँ, त्यउँ; ज्यो, त्यों; ज्युँ, त्युँ का तो प्रभाव नहीं पड़ा है? बात यह है कि हिन्दी के इन शब्दों के मूल पश्चिमी अपभ्रंश में उपलब्ध जेंव, तेंव = जेवँ, तेवँ शब्द हैं। चर्यापदों में जिम, तिम तथा पू० हि० में जिमि, तिमि शब्द मिलते हैं।

§ ४४६ इँहाँ, हिहाँ, उँहाँ, हुँहाँ, जहाँ, तहाँ, कहाँ रूप वस्तुतः इँह्वाँ, हिंह्वाँ, उँह्वाँ, हुँह्वाँ, जँह्वाँ, तँह्वाँ, तथा कँह्वाँ के संक्षिप्त रूप हैं।

§ ४४७ जाँ या जा [एहिजाँ या जा, ओ˜हिजाँ या जा, ओ˜इजाँ, जा] की उत्पत्ति फा० जा, 'स्थान' या 'जगह' से हुई है।

§ ४४८- ठन्, -ठे˜न्, -ठन् तथा ठें [एठन्, एठेन्, एठिन्, एठें आदि] की उत्पत्ति√स्था- + अधिकरण का प्रत्यय -हि, या -अहिं है। इन रूपों की तुलना चलित बँगला के सेठि, एठि, जेठि, तथा उड़िया के -ठि -रूपों से किया जा सकता है।

(।≡) सर्वनामजात दिशावाचक क्रियाविशेषण

§४४९ इस सर्वनाम को निम्नलिखित समूहों में विभक्त किया जा सकता है—

[क] एने˜, हे˜ने, इस ओर; ओ˜ने˜, हो˜ने˜, उस ओर; जे˜ने˜, जिस ओर; ते˜ने˜, तिस ओर; के˜ने, किस ओर।

[ख] एहर्, इस ओर; ओं हर्, हों हर, उस ओर; जेहर्, जिस ओर; तें हर, तिस ओर ; केहर, किस ओर।

§४५० भोजपुरी एने, हेने, ओं ने हों ने आदि ; उड़िया एणे, तें णे, आदि सर्वनामीय विशेषणों के संक्षिप्त रूप हैं और इनकी उत्पत्ति एहन्न्, जें हन्, तें हन् आदि से हुई है। उड़िया ण-रूप यह सिद्ध करते हैं कि प्राकृत में केवल एक 'न' होगा।

§४५१ भोजपुरी हर-वाले रूपों—एहर्, ओं हर्, हों हर्, जेहर्, से हर्, के हर्—की तुलना बँगला के ए-धारे, ओ-धारे, मैं एम्हर्, जें म्हर् तथा हि० इ-धर्, उ-धर् आदि से की जा सकती है। भो० तथा मै० -हर् की उत्पत्ति—धर् से तथा बंगला रूपों की उत्पत्ति धार्, -धारे, 'किनारा, धार, सीमा' आदि से हुई है।

छठा अध्याय

क्रियापद

[क] भोजपुरी धातुएँ

§ ४५२ संस्कृत वैयाकरणों ने धातुओं को दश गणों में विभक्त किया था; किन्तु अपभ्रंश तक पहुँचते-पहुँचते केवल एक गण रह गया और शेष सभी लुप्त हो गये। इनके साथ-ही-साथ विभिन्न गणों के विकरणों का या तो लोप हो गया या वे धातु से ही संयुक्त हो गये। इसी प्रकार संस्कृत के कालों एवं प्रकारों [Moods] का भी अत्यधिक सरलीकरण हुआ।

आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं की धातुओं की उत्पत्ति के सम्बन्ध में डा० चटर्जी, ग्रियर्सन तथा अन्य विद्वानों ने अपने प्रामाणिक ग्रंथों में पूर्णरूप से विचार किया है और वे जिस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं उसमें कुछ भी घटाना बढ़ाना अनावश्यक है। डा० चटर्जी के वर्गीकरण का अनुसरण करते हुए भोजपुरी क्रियापदों को निम्नलिखित दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) सिद्ध धातु [Primary Roots]
(२) साधित धातु [Secondary Roots]

इन दोनों को भी नीचे के शीर्षकों में बाँटा जा सकता है—

(१) सिद्ध धातु
- १. संस्कृत से आई हुई तद्भव सिद्ध धातुएँ [क] साधारण धातुएँ [ख] उपसर्ग-संयुक्त धातुएँ।
- २. संस्कृत णिजन्त से आई हुई सिद्ध धातुएँ।
- ३. संस्कृत से पुनः व्यवहृत तत्सम एवं अर्द्धतत्सम सिद्ध धातुएँ।
- ४. संदिग्ध व्युत्पत्तिवाली देशी धातुएँ।
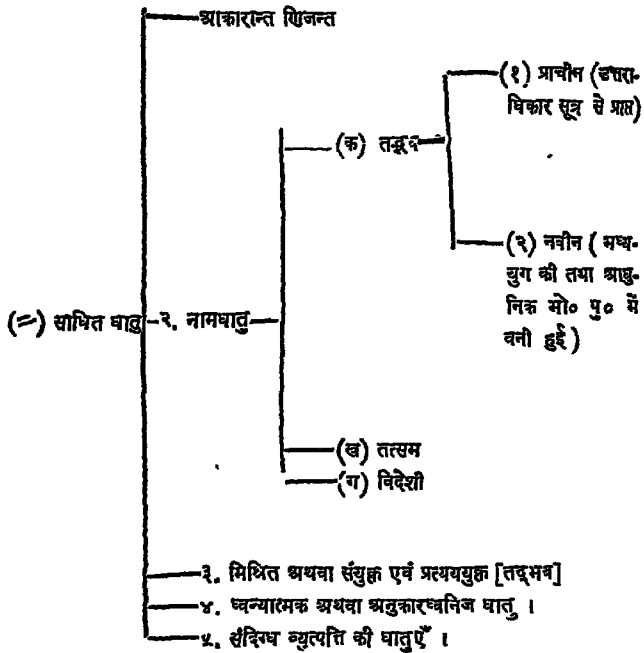
(१) सिद्धधातु

§ ४५३ नीचे प्रसिद्ध सिद्ध धातुओं की सूची दी जाती है। इनमें कतिपय ऐसी धातुएँ भी सम्मिलित हैं जिनमें संस्कृत गणों के विकर्ण वर्तमान हैं—

कस् (कृष्), कसना ; कर् (कृ), करना ; काढ़ (प्रा० कड्ढ), काढ़ना;
कान् (क्रन्द्), रोना ; काँप् (कम्प-) काँपना ; काट् (कृत्) काटना ;
कूट् (प्रा० कुट्ट-), कूटना ; कूद् (कूर्द्), कूदना ; कह् (कथय्-), कहना ;
वास्तव में यह सं० कथा का नामधातु है।
खन् (खन्-), खोदना ; खा (खाद्), खाना ; गन् (गण्-) गिनना ;
गाज् (गर्ज्) प्रसन्न होना; गल् (गल्-), गलना; गाँथ् (ग्रंथ-), पहनना, गूथना,
गूँज् (गुञ्ज्-), गूँजना ; घट् (घट्-), होना ; घँस् (घृष्), घिसना ;
घट् (प्रा० घट्ट-), घटना ; चु (च्यव्), चूना ; चुन (चि, चिनोति), चुनना ;
चढ़् (प्रा० चड्ढ ? हे० च० ४-२०६), चढ़ना ; चर् (चर्), चरना ;
चल् (चल्) चलना ; चिख् (मि०, बँ०, चाख्, चखना ∠ चक्ष), चखना ;
चुम् (चुम्ब), चूमना ; चुक् (प्रा० चुक्कइ- हे० च०, ४-१७७) चूकना ;
छाड़् (प्रा० छड्डइ- हे० च०. ४-९१), छोड़ना ; छू (छुवै = स्पृश्), छूना
छेद (अ० त०, छिद = छिद्र 7 छेन्द 7 छेद, छिद्), छेदना ;

जान (ज्ञा-), जानना ; जप् (जल्प्), जपना ; जाग् (जागृ), जगना ;
(मि०, प्रा० बँ० जागै, चर्यापद २-३)

जित् (भूतकालिक कृदन्त जित्त ∠ √जि), जीतना ;

जिअ (जीव्), जीना ; जोत् ∠ (भू० का० कृ० युक्त- पर आधारित), जोतना;

झांट् (अप० झण्टै = 'भ्रमति', हे० च० ४-१६१), पशुओं का सींग से आक्रमण करना ; झर् (क्षर् ?) झड़ना ;

टुट (त्रुट्), टूटना ; टार् (टाल, इस धातु का बहुत बाद में प्रयोग हुआ और सं० में बहुत कम रूप मिलते हैं ; मि०, हि० टाल्, और बँ० टाल्), टालना;

टाँक् (टङ्क-), सीना ; टान् (टान्), खींचना, यह मो० पु० में बँ० से आया है।

ठग् (हार्नले के अनुसार स्थग् से), ठगना ;

डूब् (प्रा० बुड्ड > डुब्ब 7 डूब, वर्णविपर्यय से) डूबना ;

डॅस् (प्रा० डसइ, हे० च० १-२१८, सं० दंश-) काटना, डँसना ;

डर् (प्रा० डरइ, हे० च० ४-१९८), डरना ;

ढॉक् (प्रा० ढक्कइ, हे० च० ४-२१, डा० चटर्जी इसका सम्बन्ध—स्थग् से जोड़ते हैं, यद्यपि उन्हें इसमें सन्देह है), ढँकना ;

ढूँढ़् (ढुंढइ), ढूँढ़ना ; ढुक् (प्रा० ढुक्कइ), ढुकना, प्रवेश करना ;

ताक् (तर्कयति, सम्भवतः नामधातु), ताकना, देखना ;

तेज् (त्यज्-) तेजना, छोड़ना ; थक् (सम्भवतः स्थग् से इसका सम्बन्ध है, मि० स्थगित, रोकना या बन्द करना), थक जाना ;

थम्ह् (स्थम्भ), थमना, रोकना ; देख् (प्रा० देक्खइ) देखना ;

दे (प्रा० देइ, सं० दा), देना ; धर् (धृ), धरना या पकड़ना ;

धार् (धारय्), धारना, कर्जदार होना ; (मि०, बं० धार्) ;

धस् (ध्वस्), धँसना, डूबना ; नाच् (प्रा० नच्चइ), नाचना ;

नहा (स्ना 7 न्हा 7 नहा, जैसा कि नहापित में), नहाना ;

पि (पिबति ∠ √पा), पीना ; पुछ् (प्रा० पुच्छइ, सं० पृच्छति) ;

पढ़् (पठ्), पढ़ना ; पाक् (प्रा० पक्क), पकना ;

पिट् (प्रा० पिट्टइ), पीटना ; फाट् (स्फाट्), फटना ,

फुट् (स्फुट) कृष्णाचार्य : 'दोहाकोष', पद १३, फुट्टइ), फूटना ;

फूल (प्रा० फुल्लइ, हे० चं० ४-३८७), फूलना ;

बाँट् (वंट-) बाँटना ; बान्ह् (बन्ध्), बाँधना ;

बोल् (प्रा० बोल्लइ, हे० च० ४-२) ; बढ़् (प्रा० बढ्ढइ ∠ वर्धयति), बढ़ना ;

बुझ् (प्रा० बुज्झइ, सं० बुध् - सं०- य- विकरण मौजूद है) ;

बो (वप -), बोना ; भज् (भज्), भजना ;

भर् (भृ), भरना ; भाव् (भाव्), पसन्द करना ;

भूल् (प्रा० भुल्लइ, हे० चं० ४-१७७) ; भाँज (भंज्), मोड़ना ;

माँज् (प्रा० मज्जइ, हे० चं० ४-१०१ प्रा० मृज्), माँजना ;

माँख् (म्रक्ष), मखना, लगाना, मालिश करना ; सम्भवतः यह बँगला से उधार लिया गया है, प्रा० मक्खइ, हे० चं० ४-१९१;
मल् (मर्द), मलना, रगड़ना ; मिल् (मिल्), मिलाना, जोड़ना ;
राख् (प्रा० रक्खइ, सं० रक्ष), रक्षा करना; रच् (रच), बनाना, रचना करना;
रोव् (रुद्), रोना; रुस् (प्रा० रुस्सइ, हे० च० ४-२३६), नाराज होना;
ले (प्रा० लेइ, हे० चं० ४-२३८), लेना; लुट् (प्रा० लुंठ्), लूटना;
सुन्(श्रु—शृणोति, सुणइ), सुनना; सुम् (शुध्, 'य' विकरण-सहित);
सह् (सहइ), बर्दाश्त करना, सहन करना;
सींझ् (प्रा० सिज्झइ, सं०√सिध्, य- विकरण-सहित), उबालना, पकाना;
हट् (भू० का० कृदन्त भ्रष्ट 7 भट्ट 7 हट्ट>हट), हटना,
हार् (हार्-), हारना।
§ ४५४ उपसर्ग-संयुक्त धातुओं के उदाहरण :—
अवँट् (आ-वृत्), औंटना; अँचव (आ-चम्-), आचमन करना;
उबह् (उद्-वह्-), बहना; उपज् (उत्-पद्यते), उपजना ;
उजड़ (उत्-ज्वल्),उजड़ना; उपास (अ० त०) (उप्-आस्), उपवास करना;
उखार् (उत्-खाट-) उखाड़ना ; उग् (उद्-गम्), उगना ;
उतर (अव-तृ), उतरना ; उबर् (उद्-वृत्); उबरना, बचना;
उचर् (उत्-चर-), उचरना, उड़ना; उचार् (उत्-चार-), उच्चारण करना;
निकस् (निर्-कस्), निकलना; निरेख्- (निर्-ईक्ष्), निरीक्षण करना;
नेवँत् (नि-मंत्र-), निमंत्रण देना ; निहार् (नि-भाल्, प्रा० निहालेइ), देखना ;
निवार् (नि-वृ), निवारण करना ; निबाह् (नि-वह्∠वह्) निबाहना ;
पइठ् (प्रा० पइट्ठइ , भू० का० कृ०, सं०<प्र-विष्ट), प्रवेश करना ;
पइस् (प्र-विश्), प्रवेश करना; पोंछ् (प्र-उञ्छ्), पोंछना;
पसर् (प्र-सृ), पसरना ; पहिर् (परि-धा), पहरना;
परोस् (परि-वेश्), परोसना; परतेज (परि-त्यज्), परित्याग करना ;
परिख् (परि-ईक्ष्), परीक्षा करना ; पखार् (प्र-क्षाल्), पैर धोना ;
पाव् (प्र-आप्), पाना ; बइठ (उप्-विष्ट), बैठना ;
बइस् (उप-विश्), बैठना ; बेंच (वि-क्री, प्रा० वेच्चइ), बेंचना ;
भींज् (अभि-अञ्ज), भींगना ; सम्हर् (सम्-भाल्), सँभालना;
सउँप् (सम्-अर्प), देना, सौंपना, आदि।

§ ४५५ भो० पु० सिद्ध धातुएँ प्राकृत तथा अपभ्रंश से होकर आई हैं ; किन्तु उनमें अत्यधिक ध्वन्यात्मक परिवर्तन हुआ है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, संस्कृत के दश गण तथा उनके विकरण धीरे-धीरे लुप्त होते गये ; किन्तु कतिपय विकरण भो० पु० तक भी आये। नीचे इसके उदाहरण दिये जाते हैं—

१ -य- विकरण, यथा—

सींझ् (सिध्-य-ति); नाच् (नच्चइ, नृत्-य-ति) ; जुझ् (युध्-य-ति); बुझ् (बुध्-य-ति); सबुझ् (सम्बुध्-य-ति) ;

२ -नो- विकरण, यथा—
चुन् (चि-नो-ति), चुनना; सुन् (श्रृ-णो-ति); धुन् (धु-नो-ति), आदि।
३ -ना विकरण, यथा—
किन (क्रि-णा-ति), खरीदना; जान् (जा-ना-ति), जानना।
४ -न- का मध्यागम (infix), यथा—
रुन्ह्<रुन्ध्, रुध्, रुधना, पेड़ की रक्षा के लिए बाड़ा बनाना; बन्ह् ∠ बन्ध्, बध्, बाँधना।
५ -च्छ- विकरण, (= भा०* -स्के/श्रो-) ; इस विकरण को संस्कृत के वैयाकरणों ने स्वीकार नहीं किया है ; किन्तु यह निम्नलिखित धातुओं में वर्तमान है—
पुछ् (पृच्छति), पूँछना, पहुँच् (*प्रो-भु-स्के-ति 7 *प्रभुच्छति 7 * पहुँच्छइ); अछ् (अच्छति ∠ * एस्-स्के-ति), होना; इच्छ् और हिच्छ् (* इच्छति या हिच्छति ∠ * इस्-स्के-ति), इच्छा करना।

§ ४५६ ध्वन्यात्मक तथा औपम्य-सम्बन्धी परिवर्तनों के अतिरिक्त, प्राकृत की धातुओं में अन्य प्रकार के भी परिवर्तन हुए। उदाहरणस्वरूप प्राकृत की कर्तृनिष्ठ धातुओं के मूल संस्कृत के कार्टवाच्य के रूप नहीं हैं अपितु कर्मवाच्य के रूप हैं। इनमें से अनेक वर्तमान काल के रूप न होकर भविष्य काल के हैं। संस्कृत णिजन्त से भी प्राकृत तथा आधुनिक भाषाओं में अनेक धातुएँ आई हैं। यहाँ यह बात भी स्मरण रखने योग्य है कि कर्मवाच्य के रूप जब कार्ट-वाच्य के रूप में प्रयुक्त होने लगे तो उनके अर्थ में भी किंचित् परिवर्तन हुआ। यथा—तप्यते 7 प्रा० तप्पइ, गर्म किया जाता है अथवा तपाया जाता है 7 स्वयं तपाता है>तपता है या गर्म होता है। इसी प्रकार भोजपुरी सक् ∠ प्रा० सक्कइ ∠ सं० शक्यते; लग ∠ प्रा० लग्गई ∠ सं० लग्यते, आदि। भोजपुरी की सींच्, सींचना; नाप्, नापना; रोप्, बोना या रोपना; थाप्, स्थापित करना, आदि क्रियाएँ भी ऐसे ही अस्तित्व में आईं।

णिजन्त से उत्पन्न सिद्ध धातुएँ

§ ४५७ संस्कृत की कतिपय णिजन्त धातुएँ भोजपुरी में सिद्ध धातुएँ बन गई हैं। इनका प्रेरणार्थक अर्थ लुप्त हो गया है और ये साधारण सकर्मक क्रियाएँ बन गई हैं। इनमें पुनः आ या आव् जोड़कर नई प्रेरणार्थक क्रियाएँ बनाई जाती हैं, यथा—

मुअता, मरता है; मारता, वह मारता है (मारयति), नवीन प्रेरणार्थक मरावता या मरवावता, वह मरवाता है। वस्तुतः प्राचीन प्रेरणार्थक मारता, ने अब सकर्मक रूप धारण कर लिया है।

४५८ इस प्रकार के क्रियापदों के उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—
उघार् (उद्घाटयति) उघारना; उखाड़ (उत्-खाटयति), उखाड़ना; उचार् (उद्-चारयति), उच्चारण करना; चाल् (चालयति), चालना; छाव् (छादयति), छप्पर छाना; छेव (छेदयति), काटना; जार् (ज्वालयहि), जलाना; झार् *, झाटयति), झाड़ना; तार् (तारयति), बचाना, या पार लगाना; ताव् (तापयति), तप्त करना; धांर् (प्राचीन रूप—उधार् ∠ उद्धारयति), कर्जदार होना; नहा (स्नापयति), नहाना;

पाय् (प्राप्यति), पाना; पसार् (प्रसारयति), फैलाना; पुर् (पूरयति), भरना; फाड़ (स्फाटयति,), फाड़ना; मार् (मारयति), मारना; हार् (हारयति), हारना; अ० त० साघ् (साधयति), साधना, पूर्ण करना।

§ ४५९ मागधी अपभ्रंश से पृथक् होने के पश्चात् जब से भोजपुरी आधुनिक भाषा के रूप में अस्तित्व में आई, तब से इसमें उच्च साहित्य की रचना नहीं हुई। उत्तरी भारत में, साहित्य-रचना की दृष्टि से १६वीं शताब्दी का अत्यधिक महत्त्व है। इसी युग में यहाँ तुलसी तथा सूर-जैसे महाकवि उत्पन्न हुए। इस समय के भोजपुरी कवि ब्रजभाषा अथवा अवधी के माध्यम के द्वारा ही अपने हृदय के भावों का प्रकाशन करते रहे। आधुनिक युग में भी भोजपुरी क्षेत्र में साहित्यिक भाषा के रूप में खड़ी बोली हिन्दी की ही प्रतिष्ठापना हुई है। इसका एक परिणाम यह हुआ है कि भोजपुरी में कुछ ही अर्द्ध-तत्सम धातुएँ मिलती हैं। यथा—

अरप् (अर्प-), अर्पित करना; अरज् (अर्ज-), अर्जन करना; गरज् (गर्ज), गर्जन करना, गरजना; बद् (वद्-) कहना; तज् (त्यज्) छोड़ना; बरज् (वर्ज-), वर्जन करना; सोभ् (शोभ-), सुन्दर बनाना, सेव् (सेव्-), सेवा करना; तरप् (तृप-), तर्पण करना; त० दुह् (दुह्-), दूध दुहना; रच् (रच्-), रचना करना, बनाना।

§ ४६० भोजपुरी में ऐसी कई धातुएँ वर्तमान हैं जो तावत रूप में नहीं प्रतीत होती हैं, और उनकी उत्पत्ति संस्कृत से भी नहीं जान पड़ती। नीचे ये दी जाती हैं —

अँट-, अँटना, पूरा पड़ना; ओट-, कहते जाना; ओल्ह्-, एक शाखा से दूसरी शाखा पर कूदकर जाना; उभुक्, तिलमिलाकर गिरना; अर्वोस्, पहली बार प्रयोग करना; ओंठघ्-, पड़ना, सोना; चहेट्, पीछा करना; चिहुक्, अत्यधिक चौकन्ना होना, छाड़्, छोड़ना; जुट्, मिलना; जेंव्, भोजन करन; (आस्ट्रिक : जोंम-, भोजन करना); झोंक्, झोंकना; झींट्, धोखा देकर कोई वस्तु ले लेना; झोंट्, पशुओं, गाय-बैल का शृंग युक्त सिर से आक्रमण करना; झाड़्, धूल साफ करना; झोल्, हरे चने अथवा गेहूँ को डंठल सहित आग में पकाना; झोंक्, आग में लकड़ी आदि डालना; टाँग्, लटकाना; टोव्, स्पर्श करके अनुभव करना; टिप्, ऊँगली गड़ाना; टोक्, पीछे से बुलाना; टूस्, हरे शाक के कोमल एवं ऊपर के पत्तों को तोड़ना; टुँग्, गेहूँ या जव की बालों को तोड़ना; ठोक्, ठोंकना, मारना; ठेल्, धक्का देना; डपट्, डाँटना; डोंक्, डाकना, बुलाना; ढाँक्, ढकना; तमख्, नाराज होना; धुम्, रुई निकालकर उसे साफ करना; पटक्, पटकना; फुदक, थककर बातें करना, उछल-कूद करना; फिंच्, निचोड़ना (धोती फिंचल); बिटोर्, एकत्र करना; बाँट्, बाँटना; भेंट, मिलना, भगठ्, बिगड़ना, नष्ट होना; लोट्, लोटना; लड़्, लड़ाई करना; सान्, सानना, मिश्रित करना, सर्पोट्, एक साँस में खा जाना; हींच्, खींचना, हुटुक्, मरणासन्न होना।

(ख) साधित धातुएँ

§४६१ इनमें सर्वाधिक प्रसिद्ध णिजन्त हैं। भो० पु० क्रियापदों में -आय् जोड़ने से णिजन्त अथवा प्रेरणार्थक बनते हैं। यथा—बइठ, बैठना ; बइठाय, बैठाना। इसका विस्तृत रूप -वाय् जोड़ने से बनता है।

§४६२ इस आव् की उत्पत्ति प्रा० आव, सं० आप से हुई है। पहले इस प्रत्यय का प्रयोग केवल आकारान्त धातुओं से णिजन्त बनाने में किया जाता था; किन्तु इसमें व्यत्यय भी होने लगा। संस्कृत का दूसरा णिजन्त प्रत्यय -आय - था जो प्राकृत में -ए हो गया; किन्तु -आव् के अत्यधिक प्रचार के कारण -आय् प्रयोग सीमित हो गया। इसके परिणामस्वरूप आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में णिजन्त का प्रत्यय -आव् ही हो गया।

§४६३ भो० पु० का -वाव् द्विगुण णिजन्त (प्रेरणार्थक) प्रत्यय है। इस प्रकार के द्विगुण (Double) णिजन्त का प्रयोग अशोक के शिला-लेखों में भी मिलता है। यथा— करेति, करापेति, लेखापेति, आदि। यह आप + आप् से बना है। इस सम्बन्ध में भो० पु० की तुलना असमिया से की जा सकती है। वहाँ भी ओवा तथा -उवा प्रत्यय के रूप में द्विगुण णिजन्त वर्तमान है; किन्तु उसका अर्थ भोजपुरी जैसा नहीं होता।

भो० पु० धातुओं में -आव् जोड़कर णिजन्त बनाया जाता है; किन्तु दीर्घ स्वरान्त धातुएँ प्रत्यय के पूर्व ह्रस्व हो जाती हैं। यथा— आ > अ, ई > इ, ऊ > उ, ए > ए़ तथा ओ > ओ़[1]।

§४६४ मूल रूप तथा णिजन्त का सम्बन्ध संस्कृत से लेकर आधुनिक भो० पु० तक अ : आ स्वर प्रकट करते हैं। यथा— मर्-: मार्; पसर् : पसा ; निकस् : निकास् आदि। इसी आधार पर ह्रस्व-स्वरान्त अकर्मक क्रियापद को दीर्घान्त करके णिजन्त अथवा सकर्मक क्रियापद बनाया गया। कृत्यते > कट्टिअइ > कट, काटा जाना, इससे काट, 'काटना', सम्पन्न हुआ। इसके विलोम नियम द्वारा कतिपय णिजन्त अथवा सकर्मक क्रियापदों से अकर्मक क्रियापद भी बनाये गये। यह क्रिया दीर्घ स्वर को ह्रस्व में परिणत करके सम्पन्न हुई। इसे पश्च रूप [Back fermation] सम्बन्धी नियम कहते हैं। यथा—पलना < पालना; भो० पु० में कुछ ऐसे रूप खड़ी बोली से आये हैं।

§४६५ प्रायः प्रत्येक सिद्ध तथा नामधातु से -आव् लगाकर णिजन्त बनाया जाता है।

नामधातु

§ ४६६ संज्ञा-पद तथा क्रिया मूलक विशेषण (Participle adjective) जब क्रिया बनाने के लिए धातुरूप में प्रयुक्त होते हैं तब उन्हें 'नामधातु' कहते हैं। नामधातु बनाने की प्रथा अत्यन्त प्राचीन है और यह संस्कृत में भी वर्तमान है। संस्कृत सिद्ध धातुओं में अनेक ऐसी हैं जो मूलतः नामधातु हैं।

प्राकृतयुग में नामधातुओं की संख्या और भी अधिक हो जाती है। ये संस्कृत के भूतकालिक कृदन्तीय [Part participle] के रूपों से बनती हैं। यथा—बइट्ठइ (उपविष्ट-), कड्ढइ (कृष्ट); इनसे भो० पु० की बइठ तथा काढ़ धातुएँ सम्पन्न हुई हैं।

§४६७ विदेशी संज्ञा तथा विशेषण पदों में भी आ लगाकर भो० पु० में नामधातुएँ सिद्ध होती हैं। यथा— गर्मा, गर्म होना, नाराज होना; सर्मा, लजाना, लज्जित होना; नर्मा, बीमार पड़ना, अस्वस्थ होना।

§४६८ प्राकृत की कई नामधातुएँ भो० पु० में आकर सिद्ध धातुएँ बन गई हैं। इनमें नामधातु का -आ प्रत्यय नहीं लगता। यथा—प्रा० पिट्टइ (पिट) > पिट् (भो० पु०)।

§४६६ भो० पु० में ऐसी अनेक नामधातुएँ हैं जिनमें -आ प्रत्यय नहीं मिलता। लिखित-साहित्य के अभाव में यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि भो० पु० में नाम धातुओं का प्रयोग कब से होने लगा किन्तु यह निश्चय है कि आ प्रत्यय-रहित, नामधातुएँ, अपेक्षाकृत प्राचीन हैं। नीचे नामधातुओं की सूची दी जाती है—

अँकुर (अङ्कुर-), अङ्कुरित होना; अलग (अलग्ग, अलग्न), अलग होना;- आगिआ (आग्ग, अग्नि), जलना; अँगुरिआव- (अङ्गुलि), चिढ़ाना, परेशान करना; अन्हुआ (अन्ध-), अन्धा होना; उग् (*उग्गअअ, उद्गत), निकलना; खटा (देशी- खट्ट), खटाना या खट्टा हो जाना; खोय् (*खव्, खअअ, क्षय), नष्ट होना या करना; गाड़् (देशी : गड्ड ? ∠ गर्त), गाड़ना; गोटा (*गोट्ट, गोल, मि०, सं० गुटिका); अनाज का गोटाना, बड़ा होकर पकना; गदरा (गदरा- हरे ताजे अनाज को भोजपुरी में कहते हैं), बालियों अथवा छीमियों में अनाज का आना; घोर् (देशी- घोल : घोल्ल ∠ घूर्ण) घोलना; गँठिआव (ग्रंथि), बाँधना; घमा (घर्म), धूप से परेशान होना; पसीने में तर होना; चोराव् (चौर) चोरी करना; चितिआ (चित्र-) चित्ती या धब्बा पड़ना; चिन्ह् (चिह्न), पहिचानना; चिर् (चीअर, चीथर), टुकड़े, चीर-फाड़ करना; चोखा (देशी : चोक्खा, पवित्र, मि०, ब०, चोखा, तेज करना), तेज करना, छिन् (छिन्न), छीन लेना; छगरा (छाग- *छागर, प्रा० तथा बं० छागल, बकरा), बकरी का 'छगराना'; छिट् (*छिट्ट ? छिप्र), छिड़कना; जुड़ा (भोजपुरी जुड़्, ठंडा, मि०, बं० जुड़्), ठंडा होना; जोत् (जुत्त-, युक्त), जोतना; जरिआ (जरि, जड़, मि०, ख० भो० जड़ ∠ प्रा० जड ∠ सं० जटा), भली भाँति या अच्छी तरह से जड़ पकड़ना; जाम् (जन्म), जमना; जर (ज्वर-), ज्वर से पीड़ित होना; जिभिआव (जिह्वा), जीभ से चाटना; जाँत (यंत्र), दबाना; झगर् (झगड् * झगड्ड-), झगड़ना; टिक् (देशी : टिक्क-), टीका करना, विवाह करना; टेढ़ुआ (भोजपुरी टेढ़, टेढा, तिरछा, मि०, बं० टेढ़ा, ने० टेढ़ो ∠ * ट्रेढ्ढ या ट्रेढ्ड), तिरछा या टेढ़ा होना; टेम्हिआ (भोजपुरी टेम्ही, गेहूँ, जौ का सद्य निकला हुआ पीला पौधा; जलते हुए दीपक की लौ के समान होने के कारण ही कदाचित् यह संज्ञा दी गई है; मि०, ने० टेम्भ, टिम्भ तथा टिमिक्क), अंकुरित होना; टुँड़िआ (तुण्ड), जौ तथा गेहूँ में बालियों का आना; टील (भोजपुरी टीला, मि०, ख० बो० तथा ने० ढिल् ∠ * ढिल्ल), देर लगना; ठेहुनिआ (भोजपुरी ठेहुन्, घुटना, मि०, बं० ठेंग, पैर), घुटने पर बैठना; तात् (तप्त) गर्म होना; तवल (तउल), तौलना; ताक् (तक्केइ, तर्कयति), घूरना; तिता (तित्त, तिक्त), तीता होना; दहा (* डड्ढ ∠ दड्ढ ∠ दग्ध-), जलना; डहराव (भो० पु० डहर, रास्ता), रास्ता दिखलाना; थना (थाण- , स्थान-), अपने स्थान पर भली भाँति (पौधे का) उगना; थाम्ह् (थंभ , स्तम्भ), रोकना; हथिआव (हत्थ , हस्त), चुराना; थिरा (थिर, स्थिर), स्थिर होना; दाँत (दन्त-), गाय-बैल आदि का दाँत निकलना; दुहिआ (दुधि-), भुकड़ी लगना; दुखा (दुक्ख ∠ दुःख), कष्ट अनुभव करना; अ० तु० दगध् (दग्ध), जलना; धुँआ (भो० पु० धुआँ ∠ धूम), धुँआ देना; नाथ (णाथा, नस्ता), नाथना; पाक् (पक्क, पक्व), पकना; पतिआ (∠ प्रा० पत्तिअ,

∠सं० प्रत्ययः, पा० पच्चयो, प्रा० पच्चअ-, प्रा० का पत्तिअ शब्द प्राचीन काल में ही संस्कृत से उधार लिया हुआ प्रतीत होता है), विश्वास करना; पइठ् (पइट्ठ, ∠प्रविष्ट-), प्रवेश करना; पिट् (पिट्ट-, पिष्ट), पीटना; पोंछिआव (पुंछ, पुच्छ), पीछा करना; पिरा (पीड-, पीडा), पीड़ा देना; पनिआव् (पानीय-), सींचना; फँस् (मि० ने० फाँस्नु, तथा पासो ∠फंस, पास-, पाश-), फँसना; फेना (फेण, फेन), फेन देना; बउरा (वाउल, वातुल), पागल हो जाना; बतिआव् (वत्ता, वार्ता), बात करना; बखान् (वक्खाण, व्याख्यान-), बड़ाई करना; बाज- (वज्ज-, वाद्य-), बाजा बजाना; बढ़िआ (वड्ढि, वृद्धि-), बढ़ना; बरधा (वलद्द, बलिवर्द-), बर्धाना या बर्दाना; भूख् (बुभुक्खा, बुभुक्षा), भूखा होना; भकुआ (भक्क-), नशे में डूबना; माङ् (मग्गइ, मार्गति, मार्गयति, मर्ग-) भीख माँगना; मूत (मुत्त, मूत्र), पेशाब करना; मुँड़िआ (मुण्ड-), कार्यविशेष में दत्तचित्त से जुटना; लतिआव (लत्ता, लात, पैर), लात मारना; सूख (सुक्ख, शुष्क-), सूखना; सुधिआ (सुद्ध, शुद्ध), शुद्ध हो जाना; सोन्हा (सुगन्ध), सुगन्धि देना।

§४७० संस्कृत के अ० त० तथा त० नामधातु भो० पु० में अत्यल्प हैं। नीचे भो० पु० अर्द्धतत्सम नामधातु की सूची दी जाती है—

अकुला (आकुल), व्याकुल होना, अनन्द (आनन्द-), आनन्दित होना, (यह नामधातु प्राचीन भो० पु० गीतों में मिलती है—तिरिया अनन्देली हो, स्त्री प्रसन्न होती है); अलाप (आलाप), गाना; असीस, (आशीष), आशीर्वाद देना; तत्सम : निस्तार (निस्तार-), बचना, लोभा (लोभ-), लुभ जाना।

§४७१ फारसी-अरबी शब्दों से बनी हुई नामधातुएँ भी भो० पु० में वर्तमान हैं। इनकी सूची नीचे दी जाती है—

कबुलाव् (कबूल قبول) स्वीकार करना; खतिआव् (खत خط) लिख लेना; गर्दनिआव्, (गर्दन گردن), गर्दन पकड़कर निकालना; गर्मा (गर्म گرم), गर्म होना, क्रुद्ध होना; गुजर् (गुज़र گذر), गुजरना, मृत्यु को प्राप्त होना; कमरिआ (कसर کسر), बीमार होना; जम (जमअ جمع), एकत्र होना; तहिआव् (तह تہ), तह के बाद तह जमाते जाना; दिकिआव् (दिक़ دق), कष्ट देना; दाग (दाग़ داغ), निशान करना; नगिचा (*नगीच् نزدیک), पास में होना; नर्मा (नर्म نرم) नर्म होना; बीमार होना; बकस् (बख्श بخش) बख्श देना, स्वतंत्र कर देना; बदले (بدل) बदल जाना।

§ ४७२ मिश्रित अथवा संयुक्त एवं प्रत्यययुक्त धातुएँ

मिश्रित अथवा संयुक्त धातुओं में या तो दो धातुओं का सम्मिश्रण होता है अथवा धातुओं के पूर्व कोई संज्ञा अथवा अव्यय आता है, किन्तु अधिकांश धातुओं [सिद्ध अथवा नामधातुओं] में प्रत्ययों का संयोग होता है। [वैं० लैं० §६२८] मागधी-प्रसूत भाषाओं में पहली प्रकार की धातुओं के कतिपय उदाहरण केवल बँगला में उपलब्ध हैं। यथा—देख-से, देल-खा, आस्ते और देखो। इसका असमिया तथा भो० पु० में अभाव है। सम्भवतः दूसरे प्रकार के भो० पु० में उदाहरण 'नइखे' न+छी, छी, ठहरना, पछता, पश्चात्+ताप हैं।

§ ४७३ भो० पु० की अधिकांश मिश्रित अथवा संयुक्त धातुएँ प्रत्ययुक्त हैं। इनमें मुख्य प्रत्यय हैं—

(i) क् (ii) ट् (iii) थ्, र् (iv) ल् (v) स् (vi) च्

ये प्रत्यय मूल धातु अथवा नामधातु के अर्थ को परिवर्तित कर देते हैं—क्रियापदों को ये तीव्रतावोधक, निरन्तरताबोधक या बहुधाबोधक बना देते हैं।

§ ४७४ कभी-कभी ये धातुएँ संज्ञापदों से सम्पन्न होती हैं और इनमें प्रत्यय जोड़ दिये जाते हैं, किन्तु कभी-कभी इसके विपरीत भी होता है। यथा—'चमक', संज्ञा तथा क्रिया दोनों है, किंतु 'पटक', 'पटकना', केवल क्रियापद है। इन धातुओं में नामधातु के प्रत्यय-आ का भी कभी-कभी अभाव होता है।

§ ४७५ ऊपर के प्रत्ययों में (i)—क, भो० पु० में कार्य की आकस्मिकता अथवा नित्यता प्रदर्शित करता है और इस प्रकार यह तीव्रताबोधक प्रत्यय है।

उदाहरण—

अटक, अटकना, फँसना (मि०, पा० अट्टो, प्रा० अट्ट, ∠ आर्त); + क; उसुका, दीपक की बत्ती को उकसाना, (? उत्कर्ष); गहक (गाह- गहराई), पूर्ण उत्कर्ष पर होना (यथा—नाच गहकल बा); चूक, चूकना (*चुक्क- ∠ च्युत-?); छपक, मि०, ने० छपको तथा छपक्क, ने० डि० पृ० १६१, पानी पीटने से जो ध्वनि निकलती है उसे भो० पु० में 'छप्' कहते हैं। यह अनुकरणात्मक शब्द प्रतीत होता है। इस प्रकार छप + क्, 'छपकना' सिद्ध होता है; छिटिक्, छिरिक, छिड़कना, (*छिट्ट ∠ छित्र, ने० डि० १६७); चिहुँक, 'चिहुकना'; चुभुक्, चुभुकना, पानी में गोता खाना; जमक् (अर्बी : ..., एकत्र होना), अधिक संख्या में एकत्र होना; झपक (* झप्प- 'आकस्मिक तथा निरन्तर क्रिया', मि०, ने० झपना, ढक्कन' तथा भो० पु० ढपना जो ढक्कन तथा भापना का संमिश्रण है), नींद आना; ठुमुक्, ठमक्, ठुमकना, नाचते हुए चलना; टसक्, खिसकना; टपक् (ने० टप्‌कनु ∠ *टप्प- ∠ *त्रप्‌र- (∠सर्प-?), टपकना, गिरना; तड़क् (ने० तड़्‌कनु ∠ :त्रटक्क, मि०, सं० तडत्कारी, प्रा० तडक्कार) तड़कना, जोर से शब्द करना; ठुसुक्, भीतर से क्रुद्ध होकर धीमी आवाज से किसी का प्रतिवाद करना, मि०, ने० ठुस्स, नाराज होना; थुक् (थुत्‌क), थूकना; दहक्, प्रकाश सहित जलना (दग्ध-क); धमक्, लगातार पीटना; फुदक्, जल्दीबाजी करना; पचक् या पिचुक्, पिचकना, फूँक, फूँकना (हार्नले—स्फुत् या फुत् + क); बूक, अधिक बोलना (मि०, अप० बुक्‍कइ, हे० च० ४-६८, हार्नले—ब्रू या वद् + क); बहक्, बहकना (वह् + क); भड़क्, भड़कना (मि०, ने० भड़्कनु); भचक्, लँगड़ा कर चलना; मचक्, मोच आ जाना; रोक्, रोकना (रुध × क), सुरुक (मि०, ने० सुड़ुक्क तथा सुड़्‌को), नाक से ऊपर खींचना; हुड़ुक्, मरणासन्न होना।

§४७६—ट-प्रत्यय वस्तुतः प्रत्यय (१८) है। यह कार्य की नित्यता का बोध करता है। यथा—घेरवट्, चारों ओर से घेरना (घेर्, परिधि + वृत्त); घिसट्, घसीटना, (घर्ष + वृत्त); घुसयट् (घूसा-) घूँसा मारना; चपट् (*चप्प-), चिपटना; करवट्, करवट लेना (कर + वृत्त); चुनवट्, चूने से पोताई कराना (चूर्ण + वृत्त);

झपट्, झपटना, आक्रमण करना, (झम्प+वृत्त); डपट्, डपटना, डाँटना, (दर्प+वृत्त); लपट्, लपटना, चिपटना; हुर्‌खट्, लाठी के हूरे [नीचे के भाग] से मारना (हूर-∠प्रा० फुर∠सं० स्फुर, एक अस्त्र, मि०, हिं० हूल तथा सं० शूल)।

§४७७ ड्∠ड प्रत्यय वाली धातुएँ—

पकड़् (*पक्क-ड-), पकड़ना ; झगड़् (प्रा० झग-ड-) झगड़ना ; भकड़् (*भक्क-ड), भकड़ना, सड़ना ; हुँकड़, हुँकड़ना, चिल्लाना (हुक्क+ड), मि०, ने० हुकार्नु तथा होक्नु, दे०, ने० डि० पृ० ६२८ तथा ६३४∠सं० को० हुक्कारः, हुँकारना, बुलाना ; प्रा० हुक्कारेइ, बुलाना तथा सं० को० हुक्कयति, चिल्लाना, प्रा० हुक्कइ, होंकना, चिल्लाना ; पछड़् (पश्चात्>पच्छा+ड), पिछड़ना।

§४७८ र-युक्त धातुएँ—

कचर् (मि०, सं० को० कच्चर, गन्दा, प्रा० कच्चवार, कूड़ा, मि०, और कचेरा तथा देशी : कच्चर, कीचड़), खूब खाना, छककर खाना, दबाना, छकूटेर् (*उत्केर- मि० उत्किरति, खोदता है), खोदना ; गिंड़ोर् (सं०, पा०, प्रा० गण्ड, पा० गण्डि, ईख का जोड़, भो० पु० गेंड़, सं० गेर∠* गेण्ड, ईख के जोड़ पर आँख की भाँति बने चिह्न, अतएव गिंड़ोर =*गेण्ड या *गिण्ड+उर्), आँख दिखलाना, क्रोध करना ; चपर् (चप्प-∠ *चर्प+ड), दबाना ; जुठार् (सं० जुष्ट, प्रा० जुट्ठ+आ+ड), जूठा करना ; झट्‌कार् (*झटक्क-), झटकना, चुराना ; ठह्‌र् (मि०, ने० ठहर्नु∠*स्तभिर ने० डि०, पृ० २५०), ठहरना; पुकार (प्रा० पुक्कारेइ, पुक्करेइ, पोक्कारेइ, पोक्करेइ), पुकारना ; सँकार, सकार् (सं० सत्करोति, क्रम में रख देता है, सत्कारयति, आदर करता है, पा० सक्कारेति, प्रा० सक्कारेइ), स्वीकार करना ; सिंकुर् (मि०, ने० सिकुटे, सिक्रो तथा सुकुटे या सिकुटे, 'शुष्क' का विस्तार), सिकुड़ना।

§४७९ ल-प्रत्ययान्त धातुएँ कदाचित् हिन्दी से भो० पु० में आई हैं। यथा—

टहल् (मि०, ने० टहल्नु∠*टहल्ल- यह सं० त्रसति, 'जाता है' का विस्तृत रूप है। दे०, ने० डि० पृ० २४१), टहलना, घूमना ; फुसिलाव (मि०, ने० फुसुल्याउनु, हि० फुसलाना, उ० फुसलाइबा, गु० फोसलाव्वुँ, मरा० फुसलाविणे) फुसलाना।

§४८०-स प्रत्ययान्त धातुएँ—

खमस्, भीड़ करना ; गपस्, घने रूप में बुना होना ; गर्मस्, गर्म होना, उष्ण होना; झपस् (*झप्प- आकस्मिक गति), तेज हवा के साथ वृष्टि ; भँउस्, पकाना ; थउस्, बैठ जाना ; भकस् (*भक्क-, मि०, हिं० तथा ने० भक्‌भक्, धुआँ निकलते हुए जाना), अत्यधिक अन्धकार होना।

§४८१ च- प्रत्ययान्त धातुएँ। यह प्रत्यय समतावाची है—फोकच् (मि०, सं० फुत्करोति, फूँकना, प्रा० फुक्कइ), फोड़ा पड़ जाना; ठकच्, (मि०, हि० टक्कर्, तथा ने० ठक्कर्-, यह*ठक्क का विस्तृत रूप है), एकत्र होना ; ढकच् (मि०, ने० ढक्क, खिलना तथा ढकार्, भो० पु० ढकार् या ढेँकार, यह *ढक्क- का विस्तृत रूप है), कै करना ; खमच्, एकत्र होना।

§४८२ अनुकरणात्मक धातुएँ भी नामधातुओं के अन्तर्गत ही आती हैं। इन्हें दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—मुख्य अनुकरणात्मक तथा द्वित्व धातुएँ। पुनः मुख्य अनुकरणात्मक धातुओं के भी दो भाग हो सकते हैं—साधारण तथा द्वित्व।

§४८३ अनुकरणात्मक धातुएँ वैदिक तथा लौकिक संस्कृत में भी मिलती हैं; किन्तु उनकी संख्या अत्यल्प है। प्राकृत-काल में इनकी संख्या में अभिवृद्धि होती है। [दे०, इं० लिं० मा० ८ पार्ट १, १६४०-४१ में इस सम्बन्ध में श्री कालिपद मित्र का लेख]; यथा—तडप्फडइ, [हे० चं० ४-३६६] तड़फड़ाना; थरथरइ, काँपना; घमघमइ, घमघम ध्वनि करना; फुफुरायदि (मृच्छकटिक)। चूँकि वैदिक तथा लौकिक संस्कृत में अनुकरणात्मक धातुएँ कम थीं, अतएव प्राकृत के वैयाकरणों ने इन्हें देशी के अन्तर्गत रखा। फिर भी कतिपय अनुकरणात्मक शब्द संस्कृत में वर्तमान हैं। यथा—झङ्कार, गुञ्जन, कूजन तथा प्राकृत के क्रियापद झंकारेइ, गुञ्जइ, कुजइ तथा द्वित्व क्रियापद खट्खटायमान, मडमडायिता, पर्फरायते आदि।

§४८४ प्रायः सभी आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं में द्वित्व अनुकरणात्मक धातुएँ वर्तमान हैं। ये क्रियाविशेषणरूप में प्रयुक्त होती हैं। यथा—झम्-झम् करिके पानी बरिसता, जोर से पानी बरस रहा है; दन्-दन् करिके गाड़ी चलविआ, गाड़ी बहुत तेज जा रही है; बबुआ आजु-काल्हि गटर्-गटर् कइके दूध पी जात् बा, बच्चा आजकल प्रसन्नता से दूध पी जाता है।

§४८५ अनुकरणात्मक अथवा द्वित्व अनुकरणात्मक एवं 'कर्' धातु के संयोग से बने हुए पदों को मिश्रित क्रियापद मानना चाहिए। यथा—पानी मे या में ढेला फेंकला, पर् छप्-छप् करेला, पानी में ढेला फेंकने पर 'छप-छप' ध्वनि करता है; जोर से या सें हवा चलला पर पतई खर्-खर् करेले, जोर से हवा चलने पर पत्ती 'खर-खर' ध्वनि करती है।

भोजपुरी के अनुकरणात्मक क्रियापदों के उदाहरण

§ ४८६ [क] मुख्य अनुकरणात्मक धातुएँ

(i) साधारण—टप् (ने० टप्नु, इसका सम्बन्ध टप्कनु, मो० पु० टपक् < *टप्प-) कूदना या कूद जाना; फुँक् (प्रा० फुक्कइ, मि०, सं० फूत्करोति,), फूँकना; हाँक् (सं० को० हक्कयति, चिल्लाता है : प्रा० हक्कइ, चिल्लाता है, बाहर निकाल देता है), हँकाना; छिंक् (प्रा० छिक्कन्त-, मि०, सं० को० छिक्का : दे० छिक्कं, छींक), छींकना; हिचुक्, हिचकना; ठनका (ठन, मि०, सं० टङ्कार), रुपये या सिक्के का आवाज करना।

(ii) द्वित्व—कट्कटा, क्रोध करना; कुर्कुरा, चनेना आदि चबाना; खट्खटा, दरवाजा खटखटाना; खन्खना, झन्झना, रुपये अथवा सिक्के का ध्वनि करना; चर्चरा, टूटना; ठक्ठका, झगड़े में लाठी का ठकठकाना; टुक्टुका, आँख फाड़कर देखना; भुक्भुका, रात में भूत द्वारा प्रकाश होना; गड़्गड़ा, हुक्का पीना; सड़्सड़ा, बेत मारना।

[ख] पुनरुक्त धातुएँ

(i) पूर्ण पुनरुक्त—फच्फचा, खून में लतफत होना; टन्टना, सिर में अत्यधिक दर्द होना; कच्कचा, क्रोधित होना; धुक्धुका, तनिक प्राण का होना; खखा, छछा,

दरिद्र होकर खाना ; गल्गला, रोते-रोते बातें करना ; गन्गना, भय से शरीर का काँपना।

(ii) अपूर्ण पुनरुक्त—यहाँ उसी ध्वनि का अन्य धातु से संयोग अथवा सम्मिश्रण होता है। यथा—

चुल्बुला, चुलबुली करना ; ढुल्मुला, ढुलमुल होना ; उज्बुजा, थक जाना ; हुल्बुला, जल्दीबाजी करना ; हड्बड़ा, शीघ्रता करना ; सक्पका, उत्तर देने में घबराना ; कसमसा, बीमार पड़ना ; कन्मना, बुरा मानना ।

(iii) भो० पु० की धातुएँ तथा क्रियाविशेष्य पद

[Roots and Verbal Nouns]

§ ४८७ यद्यपि धातुएँ वैयकरणों की सृष्टि हैं तथापि संश्लेषणात्मक भाषाओं में अशिक्षित लोगों के मन में भी धातुभाव वर्तमान रहता है। कभी-कभी, अत्यन्त श्लेषणात्मक भाषाओं में भी शब्दों के मूलरूप जो वस्तुतः धातुरूप ही हैं, साधारण बोलचाल की भाषा में व्यवहृत होते हैं। इस प्रकार संस्कृत दृश्, भुज्, भू, पृच्छ् आदि शब्द संज्ञा तथा क्रिया दोनों रूपों में प्रयुक्त होते हैं। यही दशा वृत्, विद् आदि की भी है। संस्कृत में शब्दों के रूप चलाते समय उनमें प्रत्ययों का जोड़ना आवश्यक था, किन्तु ध्वन्यात्मक परिवर्तन के कारण, बाद में, कर्ता के एकवचन में प्रायः शब्द के मूलरूप ही रह गये। आधुनिक भारोपीय भाषाओं—अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन, हिन्दी, बँगला आदि—में प्राचीन धातु तथा प्रत्यय का संयुक्त रूप में परिवर्तन हुआ और केवल धातु के मूल रूप ही अवशिष्ट रह गये। इस प्रकार के धातु-संज्ञा पदों के अनेक रूप भोजपुरी में आज भी वर्तमान हैं। ये शब्द या तो अकेले व्यवहृत होते हैं अथवा उसी अर्थ के अन्य धातु-पदों के साथ प्रयुक्त होते हैं। ये प्रायः कर्ता अथवा कर्मकारक में होते हैं। यथा—नाच् कइल, 'नाचना' में 'नाच्' शब्द। इसी प्रकार काट्छांट, भूल्चूक्, हार्जीत्, धर्पकड़, डांट्डपट्, फाट्फूट्, कह्सुन्, जर्भुन्, ताप्तोप, हांक्डांक्, भाग्परा, शब्दों को जानना चाहिए।

क्रियाविशेष्य पदों का प्रयोग संयुक्त क्रियाओं के बनाने में होता है। अतएव इनके संबंध में आगे विचार किया जायगा।

[ख] अकर्मक तथा सकर्मक क्रियाएँ

§४८८ भो० पु० क्रियाएँ या तो अकर्मक होती हैं या सकर्मक। प्रायः सिद्ध धातुएँ [Primary Roots] अकर्मक होती हैं ; किन्तु कई अकर्मक क्रियापद साधित धातुओं [Sacondary Roots] के अन्तर्गत भी आते हैं। यथा—चल्, चलना ; बइठ्, बैठना ; नाच्, नाचना ; खेल्, खेलना ; कुद्, कूदना ; हँस्, हँसना ; रो, रोना, आदि। इसी प्रकार नामधातुएँ, यथा— पाक्, (पक), पकना, रूठ्, (रुट्ठ, रुष्ट), रूठना ; मात् (मत्त), उन्मत्त होना ; उग् (उत्+गल-), उगना ; पिट् (पट्टइ), पीटना, भी अकर्मक हैं।

§४८९ सिद्ध अकर्मक धातुओं को सकर्मक में परिवर्तित करने के लिए या तो उसमें णिजन्त का—आव् प्रत्यय जोड़ दिया जाता है या मूल अकर्मक धातु के ह्रस्व स्वर को दीर्घ में परिणत कर दिया जाता है। बँगला में अकर्मक धातुओं में-आ प्रत्यय लगाकर सकर्मक

बनाया जाता है और मूल धातु के स्वर को दीर्घ नहीं किया जाता। किन्तु इस सम्बन्ध में भो० पु० अन्य विहारी भाषाओं के साथ खड़ी बोली [हिन्दी] से अधिक मिलती है। यथा—

कट : काट ; पसर : पसार ; मर : मार, आदि। ह्रस्व स्वर की ये अकर्मक धातुएँ वस्तुतः आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओं में प्राचीन णिजन्त क्रियापदों के दीर्घ स्वर को ह्रस्व में परिणत करके बनाई गई हैं। [दे० ओरियण्टल कान्फ्रेन्स, कलकत्ता १६२२, की प्रोसिडिंग्स पृ० ४६२ में, टर्नर का लेख 'द लॉस आफ वावेल—आल्टर्नेशन इन् इण्डो एरियन]

§४६० सकर्मक क्रिया वस्तुतः कर्मयुक्त होती है। अन्य आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओं की भाँति भो० पु० में भी केवल अप्राणि-वाचक संज्ञापद ही कर्म कारक में प्रयुक्त होते हैं; अर्थात् केवल इन संज्ञापदों के बाद ही सम्प्रदान का परसर्ग 'के' नहीं आता। यथा—आम् ऽ बीन, आम चुनो ; भात् खा, भात खाओ ; लोहा तूर, लोहा तोड़ो, लाठी द, लाठी दो, इत्यादि। जब प्राणिवाचक संज्ञापद कर्म कारक में प्रयुक्त होते है तथा वे निश्चय अर्थबोधक होते हैं तब उनके साथ सम्प्रदान के परसर्ग के का व्यवहार होता है; किन्तु जब वे साधारण रूप में प्रयुक्त होते हैं तथा अनिश्चय अर्थ के बोधक होते हैं तब अप्राणिवाचक संज्ञापदों की भाँति ही उनका व्यवहार होता है और उस दशा में सम्प्रदान के परसर्ग के का प्रयोग नहीं होता। यथा—

भैंइँसि चरावतारे, (वह) 'भैंस चरा रहा है', किन्तु भैंइँसि के ले चल, भैंस को ले चलो।

सम्प्रदान के परसर्ग का कर्म के लिए प्रयोग वस्तुतः आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओं की एक विशेषता है। सकर्मक क्रियाओं के भूत अथवा अतीत काल में कर्मणि प्रयोग—उसने रोटी खाई (उसके द्वारा रोटी खाई गई)—के स्थान में भावे प्रयोग—उसने रोटी को खाया—के कारण भी इस परसर्ग का प्रयोग आधुनिक आर्य-भाषाओं में प्रचलित हुआ। वास्तव में इस सम्प्रदान के परसर्ग का कर्म में इसलिए भी प्रयोग होने लगा कि कर्म की विभक्ति का लोप हो जाने के कारण उसका निश्चय करना कठिन हो गया तथा क्रिया का कृदन्तीय रूप उसे द्योतित करने में असमर्थ हो गया। यथा—भो० पु० ऊ अदिमी के देखलसि, बं० से मानुष के देखिल 'उसने मनुष्य को देखा' (वस्तुतः 'उसके द्वारा मनुष्य देखा गया', इस प्राचीन रूप का यह अर्वाचीन रूप है) तथा भो० पु०—ऊ अदिमी देखलसि, बं०: से मानुष देखिल, खड़ी बोली के समान ही भो० पु० तथा बँगला में क्रमशः भावे तथा कर्मणि प्रयोग के उदाहरण हैं। हाँ, इतना अन्तर अवश्य है कि बँगला की भाँति ही भो० पु० का प्रयोग कर्तरि है, क्योंकि यहाँ करण के स्थान में कर्त्ता का ही प्रयोग हुआ है।

[ग] प्रकार—इच्छाद्योतक या विधिलिङ्, घटनान्तरापेक्षित या संयोजक प्रकार, आज्ञाद्योतक प्रकार या अनुज्ञा

§४६१ बँगला की भाँति ही भो० पु० में भी केवल दो ही प्रकार—निर्देशक [Indicative] तथा आज्ञाद्योतक या अनुज्ञा [Imperative]—हैं। इनमें अनुज्ञा का प्रयोग वर्तमान काल में तथा मध्यम एवं अन्यपुरुष में होता है। आधुनिक भो० पु० के मध्यम पुरुष में प्राचीन भविष्यत् काल के अनुज्ञा के रूप का प्रयोग होता है। धातुपद [Infinitive] के स्थान पर क्रियावाचक विशेष्य पद [Verbal Noun] प्रयुक्त होता है। संस्कृत के अन्य प्रकारों [Moods]—घटनान्तरापेक्षित अथवा संयोजक प्रकार [Subjunctive], इच्छाद्योतक प्रकार या विधिलिङ् [Optative] आदि—का

भोजपुरी में लोप हो गया है। वर्तमान काल का प्राचीन निर्देशक प्रकार [जो सम्भवतः लट् से उत्पन्न हुआ था] भो० पु० तथा ख० बो० में इच्छा द्योतक या विधिलिङ् [Optative Mood] में परिणत हो गया। आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं में प्रकारों का यह परिवर्तन वस्तुतः उल्लेखनीय है। यथा—हम देखीं, आदि।

§ ४६२ संस्कृत का -या विधिलिङ् प्रथम प्राकृत युग में -एय्य, तथा बाद की प्राकृत में -एज्ज, -इज्ज में परिवर्तित हो गया और विभिन्न पुरुषों [उत्तम, मध्यम, अन्य] के निर्देशक प्रकार के -मि, -सि (तथा -हि), ति 7 इ एवं अन्यपुरुष अनुज्ञा के तु 7 उ प्रत्ययों का रूप धारण कर लिया। यह ज-विधिलिङ् आदरसूचक अनुज्ञा के रूप में मध्यदेश तथा पश्चिम की आधुनिक भाषाओं एवं बोलियों मे वर्तमान है। वस्तुतः यह कर्मवाच्य का -इज्ज् एवं विधिलिङ् का रूप मिलकर नम्रतासूचक रूप में परिणत हो गया है। यथा—ख० बो० कीजिए, गु० मार्जे, मार्जो। कबीर के पदों में करीजै, कीजै आदि रूप मिलते हैं। यथा—

कहि कबीर जीवन पद कारन,
हरि की भक्ति [करीजै]।
(क० ग्रं०, पृ० ३०३, पद १३३)

मन मेरे भूले कपट न [कीजै]।
अन्त निबेरा तेरे जिय पहि [लीजै]।
(क० ग्रं०, पृ० ३०६, पद १४८)

यह बात उल्लेखनीय है कि ख० बो० में -इज् वाले रूप कर्ना तथा देना धातुओं तक ही सीमित हैं।

भो० पु०, के प्रचलित पद दुख् सुख् प्रभु [दीजै] [लीजै] सीस् नवा में ज्- विधिलिङ् मिलता है; किन्तु आधुनिक भो० पु० तथा पूर्वी भाषाओं में इसका लोप हो गया है। डा० चटर्जी के अनुसार इज्- विधिलिङ् सम्भवतः मागधी अपभ्रंश में वर्तमान था; किन्तु चर्यापदों एवं मध्य बँगला में इसके उदाहरण उपलब्ध नहीं हैं, अतएव इस सम्बन्ध में निश्चयात्मक रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। कबीर तथा ऊपर के पद पर पश्चिमी बोलियों का प्रभाव प्रतीत होता है।

§ ४६३ आधुनिक भो० पु० में विधिलिङ् का भावनिर्देशक प्रकार द्वारा सर्वनामीय अव्यय जे तथा में परसर्ग एवं 'कि' 'त' संयोजकों द्वारा प्रकट किया जाता है। यथा—

ओ॑ कें॑ बोलाऽव कि देखीं या ओ॑ कें॑ बोलाऽव त देखीं या ओ॑ कें॑ बोलाऽव जे में देखीं, उसे बुलाओ जिसमें मैं देखूँ या देख सकूँ।

मेरे द्वारा संग्रहीत भो० पु० के पुराने कागज-पत्रों में, जिनमें में एक पर सन् १८३४ ई० [१२४२ साल] की तिथि दी हुई है, निर्देशक प्रकार द्वारा, जे अव्यय की सहायता से, परसर्गों के विना ही, विधिलिङ् का भाव प्रकट किया गया है। यथा—रसीद लीखी दीहल् [जे] बोखद् (त ?) पर् काम् आवे, रसीद लिख दी गई जिसमें वक्त पर काम आवे। इस जे की तुलना मध्ययुग की बँगला जेन से की जा सकती है। यथा—आमि जेन देखि, ताकि मैं देखूं या देख सकूँ।

§ ४६४ घटनान्तरापेक्षित अथवा संयोजक प्रकार [Subjunctive Mood] का वैदिक संस्कृत में अत्यधिक महत्त्व था ; किन्तु लौकिक संस्कृत में उसका लोप हो गया। असमिया को छोड़कर, अन्य आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं की भाँति, भो० पु० में भी घटनान्तरापेक्षित अथवा संभाव्य अतीत [Subjunctive or Conditional Past] के लिए वर्तमानकालिक कृदन्त [Present participle] का प्रयोग होता है। यथा—जो हम देखिती, जो (या यदि) मैं देखता।

भो० पु० में घटनान्तरापेक्षित जो संयोजक की सहायता से बनता है। आधुनिक बँगला में यदि (जदि) संयोजक व्यवहृत होता है, किन्तु प्राचीन बँगला मे इसके स्थान पर जइ का प्रयोग होता था। यथा—जइ तो मूढा अच्छसि भान्ति पुच्छतु सद्गुरु पाव (चर्या, ४१) यदि तुम मूढ़ (अनजान) हो तो अपनी भ्रान्ति सद्गुरु के चरणों से पूछो।

जइ का प्रयोग अपभ्रंश में भी मिलता है। यथा—सेर एक्क जइ पाविइ घित्ता (प्राकृत पैङ्गल, पृ० २११), 'यदि एक सेर घी पाता।'

आज्ञाद्योतक प्रकार [अनुज्ञा] या आज्ञाद्योतक काल

§४६५ आ० भो० पु० में आज्ञाद्योतक प्रकार [Imperative] के लिए वर्तमान काल के प्राचीन निर्देशक [Old Indicative Present] के प्रत्ययों का व्यवहार होता है। इनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में निर्देशक प्रकार पर विचार करते समय लिखा जायगा। इसके अतिरिक्त आ० भो० पु० में संयुक्त क्रियापदों की सहायता से नूतन आज्ञाद्योतक प्रकार की भी सृष्टि हुई है। यथा—उ जाव, 'वह जावे या जाए' के अतिरिक्त ओकरा के जाए दऽ; उसे जाने दो।

[घ] वाच्य (Voice)

§४६६ संस्कृत में धातु में -य जोड़कर कर्मवाच्य बनाया जाता था। प्रथम प्राकृत युग में यह -य,-इय,-इय्य,-ईय रूप में तथा बाद की प्राकृत में -इज्ज या ईअ रूप में मिलता है। आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं में -इज्ज>-ईज तथा ईअ>इअ हो गया है। यह अपभ्रंश से आया है; किन्तु सभी आर्यभाषाओं में यह वर्तमान नहीं है। आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के इतिहास के प्रारम्भिक युग से ही कर्मवाच्य का भाव विश्लेषणात्मक रीति से प्रकट किया जाने लगा तथा प्रत्यय के संयोग से कर्मवाच्य बनाने की विधि का लोप होने लगा। पश्चिम की भाषाओं एवं बोलियों में प्रत्यय के संयोग से निर्मित कर्मवाच्य-पद मिलते हैं ; किन्तु मध्यदेश, दक्षिण तथा पूरब की भाषाओं में इनका लोप हो गया है और केवल पुरानी भाषाओं में इसके कहीं-कहीं उदाहरण मिलते हैं। (बैं० लैं० § ६५३)।

§४६७ प्रत्यय-संयोगी-कर्मवाच्य [Inflected Passive] सिन्धी तथा वैकल्पिक रूप से राजस्थानी [मारवाड़ी], नेपाली तथा पजाबी में मिलता है। यह धातु में निम्नलिखित प्रत्ययों के जोड़ने से सम्पन्न होता है। यथा—

सिन्धी : -इज, राजस्थानी (मारवाड़ी) : -ईज,
नेपाली : -इय, पंजाबी : -ई

यथा—सिं०- दिजे, पिजे, आदि, दिये जाने दो, पिये जाने दो।

ने०- पढ़िये ;

पं०- पढ़िए ;

रा० (मार०)- पढ़ीजै ; आदि [हार्नले §४८०,४८१]

अन्य आ० भा० आ० भाषाओं में क्रियापद में √या, 'जाना', जोड़कर विश्लेषणात्मक [Analytical Passive] बनता है।

प्राचीन तथा मध्ययुग की बँगला के प्रत्यय-संयोगी-कर्मवाच्य के सम्बन्ध में डा० चटर्जी ने पूर्णरीति से विचार किया है। [बँ० लैं०§ ६५५···]

§४९८ प्रत्यय-संयोगी-कर्मवाच्य के अनेक उदाहरण अवधी, [गो० तु० दा० कृत रामचरितमानस] तथा मैथिली [विद्यापति के पदों एव ज्योतिरीश्वर कविशेखराचार्य-कृत वर्णरत्नाकर] में मिलते हैं। नीचे रामचरितमानस से उदाहरण दिये जाते हैं (ना० प्र० संस्करण, १९४०, पृ० ५३०)—

सोचिय बिप्र जो बेद बिहीना'
तजि निज धरमु बिषय लवलीना।
सोचिय बयसु कृपिन धनवानू,
जो न अतिथि सिव भगत सुजानू।
सोचिय सूद्र बिप्र अपमानी,
मुखर मानप्रिय ग्यान गुमानी।
सोचिय पुनि पतिबंचक नारी,
कुटिल कलहप्रिय इच्छाचारी।
सोचिय बटु निज ब्रतु परिहरई,
जो नहिं गुरु आयसु अनुसरई।

मैथिली [विद्यापति की पदावली, द्वितीय संस्करण, लहेरियासराय, दरभंगा]

लखए न पारिअ जेठ कनेठ। (पृ० १२)
जत देखल तत कहए न पारिअ। (पृ० १६)

वर्ण-रत्नाकर (रायल एशियाटिक सोसाइटी) इंट्रोडक्शन, पृ० ८

तारु छवाविअ जिह्वा न छाडए।
से बोलहि न पारिए।

§४९९ भो० पु० साहित्यिक भाषा नहीं है। यही कारण है कि इसमें प्रत्यय-संयोगी-कर्मवाच्य के उदाहरण नहीं मिलते। हाँ, कहीं-कहीं पुरानी भो० पु० अथवा मुहावरेदार प्रयोगों में इसके उदाहरण मिल जाते हैं। यथा—

चाही वाले वाक्यों में—

इ काम ना करे के चाही ; आदि।

पूजे मन के आस। [बारहमासा, से० प्रा० वि० लैं० पार्ट २, पृ० १६४]

इसी प्रकार निम्नलिखित वाक्यों में भी इसके उदाहरण मिलते हैं—

इ काम करे ना ; (बँ० ए काज् करे ना)।

कहला से खाइ ना ; कहला से धोबी गदहा पर ना चढ़े।

विश्लेषणात्मक कर्मवाच्य के रूप

§५०० बँगला तथा असमिया की भाँति भो० पु० में भी विश्लेषणात्मक कर्मवाच्य के रूप बनते हैं। ऊपर की कतिपय भाषाओं को छोड़कर अन्य आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं में अतीत काल के कृदन्तीय रूप में 'जा' सहायक क्रिया जोड़कर कर्मवाच्य के रूप सम्पन्न होते हैं। किन्तु कभी-कभी मुहावरेदार भो० पु० में क्रियापदों के समास के द्वारा भी कर्मवाच्य के भाव प्रकट किये जाते हैं। यथा—उ मार खइले, वह पीटा गया ; जल से भरि गइलें ताल तलाइ, ताल-तलाई जल से भर गये, (से० आ० वि० लैं० पृ० १६६)।

'जा' से सम्पन्न कर्मवाच्य का प्रयोग, भो० पु० में अत्यधिक होता है। यथा—हमरा घर से ओकर घर देखल जाला, मेरे घर से उसका घर देखा जाता है ; दूध में भेंइ के रोटी खाइल जाला, दूध में भिगोकर रोटी खाई जाती है ; गरमी का कारन से दुपहरिया में सुरुज ना देखल जाले, गर्मी के कारण से दोपहर में सूर्य नहीं देखे जाते।

जब कार्य पर जोर दिया जाता है, अथवा जब मुख्य कर्म, 'के' परसर्ग के साथ, सम्प्रदान कारक में प्रयुक्त होता है, तब कर्मवाच्य, भाववाच्य में परिणत हो जाता है। यथा—हमरा के देखल जाउ, मुझे देखा जाय ; दूध में रोटी के भेंइ के खाईल जाला, दूध में रोटी को भिगोकर खाया जाता है।

भो० पु० में भावे प्रयोग के अनेक उदाहरण उपलब्ध हैं। यथा—खाइल जाई, खाया जायगा ; कइल जाई, किया जायगा ; धइल जाई, पकड़ा जायगा।

§५०१ उत्पत्ति की दृष्टि से इस जा-कर्मवाच्य पर प्राकृत के-इज्ज का कुछ-न-कुछ प्रभाव अवश्य है। [दे०, हार्नले, §४८१, बीम्स iii, पृ० ७३-७४, चै० लैं० §६६३] यह कहा जा चुका है कि पढ़ीजै, करीजै आदि रूप अतीत कालीन कृदन्त के पढ़ि, करि=प्रा० पढ़िअ, करिअ = सं० पठित, कृत के रूप समझे जाने लगे। किन्तु इस बात पर विचार करते हुए कि इज्ज से बने हुए प्रत्यय-संयोगी-कर्मवाच्य का बँगला तथा अन्य मागधी भाषाओं एवं बोलियों में अभाव है, यह अधिक सम्भव है कि जा-कर्मवाच्य के रूप इन भाषाओं में √या से स्वतन्त्र रूप से आये हों।

आ- कर्मवाच्य

§ ५०२ आ- कर्मवाच्य के रूप बँगला, उड़िया, असमिया तथा अन्य मागधी भाषाओं एवं बोलियों में मिलते हैं। पूर्वी तथा पश्चिमी हिन्दी में भी इनके उदाहरण वर्तमान हैं। आ० भोजपुरी में इनके उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

उन्हुकर घर रोज झराला, उनका घर रोज झाड़ा जाता है; जब लरिका दु बरिस् के हो जाले स त उन्हनी के कान छेदाला, जब लड़के दो वर्ष के हो जाते हैं तो उनके कान छेदे जाते हैं; अनेति चलला से अदिमी पंच में बेजइहाँ कहाला, अनीति के मार्ग पर चलने से आदमी पंचों में दोषी समझा जाता है।

आ- कर्मवाच्य के रूप कबीर में भी मिलते हैं। यथा—बीजक मूल, पृ० १७—

अदृष्ट कहावे सोय, उसे अदृष्ट कहा जाता है।

§ ५०३ विद्वानों के अनुसार आ - कर्मवाच्य की उत्पत्ति णिजन्त - आ, - आव् <आ-प-य से हुई है [हार्नली; गौ० ग्रा० §४८४, टेसिटरी : ग्रा० ओ० वे० रा० § १४०], किन्तु डा० ग्रियर्सन के अनुसार इसकी उत्पत्ति संस्कृत के नामधातु के प्रत्यय -आय् से हुई है। डा० चटर्जी ने भी इस व्युत्पत्ति को स्वीकार किया है, [बैं० लैं० § ६७१]। इस आ- कर्मवाच्य की उत्पत्ति का संकेत बिहारी भाषाओं में उपलब्ध उदाहरणों में मिलता है। मैथिली, मगही तथा भोजपुरी में यह स्पष्ट रूप से संकेत मिलता है कि वास्तव में इसकी उत्पत्ति—आय् से हुई है, आव् से नहीं। सच बात तो यह है कि भोजपुरी में णिजन्त के रूप छेदाव, कटाव आदि मिलते हैं; किन्तु इसके मूल कर्मवाच्य के रूप छेदा, कटा आदि वर्तमान हैं। व तथा य श्रुतियों के पारस्परिक परिवर्तन के कारण भो० पु० में भी ये दोनों प्रत्यय उलट-पलट गये हैं। अन्य बोलियों में तो - आय तथा -आव के विभेद का सर्वथा लोप हो गया है और ये दोनों - आ में परिवर्तित हो गये हैं।

§ ५०४ भोजपुरी में विश्लेषणात्मक कर्मवाच्य— जा तथा -आ कर्मवाक्य के अर्थ में भी अन्तर होता है। वस्तुतः आ- कर्मवाच्य का अर्थ है कि कोई कार्य किया जा सकता है, किन्तु जा- कर्मवाच्य का अर्थ है कि प्रतिदिन किया जाता है। यथा—ई पोथी पढ़ाला, यह पुस्तक पढ़ी जाती (पढ़ी जा सकती) है; ई पोथी पढ़ल जाला, यह पोथी (प्रतिदिन) पढ़ी जाती है।

कर्म-कर्तृवाच्य

§ ५०५ बँगला तथा असमिया की भाँति ही भोजपुरी में भी कर्म-कर्तृवाच्य के उदाहरण मिलते हैं। यह वस्तुतः प्रत्यय-संयोगी य- कर्मवाच्य का विस्तार है। यथा—संख बाजे बलाइ भागे, जब शंख बजती है (बजाई जाती है) तो बला भाग जाती हैं; मरद मुए नाम के निमरद मुए पेट के, मर्द नाम के लिए मरता है (और) निमर्द पेट के लिए। आधुनिक भोजपुरी में अब इस प्रकार के वाक्यों का प्रयोग नहीं होता।

[ङ] काल

§ ५०६ उत्पत्ति की दृष्टि से भोजपुरी क्रियापद के काल का निम्नलिखित वर्गीकरण किया जा सकता है। क्रम से काल-संख्या कोष्ठ में दी जायगी।

(क) सरल या मौलिक काल (Simple Tenses)
(a) मूलात्मक काल (Radical Tense) (१)
(b) स् > ह्- भविष्य या प्रत्यय संयोगी भविष्यत् (२)
(c) कृदन्तीय काल (Participial Tenses)
(i) साधारण या नित्य अतीत (Simple Past) (३)
(अ) ल्-रहित
(आ) -ल्-सहित
(ii) साधारण या व- भविष्यत् (Simple Future) (४)
(iii) कारणात्मक अतीत (Past Conjunctive) (५)
(d) ला-युक्त वर्तमान (६)
(ख) मिश्र या या यौगिक काल समूह। [Compound Tenses]

चूँकि मिश्र या यौगिक काल-रचना में सबसे बड़ा हाथ सहायक क्रियाओं का है, अतएव सर्वप्रथम उन्हीं के सम्बन्ध में विचार किया जाता है—

(a) घटमान कालसमूह (Progressive Tense)।

(i) वर्तमान (७)

(अ) घटमान वर्तमान (निश्चयार्थक, (Present Progressive)-बानी सहित।

(आ) घटमान वर्तमान (नकारार्थक) (Present Progressive) नइखीं सहित।

(ii) घटमान अतीत (Past Progressive) (८)।

(iii) घटमान भविष्यत् (Future Progressive) (९)।

(अ) ह-भविष्यत्।

(आ) ब-भविष्यत्।

(b) कारणात्मक या सम्भाव्य काल (Conjunctive Tenses)।

(i) घटमान सम्भाव्य वर्तमान (Present Progressive Conjunctive) (१०)।

(ii) घटमान सम्भाव्य अतीत (Past Progressive Conjunctive) (११)।

(iii) घटमान सम्भाव्य भविष्यत् (Future Progressive Conjunctive) (१२)।

(c) पुराघटित कालसमूह (Perfect Tenses)।

(i) वर्तमान (१३)।

(अ) पुराघटित वर्तमान (Present Perfect) (निश्चयार्थक) -बानी सहित।

(आ) पुराघटित वर्तमान (Present Perfect) (नकारार्थक) -नइखीं सहित।

(ii) पुराघटित अतीत (Past Perfect) (१४)।

(iii) पुराघटित भविष्यत् (Future Perfect) (१५)।

(d) पुराघटित सम्भाव्य (Perfect Conjunctive)।

(i) पुराघटित सम्भाव्य वर्तमान (Present Perfect Conjunctive) (१६)।

(ii) पुराघटित सम्भाव्य अतीत (Past Perfect Conjunctive) (१७)।

(iii) पुराघटित सम्भाव्य भविष्यत् (Future Perfect Conjunctive) (१८)।

क. सरल या मौलिक काल

(a) मूलात्मक काल

§ ५०७ आ० भो० पु० में मूलात्मक काल (निर्देशक प्रकार) के निम्नलिखित रूप हैं—

१. उत्तम पुरुष ए० व० हम : -ईं : चलीं।

उत्तम „ ब० व० हमन (नी) का : -ईं जाँ चलीं जाँ।

२. (क) मध्यम पुरुष आदर रहित ए० व० तें : ॅ : चलुॅ।
मध्यम पुरुष आदर रहित ब० व० तोहन (नी) का : -असन्हि, -असन,
-असँ, -अस
चलसन्हि, चलसन्, चलस, चलस।

(ख) मध्यम पुरुष साधारण ए० व० तु तुँ : अ : चल।
मध्यम ,, ,, ब० व० तोहन (नी) लोग : अ : चल।
(ग) मध्यम ,, आदरार्थक ए० व० रउआँ : ईं : चलीं।
मध्यम ,, ,, ब० व० रउआँ सभ् : ईं : चलीं।
३. (क) अन्य पुरुष आदर रहित ए० व० उ : ओ : चलो।
अन्य ,, ,, ,, ब० व० उन्हन् (नी) का : -असन्हि, -असन्,
-असँ, -अस
चलसन्हि, चलसन्, चलसँ, चलस।

(ख) अन्य पुरुष साधारण ए० व० उ : -अउ : चलउ।
अन्य पुरुष ,, ब० व० उ लोग : -ओ : चलो।
(ग) अन्य पुरुष आदरार्थक ए० व० उहाँका : ईं : चलीं।
अन्य पुरुष ,, ब० व० उहाँ सभ्का : ईं : चलीं।

मूलात्मक काल के रूपों की उत्पत्ति

§ ५०८ साधारण वर्तमान के अर्थ में, मूलात्मक काल का आधुनिक भो० पु० में लोप हो गया है; किन्तु इसके उदाहरण मुहावरों तथा गीतों में मिलते हैं। इसकी उत्पत्ति संस्कृत लट् से हुई है और हिन्दी के इच्छार्थोनक प्रकार या विधिलिङ् की भाँति इसका व्यवहार होता है। यथा—भो० पु० हम देखीं (=हिन्दी : मैं देखूं); भो० पु० उ देखो, (=हि० वह देखे); आदि।

उत्तम पुरुष

§ ५०६ प्रा० भो० पु० के उ० पु० ए० व० में मे चलो तथा ब० व० में हम चलीं मिलता है। इसकी तुलना गुजराती : हुँ चालुं तथा ब० व० अमे चलिए एवं प्राचीन तथा मध्य बँगला के ए० व० मइं, मुइं चलों तथा ब० व० आम्ही 7 आमी चलिए, चली, चलि से की जा सकती है। डा० चटर्जी ने बै० लै० में चलों, चलि की दूसरी व्युत्पत्ति दी है; किन्तु वङ्गीय-साहित्य-परिषद् की पत्रिका में डा० शहिदुल्ला के लेख के पश्चात् डा० चटर्जी इस बात को स्वीकार करते हैं कि प्रा० बँ० के ए० व० मे चलों तथा ब० व० में चलि का व्यवहार होता था। इसी प्रकार असमिया तथा कोसली में भी चलों का प्रयोग मिलता है।

सम्भवतः प्रा० भो० पु० में चलौं का प्रयोग हौं सर्वनाम के साथ होता था; किन्तु बाद में हौं चलौं के स्थान पर मै चलौं का व्यवहार होने लगा। इस चलौं की उत्पत्ति चलामि से हुई है। संस्कृत का -आमि, अप० में औं तथा आधुनिक भाषाओं में -ओं हो गया।

आ० भो० पु० ए० व चलीं (हम चलीं) की उत्पत्ति चल्यते (अस्माभिः या अस्म चल्यते) से हुई है। यही * हमइ, हम चलिअइ, चलिए, चलीं में परिणत हो गया है। चलीं में अनुनासिक का व्यवहार इस भावना से हुआ है कि बहुवचन में क्रियापदों में भी संज्ञापदों की भाँति ही अनुनासिक लगना चाहिए।

ब० व० हमनीका चलीं जां में 'जां' का व्यवहार कदाचित् बहुवचन की भावना को पुष्ट करने के लिए किया गया है। इस 'जां' की उत्पत्ति जाएँ, जाइं से उसी भाँति हुई है जैसे चलीं की।

ऐसा प्रतीत होता है कि लोग इस बात को भूल गये कि हम चलीं वस्तुतः कर्मवाच्य का रूप है और जब हम का प्रयोग एकवचन में होने लगा तो मूल ब० व० के रूप चलीं ने ए० व० के रूप चलौं को बहिष्कृत कर दिया।

मध्यम पुरुष

§ ५१० (क) आदर-रहित तें- कर्ता कारक में साधारण तु (तु-अम्) के साथ-साथ, आदर-रहित तें (त्वया+एन) के प्रयोग के सम्बन्ध में पहले कहा जा चुका है। यह तें भोजपुरी में कर्त्ता कारक में प्रयुक्त होने लगा और लोग इस बात को सर्वथा भूल गये कि उसकी उत्पत्ति करण से हुई है। इसका परिणाम यह हुआ कि प्राचीन अनुज्ञा, म० पु० ए० व० के रूप आदर-रहित अर्थ में इस तें के साथ प्रयुक्त होने लगे। भोजपुरी में -उ प्रत्यय का प्रयोग मध्यम-पुरुष आदर-रहित के लिए होता है, यथा—चलु। प्रा० भोजपुरी प्रत्यय -अहु (चलहु) मैथिली तथा कोसली में भी वर्तमान है। इसकी उत्पत्ति में संस्कृत के मध्यमपुरुष, अनुज्ञा, एकवचन के तीन प्रत्ययों—'परस्मैपद' -अ तथा -हि (चल, *चलहि,' मि० याहि, पाहि, देहि, त्राहि आदि) तथा 'आत्मनेपद' -स्व (चल-स्व, लभस्व) का सहयोग या सम्मिश्रण प्रतीत होता है। यह -स्व प्रा० में -स्सु तथा अप० में सु में परिणत हो गया। आगे चलकर चलसु के औपम्य पर प्रा० भोजपुरी में चलहि, चलहु तथा आ० भोजपुरी में चलु हो गया।

म० पु०, आदररहित, भोजपुरी के रूप

चलसन्हि, चलसन्, चलस, चलसँ (ऽ ऽ) वही हैं जो अन्यपुरुष, आदररहित, बहुवचन के। ऐसा प्रतीत होता है कि अन्यपुरुष आदररहित बहुवचन रूपों का प्रयोग मध्यमपुरुष आदररहित बहुवचन के लिए भी हुआ है। इसकी व्युत्पत्ति, नीचे, अन्यपुरुष के अन्तर्गत देखें।

(ख) मध्यम पुरुष साधारण ए० व०—तु, तुँ (ऽ ऽ)—इसका प्रत्यय -अ (चल) है। आधुनिक बँगला, असमिया, उड़िया तथा हिन्दी का प्रत्यय अ है।

इस ऽअ की उत्पत्ति म० पु० ब० व० अनुज्ञा तथा म० पु० ब० व० निर्देशक के प्रत्ययों के संमिश्रण से निम्नलिखित रूप में हुई है—

सं० चलत + चलथ > चलह् > चलऽ। इसकी उत्पत्ति चलत से भी चलत > चलअ > चलऽ रूप में सम्भव है।

म० पु० साधारण ब० व० का रूप भी -ऽअ से ही सम्पन्न होता है। यथा—तोहन (नी) लोग चलऽ।

(ग) मध्यम पुरुष आदरार्थक रउआँ के लिए -ईं प्रत्यय प्रयुक्त होता है (रउआँ चलीं)। इस चलीं की उत्पत्ति चलन्ति से हुई है।

अन्य पुरुष

§२११ (क) आदररहित : ऊ- इसके साथ -ओ प्रत्यय (ऊ चलो) प्रयुक्त होता है। इसकी उत्पत्ति अन्य पुरुष, अनुज्ञा, ए० व० के रूप चलतु से प्रतीत होती है। यथा—चलतु > चलौ > चलो।

ऐसा प्रतीत होता है कि जब अनुज्ञा तथा निर्देशक के रूप उलट-पलट गये तब यह -ओ निर्देशक का प्रत्यय बन गया। पुनः वर्तमान काल के रूप (चलति > चलइ > चले) तथा भविष्यत् के रूप (चलिष्यति > चलिहिइ > चलिहइ) के अन्तर को स्पष्ट रखने के लिए भी -औ > ओ का व्यवहार किया जाने लगा।

अन्य पुरुष ब० व० आदररहित के रूप उन्हन (नि) का चलसन्हि, चलसन्, चलसँऽ, चलसऽ है। वस्तुतः चलसन्, चलसँऽ तथा चलसऽ रूप चलसन्हि के ही संक्षिप्त रूप हैं और चलसन्हि = चलसि (या चलसु) + अन्हि के। चलसि तथा चलसु की व्युत्पत्ति नीचे दी गई है। जहाँ तक -अन्हि का सम्बन्ध है, यह सम्बन्ध कारक बहुवचन का प्रत्यय है। यथा—घोड़न्हि, घोड़े। बहुवचन प्रत्यय के रूप में -अन्हि (लोगन्हि) का व्यवहार गो० तु० दा० कृत रामचरितमानस में भी मिलता है।

(ख) साधारण : ऊ (ए० व०) -के साथ -असु प्रत्यय (ऊ चलसु) का व्यवहार होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन भोजपुरी (ए० व०) में ऊ चलै का प्रयोग होता था; किन्तु बाद में ऊ चलसि का प्रयोग प्रचलित हो गया। (सम्भवतः चलसि का प्रयोग पहले अतीत काल के सकर्मक के रूप में होता था; मि० को० दे॑खेसि > दे॑खिस्; इसके साथ साथ यहाँ पश्चिमी बँगला की तुलना भी आवश्यक है जहाँ सकर्मक तथा अकर्मक में दो भिन्न प्रत्ययों का प्रयोग होता है। यथा—सकर्मक दिले, निले, मार्ले, को॑र्ले, धो॑र्ले आदि; किन्तु अकर्मक : चो॑ल्लो॑, एलो॑, रो॑इलो॑, आदि। इस चलसि के -सि की उत्पत्ति या तो मा० शे या अ०मा० से < सं० सः से हुई है। यह -सि ही या तो चलतु, चलथ के 'उ' के कारण या शौरसेनी अपभ्रंश के कर्त्ता कारक के रूप सु < सः के कारण भोजपुरी -सु (चलसु) में परिणत हो गया।

(ग) अन्यपुरुष आदरार्थक—उहाँ का चलीं—प्रा० भो० पु० में इसका रूप चलैं (उ चलैं) ८चलन्ति था। यहाँ -अन्ति (भो० पु० -अत) में -न्हिं, न्ह प्रत्यय लगा और अन्त में यह अनुनासिक में परिणत हो गया। इसपर सम्बन्ध के ब० व० आनाम्>ए तथा करण के ब० व० के रूप एभिः>प्रा० -हि का प्रभाव भी परिलक्षित होता है।

(b) स्>ह्- भविष्यत् या प्रत्यय-संयोगी भविष्यत्

§५१२ आ० भो० पु० में मध्यम तथा अन्य पुरुष (आदररहित तथा साधारण) में इसका व्यवहार होता है। नीचे इसके रूप दिये जाते हैं—

म० पु०	आदर रहित	ए० व०	तें :	चलिहे।
म० पु०	,, ,,	ब० व०	तों हन (नि) का :	चलिह-सन्हि,-सन् -सं, -स।
म० पु०	साधारण	ए० व०	तु, तुँ :	चलिह।
म० पु०	,,	ब० व०	तों हन (नि) लोग :	चलिह।
अ० पु०	आदर रहित	ए० व०	उ :	चली।
अ० पु०	,, ,,	ब० व०	उन्हन (नि) का :	चलिहें-सन्हि, -सन् -सं, -स।
अ० पु०	साधारण	ए० व०	उ :	चलिहें।
अ० पु०	,,	ब० व०	उ लोग :	चली।

§५१३ यह प्रत्यय संयोगी स्-भविष्यत् -स, -श, -ह रूप में हिन्दकी (लहंदा), राजस्थानी, (जैपुरी तथा मारवाड़ी), गुजराती, पश्चिमी हिन्दी (ब्रजभाषा, कन्नौजी, बुन्देली) तथा पूर्वी हिन्दी (अवधी तथा बघेली में केवल अन्य पुरुष तथा छत्तीसगढ़ी में सभी पुरुषों) में वर्तमान है। मागधी-प्रसूत भाषाओं तथा बोलियों में भो० पु० के अतिरिक्त यह मगही (त० भविष्यत् के अतिरिक्त रूप में) अन्य तथा मध्यम पुरुष एवं मैथिली तथा आधुनिक बँगला में भविष्यत् (अनुज्ञा) रूप में वर्तमान है। केवल असमिया तथा उड़िया में इसका लोप हो गया है।

जहाँ तक भो० पु० का सम्बन्ध है, यहाँ भी स>ह -भविष्यत्, मध्यम पुरुष में, मैथिली तथा बंगला की भाँति ही बनता है। [यह भविष्यत् (अनुज्ञा) के रूप में ही आता है] किन्तु अन्यपुरुष में यह शुद्ध भविष्यत् का ही भाव प्रकट करता है।

स् या ष् का 'ह' में परिवर्तन वस्तुतः पश्चिमी भाषाओं एवं बोलियों की विशेषता है, किन्तु इसकी छाप पूरब की भाषाओं एवं बोलियों पर स्पष्टरूप से दीख पड़ती है।

उत्पत्ति—

§५१४ म० पु० आदररहित ए० व० चलिहे की उत्पत्ति चलिष्यसि से निम्नलिखित रूप में हुई है—

चलिष्यसि>*चलिहसि>*चलिहहि>*चलिहइ>चलिहे।

इसी प्रकार म० पु०, आदररहित, ब० व० का निर्माण निम्न प्रकार से हुआ है—

चलिहे>चलिह+सन्हि। -सन्हि की व्युत्पत्ति ऊपर मूलात्मक काल के अन्तर्गत दी जा चुकी है।

म० पु०, साधारण, ए० व० तथा ब० व० की उत्पत्ति चलिष्यथ से निम्नलिखित रूप में हुई है—

चलिष्यथ>चलिहऽ। पहले इसका प्रयोग केवल म० पु० के ब० व० में होता था, किन्तु अब एकवचन तथा बहुवचन, दोनों में इसका व्यवहार होने लगा है।

§ ५.१५ आदररहित, ए० व०, अन्यपुरुष चली की उत्पत्ति चलिष्यति से निम्नलिखित रूप में हुई है—

चलिष्यति>*चलिहिइ>चली। इसी प्रकार आदररहित ब० व० अन्यपुरुष चलिहें सन्हि=चलिहें+सन्हि। यह नया रूप है। चलिहें की उत्पत्ति सम्भवतः चलिष्यन्ति से हुई है।

अन्यपुरुष, ए० व०, साधारण का रूप चलिहें वस्तुतः वही है जो आदररहित अन्य-पुरुष बहुवचन का; किन्तु अन्यपुरुष, ब० व०, साधारण चली की उत्पत्ति सम्भवतः * चल्यताम् से निम्नलिखित रूप में हुई है—*चल्यताम्>*चलिऔ>चली। ऐसा प्रतीत होता है कि उत्तमपुरुष के इसी प्रकार के मूलात्मक काल के कर्मवाच्य के रूपों का भी इस परिवर्तन में हाथ है।

(c) कृदन्तीय काल

(i) साधारण या नित्य अतीत

§ ५.१६ भोजपुरी में इसके दो रूप मिलते हैं—(अ) ल्- रहित अतीत तथा (आ) ल्- सहित अतीत। पहले ल्- रहित अतीत के रूपों पर विचार किया जायगा।

(अ) ल्- रहित अतीत

§ ५.१७ अतीत काल में ल- रूपों का होना वस्तुतः मागधी-प्रसूत भाषाओं एवं बोलियों की विशेषता है, किन्तु पश्चिमी अपभ्रंश के प्रभाव के कारण इनमें ल- रहित रूप भी आ गये हैं। डा० चटर्जी ने प्राचीन तथा मध्ययुग की बँगला से अनेक उद्धरण देकर इस बात को सिद्ध किया है। (वै० लैं० § ६८७-८८)।

§ ५.१८ नीचे √देख् सकर्मक धातु के रूप दिये जाते हैं। वस्तुतः भोजपुरी में अकर्मक तथा सकर्मक, दोनों के रूप, एक ही प्रकार से चलते हैं; क्योंकि दोनों में एक ही प्रत्ययों का प्रयोग होता है।

पुंलिङ्ग

उ० पु०		ए० व०	हम :	देखुईं।
,, ,,		ब० व०	हमन् (नि) का :	देखुइँ जाँ।
म० पु०	आदररहित	ए० व०	तैं :	देखुए
,, ,,	,, ,,	ब० व०	तोहन् (नि) का :	देखुअ-सन्हि-, सन्-, सँऽ-, सऽ
म० पु०	साधारण	ए० व०	तु, तु :	देखुअऽ।
,, ,,	,,	ब० व०	तोहन् (नि) लोग :	देखुअऽ।

म० पु०	आदरार्थक	ए० व०	रउआँ	: देँखुईं।
,, ,,	,,	ब० व०	रउआँ सभ्	: देँखुईं।
म० पु०	आदररहित	ए० व०	सँ	: देँखुए।
,, ,,	,, ,,	ब० व०	उन्हन् (नि) का	: देँखु-अन् सन्हि, -अन्सन्, -अन्स -अन्स।
म० पु०	साधारण	ए० व०	स	: देँखु-अनि।
,, ,,	,,	ब० व०	सलोग	: देँखुए।
म० पु०	आदरार्थक	ए० व०	उहाँ का	: देँखुईं।
,, ,,	,,	ब० व०	उहाँ सभ् का	: देँखुईं।

§ ५१६ निम्नलिखित रूप केवल स्त्रीलिङ्ग में मिलते हैं—

म० पु०	आदररहित	ए० व०	तेँ	: पुंलिङ्ग ही जैसा।
,, ,,	,,	ब० व०	तोँहन् (नि) का	: देँखुसन्हि, -सन् -सँ, -स।
म० पु०	साधारण	ए० व०	तु, तुँ	. देँखुऊ
,, ,,	,,	ब० व०	तोँहन् (नि) लोगः	देँखुऊ।
म० पु०	आदररहित	ए० व०	उ	: पुलिङ्ग ही जैसा।
,, ,,	,,	ब० व०	उन्हन् (नि) का	: देँखुइसन्हि, -सनि सँ, -स।

उत्पत्ति

§ ५२० स्पष्ट रूप से देँखु पश्चिमी अपभ्रंश से आया हुआ प्रतीत होता है जहाँ उ वस्तुतः कर्ता (पुलिंग या नपुंसक लिङ्ग) एकवचन का रूप है। इस सम्बन्ध में इस बात को स्मरण रखना आवश्यक है कि जब अन्य मागध भाषाओं तथा कोसली की भाँति भोजपुरी में भी मूल कर्मवाच्य के रूपों का लोप हो गया तब प्राकृत (अपभ्रंश) के कर्मवाच्य के कृदन्तीय रूपों के ढंग पर क्रियापदों का रूप चलने लगा। इन क्रियापदों के निर्माण में मूलात्मक काल से आये हुए विभिन्न पुरुषों के प्रत्यय एवं स ७ ह भविष्यत् काल के प्रत्यय भी जोड़े जाने लगे।

उत्तम पुरुष

§ ५२१ उ० पु० ए० व० देँखुईं = देँखु + ईं जहाँ -ईं < -इउ < -इओ < -इदो < -इवो < -इतः। मूलात्मक काल की उत्पत्ति के स्थान पर ही ईं के अनुनासिक की व्याख्या की जा चुकी है। ब० व० रूप देँखुईं-जां = देँखु + ईं + जाँ। जाँ की उत्पत्ति भी मूलात्मक-काल के अन्तर्गत पहले दी जा चुकी है।

मध्यम पुरुष

§ ५२२ म० पु० आदररहित ए० व० देंखुए = देंखु + ए। यहाँ ए की उत्पत्ति -असि से निम्नलिखित रूप में हुई है—

—असि > —अहि > —ऐ > ए = ए

म० पु०, स्त्रीलिङ्ग, आदररहित ए० व० देंखुउसन्हि = देंखु + उ + स + अन्हि। यहाँ पर 'उ' का आगमन कदाचित् मध्यम पुरुष आदररहित, एकवचन के चलु के 'उ' से हुआ है।

यह उ म० पु० साधारण स्त्री० लिं० ए० व० तथा ब० व० (तु, तुँ : देंखुऊ तथा तोंहन् (नी) लोग : देंखुऊ में भी वर्तमान है; किन्तु वहाँ स्वराघात के कारण यह दीर्घ (ऊ) में परिणत हो गया है।

म० पु० आदररहित पुंलिंग ब० व० देंखु-असन्हि आदि = देंखु + अ + सन्हि। इस अ + सन्हि की व्युत्पत्ति मूलात्मक काल के अन्तर्गत दी जा चुकी है।

अन्य पुरुष

§ ५२३ अन्य पुरुष आदररहित ए० व० तथा म० पु० आदररहित ए० व०, दोनों के रूप देंखुए है। वस्तुतः इन दोनों में एक ही प्रत्यय का प्रयोग हुआ है।

अन्य पुरुष आदररहित ब० व० देंखु-असन्हि आदि = देंखु + अ + सन्हि। यह असन्हि प्रत्यय मूलात्मक काल अन्य पुरुष आदररहित ब० व० के अन्तर्गत आ चुका है।

अन्य पुरुष साधारण ए० व० देंखुअनि = देंखु + अनि। इस अनि की उत्पत्ति सम्बन्ध के बहुवचन के प्रत्यय -आनाम् से हुई है।

अन्य पुरुष, साधारण, ब० व० पुंलिंग देंखुए सम्भवतः कर्मवाच्य का रूप है, अथवा ए, ए की उत्पत्ति अहि से हुई है जो वास्तव में करण का रूप है तथा कर्ता के स्थान पर प्रयुक्त हुआ है। इसी 'ए' के क्रियापद में जोड़ने से देंखुए रूप सम्पन्न हुआ है।

अन्य पुरुष आदररहित स्त्री० लिं० ब० व० देंखुइसन्हि = देंखु + इ + सन्हि। इस 'इ' की उत्पत्ति -इका से निम्नलिखित रूप में हुई है—

—इका > इअ > ई > इ या इ।

टि० म० पु० साधारण तथा आदरार्थ एवं अन्य पुरुष आदरार्थ ए० व० तथा ब० व० के प्रत्यय यहाँ भी वही हैं जो मूलात्मक काल के हैं, अतएव उनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में यहाँ विचार नहीं किया जायगा। इनकी उत्पत्ति के विषय में पहले विचार किया जा चुका है।

(आ) ल- सहित अतीत

§ ५२४ ल- अतीत के सम्बन्ध में डा० चटर्जी ने पूर्णरूप से विचार किया है। (दे०, वैं० लैं० §पृ० ६३७...) बँगला, असमिया तथा उड़िया -इल्-अतीत, बिहारी-अल्-अतीत तथा मराठी -इल्, -अल- अतीत की उत्पत्ति सं० -त, -इत + सं० लघुवाची या विशेषणीय प्रत्यय—ल के विस्तृत रूप -इल, -अल > -इल्ल (-एल्ल), -अल्ल से हुई है। (इनके अतिरिक्त एक -उल प्रत्यय भी था जो वाउुल > भोजपुरी वाउर्, हि० बौरा में वर्तमान) है।

§ ५२५ भोजपुरी में -ल अतीत के निम्नलिखित रूप हैं—

उ० पु०	ए० व०	हम : दे॑खलीं।
,, ,,	ब० व०	हमन (नि) का : दे॑खलीं जाँ।
म० पु० आदररहित	ए० व०	तें : दे॑खले।
,, ,, ,, ,,	ब० व०	तों॑हन् (नि) का : दे॑खल-सन्हि, S S -सन्, -सँ, -स।
,, ,, साधारण	ए० व०	तु, तुँ : S दे॑खल।
,, ,, ,,	ब० व०	तों॑हन (नि) लोग S दे॑खल।
,, ,, आदरार्थ	ए० व०	रउओं : दे॑खलीं।
,, ,, ,,	ब० व०	रउओं सभ् : दे॑खलीं।
अन्य पुरुष आदररहित	ए० व०	उ : दे॑खलसि।
,, ,, ,, ,,	ब० व०	उन्हन (नि) का : दे॑खले- सन्हि, S S -सन्, -सं, -स।
,, ,, साधारण	ए० व०	उ : दे॑खलनि, दे॑खले।
,, ,, ,,	ब० व०	उ लोग : दे॑खल्।
,, ,, आदरार्थ	ए० व०	उहाँ का : दे॑खलीं।
,, ,, ,,	ब० व०	उहाँ सभ्का : दे॑खलीं।

उत्तम पुरुष, म० पु० आदरार्थ, म० पु० आदररहित ए० व०, अन्य पुरुष आदरार्थ तथा आदररहित ए० ब० एवं अन्य पुरुष साधारण व० व० के रूप पुलिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग में समान हैं ; किन्तु अन्य रूप स्त्रीलिङ्ग में बदल जाते हैं। इन्हें नीचे दिया जाता है—

§ ५२६ स्त्रीलिङ्ग

म० पु० आदररहित	ब० व०	तों॑हन् (नि) का दे॑खलु- सन्हि, S S -सन्, -सं, -स।
म० पु० साधारण	ए० व०	तु, तुँ : दे॑खलू।
,, ,, ,,	ब० व०	तों॑हन् (नि) लोग : दे॑खलू।
अ० पु० आदररहित	ब० व०	उन्हन् (नि) का : दे॑खलि सन्हि, S S -सन्, -सं, -स।
,, ,, साधारण	ए० व०	उ : दे॑खली।

§ ५२७ यह काल अतीत के क्षणिक कार्य की ओर इंगित करता है ; यथा—जब् हम् उहाँ गइलीं त कुछु ना दे॑खलीं, जब मैं वहाँ गया तो कुछ नहीं देखा। जब अतीत में किसी लगातार सम्पन्न हुए कार्य का वर्णन करना होता है तो कार्य-प्रदर्शन करनेवाली मुख्य क्रिया

के साथ क्षणिक कार्य प्रदर्शन-करनेवाली क्रिया को जोड़ देते हैं। यथा—हम बइठलीं, मैं बैठा या बैठी; किन्तु हम बइठल् रहलीं, मैं बैठा था या बैठी थी।

§ ५२८ जब यह घटनान्तरापेक्षित रूप में प्रयुक्त होता है तो भविष्यत् सूचक बन जाता है। यथा—जो हम् बजारे गइलीं त तोँहरा खातिर् आम् ले आइबि, यदि मैं बाजार गया तो तुम्हारे लिए आम लाऊँगा।

§ ५२९ इस बात को स्मरण रखना चाहिए कि अकर्मक धातु (यथा—चल्) का, अन्य पुरुष, आदररहित, ए० व० ('ह' के साथ) में एक अतिरिक्त रूप चलल् भी मिलता है; किन्तु आ० मो० पु० में देँखलसि के औपम्य पर चललसि का भी व्यवहार होता है। इसकी कोसली (अवधी) से तुलना की जा सकती है जहाँ अकर्मक तथा सकर्मक में दो भिन्न प्रकार के प्रत्यय प्रयुक्त होते हैं। इसी प्रकार से पश्चिमी बँगला में भी अकर्मक तथा सकर्मक में दो भिन्न प्रकार के प्रत्यय व्यवहृत होते हैं; किन्तु अब धीरे-धीरे इसका लोप होने लगा है और एक ही प्रकार के प्रत्यय दोनों प्रकार के क्रियापदों के लिए प्रयुक्त होने लगे हैं।

उत्पत्ति

§ ५३० ऊपर के उदाहरण में मूल धातु देँखल् है और उसीमें विभिन्न प्रत्यय जोड़कर रूप बनाये गये हैं। ल-सहित तथा ल-रहित अतीत में एक ही प्रकार के प्रत्यय लगते हैं। इनकी उत्पत्ति ल रहित अतीत के अन्तर्गत दी जा चुकी है।

§ ५३१ ला-सहित अतीत में हा, हाँ जोड़ने से जो क्रियापद सम्पन्न होता है उसका यह अर्थ होता है कि कार्य की समाप्ति कुछ समय पूर्व ही हुई है। हा, हाँ वस्तुतः अव्यय हैं और इनका अर्थ है, 'यहाँ या 'अभी'। 'हाँ' में अनुनासिक सम्भवतः उत्तम पुरुष या आदरार्थक क्रियापदों से आया है।

§ ५३२ इसके रूप नीचे दिये जाते हैं—

उ० पु०		ए० व०	हम	: देँखलीं हाँ।
„		ब० व०	हमन् (नि) का	: देँखलीं हाँ जाँ।
म० पु०	आदररहित	ए० व०	तेँ	: देँखलेँ-हा।
„ „	„	ब० व०	तोँहन् (नि) का	: S देँखल-हा -सन्हि, S S -सन्, -सं, -स।
म० पु०	साधारण	ए० व०	तु, तुँ	: S देँखल -हा।
„ „	„	ब० व०	तोँहन् (नि) लोग	: S देँखल -हा।
„ „	आदरार्थ	ए० व०	रउआँ	: देँखलीं -हाँ।
„ „	„	ब० व०	रउआँ सभ्	: देँखलीं- हाँ।
अन्य पुरुष	आदररहित	ए० व०	ह	: देँखलसि-हा।
„ „	„ „	ब० व०	उन्हन् (नि) का	: देँखलेँ हा-सन्हि, S S -सन्, -सं, -स।

अन्य पुरुष	साधारण	ए० व०	उ	: देखलनि -हाँ,
				: देखलें -हा ।
„ „	„	ब० व०	उलोग	: देखल् -हा ।
„ „	आदरार्थ	ए० व०	उहाँ का	: देखली-हाँ ।
„ „	„	ब० व०	उहाँ सभ् का	: देखलीं -हाँ ।

§ ५.३३ निम्नलिखित रूप केवल स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान हैं—

म० पु०	आदररहित	ब० व०	तोंहन् (नि) का	: देखलु हा -सन्हि, ऽ ऽ -सन्, -सं, -स ।
म० पु०	साधारण	ए० व०	तु, तुँ	: देखलु -हा ।
„ „	„	ब० व०	तोंहन् (नि) लोग	: देखलु-हा ।
अ० पु०	आदररहित	ब० व०	उन्हन् (नि) का	: देखली-हा-सन्हि, ऽ ऽ -सन्, सं- -स ।
„ „	साधारण	ए० व०	उ	: देखली-हा ।

(ii) साधारण या ब- भविष्यत्।

§ ५.३४ भो० पु० में साधारण भविष्यत् के निम्नलिखित रूप हैं—

उत्तम पुरुष		ए० व०	हम	: देखबि ।
„ „		ब० व०	हमन् (नि) का	: देखबि-जों ।
म० पु०	आदररहित	ए० व०	तें	: देखबें ।
„ „	„ „	ए० व०	तोंहन् (नि) का	: देखब -सन्हि, ऽ ऽ -सन्, -सं, -स ।
„ „	साधारण	ए० व०	तु, तुँ	: ऽ देखब ।
„ „	„	ब० व०	तोंहन (नि) लोग	: ऽ देखब ।
„ „	आदरार्थक	ए० व०	रउआँ	: देखबि ।
„ „	„	ब० व०	रउआँ सभ्	: देखबि ।
अन्य पु०	„	ए० व०	उहाँ का	: देखबि ।
„ „	„	ब० व०	उहाँ सभ् का	: देखबि ।

अन्य पुरुष, आदररहित तथा साधारण ए० व० एवं ब० व० में स>ह भविष्यत् के रूप व्यवहृत होते हैं, ब- रूप नहीं।

§ ५.३५ निम्नलिखित रूप केवल स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान हैं—

म० पु०	आदर रहित	ब० व०	तोंहन् (नि) का	: देखबु -सन्हि, ऽ ऽ -सन्, सं, -स ।
„ „	साधारण	ए० व०	तु, तुँ,	: देखबू ।
„ „	„	ब० व०	तोंहन् लोग	: देखबू ।

§ ५३६ यह काल भविष्य के कार्य की ओर संकेत करता है। यथा—हम मिठाई खाइबि, 'मैं मिठाई खाऊँगा'। इसकी तुलना में घटमान भविष्यत् (Future Progressive) भविष्य में होते रहनेवाले कार्य की ओर संकेत करता है। यथा—जब तुँ अइब त हम् खात् रहबि, जब तुम आओगे तब मैं खाता रहूँगा तथा पुराघटित भविष्यत् [Future Perfect] भविष्य में पूर्ण होनेवाले कार्य का उल्लेख करता है। यथा—जब तु अइब त खइले रहबि, जब तुम आओगे तो मैं खा चुका रहूँगा।

§ ५३७ उत्पत्ति

बँगला, उड़िया तथा असमिया में भविष्यत् काल का मुख्य प्रत्यय -इब तथा कोसली एवं बिहारी में -अब है। इसकी उत्पत्ति संस्कृत के भविष्यत् कर्मवाच्य कृदन्तीय रूप -तव्य या -इतव्य > प्रा० -अव्व, -अब्व -एव्व तथा अन्य रूपों से हुई है। (पिशल §५७०)। यह प्रत्यय आधुनिक आर्यभाषाओं में भविष्यत् काल के साथ साथ अनिश्चित आज्ञा-सम्बन्धी भाव प्रकट करता है; किन्तु अर्थपरिवर्तन के कारण अब यह साधारण भविष्यत् काल का भाव प्रकट करने लगा है।

§ ५३८ ऊपर के उदाहरण में मूल शब्द देँखब है और उसी में विभिन्न प्रत्यय जोड़कर रूप बनाये गये हैं। उत्तम, मध्यम तथा अन्य पुरुषों के पुंलिङ्ग एवं स्त्रीलिङ्ग एकवचन तथा बहुवचन के प्रत्यय वही हैं जो साधारण अतीत के हैं। इन प्रत्ययों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में पहले विचार किया जा चुका है।

(iii) कारणात्मक अतीत (Past conjunctive)

§५३९ कारणात्मक अतीत के रूप नीचे दिये जाते हैं—

उ० पु०		ए० व०	हम	:	देँखितीं।
" "		ब० व०	हमन् (नि) का	:	देँखितीं जाँ।
म० पु०	आदररहित	ए० व०	तेँ		देँखिते।
" "	"	ब० व०	तोँहन् (नि) का	:	देँखित-सन्हि, -सन्, -सँ- -स।
म० पु०	साधारण	ए० व०	तु, तुँ	:	देँखित।
" "	"	ब० व०	तोँहन् (नि) लोग	:	देँखित।
" "	आदरार्थ	ए० व०	रउआँ	:	देँखितीं।
" "	"	ब० व०	रउआँ सम्	:	देँखितीं।
अ० पु०	आदररहित	ए० व०	उ	:	देँखित्
" "	"	ब० व०	उन्हन् (नि) का	:	देँखिते-सन्हि, -सन्, -सँ -स
" "	साधारण	ए० व०	ऊ	:	देँखित्।
" "	"	ब० व०	ऊ लोग	:	देँखित्।

अ० पु० आदरार्थ	ए० व०	उहाँ का :	देंखितीं
,, ,, ,,	ब० व०	उहाँ सभ् का :	देंखितीं

§५४० निम्नलिखित रूपों का व्यवहार केवल स्त्रीलिङ्ग में होता है—

म० पु० आदररहित	ब० व०	तोंहन् (नि) का :	देंखितु -सन्हि, -सन्, -सँ, -स।
,, ,, साधारण	ए० व०	तु, तुँ :	देंखितू।
,, ,, ,,	ब० व०	तोंहन् (नि) लोग :	देंखितू।
अ० पु० आदर रहित	ए० व०	उ :	देंखिति।
,, ,, ,, ,,	ब० व०	उन्हन् (नि) का :	देंखिति-सन्हि -सन्, -सँ -स।
,, ,, साधारण	ए० ब०	उ :	देंखिती या देंखिति।

§५४१ यह काल उस कार्य का द्योतक है जो अतीत में हुआ होता; किन्तु जो वस्तुतः हुआ नहीं। यथा—जो हम् तनकी पहिले चलल् रहितीं त टीसन् पर गाड़ी मिलि जाइति, यदि मैं थोड़ा पहले चला होता, तो स्टेशन पर गाड़ी मिल जाती। तु, तुँ अइसन् काम् करित कि हम् उहाँ से भागि जइतीं, तुम ऐसा काम करते कि मैं वहाँ से भाग जाता।

घटमान सम्भाव्य अतीत (Past progressive conjunctive), (यथा—जो तु, तुँ खात् ना रहित त हम् वे पिटलें ना छोंड़ितीं, 'यदि तुम खाते न होते तो मैं तुम्हें पीटे बिना न छोड़ता') तथा पुरा सम्भाव्य अतीत (Future perfect conjunctive) (यथा—जो तु, तुँ ई अपने कइले रहित त ठीक ना भइल रहित, जो तुम इसे स्वयं किये रहते तो ठीक नहीं हुआ होता) से तुलना करने पर यह काल किसी कार्य की समाप्ति अथवा असमाप्ति की सूचना न देकर केवल यह भाव प्रकट करता है कि कार्य अतीत में हुआ ही नहीं।

उत्पत्ति

§५४२ मूल शब्द देंखित् है जो = देंख् + इत्। -अत् (जैसा कि देंखत् में है) तथा -इत (जैसा कि देंखित् में है) की उत्पत्ति वस्तुतः शतृ -अन्त से हुई है; किन्तु जहाँ -अत मिश्रित-कालनिर्माण में सहायक होता है (यथा—देखत् रही आदि) वहाँ -इत के 'इ' की उत्पत्ति अपभ्रंश के अधिकरण कारक के प्रभाव से अपिनिहित (Epenthesis) रूप में हुई है और यह कारणात्मक अतीत (Past conjunctive) के निर्माण में सहायक होता है। इस सम्बन्ध में इस बात को स्मरण रखना चाहिए कि बँगला में शतृ का -इत्- रूप ही व्यवहृत होता है।

§५४३ इस देंखित में ही विभिन्न प्रत्यय जोड़कर रूप बनाये जाते हैं। यहाँ भी उत्तम पुरुष, मध्यम पुरुष तथा अन्य पुरुष, स्त्रीलिंग, पुंलिंग एवं एकवचन, बहुवचन के प्रत्यय वही हैं जो साधारण अतीत के हैं। इनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में पहले विचार किया जा चुका है।

(d) ला-युक्त वर्तमान

§५४४ यह ला-युक्त वर्तमान बनारस, आजमगढ़ की पश्चिमी एवं गोरखपुर की उत्तरी भो० पु० में मिलता है। यथा—हम् देखिला, मैं देखता हूँ।

बनारसी बोली में तेगअली द्वारा लिखित 'बदमाश दर्पण' (१८९९ में प्रकाशित) में इस ला-वर्तमान के अनेक उदाहरण उपलब्ध हैं, यथा—

भौं चुमि (लें इला) के हु सुन्नर जें (पाइला)।
हम त ऊ हईं जें ओंठ् पर तरवारि (उठाइला)।
हम उनसे पुछलीं जें आँख् में सुर्मा काहें बदें (लगाइला)।
त ऊ हँसि कें कहलें जें छुरि पत्थल पर (चटाइला)।

"जब मैं किसी सुन्दर व्यक्ति को पाता हूँ तो उसकी भौंहों को चूम लेता हूँ। मैं वह व्यक्ति हूँ कि होंठों पर तलवार उठा लेता हूँ। मैंने उनसे (माशूक या प्रिय) से पूछा कि आँखों में सुर्मा क्यों लगाते हो, तो उन्होंने हँसकर उत्तर दिया कि छूरी (चाकू) को पत्थर पर तेज करता हूँ।"

§५४५ इस ला-वर्तमान का सम्बन्ध मराठी में प्रसिद्ध ल-भविष्य से प्रतीत होता है (यथा-मराठी—तो करेल्, वह करेगा)। यह राजस्थान की भीली, मारवाड़ी तथा जैपुरी एवं नेपाली, गढ़वाली तथा कुमायूँ की बोलियों में भी वर्तमान है। क्रियापदों के प्रत्यय स्वार्थे-लि के रूप में यह प्राचीन तथा मध्ययुग की बँगला में भी मिलता है (यथा—श्रीकृष्णकीर्त्तन : करिहली, तुम करोगे; दिहली, तुम दोगे। (बैं० लैं० §७२८)।

ब्लाश ने अपने ग्रंथ लैंग मराठे' (§२४२) में ल-भविष्य (जिसका प्रतिनिधि भो० पु० का 'ला' है) की उत्पत्ति संस्कृत के√ला, लेना धातु से की है। इसीमें -त-प्रत्यय जोड़कर विशेषण का रूप लात सम्पन्न होता है और इसी से आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं में ला आया है; किन्तु इसकी उत्पत्ति संस्कृत√लग्, 'लगना, 'स्पर्श करना' से भी सम्भव है। इसी धातु से भो० पु० तथा अन्य भाषाओं का लागि परसर्ग उत्पन्न हुआ है। अतीत कृदन्तीय रूप *लगित से *लइअ और इस लइअ से ला की उत्पत्ति प्रतीत होती है। (लइअ का अन्तिम अक्षर या एकाच् स्वराघात (रहित है।) यह ला भो० पु० के मूलात्मक काल (प्राचीन वर्तमान) के साथ जोर देने के लिए संयुक्त किया जाने लगा।

सहायक क्रिया

§५४६ जैसा कि पहले कहा जा चुका है, मिश्र अथवा यौगिक काल के निर्माण में सहायक क्रिया का व्यवहार किया जाता है। इनके सम्बन्ध में यहाँ विचार किया जाता है। आधुनिक भो० पु० में ह, हो, रह तथा बाट का सहायक क्रिया के रूप में प्रयोग होता है। बँगला में इनके अतिरिक्त दो और सहायक क्रियायों आछ् (असमिया आछ् तथा उड़िया अछ्) तथा थाक् एवं मैथिली में-छ् और थीक् का व्यवहार होता है। मगही में अछ् या छ् का प्रयोग तो नहीं होता; किन्तु थीक् वहाँ भी वर्तमान है।

§५४७ मैथिली तथा बँगला में अतिप्रचलित अछ् तथा आछ् धातु का सीमित अर्थ में प्राचीन कोसली तथा भो० पु० में प्रयोग होता था। (आछ् का प्रयोग 'उक्तिव्यक्तिप्रकरण' की कोसली में मिलता है, दे०, पृ० १०, ११)। परसर्गारम्भ में भो० पु० में प्रयुक्त अछइत्

तथा 'रामचरितमानस' के अछत् शब्द भी इसकी पुष्टि करते हैं। डा० चटर्जी ने अपनी पुस्तक वैं० लैं० पृ० १६७ में इस क्रियापद का प्रयोग कबीर के पद की एक पंक्ति में किया है जो इस प्रकार है—

अछलों मन बैरागी, 'मेरा मन वैरागी था'; (दे० ज्ञानेन्द्र मोहनदास का बँगला अभिधान, कलकत्ता, सन् १३२३, का 'आछ्' शब्द)। बँगला की भाँति ही, यह धातु गुजराती तथा राजस्थान की कतिपय बोलियों में भी वर्तमान है। इसके अतिरिक्त यह पहाड़ी बोलियों में भी उपलब्ध है। मराठी में इसने असणे का रूप धारण कर लिया है जहाँ छ्, स् में परिवर्तित हो गया है।

§ ५४८ प्रो० टर्नर ने इसकी व्युत्पत्ति आक्षेति दी है जो प्राकृत में *अच्छेति, अच्छै एवं आ० भा० आ० भा० में आछे, अछै, छे, तथा छै में परिवर्तित हो गया है; किन्तु डा० चटर्जी के अनुसार इसकी उत्पत्ति भारोपीय *√एस् + विकरण स्के- 7 सं० च्छ् से हुई है। इस प्रकार भारोपीय * एस-स्के-ति 7 सं० * अच्छति, प्रा० अछै, अप० तथा आ० भा० आ० भा० आछे।

§ ५४९ धातु : ह, हो। यह कई आधुनिक भाषाओं एवं बोलियों (यथा बँगला) में एक ही धातु है; किन्तु वास्तव में इनमें दो धातुओं का संमिश्रण हो गया है। इनमें √अह् या √ह् की उत्पत्ति सं० अस् से तथा √हो की सं० भू से हुई है। उत्पत्ति की दृष्टि से इन दो धातुओं का अन्तर मगही (यथा—हल् , हले ∠ √ह तथा हो॑ल, भेल् ∠ √हो, √भे = √भू) की भाँति भोजपुरी में भी वर्तमान है जहाँ हईं ∠ √ह ∠ √अस् तथा भइल् ∠ √भू।

§ ५५० घटमान वर्तमान [Present Progressive] के निर्माण में सहायक क्रिया हईं का प्रयोग बलिया तथा शाहाबाद की आदर्श भोजपुरी से धीरे-धीरे लुप्त हो रहा है और इसके स्थान पर -त्रानी तथा -आनी का प्रयोग प्रचलित हो गया है। हईं का जोरदार रूप [emphatic form] हवईं है और यह आदर्श भोजपुरी में वर्तमान है। हईं के रूप आजमगढ़ की पश्चिमी भोजपुरी में नीचे दिये जाते हैं—

उ०	पु०		ए० व०	हम	:	हईं।
,,	,,		ब० व०	हमहन्	:	हईं।
म०	पु०	आदररहित	ए० व०	तो॑ इं॑	:	हउए।
,,	,,	,,	ब० व०	तो॑ नहन्	:	हउअ।
,,	,,	साधारण	ए० व०	तु	:	हउअ।
,,	,,	,,	ब० व०	तु लो॑ग	:	हउअ।
,,	,,	आदरार्थ	ए० व०	अपने	:	हवईं।
,,	,,	,,	ब० व०	अपने सभ्	:	हवईं।
अन्य	पु०	आदररहित	ए० व०	ऊ	:	हो॑
,,	,,	,,	ब० व०	उनहन्	:	हवएँ

अ० पु०	साधारण	ए० व०	ऊ	:	हुवए॑ ।
,, ,,	,,	ब० व०	ऊलोग	:	हुवएँ ।
,, ,,	आदरार्थक	ए० व०		:	हुवईं॑ ।
,, ,,	,,	ब० व०		:	हुवईं॑ ।

§ ६५१ निम्नलिखित रूप केवल स्त्रीलिङ्ग में मिलते हैं—

म० पु०	आदररहित	ब० व०	:	हुवई ।
,, ,,	साधारण	ए० व०	:	हयू ।
,, ,,	,,	ब० व०	:	हयूँ ।
अ० पु०	,,	ए० व०	:	हुवई ।
,, ,,	,,	ब० व०	:	हुवईं॑ ।

§ ५५२ जोरदार [Emphatic] हुवईं॑ के निम्नलिखित रूप आदर्श भोजपुरी में उपलब्ध हैं। यथा—

हम हुवईं॑, यह मैं हूँ; तु॑ हुवऽ, यह तुम हो; आदि। इसका प्रयोग घटमान वर्तमान [Present Progressive] के रूपों के बनाने में नहीं होता। इस काल में इसके स्थान पर -ग्रानी तथा -आनी सहायक क्रियाएँ व्यवहृत होती हैं।

उ० पु०	:	ए० व०	हम	:	हुवईं॑ ।
,, ,,		ब० व०	हमन् (नि) का	:	हुवईं॑ जाँ ।
अ० पु०	आदर रहित	ए० व०	ऊ	:	हवे
,, ,,	,,	ब० व०	उन्हन् (नि) का	:	हवे, हुवए, -ग्रन्हि, -सँ, -स ।

इसके मध्यम पुरुष (आदररहित, साधारण तथा आदरार्थ) तथा अन्य पुरुष (साधारण एवं आदरार्थ) के रूप वही हैं जो पश्चिमी भोजपुरी के ऊपर के रूप हैं।

§ ५५३ आदर्श भोजपुरी में हो तथा होख्, 'होना' का प्रयोग घटमान सम्भाव्य वर्तमान के रूपों के निर्माण के लिए होता है। वस्तुतः √होख की व्युत्पत्ति देना कठिन है। यह कथन कि होख् = हो + खो, जहाँ हो की उत्पत्ति √भू से तथा खो की उत्पत्ति पालि खलु से हुई है, इसलिए मान्य नहीं है कि खो अपभ्रंश में, 'हु' में, परिवर्तित हो जाता है।

§ ५५४ नकारात्मक सहायक क्रिया नइखे (न + खे) में भी खे वर्तमान है। क्या खो, खे की उत्पत्ति सं० अचेति से हुई है ? यह कहना इसलिए कठिन है कि अचेति क्रियापद संस्कृत में भी अधिक प्रचलित नहीं था।

§५५५ आदर्श भोजपुरी में हो, होख् के निम्नलिखित रूप उपलब्ध हैं—

उ० पु०	ए० व०	हम	:	होईं, होखीं ।
,, ,,	ब० व०	हमन् (नि) का	:	होईं जाँ, होखींजाँ ।

म० पु० आदररहित	ए० व०	तें	: होखु।
,, ,, ,,	ए० व०	तो˘हन (नि) का	: हो˘ख-सन्हि -सन्, -सँ, -स।
म० पु० साधारण	ए० व०	तु, तुँ	: होख।
,, ,, ,,	ब० व०	तो˘हन् लोग	: होख।
,, ,, आदरार्थ	ए० व०	रउआँ	: होईं, होखीं
,, ,, ,,	ब० व०	रउआँ सभ्	: होईं, होखीं
अ० पु० आदररहित	ए० व०	उ	: हो, होखे।
,, ,, ,,	ब० व०	उन्हन (नि) का	: हो˘ख-सन्हि -सन्, सँ, -स।
,, ,, साधारण	ए० व०	उ	: हो˘खु
,, ,, ,,	ब० व०	उ लोग	: हो, होखो, होखे।
,, ,, आदरार्थ	ए० व०	उहाँ का	: होईं, होखीं।
,, ,, ,,	ब० व०	उहाँ सभ् का	: होईं, होखीं।

§५५६ इनके प्रत्यय वही हैं जो मूलात्मक काल के हैं और उनकी व्युत्पत्ति दी जा चुकी है।

§ ५५७ कभी-कभी हो के अतीत तथा भविष्यत् के रूप (हो˘इलीं, हो˘इबि आदि) मिलते हैं; किन्तु आधुनिक आदर्श भोजपुरी में इनके स्थान पर रह सहायक क्रिया का प्रयोग होता है। अतीत तथा भविष्यत् कालों में हो के रूप भी रह् की भाँति ही चलते हैं।

§ ५५८ भोजपुरी तथा बँगला, दोनों में, √रह, 'रहना', धातु का प्रयोग नियमित (regular) तथा सहायक क्रिया के रूप में होता है। इसका प्रयोग अन्य आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं में भी होता है। यथा—मराठी, रहाणें, राह् णें; गुजराती—रहेवुं; सिन्धी—रहणु; पंजाबी—रहिणा, प० हि०—रह् ना, कोसली—रहब। यह दर्द कश्मीरी में भी वर्तमान है।

§ ५५९ इस धातु की व्युत्पत्ति अज्ञात है। यह पालि में अरह-रूप में मिलती है तथा यह जैन ग्रंथों में भी उपलब्ध है। डा० चटर्जा ने इसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में पूर्णतया विचार किया है। (दे०, बैं० लैं० § ७६८)।

§ ५६० नियमित तथा सहायक क्रिया के रूप में √रह् धातु के रूप अतीत काल में साधारण ल- अतीत एवं भविष्यत् काल में साधारण भविष्यत् की भाँति ही चलते हैं। इसके अतीत काल के रूप नीचे दिये जाते हैं—

उ० पु०	ए० व०	हम	: रहलीं।
,, ,,	ब० व०	हमन् (नि) का	: रहलीं -जाँ।
म० पु० आदररहित	ए० व०	तें	: रहले।
,, ,, ,,	ब० व०	तो˘हन् (नि) का	: रहल-सन्हि,

ऽ ऽ
-सन्, -सँ, -स ।

म० पु०	साधारण	ए० व०*	तु, तुँ	: रहल । (ऽ)
" "	"	ब० व०	तोँहन (नि) लोग	: रहल । (ऽ)
" "	आदरार्थ	ए० व०	रउआँ	: रहलीं ।
" "	"	ब० व०	रउआँ सभ्	: रहलीं ।
अन्य पु०	आदररहित	ए० व०	ऊ	: रहल्, रहलखि ।
" "	" "	ब० व०	उन्हन् (नि) का	: रहले-सन्हि

ऽ ऽ
-सन्, सँ, -स ।

" "	साधारण	ए० व०	ऊ	: रहले ।
" "	"	ब० व०	ऊ लोग्	: रहल ।
अ० पु०	आदरार्थ	ए० व०	उहाँ का	: रहलीं ।
" "	"	ब० व०	उहाँ सभ् का	: रहलीं ।

नीचे के रूप केवल स्त्रीलिङ्ग में ही मिलते हैं—

म० पु०	आदररहित	ब० व०	तोँहन् (नि) का	: रहलु-सन्हि

ऽ ऽ
-सन्, -सॅ, -स ।

" "	साधारण	ए० व०	तु, तुँ	: रहलू ।
" "	"	ब० व०	तोँहन् (नि) लोग	: रहलू ।
अ० पु०	आदररहित	ए० व०	ऊ	: रहलि, रहलसि ।
" "	" "	ब० व०	उन्हन् (नि) का	: रहली-सन्हि,

ऽ ऽ
-सन्, -सॅ, -स

" "	साधारण	ए० व०	ऊ	: रहली ।

§५६१ भविष्यत् काल में √रह् के रूप नीचे दिये जाते हैं। यहाँ रह् से रहब् शब्द बन जाता है तथा इसी में प्रत्यय जोड़े जाते हैं—

उ० पु०		ए० व०	हम	: रहबि ।
" "		ब० व०	हमन् (नि) का	: रहबि जाँ ।
म० पु०	आदररहित	ए० व०	तेँ	: रहबे ।
" "	" "	ब० व०	तोँहन् (नि) का	: रहब-सन्हि,

ऽ ऽ
-सन्, सॅ, -स ।

" "	साधारण	ए० व०	तु, तुँ	: रहब । (ऽ)

म० पु०	साधारण	ब० व०	तोहन् (नि) लोग् :	रहब ।
" "	आदरार्थक	ए० व०	रउआँ :	रहबि ।
" "	"	ब० व०	रउआँ सभ् :	रहबि ।
अ० पु०	"	ए० व०	उहाँ का :	रहबि ।
" "	"	ब० व०	उहाँ सभ् का :	रहबि ।

§५६२ अन्य पुरुष आदररहित तथा साधारण (ए० व० एवं ब० व०) में ब>ह-भविष्यत् के रूप प्रयुक्त होते हैं। ये नीचे दिये जाते हैं—

अ० पु०	आदरार्थ	ए० व०	उहाँ का :	रहिहीं ।
" "	"	ब० व०	उहाँ सभ् का :	रहिहीं ।

निम्नलिखित रूप केवल स्त्रीलिङ्ग में मिलते हैं—

म० पु०	आदररहित	ब० व०	तोहन् (नि) का :	रहिहु सन्हि, -सन्, -सँ, -स ।
म० पु०	साधारण	ए० व०	तु, तुँ :	रहिहू ।
" "	"	ब० व०	तु लोग :	रहिहू ।
अ० पु०	आदररहित	ए० व०	उ :	रहिही ।
" "	" "	ब० व०	उन्हन् (नि) का :	रहिहि-सन्हि, -सन्, -सँ, -स ।
" "	साधारण	ए० व०	उ :	रहिही ।

§५६३ √बाट् धातु : यह भी सहायक क्रिया है। बनारस तथा आजमगढ़ की पश्चिमी तथा गोरखपुर की उत्तरी आदर्श भो० पु० में केवल वर्तमान काल में इसका प्रयोग होता है। घटमान काल-समूह (Progressive Tenses) के निर्माण में भी यह सहायक होता है। यथा—(हम बाटी, मैं हूँ; तु बाट, तुम हो, आदि, तथा हम् देखत् बाटी, मैं देखता हूँ या देख रहा हूँ, आदि)। सहायक क्रिया के रूप में बट् का प्रयोग बँगला के केवल अन्य पुरुष वर्तमान काल में होता है। उड़िया में इसका अट् रूप मिलता है और वहाँ भी यह सहायक क्रिया है।

आधुनिक आदर्श भो० पु० में यह धातु केवल वर्तमान काल (साधारण वर्तमान, घटमान वर्तमान, वर्तमान सम्भाव्य एवं पुराघटित वर्तमान) में प्रयुक्त होता है तथा यह -बानी एवं इसके लघु रूप -आनी में परिवर्तित हो जाता है। इसके लघु रूप -आनी, -आनी जाँ, -आर, -आरे, -आ आदि का प्रयोग केवल घटमान वर्तमान काल के रूपों के बनाने में किया जाता है।

अन्य पु०	आदररहित	ए० व०	उ :	रही ।
" "	" "	ब० व०	उन्हन् (नि) का :	रहिहें -सन्हि, -सन्, सँ, -स ।
" "	साधारण	ए० व०	उ :	रहिहें ।
" "	"	ब० व०	उ लोग् :	रही ।

§ ५६४ निम्नलिखित रूप केवल स्त्रीलिङ्ग में मिलते हैं—

म० पु०	आदररहित	ब० व०	तो`हन् (नि) का	:	रहवु -सन्हि, -सन्, -सँ, -स ।
म० पु०	साधारण	ए० व०	तु, तुँ	:	रहवु ।
,, ,,	,,	ब० व०	तो`हन् (नि) लोग्	:	रहवु ।

§ ५६५ वर्तमान-सम्भाव्य-अतीत (Past Progressive Conjunctive) के निर्माण में भी -रह सहायक होता है। तब यह देखित् के औपम्य पर रहित् हो जाता है और इसमें वे ही प्रत्यय जोड़े जाते हैं जो देखित् में। नीचे इसके उदाहरण दिये जाते हैं—

उ० पु०		ए० व०	हम	:	रहितीं ।
,, ,,		ब० व०	हमन् (नि) का	:	रहितीं जाँ ।
म० पु०	आदररहित	ए० व०	तें	:	रहिते ।
,, ,,	,, ,,	ब० व०	तो`हन् (नि) का	:	रहित -सन्हि, -सन्, स, -स ।
,, ,,	साधारण	ए० व०	तु, तुँ	:	रहितं ।
,, ,,	,,	ब० व०	तो`हन् (नि) लोगः		रहित ।
,, ,,	आदरार्थ	ए० व०	रउआँ	:	रहितीं ।
,, ,,	,,	ब० व०	रउआँ सम्	:	रहितीं ।
अ० पु०	आदररहित	ए० व०	उ	:	रहित् ।
,, ,,	,, ,,	ब० व०	उन्हन् (नि) का	:	रहिते -सन्हि, सन्, -सँ -स ।
,, ,,	साधारण	ए० व०	उ	:	रहित ।
,, ,,	,,	ब० व०	उ लोग्	:	रहित् ।

§ ५६६ इसकी उत्पत्ति सं० √वृत् से निम्नलिखित रूप में हुई है—

वर्तते>वट्टति>वट्टै>वाटै>वाड़े>वा। यह वाड़े>, वाड़े>आरे तथा उ० पु० ब० व० में वाड़े>वाड़ीं>वानी। -आनी तथा -आनी जाँ आदि वस्तुतः -वानी आदि के लघु रूप हैं।

§ ५६७ आदर्श भो० पु० में इसके निम्नलिखित रूप हैं—

उ० पु०		ए० व०	हम्	:	-वानी, -आनी ।
,, ,,		ब० व०	हमन् (नि) का	:	-वानी, -आनी जाँ ।
म० पु०	आदररहित	ए० व०	तें	:	-वाड़े, -आरे ।
,, ,,	,,	ब० व०	तो`हन् (नि) का	:	-वाड़, -आर- -सन्हि, -सन्, सँ, स ।

म० पु०	साधारण	ए० व०	तु, तुँ	ऽ ऽ : बाड़, -आर ।
,, ,,	,,	ब० व०	तोह्‍न् (नि) लोग्	ऽ ऽ : -आर, -आर ।
,, ,,	आदरार्थ	ए० व०	रउआँ	: -बानी, -आनी ।
,, ,,	,,	ब० व०	रउआँ सभ्	: -बानी, -आनी ।
अन्य पु०	आदररहित	ए० व०	ऊ	: -बाटे, -आ, -आ ।
,, ,,	,, ,,	ब० व०	उन्हन् (नि) का	: -बाड़े, -आरे -सन्हि ऽ ऽ -सन्, -सँ, -स ।
,, ,,	साधारण	ए० व०	ऊ	: -बाड़े, -आरे ।
,, ,,	,,	ब० व०	ऊ लोग्	: बा, आ ।
,, ,,	आदरार्थ	ए० व०	उहाँका	: -बानी, -आनी ।

§ ५६८ निम्नलिखित रूप केवल स्त्रीलिङ्ग में मिलते हैं—

म० पु०	आदररहित	ब० व०	तोह्‍न् (नि) का	: बाड़ू, -आरू- -सन्हि, -सँ, -स ।
म० पु०	साधारण	ए० व०	तुं, तुँ	-बाड़ू, -आरू ।
,, ,,	,,	ब० व०	तोह्‍न् (नि) लोग्	: -बाड़ू -आरू ।
अ० पु०	आदररहित	ए० व०	ऊ	: बिआ, -इआ ।
,, ,,	,,	ब० व०	उन्हन् (नि) का	: बाड़ी, -आरी- -सन्हि, ऽ ऽ -सन् ,-सँ, -स ।
अ० पु०	साधारण	ए० व०	ऊ	: -बाड़ी, -आरी ।
,, ,,	,,	ब० व०	ऊ लोग्	: -बा, -आ ।

§ ५६९ √नइख्, 'न होना' नकारार्थक सहायक क्रिया है। इसकी सहायता से केवल नकारात्मक घटमान वर्तमान तथा पुराघटित वर्तमान के रूप सम्पन्न होते हैं। यह क्रिया केवल आदर्श भोजपुरी में ही मिलती है और यह उसकी विशेषताओं में से एक है। इसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में विचार किया जा चुका है। नीचे केवल रूप दिये जाते हैं—

उ० पु०		ए० व०	हम	: नइखीं ।
,, ,,		ब० व०	हमन् (नि) का	: नइखीं जाँ ।
म० पु०	आदररहित	ए० व०	तें	: नइखे ।
,, ,,	,,	ब० व०	तोह्‍न् (नि) का	: नइख -सन्हि, ऽ ऽ -सन् , सँ, -स ।
,, ,,	साधारण	ए० व०	तु, तुँ	: ऽ नइख ।
,, ,,	,,	ब० व०	तोह्‍न् (नि) लोग	: ऽ नइख ।

म० पु०	आदरार्थ	ए० व०	रउआँ	:	नइखीं।
,, ,,	,,	ब० व०	रउआँ सभ्	:	नइखीं।
अ० पु०	आदररहित	ए० व०	ऊ	:	नइखे।
,, ,,	,,	ब० व०	उन्हन् (नि) का	:	नइख- सन्हि, सन्, सँ, -स।
,, ,,	साधारण	ए० व०	ऊ	:	नइखनि, नइखन्हि,
,, ,,	,,	ब० व०	ऊ लोग्	:	नइखे।
,, ,,	आदरार्थ	ए० व०	उहाँ का	:	नइखीं।
,, ,,	,,	ब० व०	उहाँ सभ् का	:	नइखीं।

§ ५७० निम्नलिखित रूप केवल स्त्रीलिङ्ग में मिलते हैं—

म० पु०	साधारण	ए० व०	तु, तुँ	:	नइखु।
,, ,,	,,	ब० व०	तो हन् (नि) लोग	:	नइखु।
अ० पु०	आदररहित	ब० व०	उन्हन् (नि) का	:	नइखी -सन्हि, -सन्, -स, -स।

[ख] मिश्र या यौगिक काल-समूह

(a) घटमान काल-समूह

§ ५७१ साधारण तथा पुराघटित काल-समूह से तुलना करने पर ये कार्य के लगातार होने तथा वर्तमान, अतीत एवं भविष्यत् में उसकी असमाप्ति द्योतित करते हैं। नीचे इनके सम्बन्ध में विचार किया जाता है।

(i) वर्तमान

[अ] घटमान वर्तमान (निश्चयार्थक) -आनी -सहित।

§ ५७२ आदर्श भोजपुरी में निश्चयार्थक घटमान वर्तमान का निर्माण—अत -रूप क्रियापद + सहायक क्रिया बाड़् की सहायता से होता है। आदर्श भोजपुरी में √वृत्त् > बाट् के रूप दिये जा चुके हैं। -अत- क्रियारूप, (यथा—देखत्) अपरिवर्तित रहता है।

§ ५७३ बनारस तथा आजमगढ़ की पश्चिमी एवं गोरखपुर की उत्तरी भोजपुरी में -अत रूप + बाट् (यथा—देखत् + बाट्) प्रयुक्त होता है तथा विभिन्न प्रत्यय -बाट् सहायक क्रिया में जोड़े जाते हैं।

§ ५७४ यह काल उस कार्य की ओर संकेत करता है जो वर्तमान काल में हो रहा है। आधुनिक भोजपुरी में यह वर्तमानकालिक निर्देशक के स्थान पर व्यवहृत होता है। यह भविष्य में होनेवाले कार्य की ओर भी इंगित करता है। यथा—ए बारी कलकत्ता के जाई? इस बार कलकत्ता कौन जायगा? ए बारी हम नु जात्-आनी या जातानी; इस बार मैं जा रहा हूँ।

[आ] घटमान वर्तमान (नकारार्थक)—नइखीं-सहित।

§ ५७५ आदर्श भोजपुरी में नकारात्मक घटमान वर्तमान के रूप, —अत क्रिया-रूप + नकारार्थक सहायक क्रिया नइख की सहायता से बनते हैं। आदर्श भोजपुरी में नइख सहायक क्रिया के रूप पहले दिये जा चुके हैं। -अत- क्रियारूप (यथा-देखत) अपरिवर्तित रहता है।

(ii) घटमान अतीत

§ ५७६ आदर्श भोजपुरी में घटमान अतीत के रूप, —अत- क्रियारूप + रह् धातु के ल- सहित अतीत के रूपों की सहायता से बनते हैं। रह् धातु के साधारण ल-सहित अतीत के रूप [रहलीं, रहलीं जाँ, आदि] पहले दिये जा चुके हैं। अत क्रिया-रूप (यथा—देखत्) अपरिवर्तित रहता है।

(iii) घटमान भविष्यत्

§ ५७७ आदर्श भोजपुरी में घटमान भविष्यत् के रूप, —अत क्रियारूप + रह् धातु के साधारण ब- भविष्यत् एवं स > ह- भविष्यत् के रूपों की सहायता से बनते हैं। रह् धातु के भविष्यत् काल के रूप [रहबि, रहबि-जाँ, आदि] पहले दिये जा चुके हैं। -अत- क्रिया रूप (यथा—देखत्) अपरिवर्तित रहता है।

(b) कारणात्मक या सम्भाव्य काल।

(i) घटमान सम्भाव्य वर्तमान।

§ ५७८ आदर्श भोजपुरी में घटमान सम्भाव्य वर्तमान के रूप, -अत- क्रियारूप + हो सहायक क्रिया के रूपों की सहायता से बनते हैं। हो धातु के रूप [होईं, होखीं; होईं जाँ, होखींजाँ, आदि] पहले दिये जा चुके हैं। -अत्- क्रियारूप (यथा—देखत्) अपरिवर्तित रहता है।

§ ५७९ यह काल निरन्तर होनेवाले सम्भाव्य तथा असम्भाव्य कार्य की ओर इंगित करता है। यथा—जो हम तोँहरा के धोखा देत् होईं या होखीं त मरि जाईं, जो मैं तुझे धोखा देता होऊँ तो मर जाऊँ।

(ii) घटमान सम्भाव्य अतीत

§ ५८० आदर्श भोजपुरी में घटमान सम्भाव्य अतीत के रूप, -अत- क्रिया रूप + रह् धातु के सम्भाव्य रूपों की सहायता से बनता है। रह् के सम्भाव्य के रूप [रहितीं, रहितीं जाँ, आदि] पहले दिये जा चुके हैं। '-अत- क्रियारूप (यथा—देखत) अपरिवर्तित रहता है।

§ ५८१ यह काल ऐसे निरन्तर होनेवाले कार्य का उल्लेख करता है जिसकी सम्भावना थी; किन्तु जो वस्तुतः हुआ नहीं। यथा—जो हम् उनुका के ओह घरी देखत् रहितीं त तोँहरा से जरूर कहले रहितीं, यदि मैं उन्हें उस समय देखता रहता तो तुमसे अवश्य कहा रहता।

(iii) घटमान सम्भाव्य भविष्यत्

§ ५८२ आदर्श भोजपुरी में घटमान सम्भाव्य भविष्यत् के रूप, घटमान भविष्यत् के पूर्व जो लगाकर बनाये जाते हैं।

§ ५८३ यह काल भविष्य में होनेवाले सम्भाव्य कार्य की सूचना देता है। यथा—जो हम् खात् रहबि त तोँहरो के देबि, यदि मैं खाता रहूँगा तो तुम्हें भी दूँगा। इस काल

का प्रयोग केवल शिक्षित लोगों तक ही सीमित है; अशिक्षित जनता इसके स्थान पर केवल साधारण भविष्यत् काल का ही प्रयोग करती है। यथा—जो हम् खाइबि त तो हरो के देबि, यदि मैं खाऊँगा तो तुम्हे भी दूँगा।

(c) पुराघटित कालसमूह

§ ५८४ यह वर्तमान, अतीत अथवा भविष्य के कार्य की पूर्णता की सूचना देता है। यह पुराघटित कृदन्तीय रूप (Perfect Participle) -अल (यथा—देखल्) की सहायता से बनता है। जब इसके साथ सहायक क्रिया संयुक्त होती है तो यह -अल (देखल्), -अले (देखले) में परिणत हो जाता है। -अले का 'ए' वस्तुतः अधिकरण कारक से आया है। इस प्रकार भोजपुरी देखले की उत्पत्ति *देक्खल्लहि से हुई है।

§ ५८५ अकर्मक क्रियापदों में यह -अल-रूप, जो वास्तव में कर्त्ता की विशेषता बतलानेवाला विशेषण है, -अले (अधिकरण के ए- रूप) में नहीं परिणत होता। इस प्रकार हम् चलल् बानी, मैं चल चुका हूँ; हम् सुतल रहलीं, मैं सोया था; आदि का व्यवहार होता है; किन्तु सकर्मक क्रियाओं के अत्यधिक प्रचार के कारण कभी-कभी ए-अधिकरण का प्रयोग अकर्मक क्रियाओं में भी हो जाता है। यथा—चलले रहलीं। इस प्रकार के प्रयोग आदर्श भोजपुरी में असाधु ही समझे जाते हैं।

(i) वर्तमान

(अ) निश्चयार्थक पुराघटित वर्तमान -बानी, आनी सहित।

§ ५८६ आदर्श भोजपुरी में निश्चयार्थक पुराघटित वर्तमान के रूप, क्रिया-रूप -अले + सहायक क्रिया -बानी, -आनी की सहायता से बनते हैं। आदर्श भोजपुरी में √वृत् (> बानी, आनी; आदि) के रूप पहले दिये जा चुके हैं। -अले (देखले) क्रियारूप अपरिवर्तित रहता है।

§ ५८७ इसमें तथा साधारण अतीत में यह अन्तर है कि जहाँ यह उस कार्य की सूचना देता है जिसका प्रभाव वर्तमान काल तक चलता रहता है, वहाँ साधारण अतीत उस कार्य की सूचना देता है जिसका वर्तमान पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। यथा—हम् मिठाई खइले बानी, मैं मिठाई खा चुका हूँ, अर्थात् मिठाई अभी भी मेरे पेट में है; किन्तु हम् मिठाई खइलीं, 'मैंने मिठाई खाई' का अर्थ है कि अतीत में मैंने मिठाई खाई थी।

(आ) नकारार्थक पुराघटित वर्तमान नइखीं सहित।

§ ५८८ आदर्श भोजपुरी में नकारार्थक पुराघटित वर्तमान के रूप, क्रियारूप -अले + सहायक क्रिया नइख् की सहायता से बनते हैं। आदर्श भोजपुरी में नइख् के रूप पहले दिये जा चुके हैं। -अले (देखले) क्रियारूप अपरिवर्तित रहता है। यथा—हम् देखले नइखीं, मैंने देखा नहीं है, आदि।

(ii) पुराघटित अतीत

§ ५८९ आदर्श भोजपुरी में पुराघटित अतीत के रूप, क्रिया-रूप -अले + रह् सहायक क्रिया के ल- सहित अतीत के रूपों की सहायता से बनते हैं। रह् सहायक क्रिया के ल-सहित अतीत के रूप (रहलीं, रहलीं जाँ, आदि) पहले दिये जा चुके हैं। -अले (देखले) क्रिया-रूप अपरिवर्तित रहता है।

§५६० इसमें तथा साधारण अतीत में यह अन्तर है कि जहाँ अतीत द्वारा सूचित कार्य का प्रभाव उसकी समाप्ति तक ही रहता है वहाँ पुराघटित अतीत का प्रभाव चलता रहता है। इसके अतिरिक्त पुराघटित अतीत की अपेक्षा साधारण अतीत निकट अतीत का बोध कराता है; यथा—हम घरे' गइलीं, 'मैं घर गया',—तथा हम घरे' गइल रहलीं, 'मैं घर गया था।'

टिप्पणी—अंग्रेजी पुराघटित अतीत (यथा—I had gone) में दूसरे अतीत से तुलना आवश्यक होती है; किन्तु भो० पु० में यह आवश्यक नहीं है।

(iii) पुराघटित भविष्यत्

§५६१ आदर्श भो० पु० में पुराघटित भविष्यत् के रूप, -अले- क्रिया रूप + रह् धातु के साधारण ब-भविष्यत् एवं स>ह-भविष्यत् के रूपों की सहायता से बनते हैं। √रह् धातु के भविष्यत् काल के रूप [रहबि, रहबि जाँ, आदि] पहले दिये जा चुके हैं। दे'खले रूप वस्तुतः अपरिवर्तित रहता है।

§५६२ यह काल उस कार्य की सूचना देता है जो निश्चित रूप से भविष्यत् काल में पूर्ण होगा; यथा—जब ले' तु' हमरा किहाँ अइब तब ले हम् खेत् बोअले रहबि, जबतक तुम मेरे यहाँ आओगे तबतक मैं खेत बो चुका रहूँगा।

(d) पुराघटित सम्भाव्य

(i) पुराघटित सम्भाव्य वर्तमान

§५६३ आदर्श भो० पु० में पुराघटित सम्भाव्य वर्तमान के रूप, -अले क्रियारूप + हो सहायक क्रिया के रूपों की सहायता से सम्पन्न होते हैं। हो क्रिया के रूप [हों'इं, हों'खीं, हों'इं जों, हों'खीं जाँ, आदि] पहले दिये जा चुके हैं। -अले (दे'खले) क्रियारूप अपरिवर्तित रहता है।

§५६४ यह काल अतीत में सम्पन्न हुए सम्भाव्य कार्य की सूचना देता है; यथा—जो तु' दे'खले' हों'ख त हमरा से कह्, यदि तुमने देखा है तो मुझसे कहो; जो हम् बुरा काम् कइले' हों'खीं त इसर् सजाइ दे'सु, यदि मैंने बुरा काम किया हो तो ईश्वर सजा दें।

(ii) पुराघटित सम्भाव्य अतीत

§५६५ आदर्श भो० पु० में पुराघटित सम्भाव्य अतीत के रूप, -अले क्रियारूप + रह् धातु के सम्भाव्य रूपों की सहायता से सम्पन्न होता है। रह् के सम्भाव्य के रूप [रहितीं, रहितीं जाँ, आदि] पहले दिये जा चुके हैं। -अले (दे'खले) क्रियारूप अपरिवर्तित रहता है।

§५६६ यह काल उस सम्भाव्य पूर्ण कार्य की सूचना देता है जो अतीत में न हो सका था; यथा—जो हम् छुट्टी में कुल्हि किताब पढ़ले रहितीं त् आजु अराम करत् रहितीं, यदि मैं छुट्टी में कुल पुस्तक पढ़ लिये होता तो आज आराम करता रहता।

(iii) पुराघटित सम्भाव्य भविष्यत्

§५६७ पुराघटित भविष्यत् में जो जोड़ने से आदर्श भो० पु० के पुराघटित सम्भाव्य भविष्यत् के रूप सम्पन्न होते हैं।

§५६८ यह काल, उस सम्भाव्य कार्य की सूचना देता है, जो भविष्य में पूर्ण होगा; यथा—जो हम दे'खले रहबि त तों'हरा से कहबि, जो मैं देखे रहूँगा तो तुमसे कहूँगा।

स्वरान्त धातुएँ

§५९९ भो० पु० में अनेक स्वरान्त धातुएँ वर्तमान हैं। इनमें प्रत्यय जोड़ने से ऐसे रूप बनते हैं जो क्वचित् अनियमित प्रतीत होते हैं। नीचे उनपर विचार किया जायगा।

§६०० भो० पु० आकारान्त धातुओं के रूप निम्नलिखित स्थलों को छोड़कर देख् की ही भाँति चलता है—

(क) अतीत काल में, प्रत्यय के ल् के पूर्व, सन्ध्यक्षर रूप में य [इ] तथा व [उ] (य-श्रुति एवं व-श्रुति), इन धातुओं में जोड़ा जाता है। इस प्रकार '√खा', 'खाना' का रूप उत्तम पुरुष अतीत काल में पहले *खा + य् (इ) + लीं होगा और तब संप्रसारण से बनारस तथा आजमगढ़ की पश्चिमी भो० पु० में यह खयलीं एवं बलिया तथा शाहाबाद की आदर्श भो० पु० में खइलीं हो जायगा। इसी प्रकार √पा, 'पाना', का रूप पहले *पा + व + लीं तथा पुनः संप्रसारण से आदर्श भोजपुरी में पवलीं हो जाता है। सारन जिले में यह 'व्' निर्बल होकर उ में परिणत हो जाता है और तब पउली रूप सिद्ध होता है।

य (इ) तथा व (उ) श्रुति के सन्धि-सम्बन्धी नियम नीचे दिये जाते हैं—

(i) णिजन्त सहित सभी सकर्मक धातुओं में -व (उ) जोड़ा जाता है; यथा—√पा, पाना के प-व-लीं (पउली) मैंने पाया, तथा √चढ़ा (णिजन्त) का चढ़-व-लीं (चढ़-उ-लीं), 'मैंने चढ़ाया', रूप होंगे।

अपवाद—√खा धातु में -य (इ) जोड़ा जाता है, यथा—खयलीं तथा खइलीं, 'मैंने खाया'।

(ii) सभी अकर्मक क्रियाओं में -य (इ) जोड़ा जाता है। यथा—√अघा : अघइलीं, मैं अघा गया अथवा पूर्ण सन्तोष प्राप्त किया; √आ : अइलीं, 'मैं आया'।

(ख) भविष्यत् काल में, उ० पु०, ए० व० तथा ब० व०, म० पु० एवं अन्य पु०, आदरार्थ, ए० व० और ब० व० में, आकारान्त धातुओं [पा, आ, अघा, आदि] में, ब- भविष्यत् के -इब् के जोड़ने से मूल रूप सिद्ध होता है और तब इसमें प्रत्यय जोड़े जाते हैं। इस प्रकार की प्रक्रिया से ही पाइबि, आइबि, अघाइबि आदि रूप सिद्ध होते हैं। इसका सम्भवतः यह कारण है कि इ, उ, संप्रसारण सुरक्षित रहते हैं तथा इन स्वरान्त धातुओं के दीर्घ [आ] रूप भी इस कारण से सुरक्षित हैं कि ब- भविष्यत् के रूप ल- अतीत के रूपों की अपेक्षा नये हैं।

§ ६०१ उ० व्य० प्र० की प्राचीन कोसली में केवल स ७ ह- भविष्यत् के रूप ही उपलब्ध हैं; यथा—देवदत्त कट कहि = देवदत्तः कटं करिष्यति; (दे०, उ० व्य० प्र० पृ० ६) किन्तु 'रामचरितमानस' की कोसली में आउब, 'आऊँगा', तथा इलाहाबाद की कोसली में जाउब तथा खाउब के स्थान पर जाब् तथा खाब् रूप मिलते हैं। इससे भी यही बात सिद्ध होती है कि स ७ ह- भविष्यत् के बाद ब- भविष्यत् अस्तित्व में आया है।

ईकारान्त धातुएँ

√पी, 'पीना'।

§ ६०२ √पी के रूप पीयल तथा पीअल हो जाते हैं और तब इनके रूप देखल् की भाँति चलते हैं। जब इसमें अतीत तथा भविष्यत् के प्रत्यय संयुक्त होते हैं तो दीर्घ पी

ह्रस्व पि में परिवर्तित हो जाता है। सम्भाव्य वर्तमान के रूप में धातु तथा प्रत्यय के बीच में -इ- सन्ध्यक्षर संयुक्त होता है; [यथा—पी + ईं > पि + इ् + ईं = पिहीं] वर्तमानकालिक कृदन्त (Present participle) के -अत, -इत् (पि-अत् तथा पि+ह्-इत् = पिहित्) रूप मिलते हैं; किन्तु आदर्श भोजपुरी में -इत् वाले रूप अधिक प्रचलित हैं।

ईकारान्त सभी धातुओं के रूप पी को भाँति ही चलते हैं।

ऊ-कारान्त धातुएँ

√चू, चूना।

§ ६०३ इससे चू-अल् रूप बनता है और तब दे॑खल् की भाँति ही इसका रूप चलता है। प्रत्यय संयुक्त होते समय दीर्घ 'चू' ह्रस्व 'चु' में परिवर्तित हो जाता है। सम्भाव्य वर्तमान के रूप नियमित रूप से चलते हैं, (चू-ईं, चू-ईं-जाँ आदि)। वर्तमानकालिक कृदन्त का रूप -इत (चु-इत्) होता है; किन्तु कहीं-कहीं -अत (चुअत्) रूप भी मिलता है।

उकारान्त धातुओं के रूप 'चू' की भाँति ही चलते हैं।

ओकारान्त धातुएँ

√रो, रोना।

§ ६०४ इससे रोअल रूप बनता है और तब दे॑खल् की भाँति इसका रूप चलता है। प्रत्यय संयुक्त होते समय दीर्घ ओ ह्रस्व ओ॑ में परिवर्तित हो जाता है। सम्भाव्य वर्तमान के रूप सर्वथा नियमित हैं, (रोईं, रोईं-जाँ, आदि) आदर्श भोजपुरी में वर्तमानकालिक कृदन्त का रूप -इत् से अन्त होता है (यथा— रो॑-इत, रो-इत); किन्तु कहीं-कहीं -अत् से अन्त होने वाले रूप भी मिलते हैं; (यथा—रो॑अत, रोअत् आदि)।

ओकारान्त सभी धातुओं के रूप √रो की भाँति ही चलते हैं।

अनियमित क्रियापद

§ ६०५ निम्नलिखित क्रियाएँ केवल अतीत में अनियमित हैं—√कर्, करना; √धर्, धरना; पकड़ना या रखना; √हो, होना √जा, जाना। इनके केवल इसी काल के रूप दिये जायँगे। √हो का रूप दिया जा चुका है, अतएव यहाँ नहीं दिया जायगा।

§ ६०६ √मर्, मरना; √दे, देना; तथा √ले, लेना, प्रायः सभी कालों—विशेषतया अतीत एवं सम्भाव्य वर्तमान—में अनियमित हैं। अतएव नीचे √मर् तथा √दे के रूप मूलात्मक एवं मिश्रकाल में दिये जायँगे। √ले, का रूप दे की भाँति ही चलता है।

§ ६०७ यह बात उल्लेखनीय है कि मूलात्मक काल में ये सभी क्रियाएँ अनियमित हैं। [यथा—करीं, धरीं, हो॑ईं, जाईं मारीं, दे॑ईं, ले॑ईं आदि +]। वर्तमान निर्देशक Present Indicative) ला वाले इनके रूप भी नियमित ही हैं। (यथा—उ० पु० करिला, मैं करता हूँ; जाइला, मैं जाता हूँ; दे॑इला, मैं देता हूँ, आदि तथा अन्य पु० ए० व० करेला, वह करता है; जाला, वह जाता है; आवेला, वह आता है।)

§ ६०८ यह पहले कहा जा चुका है कि आदर्श भोजपुरी से ला- वर्तमान का लोप हो गया है, किन्तु इसके भी अ० पु० ए० व० में करे॑ला, जाला, आवे॑ला आदि रूप आज भी प्रचलित हैं। इस सम्बन्ध में यह बात स्मरण रखना चाहिए कि इनके अर्थ में थोड़ा अन्तर

आ गया है और आधुनिक भोजपुरी में इनके अर्थ हैं—'किया करता है', 'जाया करता है', 'आया करता है', आदि।

§ ६०६ √कर्, करना; √धर्, रखना, पकड़ना।

धातुरूप- (प्राचीन) : कइल् तथा धइल्।

„ „ (आधुनिक) : करल् तथा धरल्।

कइल् की उत्पत्ति कृत से निम्नलिखित रूप में हुई है—कृत > * कअ + अल 7 * कअ य- अल + कइल, किन्तु करल् तथा धरल् = कर् - अल् तथा धर् - अल्।

§ ६१० अतीत काल

प्राचीन भोजपुरी के रूप

निर्देशक प्रकार (Indicative Mood)

	√कर्		√धर्	
पुरुष	ए० व०	ब० व०	ए० व०	ब० व०
उ० पु०	कइलों	कइलीं	धइलों	धइलीं।
		S		S
म० पु०	कइलें	कइल	धइलें	धइल।
अ० पु०	कइलस्	कइलन्	धइलस्	धइलन्।

आदर्श भो० पु० के अतीत काल में इनके निम्नलिखित रूप उपलब्ध हैं—

उ० पु०	ए० व०	हम्	:	कइलीं, धइलीं।
„ „	ब० व०	हमन् (नि) का	:	कइलींजाँ, धइलींजाँ।
म० पु० आदररहित	ए० व०	ते॑, तें॑	:	कइलें, धइलें।
„ „ „ „	ब० व०	तो॑ हन् (नि) का	:	कइल, धइल-सन्हि,
				S S
				सन्, -सँ, -स।
				S S
„ „ साधारण	ए० व०	तु, तुँ	:	कइल, धइल।
				S S
„ „ „	ब० व०	तो॑ हन् (नि) लोग्	:	कइल, धइल।
„ „ आदरार्थ	ए० व०	रउआँ	:	कइलीं, धइलीं।
„ „ „	ब० व०	रउआँ सभ्	:	कइलीं, धइलीं।
अ० पु० आदररहित	ए० व०	उ	:	कइलसि, धइलसि।
„ „ „	ब० व०	उन्हन् (नि) का	:	कइले॑, धइले॑-सन्हि,
				S S
				-सन्, स, -स।
„ „ साधारण	ए० व०	उ	:	कइले॑, धइले॑।
„ „ „	ब० व०	उ लोग्	:	कइल् धइल्।
„ „ आदरार्थ	ए० व०	उहाँ का	:	कइलीं, धइलीं।
„ „ „	ब० व०	उहाँ सभ् का	:	कइलीं, धइलीं।

§ ६११ निम्नलिखित रूप केवल स्त्रीलिंग में मिलते हैं—

म० पु०	आदररहित	ब० व०	तो᷃हन् (नि) का :	कइलु-सन्हि, -सन्, -सँ, -स।
,, ,,	साधारण	ए० व०	तु, तुँ	कइलू।
,, ,,	,,	ब० व०	तो᷃हन् (नि) लोग् :	कइलू।
अ० पु०	आदररहित	ब० व०	उन्हन् (नि) का :	कइली-सन्हि, -सन्, -सँ, -स।

§६१२ √मर्, मरना।

धातु (प्राचीन) : मुअल्।

,, (आधुनिक) : मरल्।

आधुनिक आदर्श भो० पु० के अतीत में मुअल् का रूप दे᷃खल् तथा भविष्यत में दे᷃खब् की भाँति चलता है।

§६१३ सम्भाव्य वर्तमान में इसका रूप हो की भाँति चलता है; यथा—मुईं, मुईंजाँ आदि। इसी प्रकार सम्भाव्य अतीत में इसका रूप दे᷃खित् की तरह चलता है; यथा—मुइतीं, मुइतींजाँ, आदि।

कभी-कभी आधुनिक भो० पु० के अन्यपुरुष, ए० व०, अतीत में ऊ मरल्, 'वह मरा' या 'मर गया', मिलता है; किन्तु यह नवीन रूप है।

§६१४ प्राचीन भो० पु० के उ० पु०, ए० व०, अतीत में मुअलों तथा उ० पु०, ए० व०, भविष्यत् मे मरबों, आदि रूप मिलते हैं।

ऊपर के रूपों के अतिरिक्त वर्तमान तथा सम्भाव्य अतीत के किंचित परिवर्तन से, अनेक रूप मिलते हैं; यथा—उ० पु०, वर्तमान—मुओं, तथा सम्भाव्य अतीत—मुअतो, आदि।

§६१५ √जा,

इसमें दो धातुओं का संयोग हुआ है √या, जाना तथा √गम्, जाना। जा के रूपों की आ के रूपों से तुलना की जा सकती है। आधुनिक आदर्श भो० पु० में इसके धातुगत रूप आइल्, जाइल् तथा गइल् हैं। वस्तुतः आइल् तथा गइल् अतीत के भी रूप हैं; किन्तु आधुनिक भो० पु० में ये आधार-रूप (Basic forms) बन गये हैं और इन्हीं में प्रत्यय जोड़े जाते हैं। इनके रुप, अतीत काल में, देखल् की तरह चलते हैं।

§६१६ भविष्यत् काल में आधाररूप आइब् तथा जाइब् हो जाते हैं। इनके रूप नीचे दिये जाते हैं—

उ० पु०		ए० व०	:	आइबि, जाइबि।
,, ,,		ब० व०	:	आइबिजाँ, जाइबिजाँ।
म० पु०	आदररहित	ए० व०	:	अइबे᷃, जइबे᷃।
,, ,,	,, ,,	ब० व०	:	अइब, जइब -सन्हि, -सन्, -सँ, -स

म० पु०	साधारण	ए० व०	:	अइब, जइब ।
„ „	„	ब० व०	:	अइब, जइब ।
„ „	आदरार्थ	ए० व०	:	आइबि, जाइबि ।
„ „	„	ब० व०	:	आइबि, जाइबि ।
अ० पु०	आदर रहित	ए० व०	:	आई, जाई ।
„ „	„ „	ब० व०	:	अइहें, जइहें -सन्हि, -सन्, -सँ, -स ।
„ „	साधारण	ए० व०	:	अइहें, जइहें ।
„ „	„	ब० व०	:	आई, जाई ।
„ „	आदरार्थ	ए० व०	:	आइबि, जाइबि ।
„ „	„	ब० व०	:	आइबि, जाइबि ।

§६१७ निम्निलिखित रूप केवल स्त्रीलिङ्ग में मिलते हैं—

म० पु०	आदररहित	ब० व०	: तोहन् (नि) का	: अइबु, जइबु-सन्हि, -सन्, -सँ, -स ।
म० पु०	साधारण	ए० व०	तु तुँ	: अइबु, जइबु ।
„ „	„	ब० व०	तोहन् (नि) लो॰	: अइबु, जइबु ।
अ० पु०	आदररहित	ब० व०	उन्हन् (नि) का	: अइहें, जइहें-सन्हि, -सन्, -सँ, -स ।

§ ६१८ सम्भाव्य वर्तमान के रूप आइत, जाइत में प्रत्यय जोड़कर बनाये जाते हैं; यथा—

उ० पु०		ए० व०	:	अइतीं, जइतीं ।
„ „		ब० व०	:	अइतींजाँ, जइतींजाँ ।
म० पु०	आदररहित	ए० व०	:	अइते, जइते ।
„ „	„ „	ब० व०	:	अइत, जइत-सन्हि, सन्-सँ, -स ।
„ „	साधारण	ए० व०	:	अइत, जइत ।
„ „	„	ब० व०	:	अइत, जइत ।
„ „	आदरार्थ	ए० व०	:	अइतीं, जइतीं ।
„ „	„	ब० व०	:	अइतीं, जइतीं ।

अ० पु० आदररहित	ए० व०	:	आइन्, जाइन्।
,, ,, ,, ,,	ब० व०	:	अइतें, जइतें-सन्हि, -सन्, -सँ, -स।
,, ,, साधारण	ए० व०	:	अइतें, जइतें।
,, ,, ,,	ब० व०	:	आइत्, जाइन्।
,, ,, आदरार्थ	ए० व०	:	अइतीं, जइतीं।
,, ,, ,,	ब० व०	:	अइतीं, जइतीं।

§ ६१६ निम्नलिखित रूप केवल स्त्रीलिंग में मिलते हैं—

म० पु० आदररहित	ब० व०	तों हन् (नि) का :	अइतु, जइतु-सन्हि, -सन्, -सँ, -स।
,, ,, साधारण	ए० व०	तु, तुँ :	अइतु, जइतु।
,, ,, ,,	ब० व०	तों हन् (नि) लोग् :	अइतु, जइतु।
अ० पु० आदर रहित	ब० व०	उन्हन् (नि) का :	अइती, जइती-सन्हि, -सन्-सँ, -स।

√दि, देना।

§ ६२० अतीत का रूप दिहल वस्तुतः आधाररूप बन जाता है और तब इसका रूप दें लल् की तरह चलता है।

§ ६२१ भविष्यत् काल में दे ँ व आधाररूप बन जाता है और तब इसी में प्रत्यय जोड़कर इसके रूप चलते हैं। इसमें केवल न ७ ह- भविष्यत् के रूप अनियमित हैं। वे नीचे दिये जाते हैं—

अन्य पु०	आदररहित	ए० व०	ऊ	: दीही, देई।
,, ,,	,,	ब० व०	उन्हन् (नि) का	: दिहें-सन्हि, सन्, -सँ, -स
,, ,,	साधारण	ए० व०	ऊ	: दीहें।
,, ,,	,,	ब० व०	ऊ लोग्	: दीही, दी।

§ ६२२ सम्भाव्य वर्तमान के रूप किंचित् अनियमित हैं। उन्हें नीचे दिया जाता है—

उ० पु०		ए० व०	हम	: देईं, दीहीं।
,, ,,		ब० व०	हमन् (नि) का	: देईं जाँ, दिहीं जाँ
म० पु०	आदररहित	ए० व०	ते तें,	: दे।
,, ,,	,,	ब० व०	तों हन् (नि) का :	द-सन्हि -सन्, -सँ, -स।

म० पु०	साधारण	ए० व०	तु, तुँ	:	दऽ।
,, ,,	,,	ब० व०	तु, तुँ लोग्	:	दऽ।
,, ,,	आदरार्थ	ए० व०	रउआँ	:	देईं, दिहीं।
,, ,,	,,	ब० व०	रउआँ सभ्	:	देईं, दिहीं।
अ० पु०	आदररहित	ए० व०	उ	:	देउ।
,, ,,	,,	ब० व०	उन्हन् (नि) का	:	दऽ-सन्हि सन्, सँऽ, -सऽ।
अ० पु०	साधारण	ए० व०	उ	:	देसु।
,, ,,	,,	ब० व०	उ लोग्	:	दे उ।
,, ,,	आदरार्थ	ए० व०	उहाँ का	:	देईं।
,, ,,	,,	ब० व०	उहाँ सभ् का	:	देईं।

§६२३ सम्भाव्य अतीत में आधाररूप क्रियापद दिहित् हो जाता है और तब इसमें प्रत्यय जोड़कर् नियमित रूप बनाये जाते हैं।

कृदन्तीय रूप या क्रियामूलक विशेषण (The Participle)

(i) वर्तमानकालिक कृदन्त अथवा वर्तमानकालिक क्रियामूलक विशेषण (The Present Participles)

§ ६२४ आदर्श भोजपुरी में यह -अत प्रत्यय के संयोग से सम्पन्न होता है। हिन्दी में इसके प्रत्यय -अता, -अते तथा -ता, बँगला में -अन्त, -इते, उड़िया में -अन्त तथा असमिया में -ओंत हैं। -अत तथा इसका दीर्घ रूप -अता (मि०, असमिया का रूप -ओंता) वस्तुतः भोजपुरी में गुणवाचक विशेषण बन जाते हैं, यथा—रमूता जोगी 'घुमन्तू साधू', बहता पानी, 'प्रवाहित जल', किन्तु 'चलत् अदिमी', चलता हुआ आदमी, उड़त चिरई, उड़ती चिड़िया भी होता है।

इसकी उत्पत्ति संस्कृत तथा प्राकृत के -अन्त से हुई है।

(ii) कर्मवाच्य अतीतकालिक कृदन्त या अतीतकालिक क्रियामूलक विशेषण। (The Past Passive Participle)

§ ६२५ भोजपुरी अतीतकालिक कृदन्त (Past Participle) की उत्पत्ति सं० -त + अल् से तथा इसके कर्मवाच्य की उत्पत्ति सं० -त + आ + इल् से हुई है, यथा—देखाइल्, देखा गया; सुनाइल्, सुना गया; पिटाइल्, पीटा गया; मराइल् मारा गया आदि। —

कर्मवाच्य के अतीतकालिक आ-कृदन्त + अतीतकालिक कृदन्त गइल् के रूप सम्भवतः आधुनिक भोजपुरी में हिन्दी से आये हैं; यथा—उ पिटा गइल् = हिन्दी-वह पीटा गया, उ मरा गइल् = वह मारा गया आदि।

असमापिका अथवा पूर्वकालिक क्रिया

§ ६२६ आदर्श भोजपुरी में असमापिका अथवा पूर्वकालिक क्रिया के रूप -इ से अन्त होते हैं तथा उनके बाद के, के॑, परसर्ग का प्रयोग होता है; यथा देखि के, के॑, देखकर; सुनि के, के॑, सुनकर; पढ़ि के, के॑, पढ़कर आदि।

के, के॑, उपसर्ग का प्रयोग प्राचीन भोजपुरी, विशेषतया कविता, में नहीं मिलता। यथा—

बबुआ के॑ माई बउरी,
हाँड़ि भरि रिन्हे॑ली जउरी।
अपने खइली कटवता में,
बबुआ के॑ देली कटो॑रिआ में।
से॑ [दे॑खि] बबुआ रुसि चली,
बाप् पितिअवा मनावन् करी
(पालने के गीत)

'बच्चे की माँ बौरी (पगली) है, उसने हाँड़ी भर खीर पकाई। स्वयं तो उसने कठौते में खाया; किन्तु बच्चे को छोटे कटोरे में दिया। उसे (देखकर) बच्चा क्रुद्ध हो चला। तब पिता एवं पितृव्य ने उसे मनाया।'

इस इ- असमापिका अथवा पूर्वकालिक क्रिया के रूप प्राचीन तथा मध्ययुग की बँगला में (यथा—चर्या (२) दुहि, दुहकर; (४) चापि, दबाकर; (६) छाड़ि, छोड़कर; (७) दे॑खि, देखकर; पइसि, प्रविष्टकर, आदि), उड़िया, असमिया, मैथिली तथा मगही में मिलते हैं। हिन्दी में इस -इ का लोप हो गया है तथा दे॑खि के स्थान पर दे॑ख् का प्रयोग होता है; किन्तु इसके बाद सम्प्रदान का परसर्ग -कर, कै आता है। उड़िया में कर् परसर्ग किरि में परिवर्तित हो जाता है; (यथा—देखि किरि)।

§ ६२७ इस -इ की उत्पत्ति संस्कृत य से -इअ7 इ रूप में हुई है। टेसिटरी ने गुजराती की -ई. असमापिका क्रिया (यथा—चाली ने, चलकर; मारी ने, मारकर) की व्युत्पत्ति अपभ्रंश -इ के बदले कर्मवाच्य कृदन्तीय -इअ माना है। यह सम्भव है; किन्तु इस्ट्वा के स्थान पर सं० का इत्य रूप क्रमशः दे॑क्खिअ 7 दे॑खि तथा सं० का * चल्य *चलिअ चली, चलि, आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं में चलि, चल् में परिवर्तित हो सकता है।

णिजन्त अथवा प्रेरणार्थक क्रिया

§ ६२८ साधारण धातु में आव् जोड़ने से भोजपुरी में णिजन्त के रूप सम्पन्न होते हैं। इस प्रकार से निर्मित शब्द के रूप आकारान्त क्रियापद के समान ही चलते हैं। इस -आव् की उत्पत्ति संस्कृत के नामधातु -आय से हुई है; यथा—बइठल्, 'बैठना'; बइठावल्, 'बैठाना'; हँसल्, 'हँसना'; हँसावल, 'हँसाना', आदि।

हिन्दी में अतिप्रचलित णिजन्त देना : दिलाना; पीना : पिलाना भी भोजपुरी में प्रयुक्त नहीं होते। धुलाई, सिलाई-जैसे हिन्दी के संज्ञापद बँगला तक में तो पहुँच गये हैं, किन्तु भोजपुरी में इनका व्यवहार नहीं होता और इनके स्थान पर भोजपुरी के संज्ञापद धो॑आई एवं सिआई ही प्रयुक्त होते हैं।

§६२९ कतिपय प्राचीन, अकर्मक, एकाक्षर धातुओं के णिजन्त उनके ह्रस्व स्वर को दीर्घ करने से सम्पन्न होते हैं ; यथा—

साधारण क्रियाएँ	णिजन्त रूप
√कट् 'कटना'	काटना
√बन्ह्, बँधना	बान्ह्, बाँधना।
√लद्, लदना	लाद्, लादना।
√घिंच्, खींचना	घींच।

§६३० कभी-कभी दीर्घ स्वर के स्थान पर, णिजन्त बनाते समय, उसका सवर्ण सन्ध्यक्षर आ जाता है ; यथा—खुल् (अकर्मक) : खोल् (णिजन्त, सकर्मक) ; घुल् (अकर्मक) : घोल् (णिजन्त, अकर्मक)।

§६३१ ऊपर के उदाहरणों में गुण तथा वृद्धि अर्थात् भारोपीय अभिश्रुति (Ablant) के कारण ह्रस्व स्वर, दीर्घ में परिणत हो गये हैं। आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं में ऐसी कई धातुएँ संस्कृत तथा प्राकृत से आई हैं। ह्रस्व स्वर-युक्त धातुएँ अकर्मक तथा दीर्घ स्वर-युक्त सकर्मक हैं। ये सकर्मक धातुएँ संस्कृत में मूलत. णिजन्त हैं; यथा—

म्रियते के लिए मरति = मरे, मर् (बँगला तथा भोजपुरी) किन्तु मारयति > मारे, मार्। इसी प्रकार त्रुट्यति > प्रा० टुटै > टुटे, टुट्- किन्तु त्रोटयत > टोड़े, टोड़् आदि।

§६३२ कभी-कभी क्रियापदों के अकर्मक रूपों में, मूल कर्मवाच्य के रूप भी सुरक्षित मिलते हैं ; यथा—कृत्यते > प्रा० कट्टिअइ > कट्टइ > कटे, कट्- किन्तु कर्तयति > प्रा० कट्टेइ > काटे, काट्-। इसी प्रकार सं० प्रसरति > प्रा० पसरे, पसर- (भोजपुरी) किन्तु सं० प्रसारयति > पसारे, पसार-।

§६३३ भोजपुरी में यह एक नियम बन गया कि ह्रस्व स्वर-युक्त धातुएँ अकर्मक तथा दीर्घ स्वर-युक्त सकर्मक हैं। इसका एक परिणाम यह हुआ कि केवल दीर्घ स्वरवाली धातुओं को भी ह्रस्व स्वर में परिवर्तित करके औपम्य के आधार पर उन्हें अकर्मक बनाया जाने लगा। इस प्रकार घींच् धातु को ह्रस्व रूप घिच् में परिवर्तित करके उसे भोजपुरी में अकर्मक बनाया गया। इसी प्रकार पाल्, पालना < सं० पालयति, मि०, हिन्दी पालना भोजपुरी में अकर्मक क्रिया के रूप में पलल् (हिन्दी पलना) में परिवर्तित हो गया।

§६३४ यह बात उल्लेखनीय है कि आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं में ऐसी अनेक धातुएँ हैं जिनका सम्बन्ध संस्कृत से नहीं है ; यथा—भोजपुरी घुलल्, घुलना ; खुलल्, खुलना ; जुटल्, जुटना ; आदि।

§६३५ साधारण णिजन्त में -वाव् प्रत्यय लगाकर भोजपुरी में द्विगुणित णिजन्त (Double causative) के रूप सम्पन्न होते हैं। प्रत्यय लगाते समय णिजन्त का -आ ह्रस्व [अ] में परिणत हो जाता है ; यथा—उठल्, णिजन्त . उठावल्, द्विगुणित णिजन्त उठवावल् (उठावावल् नहीं)।

§ ६३६ द्विगुणित णिजन्त की उत्पत्ति सं० आय + आपय (णिजन्त) से प्रतीत होती है।

§ ६३७ यदि साधारण धातु में दीर्घ है तो णिजन्त बनाते समय, भो० पु० में, व ह्रस्व में परिणत हो जाता है ; यथा—

साधारण धातु	णिजन्त	द्विगुणित णिजन्त
√पाक्, पकना	पकाव्	पक्वाव्।
√जाग्, जगना	जगाव्	जगवाव्।
√जीत, जीतना	जिताव्	जितवाव्।
√घुम्, घूमना	घुमाव्	घुमवाव्।

§ ६३८ अनियमित णिजन्त के भो० पु० में निम्नलिखित उदाहरण उपलब्ध हैं—

साधारण धातु	णिजन्त	द्विगुणित णिजन्त
√अट्, अटना	आड़्	अड़ाव्।
√फट्, फटना	फाट्, फाड़	फड़ाव्, फड़वाव्।
	फार्	फराव्, फरवाव्।
√छुट्, छुटना	छोड़्, छाड़्	छोंड़ाव्, छोंड़वाव्।
√मर्, मरना	मार्	मुआव्।

§ ६३९ जहाँ पर द्विगुणित णिजन्त मिलते हैं वहाँ पर साधारण णिजन्त का प्रयोग उस स्थल पर किया जाता है जहाँ कोई अन्य व्यक्ति स्वयं कार्य सम्पन्न करने में सहायक होता है ; यथा, जमुना सहदेव के पानी पिअअले, जमुना ने सहदेव को पानी पिलाया ; किन्तु द्विगुणित णिजन्त का प्रयोग वहाँ होता है जहाँ अन्य व्यक्ति स्वयं कार्य सम्पन्न न करके किसी अन्य व्यक्ति को उस कार्य को सम्पन्न करने का आदेश देता है ; यथा—जमुना सीताराम से सहदेव के पानी पिअववले, जमुना ने सीताराम के द्वारा सहदेव को पानी पिलवाया। दूसरे शब्दों में, साधारण णिजन्त में जहाँ केवल दो व्यक्ति होते हैं वहाँ द्विगुणित में कम-से-कम तीन व्यक्ति अवश्य होते हैं।

टि०—णिजन्त के इन दोनों रूपों के अन्तर पर लोग प्रायः ध्यान नहीं देते और दोनों में से किसी का प्रयोग करते हैं।

नामधातु

§६४० बँगला की भाँति ही भो० पु० के भी संक्षिप्त संज्ञापद (द्व्यक्षरात्मक>एकाक्षरात्मक) क्रियापद की भाँति प्रयुक्त होते हैं ; यथा—पाक (सं० पक्व), पाकऽ-ता, पक रहा है ; चिन्ह् (सं० चिह्न), चिन्हऽ-तानी (मैं) पहचान रहा हूँ ; चिन्हऽ-बि, (मैं) पहचानूँगा ; सुख् (शुष्क), सुखता, सूख रहा है ; सुखल, सूख गया ; सुखी, सूख जायगा ; भुख् (बुभुक्षा), भुख-तानी, व्रत करता हूँ ; भुखबि, व्रत करूँगा ; तप् (तप्त-, गर्म), अत्यधिक प्रभाव होना, जम्, जमाव होना (फा०- अ० جمع)

§ ६४१ संस्कृत में नाम धातु प्रत्यय (उन स्थलों को छोड़कर जहाँ प्रत्यय के बिना ही नामधातु सम्पन्न हो जाते हैं) -अ-, -य-, -आ-य, -इ-य, -इ-य्-अ, -ऊ-य, -स-य-, -स्-य (क्य) हैं। प्रारम्भिक प्राकृत-युग में अन्य प्रत्ययों की अपेक्षा नामधातु बनाने के लिए -आ-य का अत्यधिक व्यवहार होने लगा। नामधातु का यह प्रत्यय (-आ- य), णिजन्त के -आपय

उत्तर दिया—) हे स्त्री, जहाँ से तुम आई हो वहीं चली जाओ ।२५। हे स्त्री, तेरा स्पर्श मैं नहीं करूँगी ; क्योंकि तब मैं भी वन्ध्या हो जाऊँगी ।२६। वहाँ से चलकर स्त्री अपनी माता के घर पर खड़ी हुई ।२७। तब घर से निकलकर भेद लेने के लिए माता ने पूछा ।२८। क्या तुम्हारा पति विदेश में है अथवा तुम्हारी सास घर से निकाल रही है ।२९। हे पुत्री, तुम्हारे ऊपर कौन-सी विपत्ति पड़ी है जिससे तुम नेत्रों से आँसू गिरा रही हो ।३०। (इस पर स्त्री उत्तर देती है—) न तो मेरे पति विदेश में हैं न सास ही घर से निकाल रही है ।।३१। हे माता मैं कुक्षि के विपत्ति से वैरागिन हुई हूँ और इसी कारण मेरे दोनों नेत्र आँसु गिरा रहे हैं ।३२। मेरी सास मुझे वन्ध्या तथा ननद ब्रजवासिन कहती है ।३३। हे माता! जिनसे मेरा बाल्यकाल में ही विवाह हुआ है वह भी मुझे घर से निकाल रहे हैं ।३४। संसार के सभी दुःखों को सहूँगी किन्तु इसे न सहूँगी ।३५। हे माता, मुझे शरण दो जिससे अपनी विपत्ति का कुछ मन्थन (वर्णन) कर सकूँ ।३६। (इस पर माता ने उत्तर दिया—) जहाँ से तुम आई हो वहीं चली जा ।३७। हे पुत्री, तुमे घर में रखने से मेरी पुत्रवधू वन्ध्या हो जायगी ।३८। समस्त स्थानों से परित्यक्त स्त्री पृथ्वी से प्रार्थना करने लगी ।३९। हे दयालु माता पृथिवी, आप फट जायँ तो मै शरण ग्रहण करूँगी ।४०।

सोहर (२)

एक त मैं पान अइसन पातरि, फुल अइसन सुनरि रे ।१।
ए ललना भुँइयाँ लोटेले मोरी केसिया, त नइयाँ बँझिनियाँ के हो ।२।
अउन बहरइत चेरिया, त अवरू लँउड़िया नु रे ।३।
ए चेरिया अपन बलक मोंहि दीते, त जियरा जुड़इतीं नु हो ।४।
देसवा से बलु हम निकलबि, बसबों निखुम बने रे ।५।
ए रानी अपन बलक नाहीं देबों, तोर नइयाँ बझिनियाँ के हो ।६।
मोरा पिछुअरवा बढ़इआ, बेगे चलि आवहु रे ।७।
ए बढ़या काठे के होरिलवा गढ़ि देहु, त जियरा जुड़ाइबि हो ।८।
पिठिया उरेहले त पेटवा, त हाथ गोड़ सिरिजे ले रे ।९।
ए ललना मुँहवाँ उरेहत बढ़इया रोवे, परनवाँ कइसे डालबि हो ।१०।
गोदवा में लिहली होरिलवा, त ओबरी समइली नु रे ।११।
ए सासु, हमरा भइले नँदलाल, नइहरवा लोचन भेजहु हो ।१२।
धाउ तुँहुँ गँउँआँ के नउआ, बेगहि चलि आवहु रे ।१३।
ए नउआ बहुआ का भइले नँदलाल, लोचन पहुँचावहु हो ।१४।
आउन बहरइत चेरिया, त रानी के जगावे ले रे ।१५।
ए रानी बबुनी का भइले नँदलाल, लोचनवाँ नउआ लावेला हो ।१६।
बोलें के त ए चेरिया बोलेलु, बोलहु नहीँ जानेलु रे ।।१७।
ए चेरिया मोरि बेटी कोखि के बझिनियाँ, लोचन कइसन आइल हो ।१८।
खिरिकिन होइ जब देखलीं, त नउआ त झलकेला रे ।१९।
ए ललना बाजे लागल अनंद बधाव, महल उठे सोहर हो ।२०।

पसवा खेलत तुहुँ बबुआ, त पसवन जनि भुलु रे ।२१।
ए बबुआ तोहराहिँ भइले भयनवाँ, देखन तुहुँ जावहु हो ।२२।
जब भइया अइले अङनवाँ, त बहिना उदासेलि रे ।२३।
ए ललना धक-धक करेला करेजवा, हमार पति गइली नु हो ।२४।
जब भइया अइले ओवरिया, त बलका उठावेले रे ।२५।
ए ललना मन बिखें आदित मनावेली, मोर पति राखहु हो ।२६।
हथवा के लिहले होरिलवा, त मुँहँवाँ उघरलनि रे ।२७।
ए ललना ठुमुकि-ठुमुकि होरिला रोवले, से आदित देयाल भइले हो ।२८।

अर्थ—एक तो मैं पान-जैसी पतली और फूल-जैसी सुन्दरी हूँ।१। (इस पर) मेरे केश पृथिवी को स्पर्श करते हैं, किन्तु मेरा नाम वन्ध्या पड़ गया है।२। आँगन बुहारती हुई ऐ दासी तथा लौंडी।३। यदि तुम अपना बालक मुझे देतीं तो मैं अपना हृदय शीतल करती।४। (यह सुनकर दासी ने कहा—) मैं देश से भले ही निकल जाऊँगी तथा निकुञ्ज वन में वास करूँगी।५। किन्तु हे रानी, मैं अपना बालक (तुम्हें) नहीं दूँगी, क्योंकि आपका नाम वन्ध्या है।६। (तब रानी ने कहा—) मेरे पिछवाड़े रहनेवाले बढ़ई, तुम शीघ्र चले आओ।७। हे बढ़ई! तुम मेरे लिए काठ का बालक गढ़ दो, तब मैं अपना हृदय शीतल करूँगी।८। बढ़ई ने पीठ तथा पेट बनाया तत्पश्चात् हाथ और पैर का सृजन किया।९। किन्तु मुख बनाते समय बढ़ई रोने लगा कि इसमें प्राण कैसे डालूँगा।१०। (रानी ने इस काष्ठ के) बालक को गोद में लिया तथा वह घर के भीतर अन्तरंग गृह में घुस गई।११। (वहाँ उन्होंने अपने सास से कहा—) हे सास, हमें बालक उत्पन्न हुआ है, अतएव मेरे नैहर सन्देश भेजो।१२। (सास ने कहा—) ऐ गाँव के नाऊ, तुम दौड़ो और शीघ्र चले आओ।१३। ऐ नाऊ, मेरी वधू को बालक उत्पन्न हुआ है, अतएव तुम (उसके नैहर में) सन्देश पहुँचाओ।१४। (नाऊ उसके नैहर पहुँचा) वहाँ आँगन बुहारती हुई चेरी या दासी रानी को जगाने लगी।१५। (वह कहने लगी—) हे रानी, (बबुनी) आपकी पुत्री को बालक उत्पन्न हुआ है तथा नाऊ सन्देश लेकर आया हुआ है।१६। (रानी ने कहा—) ऐ चेरी, तुम बात कहती तो हो किन्तु तुम कहना नहीं जानती।१७। हे चेरी, मेरी पुत्री कुक्षि की वन्ध्या है, अतः लोचन (बालक होने का सन्देश) कैसे आया?।१८। खिड़की से होकर जब रानी ने देखा तब उन्हें नाऊ दिखलाई पड़ा।१९। तब उनके घर में आनन्द का बधावा बजने लगा तथा महल में सोहर (गीत) उठने लगा।२०। (रानी ने पाँसा खेलते हुए अपने पुत्र से कहा—) हे पासा खेलते हुए बबुआ, तुम पासे में मत भूलो।२१। हे पुत्र, तुम्हें भानजा उत्पन्न हुआ है, अतएव (तुम) उसे देखने जाओ।२२। (वहाँ से भाई बहन के घर गया।) जब भाई आँगन में पहुँचा तब बहन उदास हो उठी।२३। उसका कलेजा धक्-धक् करने लगा, (वह सोचने लगी—) अब मेरी लाज गई।२४। जब भाई अन्तःपुर में पहुँचा तब उसने बालक को उठा लिया।२५। (इधर उसकी बहन) मन में सूर्य को मनाने लगी कि हे सूर्य, मेरी लज्जा रखो।२६। भाई ने हाथ में बच्चे को लिया और उसके मुख से पर्दा हटाया।२७। बालक ठुमुक-ठुमुक कर रोने लगा, क्योंकि सूर्य (आदित्य) की कृपा हो गई थी जिसके परिणाम-स्वरूप काष्ठ का बालक सजीव हो उठा।२८।

परिशिष्ट—१ [ख]

इस परिशिष्ट के अन्तर्गत भोजपुरी के पुराने कागद-पत्र दिये गये हैं। भोजपुरी के अध्ययन की सामग्री एकत्र करते समय लेखक को विभिन्न स्थानों से पुराने कागद-पत्र मिले थे। उनमें से कुछ चुने हुए कागद यहाँ दिये जाते हैं। ये प्रायः कैथी अथवा उस नागरी लिपि में लिखे हुए हैं जो मध्ययुग में भोजपुरी क्षेत्र में प्रचलित थी। कागद के पुराने हो जाने तथा लिपि की दुरूहता के कारण इन कागदों के पढ़ने में काफी कठिनाई हुई है। इनके पढ़ने में मेरे छात्र तथा साथी, स्वर्गीय पं० परशुराम ओझा (रघुनाथपुर, जिला बलिया-निवासी) ने मेरी बड़ी सहायता की है। यहाँ प्रयाग, तथा बलिया के तीन गाँवों—बैरिया, रतसँड़ और पिपरपाँती (सुरेमनपुर) —से एकत्र किये गये कागद ही दिये गये हैं। प्रत्येक कागद के शीर्ष पर सांकेतिक अक्षर तथा अंक दिये गये हैं। ये इस प्रकार हैं—

प्र० = प्रयाग
बै = बैरिया
रत = रतसँड़
पि = पिपरपाँती
त = तमस्सुक
द = दस्तावेज
प = पत्र
पं = पंचनामा
फा = फारखती
क = कबूलियत
र = रसीद

१, २, ३, आदि अंक इन कागदों की संख्या के लिए व्यवहृत किये गये हैं। इस प्रकार प्र। प। १ से तात्पर्य है, प्रयाग से प्राप्त, पत्र-संख्या १।

प्रयाग से प्राप्त पत्र का विवरण उसके आरम्भ में तथा उसका अनुवाद उसके नीचे दे दिया गया है। शेष स्थानों से प्राप्त पत्रों का विवरण यहाँ दिया जाता है। प्रत्येक पत्र की प्रतिलिपि ज्यों-की-त्यों तैयार की गई है।

बैरिया के कागद मेरे सम्बन्धी पं० देवदत्तचौबेजी की सहायता से मिले हैं। इन्हें चौबेजी ने मेरे लिए स्वर्गीय पं० रघुनन्दनजी पाण्डेय के वंशजों से प्राप्त किया था। बलिया जिले में बैरिया के पाण्डेय अपनी संस्कृति तथा विद्यानुराग के लिए अत्यधिक प्रसिद्ध हैं। ये भूमिहार ब्राह्मण तथा पुराने रईस एवं जमीन्दार हैं। आधुनिक हिन्दी के उन्नायक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र इन पाण्डेय लोगों के आमंत्रण पर एक समय बैरिया गये थे। ये लोग काशी-नरेश के सम्बन्धी

भोजपुरी क्षेत्र में किस प्रकार से तमस्सुक, दस्तावेज, फारखती तथा रसीद आदि कागद लिखे जाते थे। इनमें सर्वत्र भोजपुरी क्रियापदों का प्रयोग हुआ है तथा यहाँ भी स के स्थान पर श का प्रयोग प्रचुरमात्रा में मिलता है।

आगे क्रमशः प्रयाग, बैरिया, रतसँड तथा पिपरपाँती के कागद-पत्र दिये जाते हैं।

प्र। प। १

नीचे भोजपुर के राजा होरील सीह का एक पत्र उद्धृत किया जाता है। यह दारागंज (प्रयाग) के श्री माधव पंडा की बही से नकल किया गया है। इसकी सूचना इन पंक्तियों के लेखक को दलीपपुर (जिला शाहाबाद) निवासी महाराजकुमार दुर्गाशंकरसिंह ने दी थी। आप स्वयं भोजपुर के राजवंश के हैं। मूल पत्र पर फारसी अक्षर-युक्त होरील सीह की मुहर है। इसकी तिथि सं० १७८५ (सन् १७२८ ई०) है। पत्र इस प्रकार है—

होरील सीह

स्वोस्ती श्री रीपुराज दैत्यनाराएनेत्यादि बिबिध बिरदावली बिराजमान मानोनत
ो महाराजाधिराज राजा श्री जीवदेव देवाना (मू ?) सदासमर बिजैना।) (आगे सुबंश ?)
।डे पराग्राग के उपरोहीत पाछील राजन्ह के उपरोहीत होअही से हमहु आपन उपरोहीत कैल।
। केउ पराग्राग माह आवै से सुबंस पाडे के मानैं, उजेन नाव × × ११३६ शाल मोकाम
ावा घुस शमत १७८५ समै नाम वैसाख सुदी तीरोदसी रोज बुध × × प्रगनै भोजपुर गोतर
वनक मूल उजेन जाति पावार)।

[सुव (* स ?) जे पाछील रजन्ह के उपरोहीत हो अही से हमहु कैल आपन
ापरोहीत]।

कोष्ठ के अन्दर का अनुवाद इस प्रकार है—आगे सुबंस पाँडे पिछले राजाओं के
ुरोहित हैं, अतएव मैंने भी अपना पुरोहित किया। जो कोई प्रयाग आवे वह सुबंस पाँडे को
ानें (स्वीकार करे), उज्जैन जाति का × × ११३६ साल मुकाम, दावाघुस, संवत् १७८५
ामय नाम, वैशाख शुक्लपक्ष त्रयोदशी, दिन, बुध × × परगनै भोजपुर, गोत्र, शौनक,
ूल उजैन, जाति पमार।

सुबंस जो पिछले राजाओं के पुरोहित हैं सो मैंने भी अपना पुरोहित किया।

बै। द। १

श्री परमेश्र प्रमेश्र प्रम भटारकेत्यावी राजा वत्ती बीक्रमाजीत शाके शालीवाहन गत वरख १६८८ शंभलपुर पाती शाही शाह श्री शाही डावहर जीव तखत दीनी जलु श भोगश्न पाच त्यश मढले जमुदीपे भारथखंडे बीहार नगरै त्यश अतरगते शुबै अजीमाबाद नवाव धीरज नराएन वो शीताव राए शहर हाजीपुर शराए पटन अमल फीरंग करनैल शाहब तश अतरगते शूकार शाहाबाद नाएब सुरहश्न खाव तश अतरगते राजेषु देवदेवानाम शादा शमरबीजइनाम राजा श्री बीकमाजीत कीलै डुमराव प्रगनै भोजपुर तश बाबु श्री राजकुमार श्री अली मरदन सीह देवान गोपाल शीव तश अतरगते प्रगनै बीहीआ ओपदार महमद अली बीदवान उदलाल खीलै रानी शागर धौवल बीर शीघ शतोख शीव कानगोइ बैजनाथ शीघ नवादा मोतीराम कैलान-

पुर शुमेर शीघ जेवानीश्रा तश अतरगतै गरामे शाहीपुर वैरीश्रा ·····गंगा·· ···गंगागरामे उत्तर कुलै······शोनभर्द दक्षीनकुले वरानशी पक्षीमकुलै पुरुव कुलै शो शोनभर्द गंगाजीव तश अतरगतै तालुकै शाहीपुर वैरीश्रा श्रमल धौलवीर शीघ (।) श्रागै वाबु उमन शीघ गुरदश्राल शीघ शुत जैशोरी शीघ गुरदश्राल शीघ का हरखीत शुत तीनी जेठ कन्हैश्रा शीघ शंकर शीघ शुनी शीघ उमन शीघ का हरखी शुत तीनीक जेठ गघरप शीघ थज्ञु शीघ उदीत सीघ श्रापन वडरा छनौ पटि श्रनत शीघ क हो उनो तालुका माह ताही माह तीश् श्रश उमन शीघ गुरदश्राल शीघ क जे जमीन पारे वारे जलकर वनकर वशगीत पोखरा इदार मवैज··········कइल मोल सोनाशीव के··· ····· पचक नाम जवार शोनवरीशा उदवत राए वो परेम मीशु मठीश्रा चैन मीशु चरजपुरा शाहीपुर का तालुका माह तव कलश··········श्न मीशु भरौली पाचो मोल ठहराव (ल ?)··· ·····रुपैश्रा ·· ··········कनवानी वीकत················वाबु लछमन शीघ ················केशरी शीघ हरखीत शुत वाबु·············कन शीघ हरखीत शुत बुलकरन शीघ·········जेठ शुप शीघ दलीप शीघ जल जलीत लवजीत श्मा अशभा के तानाम बुलकरन शीघ वीके तानाम गुरदश्राल शीघ उमन शीघ श्रापन हीशा दुनौ तालुका वेचल पाच के वदल जे पाचौ मोल ठहरावल वे खाश कै दीहल कवनौ उजुर नाही राखल रुपैश्रा——————

पाक्षीत करजा महाजनी रुपैश्रा—	हाल देना वाकी	छव शमक काढल
१२१०॥=)	मान—२७६)	वाट शे कागजे
		रुपैश्रा लागे शे
		देना——————

अपना खात्री जमा शे गुरदश्राल शीघ उमन शीघ वेचल वाबु बुलकरन शीघ लीहल कवनौ हीला·········जरी रहल नाही चेत कवनौ दावा करही तो झुठा शमत १८२३ कातीक शुदी पचमी ताः ५ जुमादीशानी मोकाम वैरीश्रा शाक्षी जे·········भाई वैरीश्रा छनौ पटिदार वाट शे ~~~~~~

वे । प । २

श्वास्ती श्री शरवौपमा जोग्य श्री बाबु रघुनंदन प्रशाद नारायण शीघ जी इतः श्रीमन महाराजधीराज श्री श्री श्री म्हाराजे राजेन्द्र प्रताप शाही बहादुर कश्व शलाम (।) इंहा कुशल छेमान्द (छेमानन्द ?) है (,) आपके कुशल छेमान्द चाहीं जाशे खुशी पात्र जमा हे (।) श्रागे खत अपने के बड़ा ईन्तजारी म्ह श्रायल (,) अहवाल श्रान्द मगल (श्रानन्दमंगल) मेजाज के दरीश्राफत के कमाल खुशी हाशील भैल (।) श्री चौः हीरा बाबु का शादी के बात लीपथ भैल शे वाती शादी मोकरर होए गैल वाट (।) अबंही रशम तीलक के उहा शे नाही श्रापल है (।) जब रशम तील्लक के श्राई तेकर अहवाल अपने के लीखी जाई ही (।) अधीक श्रान्द खुशी लीखलजाई ही जे तसल्ली पात्र जमा हे (।) जीश्रादे ताः १३ वैशाख शन १२७३ शाल (।)

वे । प । ३

श्वोशती श्री शवौपमाजोग्य मरजादा शील शागर शकल गुन गरीश श्री बाबु शाहेव बाबु रघुनन्द प्रशाद पाडे जीव इतः श्री बाबु शाधुशरन प्रसाद शाही जीव कुशलात (,) इंहा कुशल मंगल वाट (,) अपने क कुशल मंगल शर्वदा क नेक चाही जे शुनी प्रम श्रान्द होए (।)

आगे महथ जी का हाथी का शाथ रामगती......ईन्ह का जवानी अपने का मीजाज क कुशल मंगल दरीआफत भैल (।) आन्द भैल शे अपना मीजाज क कुशल मंगल लीखत रहब होखी (।) जीआदे शुभ ता: ६ जेठ शन १२७७ शाल ।

बे । प । ४

श्रीः ॥ १ ॥

श्री विश्वनाथ

स्वस्ति श्री सर्वोपमा योग्य मर्य्यादा सागर सकल गुणनिधान सौजन्य सिन्धु श्री बाबू रघुनन्दन प्रसाद सिंह जीव के इतः श्री राजदेव नारायण सिंह बहादुर देव कृत नमस्कार (।) आगे इहा कुशलानन्द श्री...जी के कृपा ते हय (।) आपका कुशलानन्द सर्वदा का श्री जी ते चाहत है जेते परमानन्द है (।) आगे बहुत दिनो से आपका कुशलानन्दजनित कोई कृपापत्र हमारे पास नहीं आया (,) इसलिये चित्तवृत्ति निरन्तर लगा है (।) इस वास्ते खत लिखा है कि कृपापूर्वक कुशल मङ्गल घटित पत्र से शीघ्रता मे सानन्द करब जेते प्रमुदित होयँ (।) और श्री बाबू रामगुलाम सिंह जीव से बतर के है (,) उनको एक लड़का के तलास है सो आपके पास भी साइत जिकर हुई थी (,) सो टीपन देने मे कुछ आप को तामुल है और आपने कहा भी था कि राजा साहब जी का पत्र आवै तो टीपन हम देयँ (,) सो इस बिषै मे तो हमारे नजदीक टीपन देने मे कुछ संदेह की बात नहीं है (;) मोनासिब हो तो टीपन दे दीजिये (।) अगर गणना वगैरह शुद्ध बनि जायगी तो आइन्दे देखा जायगा (।) अधिक समाचार इहा का सब यथा स्थित है (,) कोई नवीन बात निही जो लिखै (।) आप कृपापूर्वक कुशल मङ्गल घटित पत्र से हमेसा सानंन्द करत रहब जे ते खुशी वो खातिर जमा रहै जी (,) अग्रे शुभमू मिः वैशाख कृष्ण प्रतिपदि शनिवासर संवत् १६२७ ।

बे । प । ५

श्री देवता श्री राम

स्वौस्ती श्री सब उपमा जोग श्री बाबु रघुनदन प्रशाद शीघ जी इते स्वौस्ती श्री प्रताप नाराएन त्यादि विवीध विरुदावली विराजमान मानोन्नत श्री सन्महाराजाधिराज श्री श्री श्री महाराज राजेन्द्र कीशोर शीघ बहादुर देवदेवानां शदा शमर बीजइनां के न्मशकार (।) इहा कुशल छेम है (,) अपने के कुशल छेम चाही जे खुशी खातीर के जमा रहे (।) आगे माह अगहन शन हाल मे मोकाम बनारश शे .... के बनीशवत एक कीता खत बशबील डाक बैरंग एह तरफ शे रवाना कइल गइल वोह शे हालात मोफशील जाहीर भइल होए (,) मगर बहुत अरशा गुजर गइल कुछ हाल लीखेम्ह न आइल (,) कमाल इन्तजारी देखकर फेर अपने के लीखेम्ह आइल हे की अपने हतलमकदुर खतजोग वो पैरवी शे दरेग मत कइल जाइ जे हमे...शभ मील जाए तवन उपाए वो ततवीर कइल जाइ (,) वल के एह बनीशवत एक कीता खत डुमरांव भी आत बाट शे हुभे मे आइ (।) अधीक कुशल मंगल लीखत रहेम्ह आइ जेह शे खुशी खातीर के बनल रहे ता: ३ माह माघ शन १२७६ शाल मोकाम बेतीआ (।)

वै । प । ६

श्वौशती श्रीः वाबु शाहेब बाबु रघुनन्दन प्रशाद जी जोग्य बाबु राधामोहन प्रशाद के आशीरवाद (।) श्रीः जी शादा शाहेब के आनंद शाथ राखी जाही ते अपना प्रमखुशी (।) आजु एक खत बजरीए डाक बानाम लाला धरमनाराएन शीघ मोः बैरीआ शे शाहेब के आइल (।) वोह शे मालुम भैल श्री बखीआल रावानगी हमरा मोः डुमराव का आजु शाहेब का बैरीआ शे कहार ना रावाना कैल गैल (।) कालु डुमराव शे एक पीआदा हाथी लेके आइल (,) हाथी तो वोहपार रहल मगर पीआदा डेरा प्र आकर एतीलाए दीहल की हाथी हम वोहपार राखी आइल बानी (,) चलल जाउ (।) हम भोजन कैला का बाद इहा शे रावाने होए दरीआव का कनारे गैली (।) उहा मालुम भैल की फीलवान बराह शरारत हाथी वापश ले गैल (।) एक पीआदा·········वोकरा श मालुम भैल की नेआजी पुर पहुचल होइ (,) जोमकी शाम हो गैल अगरचे वोहपार जैशे करी तो उहा शे जाए के शवारी के कवनो बंदोबशत नाही·········पाच बजे फेर डेरा पर अइली अवर पीआदा जे हाथी का शाथ आइल रह वोकरा के एक रुका लीखी के दीवान जी शाहेब का नाम शे दे दीहली की हम कीनारा तक अैली मगर हाथी ना मीलल तेह शे वापश जात बानी (,) दीगर शवारी बंदोबशत कै के हाजीर होखब (।) अब ही तक कहार के बंदोबशत इहा ना भैल (,) हुकाम शभ के रावानगी शगर के (,) तेह शे काहार मीलना गैरमोमकीन (,) तहशीलदार शाहेब का करघु (,) इन्हकरा कोशीश मे कुछु शक नैखे (।) वगैर शवारी का ना हम डुमराव जा शकी ना माकान पर आ शकी (।) बाइह नफर काहार शाथ एही पीआदा का जलद भेजल जाए की हम इहा शे डुमराव जाइ वो उहा शे रोकशद होकर एही कहार पर बैरीआ आइ (,) वो दुइ ठे बेगार भी जरुर कहारन का शाथ आवघु (।) आजु नन्हकु जी शाहेब जरीदा देवी भगत का माः कहार शवील के के डुमराव गैली (।) कल्ह कशत उहा के इहा वापश आवे के बाए (,) अशबाव वोगैह वो चंद आदीमी इहा का मोकाम मे छोडी के गैल बानी, अधी (?) अपना खुशी मीजाज शे खुश राखब होइ (,) जीआदे शुभ ताः १० अगहन रोज बुध शन १२८६ शाल—

आशीरवाद खत वाजेह कहार औ बेगार कल्ह शाम तक जरुर आवे (,) अंसन संयोग बाए की जाके भी हम फिर आवतानी (,) सवारी के तो सबील होन का लेकिन तो एसन हेर फेर हो जात बाए की पहुँची नैखे सकत (,) अधीक अपना खुशी मिजाज के लीखब होई—

वै । प । ७

स्वस्ति श्री सकल गुण गरिष्ट बाबू रघुनंदन प्रसाद सिंहजी के इतः श्री काशी नरेश महाराजाधिराज द्विजराज कुमार प्रभुनारायण सिंह कै यथा योग्य (।) इहां के अत्यंत शोकदाई समाचार का लिखी (,) मिः जेठ सुदी १५ सं० १९४६ गुरुवार के श्री दाऊ जी के काशीलाभ भैल (,) आसाढ़ बदी ६ शनि से मंगल १२ तक श्राद्धादिक कर्म होई से जानव (,) शरीक होब (।)

वै । प । ८

श्री : १

स्वस्ति श्री सकल गुन गरिष्ठ श्री बाबू रघुनंदन प्रसाद सिंह जी के इतः श्री काशी नरेश महाराजाधिराज द्विजराज प्रभुनारायण सिंह बहादुर कै यथा योग्य (।) आगे इहां कै शोकयुक्त

समाचार का लिखी (,) श्री मौजी साहेब के मि: बै० वदी १ सं० १६४७ अत्तवार के काशीलाभ भैल (,) मि० बै० वदी १० मंगर के शुद्ध औ ११ से १३ तक पिंडदानादिक कर्म होई (,) अतएव पत्र जात है कि कार्य में शरीक होब।

श्रीः

श्री परमेश्वर

वै। प। ६

स्वस्ति श्री सकल गुन गरिष्ट श्री बाबू रघुनंदन प्रशाद शर्म सिंह जी वो बाबू पद्मदेव नारायण शर्म सिंह जी के इतः श्री काशी नरेस महाराजाधिराज द्विजराज श्री प्रभुनारायण सिंह बहादुर कै आसीस ......कुशल रखैं (।) आगे निमंत्रण पत्र विवाह ची: बबुवा प्रमोद नारायण सिंह के पाय हर्ष भयल (,) विधि पूर्वक मंगल कार्य पूर्ण करैं (।) इहां से रसम नेवता शिव कुमार उपाध्या उपरोहित ले जाते हैं से पहुची (।) कुशल मिला करै (,) इहां......के कृपा से कुशल है (,) शुभ मि: जे० कृ० सं १६५३.

श्री गनेशायन्मः

वै। प। १०

शौश्ती श्री० शर्व उतीम उपमा जोग श्रीः जनाब बाबु रघु प्रशाद पांडे जी शाहेब बबुआ पदुम देव नाराएन जी शाहेब शमश्त बालकनाम ली० रामशरनदाश (,) तुलशी लाल के अरज प्रनाम (।) आगु इहा आन्द मगल बाट (,) शरकार शभ के खुशी मोजाज के श्री ठाकुर जी शे चाहत रहीले की ताही शे अपना खुशी होइ (।) आगु हमरा बबुआ अमीका प्रशाद के शादी बालुपुर बैशाख क्रे शन दोआदशी रोज शोमार के हव (,) अतेवे शरकार के नेवत्रन जात बाट की बैशाख क्रे शन एकादशी रोज अतवार के कीपा कइल जाई की बाराती के शोभा होई (,) जीआदे शुभ (।)

रत। प। १

स्वोस्ती श्री श्री श्री श्री श्री सव उपमा बीराजमान वेद मुरती सकल गुन गरी (? ष्ट) श्री पंडीत जी श्री कधइआ राम पंडी जी के लीः शदा शेवक गुरदेआल चौवे के शस्टाग दंडवत बारमवार (।) आगे इहा कुसल मंगल है (।) शरकार का अनुग्रह ते सरकार के कुशल मंगल चाही हरोज के जाही ते आपन भला होइ (।) बाद इहा के हेतु अस हव जे सरकार के दरशन करे के इछा हव शे ताहा शरकार में पहुचीती (,) शे एगो बात बाइ जे हम गंगा नाहात बाडी कातीक (,) शे आपन अखतीआर त नाही बलावे के (,) शे इ हुकुम बाडी जे शरकारे हुकुमीहार हउ (,) आगे अब इहे अरज इहे जे अतवार के शरकारे अनुग्रह कइके गंगा जी नहाए आइल जाइही (,) मोकरर हे (तु ?) हुकुम्वल जाइही (,) आपन जानी के मोकरर मेहरवानगी कइ के शुरेमनीपुर ले आइल जाइही मोकर (,) लीखल थोर जानव बहुत (,) भावनाथ जात बाडे (,) हेतु कहीहे (।) आगे जीआदे शु मीः कातीक बदी ५ ममी रोज मगर सन १२३२ शाल।

रत। पं। २

कधइआ राम पंडीत

लीः चइंत पाडे वो हरी पाडे वो तुला पाडे वोगौह मठुकी पाडे वो मनशाराम पाडे वो लालु पाडे वो अवतार पाडे वोगौह लछी पाडे मालीक मौजे मठुकीपुर शा. रतशंड कशबे खाश वो

उपरोहीत तालुके रतशंड तपै चैराशी अमले प्रगने कोपाचीट (।) आगे हमरा दुनो जाना का तकरार भैइल (,) खुद फेड बाग बाश खेत पोखरा मौजे महुकीपुर वो जमुमनीका तालुके रतशंड तपै चैराशी कै (।) तब हमरा दुनो वादीन्ह आपुश माह ऐक दील होए के शलाह ठहरावल की ऐक पंच मोकरर करी की झगरा आपुश कै आछा नाही (,) तब हमरन्ह का आपुश माह शलाह ठहरल की पंच कवइआ राम के पंडीत के चदी (,) जे पंडीत नीवारी देही शे हमरा दुनो जने कबुल करी (।) शलाह आपुस माह ठहरल (।) तब कवइआराम पंडीत का इहा हमरा दुनो जने गइली (।) अहवाल मोफशीशील बयान कइली (।) कहली की हमरन्ह कै झगरा छोड़ाऐ देइ (।) तब पंडीत मजकुर ने कहल की जो हमरा के दुनो जने जो पंच बदब तब अदालती जाइ दुनो जने हमरी नाव कै शफीना हजुर शे ले आइ (।) तब हम रउरा शभ कै झगरा छोड़ाऐ देब (।) तब हमरा दुनो जने पंडीत मजकुर शे अरज कइल की इआम कातीक कै हमरा गीरहशतइ कइल चाही (,) जो हमरन्ह के गाजीपुर भेजी ला अदालती में (,) तब हमरन्ह बेजीअका होइला (।) तब पंडीत मजकुर ने कहल की आछा राउरा दुनो बादी हमरी नाव के करारनामा मोचलीका शटाम प्र लीखी देइ (,) तब हम नीवारी देब (।) तब हमरा दुनो बादी पंच बदल (,) अपना खुश (शी ?) रजाऐ (।) शे पंच के नाव मालीक मौजे महुकीपुर शा: रतशंड कशबे खाश अमले प्रगने मजकुर के करारनामा मोचलीका लीखी दीहल (,) की पंडीत मजकुर जे नीवारी देही शे हमरा दुनो जाना का कबुल वो मंजुर । पंडीत का कहला मीचरला जे दुनो बादी माह उभयै शे अपना पद शे बाजी रहै (,) शाहेब जज के जरीवाना दे (,) वो अपना जाती मे कुपदी होए (;) अदालती में उभयी के दुनो बादी माह जे नालीश करै शे शाहेब जज वो कोरट अपील न शुने (।) ऐह अरथे दशतावेज करारनामा मोचलीका लीखल की शानी अनहाल शनदी रहै (,) बखत प्र काम आवे (।) शन १२३१ शाल शमत १८८१ मीती कातीक बदी अशटमी ।।८ मोकाम रतशंड शाला प्र करारनामा मोचलीका अपना खुशी राजीबंदी शे दुनो जने लीखल (।)

ली: उछंत पाडे तुला पाडे हरी पाडे
करारनामा लीखल स सही
वा: हरी पाडे

ली: मनशा पाडे लालु पाडे
अतार पाडे करारनामा
लीखल से शही वा:
लालु पाडे

गवाह—
भवानी शीघ लमरदार तालुकें
रतशंड करार उछत पाडे
वो मनशा पाडे वोगैह
वा।। बीहारी दाश =

गवाह—
रजंन शीघ लमरदार तालुकें
रतशड करार उछत पाडे
मनशा पाडे वोगैह

दशखत—
बीहारी दाश पटवारी मौजे बहादुरपुर
शा: रतशड कशबे खाश =

ख । त । ३

स्मत १८८३ स्मै नाम कुआरवदी ६ बार शुभ दीन (।) धनीक नाम कवैआराम पंडीत शा० रतशंड अमले प्रगने कोपाचीट (।) उधारनीक नाम शुवंश पाडे वो गीरवर पाडे वो कधइ पाडे वो रघुवर पाडे माफीदार मौजे ब्रहनचारी अमले प्रगने मजकुर रीनीम्री की (ही ?) तम रुपैआ एकस्य दश अंकह ११०) शीक्ा जर फराखाबादी ताकर शुदी शएकरे हे महीनवारे हे एकोतरा का हीशाब शमेन जोरी के अशा-ह्न शुदी ॥ १५ के देही ताकलाम वे उजुर उजुर न करही (।) आगे मौजे मजकुर माह हमरन्ह कै हीशा अढाइ हीशा वाजीब इव वो कबुजा बाट (।) शे एह रुपैआ माह खुशी वो राजामंदी शबुत अकीली अपने शे हीशा मजकुर अटक लीखल की करार प्र रुपैआ मै शुदी दाम दाम आदा करही (।) तब वेह प्र अगर करार प्र रुपैआ मै शुदी न देही तब हीशा मजकुर पंडीत मशतुर अपना कबुजा माह रखही (,) पैदावार तमशुक माह मोजारा देही (।) जब रुपैआ मै शुदी दाम दाम आदा होए तबही शा (हु ?) मजकुर छाडी देही (।) बीधी-चरीत्र एह मामीला माह हमरन्ह कवनो फन फरेब करही तब ना मोनाशीब वो कही नालीशी करही तब शुना न जाए (।) एह अरथे तमशुक गीरइ लीखल जे वखत प्र काम आवै (।) मोकाम रतशंड पंडीत मजकुर का शाला प्र तमशुक लीखल (।) शन १२३४ शाल =

दसखत	गवाह	गवाह
संदील दाश पटवारी तालुकै रतशंड	शीवनराएन शीव जीमीदार तालुकै रतशंड	शंकर शीघ जमीदार तालुकै रतशंड खुद लीला राए

लीः शुवंश पाडे वो गीरवर पाडे वो कधइ पाडे वो रघुवर पाडे (।) एकस्य दश रुपैआ कै तमशुक गीरई लीखल शे शहो याकलम संदीलदाश पटवारी तालुकै रतशंड =

झुद्दि राम पाडे लीखल
ग्राम पंच की जुबानी

रत । पं । ४

श्री कृष्ण शरणम्

१• • . शुभ अस्थान रत्शत शफल पच प्रधान आगे दुए धादिन्याच अइलैही लाग धादि (।) टेक पाटे पंच का दहा कथ कथ जे हमार वेख जजमीनका कें से ब्रह्मचारी के से बंध सं सुवश पाडे (,) फल पाटे लुटलं धाटै ही (।) तव पचो पुछल प्रतीपादि सुबंश पाटे फे (,) फल पाटे जे टेक पाटे का कहँलैही (।) तब शुवश पाटे कथल जे जब थे हमार मीलीकी हव तब थे हम जजमनिका मीलीकी दुनो हम करावल हाइन्ह (,) अमल नाही करही कहल (।) तेही पर पर पचो कहल जे दानपात्र शीधा राऐ कइल (,) प्रीथीमल के स घटोरी दुनो जना के का कहँला (।) तव प्रीथीमल कें सब घटराइल (।) सभो कहल जे पाच पुरती गइल (,) हमरन्ह इ नाही जानी जे दुनो जना कहँश रहलै हा (।) अब पंजीत कें सास्त्र मागी (,) जेकरा के दिव्य भापं से गोशैआ का पर शे नीकाली लेइ (।) तेकर दुनो धादि मजुल धइल (।) रत्र मीताछ्रा कें पोथी पोथी आइल (।) पोथी के पूजा दुनो धादि कइल (।) सुवश पाटे के दिव्य ठहरल (।) शुबंश कबुल कइल (।) कराही धइसल (,) घी . सं लीपाल (।) परशान पाटे का माथे धधाइल (।) अब भाप लेवे के भइल तब पचो पुछल जे पच परमेश्वर कहीं से करद (।) तब शुबस धइल जे पच गोसैआ हव जे कहे से शही (।) दुनो धादि मजुल कइल (।) कराही उतारल (,) पच के मोचलीका अपनी खुशी लीपी दिहल (।) पचो प्रीथीमल के जे रहे से पच के लेके नीबारल जे ब्रह्मचारी कें मीलीकी पर रहथु टेक पाटं (,) अपनी जजमनीका पर रथु (।) दुनो धादि कबुल कइल र (रा ?) का भइल (।) अब केउ गगरा करें शे झुठा (,) पच कैं गुनहगार गोशैआ के गुनहगार (।) आगे शुभ स्मत् १८४४ रमैनाम सा (च ?) न शुदि पुरनमाशी ।

पच के नाव भवानी राऐ हुकुम राए दीना राए हरदत राए शैना राए जोवराज राए हनुमान राऐ अटल राऐ पच महाजन बसन साहु डुमर शाहु, मनसा साहु, लेषी साहु सम पच मीली नीवारल पच जीवक पाडे जनउपुर टीका पाडे नेबाशमारथी ।

पि । त । १

समत १८८४ समेनाम जेठवदी १ एकम बार सुमदीन, धनीक नाम बवेजी चौबे, उधारनीक नाम तासेवत तीवारी, मोकदम संकरपुर , रीनँ श्रीहर्त रुपैश्रा २४), अंकेय चौश्रीस रुपैया, बानारस चालान सीका करजा लीहल, ताके सुदी १) माहवार सएकरही हीसाव जोरी के देही, ताके करार जेठ का १५ पुनर्बासी के रुपैश्रा देही। श्रागे एही रुपैश्रा माही १ एक बीगाहा खेत, बोहा माह, लीख दीहल (।) जब रुपैश्रा देही तब जेठ का पुनर्बासी के देही, बे उजुर उजुर ना कर ही, सन १२३४ साल ।

लीः तासेवत तीवारी चौबीस रु (प !) आ का तमसुब लीख्ल से सही मोकदम संकरपुर रुपैश्रा २४) एह रुपैश्रा माह १ एक बीगाहा खेत बोहा माह लीख दीहल ।

गाः हेवचल चौबे हीसेदार सुरेमनपुर

गाः माकछेदी चौबे हीसेदार सुरेमनपुर

पि । त । २

समत १८८४ समैनाम, माघवदी १३, बार सुभ दीन, धनीक नाम बवेजी चौबे, उधारनीक नाम बंधन चौबे, सुरेमनीपुर, रीनी गीरीहोर्तंग रुपैश्रा फाराकाबादी, सन-छ सन ६) अंकेय छव रुपैश्रा, ताके सुदी स एकरे महीनवारे दीवोतरा वा हीसाबे जोरी के देही, ताके करार बैसाख की पुरनवासी के देही, बे उजुर उजुर नो करही, स (न !) १२३५ साल मोकाम सुरेमनीपुर, बेरी बीच वाला सीव कलवार का दरवाजा पर लीखाइल (।)

गाः हरीचरन चौबे सुरेमनी पुर

गाः पहुमन चौबे सुरेमनीपुर

लीः बंधन चौबे छव रुपैश्रा के तमसुक लीखल से सही (।)

पि । त । ३

स्वत १८८७ समे नाम मीः श्रावन शुदी ७ वार शुभ दीन, वनीक नाम चंवेजी चौबे, हीशाहार शुरेमनीपुर, परगने बलीआ, ववारनीक नाम ताजेवर तीवारी, रीनी खतं रुपैआ फराकावादी चलान अरज बजार १५। करजा लीहल अंकेय श्राता पदरह रुपैआ, ताके शुदी शव कर ही महीनवार ही डेढ़ रुपैआ ।।) के हीशाब देही (।) करार वैशाख मरी माह देही, वे उजुर मजुर नो करही, शन १२३७ शाल मो० शंकपुर, शाम्हक बदल लीवाइल । आगे तीनी रुपैआ का अवेज माह तीनी कठा खेत गीरो लीखी दीहल (।) जब माल शुदी समेत रुपैआ देही, तब कागज फेरी लेही (।) जो कवनो वात के फेर फरेब कर ही, त जज बहादुर अगरेज के जारीवाना देही ।

लीः ताजेवर तीवारी पदरह मारी आना के तमशुक शही
गौः अभीन तीवारी मौकाम शकपर गमा राशी दशगत
जैद मंगलदास पटवारी शंकपुर मगा.ली

पि । त । ४

समत १८८७ समै नाम अगा—ह वदी १, वार शुभ दीन, धनीक नाम चंवेजी चौबे, ववारनीक नाम अवध हलखोर, साः शुरेमनीपुर, रीनीश्रीहीतं रुपैआ ८) अंकेय आठ रुपैया सदर चलान बजार करजा लीहल (।) अपना खुशी राजबंदी वेनी सें, दीज दुरुस्ती ताके शुदी महीनवार सएकरेही दोवोतरा २) शुमीता माहवार लेखें देही (।) ताके वआदा अगहन माह देही, वे उजुर उजुर न करेही (।) सन १२३७ फसीली मोः शुरेमनीपुर बीच गोपाल भगत का दुरोआ माह तमशुक लीखाइल, उत्तर मुहें, दीन नवान वेरा, रोज शुक—

लीः अवध हलखोर आठ
रुपैआ के तमशुक लीखल से शही ८)
शुः बली शुवास साः शुरेमनीपुर

शुः भैरो चौबे
शुरेमनीपुर
पटवारी मंगुपाय

चि । त । ५

समत १८८६ समे नाम पुस सु० १ परीबो वार सुभ दीन घनीक नाम भवर तीवारी उधारनीक नाम महीपती चौबे लमरदार मौः सुरेमनपुर रीनग्रीहीतं रुपैग्रा ६६) अंकेय छाछठी रुपैग्रा करजा लीहल ताके सुदी सएकरही माहवोर १॥, डेढ रुपैग्रा का हीसाब जोरी के देही ताके करार बइसाख भरी मा रुपैग्रा माले सुदीं रुपैग्रा देही वे उजुर कवनो उजुर ना करही सन १२४० साल फसली (।) आगे एह रुपैग्रा के तपशील ताकर कीस्तीवन्दी

सन १२४० साल के पुसवदी १५ के — १५)
दोस (र !) कीस्ती समत १८६० समे के
जेठवदी १५ के — १५)
तीसरा कीस्ती समत १८६० के सन
१२४१ साल के पुसवदी १५ के — १८)
चौथ कीस्ती समत १८६१ समे के
जेठ वदी १५ के — १८)

आगे एह रुपैग्रा माह वउली पर के खेत १) एक बीगहा लीखी दीहल (।) आगे जगदीसपुर का बारी अपना हीसा मे दुइ फे (व- !) लीखी दीहल (।) आगे सुरेमनीपुर का··· माह १७ सत्रह फेड लीखी दीहल······काका कधीया चौबे के बारी की पुरुब फेड़ चार एह रुपैग्रा माह जाएजाद लीखी दीहल (।) जवलेक एह रुपैग्रा दाम दाम माफीक कीस्त बाकीस्ती दाम दाम भरी देही कागद फेर लेही करार में रुपैग्रा······तव एही जाएज······के रुपैग्रा···लीः महीपती चौबे लमरदार छाछठी रुपैग्रा के तमसुक लीखल से सही रुपैग्रा ६६) मौ० सुरेमन—

दसखत बाबु सादा सीघ सुरेमनपुर गाः देवचल गाः ववन चौबे हीसेदार······

पि। त। ६

समत १८६६ समे नाम मीः अगहन सुदी पुरनवासी वार सुभ दीन धनीक नाम बनेची चौबे पटीदार सुरेमनीपुर प्रगने बलीआ उधारनीक नाम रोपनी कमकर सा० सुरेमनीपुर रीनीग्रीहीतंग रुपैआ १६=) अंकेय अनैइस रुपैआ दुइ आना चालानी फरोकाबादी ताके सुदी सअकरे माहवारे सुमीला एक रुपैआ १) के हीसाब जोरी के देही (।) एह रुपैआ के अनेज माह हर जोते टहल उदम माह हाजीर के ताके करार बैहसाख भरी माह देही ये उजुर उजुर ना करे (।) सन १२५० साल मोः सुरेमनीपुर रंगलाल सोनार के दुआर प्र (।)

लीः रोपनी कमकर अनैइस रुपैआ दुइ आना के तमसुक लीखल से सही

गोः सीवव्रत चौबे — दसखत छत्रधारी दास

गोः रंगलाल सोनार साः सुरेमनीपुर — पटवारी साः सुरेमनीपुर

पि। त। ७

समत १६०२ समेनाम मीः भादो बदी १ वार सुभ दीन धनीक नाम सरदारी उधारनीक नाम मो (ह ?) र हलखोर साकीन सुरेमनीपुर रीनीग्रीहीतंग रुपैआ ३।।। अंकेय तीनी रुपैआ वा (र ?) ह आना, चालानी लाट साही, ताके सुदी सअकरे माहवारे सुमीला दुइ रुपैआ के हीसाब लगाइ के देही, ताके करार आसा-ढ़ भरी माह देही मे उजुर उजुर ना करे (।) सन १२५१ साल मोः सुरेमनीपुर

दसखत छत्रधारी दास पटवारी

लीः मोहर हलखोर पवने चार रुपैआ के तमसुक लीखल से सही (।) गोः सीवनून सोनार साः सुरेमनीपुर गोः रोपनी कमकर साः सुरेमनीपुर (।)

पि । फा । ८

श्री माहाराजे महेशर बकश शींघ जी बहादुर, फारखती इशीम भीखुक तीवारी कस्तकार, मौजे शंकरपुर प्रगने बलीआ, आगे बाः सन १२५५ शाल के मालगुजारी तहशील तहबील लाला शीव प्रसाद शींघ कारींदा सरकार श्री माहाराजे साहेब जी का इहा दाखील हुआ, इश वास्ते फारखती लीखी दीआ जे बखत प्र काम आवे ताः २१ माह जेठ सन १२५५ शाल दशखत दशरथ लाल पटवारी

फारखती सही

पि । क । ६

खुसीहाल चौबे ······चौबे जइसीरी चौबे मनराखन चौबे वोगैह डीगरीदारान मैंजे सुरेमनीपुर प्रगने बलीआ जीले गाजीपुर सुबे इलाहाबाद मैंजे मजकुर माह बीगाहा जोतही नगदी का सह कोडार······८० मानजुमीले बीगहादर रुपैआ

।१११) ३।~)

एह सह से देही मोरस्म पटवारी के फी रुपैआ पीछे आध आना का हीसाबे जोरी के देही कुआर से लाः बैसाख लै कीहीती बंदी देले जाही वे उजुर आपाना खुशी राजीवदी से जोतही खाही परती राखही लीखला माफीक देले जाही वे उजुर सन १२५६ साल के कबुलीअती लीखी दीहल अपना खुसी राजी से ताः सन १२५५ साल आसाढ़ वदी ५

नाः···रन चौबे नाः···रन चौबे
डीगरीदारान सुरेमनीपुर

नीः अभीलाख कोइरी
कबुलीअती लीखल जे
सही •

पि। फा। १०

लीः सीहकु चौबे हीसेदार सुरेमनीपुर प्रगने बलीआ इनीकी कीहा सतह रूपैआ के दहतावेज रहे मडही कै से दाम दाम भरा लीहल फारखती लीखी दीहल की वखत पर काम आ (वे ?) मीती जेठ बदी १३ सन् १२६८ साल मोकाम सुरेमनीपुर (।)

लीः सीहकु चौबे फारखती लीखल के सही
गु० फौदु चौबे सुरेमनीपुर दीहेदार
गु० पीरा चौबे सुरेमनीपुर दीहेदार

पि। द। ११

स्मत १६२० स्मै नाम मीती आशाढ़ शुदी १२ बार शुभ दीन धनीक नाम मोशमात अवधा कुअरी ज्वजे ठाकुर मीशीर शाः शुरेमनीपुर उधारनीक नाम वदवत चौबे जमीदार शुरेमनीपुर प्रगने बलीआ जीले गाजीपुर रीनीमीहीतं रुपैआ चलान बजार शाबीक दशतावेज कै १२) नगद वाशते देना महजन दोशर खेदन चौबे के शोह रुपैया एह दशतइवेज प्र ६) जुमीला २५) (।) आगे एह रुपैया का एवज माह खेत मडही लीखी देत बाटी ॥४ खेत के चौहदी परान अगत का पुरुब गडुल चौबे का गाछी का घन दीपचरन चौबे का पछीम उत्र शीवना शंकरपुर (।) खेत धनी मजकुर जोते जोतवावे वाद तरदुद करे खेत के महाशील शुदी का एवज माह तशरूफ करे (।) हाकीम कै मालगुजारी हम अपना घर गीरीही शे देते जाही (।) जब रुपैआ देही तब अशल माल जेठ महीना देही (।) कंचीत मालगुजारी एह खेत के हमरा शे ना दीआइ शकै त जो धनी मजकुर का मालगुजारी देन परै तर एवे औजीव जमाबंदी के १॥≈)॥ देले जाही (।) जब रुपैआ देही तब शएकरे माहवारे शुदी दर १) रुपैआ के जोरी के देही (।) दशतावेज आपश कइ लेही वे उजुर (।) एह वाशते दशतावेज लीखी दीहल जे बखत प्र काम आवै (।) तः शन १२७० शाल (।) एह रुपैआ शे शीवा तीनी रुपैआ बाद·········

दः लछुमन दाश शा० शुरेमनीपुर
गुः भीखनाथ चौबे शुरेमनीपुर बाः लछुमन दाश
गुः शुरबकश चौबे शुरेमनीपुर बा लछुमन दाश
गुः रघु तीवारी शाः शुरेमनीपुर बाः लछुमन दाश
लीः वदवत चौबे २५) रुपैया के दशतावेज लीखी दीहल मे शही बाः लछुमन दाश—

पि । र । १२

१२८३ शाल
प्रगने बलीआ
ता० टकरशड
मौज शवरुवाथ

रशीदी लीः शरकार श्री महाराज कुमार श्री बाबु रामपरगाश शीह जी मालीक लमरदार तालुके मजकुर हीशा पाच आना (।) आगे तपेशा चौबे मडहीदार शे मालगुजारी शन १२८३ शाल के मोताबीक जमाबंदी के पावल (।) रशीदी लीखी दीहल (।)

आशामी	रुपआ
मीः आशारबदी १३ मा० तपेशा चौबे मडहीदार	१) एक रुपआ

दः दुरुगालाल मोशदी

परिशिष्ट—३

आधुनिक भोजपुरी

इस परिशिष्ट में आधुनिक भोजपुरी के उदाहरण दिये जाते हैं। इनमें से अधिकांश लेखक द्वारा विभिन्न स्थानों से प्राप्त किये गये हैं, किन्तु कतिपय उदाहरण डा० ग्रियर्सन के लिंग्विस्टिक सर्वे भाग ५ अंक २ से लिये गये हैं। प्रत्येक उदाहरण के सम्बन्ध में नीचे विवरण दिया जाता है।

दक्षिणी आदर्श भोजपुरी

इसके पर्याप्त उदाहरण भोजपुरी साहित्य के अन्तर्गत पं० दूधनाथ उपाध्याय, श्री रघुवीर नारायण, श्री भिखारी ठाकुर, प्रि० मनोरंजनप्रसाद सिनहा, पं० रामविचार पाण्डेय की कविताओं तथा श्री राहुल सांकृत्यान एवं श्री अवधबिहारी 'सुमन' के गद्य के उद्धरणों में दिये जा चुके हैं। नीचे दो उदाहरण लिंग्विस्टिक सर्वे से दिये जाते हैं—

[क] इजहार अजोध्या राय, सा० नवादा, बेन परगना, आरे, जि० शाहाबाद। लिं० स० पृ० १९१।

[ख] सिआर के कहनी, जिला सारन।

यह कहानी बाबू गिरीन्द्रनाथ दत्त ने सन् १८९८ में डा० ग्रियर्सन के पास भेजी थी। इसे ग्रियर्सन ने लिं० स० के पृ० २२३ पर उद्धृत किया है।

पश्चिमी भोजपुरी

[ग] ढेला पत्ता (बनारस)

[यह कहानी लेखक द्वारा, बनारस से १२ मील पूरब स्थित, पर्नापुर गाँव से, आज से कई वर्ष पूर्व प्राप्त की गई थी। कहानी कहनेवाले पं० शीतल तिवारी थे। उस समय आपकी अवस्था ७१ वर्ष की थी।]

[घ] तिस् के ना ते रहू के,
इ बरघा तीन् के।

[यह कहानी लेखक द्वारा ऊपर के गाँव से ही प्राप्त की गई थी। इसके कहनेवाले श्री नारायन तिवारी थे जिनकी अवस्था उस समय २२ वर्ष की थी।]

[ङ] यह उदाहरण लिं० स० पृ० २६८ से लिया गया है।

[यह भी बनारस जिले की बोली का नमूना है। इसे रायबहादुर पं० महाराजनारायण शिवपुरी ने सन् १८९८ में डा० ग्रियर्सन के पास भेजा था।]

[च] यह बनारस शहर की बोली का नमूना है।

[इसे डा० ग्रियर्सन ने लिं० स० के पृ० २७४ पर "बदमाश दर्पण" से उद्धृत किया है। इसका लेखक तेगअली था। पुस्तक भारत जीवन प्रेस, काशी, से प्रकाशित हुई थी।]

[छ] नाऊ के कहनी। (मिर्जापुर)

[यह कहानी, लेखक को, ग्राम बरेवा, पो० चुनार, जिला मिर्जापुर निवासी पं० शिवमूर्ति त्रिपाठी, अवस्था ३२ वर्ष, से प्राप्त हुई थी। बरेवा ग्राम, मिर्जापुर से लगभग २२ मील पूरब की ओर स्थित है।]

[ज] दुइ साधू के कहनी (आजमगढ़)

[यह कहानी, लेखक को, ग्राम, भुवनचक पो० दोहरीघाट, जिला आजमगढ़ निवासी पं० कामतापसाद शुक्ल, अवस्था २५ वर्ष, से प्राप्त हुई थी। भुवनचक ग्राम आजमगढ़ शहर से लगभ ३६ मील उत्तर-पूरब की ओर स्थित है।]

[झ] गवरा गवरइआ आ राजा। (आजमगढ़)

[यह कहानी लेखक को, ग्राम अखपुर, पो० कन्धरपुर, जिला आजमगढ़ निवासी श्री रघुनाथ राय से प्राप्त हुई थी।]

उत्तरी आदर्श भोजपुरी

[ञ] संकर आ पार्वती जि के कहनी। [गोरखपुर]

[यह कहनी लेखक को, ग्राम तुर्कवलिया, अहिरान टोला निवासी श्री रामधनी अहीर, अवस्था ४० वर्ष से प्राप्त हुई थी। तुर्कवलिया ग्राम गोरखपुर शहर से १० मील की दूरी पर उत्तर की ओर स्थित है।]

[ट] यह पत्र लिं० स० के पृ० २४४ से उद्धृत किया गया है। यह बस्ती जिले की सरवरिया बोली का सुन्दर उदाहरण है।

[ठ] के अन्तर्गत सदानी के उदाहरण दिये गये हैं। इसमें निम्नलिखित सामग्री है—

(१) बालमइत रानी (कहानी)।

(२) फगुआ।

(३) डमकच।

(४) श्रीकृष्ण की लीलाएँ।

(५) पावस।

(६) जनी झूमर।

(७) झूमर।

(८) लहसुवा।

ऊपर की समस्त सामग्री मनरेसा हाउस, राँची, के रोमन कैथलिक मिशन के पादरी, साहित्यरत्न श्री पीटर शान्ति नवरङ्गी की अप्रकाशित पुस्तक 'सदानी भाषा तथा साहित्य' से ली गई है। इसके लिए लेखक श्री नवरङ्गीजी का अत्यधिक कृतज्ञ है।

[ड] यह उदाहरण डा० ग्रियर्सन के लिं० स० के पृ० २६६ से उद्धृत किया गया है। यह जशपुर राज्य के नगपुरिया भोजपुरी का नमूना है।

[ढ] यह उदाहरण डा० ग्रियर्सन-कृत लिं० स० के पृ० ३०६ से उद्धृत किया गया है। यह चम्पारन जिले की मधेसी भोजपुरी का नमूना है।

[ण] यह उदाहरण डा० ग्रियर्सन-कृत लिं० स० के पृ० ३१६ से उद्धृत किया गया है। यह चम्पारन जिले की थारू (भोजपुरी) का नमूना है।

[त] यह उदाहरण डा० ग्रियर्सन-कृत लिं० स० के पृ० ३२२ से उद्धृत किया गया है। यह गोंडा जिले की थारू (भोजपुरी) का नमूना है।

[थ] नोन् वोए के कहनी।

[यह कहानी लेखक को नेपाल राज्य के, बुटवल जिले के अन्तर्गत, कुंजलपुर ग्राम के निवासी श्री दरबारी थारू से प्राप्त हुई थी। श्री दरबारी कठरिया थारू थे तथा उनकी अवस्था ४५ वर्ष की थी। कुंजलपुर थारुओं का गाँव है और यह बुटवल से ५ मील दक्षिण, नेपाल की तराई में स्थित है।]

[क] इजहार अजोध्या राय स. नवादा वेन प्र: आरे

हम् नवादा में मालिक् हईं। मुद्दई मुद्दालेह् के चिन्ही ले। साविक् में मकान् हमरे पट्टी में रहल् हा। बटवारा भइला पर हमरे पट्टी में था।

(सवाल)। उस मकान से मुदई को कुछ सरोकार है॥

(जवाब) कुछुओ ना। मुतरफा अगाड़ी ढोढ़ा से पावत् रलीं हीं। अब् मुदई से पईले। ढोढ़ा दू भाई रहे। एक कें नाम ढोढ़ा दोंसरा कें दसई। मन्दू अगाडियो से नौंकूरी-चाकूरी करें जात रले हा। अवहूँ जा ले। बरिस दिन से बहरे रले हा। घर् में दसई बहु के छोड़ गइल् रले हा। अठारह ओंनइस दिन भइल मकान पर गइल रले हा। मुदई गोंबरी राय आ हम गोवरधन राय कीहाँ गइलीं। कहलीं की एकर मकान ह छोड़ दीं। मुद्दालेह कहलस की ना छोड़ब। ओह मकान में मुदालेह के गोरु बधौं ला। हमनी का कहला पर कहलस की जा जे मन में आवे, से करीह। हम ना छोड़ब॥

(अनुवाद)

इजहार अयोध्या राय सा: नवादा वेन परगने आरे।

मैं नवादा में मालिक हूँ। मुद्दई मुद्दालह को पहचानता हूँ। वास्तव में मकान मेरे पट्टी में था। बँटवारा होनेपर मेरे पट्टी में था।

(सवाल) उस मकान से मुद्दई को कुछ सरोकार है॥

(जवाब) कुछ भी नहीं। पहले लगान ढोढ़ा से पाता था। अब मुद्दई से पाता हूँ। ढोढ़ा दो भाई थे। एक का नाम ढोढ़ा दूसरे का नाम दसई। मन्दू पहले से ही नौकरी-चाकरी करने जाता था। अब भी जाता है। एक वर्ष से अलग रहता है। दसई घर में बहू को छोड़कर गया हुआ था। अठारह उन्नीस दिन हुआ, मकान पर गया था। मुद्दई गोबरी राय और मैं गोवरधन राय के यहाँ गये थे। कहते थे कि इसका मकान छोड़ दो। मुद्दालह ने कहा कि न छोड़ेंगे। उस मकान में मुद्दालह के गोरु (गाय-भैंस) बँधे हैं। हमारे कहने पर उसने कहा कि जाओ, जो मन में आवे सो करो। मैं न छोड़ूँगा।

[ख] सियार के कहनी

एगो सिआर रहले। एगो गाए् रखले रहले। त उनकर जात लोग पुछल, ए भाई, कैसे मोटाइल बाड़। कहलन की हम फजिरें का बेरा मुँह धोई ले, एक गाल रोजो आँकर चबाई ले, गंगाजी कें पानी एक चिरुआ पीले, दाँत महरा गैल। सिआर लोग कहले की, दाँत हमार तुर

दिहलन। चल चो॑दनिकर॑के मारीं॑। गैल लोग। तो ना भेटाइल। ओकर जतिआ गैइए के मुआ दिहले।

(अनुवाद)

सियार की कहानी

एक सियार था। एक गाय रखे हुए था। तब उसके जाति के लोगों ने पूछा कि, ऐ भाई, कैसे मोटा हो रहा है। (उसने) कहा कि मैं प्रभात काल में मुँह धोता हूँ, एक गाल भरकर (कवलभर) रोज कंकड़ चबाता हूँ, एक चुल्लू गंगाजी का पानी पीता हूँ। (उसके जाति के लोगों ने भी ऐसा ही किया) दाँत टूट गये। सियार लोग कहने लगे कि हमारा दाँत तोड़ दिया। चलो, बदमाश को मारें। लोग गये। तो न मिला। उसकी जातिवालो ने गाय को ही मार डाला।

[ग] ढेला पत्ता

एक् रहे ढेला एक् रहे पत्ता। दुनों में॑ भयल् झगरा। ढे॑लवा कहे॑ हम् बड़ा, पतवा कहे हम् बड़ा। त ऊ दुनो॑ सुलह् कइलें॑। ढे॑लवा कहले॑सि कि आन्ही आई त हम् तो॑हरे॑ उपर् चढ़ि बइठबि कि तु उड़बै॑ ना। पत्ता कहले॑सि कि पानी आई त तो॑हरे॑ उपर् हम् चढ़ि बै॑ठब् कि तु भिजब ना। एतने॑ में॑ आन्हीं आयल् औ॑ पानी आयल्। पत्ता त उड़ि गयल् आ ढे॑ला ह तवन् भींजि के॑ गलि गयल्। जइसन् ओ॑ह् लो॑गन् के॑ तकलीफ् में॑ बीतल् ओ॑इसन् के॑हु के॑ न बीते।

(अनुवाद)

ढेला और पत्ता

एक था ढेला (और) एक था पत्ता। दोनों में हुआ झगड़ा। ढेला कहता था मैं बड़ा, पत्ता कहता था मैं बड़ा। तब उन दोनों ने सुलह (मेल) किया। ढेले ने कहा कि (जब) आँधी आयगी तब मैं तुम्हारे ऊपर चढ़ बैठूँगा कि तुम उड़ोगे नहीं। पत्ते ने कहा कि (जब) पानी आयेगा तब तुम्हारे ऊपर मैं चढ़ बैठूँगा कि तुम भींग न सकोगे। इतने में आँधी आई और पानी आया। पत्ता तो उड़ गया और ढेला था वह भींगकर गल गया। जैसा उन लोगों का तकलीफ में बीता (व्यतीत हुआ) वैसा किसी का न बीते (व्यतीत हो)।

[घ] सिस् के॑ ना ते॑रह् के इ बरधा तीन् के॑।

एक् किसान् एक् बयल् खरिदले॑ आवत् रहे॑। त पयँड़े॑ मे॑ ओ॑से तीन् ठग् मिलले॑, एक् बाप् दु लइका। त बुढ़ऊ अपने॑ लरिकन् से॑ कहलै॑, 'ई बर्धा कयनो॑ तरह् से॑ ले॑इ लेवे॑ के॑ चाहीं॑। त उनुकर् लड़िका दुनो॑ कहलें॑ कि हमहन् दाम् चलि के॑ करत् हईं॑। तु चलि के॑ आगे बइठ। हमहन् तो॑ह् के॑

तिसरइत् मानब् । तु जवन् तइ करब, ओ तने के बर्धा मिली ।

बुढ़ऊ जाइ के आगे बइठलैं । बनुकर् लड़का जाइ के किसान् से दाम् लगलैं करे कि बर्धा के तने के खरिदल ह । त उ कहैं तीस् के । त उ कहलैं, बेचबै । कहे, काहें, दाम् ठीक् से दै, तो ही के दै दें ई ।

त उ कहलै 'ए बर्धा के दाम् ते रह् रुपया देब्' । त उ कहलें कि के हु पुराना आदमी के तिसरइत् मान । ते रह् के माल् होय् त ते रहे के दे ई देईं । उ लोग् गयल् बुढ़ऊ किहाँ । सामने जाइ के सब् बात् कहि दे हलैं । त उ कहलैं कि जवन् हम् कहीं तवन् तो हन् लोग् मनबै । दुनो जने कहलैं, 'मानबि' । त कहलैं कि 'न ई बर्धा तीस् के न ते रह् के, इ बर्धा तीन् रुपया के । तीन् रुपया के दे इ के उ बरध् ले इ ले हलै ।

(अनुवाद)

तीस का न तेरह का, यह बैल तीन का

एक किसान एक बैल खरीदकर आता था । तब रास्ते में उनसे तीन ठग मिले । एक बाप दो लड़के । तब बूढ़े ने अपने लड़कों से कहा, 'यह बैल किसी तरह से ले लेना चाहिए ।' तब उनके दोनों लड़कों ने कहा कि हमलोग चलकर उसका मोल करते हैं । तुम चलकर आगे बैठो । हम तुम्हें तिसरइत (पंच) मानेंगे । तुम जो तय करोगे, उतने का बैल मिलेगा ।

बूढ़ा आगे जाकर बैठ गया । उनके लड़के आकर किसान से मोल करने लगे कि बैल कितने में खरीदा है । तब उसने कहा, तीस का । तब वे कहने लगे, 'बेचोगे' । (उसने) कहा, क्यों, दाम ठीक से दो (तो) तुम्हें ही दे दें ।

तब उन्होंने कहा 'इस बैल का दाम तेरह रुपये देंगे ।' तब उन्होंने कहा कि किसी पुराने आदमी को तिसरइत (पंच) मानो । तेरह मोल हो तो तेरह का ही दे दूँ । वे लोग बूढ़े के यहाँ गये । सामने जाकर सब बातें कह दीं । तब उसने कहा कि जो मैं कहूँगा वह तुम लोग मानोगे ! दोनों ने कहा, 'मानेंगे !' तब (बूढ़े ने) कहा कि 'न यह बैल तीस का न तेरह का, यह बैल तीन रुपये का है । तीन रुपये देकर उन्होंने बैल ले लिया ।

[ङ]

सवाल—अबकी सोमार अउर मंगर जौन बीतल हौ ओकरे बीच के रात में तूँ हरगोविन्द तिवारी के खेत से रहिला उपरलः ?

जवाब—पेट जरत रहल पिर्थीनाथ एक मुट्ठी उपरली ।

स०—तोंह के रमेसर गोंड़इत आधी रात के चोरी कै रहिला ले जात पइलें स ?

ज०—बेर बिसैं ले हम रहिला खात घर जात रहली । राम जिआवन गवाह कोल्हू हाँकत रहलन । हमें देख के पुछलन कहाँ से लिहले आवत हउअः । हम कहली की दुवरे सिवान से ले अइली हैं । तब राम जिआवन हमें धइ लिहलन ।

से अत्यधिक समानता रखता है। इसका एक परिणाम यह हुआ है कि अनेक आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओं में नामधातु तथा णिजन्त में अन्तर नहीं प्रतीत होता है। किन्तु बिहारी भाषाओं एवं बोलियों [मैथिली, मगही तथा भो० पु०] में, जैसा कि पहले कहा चुका है, यह अन्तर स्पष्ट है। भो० पु० में नामधातु के उदाहरण निम्नलिखित हैं—

पितरा (इल), पीतल जैसा हो जाना (पितर ∠ सं० को० पित्तलम्, पीतलम्; इसका सम्बन्ध पीत, पीतल; पीले से है); खटा (इल्), खट्टा हो जाना, (सं० खट्टः, प्रा० खट्ट); मिठा (इल्), मीठा हो जाना (सं० मृष्टः, पा० मिट्ठो, प्रा० मट्ठ-, मिट्ठ); कसा (इल्), कषाय स्वाद का लगना (सं० कषायः); पियरा (इल्), पीला पड़ जाना (मि०, सं० पीत, पीला]; हरिआ (इल्), हरा हो जाना (मि०, सं० हरितः, मि०, भो० पु० हरे, ने० हरौं, हि० हड़); चोंखा (इल्), अच्छा हो जाना; यथा—छाव चोंखा गइल, चोट अच्छी हो गई, (सं० चौक्षः, चोक्षः, शुद्ध पा० तथा प्रा० चोक्ख-); रेंता- (इल्) कटना (भो० पु० रेती, एक प्रकार का औजार जिससे लोहा काटते हैं); सोंन्हा (इल्), सोंधा होना, (सं० सुगन्धः); जम्हा (इल्,) जँभाई लेना (जम्भ-); लला (इल्), लाल हो जाना (फा०- अ० لعل) आदि।

क्रियावाचक विशेष्य पद [Verbal Nouns]

§६४२ भो० पु० में क्रियावाचक विशेष्य के निम्नलिखित रूप मिलते हैं—

(क) -अन् तथा विस्तार से -अना, -ना, -अनि, -नि प्रत्यय-युक्त शब्द। इन प्रत्ययों की उत्पत्ति भो० पु० प्रत्ययों के अन्तर्गत दी जा चुकी है। इन प्रत्ययों से युक्त क्रियावाचक-विशेष्य-पद मागधी-प्रसूत सभी भाषाओं—मैथिली, मगही, बँगला, असमिया—में मिलते हैं।

भो० पु०, बँगला तथा असमिया का -अना प्रत्यय ही हिन्दी में -ना, व्रजभाषा में -नो तथा पंजाबी में -णा हो गया है।

(ख) अकारान्त संज्ञापद जिनमें से अकार का लोप हो गया है, किन्तु जो आधुनिक व्यञ्जनान्त धातुपदों में किसी समय वर्तमान थे; यथा—भो० पु० बोल्, ध्वनि (यथा-मृदङ्ग के बोल) (मि०, प्राचीन तथा मध्य युग की बँगला का बोल ∠ प्रा० बोल्ल)। इसी प्रकार देंख्, मार्, धर् इत्यादि। विस्तार से इसका स्त्रीलिंग (लघु) रूप -ई ∠ -इअ ∠ -इका प्रत्यय में मिलता है। इस प्रकार भो० पु० के बोली, फेरी, मरी आदि शब्द बनते हैं।

(ग) -इ- प्रत्यय युक्त संज्ञापद, यथा—देंखि, सुनि, चलि, आदि। यह मैथिली में भी वर्तमान है (दे० ग्रियर्सन : मै० ग्रा० पृ§ १०६)। कर्त्ताकारक में -इ का प्रायः लोप हो जाता है, किन्तु अन्य स्थलों एवं संयुक्त पदों में लघु इ का प्रयोग होता है; यथा—मार् भइल् किन्तु मारि-पिटि भइल, मार-पीट हुई।

(घ) -अल- युक्त संज्ञापद; इसकी उत्पत्ति कर्मवाच्य के कृदन्तीय -अल से हुई है। यह भोजपुरी तथा मैथिली एवं मगही में भी अति प्रचलित है; यथा—चलल् (चलिअ + अल्ल ∠ चलितम्)। बँगला तथा असमिया में इसके समान -इल प्रत्यय है।

(ङ) -अब - युक्त संज्ञापद; इसकी व्युत्पत्ति वही है जो ब- भविष्यत् के रूप की है। ये रूप सभी मागधी भाषाओं एवं बोलियों में मिलते हैं। बँगला मे इसके -इब्- युक्त रूप मिलते हैं।

§ ६४३ व- भविष्यत् के रूपों के अत्यधिक प्रचार के कारण अन्- प्रत्यय-युक्त क्रियावाचक विशेष्य पदों का आधुनिक भोजपुरी से अब धीरे-धीरे लोप हो चला है। कदाचित् व- भविष्यत् के रूपों से पार्थक्य करने के लिए ही आधुनिक भोजपुरी में -अल्- प्रत्यय-युक्त संज्ञापदों का प्रचार बढ़ रहा है।

द्वैत-क्रियापद

§ ६४४ भोजपुरी में पौनःपुन्य अथवा पुनरावृत्ति अर्थ एवं कार्य की निरन्तरता का बोध कराने के लिए कभी-कभी क्रियापदों का द्वित्व हो जाता है। ये क्रियापद प्रायः - इ तथा अत प्रत्यय-युक्त होते हैं तथा क्रियाविशेषण रूप में व्यवहृत होते हैं। यथा—छुइ-छुइ, बार-बार छूकर; कुदि-कुदि, बार-बार कूदकर; नाचि-नाचि, नाचते-नाचते (बार-बार नाचकर), चलत्-चलत् , बार-बार चलते हुए; उड़त्-उड़त, उड़ते-उड़ते (बराबर उड़ते हुए)।

इसके प्रकार के प्रयोग प्राचीन-भारतीय आर्य-भाषा से लेकर आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओं तक में मिलते हैं। पाणिनि ने 'नित्यवीप्सयो.' (८-१-४) सूत्र में वीप्सार्थक क्रियापदों का उल्लेख किया है; यथा—पचंत-पचंत, निरन्तर पकाते हुए; भुक्त्वा-भुक्त्वा, निरन्तर खाते हुए, आदि।

§ ६४५ भो० पु० में कई धातु-पद युग्म रूप से प्रयुक्त होते हैं। ये दोनों या तो समानार्थक या निरन्तरताबोधक होते हैं। इन्हें संयुक्त क्रियापद कहना इसलिए उपयुक्त नहीं है कि इनके दोनों पद प्रत्यय-युक्त होते हैं; यथा—कोड़ि-खानि, गोड़ तथा खोदकर; धोइ-पोंछि, धोकर तथा पोंछकर ; अर्थात् पूर्णरूप से सफाई करके; कुदि-फानि, कूद-फाँदकर; धइ-बान्हि, पकड़कर तथा बाँधकर; चलि-फिरि, चल-फिरकर; लिखि-पढ़ि, लिख-पढ़कर ; हँसि-बोलि, हँस-बोलकर; कुटि-पिसि, कूट-पीसकर; छान्हि-बान्हि, छाकर तथा बाँधकर।

§ ६४६ अन्य आ० भा० आर्यभाषाओं की भाँति भोजपुरी में भी ऐसे क्रियावाचक विशेष्य पद (Verbal Nouns) मिलते हैं जिनमें परस्पर अर्थ-सम्बन्ध रहता है। इस प्रकार के क्रियापदों को द्विगुणित (double) कर दिया जाता है तथा आ स्वर द्वारा उन्हें संयुक्त कर द्वितीय पद में -ई- प्रत्यय लगा दिया जाता है, यथा—मारा-मारी, परस्पर लड़ाई करना; देखा-देखी, परस्पर एक दूसरे को देखना; ठेला-ठेली, एक दूसरे को ठेलना, काटा-काटी, एक दूसरे को काटना; फेरा-फेरी, एक दूसरे को लौटाना ; बोला-बोली, एक दूसरे को बोलना, परस्पर लड़ाई करना; लाठा-लाठी, परस्पर लाठी से लड़ाई करना; धक्का-धुक्की, एक दूसरे को धक्का देना; घुसा-घुसी या मुक्का-मुक्की, परस्पर घूँसा मारना; पटका-पटकी एक दूसरे को पटकना। ये संज्ञापद क्रियाविशेषण रूप में प्रयुक्त होते हैं।

संयुक्त क्रियापद

§ ६४७ आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं में, क्रियापदों के साथ संज्ञा, क्रियामूलक विशेष्य अथवा कृदन्तीय पदों के संयोग के कारण एक विशेष प्रकार का मुहावरेदार प्रयोग बन जाता है। इस प्रकार संयुक्त संज्ञापद या तो कर्म या अधिकरण कारक में रखे जाते हैं और दोनों मिलकर एक ही अर्थ का प्रकाशन करते हैं। इन दो संयुक्त पदों में से क्रियापद वस्तुतः सहायक

रूप में ही होता है तथा वह संज्ञा एवं क्रियामूलक विशेषण या विशेष्य (Participle तथा Verbal Nouns) की विशेषता द्योतित करता है। आ० भा० आ० भाषाओं में इस प्रकार के संयुक्त क्रियाओं के निर्माण से भाषा में एक नवीन शक्ति तथा स्फूर्ति आ गई है। प्राचीन भाषाओं जैसे संस्कृत, ग्रीक, लैटिन आदि में क्रियापदों में उपसर्ग लगाकर नवीन भावों का प्रकाशन होता था। योरप की कई आधुनिक आर्यभाषाओं में आज भी क्रियापदों में उपसर्ग लगते हैं, किन्तु आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं में इनका प्रायः अभाव हो गया। इसकी क्षतिपूर्ति आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं में संयुक्त क्रियाओं के निर्माण से हो गई।

§६४८ आ० भा० आ० भाषाओं में प्राचीनकाल से ही संयुक्त क्रियाएँ मिलती हैं। चर्या से डा० चटर्जी ने अनेक उदाहरण देकर इस बात को सिद्ध किया है। (दे०, बैं० लैं० §७७८)।

§६४९ भो० पु० में संयुक्त क्रियाओं के निम्नलिखित रूप उपलब्ध हैं—

१. संज्ञापद-युक्त

(क) कर्म कारक—भोजन् कइल्, खाना; भोजन् दिहल्, खिलाना; जमा कइल्, एकत्र करना; दर्शन् कइल्, देखना; नाम् लिहल्, जप करना, आदि।

(ख) अधिकरण कारक—आगे बढ़ल्, आगे बढ़ना; पाछे हटल्, पीछे हटना; नीचे गिरल्, गिरना, अवनति होना; आदि।

(ग) अधिकरण कारक में क्रियामूलक विशेष्य के साथ—

(i) प्रारम्भिकताबोधक (Inceptives) [√लाग्, प्रारम्भ करना के साथ] यथा—कहे लागल्, (वह) कहने लगा; मारे लागल्, (वह) मारने लगा; खाए लागल, (वह) खाने लगा।

पश्चिमी भो० पु० में देखे लागल्, 'देखने लगा' का प्रयोग होता है।

(ii) इच्छाबोधक (Desideratives), यथा—बाजे चाहत् बा, बजने ही वाला है या लड़ने ही वाला है;

उ बोले चाहता, वह बोलना ही चाहता है;

उ सुते चाहता, वह सोना चाहता है;

उ भागे चाहता, वह भागना चाहता है;

उ जाए चाहता, वह जाना चाहता है।

(iii) सामर्थ्यबोधक [Acquisitives] यथा—जाए पावल्, जा सकना; बइसे पावल्, बैठ सकना।

(iv) अनुमति या अनुमोदनबोधक [Permis sives] जाए दिहल, जाने देना; बोले दिहल्, बोलने देना; खाए दिहल्, खाने देना।

(घ) इच्छा बोधक—जब मुख्य क्रियापद विकारी (Oblique) रूप में आता है; इस प्रकार की संयुक्त क्रिया प्रायः इच्छाबोधक होती है;- यथा—उ जाए चाहता, वह जाना चाहता है; उ भागे चाहता, वह भागना चाहता है।

(i) अतीत काल की इच्छाबोधक संयुक्त क्रिया चाही के संयोग से कर्त्तव्य-भाव प्रकट करती है; यथा— ई पोथी पढ़ल चाही, यह पोथी पढ़नी चाहिए; तो हरा उहाँ जाए चाही, तुम्हें वहाँ जाना चाहिए।

(ii) पश्चिमी भो० पु० में देखै चाहल्; देखल् चाहल्; देखै चाहल्, 'देखने की इच्छा रखना' का प्रयोग होता है।

(ङ) शक्यताबोधक (Potentials); बोल्-सकल्, बोल सकना; दौड़ि-सकल्, दौड़ सकना; जाइ-सकल्, जा सकना।

(च) बहुधाबोधक (Trequentatives); अल- क्रियामूलक विशेष्य के साथ करल् या कइल के संयोग से संयुक्त क्रिया सम्पन्न होती है; यथा—

आइल् करल् या कइल्, प्रायः आना;

कहल् करल् या कइल्, प्रायः कहना;

पढ़ल् करल् या कइल्, प्रायः पढ़ना।

इस संयुक्त क्रिया का अन्य मागधी भाषाओं एवं बोलियों में अभाव है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह हिन्दी से भोजपुरी में आई है।

२. क्रियापद-युक्त

(क) निम्नलिखित सहायक क्रियाओं का प्रयोग विशदताबोधक (Intensives) के लिए होता है—

(i) बल-निर्देशक—तुर् डालल्, तोड़ डालना, टुकड़े कर देना; मार् डालल्, मार डालना।

(ii) समाप्ति-निर्देशक—बनि आइल, पूर्ण हो जाना; खा जाइल् या गइल्, खा जाना।

(iii) संयोग-निर्देशक—गिर पड़ना, गिरना।

(iv) आकस्मिकता-निर्देशक—बोल् उठल्, बोल उठना।

(v) स्वकार्य-निर्देशक—राखि लिहल्, रख लेना।

(ख) निरन्तरताबोधक (Continuatives) भोजपुरी में वर्तमानकालिक कृदन्तीय रूप (Present Participle) का जाइल् तथा रहल् से संयोग करने से यह सम्पन्न होता है। इनमें भी जाइल का संयोग स्थिरतापूर्वक क्रमशः वृद्धि का द्योतन करता है तो

रहल् का किसी कार्य के निरन्तर होते रहने का बोध कराता है ; यथा—पानी बहत् जात् बाटे, पानी क्रमशः बहता जा रहा है ; ऊ लिखत् जात् बाटे, वह लिखता जा रहा है ; नदी के धार् बहत् रहेला, नदी की धारा बहती रहती है।

(ग) स्थायित्व या नित्यताबोधक—यह किसी कार्य के होते रहने का बोध कराता है। यह वर्तमानकालिक कृदन्तीय रूप (Present Participle) के साथ किसी गमन-निर्देशक क्रियापद (Verb of Motion) के संयोग से सम्पन्न होता है ; यथा—

रोअत् आइल्, रोते हुए आना।

गावत् आइल्, गाते हुए आना।

सातवाँ अध्याय

अव्यय

§ ६५० संस्कृत, पालि, प्राकृत आदि में नाम तथा सर्वनाम शब्दों के परे तद्धित के कतिपय प्रत्यय लगाने से अव्यय बन जाते हैं। प्राचीन भाषाओं की यह विशेषता आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं एवं बोलियों में भी पूर्णतया सुरक्षित है और यहाँ भी संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण तथा प्राचीन अव्ययों से ही अव्यय बनते हैं। सर्वनाम के अन्तर्गत ही इससे सम्बन्ध रखनेवाले अव्ययों पर विचार किया जा चुका है। नीचे अन्य अव्ययों के सम्बन्ध में विचार किया जाता है।

§ ६५१ **कालवाचक अव्यय**

(क) संज्ञापदों से निर्मित—

साइति, क्षण ; समय (मि०, कोसली साइति ∠फा०-अ० ساعت); घरी, क्षण, समय (सं० घटिका, पा० घटिका, प्रा० घड़िआ), समै, क्षण (सं० समय); टेम (अं० टाइम् time); बखत्, समय (फा० अ० وقت) जल्दी, तुरन्त (फा० अ० جلد); फुर्ती, शीघ्र (सं० स्फूर्ति,); हाली, शीघ्र (सम्भवतः फा० अ० حال) 'दशा' से इसका सम्बन्ध है।

(ख) अव्यय-पदों से निर्मित—

आगे (सं० अग्रः), सामने; आजु आज (सं० अद्य, पा०, प्रा० अज्ज); काल्हि, कल (सं० कल्यम्), कल्ये, प्रातः (आनेवाला) कल, पा० कल्लं, प्रातः, प्रा० कल्लं, कल्हि, (बीतनेवाला) कल; तुरन्त (सं० तुरते, वर्तमानकालिक कृदन्त; तुरत, त्वरते, पा० तुरति प्रा० तुरै, तुवरन्त-∠ त्वरन्त-); नित् (नित्यम्), नित्य; बारम् बार, बार-बार (वारंवारम्); अब्, अभी (डा० चटर्जी के अनुसार -ब- ∠व्, इस प्रकार सं० एवम् 7 प्रा० एव्वं); कब, जब, तब की उत्पत्ति क+व, ज+व तथा त+व से हुई है।

§ ६५२ जब सर्वनाम-सम्बन्धी अव्यय दुहराये जाते हैं तथा अन्य अव्ययों के साथ संयुक्त किये जाते हैं तो उनका अर्थ परिवर्तित हो जाता है; यथा—जब् - जब्, इसके साथ तब्-तब् प्रयुक्त होता है। इसी प्रकार जहाँ-जहाँ, तहाँ-तहाँ, कभी-कभी तथा कहीं-कहीं अव्ययपद बनते हैं।

§ ६५३ अनिश्चितता का भाव प्रकट करने के लिए कभी-कभी सम्बन्धवाची अव्यय का अनिश्चयवाचक अव्यय के साथ संयोग कर दिया जाता है; यथा—जब्-कभी, जहाँ-कहीं; अथवा कभी-कभी दो अव्ययों के बीच 'ना' को अनिश्चितता द्योतित करने के लिए रख दिया जाता है; यथा—कभी ना कभी, कभी न कभी, कहीं ना कहीं, कहीं न कहीं।

§ ६५४ **स्थानवाचक अव्यय**

[सर्वनाम-सम्बन्धी स्थानवाचक अव्ययों को सर्वनाम के अन्तर्गत देखें।]

अन्ते (सं० अन्यत्र); नियर, पास (सं० निकट > निगड > निअड > निअर् > नियर्); नगीच् , पास (मि०, हि० नगीच् , ने० नगिच < फा० نزدیک); पार् , उस पार (सं० पारम् , उस पार, पारे, उस पार, पा० पारं, प्रा० पार-); भीतर् (मि०, ने० भित्र < प्रा० अब्भिन्तर (सम्भवतः सं० अभ्यन्तर- पा० अब्भन्तर- या * अभियन्तर से) ; बाहर, पा० बाहिरो, मि०, सं० बहिः प्रा० बाहि तथा बाहिरअ-); तरें, अधिकरण कारक में तरहि (सं० तलः पा०, पा० तल-) आदि।

§६५५ प्रकारवाचक अव्यय

[सर्वनाम-सम्बन्धी प्रकारवाचक अव्ययपदों को सर्वनाम के अन्तर्गत देखें।]

निम्नलिखित तत्सम तथा अर्द्धतत्सम शब्द प्रकारवाचक अव्यय के रूप में भो० पु० में व्यवहृत होते हैं—अकस्मात्, यकायक ; अति, अ० त० अतिअन्त, अधिक, केवल, निरन्तर, परस्पर, यथा, तथा, अ० त० बिरिथा, सहज, सत्य, आदि।

§६५६ संख्यावाचक अव्यय

यथा—एक्-सर, अकेला ; यह विशेषण है, किन्तु अव्ययरूप में भी व्यवहृत होता है ; मि०, दो सर् , तिसर् आदि। इसकी उत्पत्ति एक + सर् < √ सृ, सरकना, चलना से हुई है। भो० पु० में एक बार, दो बार, आदि का भाव तोर्, तोरीं, हालीं आदि के द्वारा प्रकट किया जाता है ; यथा—एक तोर, तोरीं, हालीं, एक बार ; दु तोर, तोरीं, हालीं ; दो बार, आदि। तोर की उत्पत्ति तोड से प्रतीत होती है ; (तोड या तोड़ का अर्थ आ० भो० पु० में बाँस से कटा हुआ एक तोड़ या तोड़ा होता है। इस प्रकार तोड, तोड़ < *त्रोट- < त्रोटयति प्रा० तोडै, तोड़ता है)। हाली की उत्पत्ति फा० अ० حال से हुई है।

§६५७ परिमाणवाचक अव्यय

(सर्वनाम के अन्तर्गत भी देखें)

यथा—अवरी, और (अपर-) ; बहुत (प्रा० बहुत्त-, कदाचित् सं० बहुत्वम् पा० बहुत्तं, मि० सं० बहुः, पा० बहु, बहुको, पा० बहुअ), ज्यादा, (फा० अ० زیاده) ; कम् (फा० کم) ; कुछिद् बेसी, अधिक (फा० بیش), बेश, ठीक, (बँगला से उधार लिया हुआ शब्द < फा० بیش) ।

§६५८ स्वीकार तथा निषेधवाचक अव्यय

अतिप्रचलित स्वीकारवाचक अव्यय हँ, हिं० हाँ, है। इसी प्रकार निषेधवाचक अव्यय ना, नाहीं (सम्भवतः < * न अहै, (ने० डि० ३३७) से हुई है) तथा मत है। इनमें से मत् तथा नाहीं का व्यवहार विधिक्रिया के साथ तथा ना का प्रयोग किसी क्रिया के साथ होता है।

बनारस की पश्चिमी भो० पु०, (चन्दौली तहसील) में नाहीं के स्थान पर नूहीं का प्रयोग होता है।

§६५९ स्वीकारवाचक अव्यय के रूप में अन्य अनेक संज्ञा तथा विशेषण पद प्रयुक्त होते हैं ; यथा—तत्सम ; अवश्य, जरूर (यह हिन्दी से आया है, इसकी व्युत्पत्ति फा० अ० ضرور है) ; निश्चय, निहिचे आदि।

§६६० निम्नलिखित फा०-अ० शब्दों का प्रयोग, अव्ययरूप में, यदा-कदा, भो० पु० में होता है। ये भो० पु० में हिन्दी से आये हैं। यथा—

जल्द, जल्दी, शायद, सायद, कदाचित्; हमेशा, हमेश, हमेस; अलबत्ता, अलबत्त, खासकर, बिल्कुल, याने, यानी आदि।

§६६१ कभी-कभी दो अव्ययों तथा अव्यय एवं संज्ञापदों के संयोग से सुन्दर अव्यय-वाक्यांश (Adverbial Phrase) बन जाते हैं; यथा— अउरी - कहीं, अन्यत्र; कबहीं - नहीं; कभी नहीं; धीरे-धीरे, नाहीं-त, नहीं तो।

§६६२ निम्नलिखित पदों का प्रयोग भी भो० पु० में अव्यय की भाँति होता है; यथा— जानिके, जानते हुए; मिलिके, मिलकर; कइके (हि० करके) ∠√कर्; यथा—मेहनति कइके, खास कइके, एक एक कइके, नीचे मुँह कइके; आदि।

§ ६६३ यह उल्लेखनीय बात है कि किसी शब्द पर जोर देने के लिए उसके बाद हें, ए का व्यवहार किया जाता है। इसका अर्थ होता है, ठीक, वही आदि। कभी-कभी उच्च स्वर से इन्हें उच्चारण करने से भी जोर आ जाता है। इ (हि० यह) तथा उ सर्वनाम के बाद हें का प्रयोग किया जाता है, किन्तु जे, से सर्वनामों के बाद ई का व्यवहार होता है। इस ई की उत्पत्ति ही से हुई है, (दे० हि० ही, यथा—यही, वही, जोही, सोही एवं जो ई, सो ई)। उदाहरण—हम उन्हें बात् कहलीं, मैंने वही बात कही; जे ई आई से ई पिटाई या जे हि आइ से हि पिटाई या जे हे आई से हे पिटाई, जो आयेगा वही पीटा जायगा।

§ ६६४ सम्बन्धवाचक अव्यय (Conjuntcions) को निम्नलिखित दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—

(अ) समान वाक्य-संयोजक (Co-ordinating)
(र) आश्रित वाक्य-संयोजक (Sub ordinating)

§ ६६५ (अ) समान वाक्य-संयोजक के निम्नलिखित भेद हैं—

(i) समुच्चयबोधक (Cumulative)
(ii) प्रतिषेधक (Adversative)
(iii) विभाजक (Disjunctive)
(iv) अनुधारणात्मक (Illative या Conclusives)

§ ६६६ आदर्श भोजपुरी में समुच्चयबोधक सयोजक निम्नलिखित हैं—

आ, अउरी, आफिनु; और यथा —
तब मोहन आ सोहन जइहें या
तब मोहन अउरी सोहन जइहें या
तब मोहन आफिनु सोहन जइहें, तब मोहन और सोहन जायँगे।

आ तथा अउरी की उत्पत्ति सं० अपरम्, पा० अपरं प्रा० अवरं (मि०, प० भो० संयोजक, औ, ने० औ, अरु हि० और तथा आ-फिनु = आ + फिनु। इस फिनु की उत्पत्ति फिर् + पुनः से हुई है। [फिर की उत्पत्ति के लिए टर्नर-कृत ने० डि० के पृ० §४०६ तथा §६५१ पर फिर तथा फिनु शब्द देखें]।

§ ६६७ आदर्श भोजपुरी में अतिप्रचलित प्रतिषेधक संयोजक बाकी (फा० अ० बाक़ी) है ; यथा—उ ह त धनी बाकी केहू के एको पइसा ना देले, वह है तो धनी ; किन्तु किसी को एक पैसा नहीं देता।

बंगाल में रहनेवाले भोजपुरी लोग बाकी के स्थान पर किन्तु और परन्तु एवं कायस्थ तथा मुसलमान फा० मगर और फा० अ० लेकिन का व्यवहार करते हैं।

§ ६६८ विभाजक

हिन्दी में अत्यधिक प्रचलित विभाजक वा, अथवा तथा अरबी शब्द या हैं, किन्तु आदर्श भोजपुरी में इनमें से किसी का व्यवहार नहीं होता। भो० पु० में अतिप्रचलित विभाजक आ भा है; यथा—मोहन आ, भा सोहन जइहें, मोहन या सोहन जायँगे।

आ की उत्पत्ति पहले दी जा चुकी है। भा की उत्पत्ति '√भू' तथा √हो से प्रतीत होती है (मि० ने० भयो का विकारी रूप भये तथा हुनु का अतीतकालीन कृदन्तीय रूप दे० ने० डि० पृ० ४६४ तथा ६४१।

इनके अतिरिक्त निम्नलिखित शब्दों का प्रयोग भी विभाजक के रूप में आदर्श भोजपुरी में होता है—

(क) निषेधवाचक विभाजका ना; इसका प्रयोग प्रत्येक वाक्य में होता है, यथा—

ना मोहन जइहें ना सोहन, न मोहन जायँगे और न सोहन।

(ख) कि (हि० कि) का प्रयोग भी विभाजक रूप में होता है, यथा—

तु, तुँ जइब कि ना, तुम जाओगे या नहीं ? कि की उत्पत्ति सं० किम्, पा०, प्रा० कि से हुई है अथवा फा० कि से यह उधार लिया हुआ शब्द हो सकता है।

(ग) चाहे <धातु चाह्, चाहना प्रा० चाहि, का प्रयोग भी भोजपुरी में विभाजक रूप में होता है, यथा—चाहे उ आवे चाहे ना आवे; चाहे वह आवे चाहे न आवे; दूसरे चाहे के स्थान पर भा का भी प्रयोग होता है; यथा—चाहे आवे भा ना।

(घ) प्रश्नवाचक का का प्रयोग जब संज्ञापद के साथ होता है, तो वह विभाजक रूप हो जाता है, यथा—का मरद का मेहरारू, क्या मर्द क्या स्त्री।

§ ६६९ आदर्श भोजपुरी में त का प्रयोग अनुधारणात्मक सम्बन्धवाचक अव्यय के रूप में होता है; यथा—उ ना अइले त हमरा जाए के परल, वे नहीं आये अतएव मुझे जाना पड़ा।

इस त का व्यवहार नेपाली में किंचित् समुच्चयबोधक अथवा तारतम्य के रूप में होता है। इसकी उत्पत्ति सं० तात्, अशोक का शिलालेख त, प्रा० ता अथवा सम्भवतः <सं० तदा, पा० तदा प्रा० तइआ या तइआ अथवा <सं० तथा, पा० तथा प्रा० तह से हुई है; दे०, ने० डि० पृ० २७१।

(४) आश्रित वाक्य-संयोजक

§६७० आदर्श भो० पु० में आश्रित वाक्य-संयोजक के निम्नलिखित रूप मिलते हैं—

जे, जे कि, जे मे, जे हमें, जो, कोंहि कि, जानु, जानो, मानो, आदि; यथा—

उ हमरा से कहले जे या जे कि तोहरा घरे चोरी हो गइलि, उन्होंने मुझसे कहा कि तुम्हारे घर में चोरी हो गई।

जे॑मे॑ जे॑ह॒मे॑, ताकि ; जिसमें ।

उ दवाई खइले जे॑मे॑ या जे॑ह॒मे॑ जल्दी नीक हो जासु ; उन्होंने दवा खाई जिसमें (या ताकि) जल्द अच्छे हो जायँ ।

जो, यदि, यथा—

जो हम सुतीं त मरिह, यदि मैं सोऊँ तो मारना ।

कौंहे॑ कि, क्योंकि, यथा—

किताब लवटा दिहलीं कौंहें कि उ निमन अदिमी ना हवए, मैंने पुस्तक लौटा दी, क्योंकि वे अच्छे आदिमी नहीं हैं ।

जानु, जानो, 'मानो'; यथा—

तुँ राति खां अइसन हल्ला मचवल जानु या जानो डाँका परल, बाइ, तुमने रात में ऐसा हल्ला मचाया कि मानो डाका पड़ा हो ।

मानो,

उ अइसें॑ गिरल मानो कवनो॑ लाठी गिरल्, वह ऐसा गिरा मानो कोई लाठी गिरी हो ।

जें, जेंह, जो तथा का की उत्पत्ति के सम्बन्ध में सर्वनाम के अन्तर्गत विचार किया जा चुका है तथा कि की उत्पत्ति ऊपर दी जा चुकी है । जानो तथा जानु की उत्पत्ति सं० जानाति, पा० जानाति प्रा० जाणेइ (मि०, सं० जान) तथा मानो की उत्पत्ति, म० पु० प्राचीन वर्तमान मान् स्वीकार करना, सुनना, आज्ञा-पालन करना, से हुई है ।

§६७१ मनोभाववाचक (अन्तर्भावार्थक) अव्यय (Interjection)

स्वर-विहीन व्यञ्जन ध्वनि म्* भो० पु० में भाववाचक रूप में व्यवहृत होता है । उदात्त, अनुदात्त आदि स्वर के अनुसार इस एकाक्षर अव्यय के अर्थ में भी भिन्नता आ जाती है; यथा—

'म (उच्चारोही स्वर) = प्रश्न ;
'म (अवरोही स्वर) = होना ;
म्' (हठात् समाप्त) = विरक्ति ;
˘म् (अवरोही एवं आरोही) = वितर्क ;
ˌम् (निम्न अवरोही) = ठीक है, देख लूँगा ।

इसी प्रकार हँ, हुँ, अव्ययों के उदात्तादि स्वरों के उच्चारण से भी अर्थ में विचित्रता आ जाती है ।

[क] सम्मतिज्ञापक (Assertives)—हँ, हाँ, अच्छा, यही आदि इसके अन्तर्गत आयेंगे । हिन्दी के प्रभाव के कारण भो० पु० में जी, जी हाँ भी आधुनिक भो० पु० में आ गये हैं ।

[ख] असम्मतिज्ञापक (Negatives)—ना, एकदम् ना, ना त ।

[ग] अनुमोदनज्ञापक (Appreciatives) वाह्, वाह्, ओहो हाँ, खूब, बहुत खूब, बाबस, साबस ∠ फा० शाबाश ; धन्य-धन्य आदि ।

[घ] घृणा या विरक्तिव्यञ्जक (Interjections of Disgust)—छि, छि, छि-छि, आक्-थू, थू-थू, थुड़ि-थुड़ि, दुर्, दुर्-दुर (सं० दूर, पा० तथा प्रा० दूर-), धिरिक् तथा धिरिकार् (मि०, सं० धिक्कार:), राम-राम ।

[ङ] भय-, यंत्रण-, या मनःकष्ट व्यञ्जक—आ, आह, हाइ- हाइतथा हा-हा (मि०, सं० हा, पा० तथा प्रा० हा), आं-ओं, बाप्-बाप्, माई-माई, मरि गइलीं, मुअली रे आदि।

[च] विस्मयद्योतक (Interjection of Surprise)—ऑं, एं, ए बाबा, ओ बाबा, बाप् रे बाप्, ए माई, ओ माई, कहाँ जाईं ?, का करीं ?, इहेत, राम-राम ! हरि-हरि।

[छ] करुणाद्योतक (Interjections of Pity)—आहि रे, हाइ रे, बाप रे, माई रे, मुअलीं रे, बाबू रे, मालिक हो, बाबू हो।

[ज] आह्वान या सम्बोधनद्योतक (Vocatives)—ए, हे (सं० हे, पा० तथा प्रा० हे); हो (सं० हो); अहो, आहो, अरे (सं० अरे, पा० तथा प्रा० अरे); रे (सं०, पा० रे); इनमें हे का प्रयोग आदर-प्रदर्शन में बड़ों के लिए; हो, अहो तथा आहो का बराबरवालों तथा चचा एवं बड़े भाई के लिए तथा अरे एवं रे का प्रयोग निम्नश्रेणी तथा जाति के लोगों के लिए किया जाता है; लो, ले (यथा—लो रे या ले रे दही); आ तु, आतु (कुत्ते को बुलाने के लिए); कुत्-कुत्-कुत्-कुत् या कुतुर्-कुतुर् (कुत्ते के बच्चे या पिल्ले को बुलाने के लिए); हे हाह् हो, हाह् हो (साँढ़ को बुलाने के लिए); कर्‌ह्लो-कर्‌ह्लो (भैंसे को बुलाने के लिए); चइ-चइ (भेड़ को बुलाने के लिए); पुस्-पुस् (बिल्ली को बुलाने के लिए) आदि।

[झ] अनुकारसूचक (Onomatopoetics)—इन शब्दों का प्रयोग कर् अथवा अन्य किसी धातु के साथ किया जाता है। यथा—कर्-कर्, बर्-बर्, कुहु-कुहु करतिआ (कोयल); काँव-काँव करता; (कौआ); (घर) खाँय्-खाँय् करता; (रहता या रास्ता) खाँइ-खाइ करता; दीआ टिम्-टिम् कइके जलता; धोती धप्-धप् करतिआ; मेघ कड़्-कड़ करता; अइँजनि (इंजन) भक्-भक् धुआँ देतिआ; घर में धुप् भइल बा (घर में घोर अंधकार हुआ है) आदि।

परिशिष्ट

परिशिष्ट—१ [क]

भोजपुरी-साहित्य के अन्तर्गत कबीर, धरमदास, धरणीदास आदि सन्तों के पद दिये जा चुके हैं। उन पदों में भोजपुरी के प्राचीन रूप उपलब्ध हैं। इस परिशिष्ट के अन्तर्गत दो सोहर गीत दिये जा रहे हैं। ये पुत्र-जन्म के अवसर पर स्त्रियों द्वारा गाये जाते हैं। ये दोनों, मुझे, सहँतवार, जिला बलिया निवासी प० जयगोविन्द मिश्र से प्राप्त हुए थे। इनकी भाषा यत्किञ्चित् प्राचीन है।

सोहर (१)

सासु मोरी कहेली बँझिनियाँ, ननद ब्रजवासिनि रे ।१।
ए ललना जिनिकर बारी में बिआही, उहो घर से निकाले ले हो ।२।
घर से निकाललि बँझिनियाँ, निखुज बने ठाढ़ि भइली रे ।३।
ए ललना बन में से निकलि बघिनियाँ, पुछेले भेद लाईं नू हो ।४।
किया तोरे सासु ननद घर बैरिनि ? नइहर दुरि बसे रे ? ।५।
ए तिरिया कवनि बिपति तोहरो परली, निखुझ बने आवे लु हो ।६।
नाहिं मोरा सासु ननद घर बैरिनि, नइहर दुरि बसे रे ।७।
ए बाघिनि कोखि का बिपति बयरगलीं, निखुझ बने अइली नू हो ।८।
सासु मोरी कहेली बँझिनियाँ, ननद ब्रजवासिनि रे ।९।
ए बाघिनि जिनिकर बारी मे बिआही, उहो घर से निकाले ले हो ।१०।
जगवा के सब दुख सहबों, इहे नाहीं सहबि रे ।११।
ए बाघिनि हमरा के तुँहुँ खाई लीतू, बिपति मोर छूटित हो ।१२।
जहवाँ से अइलू तिरियवा, उहें चलि जाहु तु रे ।१३।
ए तिरिया तोहरा के हम नाहिं खइबों, बँझिनि होई जाइबि हो ।१४।
उहवाँ से जाइ तिरियवा, बियरि लगें ठाढ़ि भइली रे ।१५।
ए ललना बिलि में से निकलि नगिनियाँ, पुछले भेद लाईं नू हो ।१६।
किया तोरे सासु ननद घर बैरिनि, नइहर दुरि बसे रे ।१७।
ए तिरिया कवनि बिपति तोहरो परली, बियरि लगे ठाढ़ भइलू हो ।१८।
नहिं मोरा सासु ननद घर बैरिनि, नइहर दुरि बसे रे ।१९।
ए नागिनि कोखि का बिपति बयरगलीं, बियरि लगे ठाढ़ भइलीं हो ।२०।
सासु मोरी कहेली बँझिनियाँ, ननद ब्रजवासिनि रे ।२१।
ए नागिनि जिनिकर बारी में बिआही, उहो घर से निकाले ले हो ।२२।
जगवा के सब दुख सहबों, इहे नाहीं सहबि रे ।२३।
ए नागिनि हमरा के तुहुँ डँसि लीतू, बिपति मोर छूटित हो ।२४।

जहवाँ से अइलू तिरियवा, उहँ चलि जाहु तु रे ।२५।
ए तिरिया तोहरा के हम नाहिं छुअबों बँझिनि होइ जाइबि हो ।२६।
उहवाँ से जाइ तिरियवा, अमा घर ठाढ भइली रे ।२७।
ए ललना ओवरी से आइ मयरिया, पुछेले भेद लाइ नू हो ।२८।
किया तोर कन्त विदेसें कि सासु निकाले ले रे ।२९।
ए धिया, कवनि बिपति तोहरो परली, नयन नीर ढारेलु हो ? ।३०।
नाहिं मोरा कन्त विदेसें, ना सासु निकाले ले रे ।३१।
ए आमा, कोखि का विपति बयरगलीं, नयन दुनो ढारेला हो ।३२।
सासु मोरी कहेली बँझिनियाँ, ननद ब्रजवासिन रे ।३३।
ए आमा, जिनिकर बारी में बिआही, उहो घर से निकाले ले हो ।३४।
जगवा के सब दुख सहबों, इहे नाहीं सहबि रे ।३५।
ए आमा, हमरा के देहु सरनवा; बिपति किछु गाँथीं नु हो ।३६।
जहवाँ से अइलू धियरिया उहँ चलि जाहु तु रे ।३७।
ए धिया, तोहरा के रखलें पतोहिया, बँझिनि होइ जाइ तु हो ।३८।
सगरे के तेजली तिरियवा, त पिरिथी मनावेली रे ।३९।
ए माता, फाटीं न पिरिथी देआल, त हम गहबों सरन हो ।४०।

अर्थ—मेरी सास मुझे वन्ध्या तथा ननद ब्रजवासिन कहती है ।१। तथा जिनसे बाल्यकाल में ही मेरा ब्याह हुआ है वह भी मुझे घर से निकाल रहे हैं ।२। घर से निकलकर वन्ध्या स्त्री निकुञ्ज वन में खड़ी हो गई ।३। तब वन से निकलकर बाघिनी ने भेद लेने के लिए उससे पूँछा ।४। क्या घर में तेरी सास-ननद बैरिन हैं अथवा तुम्हारा नैहर बहुत दूर है ।५। हे स्त्री तुम्हारे ऊपर कौन विपत्ति पड़ी है जिसके कारण तुम इस निकुंज वन में आई हो ।६।

(इस पर स्त्री उत्तर देती है—) मेरे घर पर न तो मेरी सास और ननद ही बैरिन हैं और न मेरा नैहर ही दूर है ।७। हे बाघिनि, मैं कुक्षि की विपत्ति से वैरागिनी हुई हूँ तथा इसी कारण इस निकुंज वन में आई हूँ ।८। मेरी सास मुझे वन्ध्या तथा ननद ब्रजवासिन कहती हैं । ।९। तथा जिनसे मेरा ब्याह बाल्यकाल में ही हुआ है वह भी मुझे घर से निकाल रहे हैं ।१०। संसार के सभी दुःखों को मैं सहूँगी किन्तु इसे नहीं सहूँगी ।११। हे बाघिनि, यदि तुम मुझे खा लेती तो मेरी विपत्ति छूट जाती ।१२। (तब बाघिनी ने उससे कहा—) हे स्त्री, जहाँ से तुम आई हो वहीं चली जाओ ।१३। हे स्त्री, तुम्हें मैं नहीं खाऊँगी; क्योंकि तब मैं भी वन्ध्या हो जाऊँगी ।१४। वहाँ से चलकर स्त्री बिल के पास जाकर खड़ी हुई ।१५। तब बिल से नागिन निकलकर भेद लेने के लिए उससे पूँछने लगी ।१६। क्या घर में तेरी सास-ननद बैरिन हैं अथवा तुम्हारा नैहर दूर है ।१७। हे स्त्री, तुम्हारे ऊपर कौन विपत्ति पड़ी है कि तुम बिल के पास खड़ी हुई हो ।१८। (तब स्त्री उत्तर देती है—) मेरे घर पर न तो मेरी सास और ननद ही बैरिन हैं और न मेरा नैहर ही दूर है ।१९। हे नागिन, मैं कुक्षि के विपत्ति से वैरागिनी हुई हूँ, इसी कारण बिल के पास खड़ी हुई हूँ ।२०। मेरी सास मुझे वन्ध्या तथा ननद ब्रजवासिन कहती है ।२१। हे नागिन, जिनसे बाल्यकाल में ही मेरा ब्याह हुआ है वह भी मुझे घर से निकाल रहे हैं ।२२। संसार के सभी दुःखों को सहूँगी, किन्तु इसे न सहूँगी ।२३। हे नागिन, यदि तुम मुझे डँस लेती तो मेरी विपत्ति छूट जाती ।।२४।। (इसपर नागिन ने

स०—रामजिआवन तो के धइ कें फिर का कइलन ?

ज०—धइ कें पिर्थीनाथ गोंडइत बोलाय कें अकस बस चलान कइ दिहलन।

स०—तों से अउर रामजिआवन से का अकस हौं।

ज०—ई अकस हौ रामजिआवन से की हमरे खेते में से लिहले आवत होवैं।

स०—तो हार पहिले कवहीं चोरी में सजाय भइल हौ ?

ज०—हाँ बावू, एक दाँई पँदरह दिन के चोरी में कइद रहली।

(अनुवाद)

सवाल—अब की सोमवार और मंगलवार जो बीत गये हैं उनके बीच की रात में तूने हरगोविन्द तिवारी के खेत से चना उखाड़ा है ?

जवाब—पेट जलता था पृथ्वीनाथ, एक मुट्ठी उखाड़ लिया था।

स०—तुम्हें रामेश्वर गोंडइत (चौकीदार) ने आधी रात को चोरी का चना ले जाते हुए पकड़ा ?

ज०—संध्या-समय में चना खाते हुए घर जाता था। रामजियावन गवाह कोल्हू हाँक रहा था। मुझे देखकर पूछा—कहाँ से ले आ रहे हो। मैंने कहा कि दूसरे सिवान (सीमाखेत) से ले आ रहा हूँ। तब रामजियावन ने मुझे पकड़ लिया।

स०—रामजियावन ने तुम्हें पकड़कर फिर क्या किया ?

ज०—पकड़कर पृथ्वीनाथ, गोंडइत (चौकीदार) बुलाकर शत्रुतावश चालान कर दिया।

स०—तुमसे और रामजियावन से क्या शत्रुता है ?

ज०—यही शत्रुता है रामजियावन से कि हमारे (मेरे) खेत में से लिये आता होगा।

स०—तुम्हें पहले कभी चोरी में सजा हुई है ?

ज०—हाँ बावू, एक बार पन्द्रह दिन तक चोरी में कैद हुआ था।

[च]

का माल असर्फी हौ रुपैया तो रे बदे।
हाजिर बा जिउ समेत करेजा तो रे बदे।१।
भंगर मे अबकी रेती पै रजवा तो रे बदे।
जरदोजी का लनाईला तमुवा तो रे बदे।२।
बनवा देईला अबकी दे वारी मे राम धै।
जरदोजी जूता टोपी दुपट्टा तो रे बदे।३।
चढ़ जालैं कौनो दाँव पै सारे तो लेईला।
ऽ
कञ्चन क गोप मोती क माला तो रे बदे।४।
ऽ
हम खर-मिटाव कैली ह रहिला चवाय कें।
भँवल धरल वा दूध में खाजा तो रे बदे।५।
मलिया से कह देली हैं ले आवल करी रजा।
ऽ
बेला चमेली जूही क गजरा तो रे बदे।६।

झोला में ले'हले पान तो'रें सँग रहल करी।
कह देली है रिखइया तमो'लिया तो'रें बदे।७।
अपने के लोई ले हली हैं कमरी भी वा धइल।
किनली है, रजा, लाल दुसाला तो'रें बदे।८।
पारस मिलल बा बीच में गंगा के राम धैं।
सजवा देईला सोने कैं बँगला तो'रें बदे।९।
संझा सवेरे घूम छलावा बदल बदल।
काबुल से हम मँगौली है घोड़ा तोरे बदे।१०।
अत्तर तू मल' के रोज नहायल कर, रजा।
बीसन भरल धयल वा करावा तो'रें बदे।११।
जानीला आजकल में झलाझन चली, रजा।
लाठी लो'हाँगी, खंजर औ' बिछुआ तो'रें बदे।१२।
बुलबुल बटेर लाल लड़ावें लं टुकड़ हा।
हम काबुली मँगौली है भेड़ा तो'रें बदे।१३।
कुस्ती लड़ा के माल बना देब राम धैं।
बैठक में अब खोदीला अखाड़ा तो'रें बदे।१४।
कासी, पराग, द्वारिका, मथुरा औ'र वृन्दावन।
धावल करैं ले तेग, कँधैया, तो'रें बदे।१५।

अनुवाद

माल, असर्फी (और) रुपये, तुम्हारे लिए क्या हैं? तुम्हारे लिए तो जी (प्राण) के साथ मेरा कलेजा हाजिर है।१। ऐ राजा! आनेवाले मंगल (के त्योहार) में (गंगा की) रेती (बालुकामय भूमि) में तुम्हारे लिए मैं कामदार (सोने का काम किया हुआ) तम्बू तनवाता हूँ।२। राम धें (राम की कसम), अबकी दीपावली (के उत्सव के अवसर) पर तुम्हारे लिए मैं कामदार जूता, टोपी तथा दुपट्टा बनवा देता हूँ।३। (यदि) कोई साला दाँव पर चढ़ जाता है (दाँव में आ जाता है), तो मैं तुम्हारे लिए सोने का गोप (आभूषणविशेष जिसे गले में पहना जाता है) तथा मोतियों की माला लेता हूँ (ले लूँगा)।४। मैंने रहिला (चना) चबाकर खरमिटाव (जलपान) किया है, (किन्तु) तुम्हारे लिए दूध में भिगोकर खाजा रखा हुआ है।५। ए राजा! मैंने माली से कह दिया है कि तुम्हारे लिए (वह) बेला, चमेली तथा जूही का गजरा ले आया करे।६। (मैंने) कह दिया है कि रिखइया (नामक) तमोली तुम्हारे लिए झोला में पान लिये तुम्हारे साथ रहा करे (करेगा)।७। अपने लिए मैंने लोई खरीदी है तथा कमली भी रखी है (किन्तु) ऐ राजा! मैंने तुम्हारे लिए लाल रंग का दुशाला खरीदा है।८। राम धें (राम की कसम), मुझे गंगा के बीच में पारस (प्रस्तर) मिला है। (मैं) तुम्हारे लिए सोने का बँगला सजवा देता हूँ।९। सन्ध्या-सवेरे, तुम फैशन बदलकर घूमा करो, मैंने तुम्हारे लिए काबुल से घोड़ा मँगाया है (काबुली घोड़ा मँगाया है)।१०। ऐ राजा! तुम प्रतिदिन इत्र मर्दन करके नहाया करो। तुम्हारे लिए (वह) बीसों करवा (पात्रों) में

भरकर रखा हुआ है।११। ऐ राजा! मैं जानता हूँ कि आजकल में ही तुम्हारे लिए लाठी, लोहाँगी (एक प्रकार का शस्त्र), खंजर तथा बिछुआ चलेगा।१२। दुकड्हे (निम्न श्रेणी के) लोग बुलबुल, बटेर तथा लाल लड़ाते हैं। मैंने तुम्हारे (लड़ाने के) लिए काबुली भेड़ा मँगाया है।१३। राम धैं (राम की कसम), मैं (तुझे) कुश्ती लड़ाकर पहलवान बना दूँगा। मैं बैठक में तुम्हारे लिए अखाड़ा खोदता हूँ (खोदने जा रहा हूँ)।१४। हे कन्हैया! तुम्हारे लिए तेग काशी, प्रयाग, द्वारका, मथुरा तथा वृन्दावन में दौड़ता फिरता है।१५।

[छ] नाऊ के˘ कहनी

एक् ठे˘ रहल् नाऊ। त उ राजा के˘ बार् बनावै˘ गयल्। एक् जुआर तक् बार् बनावत् रहल्। तब् राजा खुस् हो˘ के˘ एक् बिघा खेत् दे˘ हले˘न्। त उ नाऊ घरे˘ आके फरसा ले˘ के˘ खेत् खन्ने गयल्। जब् आधा खेत् खन् चुकल् तब् सात् ठे चोर् ऐ˘लन् औ˘ नउआ से˘ कहे˘ लगलन् कि ए खे˘ते˘ में˘ सात् हंडा रुपया गड़ल् बाय, ली आव हम् खनी। तब् नउआ चो˘रवन् के˘ फरसा दे˘ दे˘हले˘स् आ चो˘रवन् खेत् खने˘ लगलन्। तब् ओ˘ खे˘ते˘ में˘ कुछो˘ नाहीं निकलल्। तब् चोर् भाग् गै˘लन्।

तब नउआ ओ˘ह् खे˘ते˘ में˘ गोहूँ बो˘अले˘स्। ऊ गोहूँ जब् पक्के सुरू भयल् तब् उहे˘ चोर् काटे˘ बदे˘ ऐलन्। नउआ के˘ ई मालुम् भयल् कि चोर् खे˘त् काटे आयल् हएन्। तब् उ बीच् खे˘ते˘ में˘ खटिया ले˘ जा के˘ सुतल्। जब् आधी रात् हो गयल् तब् चारो ओरी से˘ गोहूँ काटै˘ लगलन्। जब् थोड़ी सा रह् गयल्, तब् उ नउए चिल्लायल् औ˘ चो˘र्वा भगलन्। तब् नउआ सो˘च् ले˘स् कि अब् हमें˘ काटे˘ के˘ नाहीं भयल्। खरिहाने˘ में˘ ले˘ चल् के˘ दाँई˘। तब् उ कुल् गोहूँ खरिहाने˘ में˘ ले˘ आयल्। अउर् दाँई˘ दु˘ के˘ घरे˘ ली आयल्। उ गोहूँ के˘ को˘ठिला में˘ भर् दे˘ह् ले˘स्।

तब् उहे˘ चो˘र्वा गोहूँ चो˘रावे˘ बदे˘ फेर् एलन्। नउआ के˘ इ मालुम हो˘ गयल्। तब् ओ˘हि को˘ठिला के˘ लगे˘ खटिआ बिछा के˘ आ एकुठे˘ छुरा ले˘ के˘ सुतल्। तब् ऊ चोर् एलन्। ओ˘मे˘ से˘ एक् चोर् दुसर्के चोर् से˘ कहले˘स् कि को˘ठलवा में˘ हल। तब् उ चोर् ओ को˘ठिला में˘ हल् गयल्। नउआ छूरा से˘ ओ˘ चोर् के˘ नाक् कट्ले˘स। एसहीं सब् चो˘रन् क नाक् कट्ले˘स्। बिहान दे˘खले˘स् कि सब् चोर् मर् गै˘लन्।

ओही वखत् एक् डोम् आयल्। तब नउआ कहले˘स् कि एकुठे मुर्दा हमरे˘ घरे वा। ओ˘के˘ फेंकि आव। तब् तो˘ह् के˘ आठ् आना पइसा देब्। उ डोम् एक मुर्दा के˘ फें˘क् आयल्। तब् डोम् नउआ से˘ पइसा मँग्ले˘स्। ओ˘करे पहिले˘ नउआ दूसर्

मुर्दा ली आके रख् दें हलें स् औं कह लें स् कि देख, कहाँ फें कल। अबहीं त बटलें बा। तब् डोम् ओं हू कें फें कि आयल्। नउआ तिसरो मुर्दा ली आके रखि दें ह लें स्। अउर डोम् सें फिर् वहें बात् कह लें स्। अइसें छ मुर्दा फें कवलें स्। डोम् सब् सें पाछे वालें मुर्दा कें ओं ही जगह् सें फें कलें स्। उ मुर्दा जाकें एक आदमी कें ऊपर् गिरल्। तब उ अदमी डोम् कें बहुत् बिगड़ल्। तब् उ डोम् भाग गयल् आ नउआ कें पइसा बाँच् गयल्।

(अनुवाद)
नाई की कहानी

एक था नाई। तो वह राजा का बाल बनाने गया। एक जुआर (पहर) तक बाल बनाता रहा। तब खुश होकर राजा ने (उसे) एक बीघा खेत दिया। तब वह नाई घर आकर फरसा (फावड़ा) लेकर खेत खोदने गया। जब (वह) आधा खेत खोद चुका तब सात चोर आये और नाई से कहने लगे कि इस खेत में सात हण्डा रुपया गड़ा है, ले आओ, हम खोदें। तब नाई ने चोरों को फावड़ा दे दिया और चोर खेत खोदने लगे। तब उस खेत में कुछ भी नहीं निकला। तब चोर भाग गया।

तब नाई ने उस खेत में गेहूँ बोया। वे गेहूँ जब पकने शुरू हुए तब चोर उसे काटने के लिए आये। नाई को यह मालूम हुआ कि चोर खेत काटने के लिए आये हैं। तब वह बीच खेत में खटिया ले जाकर सो रहा। जब आधी रात हो गई तब (चोर) चारों ओर से गेहूँ काटने लगे। जब (गेहूँ) थोड़ा-सा रह गया, तब वह नाई चिल्लाया और चोर भाग गये। तब नाई ने सोचा कि अब मुझे खेत काटने को नहीं हुआ। खलिहान में ले जाकर इसे दोंऊँ (मड़ाई करूँ)। तब वह कुल गेहूँ खलिहान में ले आया। और दाँ करके (मड़ाई करके) उसे घर ले आया। उसने गेहूँ को कोठिला में भर दिया।

तब वेही चोर गेहूँ चुराने के लिए फिर आये। नाई को यह मालूम हो गया। तब उस कुठिला के पास खाट बिछाकर और एक छूरा लेकर सोने लगा। तब वे चोर आये। उनमें से एक चोर ने दूसरे चोर से कहा कि गेहूँ के कुठिला में घुसो। तब वह चोर उस कुठिला में घुस गया। नाई ने छूरे से उस चोर की नाक काट ली। इसी प्रकार (उसने) सब चोरों की नाक काट ली। सबेरे (उसने) देखा कि सब चोर मर गये।

उसी वक्त एक डोम आया। तब नाई ने कहा कि मेरे घर में एक मुर्दा है। उसे फेंक आओ। तब तुम्हें आठ आना पैसा दूँगा। वह डोम एक मुर्दे को फेंक आया। तब डोम ने नाई से माँगा। उसके पहले नाई ने दूसरा मुर्दा लाकर रख दिया और कहा कि देख, कहाँ फेंका, अभी तो बाकी ही है। तब डोम उसे भी फेंक आया। नाई ने तीसरा मुर्दा लाकर रख दिया। और नाई से फिर वही बात कही। इस प्रकार (नाई ने) छः मुर्दे फेंकवाये। डोम ने सबसे पीछे-वाले मुर्दे को उसी जगह से फेंक दिया। वह मुर्दा जाकर एक आदमी के ऊपर गिरा। तब वह आदमी डोम के ऊपर बहुत बिगड़ा। तब वह डोम भाग गया और नाई का पैसा बच गया।

[ज] दुइ साधू के कहनी

एक् दिन एक् बाबू कें इहाँ दुइ साधु चहुँपले। बाबू दोनों जनें क बड़ी

आव् भगत् कइलें। जब् संझा भइल् त एक् साधू कुल्हा फराकित् होवे खातिर् मयदान् में गइले। तब् दोसरा साधु से बाबू पुछलें कि ऊ साधू जे बाहर् गइल् बाड़े उ कहाँ तक् पढ़ल् लिखल् बाड़े। साधू कहले कि उ त गदहा हउए। ओकरे कुच्छु न आवत्। उ त हमार् खड़ाऊँ आ झोरी ढोंएला। किछु देर बाद् जब् पहिला साधू आइ गइले तब् दूसर् साधू बाहर् गइले। तब् बाबू ओह् साधु से भी उहे बात् पुछलें कि उ साधू कहाँ तक् पढ़ले लिखले बाड़े। जबाब् मिलल् कि उ कुछु ना जानता। उ त बेल्कुल् बयल् ह। जब् हम् साधू ना रहलीं त हमरे घरे उ गाइन् के चरवाह् रहल्। ओकर् सब्जी बुद्धि बयलक् हो गइलि ह।

एकरे बाद् जब् दुनो साधु एक् जगों भइलें त बाबू से भोजन बनावे खातिन् उजुर् कइले। बाबू कहलें, 'हम् अब्बे इन्तिजाम् करीलों।' इ कहिके अपने नोकरन् से एक् मोटरी भूसा आ एक् मोटरी घासि उन्हन् लोगन् के खाए खातिर् भेजलें। साधू लोग् बाबू किहाँ दउरल् गइलें। कहलें कि सर्कार्, इ कइसन् अट्पट् कइल् गइल् ह। बाबू जबाब दिहले कि जब् हम् रउरे दुनो जने से एक् एक् कइ के आड़् में दोसरा के बारे में पुछलीं कि उ साधु कइसन् पढ़ल् लिखल् बाटें त दोसरे खातिर् आप् सभ् इहे जबाब् दिहलीं कि उ त बयल्, उ त गदहा ह। त अब् लेईं न, एक् जने भूसा खाईं एक् जने घासि।

(अनुवाद)

दो साधुओं की कहानी

एक दिन एक बाबू के यहाँ दो साधू पहुँचे। बाबू ने दोनों की बड़ी आवभगत (सत्कार) की। जब संध्या हुई तो एक साधू शौचादि के लिए मैदान में गया। तब दूसरे साधू से बाबू ने पूछा कि वे साधू जो बाहर गये हुए हैं वे कहाँ तक पढ़े-लिखे हैं। साधू ने कहा कि वह तो गदहा है। उसे कुछ नहीं आता। वह तो मेरी खडाऊँ और झोली ढोता है। कुछ देर बाद जब पहला साधू आ गया तब दूसरा साधू बाहर गया। तब बाबू ने उस साधू से भी वही बात पूछी कि वे साधू कहाँ तक पढ़े-लिखे हैं। जवाब मिला कि वह कुछ नहीं जानता। वह तो बिल्कुल बैल है। जब मैं साधू नहीं था तब वह मेरे गौओं का चरवाहा था। उसकी सारी बुद्धि बैल की तरह हो गई है।

इसके बाद जब दोनों साधू एक जगह हुए तब बाबू से भोजन बनाने के लिए उज्र (निवेदन) किया। बाबू ने कहा, 'मैं अभी इन्तजाम करता हूँ।' ऐसा कहकर अपने नौकरों से एक मोटरी (गट्ठा) भूसा और एक मोटरी घास उन लोगों के खाने के लिए भेजा। साधू लोग बाबू के यहाँ दौड़ते हुए पहुँचे और कहा कि सरकार, यह कैसा अटपट किया गया है। बाबू ने जवाब दिया कि जब मैंने आप दोनों व्यक्तियों से एक-एक करके आड़ में (एक दूसरे) के बारे में पूछा कि वे साधू कैसे पढ़े लिखे हैं, तो दूसरे के लिए आप सबने यही जवाब दिया कि वह तो बैल है, वह तो गदहा है। तो अब लीजिए न, एक व्यक्ति भूसा खायें, एक व्यक्ति घास।

[झ] गवरा गवरइया आ राजा

एक् ठे गवरइया रहलि आ एकुटे गवरा रहे। दोनो घूरे पर् चरत् रहलें। त उन्हने के एकठे रूई के फाहा मिलल्। त कुलि ले गइलें धुनियाँ किहाँ। त कहलें कि ए धुनियाँ एके धुनि दे आधा तें ले आधा मैं लेब्। त उ धुन् दिहले। त आधा उ लेहले आ आधा उ लेहले। त फेनो उ कुल् गइलें जोलहा किहाँ आ कहले कि एके बिनि दे, आधा तें ले आधा मैं लेब्, त उ बिन् दिहलें। त आधा उ लेहले आ आधा उ लेहले। त फिनो कुल् ले गइलें दर्जी किहाँ। त कहले कि एकर् टोपी सी दे, आधा तें ले आधा मैं लेब्। त उ सी देहलें।

त एक्ठे टोपी उ गवरइअवा के दे देहलें। त उ कपारे पर् दे के गइलि, राजा के खपड़ा पर्। त कहलेसि कि ए राजा! हमरे अइसन् तोरे टोपी न हो। तब् राजा अपने सिपाही से कहलें कि एकरि टोपी छोरि ले आव। त सिपहिया छोरि ले आयल्। त दुनो कहलें कि राजा के धन् घट् गयल् मोरि टोपिया छोर् लेहलें। त फिनो राजा ओकर् टोपिया दे देहलें। त आपन् टोपिया ले के उ कहलै जे राजा मोसे डर् गयलै, मोर् टोपिया दे देहलै।

(अनुवाद)

गौरा-गौरैया और राजा

एक गौरैया थी और एक गौरा था। दोनों घूरे (कूड़ा-करकट के ढेर) पर चरते थे। तब उन्हें एक रुई का फाहा मिला। वे कुल उसे धुनियाँ (रुई धुननेवाला) के पास ले गये। तब (उन्होंने) कहा कि ऐ धुनियाँ, इसे धुन दे। आधा तू ले ले, आधा मैं लूँगा। तो उसने धुन दिया। उसमें से आधा उसने ले लिया, आधा उन्होंने ले लिया। तब फिर वे दोनों गये जुलाहे के यहाँ और कहने लगे कि इसे बुन दें। आधा तू ले, आधा मैं लूँ। तो उसने बुन दिया। आधा उसने ले लिया, आधा उन्होंने। तब फिर कुल दर्जी के यहाँ ले गये। तो (उन्होंने) कहा कि इसकी टोपी सी दे। आधा तू ले, आधा हम लेंगे। तब उसने सी दिया।

तब एक टोपी उसने (दर्जी ने) गौरैया को दे दिया। तब वह (टोपी) सिर पर देकर राजा के खपरैल पर गई। तब उसने कहा ऐ राजा! मेरी तरह तेरे टोपी नहीं है। तब राजा ने अपने सिपाही से कहा कि इसकी टोपी छीन ले आओ। तब सिपाही छुड़ा ले आया। तब दोनों कहने लगे कि राजा का धन घट गया है, मेरी टोपी छीन ली। तो फिर राजा ने उसकी टोपी दे दी। तब अपनी टोपी लेकर वह कहने लगी कि यह राजा मुझसे डर गया, मेरी टोपी (उसने) दे दी।

[ञ] संकर् आ पार्बती जि के कहनी।

कासी जी नहान् लगल्। त गउरा पार्बती संकर जि से बोलीं कि सब् नहाए

जाता, आव चलीं नहाए। संकर जि कहले जे सब नहाए नाहीं जाता, कहुँ लाख में एक जाता। त गउरा पार्वती कहली जे चल, चलीं, नहाए।

त संकरो जी पार्बती दुनो जने चलले नहाए। चलत् चलि गइले कुछ दूर। त राहे में पंजरें में कोर्‌ही कै भेल् धइ के बइठि गइलें। त गउरा पार्बती कपड़ा ले के भजें लगली पोंछैं। त जें भर नहनियाँ जात् रहलें राह् धै ले ते कहत है कि कोर्‌ही के सङ्के का बाटी, आव चली नहाए।

त कुछ बिलम् का बाद् एकठो ब्राम्हन् अइलें। त कहलें जें चल चलीं नहाए। त गउरा पार्बती जि बोललीं जें अपने पति के कइसे छोंड़ि के चलीं नहाए। त ब्राह्मन् कहले जे हम् ले चलबि धरतुइयाँ उठाइ के। त बर्बसई संकर जी के उठाइ लिहलै। त कुछु दुरि जब् गइलै त संकर जी कहलें 'हमैं उतारि दय।' त ब्राह्मन् के कहि दिहलै, चलि जा नहाए। त जब् ब्राह्मन् चलि गइलै त संकर जी बोलूलै गउरा पार्बती से जे देख, सब् नहाए ना जाता। एक् ब्राह्मन् नहाए जाता। तब् अंत्रध्यान हो गइलै।

अनुवाद

शंकर और पार्वतीजी की कहानी

काशी में स्नान का पर्व लगा था। तो गौरी पार्वती शंकरजी से बोलीं कि सब स्नान के लिए जाते हैं, चलो नहाने चलें। शंकरजी ने कहा—ये सब नहाने नहीं जाते, कहीं लाखों में एक जाता है। तो गौरी पार्वती ने कहा कि चलिए, चलें नहाये।

तो शंकरजी (और) पार्वती दोनों व्यक्ति नहाने के लिए चले। चलते-चलते कुछ दूर निकल गये। तब रास्ते में एक बगल में कोढ़ी का रूप धारण करके बैठ गये। तो गौरी पार्वती कपड़ा लेकर घाव को पोंछने लगीं। तो जो भी स्नानार्थी जाते थे, रास्ता पकड़ें, वे (पार्वती से) कहते हैं कि कोढ़ी के साथ आप क्यों हैं? चलो, चलें नहाने।

तो कुछ विलम्ब के बाद एक ब्राह्मण आया। (वह) कहने लगा कि चलो, चलें नहाने। तब गौरी पार्वतीजी बोलीं कि अपने पति को छोड़कर नहाने कैसे चलें। ब्राह्मण कहने लगा कि मैं (तुम्हें) घोड़इयाँ (घोड़े की तरह पीठपर चढ़ाकर) ले चलूँगा। तब इसने शंकरजी को बरबस (हठात्) उठा लिया। तो जब कुछ दूर चले गये तब शंकरजी ने कहा, 'मुझे उतार दो', तब ब्राह्मण को कह दिया कि 'नहाने चले जाओ'। तब जब ब्राह्मण चला गया तब शंकरजी बोले गौरी पार्वती से कि देखो, सभी नहाने नहीं जाते। एक ब्राह्मण (ही) नहाने जाता है। तब अन्तर्धान हो गये।

[ट]

स्वस्ति श्री शिवकुमार लाल जीव के लि० जगतनरायन लाल के सलाम। कुशल आराम दोनों तरफ के नेक चाही। आगे इहाँ कें हाल अस है कि खेत बारी सब बोइ गइल ओं फसिल अच्छी है ओं कटै कें जून आय गइल। से देखत चिठ्ठी के तूँ दुइ हरवाह लै कें इहाँ तक आइ जाव, जौने से सब खेत कटि जाय। ओं असों जवन पत्थर गिरल है तवने से भगवान हमार गाँव बँचाय दिहलैं ओ फसिल में कवनो रोग दोख नाहीं लगल है। ओं औ र हाल सब अच्छा है। जियादे शुभ। मि० फागुन सुदी १३ सन् १३०५ साल।

अनुवाद

स्वस्ति श्री शिवकुमारलालजी को लिखा जगतनारायण लाल का सलाम। कुशल-आराम दोनों तरफ का नेक चाहिए। आगे यहाँ का हाल ऐसा है कि खेतबारी सब बोई गई और फसल अच्छी है और कटने का समय आ गया है। इसलिए चिट्ठी देखते ही तुम दो हरवाह (हलवाहा) लेकर यहाँ आ जाओ, जिससे सब खेत कट जायँ। और इस वर्ष जो पत्थर (ओले) गिरे हैं उससे भगवान् ने हमारे गाँव को बचा दिया है और फसल में कोई रोग-दोष नहीं लगा। और सभी हाल अच्छे हैं। ज्यादा शुभ। मि० फाल्गुन सुदी १३ सन् १३०५ साल।

[ठ] सदानी (भोजपुरी)

भोजपुरी की अन्य बोलियों की भाँति सदानी में भी लिखित साहित्य का अभाव है। आरम्भ में इसाई-मिशनरी लोगों ने भी इस बोली को अपने धर्म-प्रचार का साधन नहीं बनाया। हाँ, जब जार्ज ग्रियर्सन ने बिहार की बोलियों के सम्बन्ध में लिखते हुए सदानी बोली की चर्चा की, तब मिशनरियों ने भी इसमें कुछ लिखना प्रारम्भ किया। इस सम्बन्ध में सर्वप्रथम रेवरेण्ड एनिड, कैनेडी आदि का कार्य विशेष रूप से उल्लेखनीय है। रेव० एनिड ने 'सन्त-मार्ग का सुसमाचार' का सदानी में अनुवाद किया। कैनेडी ने 'नोट्स ऑन दि नगपुरिया हिन्दी' नामक पुस्तक अंग्रेजी में लिखी। एक दूसरे कैथोलिक मिशनरी फादर बुकाउट ने 'सदानी आमर' नामक एक बृहत् व्याकरण भी लिखा। यहाँ सदानी साहित्य के उदाहरण उपस्थित किये जाते हैं।

(१) बालमइत रानी

एक नगर में एक राजा रहे। ऊकर दुइ मन बेटी रहएँ; बड़कर नाव रहे धनमइत आउर छोट कर बालमइत। छोट बहीन बड़ा सुन्दरी रहे। ऊकर कॅस सोना कर लखे दिसत रहे आउर खोइल देले ठेहुना तक लम्बा रहे।

एक दिन दुइओ बहीन नहाएक लागिन नदी गेलएँ। नहाते-नहाते छोट बहीन कर एक ठो कॅस उखड़ गेलक तो ऊ सोचलक कि 'इके कहाँ फेंको कि लुकाओं'? ओ हे घरी नदी में एक बेल-फर बहते उतरत रहे, तो ऊ उके हाथ में लेलक आउर कॅस के उकरे में साइज के फिन बोहाए देलक।

कॅसठो बहते-बहते चइल गेलक जहाँ एक ठन एक राज-कुँवर नदी में नहाएक हेइल रहे। बेल-फर के बहत देइख के संगी-सखा मन के कहलक कि 'देखा, देखा, का बोहात हे? धइर लाना तो देखब का चीज हेके?' एक मन नदी में हेइल परलक आउर बेल-फर के लाइन के राज-कुँवर के देलक। राजकुँवर फरके फारलक तो देखत हे का कि भीतरे एक सोना-बरन कर कॅस अहे।

देइख के ऊकर आँइख भाँपइक गेलक आउर मनेमन कहलक कि 'जब ई केंस एतना सुन्दर आहे तो ईकर मउवारिन आउर कतना बेसी सुन्दर होइ।' से मोएँ तो उके खोजबे चलबुँ आउर बिहा करबुँ। ऊ केंस के धोती में बाँधलक आउर उकरे बारे सोचते-सोचते घर आलक।

महल घुइर के ऊ खाएक लागे तो खियाए नहीं, पियेक लागे पियाए नहीं। भला कइसन खियाइ कि पियाइ उके तो जरूरी धइर बइठालक। से ऊ जाए के सेज में ढनुइँग रहलक। ऊ केकरो संगे न हाँसि-बोले, न केकरो से बतियाए; ओहे केंस के छाती से लगाए रहे। ऊकर दसा देइख के राजा-रानी कहएँ, 'देखा, देखा, राजकुँवर के का होए गेलक? कोनो गुनी-गेयानी बइद बोलावा। के जन उके भूत धइरहे कि लकवा माइरहे? राइज-भइर कर बड़े-बड़े बइदमन आलएँ मगर राजकुँवर कर रोग के गमेक नि पारलएँ। राजकुँवर आपन रोग के बतावे नि करे तो भलाके हार जानेक पारी?

राजमहल में एगो कुटनी बुढ़िया रहे, से कहे, 'मोंके एक चरखा आउर कटिक रुआ देवा तो मोंएँ बताएक पारबुँ कि कुँवर के का रोग आहे।' बुढ़िया के एक ठो चरखा आउर रुवा देलएँ। बुढ़िया उमनके लेइज के जहाँ राजकुँवर सुइत रहे उहाँ बइठ के रुवा कातेक लागलक। ऊ आपन साथ तनिक बूटो खोएँचाए लाइन रहे। दे भर बूट फाँके, चरखा में 'रोएँ-रोएँ ठुकुस' करे अउर 'ढरढराए'। राजकुँवर सुइन सुइन के अनसाए गेलक आउर अन्त में गारियाए उठलक, 'दूर, दूर, बाघधरिन, हियाँ चरखा कातेक बइठे।'

बुढ़िया कहे, 'कहु बाबा, सुनाउ बेटा, रउरे के का रोग लाइगहे?' कुँवर पूछलक, 'कहबुँ तो का मारे कहल पूरा करबे?' बुढ़िया कहलक, 'हँ, बाबा, राउर कहल मोंताबिक सउब करब।' राजकुँवर कहे 'ई केंस के देख तो।'

बुढ़िया देखलक, हाँसलक आउर कहेक लागलक, 'ओंह, इकरे लागिन मुँह-कान के गिराए ही। उठु, उठु, हाँसु-बोलु, खाउ-पिउ, मोएँ राउर बेमारी कै समझलो आउर ईकर उपाय करत हों।' एतना कइह के ऊ राजा ठिन पोहोंचलक आउर सउब बात के कइह देलक। राजा कहलक कि, 'तोंएँ केंसकर मउवारिन के खोजेक जा। कुँवर लागिन उके बिहा करबे करब।'

बुढ़िया राम राजकुँवर कर तसबीर लेके राजकुँवारी के खोजे क चललक। जाते-जाते कए दिन होंए गेलक तब जाए बुढ़िया के पता लागलक आउर ऊ राइज में जाए पोहोंचलक जहाँ राजकुँवारी रहे। दसतुर मोंताबिक दुइयो बहीन नदी नहाएक जाए रहएँ सेहे खन बुढ़िया रानी-छोंड़ी के चिन्हलक। जेखन रानी बेटी मन नहाए के आवत रहएँ सेखन बुढ़िया डहर में ठाढ़ होए के सोचलक कि, 'देखों तो रानी छोंड़ी कर केंस जइसन सुन्दर आहे उसने उकर में दयाओ आहे कि नखे।' से ऊ लदइरी लगाए आउर डहर में ढलइँग के खउब कान्दे। 'हायरे दइया! हायरे मइया! अब नि बाचबुँ मोरबे करबुँ।' ऊकर कान्देक सुइन के सउब सखी मन ठिठइक गेलएँ तो बड़-रानी बेटी हुकुम करलक कि 'चल! चला! ऊ कसबी के हियाँ कान्देक मन करहे। का जानी कोनो पावेक लागिन लदइरी लगात होंइ।'

बालमइत कुँवारी कहलक, 'मोएँ तो उकर बिपइत के सुनिए लेबुँ। का जानी बेचारी कहाँ कर हेके। कोनो भारी दुख होइ; से लाइ एतना कान्दतहे।' इसन कहइ के ऊ बुढ़िया ठिन पोहोंचलक आउर निहरलक तो बुढ़िया ऊकर हाँथे तसबीर के देलक आउर कहलक कि 'ई राजकुँवर रउर लागिन आपन परान के हइठ देहे। से उके बचाउ।'

बालमइत कुँवारी तसबीर के देखलक तो ऊकर धरिइज छुइट गेलक। तसबीर के खोंएँचा में लुकालक आउर सोचते-सोचते महल घुरलक। आपन कोठरी में जाएके सेज में परलक से उठबे नि करे। अन्न-पानी छोइड़ देलक। सखीमन सएँ ढीढीकोको छोइड़ देलक। सिंगार-पतार छोइड़ देलक आउर दुबराएक लागलक। राजा-रानी ऊकर हाल सुनलएँ तो बेचइन होए उठलएँ। एक दिन बड़ बहीन धनमइत ऊकर ठिन गेलक तो देखत हे का कि बालमइत एकठो तसबीर के ताइकहे आउर आँइख से लोर ढरकत हे। छोट बहीन कर दुख के तुरँत समइ,म गेलक आउर जाए के राजा-रानी के हाल देलक कि, 'बालमइत के हिया कर रोग होए हे। ऊकर ठिन एक राजकुँवर कर तसबीर आहे, आउर उकरे लागिन ऊ भखत हे।' राजा-रानी जाएके देखएना तो सते बात हेवे। राजकुँवर कर रुप के देइख के कहलएँ कि, 'रानी-बेटी कर लाइक दुलहा मिल गेलक। से हामर बेटी अकरे सएँ बिहा होक।'

राजा तुरँत राजकुँवर कर पता उठाएक लागिन मनत्रीमन के भेजलक। डहर में जाते-जाते मनत्रीमन कर भेंट राजकुँवर कर भेजल अदमीमन से होए जाओंक। पुछा-गाछी होते-होते दुइयो बटक बनार मिल गेलक। ओहे जग हाँथ बाइँह होलक, आउर ओहे जग बिहाकर टीपो ठहराल गेलक। राजकुँवारी-बटक अदमीमन कहलएँ कि 'अपनेमन फलना दिन कनया-घर बरात आउ।' तलेक ऊमन आपन-आपन नगर घुइर गेलएँ।

हिने बबकी रानी-बेटी, धनमइत, बालमइत कर हाल माएँ-बाप के सुनाए के पसताएक लागलक, काहे कि राजकुँवर कर तसबीर ऊकर मन में गइड़ गेलक। एतना सुन्दर राजकुँवर! चाँद-लखे चेहरा-मोहरा! रीझ जाओंक? 'मोहे बिहा करों! मोहे बिहा करों!' कहे आउर मर पसताए। से उपाए सोचलक कि 'बिहाकर दिन मोएँ बालमइत के नाग-नागिन कर बेनी बनाए देबुँ। ऊ मोइर जाई होल राजकुँवर मोंके बिहा करी।'

बिहा कर तेयारी होएक लागलक। महल कर आँगना में मँड़वा फन्दाल, आउर सगर महल रकम-रकम कर सिंगर से सिगराल गेलक। बरतिया मन ठहरेक लागिन जनवासा बनलक, खाएक-पियेक आउर रीझ-रंग करेक कर सराजाम जुटलक। राती के बरात पोंहचेक कर रहे। नेवतहरियामन सउब आए गेलएँ।

आइध-राइत के बरात पोहोंचलक। खउब गाजा-बाजा भेलक। मेरधरइ, में दुइयो बटक नचइया आउर बजइया हेइल जाओंक। नाचते-बजाते, माइन-मरजाद देखाते, ऊमन के जनवासा में ले गेलएँ। बरन बरन कर हाँथी-घोड़ा हिनहिनाएक-चिघराएक लागलएँ। हाँथी-गाड़ी में राइत बीत गेलक।

बिहाने कनया-दुलहा के नहुवालए। कनया के सिंगराएक लागलएँ तो धनमइत कहे बालमइत से, 'एरे, आव, मों ऍं आइज वेनी गाँइथ देवुँ आउर माँग पाइर देवुँ; काहे कि अब तो संग छुटतहे। अब कहिया जे दुइयो बहीन मिलब?' से कहइ के बड़ बहीन छोट बहीन के ले गेलक। ऊ सैतानिन कहाँ ले नाग-नागिन धइर मँगुआएँ रहे; आउर फीता कर बदली नाग-नागिन के लेके बेनी गाँइथ देलक आउर ऊपरे कोरोया फूल पिन्धाएँ देलक।

अब नाग-नागिन रानी-छोंड़ी के चाबेक लागलएँ, बिस चढ़ेक लागलक। बालमइत अकुलाए के सेज ऊपर ढलइँग गेल। लगन लागल, दुलहा मँड़वा में आवल, भँवरी कर समय होल, मगर कनया कर पता नहीं। का आवी, भला, ऊ तो मरेक लाइगहे। उके बोंलाएक लाइ राजा, रानी, भाइ, बन्धु सउबे आलएँ आउर उठेक कहएँ—

रानी कहे— उठु, उठु बेटी बालमइत रानी।
मँड़वा तरे दुलहा बाबु खरे।
घरी-घरी एहे बट निहरें।

बालमइत कहे—कइसे उठों आइयो कइसे मोएँ बइठों,
बड़की दीदी गाँइथ देलएँ नाग-नागिनबेनी,
ऊपरे जे खोइँस देलएँ कोंरोयाक फूल।

एहे लखे सउब उठाएक लागलएँ आउर रानी-बेटी उत्तर दे। अन्त में नाग-नागिन धीरे-धीरे रानी छोंड़ी कर मुँह भीतरे ढुइक गेलएँ आउर ऊ मोइर गेलक। सउब केउ हाय! हाय! कइर उठलएँ। राजकुँवर कुदले आलक आउर देखेल तो ऊकर पिया मरल आहे। अन्त में ऊ कहलक कि 'मोर पिया के चन्दन काठकर चिता में जलावुँ आउर कम से कम ऊकर राख के लेते जावुँ।'

ओंहे करलएँ। राजकुँवारी के पोड़ालएँ आउर ऊकर राख के राजकुँवर एक ठो नवा भंडा में राखलक आउर आपन देस घुरलक। आपन महल में जाएँ के ऊ भंडा के बेस जगo में राइख देलक। एक दिन ऊ कहाओं जाए रहे तो भंडा ले एक सुन्दर छोंड़ी निकललक आउर कोठरी के बढ़ालक, चीजमन के सरियालक आउर फिन भंडाएँ में घुइस गेलक। राजकुँवर कोठरी में आलक तो कोठरी सुगन्ध से महकत रहे। आउर देखेला तो सउब चीज आपन-आपन जगo में सरियाल आहे। ऊ पुछे कि, 'ई गमक कहाँ से आवत है? आउर मोर कोठरी में के आए रहे?' मगर इकर जबाब केउ देक नि पारलएँ। दोसर दिन ऊ चीजमन के हिने-हुने कइर के आउर कहाँओं चललक। घुइर के देखेला तो फेंइर ओंहे बात, आउर माएँ-बाप, नोकोर-चाकर के पुछेला कि 'मोर कोठरी में के आए रहे?' केउ बताए के नि पारएँ। तब ऊ बिहेक लागिन आउर एक दिन लुगा-फटा, चीज-बउत, मन के कोठरी में हिने-हुने फेंइक के बहार निकललक आउर दुरा ठिन दबइर के बइठलक।

ऊकर निकलतेंहिं भंडा ले राजकुँवारी निकललक आउर चीज मन के आपन-आपन जग० में डुराएक लागलक। राजकुँवर जेवन जानलक कि मोर कोठरी में केउतो आएहे, तो कुदिये दूरलक आउर राजकुँवारी के हाड़-मांस में देइख के पहिले तो अचरज करलक, तब अइसने राजकुँवारी भंडा में ढुकत रहे कि उके धरबे करलक। राजकुँवारी कहलक, 'छोड़ु-छोड़ु, मोके न-धरु।' राजकुँवर कहलक, 'मोरे रानी, मोर पिया, रउरे लाइ मोएँ मरकत हों। मों इर जावुँ तेउ अब रउरेके नि छोड़वुँ।' ई लखे दुइयो पिया कर भेंट होलक आउर दुइयो सुख सएँ रहेक लागलएँ।

अनुवाद

एक नगर में एक राजा था। उसके दो लड़कियाँ थीं। बड़ी का नाम था धनमइत और छोटी का बालमइत। छोटी बहन बड़ी सुन्दरी थी। उसके केश सोने की भाँति दिखलाई देते थे और खोल देने पर वे घुटने तक लम्बे थे।

एक दिन दोनों बहनें नहाने के लिए नदी गईं। नहाते-नहाते छोटी बहन का एक केश उखड़ (टूट) गया। तो उसने सोचा कि 'इसे कहाँ फेंक दूँ अथवा छिपाऊँ?' उसी समय नदी में एक बेल फल बहता दिखाई पड़ा। तो उसने उसे हाथ में लेकर और केश को उसमें सजाकर फिर बहा दिया।

केश बहते-बहते (वहाँ) चला गया जहाँ एक राजकुँवर नदी में नहाने के लिए बैठा था। बेलफल को बहते देखकर उसने अपने संग के साथियों से कहा कि 'देखो, देखो, क्या बहा जा रहा है! पकड़ लाओ तो देखूँगा कि क्या चीज है?' एक व्यक्ति नदी में पैठ गया और बेलफल को लाकर उसने राजकुँवर को दिया। राजकुँवर ने फल को फाड़ा तो देखा कि भीतर एक सुवर्ण का केश है। देखकर उसकी आँखें झपक गईं और उसने मन में कहा कि 'जब यह केश इतना सुन्दर है तो इसकी मलकिन कितनी अधिक सुन्दर होगी। मैं तो उसे खोजूँगा और उसके साथ ब्याह करूँगा।' उसने केश को धोती में बाँध लिया और उसके सम्बन्ध में सोचते-सोचते घर आया।

महल में लौट करके वह खाने लगा तो उसे खाया न जाय और पीने लगा तो पीया न जाय। भला वह कैसे खाये-पीये। उसे तो जूड़ी ने धर दबाया। वह सेज पर जाकर लुढ़क गया। वह किसी के साथ न हँसे न बोले और न किसी से बात ही करे; उसी केश को छाती में लगाये रहे। उसकी दशा देखकर राजा-रानी कहने लगे, 'देखो, देखो, राजकुँवर को क्या हो गया? किसी गुणी-ज्ञानी वैद्य को बुलाओ। क्या जाने, उसे भूत ने पकड़ लिया है अथवा उसे लकवा मार गया है?' राज्य भर के बड़े-बड़े वैद्य आये; किन्तु राजकुँवर के रोग का उन्हें पता न चला। राजकुँवर अपना रोग बतलाता ही न था तो भला उसे कौन जान पावे।

राजमहल में एक कुटनी बुढ़िया थी, उसने कहा, 'मुझे एक चरखा और कुछ रूई देना तो मैं बता पाऊँगी कि कुँवर को क्या रोग है?' बुढ़िया को एक चरखा और रूई दी गई। बुढ़िया उसे लेकर जहाँ राजकुँवर सोता था वहाँ बैठकर रूई कातने लगी। वह अपने साथ खाने के लिए थोड़ा चने या बूट भी लाई थी। वह चना फाँकती थी। वह चरखा में रोएँ-रोएँ की ध्वनि

करती थी। राजकुँवर सुन-सुनकर नाराज हो गया और अन्त में गाली देता हुआ बोल उठा—'दूर हो, दूर हो, तुझे बाघ पकड़े, यहाँ चरखा कातने बैठी है।'

बुढ़िया ने कहा—'कहो बाबा, सुनाओ बेटा, आपको क्या रोग हो गया है?' कुँवर ने ने पूछा—'कहूँगा तो क्या मेरा कहना पूरा करेगी?' बुढ़िया ने कहा—'हाँ बाबा, आपके कहने के अनुसार सब करूँगी।' राजकुँवर ने कहा—'इस केश को देखो तो।'

बुढ़िया देखकर हँसी और कहने लगी—'ओह! इसी के लिए मुँह-कान को गिराये हो (दुखी हो)। उठो, उठो, हँसो-बोलो, खाओ-पीयो, मैंने आपकी बीमारी समझ ली और इसका उपाय करती हूँ।' इतना कहकर वह राजा के पास पहुँची और उससे सब बातें कह डालीं। राजा ने कहा कि—'तुम केश की मालकिन को खोजने के लिए जाओ। कुँअर के साथ उसका ब्याह करूँगा ही।'

बुढ़िया राजकुँवर की तसवीर लेकर राजकुमारी को खोजने के लिए चली। जाते-जाते कई दिन हो गये तब जाकर बुढ़िया को पता लगा और वह उस राज्य में जा पहुँची जहाँ राजकुमारी थी। नियमानुसार दोनों बहिनें नदी नहाने के लिए जा रही थीं। उसी क्षण बुढ़िया ने रानी की लड़की को पहचाना। जिस क्षण रानी की लड़कियाँ नहाने के लिए आ रही थीं उसी क्षण रास्ते में खड़ी होकर बुढ़िया ने सोचा—'देखूँ तो रानी की लड़कियों के केश जैसे सुन्दर हैं उतनी ही उनमें दया भी है कि नहीं।' सो वह बहाना करके रास्ते में लेटकर खूब रोने लगी। वह कहने लगी—'हायरे दइया! हायरे दइया! अब न बचूँगी। मर ही जाऊँगी।' उसका रोना सुनकर सब सखियाँ ठिठक गईं। तो बड़ी लड़की ने हुक्म दिया कि—'चलो, चलो, उस कसबी (वेश्या) के पास रोने का मन करता है। क्या जाने, क्या लेकर वह बहाना कर रही है।'

कुमारी बालमइत ने कहा—'मैं तो उसकी विपत सुन ही लूँगी। क्या जाने, बेचारी कहाँ की है। कोई भारी दुख है; इसीलिए इतना रो रही है।' यह कहकर वह बुढ़िया के पास पहुँची और उसे देखा तो बुढ़िया ने उसके हाथ में तस्वीर देकर कहा—'यह राजकुमार आपके लिए प्राण-त्याग कर रहा है। उसे बचाओ।'

कुमारी बालमइत ने जब उस तस्वीर को देखा तो उसका धैर्य छूट गया और उसने तस्वीर को अपने अंचल में छिपा लिया और सोचते-सोचते वह महल को लौटी। अपनी कोठरी में जाकर सेज पर पड़ रही और उठती ही न थी। अन्न-पानी सब छोड़ दिया। सखियों के साथ परिहास करना भी छोड़ दिया। शृङ्गार-पटार भी छोड़ दिया और दुबली होने लगी। राजा-रानी ने जब उसका हाल सुना तो वे बेचैन हो उठे। एक दिन उसकी बड़ी बहिन धनमइत उसके पास गई तो उसने देखा कि बालमइत एक तस्वीर की ओर देख रही है और उसकी आँखों से आँसू बह रहे हैं। छोटी बहिन के दुख को वह तुरन्त समझ गई और उसने जाकर राजा-रानी से समाचार कहा कि 'बालमइत को हृदय-रोग हो गया है। उसके पास एक राजकुँवर की तस्वीर है और उसीके लिए वह चिन्तित है।' राजा-रानी ने जाकर देखा तो सच बात निकली। राजकुँवर के रूप को देखकर उन्होंने कहा कि 'रानी बेटी के योग्य वर मिल गया। तो हमारी बेटी का उसके साथ ब्याह हो।'

राजा ने तुरन्त राजकुँवर का पता लगाने के लिए मंत्रियों को भेजा। रास्ते में जाते-जाते मन्त्रियों से राजकुँवर द्वारा भेजे हुए आदमियों की भेंट हो गई। पूछ-ताछ होते-होते दोनों

वही किया। राजकुमारी को उसने जलाया और उसकी राख को एक नये भाण्ड में रखकर अपने देश लौट आया। अपने महल में आकर उसने उस भाण्ड को एक अच्छे स्थान पर रख दिया। एक दिन वह कहीं गया तो भाण्ड से एक सुन्दर लड़की निकली और कोठरी में बिखरी हुई चीजों को ठीक ढंग से रखकर फिर उसी भाण्ड में घुस गई। राजकुँवर कोठरी में आया तो वह सुगन्ध से महकती थी और उसने देखा कि सब चीजें अपनी-अपनी जगह पर ठीक ढंग से रखी हुई हैं।

उसने पूछा कि, 'यह गमक कहाँ से आती है? और मेरी कोठरी में कौन आया था?' मगर इसका जवाब कोई दे न पाया। दूसरे दिन वह चीजों को इधर-उधर करके और कहीं चला गया। लौटकर देखा तो फिर वही बात; और मा-बाप, नौकर-चाकर से पूछा कि—'मेरी कोठरी में कौन आया था?' कोई बता न पाया। तब वह विचार करने लगा और एक दिन कपड़ा-लत्ता, चीज-वस्तुओं को कोठरी में इधर-उधर फेंककर बाहर निकल गया और दूर स्थान पर छिपकर बैठ गया।

उसके निकलते ही भाण्ड से राजकुँवारी निकली और चीजों को अपने-अपने स्थान पर रखने लगी। राजकुँवर ने जिस क्षण जाना कि मेरी कोठरी में कोई आया है, तो वह कूदकर घुस गया और राजकुँवारी को हाड़-मांस में देखकर पहले तो आश्चर्य किया। तब जैसे ही राजकुँवारी भाण्ड में घुसने लगी वैसे ही उसे धरने लगा। राजकुँवारी ने कहा—'छोड़ो, छोड़ो, मुझको मत पकड़ो।' राजकुँवर ने कहा—'मेरी रानी! मेरी प्रिया! आपके के लिए दुखी हूँ। मर जाऊँगा तब भी अब आपको न छोड़ूँगा।' यह देखकर दोनों प्रेमियों की भेंट हो गई और दोनों सुख से रहने लगे।"

(२) फगुआ

फगुआ (फाग) के गीत वसन्त के आरम्भ में गाये जाने लगते हैं। वे विशेष कर होली के अवसर पर गाये जाते हैं। छोटानागपुर में होली विनोद और स्वच्छन्दता का उत्सव है, यों गीतों में भी ये गुण लक्षित होते हैं। गीत प्रायः छोटे-छोटे और चुटकीले होते हैं। गीत के विषय साधारणतः विनोद और प्रेम है। राम और कृष्ण के सम्बन्ध के भी गीत गाये जाते हैं। इन गीतों में धर्म और नीति के भी भाव सम्मिलित रहते हैं।

इन गीतों की रचना में मात्राओं और अक्षरों के नियम बहुत-कुछ अव्यवस्थित रहते हैं। साधारणतः गति यह है जिससे भिन्न-भिन्न रूप बनते हैं—

ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ, ऽ।। ऽ।। ऽ ॥ ध्रु ॥
ऽ।। ऽ।। ऽ।। , ऽ।। ऽ।। ऽ।। ॥ टे॰ ॥

(क) विनोद—(i) एसों कर फगुवा में, लीने डेबुआ।
भउजी भतार करे, हमें अगुआ॥

[एसों = इस वर्ष ; डेबुआ = डबल पैसा ; भउजी = भाभी ; भतार = पति ; अगुआ = नायक]।

(ख) रामचन्द्र—(ii) सुनु मृग रघुनाथ हो गह धोसर हाथ।
जटा मड़ुका माथे बोधे, हो रे पर्वत धावे॥

[ऐ मृग, सुन, रामचन्द्र (शिकार खेलने आ रहे हैं); इसलिए किसी दूसरे की शरण मे जा (क्योंकि तूँ उनके तीर से नहीं बच सकता है), वे सिर पर जटा का मुकुट बाँधकर पर्वत पर भी दौड़ आते हैं।]

(ग) कृष्ण—(iii) बसुदेव प्रभु चकरधारी, सहरे कोरोम्वा खेलवएँ होरी
केहु जे लियलएँ अछद चन्दनवा, केहु जे लियलएँ अबीर रोरी
राजा जे लियलएँ अछद चन्दनवा, रानी जे लियलएँ अबीर रोरी

(३) डमकच

डमकच के गीत विवाह के अवसरों में गाये जाते हैं। सदानों में विवाह का समय फाल्गुन मास से आषाढ़ तक है। डमकच के गीत और नाच उनके सर्वप्रिय नाच और गीत हैं। गीत प्रायः त्रिहग राग के हैं। ये गीत अनेक मात्राओं और अक्षरों के हैं। प्रेम के सिवाय धर्म, नीति आदि भी इन गीतों के विषय हैं। रामचन्द्र, कृष्ण और दूसरे देवताओं के सम्बन्ध के भी गीत हैं।

(क) रामचन्द्र का विवाह—

गति—Sll Sll Sll S, Sll Sll Sll S

राजा हो रामचन्द्र चललएँ विहा।
जाइए जनकपुरे सीता के बिहाइए ललनिया गे।
गह पलन पटाइए ललनिया गे ॥१॥
का चेढ़ि आवएँ राजा हो रामचन्द्र।
कवहिं असवार भरत कुमार ललनिया गे। गह'''॥२॥
बंस वरद चढ़ि राजा हो रामचन्द्र।
मकुन्दहि असवार भरत कुमार ललनिया गे। गह'''॥३॥
सबरे बरथिया जनकपुरे पहुँचल।
सबरे सखिनी मिले देखन जाइ ललनिया गे। गह''' ॥४॥
सुभ मन हरखाइये ललनिया गे।
सबरे बरथियाँ दुवारहिं ठाढे।
माइये ददरिन आरती उतारे।
नागिन देलएँ फुँफकारे ललनिया गे। गह''' ॥५॥
सबरे बरथिया मड़वाहि खड़े।
माइये ददरिन बिछाना बिछाये।
सम्भु बैठे हरखायें ललनिया गे। गह''' ॥६॥

[बिहा = विवाह; ललनिया = मोहनी; गे = सम्बोधन (स्त्री के लिए); पलन = पलना; पटाइए = संभाल; चेढ़ी = चढ़कर; बंस बरद = श्रेष्ठ वर्द; मकुन्द = पद; ददरिन = अन्तःपुर की स्त्रियों; मड़वा = मण्डप]।

इस गीत के लेखक का पता नहीं। उसने इस गीत में रामचन्द्र और महादेव के विवाह को मिला दिया है। चौथे पद तक तो रामचन्द्र और भरत के बरात का वर्णन है; परन्तु

पाँचवें पद में अचानक नागिन का फुँफकार होने लगता है, और छठे पद में स्वयं महादेव मण्डप में बैठे दिखाई देते हैं। इस मिश्रण का क्या कारण है, समझ में नहीं आता।]

४ (क) श्रीकृष्ण की लीलाएँ—

चलु हरि चलु सखि, वृन्दावने जाब सखी, वृन्दावने जाब।
गोइ सब कोइए मिलि जुलि बछरू चराब ॥१॥
कोन बने अहीरा रे, गाय चराए सखी, गाय रे चराए।
गोइ कोने बने अहिरा रे पानी रे पियाए ॥ २ ॥
रन बने अहिरा रे, गाय चराए सखी गाय रे चराए।
गोइ सिरी रे कमल-दहे पानी रे पियाए ॥ ३ ॥
सिरी कमल-दहे, पानी रे पियाब सखी, पानी रे पियाब।
गोइ दह बीचे हेलि-हेलि डुबकी लगाव ॥ ४ ॥
सिरी कदम चेठी बँसुरी बजाव सखी, बँसुरी बजाव।
गोइ एक मन करे लीला लगावे ॥ ५ ॥
मधुरी-मधुरी फल तोरी खाव सखी, फल तोरी खाव।
गोइ जोड़ा हनुमान कहैं देरी न लगाव ॥ ६ ॥

[गोइ=सखी, रनबन—किसी वन का नाम। सिरी=श्री; एक मन होकर=एक मत होकर, इच्छा होने पर]।

[सुन्दर Pastoral गीत है। कुछ लड़के-लड़कियाँ और कृष्ण दूसरे लड़के-लड़कियों को गाय चराने के लिए बुला रहे हैं। सखियाँ पूछती हैं कि ग्वाले अपने गायों को किस वन में चराते हैं और किस जलाशय में पानी पिलाते हैं। कृष्ण उत्तर देते हैं कि वे रण वन मे गाय चराते हैं और कमलदह में पानी पिलाते हैं। अतः चलो, हम भी वहीं चलें। वहाँ कभी हम दह में क्रीड़ा करेंगे अथवा कदम्ब पर चढ़कर बँसरी बजावेंगे, अथवा कोई रंग जमावेंगे और मधुर फल तोड़-तोड़कर खायेंगे। लेखक ने हास्य-रस उत्पन्न करने के लिए अन्त में 'जोड़ा हनुमान' से कहवाया है कि वहाँ विलम्ब न करो।]

(ख) राधा का अभिसार—

सोना के गरिला लेले पानी भरे गेली।
हाय रे मोर गरियो जे कहाँ अटकाए,
राधे मुँह सूखे रे बदन कुम्हुलाए ॥ २ ॥
ठेस लगइते ससुर गरिला फूटि गेल
बिंडा बिछूवे कंगन टूटि गेल ॥ ३ ॥
हमरा हो काया प्रभु एत सुकुमार रे।
महत मारु मरत पीडु बिनती हामर ॥ ४ ॥

[गरिला=घड़ा। लेले=लिये। गरियो=पैंजनी। बिंडा=सिर पर घड़ा भरने का चक्राकार पात्र।]

इसमें के एक या दो पद नहीं मिलते। लेखक भी अज्ञात है। राधा घड़ा लिये पानी भरने के मिस से जमुना जाती है। उसका घड़ा फूट गया, पैंजनी खो गई, कंगन भी टूट गया। मुँह लटकाकर घर लौटती है। घर आकर कहती है कि पैंजनी तो कहीं अटक रही, घड़ा ठेस लगने से फूट गया और बिंडा उठाते समय चूड़ियाँ भी टूट गईं। उसका पति उसे मारने के लिए उद्यत होते हैं तो कहती है कि मत मारो, मेरा शरीर अत्यन्त सुकुमार है; उसकी बुरी दशा होगी।]

(ग) पति से त्यागी जाकर विरह से कोई बेचारी गाती है—

अम्वा मंजरे मधु मातलएँ रे। तइसने पिया मातलएँ मोर ॥१॥
जइसने सूखल पतइ उड़इ गेलएँ रे। तइसने पिया उड़लए मोर ॥२॥
जइसने जे नाग नागिन कचुर छोड़वलएँ रे। तइसने पिया छुटलएँ मोर ॥३॥
भाइ जे कहएँ दिन चाइर आवे रे। भवजी कहएँ ठाँवे नखे ॥४॥
आइयो बाबाओ छोड़ी गेलएँ रे। केकर दुरा जाइए बइठों ॥५॥

[वियोग के सुन्दर और हृदयग्राही भाव दिखाये गये हैं—'जिस प्रकार आम वृक्ष की मंजरी से मोहित होकर भ्रमर उसमें मस्त हो जाते हैं, इसी प्रकार मेरे प्रिय (अन्यत्र) मस्त हो गये हैं। जिस प्रकार सूखे पत्ते (वायु के झोंक से) उड़ जाते हैं, इसी प्रकार मेरे प्रिय भी (अन्यत्र) उड़ गये हैं। जिस प्रकार नाग-नागिन-अपनी केंचुली छोड़ जाते हैं, इसी प्रकार मेरे प्रिय मुझसे छूट गये हैं। भाई साहब तो कहते हैं कि बहन, थोड़े दिनों के लिए मेरे घर आ सकती हो, परन्तु भाभी कहती हैं कि यहाँ तुम्हारे लिए स्थान कहाँ ! मेरे माता-पिता भी चल बसे; अब मैं किसके यहाँ आश्रय लूँ !]

(५) पावस

पावस के गीत वर्षा ऋतु में गाये जाते हैं। उनमें अधिकतर विरह के ही भाव व्यक्त रहते हैं; परन्तु जहाँ-कहीं वैराग्य आदि विषय भी वर्णित रहते हैं। उनकी रचना कवित्त के समान होती है।

(१) विरह

गरजत मेघ करत सोर, बरसत जल करत जोर, धक-धक जीव करे।
पिया परदेस बहुरत नहीं, मोरे गोइया, गुनि-गुनि प्रेम नैन जल ढरे ।१।
कोई सखी जब आवत हित, उनहि कहलएँ चित, अन जल तजि रहे।
कोरा में खेल करे, गोइया, गुनि गुनि प्रेम नैन जल ढरे ।२।

[शब्दार्थ सरल है, पर भाव अत्यन्त मनोहर। कोरा = गोद।

मेघ शोर करता हुआ गरजता है; जोरों की वृष्टि होती है और इसे देख-सुनकर अन्तरात्मा धक्-धक् कर रही है। ऐसी दशा में भी प्रिय परदेश से नहीं लौटते हैं। हे सखी, सोच-सोचकर प्रेम और धीरज आँखों के आँसू के रूप में ढलक पड़ते हैं। जब कोई प्रिय सखी आती है और उनकी चर्चा छेड़ती है, तब तो खाने-पीने की सुधि भी नहीं रहती है। हाँ, जब गोद का बच्चा नटखटी करने लगता है, तब उनका प्रेम सोच-सोचकर आँखों के आँसू ढलक पड़ते हैं।]

(६) जनी झूमर

शरद् ऋतु में जीतिया और करम नामक दो पर्व मनाये जाते हैं। इन उत्सवों में स्त्रियाँ व्रत रखती हैं और अन्तिम दिनों में नाच-गान भी होता है। इस समय स्त्रियाँ जनी झूमर गाती और नाचती हैं। नीचे एक गीत उदाहरणस्वरूप दिया जाता है—

मृत्यु

मरन के नहीं जानीं, कोन पन्थे हंसा उड़ि जाई।
पाँच रुपइया कर कपड़ा मँगावल, मरन के नहीं जानी।१।
माए बहीनी रोवए माथा धुनिए धुन, मरन के नहीं जानी।
अपनी तिरिया कान्दए हिया साल, मरन के नहीं जानी।२।
चारी जन मिले खटिया उठा लेल, मरन के नहीं जानी।
ले चलए जमुना किनारे तो, मरन के नहीं जानी।३।
कचरा काटिए काइट सरह छरावल, मरन के नहीं जानी।
बेल काटिए मुखे आगि तो, मरन के नहीं जानी।४।
मास गलिए गलि धरती परिए गेल, मरन के नहीं जानी।
हाड़ चललएँ बनारसे तो, मरन के नहीं जानी।५।

[यह गीत अत्यन्त भावपूर्ण है और है शरीर की अनित्यता का द्योतक। मरण को कौन जानता है कि किस मार्ग से जीवरूपी हंस उड़ जाय ? मरने पर घरवाले पाँच रुपये के कपड़े मँगाते हैं; माता और बहनें सिर धुन-धुनकर रोती हैं और पत्नी भी आन्तरिक पीड़ा से रोती है। चार जन खाट उठाकर यमुना नदी के किनारे ले जाते हैं। वहाँ लकड़ियाँ काटकर चिता बनाई जाती है, उसपर मुर्दा रखा जाता है और बेल काटकर मुर्दा को आग लगाई जाती है। मांस तो जल-जलकर भूमि पर गिरता है और हड्डियाँ बनारस पहुँचने के लिए बहा दी जाती हैं।]

(७) झूमर

झूमर के गीत साधारणतः दशहरे के समय गाये जाने लगते हैं। शरद् ऋतु में सर्वत्र सुने जाते हैं। इनके साथ-साथ झूमर नाच भी होता है। सदानों की प्रिय वस्तु नाच है। यह प्रायः जमींदारों और बड़े लोगों के अखाड़े में नाचा जाता है। इसे उच्च श्रेणी का नाच समझते हैं। इसमें पुरुष लोग ही भाग लेते हैं। परन्तु इसके लिए एक 'खेलड़ी', नचनी अथवा पतिता स्त्री का होना आवश्यक है, इससे नाच अति दूषित हो जाता है।

गीत धार्मिक और सांसारिक दोनों प्रकार के होते हैं।

प्रेम

तुलसी राजा प्रेम डोई, मति तोरु छटकाई।
टूटल सएँ जुटल न जाय, कतई करहु उपाय।१।
लोहुका सएँ परु मत्ती, खोछु न आपन पती।
लोह तुम्या पथल योहाए, कतइ करहु उपाय।२।

[प्रेम के सम्बन्ध में सुन्दर शिक्षा है। तुलसी नामक कवि किसी राजा से चिताता है कि 'प्रेम किसी रस्सी के समान है। प्रेमरूपी रस्सी को तोड़कर अलग नहीं करना चाहिए। क्योंकि वह टूट जाने पर, कितने प्रयत्न करने पर भी नहीं जुट सकता। लोहू का रूपिनी किसी पर-स्त्री से फँसकर अपनी इज्जत नहीं खोनी चाहिए, क्योंकि जिस प्रकार लौका के तुम्बे के साथ पत्थर तक बह जाता है, इसी प्रकार पर-स्त्री, कितने प्रयत्न करने पर भी, नाश का कारण होती है।]

(८) लहसुवा

लहसुवा, झुमरी, गडखवा, जहुरा, खेमटा आदि दूसरे प्रकार के गीत और नाच हैं, जिनको वर्ष के भिन्न-भिन्न कालों में गाते या नाचते हैं। यहाँ हम केवल लहसुवा के दो गीत देते हैं—

(क) युवती का वर्णन

हे धनी नवनारी, फूल सुकुमारी, काहे लागिन मनमारी।
कहु धनी दुख के विचारी, देसु कदम सारी।
जे लखे जहाँ रहू खोपा मेल भारी, जल न बोहके पारी।
सासु ननन्दी देलपुँ गारी, दुख न विसारी पारी।
गोड़क अइँरी-पएँरी मठिया ठसकारी, हाथे संखा चुरी ललकारी।
कहु सखी बाँही के उलारी, दे मोके बलहारी।

[देसु = दूँगा। जे लखे = जिस प्रकार। खोपा = बाँधा केश। बोह के (बोहक) = ढोना। पारी = सकती हैं। अइँरी = चमत्कार। पएँरी = नूपुर। मठिया = पाँव की अँगुलियों के भूषण। संखा = बाँह का भूषण। बलहारी = जबर्दस्त।]

[एक सखी पूछ रही है कि 'अरी, आज क्यों मन मारे बैठी हो?' उत्तर मिलता है—'मेरे बालों का बोझ बढ़ गया है, पानी भी नहीं ढो सकती हूँ। इससे सास और ननद गाली देती हैं। सखी सच्चा कारण जानती है और कहती है कि 'तुम्हारे हाथ-पाँव में सब प्रकार के गहने हैं, शायद किसी ने तुम्हारी बाँह पकड़ ली होगी।']

(ख) वृद्धा का खेद

पहिले तो धोपक धोपा, बाँधली तो ठेठक खोपा।
खोपाक दिन गेल करे दइया, अबे भेली लेदेरा ओढइया।१।
पहिरली आइर-फाइर, पहिरुपु चनक साइर सारिक दिन······
पहिरली झलम-झुल्ला सेजइया ऊपरे फूला फूलक दिन······
विसस्वर माता पिता, इसन मोर भेल दसा। अबे भेली······

[धोपक धोपा—फूल के ऊपर फूल। ठेठक = ठेठ, छैल। लेदरा = गुदड़ी। आइर-फाइर = सारी का सुन्दर किनारा। चनक = पतला। साइर = साड़ी। झलम झुल्ला = सुन्दर कुरता। विसस्वर = विश्वेश्वर।]

[युवावस्था में ठाठ का बाल बनाती और उसपर फूल चढ़ाती थी। अब वे दिन बीत गये। अब तो गुदड़ी पहनती हूँ। एक समय सुन्दर साड़ी पहनती थी। अब तो गुदड़ी पहनती

हूँ। एक दिन सुन्दर गहने पहनकर सेज पर लेटती थी। अब तो गुदड़ी पहनती हूँ। उस समय भगवान् को भूल बैठी थी। अब ऐसी दशा हुई कि गुदड़ी पहनती हूँ।]

[ड]

एक् सहर रहे। राजा रहलैं। पहारे बाघ् रहत्-रहे। अदमिन् धर् धर् खात् रहे। राजा हँकवा करलैं। बाघ् लागलक् भागे। बनिया गो टे बै ल लाद्-के जात् रहलक्। बाघ् कहलक्, 'ए भाई, मोके बँचाओ।' बनिया कहलक् 'का-निअर तो के बँचाँव ?' ब घ कहलक् कि 'टाट् में मोके साइज-दे आरु बै ला में लाद्।' बै ल में लाद्-के बनिया जाएक लागलक्। कोसे क भूँइ जाय-रहतै-होइ कि बाघ् बनिया के कहलक् कि 'मो-के निकाइल् दे।' बनिया निकाइल्-देलक्। तब तो बाघ्-जाइत् आरु पसूजाइत् कहलक्, 'ए बनिया, मोंय तो तो-के धरबों।'

बनिया कहलक् कि 'का-लेइ मो-के धरबे ? मइं तो तो-के बचालों।' बाघ् तो नहीच माने। कहलक् कि, 'धरबे करबों। ले गे तो-के खाँव कि तोर् बरधा-के खाँव् ?' बनिया कहलक्, 'चल् पँच् ठन् जाव्। पीपर् देओता हेके। ओहे कहि-देई तो य मो-के खावे।' ता-ले पीपर रुख् तरे गेलैं। बनिया कहथे, 'हे पीपर् देओता, नेकी करल्-कर्- मे बदी होएल्।' पीपर् कहलक्, 'होएल् जून्। मोंय् सरगे रहथों; अदमिन्-मन् आइ-कों होन् मोर छाईंह्-तरी बइठथैं, सथाथैं आरु जखन् जाएक लगथैं तो मोर डहुरा काट थैं आरु पतई तोरथैं।' तब् बाघ् कहथेइक, 'का! रे बनिया, लेगे, कह् तो के खाव् कि तोर् बरधा- के खाव् ?' बनिया कहलक्, 'चल् गऊ बराम्हन् हेके; ओहे कहइ् देई तले तो य खावे।' गोटे क् बुढ़िआ गाय् खपकन्-में खपकइक रहे, जे ते-कर-ठन् पहुँचलैं। 'का! गऊ माता, नेकी करत्-के बदि-ओ होएल ?' कहलक् 'होएल् जून्।'

(अनुवाद)

एक शहर था। राजा रहता था। पहाड़ में बाघ रहता था। आदमियों को पकड़-पकड़ खाता था। राजा ने हँकवा (हाँका) डाला। बाघ भागने लगा। एक बनिया बैल लादकर जाता था। बाघ ने कहा, ऐ भाई, मुझे बचाओ।' बनिया ने कहा—तुझे कैसे बचायें ?' बाघ कहता है कि 'टाट में मुझे बन्द कर दे और बैल पर लाद दे।' बैल पर लादकर बनिया जाने लगा। कोस भर जमीन जा चुका होगा कि बाघ ने बनिये से कहा—'मुझे निकाल दो।' बनिया ने निकाल दिया। तब तो (उस) बाघ जाति पशु जाति ने कहा—'ऐ बनिया मैं तुझे पकड़ूँगा (मारूँगा)।'

बनिया ने कहा कि, 'क्या लेकर (क्यों) मुझे पकड़ेगा ? मैंने तो तुझे बचाया है।' बाघ ने नहीं माना। (उसने) कहा—'मैं धरूँगा ही, आओ 'तुझे खाऊँ कि तेरे बैल को खाऊँ ?' बनिया ने कहा, 'चलो, पंच स्थान को चलें। पीपल देवता है, वही (जब) कह देगा तब तुम मुझे खाओगे।' तब पीपल वृक्ष के नीचे (वे) गये। बनिया कहता है, 'हे पीपल देवता, नेकी करने में क्या बदी (बुराई) हो जाती है ?' पीपल ने कहा, 'निश्चय होती है। मैं स्वर्ग (आकाश) में रहता हूँ, मनुष्य आकर मेरी छाया में बैठते हैं, सुस्ताते (विश्राम करते) हैं। और जब जाने लगते हैं, तब मेरी डाल काटते हैं और पत्ते तोड़ते हैं।' तब बाघ कहता है, 'क्या रे बनिया, आओ, कहो, तुझे खाऊँ या तेरे बैल को खाऊँ ?' बनिये ने कहा, 'चलो, गाय ब्राह्मण है, वह कह देगी तब तुम खाना।' एक बूढ़ी गाय कीचड़

में पड़ी हुई थी, तो उसके पास वे पहुँचे। (बनिये ने कहा), 'क्या गऊ माता, क्या नेकी (भलाई) करके बुराई भी होती है?' (उसने) कहा, 'निश्चय होती है।'

[ढ]

एगो राजा-का सात् बेटी रहे। एक् दिन् राजा अपना सातो बेटी-के बोलउले आ सातो-से पुछलन् के, 'तूँ लोगनि के करा करम्-से खा-तू?' तब् छव्-गो-स कहलीं के, 'हम् तो हरे करम्-से खाई-ला।' तब् राजा सुन्-के बरा खुस् भइले। तब् अपना छोटकी बेटी-से पुछलन् के, 'तुँ त कुछु-ना बोल-लू।' तब् ऊ कहलक् के, 'हम् अपना करम्-से खाई ला।' तब ए-पर् राजा बरा जोर-से खिसिअइले, आ ओ-कर् बिआह् एगो कोढ़ी-का साथे कर्-दिहलन, आ दूनो-के बन्-में निकाल्-देलन्। तब ऊ बेचारी ओहि कोर् हिआ-के माथ् अपना जाँध्-पर् ध-के ओह् बन्-में जार-बेजार रोअत् रहे; आ ओकरा रोअला-से बन्-के पच्छी सभी रोअत् रहे। अतने में उहाँ कहीं शिव्-जी आ पारबती-जी जात् रहस्। पारबतीजी शिव-जी-से कहली के, 'अब जब-ले रउरों ए-कर् दुख् ना छोराइब तब्-ले हम् इहाँ-से ना जाइब्।' तब् सिब्-जी ओकरा से कहलन् के, 'ए बेटी, आपन् आँख् मूँद।' ऊ आँख् मुँदलख्। जब् आँख् खुलल् तब् देखे-तो ऊ कोर् हिआ सुन्दर सोबरन् हो-गइल। तब् राजा-के बेटी बरा अस्तुत कइल्, ओ दूनो बेकत् खुशी साथ् रहे लागल्। दुख्-दलिदर् भाग्-गइल।

(अनुवाद)

एक राजा के सात लड़कियाँ थीं। एक दिन राजा ने अपनी सातों लड़कियों को बुलाया और सातों से पूछा कि, 'तुमलोग किसके कर्म (भाग्य) से खाती हो?' तब छः (लड़कियों) ने कहा कि, 'हमलोग तुम्हारे ही कर्म से खाती हैं।' तब राजा सुनकर बड़ा खुश हुआ। तब (उसने) अपनी छोटी लड़की से पूछा कि, 'तुमने तो कुछ भी नहीं कहा।' तब उसने कहा कि, 'मैं अपने कर्म से खाती हूँ।' तब इसपर राजा बड़े जोर से नाराज हुआ और उसका विवाह एक कोढ़ी के साथ कर दिया और दोनों को जङ्गल में निकाल दिया। तब वह बेचारी उस कोढ़ी का सिर अपने जँघे पर रखकर उस वन में जार-बेजार रोती रही, और उसके रोने से वन के सभी पक्षी रोते थे। इतने में वहाँ कहीं शिवजी तथा पार्वतीजी जा रहे थे। पार्वतीजी ने शिवजी से कहा कि, 'अब जबतक आप इसका दुख न छुड़ायेंगे तबतक मैं यहाँ से नहीं जाऊँगा।' तब शिवजी ने उससे कहा कि, 'ए बेटी, अपनी आँखें बन्द करो।' उसने आँखें बन्द कीं। जब (उसकी) आँखें खुलीं तब (उसने) देखा तो वह कोढ़ी सुन्दर सुवर्ण हो गया (था)। तब राजा की लड़की ने बड़ी स्तुति की और दोनों व्यक्ति खुशी के साथ रहने लगे। दुःख-दारिद्र्य भाग गया।

[ए]

एउवा अयनिया रहे, बरद् चरवइत। भँजहरिआ[1] सब् बीया कटैत। एउवा

---

1 जब एक व्यक्ति किसी दूसरे के खेत में काम कर देता है और उसके बदले में जब दूसरा व्यक्ति उसके खेत में काम करता है तो इसे भाँज देना कहते हैं और भाँज देनेवाला व्यक्ति भँजहरिया कहलाता है; किन्तु कभी-कभी खेत में काम करनेवाले मजदूरों के लिए भी इस शब्द का प्रयोग किया जाता है।

हर्ना वैठल रहली अ। एउनिवा कहलस्, 'तोर् आगे कथि बड़उ ?' मँजहरिया कहलस्, 'अरे, के जनि कथि हो खैं, कथि न। देखहीं-त।' मँजहरिए गे लीअ, हर्ना दे खलीअ। तव् एउनिआँ मार्-दे लीअ। मँजहरिया कहलीअ, 'अरे, ससुर, तों हि किहीं- के मारल्- ही ? सरन्- में आएल्- रहलै। कह्- देवउ महतउआ- के अघी। डंडविहे। तोर् गुनावन् परलउ।

(अनुवाद)

एक चरवाहा था, बैल चराता। मँजहरिया (मजदूर) लोग बीज (धान के पौवे) रोप रहे थे। एक हरिण बैठा था। चरवाहे ने कहा, 'तुम्हारे आगे क्या है ?' मँजहरिया ने कहा, 'अरे, कौन जाने क्या है, क्या नहीं। देखते तो हो। मँजहरिया गया (और) हरिण को देखा। तब चरवाहे ने (उसे) मार दिया (मार डाला)। मँजहरिये ने कहा, 'अरे, ससुर, तुमने क्यों मारा ? शरण में आया था। कह दूँगा महतो (मुखिया) के आगे (सामने)। वह तुम्हें दंड देगा। तुम्हें दोष लगा।

[त]

रामा ओ लछिमन् चलने शिकार।
बे लवट हथनी डारे पलान्।
हथनी पलाने असनी-बसनी गिरले।
राम त लगले पियास्।
पुरी पुरी बहिनी, कुँइआँ-पनिहरिआ सुन्दा एक् बहिनी, पनिया पिआउ।
सोने के री करिआ रूपने के री टोंटी, जे हि भरि लावै रे, गंगा-जल्-पानी।
जो तों हि रामा हरि जतिया ना पुछथे, हमरे बाप् शतल् सिंघ राज्।

(अनुवाद)

राम और लक्ष्मण शिकार को चले।
बेलवट (स्थानविशेष) में हथिनी पर (उन्होंने) चारपाई रखी।
हथिनी के भागने से आसन आदि गिरे।
राम को प्यास लगी।

अरी-अरी बहन, कुएँ की पनिहारिन, बहन ! एक बूँद पानी पिलाओ। (वह) सोने की झारी (गंगाजली) में, जिसमें चाँदी की टोंटी लगी थी, गंगाजल भरकर लाई।

(उसने अपने मन में कहा) यदि तुम भगवान् राम (मुझसे) मेरी जात पूछे होते तो (मैं उत्तर देती कि) मेरे बाप राजा शतल सिंह हैं।

[थ] नोन् बोए के कहनी

एक् ठो डँगुवोरिआ[1] रहे। त उ दुइ भाई रहले। त कवनों बनिआँ से

---

[1] नेपाल की तराई में थारू जाति रहती है। उसकी एक शाखा 'डँगवोरिआ' कहलाती है।

पुछलैं कि नोन् बोए त कइसन होँ थ। त उ बनिआँ कहलिस कि खुब पलिहर[1] खेत् बना के तब् ओह् में बोअ। त नोन् खुब् जबर होई।

तब् ओ न्हलें दुनो भाई खुब् जोतें लगलैं। त खुब् पलिहर खेत् बनैं लें। त नोन् बो इलें पलिहर में। तब् उ नोन् का ज:मे, जामल् मोथा[2]। त मोथा त खुब् जामल्। बोंट्[3] खुब् लगलें मोथा खाए।

तब् एक् भाई कहता कि नोन् खाइ ले ताटैं। अब् बोंटन् के मारें चलें के चाहीं। त दुनो भाई तीर् कमठा ले इ के चललैं नोन् रखावे। तब् एहर् ओहर् लगलैं बोंट् उड़ावे।

तब् जब् हाँके लगलै त एक् भाई का छाती पर् बोंट् बइठल्। तब् एक भाई सीटी मार् के बलइलखि कि मार्, एहे बोंट् बइठल् बा, छाती पर्। बस् उ भाई का कइलिस् कि तीर्-कमठा तान् के मर्लिस्। बस् लाग तीर् भाई का छाती महें। बोंट् उड़ि गइल् आ भाई गिर् गइल्। तब उ भाई जाके जब अपना भाई के टो इलिस् तब् कहत् बाय् कि नोन् नाँईं बोए के। उ त भाई मारथैं।

(अनुवाद)

नमक बोने की कहानी

थारू जाति का एक व्यक्ति था। तो वह दो भाई थे। तो उन्होंने किसी बनिया से पूछा कि नमक बोया जाय तो कैसा हो। तब उस बनिया ने कहा कि खूब पलिहर खेत बनाकर तब उसमें बोओ। तो नमक खूब अधिक होगा।

तब वे दोनों भाई खूब जोतने लगे। खेत काफी पलिहर बन गया। तब (उन्होंने) पलिहर में नमक बो दिया। तब वह नमक क्या जमे, उसमे मोथा जम आया। तब मोथा तो खूब उगा। तो तोते उसे खूब खाने लगे।

. तब एक भाई ने कहा कि नमक (तोते) खाये ले रहे हैं। अब तोतों को मारने चलना चाहिए। तो दोनों भाई तीर-कमान लेकर नमक को बचाने के लिए चले। तब इधर-उधर तोते उड़ाने लगे।

तब जब (तोते) हाँकने लगे तो एक भाई की छाती पर तोते बैठने लगे। तब एक भाई ने सीटी बजा के (दूसरे) को बुलाया कि (इन्हें) आकर मार, ये तोते छाती पर बैठे हैं। बस उस भाई ने क्या किया कि तीर-कमान तानकर मारा, बस तीर भाई की छाती में लगा। तोते उड़ गये और भाई गिर पड़ा। तब उस भाई ने जाकर जब अपने भाई को टटोला तब कहने लगा कि नमक नहीं बोना चाहिए। वह तो भाई को मारता है।

---

१ जो खेत लगातार चार महीने तक खाली रखकर पर्याप्त मात्रा में जोते जाते हैं और फिर उनमें गेहूँ इत्यादि बोया जाता है, उसे 'पलिहर' कहते हैं।

२ एक प्रकार की घास।

३ तोता।

अनुक्रमणिका

अ

अंकुर २२
अँइजनि २०७
अँउसि ५३
अँकुसी १०१
अँखिगर १७१
अँगुरियाव २५०
अँचरा २६
अँचवन ६५
अँजुरी १०६
अँजोरिया ५१,५३
अइगा ६५;११४
अइसन ४८,५०,५३,५८,२३८,२३६, २७४, ३०६
अइसें २४०
अउर ६४
अऊर ३३
अउरी ३०३, ३०४
अउलिया २१
अँकस ६५
अँकसदीया ६५
अकिलि ७३,११२
अकुलाइल ५८
अकुला २५१
अख्तियार २१
अगवढ़ि ४८, १३६
अगाढ़ी १६६
अगिन २७,३३
अगिला १६३
अगुआ १२६
अगुआई ७७
अगोरना १५८
अघा २८७
अचकन २१
अचार ७३
अच्छरि ६६
अछुत ६५
अजू २१
अटक २५२
अदइया १३६
अतना २४०
अतर २२
अतसबाजी २२
अतहत २३६,२४०
अतिअन्त ३०३
अदब २२
अदवरी १३८
अदालति २१
अदिमी १८६,२६०
अधियार १६३
अनगिनत १७३
अनन्त ६५,२५१
अनभल १७३
अनराज १६४
अनाज १०१, १३२
अनून १७३
अनेति २६०
अन्ते ३०३
अन्हार ५८, १०५,११६
अन्हुआ २५०
अपने १३
अपिनिहित १५,११४

अबगे ६४
अबहीं ५०
अबीर ८०
अबेरि १७१
अमला-फइला ५७
अमचूर ६२
अमावट ६५
अमीर २१
अमोला १६४
अयगुन ३२,१७३
अरुआ ८२
अरुमल १३३
अलम १७३
अलाप २५१
अवँरा ११२
अवस्त्र ११५
असपहट ८५
असीस २५१
अस्तर २२
अस्तुति ११४
अस्थान् ११४
अस्नान् ११४
अस्पस्ट ८५
अहटमी १५१
अहकी ८६
अहतर २२
अहथिर १०१
अहा १६
अहुँड़ १५०

आ

आँक ६५,११५
आँकुस १०६,६५
आँख १४
आँखि १२,१४,१११,१८३
आँगा ७३,१६४
आँच ७६
आठि १११
आठी १३४
आक्-थू २०६
आखूड़ा ६६
आजा १३२
आजी ११६
आजु ७३,३०२,६६
आड़ २६६
आड़ाव २६६
आँथोंहीं १७३
आन् ११५
आन्हर १०६,७३
आन्ही १०६
आपन ८०
आपस १६६
आबाद २१
आँलोंगों १७३
आलिम् २२
आल्हर ४०
आवाँ ८७
आवह ११२
आहते १५१
आहि ४६
आहे १२
३१ आहें १२
आहि-धाउ ५०

इ

इंकड़ी ७६
इंजियर ५७
इजत ७३
इज्जति २२
इजहार ३१
इनरदस्ती ७४
इनरासन ५६
इनार ७३,१०८,६२,६६,१०५
इन्दी २८

इन्हन २२०,२२१,२२२
इमितीं ११६
इम्तिहान २२
इम्ली ११६
इयार ५८,८४
इलिम २२
इसर २२६
इस्कूल ११४
इस्लाम ११४
इस्टेसन ११४
इस्लोक ११४
इहाँ २४१
इहितिरी ११४

ई

ई का ५०
ईजत ६४
ईंटि ७६
ईदि २१
ईसर ७४

उ

उँहाँ २४१,२७०,२७४,३००
उकूटेर २५३
उखमू २५३
उखर ६७
उखाव ७४
उघटल १३०
उद्घी १३०
उजर ६२,६७,१०१,१३२
उजबुजा २५५
उजाड़ ७४
उजुर २१
उठल २६५
उठान् १५६
उठावल २६५
उठाँक् १५६
उदरी १३६
उतर १०१
उतरहा १६१
उताह १६४
उनक़र ५८
उन्हन २२२,२२३,२२५
उपजल १४०
उपास १०५
उमुरि २००
उर्दी २३
उसुका २५२
उहो ७५

ऊ

ऊखि ७४
ऊजर १६६
ऊठल २६
ऊदू ६७
ऊरिद् ७४
ऊहे ५७

ए, ऐ

एकपट्टा ७५
एकर ५८,२१६,२२०,२२१
एकरार ११३
एकसर १६६,३०३
एकहन ७५, १७०
एकँदशा ८३
एकेरार ७८
एगारे १२
एगो ३८,५६,८७,६१
एतना १०६,२४०
एत्ना ६७
एने ५७,२६१,२४२
एहर २४२
ऐउन ३३

ओ

ओइसँ २४०
ओकनी १६

ओकर १३,४२,५७,८७,२२४,२२५
ओकाई ७७
ओकि ७४
ओकील ५७,१८८
ओवरि ११८
ओल्ह ७५
ओजीर २१
ओमइत ७५
ओठ् ७५
ओड़ा ७५
ओढ़ना ११८
ओतना ५७, २४०
ओदर ३०
ओदरि ११८
ओदारल् ११८
ओने २४१, २४२
ओवरा ७५, ११८
ओवरि ११८
ओस्ताद २२
ओहदा ७५
ओहर २४२
ओहाइन ६६
ओहार ११८

क

कँवल ६४, १०१, ११२
कँहाँ २४०
कइल ३००
कइलान ११४
कइसन ६१
कइसे ४६,५१,२४०
कउआ ७८,८७, १८५
कउवा ४०, १२८
कएँलाव ७५
कड़्ड ८४
कड्ना ८०
कचर २५३
कचरकूट २४
कटहर ६४
कटावाल ८६
कठवति ६५, १६७, २६४
कठवन २६
कठरा १६८
कड़ाकड़ी १८२
कडोर २०४,२०८
कतहुन ६०,६१
करदा १६५
कत्ता ७६
कतवाह ५८
कनाबि ३४
कनमना २५५
कनूनि २१
कपरचिरवा १८५
कपासि १०१
कफन २१
कबले ५६
कबुरि - २१
कबुलाव २५१
कम्पा ८४
कमउमरि १७४
कमचोर ६५
कमरा १४५
कमऽमुल १७४
करवट २५२
करवा २३
करिआ ७७,२००
कनिहार १७०
करेजा ४४,५१
कलथे ३०२
कते-कते ५८
कलप २२
कलवा ४३
कवन ५८, २२६,२३०,२३१,२३२
कन-कन ६

कसमसा २५५
कसवटी १६६
कसरियाह २५१
कसाइल २६७
कसाई २२
कसीदा २२
कस्बा २१
कसूर २१
कहनाम ५६
कहँवा ३०
कहनी २०,१०१,१५७
कहाकू १५६
कोंकरि १११
कोंप १०६
कोंपून १४०
कागज २२
कागद १०७,१६१
काचारल ६५
काछू १८३
काजू ६२
कानि ५६, ७८
कान्ह (कंधा) १०६,१२८,१४४
काफिर २१
काबा २१
कानू २१
काली (देवी) ७८
कालिह ३०२, ६६
किंचड़ २६
किचकिन्चिर ५३
किनखाब २२
किना ६
कियारी १०१, १०४, ११६, १४५,१६२
किरिया ११३,११६
किसमिस २२
किसिम ५६
कीरा ६६
कुँइयाँ ३१
कुँकरी ५३
कुँड़ि १३५,१३६
कुँवार ६६
कुँवारि १८६
कुकुर ६५,६६,१४७
कुखेत १७३
कुनजरि १७३
कुर्बानी २१
कुरमी १००
कुलछनी ८७
कुलि ६४
कुल्हि २८६,३०३
कुहुकावे ५३
कुहरिया ५३
कूवाँ १०५
केकर ४६
केथी १२
केने २४१
केरा १४६
केवोड़ा १६८
केहर २४२
केंहुना ३४
कोइल १२८
कोख ११८
कोंच ५३
कोंचाकोंची १८२
कोठारी १०५
कोंढ़ी १३६
कोंहार २३
कोतबलवा ४३
कोनू १८४
कोराँ १२८
कोरही १५
कोरिही ८२
कोरो ७५,१८३
कोसा ६७
कोंहार ८७,१०१,१०५

ख

खजाना २१
खटराग २४
खटाइल २९७
खटोलना २६
खटोला १६४
खड़ाखड़ी १८२
खंदू २२
खतना २१
ख़तिआव २५१
खन १२९
खन्दानि २१
खन्ता ७९ ९४,१००,१२८
खनसामा २२
खनहून् १७०
खपड़ा १४०
खमच् २५३
खमसू २५३
खम्हा ८१,१२९
खरिका ७४
खरुआ ८२,१६३
खस्ता २२
खस्सी ६४
खाँच १४,७६,१८३
खाँचा १४
ख़ाँची ७८
खाँटी ७६
खाँड़ा १०९
खाँसल ८६
खाऊ १६४
खाए (भोजन) ७७
खामा १२९
खाटी ७६
खातू २८४
खातिन १४
खातिर १४,५७,५९,६२,१९५,२७१
खानी-खुदो ५९
खारिज ११
खास २१
खिआल ८५
खिर्की १६५
खिलाफ २१
खींचड़ी १२९
खीन् ६६
खीरा १२९,९६,१२५
खीसा ८५
खीवि ७४
खुँखुड़ी ७६
खुर ११६,१८४
खुलनू २९५
खुवाइ १६७
खुस्की ८४
खूद ६६
खेइ ७७
खेवरि १८६
खेतबारी ९७
खेदाखेदी १८२
खेप ९७
खेमा ७५
खेलि ७५
खोपड़ी ७६
खोंड़िआ १३६
खोइआ ७८
खोदाइ ३३
खोमू १२५

ग

गँजेड़ी १६६
गँठिआवऽ २५०
गँड़ासू १०५
गँवड़ा २०७
गँवार ८४
गऊर ३१
गगरी १३०
गज ३१

गजल् २२
गट्ठा ८४
गॅंबुर ६४,१२६
गद्का १६६
गद्रा २५०
गपस २५३
गभरू १०६,१६८
गयर १७३
गर् १७३
गरह १२६
गरहन् १२६
गर्दनिश्राव २५१
गर्मस २५३
गर्मी २४६,२५१
गवना १४३
गहक २५२
गहिर १०१,११५,१४७,१५०
गम्हारि ८१
गाँज ७६,१३२
गाँती ७६
गाइ १४,१८३,१८५,१८८
गाज ७६,७६
गाजी २२
गाटा ८४
गाड् १८४,२५०
गान्ही ८१
गाभिन् १४२,६३,१०१,११६
गाय १४
गारागारी १८२
ग्यान ३३,१३०
गिश्रान ८१
गिर्डौर २५३
गिन्ती ११६
गिलास १६१
गुश्रा ६६
गुश्राल १०१
गुनहि ४२
गुमास्ता ३१
गुर् हिश्राह १६१
गुलाब २२
गूवा १०५
गूह ६६
गोंड् ७६
गोंड़ २५३
गोंड़ुरि ७६
गेना ६७
गोंइँठा १३४
गोंड़ ७६
गोंड़इत ६८
गोंयड़ा १६८
गोइयाँ ४१
गो-चना १२७
गोजई १२७
गोजर ७५
गोटा २५०
गोड़ ७५,७६,६२,६८,१३५
गोड़इत ६८
गोड़गर १७१
गोतल्वार २४
गोदागोदी १८२
गोर १४७,२००
गोरू ६२,६७,१०६,१२६,१६८
गोलक ५०
गोला (कुछ लाल रंग) १६६
गोस्त २३
गोसाईं ६७
गोहार ६०,१६४
गोहुअाँ ६८
गोहूँ ६७

घ

खंघोर ३४
घैंटफोरवा १८२
घँसु ११७
घमा २५०

घरइला १५५
घरनी १००
घराना १७१
घरी ३०२
घाँख १८३
घाँटों ३१
घानी ६५
घाम ६५,६४,१३०
घामस १६६
घाही ५८
घिसट् २५२
घींच २६५
घीव् २३,१०७,१३०
घुँघची ७६
घुघुआ ५३
घुघुनी १३०
घुप् ३०७
घुमक्कड़ १५६
घुमाव २६६
घुचिआह १६१
घुलल २६५
घुसवट् २५२
घेंचु १३०
घेंठ १३०
घेरवट् २५२
घोड़मुँहा ६८
घोड़सार ६३
घोर २५०

च

चउक १०१
चउका १२८
चउर ५८
चउगेरी १६८
चन्नन १०१
चपकन २२
चपट् २५२
चपर २५३
चमक २५२
चमचम २२
चर्खा २२
चलान १५६
चश्मा २२
चहुँप १२६,१५५
चाँछ १११
चाउर २२,७७,१०४
चाकाचुकी १८२
चाल् १०६,१३०
चानी ७६,८१,१८३
चावस ३०६
चामुकि २२
चास् १४६
चाहे ३०५
चिउरा १६८
चिउड़ा १६८
चिकन् १३०
चिक्कन १२८
चितिआ ३५०
चिन्हारू ६६
चिबिल्ला ४०
चिरई ७७,१८६,२६३
चिलिहक १६४
चिहुँक २५२
चीता ११६
चीन्ह ८१,६६
चीन्हि १८६
चीलिह १३०
चुअल ४१
चुचुहिया २५२
चुनवट १६६
चुनवटी २५२
चुभुक १८६
चुरइल २५५
चुलबुला ६७
चून् २२
चूल

चूल्हि ६७
चेंउँआ ७८
चेंगुर ५४
चेला ७५
चैता १०४
चोखा २५०
चोखाइल २६७
चोन्हा ८१
चोम् १२५
चोराव २५०
चोरी-चमारी ६०
चौमुख १८१
चौमोहानी १८१

छ

छकड़ा ६६
छका १२८
छतवर ४६
छपक २५२
छपरहिआ ८
छप् १३१
छरहर १७०
छाँह १४३
छावल १५६
छान ६६
छाव् १३१
छिछि ३०६
छिटिक २५२
छिनार १०१,१३१,१४४
छिरिक २५२
छूँछ ७६
छुटल २६
छूरि ४१
छेमा १०६
छेरि १३१
छेव् १३१
छोटका ५
छोड़हल् १७०,१६६
छोवाछिनी १८२
छोह १३१

ज

जँहाँ २४१
जइसन २३६
जइसे ६४०
ज :री २६४
जखम् २१
जखेड़ा १८६
जगत्तर ८४
ज गरम् ५३
जगाव २६६
जवइआ ५३
जवइन १७०
जतना २४०
जतसार २१,२४,३७
जतहत २४०
जन्तर १३२
जबिद् ११३
जबिता २१
जबून १६६
जमा २१,२२
जमाति १८६
जमादार २१
जम्हाइल २६७
जम्हु ५२
जरिआ २५०
जरी २२
जर्दी २२
जलखई १७६
जवन ४२,२२६
जाँत ६५,२५०
जाम् २५०
जारन् १५६
जारी २१
जिआदा २००
जिउतिया ७७

झिकिर ११३
झिताव २६६
झिन २२
झिनिगी ५८
झि मेग्राव २५०
झियरा ४३
जीअन् १०१
जीआन् ५२
जीभि ६६
जुझन्न १३३
जुटल २६५
जुटार २५३
जुडा २५०
जुमा २२
जुलाव २२
जुलुम ४८
जुलुमि ४४
जूवा १०५
जेउँआँ ७८
जेकरा ४२,५७,२२६
जेठवत् ६७
जेने २४१
जेहर २४२
जेहल ५८, ८३
जैदादि २१
जोइ ७४,६७
जोगाड २२
जोगिग्रा २७
जोत २५०
जोता ६८, १३७
जोव १८४

झ

झँडग्र २५३
झपक २५२
झपना २५२
झपस २५३
झपास १३२,१६१
झरल १३२
झर्कार् २५३
झाँझर १३२
झापस १६६
झारल् १५६
झावों १३२
झिलट् गा १३२
झुलनी १५७
झूमर ३४,१३२
झोंटा १३३
झोरा १३२
झोल २२

ट

टँगरी १३३
टकसार ६६,१३३
टटका १३३
टनक् १६४
टपक २५२
टराम् ११३
टलल् १३३
टपक् २५२
टहल् १३३
टाँकल् १३३
टाढ् १३३
टाँडी १३३
टाड् हुन ८०
टाटी १३३
टानाटानी २२
टिकठी १३३
टिकुरी १६८
टिकुली १६८
टिकोरा ४४
टिमूकी १६५
टिमाक २४
टिसुना ४६
टीसन् १७४
टुँइझाँ १३३

टुँड़िआ २५०
टुटू ११६
टुड़हा ५८
टुसियाइल ५३
टूक १८३
टूटल २६;१३४
टेकुआ १३३
टेङ्रा १३३
टेङुआ २५०
टेम २०२
टेम्भ २५०
टेम्हिआ २५०
टेम्ही २५०
टोकाटोकी १८२
टोंटी १३३
टोब् २६५

ठ

ठँइयाँ ३१
ठवर ३३
ठकच् २५३
ठग् २६,१३४
ठढ़िया १३६
ठमक् २५२
ठलुआ १६३
ठाँईं १३४,१८२,१९८
ठाँव २६,१३४
ठाव १३४
ठुमुक २५२
ठुरस २५२
ठुँठ १३४
ठेला १३४
ठेहुन २५०
ठेहुनिआ २५०
ठोकाठोकी १८२
ठोकारी १३४
ठोपारी १३४

ड

डँस १३५
डंटा १३५
डड १८४
डफे १८४
डऊवा २६
डकइत १५६
डगरी ५२
डढ़ा २५०
डढ़ुआ १३५
डन्ड ८१,१८४
डपट २५३
डवरा १३५
डव्वू १३५
डहर १३५,२५०
डहराव २५०
डोंगर १३५
डाँड़् १३५
डाँस ३१०
डाइनि १३५
डाकदर ५७
डाढ़् ६२
डाढ़ा १३६
डाढ़ि ७६,१३५
डासन १३५,१४६
डिअटि ८४
डीठ १३४
डीभी १३५
ड्युढ़ि १३६
डूमरि ६४
डोंड ७६,१३५ १८४
डोकी १३५
डोमहाडजि ६८
डोरा १८३

ढ

ढकच २५३
ढकार २५३

तोनइल १५५
तोब २१
तोबा २२
तोर २०७,२१८,३०३
तोरी २०७,३०३

थ

थइली ६५
थउस २३८,२५३
थनइली १३८
थना २५०
थप्प ४८
थपरा १३८
थपुआ १३८
थरिया १३८
थाकल १३८
थान १३८
थापी १३८
थाम्ह २५०
थाह १३८
थिरा २५०
थुथुन १३८
थुथुरि १३८
थू-थू ३०८
थून्ही ७४,१३८
थेथर १३८
थोर ६७

द

दखलति २१
दऊर ३३
दखिनहा १६१
दचूका १६५
दफ्तर २१
दरखास् २१
दरबार २१
दरिगाह २२
दरोगा २१
दलानि २२
दह १२६
दहतुरि १५१
दहिऔ ७७
दाग् २५१
दानो १०५
दालि ७६
दाहिं ११२
दिआरी ११६
दिकिआव २५१
दिदार ३०
दियरा ३२
दियारा ४४
दियरी १६८
दिहन्न (अनेक दिन) ३२
दीऑ ७७,१८८
दीन ३२
दुअरिया २७
दुआ ३२
दुआर ८४,८५
दुआरि ११७
दुइ ७७
दुओदसा ८३
दुपहरिया २६०
दुर (दूरी) ७६
दुर्-दुर् ३०६
दुवारा ८४,८५
दुस्मन २१
दुहाई ३१
दुहुट ४२
दूध ७४
दूबर ६७,१४१,१७३
दूलहा ८६
देआद ७७
देउकुरि ७७,११७
देओत ७७
देकुआरि ७५

देवरा ४३
देवालिया ६
देसान्तर ६७
दोऊर ३३
दोरोखा १६७
दोखाई ५३
दोसर १३८,१६६,३०३

ध

धरना ६६
धवरा १६६
धाप १८४
धाराधरी १८२
धावाधुपी १८२
धिआ ८४,१३६
धिरिक ३०६
धिरिकार ३०६
धुधुका १६५
धुहा १३६
धूवाँ १०५
धूहा ६६
धेनुक १६६
धोअन ७७
धोऊरकसवा १८२
धौंवइल १५५
धोबिनचिरई ५३
धोवन ५२
धोवा १०५

न

नइगी ४२
नइहर १४४,१५०
नकटा १२६
नकल २१
नगीच १६७,२५१,३०३
नचवनी ६५
नछत्तर ११३,११५
नतइत १५६
नथुनी १३८
ननिआउर ७८
नबाब २१
नबालिक २१
नबी २२
नमाज़ २२
नयका ५६
नरिअर ६५,१०५
नरियर १०४
नर्मी २४६,२५१
नस (सूँघनी) १८४
नहनीं १३६
नाँवँ १४३
नाऊ ७४,७७,६५,१८३,१८५
नागा १३६
नाज़िर २१
नाता २६
नातिनि १०१
नातु ६५
नापाता १७३
नाम ८० १८४
नालिश २१
न्याव ८५
निकाह २२
नित ३०२
निनिआ ८१
निमरद २६१
निम्मन ६३,१६६
नियर ४६, ५८, ६६,१६५,३०२
नियाव ८५
निहंग १७३
निहिचे ३०२
नीक ६१,२००,३०६
नीन् ६३
नीमन २००,३०६
नूध ५०
नून १४४,१४८

नूर २९
नेवर ७७, १८५
नेंवु ३०
नोकर १८३
नोन २०
नोंह ११७

प

पआ १८३
पैंवना ११३
पइठ २५१
पइठल १४०
पइला ३०५
पकठा १६६
पकाव २९६
पख १२९
पगहा ६६,१२९,१४०,१५०
पछिमहा १६१
पछिला १६३
पछिलि ५८
पट्ठा ८४
पठरू १०६,१६८
पठावल १३४
पड़निहार १७०
पतई १४,१४०,१९०
पताल ३२
पत्थल १४,२७५,१४०
पतिआ २५०
पतिया ३४
पथल १३८
पथरा २६
पथार १३८
पदुम ११३
पनही ९४
पनिआव २५१
पन्ता १००
पन्सावा २२
पयगम्बर २२
पयैंड़ १९५
पयर ४२
परल १३
परात ५२
परानी ६४
पर्री २२
पलई ५३
पलानी ५४
पसर २९५
पसरल १४०
पसारी ९९,१४४
पसेरी ३१
पह ५१
पहिला १६३
पहुँच १५५
पाँख १२,१४,१४०
पाँखि १२,१४,१११,१८३
पाँछा १९५,२९९
पाँजर १०९,२०१
पाँपर १४०
पाँत्र १४०
पाइक १०५
पाकड़ि १२८
पाठा ८४
पातर १९९
पाथ १२६
पाम्हीं ८१
पारा ६४
पावल ८४
पाहुन ११६,१४०
पिअक्कड़ ११५
पिअल ७७
पिआस ८४
पिचास १२९
पिचुक २५२
पिछाड़ी १६६
पिट् २५१

पिटाई ३०४
पितर १०१
पितराइल ६६,२६७
पितिआ २६४
पितिआउत १६४
पियादा २१
पियराइल २६७
पियवा ३४
पियालो २७
पियास ६६,१६१
पिरा २५१
पिर्यां ११६
पीठि ६६,१८३
पीठा ११३
पीढ़ा १३६
पुराचरन २३
पुराठ १६६
पुरवनि ४२
पुहुति ६२
पूआ ८४
पूछ ११७
पूल् ५७
पूवा १०५
पूस् ११७
पेङ्हा ८०
पेड़ १४
पैजामा २२
पोढ़ ७४
पोक्खर ६८
पोंछिआन २५१
पोथा ६८
पोंभि २३
पोभि ८१
पोलाव २२

फ

फवक २५२
फउती १३७
फजिहति १८६
फट्का १६५
फतिंगा १५०
फन्दा २१
फर ८०,५४,१२१,१४०,१४६
फरहर १५०
फरास २२
फरुआ १४०
फवारा २२
फाँड़ १४०
फाँस १२४,१४०
फाट ७६,२६६
फान ५३
फानूस २२
फार १४०,२६६
फाली २२
फिकिर ७४,५८,११३
फितु ३०४
फिरंगिया ६
फिरियाद २१
फिरिस्ता २२
फुफुआउत १६४
फुर्ती ३०२
फुलचुम्मी १७६
फुसिलाव २५३
फूआ १६०
फेंड़ १४,४६,१६०
फेन् ६७,१४०
फेना २५१
फेनु ६४
फेर ४६
फेराफेरी १८२
फोकच् २५३
फोरन् १०१,१८०,१५६

ब

बँगरही ८
बँसवारी ५३

बँसहट ५८
बइर १०४
बइरि १०४
बउरा २५१
बउराह १६१
बउरी २९४
बऊर ३३
बएल ७७
बकलंड १८४
बकस् ११३,२५१
बकसरिया ७
बकसि ३३
बखत ११३,३०२
बखान् १४१,२५१
बगइचा २२
बघेला १६४
बछरू ९२,१०६,१६८
बजर ११३
बटिया ३४
बड़् १९९
बड़का ५,१९,५७
बड़हन् १७०,१९९
बढ़नी १५७,१३६
बढ़न्ती १५७
बढ़िना ८१
बतिया २६,४२
बतिआव २५१
बदसाह २१
बदाम २२
बदे १९६
बनइला १५५
बनउर ६६
बनिजि १३३
बनूखि १२५
बन्हुआ १६३
बधुआ ११,१५७,२९४
बधुई ६४
बरका १९
बरध १३८,१८५,१९९,२५१
बरफ २२
बरफी २२
बरम्हा ८१
बर्खा १२९
बरिस २६०
बलाइ २६१
बलुक ६६
बल्टम २२
बहादुर २१
बहिनि ११५,१२५,१२६,१४०
बहियाँ ४१
बाँक १११
बाँगर ८
बाँनाँ २९
बाँहि ७६,१११
बाउर ४२,२६९
बाछी ७९
बाजन् १५६
बाजू १८३
बाट २२
बाड़ी २२
बाढ़नि १८६
बाती १३७
बाँध ७३,७९,१८४
बान ५२
बान्ह ११६
बाफ ८०
बाम्हन ४२,८१,१९३
बायी १०४
बार ८०,८२
बारी २८३
बालम ४२
बावनवीर ५२
बासा २२
बिअहन् १७०

बिश्रा १६६
बिखे १२८
बिगाड़् १६४
बिचिला १६३
बिछलहरी ५४
बिछली ५३
बिछी ६६
बिजुली ४८
बिदकत ५७
बिन्ती ६६
बिरिथा ३०३
बिस् १२१
बिसमिल्ला २२
बिहून १६६
बीन-बीन ४६
बुमक्कड़ १५३
बुढ़ ८२
बुर ८२
बुन्ना ८४
बुलबुल २२
बूँट ७६
बूक २५२
बूड़ १०८
बूनी १०६,१४१
बेकत ५७
बेछ् ८०
बेजइहाँ २६०
बेंजन ३४
बे-टइन १७५
बेठन १५६
बेथा १०६
बेर ६७
बेरा २४०
बेसाहल ५२
बेसी ५७
बैपारी ४६
बोश्रनी १५७
बोए २०
बोकला १८,१२८

भ

भँइसि १४१,१८५
भँकड़ २५३
भँगेड़ी १६६
भँडार ६५,१०५,१०६
भँडुश्रा २५१
भँवता १६८
भइश्रा २७
भउजाई १३२
भक्भक् २५३
भकस् २५३
भचक् २५२
भटकोइश्राँ ३१
भड़क् २५२
भतखोर ६५
भतरीन्हा १७६
भतीजा ११६
भतुश्रा १६३
भदराह १६१
भभून ६३
भयबद ५८
भर ६४
भरल ५६
भाँट (भाट) १४
भाँड १४१
भाड् ८०
भागड़ १६६
भाजा २२
भावज १४१
भिंज् १११
भिंगाल उमरिया ५३
भींज् ६४,११२
भींजल १४१
भीखि ६६
भुँई ११६,१४१,१४३

मुँड़मुँघना १७९
मुँसुरी ५३
मुहँहार ११२
मुह्ना ८१
मुताह १६१,१९९
मुलकड़ १५६
मुवा ३०
मोंइ २६०
मेंटी ११४
मोम्हाड़ ८१
मों ४१,२७५

म

मँगिया ५४
मंदिल ३०,१०१,१९६
मइल ७७
मउअति ७८,१३७
मउसिआउत १३७,१६४
मउन १०४
मउर १०२,११५
मउवति ५८
मऊर ३३
मएँन ७५
मकुला १२८
मखमल् २२
मचक् २५२
मचिया १३१
मजलिस् २२
मझिला १६३
मट्ठर १३४
मठुक १२६
मथेला १६४
मनावन् २९४
ममिआउत १३७,१६४
मरदुमी ५१
मरल २९०
मरद २६१
मरिचा ७४
मलहम २२
मलाई २२
मलिकार ५८
मसाला २२
महजिदि २२
महटर ५७
महापुरुष २४
महुआ ११६
माँग २६
माँगुर १३०
माँच १०९,१८३
माँज १११
माँड़् १०९
मोंइवारी १२६
मागी २२
माड़् २५१
माछर ३३
माछी ६६
माझिल १३३
माटी ११५
माठा १३४
मानिक ११६
मातुल ३०
माफ २१
मार २९५,२९६,३००
मारह ८२,१८४
मारामारी १८२
मारि ८२,१८६
माल्ह १८४
मालिक २१
माहटर ८५
माहुर ३४
म्यान ८५
मिठाइल २९७
मिनती १४४
मिश्रान ८५
मिरिजा २१

मिहितिरी १५१
मुँगरा १३०
मुँखिआ २५१
मुंसी २२
मुअल्ल १०८,२९०
मुड़ ९८
मुनवास १६१
मुनरिया ४६
मुलुक ४२
मुल्की ७
मुल्ला २२
मूत २५१
मूरख ५२,११३
मूरही २२,८२
मेख २२
मेहरारू ४२,६१,६४,१०६,१६८,१८५,२३९,३०५
मेंहदी ७६
मैदा २२
मैभा १९५
मोकद्दमा २१
मोंछि १३०,१४५
मोंनसफी २१
मोमिन २२
मोवार ५९
मोसाहिब ६२
मोहर २१
मोहरमाला ७५
मोहर्रम २२
मौनीमठ ९

र

रइआ ११४
रहता १९८
रउआँ ११,२६३,२६८
रउराँ ११,२३८
रगरी ५२
रजाई १५९
रफ़ू २२
रमूता २९३
रसगुल्ला २२
रखति २१
रसूल २२
रहनिहार १७०
रावत १०२,१३७
राउर १०२,१२१,१४६,२३८
राछ्छू १८३
राधू १८४
राय १०४
रिकाब २२
रिसाला २१
रुख ४६
रूमाल २२
रूआ ७७
रूख १०७,११७
रूसल २६
रेताइल २९७
रेसमू २२
रोजिग्ना ६२
रोब ८०
रोआँ १०५

ल

लँगरा १९९
लंगा १४८
लइका ६४,६६,१९३,१९९,२००,२२०,२३६,२३८
लकर ३३
लकठा १४
लकठो १४
लकवसूँघवा १७९
लगाम २२
लठलर १६६
लड़ीक १५९
लतिआव २५१
लपट १४३

लमहर ५६,१७०,१६६
लमहा १८५
लम्बर १४८
लम्मरदार ८४
लमेरा १६४
लरिका ७४,१८६,२६०
लालाइल २६७
लवडा ३०६
लहरा ३२
लहरापटोर ३४
लाव्हनि ८०
लोची ६४
लाहु ७४,१४७, १६३,१८३
लामू १०६
लियल् १४०
लिलार - ११५
लुगरी १६८
लुगा ५१
लुगइया ५१
लूका १२६
लूर ६२
लेवा ५८
लोटिसू १४८

व

वोखद् २५७

स

संमा १३३
सँकार २५३
सँघनिया ३४
सँपरे ४२,६१
सइयाँ २७,३१
सउँपन ११७
सउर ३३
सएकड़ा २०८
सकपका २५३
सगरी ५२
सगरे ४२
सगिआन १३०
सगुन २६,१३०
सङ् ८०
सङ्हे ८०
सजाई ८६,२८६
सनाइ २२
सनूखि २२
सन्ती १४,१६८
सन्तिन १४
सनेस २२
सफाई २१
सवखू २१
सवुर ५८
सवेराह ६६
समइया ५३
समुम्क १५५
समे ८७,३०३
सरग ३२
सरजाम ६४
सरवर ३०
सरहजि १३७,१५१
सरहमध्यन ६०
सराव ११३
सरियन २२
सरिया ३२
सरिहारल ८६
सर्कीर २१
सर्दार २१
सर्मा २४६
सर्वति ३३,८४,८७
ससुर ७४
सहिजन ११५
साँड़ १४
साँढ़ १४
साँवर ६५,११२
साइति २०२

सागिर्द २२
साच् ६४,१३१
सान २१
सावस् ३०६
सार १८४
साल २२
सालिस २१
सासु ७४,१८३
सिकरी ७६
सिकार २१
सिकुर २५३
सितार २२
सिद्ध २२
सियरमरवा १८२
सियार १०७
सिरिनामा ११३
सिरिमान ११३
सींकर १०७
सींकि ७६
सींगि १०७
सींचि ७६,११६,१३०
सींमन्त १३३
सीसी २२
सुई ७७
सुकठा १६६
सुकठी १२६
सुखल २६६
सुखलेसुखल ४६
सुट्की १२६
सुटुक २५२
सुविश्रा २५१
सुनहाँ २६
सुन्नर ४१,६२,६१,२७५
सुमिरन ११३
सुरुक २५२
सुरुज २६०
सुवदूर ११४
सुख ३५१
सुतल २६,२६,३८५
सूमू ६७
सूनर १०६
सूबा २१
सूखीं २२
सुवर १०५
सुचा १०५
सेनुर ७४,१०२
सेन्हि ८१,११७
सेमर ३०
सोभ १३३
सोभाँ १६८
सोन्ह ११८,१८२
सोन्हा ८१,२५१
सोन्हाइल २६७
सोराही २२
सोहनी १५७
सोहर ३७,३०५
सोहागा १३०

ह

हुंडा २२
हुँकड़ २५३
हुँडिफोरना १७६
हइता ११४
हउरा ७७
हक २१
हगवाम १६१
हचका १५१
हजूर २१
हड़चवा २५५
हतहन २४०
हथियार १६३
हथउर १६६
हथगर १७१
हथिश्राव २५०
हथिसा(६३

हद् २१
हदीस २१
हर १५०,६४,१२१,१४६
हरबोलिया १७५
हर्का १५१, १६५
हर्ना १००, १५०
हर्नी ५५८, १८६
हरिश्राइल २६७
हरियर ५३
हरूफ २२
हलाल २२
हलुश्रा २२, ६६
हलुक १२६, १५०
हल्ला ३०६
हाँडी ६६, २६४
हाकिम २१
हाजति २१
हाथा १५८
हाला-हाली २०७
हाली ३०२, ३०३
हिनुई ५७
हिन्हन २२०, २२१
हिफाज़त २१
हिमाति २१
हिसाव २१
हिंहा २४१
हींसा ८५
हुड्क २५२
हुन्हन २२२, २२३
हुरवट २५३
हुरोचरन २३
हुरुका १५१
हुर्का १६५
हुलवुज्ञा २५५
हुलिया २१
हुँहाँ २४१
हूँका २२
हूर २५३
हूल २५३
हेंठों ६७
हेने २४१, २४२
होतना ५७
होने ५७, २४१, २४२
होहर २४२

कहावतें

सइ पुराचरन नाॅ एक दुराचरन	२३
करवा कोंहार के घीव जजमान के स्वाहा-स्वाहा	२३
सभे धान बाइस पसेरी	६२
उर्दी के भाव पूछे, धनउर छ पसेरी	६६
सब्जी कुकुर गंगे नहइहें त हाँड़ी के ढूँढी	६६
कहला से धोबी गदहा पर ना चढ़े	२५६
मरद मुए नाम के, निमरद मुए पेट के	२६१

शुद्धि-पत्र

[इस पुस्तक में भोजपुरी के जितने शब्द आये हैं, उनमें उच्चारण की सुविधा के लिए हलन्त (्) का चिह्न होना चाहिए। जैसे—काज-काज्; नाच-नाच्; साँप साँप् आदि। किन्तु प्रेस सम्बन्धी कठिनाइयों के कारण सर्वत्र हलन्त नहीं लग सका। पाठक भोजपुरी शब्दों के उच्चारण का खयाल करके शब्दों को ठीक-ठीक पढ़ लेने पर विशेष ध्यान रखें।]

(उपोद्घात)

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७	२१	स्वर-स्वनियाँ	स्वर-ध्वनियाँ
	२८	टिथेमि	टिथ्येमि
८	११	अंग्रे०	अं०
९	१०	पाश्चात्	पश्चात्
१०	२५	अपश्रति	अपश्रुति
११	२४	जर्मैमिक	जर्मैनिक
१३	१५	ज़ुठ	ज़ूद्स
१४	११	उष्म	ऊष्म
	२५	सो न्ताँ	सो.न्त
१७	३	अयदा	अथवा
		लुखारों	तुखारों
१८	१२	ज़दथु.श्त्रों	ज़रथु.श्त्रो
	२१	आतं	आ तं
१९	११	इमत्यमना	इम त्य मना
	१६	यादृश्य्	मादृश्य्
	२३	भ्रर्दिंयं	चर्दियं
२१	२३	रूप में	रूप से
२३	५	इ, इ	इ, ई
	११	'अवे'	अवे०
२४	९	'ओ'	'औ'
		आजकल 'अइ	आजकल के संस्कृत-उच्चारण में 'अइ

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२४	१६	अन्या	अन्य
	१७	'ट-वर्ग' क	'ट-वर्ग' का
	२१	'दुष्टर्' 'अजेय' ('दुस्तर')	'दुष्टर' (='दुस्तर') अजेय
	३०	ओष्ठय	ओष्ठ्य
	३४	उपध्यानीय	उपध्मानीय
	३५	ल, लह	ळ, ळह्
	३८	'र्' के स्थान में भी 'ल्' के प्रयोग	'ल्' के स्थान में भी 'र्' के प्रयोग
३०	१४	महत्वपूर्ण स्वराघात	महत्त्वपूर्ण संगीतात्मक-स्वराघात
		गय	गया
	२५	एवं धातुरूप	एवं अनेक धातुरूप
३१	३१	Aorsist	Aorist
३२	१७	(२००ई० पू०-२०० ई०)	(६००-२०० ई० पू०)
३३	१६	खोलों	खोजों
३४	१८	'ओ' स्वर	'औ' स्वर
	२२	'ल' 'ल् ह'	'ळ' 'ळह्'
३५	१७	<प्रव्यथये	<प्रव्यथते

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३१	३२	'ह्ण्' 'ह्न्' 'ह्'	'ह्ण' 'ह्न्' 'ह्स्'
	३०	वयस्व >	वयस्य >
		वयस्थ	वयस्स
३६	६	(<अस्)	(<√अस्)
	२५	7 स्वामिकेन	7 स्वामिकेन
३७	३१	वाराणसेयः	वाराणसेयः
३८	५	कीलिका	कीळिका
४०	१८	प्राकृते	प्राकृते
४२	१	पृच्छते	पृच्छ्यते
४३	२	चरिअउ	चरिउ
५१	१२	भाषा	आर्य-भाषा
५२	२१	मराठी ने	मराठी में
५४	८	संस्कृति	संस्कृत
५५	४	>कैर	>केर
५६	५	tinse	tense
६५	८	लहँडी	लँहदी
	१४	केवली	केवल
६८	१६	भला सब	भला, सब
	३४	संश्लिष्ट	संश्लेष्ट
६९	६	वर्ण	करण
	३,१४,२६	लहंडी	लँहदी
७०	३	पढ़ा,	पढ़ी
	१२,२०	लहँडी	लँहदी
	२६	दर्दभाषा	दर्दीय भाषा
७१	२	,,	,,
	२४,२६	लहँडी	लँहदी
		प्रोठवारी	पोठवारी
७२	४	लहँडी	लँहदी
	६	राजीतिक	राजनीतिक
७८	२७	मुतुर्कमान	तुर्कमान
	१४	Scould	Scold
९५	१२	बहुला	बहुलः
	१३	इनका	इनव्यत्ययों के व्यत्ययों का
९६	११	मलायालम	मलयालम्
९८	३३	अदान	प्रदान
१०२	१	प्रभाव	प्रभाव.
१०३	६	विश्वत	विवृत
	४	भाँति ही	भाँति
१०४	६	के कवन	के, कवन
१०५	३	हिन्दी	हिन्दी के
११३	२४-३४	ब० व०	ब० व०
११५	१	अनुस	अनुसर्ग
१२६	२१	पर्याप्त रूप से	पर्याप्त
१३५	३६	कर्तृ	कर्ता
	८	तद्यव	तद्भव
१४३	१८	प्रकर	प्रकार
	२७	उ-त्पत्ति	उत्पत्ति के
१४४	२३	उसत्ति	उत्पत्ति
१५६	३	साहश्य	सादृश्य
१८०	१४	लिलते	लिखते
२०३	६	प्राकृतपा	प्राकृत भाषा

(मूल पुस्तक)

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०	१०	रुक्मनदेई	रुम्मनदेई
११	२०	भोजपुरी का	भोजपुरी की
	२१	कहनेवाला	करनेवाला
	२५	राजकुल्ये	राजकुल्य
१३	३	भलिया	मलिया
१५	१५	कि उन	कि यह उन
१६	१७	जावपाईगुड़ी	जालपाईगुड़ी
२१	३४	जोगाइ	जोगाड़
२५	७	प्रभाव	अभाव
	२७	वज्र	व्रज
२६	१०	छू छू	धू धू
	२६	कँवल	कँमल

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२७	२१	नवीतम	नवीनतम
	३१	धनियसुत्र	धनियसुत
	३५	गिति	गिनि
२८	१७	घोडोना	घोड़ौना
	३१	रहरवा	रहटवा
२९	५	मूलल	मूवल
३०	३४	धर्मादास	धर्मदास
३१	३५	'पेयार'	'पयार'
३२	१६	माते	माथे
	२१	दिहुन्न	दि्नन
	२८	बइाई	बैठाई
३३	५	घरनी	धरनी
४१	१७	आल्पकाल	अल्पकाल
	११	चलीब	चलबि
४६	१५	र वाँ	खाँ
४७	४	रअइलू	अइलू
	६	कसवा	कँसवा
	७	बटे	बाटे
	३४	तोहरा के	तोहरा चरनन के
४८	२७	तहसलि	तहसील
	२६	थप्प	थप्पड़
५२	२१	मूरख	मूरुख
	३६	गुलरि	गुजरि
५६	१०	पह्लि	परलि
	३१	हो ते	होते
६२	२२	परस	परसा
	२७	लायक हल ?	लायक ?
	३४	न हीं	नाहीं
६५	१०	चीटी	चोटी
७८	२३	fnrward	forward
८२	२३	वड	बढ़
९१	१४	वणा	वर्णों
१०३	१०	अगनै	अगने
	२२	उप्मध्वनि	ऊष्मध्वनि
	२७	शिला	शिलालेख
१०४	२४	Mono-thong	Monoph-thong
१०७	१५	भारत	भारतीय
१२०	१६	मा० भा०	म० भा०
१२२	१२	Sabialisation	labialisation
१२४	७	प्राकृतिक	प्राकृत
	१३	प्राकृति	प्राकृत
१२६	१६	की यह एक	की एक
१२७	२५	घोष, महाप्राण + वाले	घोष + महाप्राणवाले
१२८	१२	क़	क्
१३४	३	मोटी	माटी
१३६	१०	चिारग	चिराग
	१३	ढीली	ढोली
१४०	१२	यथ	यथा
१४१	२	संस्कृत	भोजपुरी
१४२	१५	वर्गी	वर्गों
१४३	३	अन्य	अन्त
	२३	शब्दों भी	शब्दों में भी
१४४	२०	(अन्नाघ)	(अन्नाद्य)
१४६	१४	(वृस्विास)	(विस्वास)
१४७	४	जस्थानी	राजस्थानी
	२८	भो० प्र०	भो० पु०
१४८	२७	उप्मध्वनि	ऊष्मध्वनि
	२६	Selulant	Sibilant
१५१	१७	भो० ८०	भो० पु०
१५१	२८	विहर्ग	विसर्ग
१५७	१४	(वधनिका)	(वर्धनिका)
१५६	११	-ओक्	-आक्
	३०	विशेष	विशेष्य
१६०	३	-आय्	-आप्
१६१	२०	-आह	-अहा
१६५	२६	-अकी + ई	-अक् + ई
	३६	विशेपीय	विशेपणीय
१७४	३२	फा० आ०	फा० अ०
१७८	२१	कागग	कागज़
१७६	१७	खाट	घाट

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
१७६	२४	जाया	गया
१८६	२१	किया था	किए थे
१९२	१५	हो जाने से	हो जाने की
१९६	५	पाश्व	पार्श्व
२०२	३०	पच पेन	पचपनि
	३३	अएठावनि	अट्ठावनि
२०४	७	अयठान्बे	अट्ठानवे
	२२	बीस आदि के	बीस आदि
	२४	वस्तु	वस्तुनः
२०६	२६	Enphonic	Euphonic
२१५	३२	य	या
२२२	१०	आदि ∠सम्पन्न	आदि सम्नन्न
	२६	सम्वघ	सम्बन्ध
२३६	३०	तत्सन	तत्सम
२४४	१७	विकर्ण	विकरण
२४७	१८	कार्ट-	कर्तृ-
	३४	उवालयहि	उवालयति
२४८	१८	सावत	साधित
२४६	७	विगुण	द्विगुण
२४६	२६	fermation	formation
	३०	Part	Past
२५१	३१	मिश्रि	मिश्रित
२५२	६	निरन्तरा बोधक	निरन्तरता-बोधक
२५६	८	वतुतः	वस्तुतः
२६५	१२	Ablant	Ablaut
२६६	३०	Permis sives	Permissive
३०५	१६	विभाजका	विभाजक
३१२	२१	हे स्त्री तुम्हारे	हे स्त्री ! तुम्हारे
	३३	कुक्षि के	कुक्षि की
३१३	८	कुक्षि के	कुक्षि की
३१३	१८	मुख बनाते	मुख गढ़ते
३१५	८	सुरेभनपुर	सुरेमनपुर
३१६	३५	। का ।	। फा ।
३१७	२६	डाब्रहर	गावहर
३२१	१६	रघु प्रसाद	रघुनन्दन प्रसाद
३२२	५	ब्रहनचारी	ब्रह्मचारी